श्री:

श्रीमते रामानुजाय नम:

दिव्यकथामृत श्रीमद्भागवत–सार

(भगवत्–स्वरूप–सौंदर्य–संग्रह)

अष्टभुज पेरूमाल
(काञ्चीपुरम्)

जय बद्री विशाल

श्री बाँके बिहारी जी

समर्पण - पिता श्री राघवाचारी - माता श्रीमती सकलमति देवी

श्रीकृष्ण प्रपन्नाचारी

श्रीः

श्रीमते रामानुजाय नमः

कौण्डिन्यगोत्रसरसीरुहबालभानुम् । श्रीरंगदेशिकपदाब्जरसैकभृंगम् ।।
श्रीराजेन्द्रसूरिचरणाश्रितमप्रमेयम् । श्रीमत्पराङ्कुशगुरुं शरणं प्रपद्ये ।।

श्रीराजेन्द्रयतीन्द्रपादयुगले सद्भक्तिमानन्वहम । श्री कौण्डिन्यकुले पराङ्कुशमुनिर्जातो महाब्धौविधुः।।
तद्पादाश्रितलब्धबोधनिखिलं श्रीरङ्गरामानुजम् । श्रीमत्काश्यपवंशजं गुरुवरं भक्त्या सदासंश्रये ।।
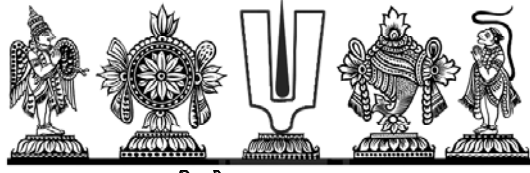
श्रीमते रामानुजाय नमः

दिव्यकथामृत श्रीमद्भागवत-सार
(भगवत्स्वरूप-सौंदर्य-संग्रह)

श्रीकृष्ण प्रप्रपन्नाचारी

अक्टूबर 2021

Title : DIVYA KATHAMRIT SRIMAD BHAGAVAT SAAR

Author's name : Srikrishna Prapannachari, Ph.D. .

Published By : Self Published

Publisher's Address:
1 D Takshashila Apartment, Abhay Khand 3
Indirapuram, Ghaziabad, UP   201014
prapnnachari@gmail.com

Availability of the Book
78 LIC Colony, Chitragupta Nagar, Kanakarbagh
Patna 800020

Price   Rs 350 postage extra
Printer's Details :
RNR Printers & Publishers
19 Thandavarayan Street
Triplicane Chennai 600 005

1st Edition October 2021

ISBN: 978-93-5566-642-0

Author’s other published Titles:
1.The Crest Jewel : Srimadbhagwat Mahapuran with Mahabharat (English) ISBN 978 - 81 - 7525 - 855 - 6
2. Thiruppavai (Hindi)
3. Nalaayir Divya Prabandham (Hindi), ISBN 978-93-5067-885 -5
4.Divya Charitamruta (Hindi) ISBN 978-93-5174-131-2

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

श्रीमत्पराङ्कुश मुनये नम:।

विषय सूची

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

श्रीमते रामानुजाय नमः।

भूमिका

सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे।
तापत्रय विनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः।।

एक बार भगवत्कथामृत के रसास्वादन करने में कुशल मुनिवर शौनक जी ने नैमिषारण्य क्षेत्र में महामति सूत जी को नमस्कार के निवेदन किया कि आप का ज्ञान अज्ञानान्धकार को नष्ट करने के लिए करोड़ो सूर्य के समान है। अतः आप अमृत स्वरूप सारगर्भित कथा कहिए। भक्ति, ज्ञान और वैराग्य से प्राप्त होनेवाले महान विवेक की वृद्धि कैसे होती है और भगवद्भक्त सदा के लिए किस प्रकार माया मोह से मुक्त हो जाते हैं। इस घोर कलिकाल में जीव प्रायः आसुरी स्वभाव के हो गये हैं। उन्हें दैवीज्ञान सम्पन्न बनाने का सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है जो भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति करा दे। सौनक जी के प्रश्न का समाधान करते हुए सूत जी ने कहा कि तुम्हारे हृदय में भगवान्का प्रेम है इसलिए मैं विचार कर तुम्हें सम्पूर्ण सिद्धान्तों का निष्कर्ष सुनाता हूँ जो जन्म-मृत्यु के भय का नाश कर देता है। वह साधन बतलाता हूँ जो भक्ति के प्रेम को बढ़ाता है और भगवान् श्रीकृष्ण की प्रसन्नता का प्रधान कारण है।
श्रीशुकदेव जी ने कलियुग में जीवों को कालरूपी सर्प के मुख का ग्रास होने से बचाने के लिए श्रीमद्भागवत पुराण का प्रवचन किया ह। मन की शुद्धि के लिए इससे बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है।जब मनुष्य के जन्म-जन्मान्तर के पुण्य का उदय होता है तभी उसे श्रीमद्भागवत कथा प्राप्त होती है।
जिस समय श्रीशुकदेव जी राजा परीक्षित को यह कथा सुनाने लिए सभा में उपस्थित हुए थे उस समय देवतालोग उनके पास अमृत का कलश लेकर आये और उनलोगों ने श्रीशुकदेव जी कहा कि आप यह अमृत कलश लेकर इसके बदले में हमलोगों को कथामृत का पान कराइये। और आप राजा परीक्षित को अमृत का पान करा दें। श्रीशुकदेव जी ने देवों को अनधिकारी समझ कर उनलोगों को कथामृत का पान नहीं कराया।

अभक्तांस्तांश्च विज्ञाय न ददौ स कथामृतम्।
श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणामपि दुर्लभा।।

कलियुग के प्रथम राजा श्रीपरीक्षित जी हुए थे। प्रजा की सुरक्षा के दृष्टिकोण से शिकार करना धर्म माना गया है। जंगल में रहनेवाले हिंसक जीव जंगल से निकलकर प्रजा को मार डालते थे। हिंसक पशुओं का शिकार राजा का धर्म मानकर राजा परीक्षित जंगल में शिकार करने गये थे। उन्हें जोर से पयास लग गयी। जलाशय की खोज में लगे राजा को उस वन में एक रमणीय भव्य आश्रम पर दृष्टि पड़ी। राजा परीक्षित सोना का मुकुट धारण किये हुए थे। उन्होंने कलियुग को अपने राज्य में रहने के लिए पाँच स्थान बतलाया था। द्युत, मद्यपान, स्त्रीसंग, हिंसा और पंचम में जिसके पास सोना द्रव्य हो। परीक्षित के शिर पर स्वर्णमुकुट के संयोग से कलियुग उनपर आरुढ़ हो गया। उन्होंने आश्रम में जाकर देखा तो एक महात्मा से बैठकर भगवान् नारायण का ध्यान कर रहे थे। जल की माँग करने पर ध्यान में रहने के कारण महात्मा ने राजा की आवाज नहीं सुनी। कलि के प्रभाव से राजा महात्मा से कुपित हो गये। पास में पड़े एक मृत सर्प पर राजा की दृष्टि पड़ी। राजा परीक्षित ने धनुष के अग्र भाग से उस मृत सर्प को उठाकर महात्मा के गले में डाल दिया और वे आश्रम से अपनी राजधानी लौट आये। उस महात्मा का एक पुत्र था

जिसका नाम श्रृंगी था। वह ऋषिकुमारों के साथ खेल रहा था। उसे यह बात ज्ञात हो गयी कि राजा परीक्षित ने मेरे पिता के गले में एक मृत सर्प डालकर उन्हें अपमानित किया है। अत: ये श्रृंगी आवेश में आकर परीक्षित को शाप दिया कि जिसने मेरे पिता जी के गले में मृत सर्प डाला है उसे आज से सातवें दिन तक्षक नाम का सर्प डँसेगा। उससे उसकी मृत्यु हो जायेगी। राजा परीक्षित को इस शाप की जानकारी हो गयी। वे अपने पुत्र जनमेजय को राजसिंहासन पर बैठाकर स्वयं गंगा किनारे चले आये। अन्न-जल त्याग कर सात दिन तक के लिए गंगा किनारे उत्तराभिमुख हाकरे बैठ गये। यह समाचार सभी जगह फैल गया। वसिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास आदि सारे सन्त वहाँ उपस्थित हो गये।

उसी समय ऋषिमण्डली के बीच श्रीशुकदेव जी का पदार्पण हुआ। उन्हें देखकर सभी लोग खड़े हो गये। श्रीशुकदेव जी का समादर कर सभी लोग अपने-अपने आसन पर बैठ गये। परीक्षित जी ने श्रीशुकदेव जी का पूजन कर कहा कि आप योगियों के परमगुरु हैं, इसलिए आपसे पूछता हूँ कि जो पुरुष मरणासन्न है उसको क्या करना चाहिए। वह किसकी कथा का श्रवण करे, किसके नाम का जप करे, किसके स्वरूप का स्मरण करे और किसका भजन करे। ऐसा सुनकर श्रीशुकदेव जी ने राजा को कहा कि लोकहित में पूछा गया तुम्हारा प्रश्न बहुत ही उत्तम है।

मनुष्यों के लिए जितनी भी बातें सुनने, स्मरण करने या कीर्तन करने की है उन सब में यह श्रेष्ठ है। जो गृहस्थ घर के काम-धंधों में उलझे हुए हैं, अपने स्वरूप को नहीं जानते, उनके लिए हजारों सांसारिक बातें कहने-सुनने एवं सोचने की रहती है। उनकी सारी उम्र ऐसे ही बीत जाती है। उनकी रात स्त्री-प्रसंग एवं नींद में कटती है और दिन धन की हाय-हाय या परिवार के भरण-पोषण में समाप्त हो जाता है।

जिह्वा ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वय:।
दिवा चार्थेह्या राजन्कुटुम्बभरणेन वा।।

संसार में जिन्हें अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्धि कहा जाता है, वे शरीर, पुत्र तथा स्त्री आदि सब असत् हैं, परन्तु जीव उनके मोह में ऐसा पागल हो जाता है कि रात-दिन अन्यों को मृत्यु का ग्रास बनते देखकर भी उनकी चेतना नहीं जगती। इसलिए परीक्षित जो अभय पद को प्राप्त करना चाहता है, उसे तो सर्वशक्तिमान्भगवान् श्रीकृष्ण की ही लीलाओं का श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना चाहिए। मनुष्य जन्म का यही इतना ही लाभ है कि चाहे जैसे हो, ज्ञान से या भक्ति से या अपनी धर्मनिष्ठा से जीवन को ऐसा बना लिया जाय कि मृत्यु के समय भगवान्की स्मृति अवश्य बनी रहे।

एतावान्सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठ्या।
जन्मलाभ: पर: पुंसामन्ते नारायण स्मृति।।

परीक्षित जो निर्गुण स्वरूप में स्थित हैं एवं विधि-निषेध की मर्यादा को लाँघ चुके हैं वे बड़े बड़े ऋषि-मुनि भी प्राय: भगवान्के अनन्त कल्याणमय गुणगाणों के वर्णन में रमे रहते हैं। द्वापर के अन्त में इस भगवद्‌रूप अथवा वेदतुल्य श्रीमद्‌भागवत नामके महापुराण का अपने पिता श्रीकृष्णद्वैपायन से मैंने अध्ययन किया था। परमात्मा में पूर्ण निष्ठा ही मेरा निर्गुण स्वरूप है। फिर भी भगवान्श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं ने वलात्मेरे हृदय को अपनी ओर आकर्षि त कर लिया। यही कारण है कि मैंने इस पुराण का अध्ययन किया। तुम भगवान्के परमभक्त हो इसलिए तुम्हें मैं

यह सुनाऊँगा। जो इसके प्रति श्रद्धा रखते हैं उनकी शुद्ध चित्तवृत्ति भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में अनन्य प्रेम के साथ बहुत शीघ्र लग जाती है। जो लोग लोक या परलोक की किसी वस्तु की इच्छा रखते हैं या इसके विपरीत संसार में दु:ख का अनुभव करके जो उससे विरक्त हो गये हैं और निर्भय मोक्ष को प्राप्त करना चाहते हैं, उन साधकों के लिए तथा योगसम्पन्न सिद्ध ज्ञानियों के लिए भी समस्त शास्त्रों का यही निर्णय है कि वे भगवन्नाम का प्रेम से संकीर्तन करें। अपने कल्याण साधन की ओर से असवाधान रहने वाले पुरुष की वर्षों लम्बी आयु भी अनजान में व्यर्थ बीत जाती है, उससे क्या लाभ ! सावधानी से ज्ञानपूर्वक बितायी हुई घड़ी या दो घड़ी भी श्रेष्ठ है क्योंकि उसके द्वारा अपने कल्याण की चेष्टा तो की जा सकती है। राजर्षि खट्वांग अपनी आयु की समाप्ति का समय जानकर दो घड़ी में ही सबकुछ त्यागकर भगवान् के अभयपद को प्राप्त हो गये। परीक्षित अभी तो तुम्हारे जीवन की अवधि सात दिन की है, इस बीच में अपने परम कल्याण के लिए तुम जो कुछ करना चाहिए सब कर लो। मृत्यु का समय आने पर मनुष्य घबराये नहीं। उसे चाहिए कि वह वैराग्य के शस्त्र से शरीर और उससे सम्बन्ध रखने वालों के प्रति ममता को काट डाले। धैर्य के साथ घर से निकल कर पवित्र तीर्थ के जल में स्नान करे और पवित्र तथा एकान्त स्थान में विधिपूर्वक आसन लगा बैठ जाये। तत्पश्चात् परम पवित्र 'अ' 'उ' 'म' इस तीन मात्राओं से युक्त प्रणव का मन ही मन जप करे। प्रणव को वश में करके मन का दमन करे और एक क्षण भी प्रणव को न भूले।

जड़ -चेतन का समुदाय जगत्है। जगत् का सृजन, पालन और संहार करने वाला को ब्रह्म कहते हैं। उसी को गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने सर्वेश्वर, परब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वर, पुरुषोत्तम, योगेश्वर, विष्णु आदि नामों से वर्णन किया है। जड़ -चेतनमय जगत् ब्रह्म का शरीर है और ब्रह्म सबकी आत्मा है। जैसे शरीर का आधार, नियामक और स्वामी जीव है उसीप्रकार जड़ -चेतनमय जगत् का आधार, नियामक और स्वामी भगवान् हैं। जैसे शरीर के अंगों में विकार होने पर आत्मा विकृत नहीं होती है, वैसे ही जगत्के विकार से परमात्मा विकृत नहीं होते। इनमें जड़ -चेतन की दो अवस्थायें होती हैं - सूक्ष्म और स्थूल। प्रलयकाल में जड़ -चेतन सूक्ष्मावस्था में रहते हैं और सृष्टि काल में स्थूलावस्था में। सूक्ष्म का अर्थ है - नाम एवं रूप के अयोग्य। स्थूल का अर्थ है - नाम एवं रूप के योग्य। प्रलयकाल में जड़ -चेतन नाम एवं रूप के अयोग्य होने से सूक्ष्म कहलाते हैं। और सृष्टिकाल में नाम एवं रूप के योग्य होने से स्थूल कहे जाते हैं। प्रलयकाल में जीवात्माओं के स्थूल देव, मनुष्यादि शरीरों से रहित होने के कारण उनमें नाम-रूप का व्यवहार नहीं होता है। सृष्टिकाल में शरीर के माध्यम से देव, मनुष्यादि नाम तथा उनके अनुसार रूप का व्यवहार जीवात्माओं में होता है। इसी तरह सृष्टि अवस्था में जड़ पदार्थों में भी पृथ्वी, जल आदि नामों एवं उनके रूपों से व्यवहार होता है। प्रलयकाल में वैसा व्यवहार नहीं होता है। सूक्ष्म जड़-चेतन से विशिष्ट ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है और स्थूल जड़-चेतन से विशिष्ट ब्रह्म जगत्रूप कार्य है। मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है जिससे भगवान् श्रीकृष्ण में भक्ति हो। भक्ति भी ऐसी कि जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य-निरन्तर बनी रहे। ऐसी भक्ति से हृदय आनन्दस्वरूप परमात्मा की उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है।

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति।।1।2।6।।

वासुदेवे भगवति भक्तियोग: प्रयोजित:।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम्।।**1।2।7**।।
धर्म: स्वनुष्ठित: पुंसां विष्वकसेनकथासु य:।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्।।**1।2।8**।।

भगवान् श्रीकृष्ण में भक्ति होते ही अनन्य प्रेम से उनमें चित्त जोड़ते ही निष्काम ज्ञान और वैराग्य का आविर्भाव हो जाता है। धर्म का ठीक-ठीक अनुष्ठान करने पर भी यदि मनुष्य हृदय में भगवान् की लीला-कथाओं के प्रति अनुराग का उदय न हो तो वह निरा श्रम ही श्रम है।

पद्म पुराण में अम्बरीष के प्रति यह कहा है कि श्रीमद्भागवत महापुराण का निर्माण शुकदेव ने किया है।

अम्बरीष शुकप्रोक्तं श्रुणु भागवतं सदा।
पठस्व स्वमुखेनापि यदीच्छसि भवक्षयम्।।

इति श्रीव्यासार्थसूत्रैश्च शुककर्तृकत्वभवगम्यते तथापि तत्र प्रणीतमित्यस्य प्रवर्तितमित्यर्थ:। तावदस्मिन्नेव ग्रन्थे तृतीयाध्याये उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषि:।

नि:श्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत्।
तदिदं ग्राह्यामास सुतमात्मविदां वर।।

द्वितीय स्कन्ध के प्रथम अध्याय में कहा है कि -

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।
अधीतवान्द्वापरादौ पितुर्द्वैपायनादहम्।।

नवम स्कन्ध के **22**वें अध्याय में -

यस्यां पराशरात्साक्षादवतीर्णो हरे: कला।
वेदगुप्तो मुनि: कृष्णो यतोऽहमिदमध्यगाम्।।
हित्वा स्वशिष्यान्पैलादीन्भगवान् वादरायणि:।
मह्यं पुत्राय शांताय परं गुह्यमिदं जगौ ।।

शुकदेव जी का श्रीमद्भागवत में यही संदेश है कि अपने गुरु के आदेश का पालन करते हुए व्यक्ति भगवान् के नाम संकीर्तन करके सुगमता से जन्म-मृत्यु के चक्कर से छूट सकता है।

रङ्गरामानुजाचार्य
लक्ष्मी नारायण मन्दिर हुलासगंज

श्रीमते रामानुजाय नम: ।
वन्दउँ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय
भागवत एक झलक में

गन्थ का विषय वस्तु

श्रीमद्‌भागवत बारह भागों में है। प्रत्येक भाग को स्कन्ध कहते हैं। पहला स्कन्ध उग्रश्रवा सूत जी की भूमिका है। शुकदेव जी के मुखारविन्द से निकली हुई भागवत कथा स्कन्ध **2** से स्कन्ध **12** के अध्याय **6** तक है। स्कन्ध **12** के अंतिम सात अध्याय शौनकादि मुनियों के प्रश्न पर सूत जी द्वारा भागवत का उपसंहार है। राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए स्वयं शुकदेव जी ने कहा है-

एतां वक्ष्यति-असौ सूत ऋषिभ्यो नैमिषालये।
दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ सम्पृष्ट: शौनकादिभि:। ।12।4।43। ।

सूत जी हमलोगों के समक्ष इस कथा को सुन रहे हैं। भविष्य में नैमिषारण्य में आयोजित होने वाले कथा-सत्र में शौनकादि ऋषियों के प्रश्न पर सूत जी इसी कथा को उनलोगों को सुनायेंगे। शुकदेव जी ने सबसे पहले इस कथा को हरिद्वार में गंगा के किनारे राजा परीक्षित को सुनाई थी। परीक्षित अर्जुन के पौत्र थे। महाभारत युद्ध के बाद कौरव एवं पाण्डवों मे से पाँचों भाई पाण्डव ही जीवित बचे थे। पाण्डव के कोई भी पुत्र जीवित नहीं बचे थे, युद्ध में मारे गये अर्जुन के बेटा सुभद्राकुमार अभिमन्यु की पत्नी उत्तराा के गर्भ में एक शिशु बचा था। सुभद्रा जी भगवान् की अपनी छोटी बहन थी जिसका विवाह अर्जुन के साथ हुआ था। द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा दुर्योधन का पक्षधर था। उसे चिरंजीवि होने का वरदान था। कौरवों के विनाश के बाद प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर अश्वत्थामा ने उत्तरा के गर्भस्थ शिशु पर ब्रह्मास्त्र चला दिया। भगवान् श्रीकृष्ण ने गर्भस्थ शिशु की रक्षा की। वही शिशु परीक्षित के नाम से विख्यात हुआ। पाण्डवों ने परीक्षित को हस्तिनापुर का राजा बना स्वयं स्वर्गारोहण के लिए प्रस्थान कर गये थे। परीक्षित राजभार दक्षता से निभा रहे थे।

एक दिन वे जंगल से लौट रहे थे तब उन्हें बड़ी जोर से प्यास लगी। पास में उन्होंने शमीक मुनि का आश्रम देखा। राजा ने जोर से पुकारकर पीने का पानी माँगा। मुनि ध्यानस्थ थे इसलिए राजा की बात सुन नहीं सके। राजा ने समझा कि मुनि उनकी उपेक्षा कर रहे हैं। राजा को क्रोध आ गया। पास ही में एक मरे हुए सर्प को गिरा देख राजा ने उस मृतक सर्प को ले जाकर मुनि के गले में लपेट दिया। राजा प्रस्थान कर गये। शमीक मुनि का पुत्र श्रृंगी बाहर खेल रहा था। उसने जब सुना कि राजा ने मेरे पिता जी के गले में सर्प लपेट दिया है तब वह रोते चिल्लाते अपने पिता के पास आया। पुत्र की चित्कार से शमीक मुनि का ध्यान टूट गया। इसी बीच मुनिकुमार श्रृंगी ने राजा को शाप दे डाला कि सात दिन में सर्प के काटने से राजा की मृत्यु हो जायेगी। अपने पुत्र के इस तरह के शाप के लिए शमीक मुनि ने भर्त्सना की परन्तु मुनिकुमार का शाप टाला नहीं जा सकता था। राजा परीक्षित को जब यह ज्ञात हुआ कि सात दिनों में उनकी मौत होगाी तब वह अपने पुत्र जनमेजय को राजा बनाकर हरिद्वार में गंगा के किनारे ईश्वर की आराधना के उद्देश्य से जाकर बैठ गये। राजा के शाप के बारे में सुन सभी ऋषि-मुनि गंगा किनारे एकत्रित हो गये। इसी बीच संयोग से शुकदेव मुनि भी वहाँ पधारे। राजा ने उनका स्वागत करते हुए उनकी पूजा करके शीघ्र मरनासन्न व्यक्ति के कर्त्तव्य की जानकारी की जिज्ञासा की। किनकी कथा, किनके नाम का जप, स्मरण एवं भजन से कल्याण सम्भव है। इन दो प्रश्नों के समाधान हेतु श्रीशुकदेव जी ने राजा की जिज्ञासा के समाधान में भागवत की कथा सुनाई। रोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा सूत भी ऋषि-मुनियों के समुदाय में बैठकर शुकदेव जी से भागवत की सम्पूर्ण कथा सुनी। सूत जी ने शौनक मुनि के प्रश्न करने पर शौनकादि मुनियों को वही कथा नैमिषारण्य

में सुनाई। भागवत के स्कन्ध बारह के उपर्युक्त **12 । 4 । 43** । श्लोक से यह स्पष्ट होता है कि स्वयं शुकदेव जी ने सूत जी को इस कार्य के लिए अधिकृत किया था। भागवत कथा मूलत: व्यास जी की देन है जो उन्होंने अपने पुत्र शुकदेव जी को पढ़ायी थी। शुकदेव जी से ही इस कथा का प्रचार-प्रसार हुआ। स्कन्ध **12** में सूत जी ने भागवत का सार संक्षेप में दिया है।

1 । पहला स्कन्ध - भक्ति तत्त्व का निरूपण तथा भक्ति से ज्ञान-वैराग्य की प्राप्ति, नारद-व्यास संवाद, नारद चरित्र, ऋषिपुत्र के शाप से पीड़ित राजा परीक्षित का गंगा तट पर शुकदेव जी से साक्षात्कार।

2 । दूसरा स्कन्ध - योगधारणा के द्वारा शरीर त्याग की विधि, नारद-ब्रह्मा संवाद, अवतारों का संक्षिप्त वर्णन तथा सृष्टि की उत्पत्ति।

3 । तीसरा स्कन्ध - विदुर-उद्धव संवाद, विदुर-मैत्रेय संवाद, वराह भगवान् द्वारा पृथ्वी का उद्धार, ब्रह्मा के मानस पुत्र मुनियों का सृजन, मनु-शतरूपा का सृजन, मनुपुत्र देवहूति से कर्दम मुनि द्वारा मुनि-पत्नियों का जन्म, कपिल भगवान् का अवतार तथा देवहूति-कपिल संवाद।

4 । चौथा स्कन्ध - ब्राह्म दक्ष का यज्ञ, भक्तराज ध्रुव चरित, पृथु चरित, नारद-प्राचीनबर्हि संवाद।

5 । पाँचवा स्कन्ध - प्रियव्रत, ऋषभ तथा भरत के चरित्र, द्वीप, वर्ष, ज्योतश्चक्र तथा नरक ।

6 । छठा स्कन्ध - अजामिल, वृत्रासुर तथा प्राचेतस दक्ष की कथा।

7 । सातवाँ स्कन्ध - दिति पुत्र हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकशिपु का वृतान्त, प्रह्लाद चरित्र।

8 । आठवाँ स्कन्ध - मन्वन्तर, गजेन्द्र मोक्ष, अमृत मन्थन, देवासुर संग्राम, भगवान के विभिन्न अवतार कूर्म, मत्स्य, वामन, धन्वन्तरि, हयग्रीव ।

9 । नौंवाँ स्कन्ध - सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश के राजाओं की उत्पत्ति एवं चरित्र, राजा अम्बरीष, भगवान् राम, निमि, परशुराम, ययाति, दुष्यन्त भरत, रन्तिदेव तथा यदुवंश में भगवान्श्रीकृष्ण का अवतार।

10 । दसवाँ स्कन्ध - भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार, व्रज की बाल-लीला, असुरों का संहार, रासलीला, कंसवध, समुद्र में द्वारका की स्थापना तथा मथुरा से द्वारका में जा बसना, भगवान् की रानियाँ आदि।

11 । ग्यारहवाँ स्कन्ध - यदुवंश विनाश, उद्धव जी को उपदेश, भगवान्का स्वधाम लौटना।

12 । बारहवाँ स्कन्ध - राजा परीक्षित का शरीर त्याग, सूत जी द्वारा भागवत का उपसंहार।

भागवत की विशिष्टियाँ

भागवत का शब्दार्थ

है जो भगवान्का हो और उनसे सम्बन्धित हो। भक्त भगवान् के होते हैं इसलिए इन्हें भागवत या महाभागवत या परम भागवत कहा जाता है। श्रीमद्भागवत में भगवान् नारायण के विभिन्न अवतारों का वर्णन है, उनकी लीला-कथाओं का वर्णन है। साथ ही साथ भगवान् के परमभागवतों ध्रुव, प्रह्लाद, सुदामा, विदुर, उद्धव आदि का अनोखा वर्णन है। भगवान् के कारण पापग्रस्त अजामिल तथा वृत्रासुर के उद्धार की कथा स्कन्ध **6** में है।

भागवत एवं भगवान् श्रीकृष्ण

भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण की लीला-कथाओं का विशद वर्णन है जो इसके दशम स्कन्ध के नब्बे अध्यायों में वर्णि त है। यह स्कन्ध भागवत का सबसे बड़ा स्कन्ध है। इसके वृहत् आकार का अनुमान इसीसे किया जा सकता है

कि भागवत के 12 स्कन्धों के कुल 335 अध्यायों में दशम स्कन्ध में अकेले 90 अध्याय है। इस पुस्तक में दशम को तीन भागों में रखा गया है। पहले में अध्याय 1 से 33 तक है जो रासपञ्चाध्याय को लेकर है। दूसरा अध्याय 34 से 69 तक है। तीसरा भाग अध्याय 70 से 90 तक है।

भागवत एवं भारतवर्ष के अधिष्ठाता देव बदरिकाश्रम के नर-नारायण भगवान्

क। भागवत के मंगलाचरण में नर-नारायण ऋषि की वन्दना है।

ख। समस्त भागवत में नर-नारायण ऋषि के स्वरूप भगवान् की महत्ता का उल्लेख श्लोकों में द्रष्टव्य हैं।

1।3।9।, 2।7।6-7।, 3।4।21-22 तथा 25।, 4।1।52-55, 5।4।5 एवं 5।19।9।, 6।8।16।, 7।6।27-28।, 8।16।34।, 10।52।3-4।, 10।89।60।, 11।4।6-10।, 11।5।30।, 11।7।18।, 12।4।41-42, 12।8।32-34।

ग।बदरिकाश्रम में तपस्यारत नर-नारायण भगवान् भारत वर्ष के उपास्य देव हैं। इसका सन्दर्भ स्कन्ध 5 के अध्याय 19 में विस्तार से वर्णित है। नारद जी बदरिकाश्रम में भगवान् नर-नारायण के अर्चक हैं।

घ। भागवत 10।89।60 में उल्लेख है कि नर अर्जुन हैं तथा नारायण स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं।

भागवत में भगवान्के अष्टभुज स्वरूप एवं उनके आठ दिव्य आयुध

निम्नांकित श्लोक द्रष्टव्य हैं।

क। **4।7।20।, 4।30।6-7।, 6।4।36।, 6।8।12।, 8।10।54।, 10।89।56।, 11।27।27।**

ख। नारायण कवच में अष्टभुज का ध्यान 6।8।12।

ग। अनन्तशायी भगवान्ने अर्जुन एवं भगवान्श्रीकृष्ण को अष्टभुज स्वरूप में दर्शन दिया है। भगवान् श्रीकृष्ण माता देवकी के दिवंगत छः पुत्रों को समुद्र में स्थित अनन्तशायी भगवान् से ही माँग कर लाये थे। द्रष्टव्य 10।89।56

घ। तमिलनाडु के चेन्नै शहर से 80 कि मी पर अवस्थित काञ्चीपुरम् में एक दिव्यदेश मन्दिर अष्टभुज भगवान् का है। भगवान् आठ भुजाओं में आठ आयुध के साथ विराजते हैं। भागवत के 4।7।20।।ब्राह्म दक्ष को दर्शन देने वाले स्वरूप के दिव्यायुधों एवं काञ्चीपुरम् के अष्टभुज भगवान् के आयुधों में पूर्णतया समानता है।

भागवत में भगवान्के चतुर्व्यूह स्वरूप की पूजा एवं स्तुति।

क। भगवान् के चतुर्व्यूह स्वरूप वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध हैं।

ख। निम्नांकित श्लोक द्रष्टव्य हैं।

1।5।37।, 1।14।30।, 4।24।34-36। , 5।17।14। , 5।25।2-7। , 6।11।21। , 6।16।18। , 10।16।45। , 10।40।21। , 10।55।1। , 11।6।10। , 12।11।21।।

कथा कहते-कहते शुकदेव जी समाधि में चले जाते थे।

क। द्रष्टव्य **10।12।44**। जब भगवान् श्रीकृष्ण की बाल-लीला की कथा का सन्दर्भ आया जिसमें अघासुर के वध के बाद ब्रह्मा को मोहग्रस्त करते हुए भगवान् स्वयं एक वर्ष तक ग्वालबाल, बछड़े तथा इनके आवरण-आभूषणादि बने।

ख। सुदामा जी की कथा पारम्भ करने के पूर्व **10।80।5**।।

भागवत में लक्ष्मी जी के पर्याय श्री एवं रमा का उल्लेख

4।30।7। में लक्ष्मी शब्द का प्रयोग है। अधिकांश अन्यत्र सन्दर्भो में श्री का प्रयोग है।

8।8।8। में रमा का प्रयोग है।

श्रीकृष्ण प्रपन्नाचारी
पटना
विजयादशमी
अक्टूबर **15 2021**

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध 1

वन्दउँ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

1।1।मंगलाचरण -

जन्म-आदि-अस्य यतोऽन्वयात्-इतरतः च अर्थेषु अभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजोवारि मृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिषर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्त-कुहकं सत्यं परं धीमहि ।।1।1।1।।

सत्यगुण से विभूषित सर्वोपरि नारायण का ध्यान करता हूँ जो सृष्टि की रचना, स्थिति एवं संहार के नियामक हैं, मुनियों तथा देवों के लिए अगम्य हैं, आदि जीव ब्रह्मा को वेद का ज्ञान कराने वाले हैं, और शाश्वत जगत को सूर्य की किरणों में जल के भ्रम को दूर करने वाले हैं। (श्रीव्यास जी)

धर्मः प्रोज्झित-कैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रय-उन्मूलनम्।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृदि-अवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिः तत्क्षणात्।।1।1।2।।

यह भागवत महामुनि नारायण की रचना है। इसके रहते दूसरे शास्त्र की क्या आवश्यकता है! यहाँ फल की आशा को कपट धर्म कहा है। सभी प्राणियों के प्रति दयालु सन्तों द्वारा भगवान्की आराधना रूपी भागवत धर्म का यहाँ अनुष्ठान हुआ है जिससे तीनों तापों - दैहिक, दैविक एवं भौतिक - का उन्मूलन होता है। इसके श्रवण मात्र से ही भागवत सुनने के इच्छुक व्यक्तिके हृदय में भगवान् तत्क्षण आ विराजते हैं। (श्रीव्यास जी)

श्रीव्यासदेव जी ने इस श्लोक में भागवत की विशिष्टता को दर्शाते हुए कहा है कि भगवान्के भजन - कीर्तन तथा आराधना में सकाम कपट भाव का कोई स्थान नहीं है। यह सभी शास्त्रों से श्रेष्ठ है क्योंकि इसका उपदेश स्वयं श्रीहरि (नारायण ऋषि बदरीकाश्रम) ने ब्रह्मा को किया था। इसके श्रवण से तीनों ताप का नाश हो जाता है तथा भगवान्तुरत ही भक्तके हृदयस्थ हो जाते हैं।

निगमकल्पतरोः गलितं फलं शुकमुखात्-अमृतद्रव-संयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ।।1।1।3।।

भागवत रस के भावुक रसिक! भागवत का बार-बार रसपान कीजिए। यह वेदरूपी कल्प वृक्ष का रसभरा फल है जो शुकदेव जी के मुखारविन्द से निकलने से और ही मीठा हो गया है। यह उक्ति महर्षि वेदव्यास जी की है जो इस रहस्य को मंगलाचरण में ही खोल देती है कि भागवत के लिए उन्होंने शुकदेव जी ही को अधिकृत किया था। इस गन्थ के 9 वें स्कन्ध के 22 वें अध्याय के श्लोक 21 से 23 में श्रीशुकदेव जी ने स्वयं इसका उल्लेख किया है कि उनके पिता वेदव्यास जी ने अपने अन्य शिष्यों को छोड़ उन्हें ही रहस्यपूर्ण भागवत पढ़ाया।

1।2।श्रीसूत जी द्वारा नैमिषारण्य में मुनियों को श्रीमद्भागवत सुनाना

श्रीमद्भागवत बारह भागों में है। प्रत्येक भाग को स्कन्ध कहते हैं। पहला स्कन्ध उग्रश्रवा सूत जी की भूमिका है। शुकदेव जी के मुखारविन्द से निकली हुई भागवत कथा स्कन्ध **2** से स्कन्ध **12** के अध्याय **6** तक है। स्कन्ध **12** के अंतिम सात अध्याय शौनकादि मुनियों के प्रश्न पर सूत जी द्वारा भागवत का उपसंहार है। राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए स्वयं शुकदेव जी ने कहा है-

एतां वक्ष्यति-असौ सूत ऋषिभ्यो नैमिषालये।
दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ सम्पृष्ट: शौनकादिभि:।।12।4।43।।

सूत जी हमलोगों के समक्ष इस कथा को सुन रहे हैं। भविष्य में नैमिषारण्य में आयोजित होने वाले कथा-सत्र में शौनकादि ऋषियों के प्रश्न पर सूत जी इसी कथा को उनलोगों को सुनायेंगे। शुकदेव जी ने सबसे पहले इस कथा को हरिद्वार में गंगा के किनारे राजा परीक्षित को सुनाई थी। परीक्षित अर्जुन के पौत्र थे। महाभारत युद्ध के बाद कौरव एवं पाण्डवों मे से पाँचों भाई पाण्डव ही जीवित बचे थे। पाण्डव के कोई भी पुत्र जीवित नहीं बचे थे, युद्ध में मारे गये अर्जुन के बेटा सुभद्राकुमार अभिमन्यु की पत्नी उत्तराा के गर्भ में एक शिशु बचा था। सुभद्रा जी भगवान्‌की अपनी छोटी बहन थी जिसका विवाह अर्जुन के साथ हुआ था। द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा दुर्योधन का पक्षधर था। उसे चिरंजीवि होने का वरदान था। कौरवों के विनाश के बाद प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर अश्वत्थामा ने उत्तरा के गर्भस्थ शिशु पर ब्रह्मास्त्र चला दिया। भगवान् श्रीकृष्ण ने गर्भस्थ शिशु की रक्षा की। वही शिशु परीक्षित के नाम से विख्यात हुआ। पाण्डवों ने परीक्षित को हस्तिनापुर का राजा बना स्वयं स्वर्गारोहण के लिए प्रस्थान कर गये थे। परीक्षित राजभार दक्षता से निभा रहे थे।

एक दिन वे जंगल से लौट रहे थे तब उन्हें बड़ी जोर से प्यास लगी। पास में उन्होंने शमीक मुनि का आश्रम देखा। राजा ने जोर से पुकारकर पीने का पानी माँगा। मुनि ध्यानस्थ थे इसलिए राजा की बात सुन नहीं सके। राजा ने समझा कि मुनि उनकी उपेक्षा कर रहे हैं। राजा को क्रोध आ गया। पास ही में एक मरे हुए सर्प को गिरा देख राजा ने उस मृतक सर्प को ले जाकर मुनि के गले में लपेट दिया। राजा प्रस्थान कर गये। शमीक मुनि का पुत्र श्रृंगी बाहर खेल रहा था। उसने जब सुना कि राजा ने मेरे पिता जी के गले में सर्प लपेट दिया है तब वह रोते चिल्लाते अपने पिता के पास आया। पुत्र की चित्कार से शमीक मुनि का ध्यान टूट गया। इसी बीच मुनिकुमार श्रृंगी ने राजा को शाप दे डाला कि सात दिन में सर्प के काटने से राजा की मृत्यु हो जायेगी। अपने पुत्र के इस तरह के शाप के लिए शमीक मुनि ने भर्त्सना की परन्तु मुनिकुमार का शाप टाला नहीं जा सकता था। राजा परीक्षित को जब यह ज्ञात हुआ कि सात दिनों में उनकी मौत होगी तब वह अपने पुत्र जनमेजय को राजा बनाकर हरिद्वार में गंगा के किनारे ईश्वर की आराधना के उद्देश्य से जाकर बैठ गये। राजा के शाप के बारे में सुन सभी ऋषि-मुनि गंगा किनारे एकत्रित हो गये। इसी बीच संयोग से शुकदेव मुनि भी वहाँ पधारे। राजा ने उनका स्वागत करते हुए उनकी पूजा करके शीघ्र मरनासन्न व्यक्ति के कर्त्तव्य की जानकारी की जिज्ञासा की। किनकी कथा, किनके नाम का जप, स्मरण एवं भजन से कल्याण सम्भव है। इन दो प्रश्नों के समाधान हेतु श्रीशुकदेव जी ने राजा की जिज्ञासा के समाधान में भागवत की कथा सुनाई। रोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा सूत भी ऋषि-मुनियों के समुदाय में बैठकर शुकदेव जी से

भागवत की सम्पूर्ण कथा सुनी। सूत जी ने शौनक मुनि के प्रश्न करने पर शौनकादि मुनियों को वही कथा नैमिषारण्य में सुनाई।भागवत के स्कन्ध बारह के उपर्युक्त **12।4।43।।** श्लोक से यह स्पष्ट होता है कि स्वयं शुकदेव जी ने सूत जी को इस कार्य के लिए अधिकृत किया था। भागवत कथा मूलत: व्यास जी की देन है जो उन्होंने अपने पुत्र शुकदेव जी को पढ़ायी थी। शुकदेव जी से ही इस कथा का प्रचार-प्रसार हुआ।

1।3। व्यास जी द्वारा मूल भागवत की रचना।

श्री व्यास जी ने मनुष्य की घटती आयु एवं क्षीण स्मरण शक्ति का विचार कर वेद का चार भाग कर दिया और चार मुनियों को उसका अधिकारी बना दिया। ऋग्वेद पैल को, यजुर्वेद वैशम्पायन को, सामवेद जैमिनी को, अथर्ववेद सुमन्तु को एवं श्रीमद्भागवत महापुराण को छोड़कर अन्य सभी पुराणों को रोमहर्षण सूत को आधिकारिक रूप से ज्ञात करा दिया।भागवत की कथा रोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा द्वारा प्रस्तुत है। भागवत के **9** वें स्कन्ध के **22** वें अध्याय के श्लोक **21** से **23** में श्रीशुकदेव जी ने उल्लेख किया है कि उनके पिता वेदव्यास जी ने अपने अन्य शिष्यों को छोड़ उन्हें ही रहस्यपूर्ण भागवत पढ़ाया। महाभारत की विशाल रचना से वेद के रहस्यों को सबों को सुलभ कर दिया। परन्तु उन्हें आन्तरिक शान्ति नहीं थी। मन कुछ खिन्न था। उन्हें ऐसा एहसास हुआ कि मेरी ऐसी एक भी कृति नहीं है जो केवल भगवान्‌की लीलागान से भरी हो। क्योंकि जो परमहंसों - संतों को प्रिय है वही भगवान्‌को भी प्रिय है। अत: अवश्य ही मेरे तरफ से यह कमी रह गयी है।

किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिता: ।
प्रिया: परमहंसानां त एव हि-अच्युतप्रिया:।।1।4।31।।

इसी बीच वहाँ नारदजी आ गये।व्यास जी ने उनका सम्मान किया और नारद जी द्वारा कुशल-क्षेम पूछने पर अपने मन की खिन्नता का संकेत किया। नारद जी ने कहा -

यथा धर्मादय: च अर्था मुनिवर्य-अनुकीर्तिता:।
न तथा वासुदेवस्य महिमा हि-अनुवर्णित:।।1।5।9।।

आपने धर्म आदि पुरुषार्थो का निरूपण किया है परन्तु भगवान् वासुदेव की महिमा का वर्णन सम्यक तरीके से आप नहीं कर सके हैं।

न यत्-वच: चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्ति-उशिक्क्षया:।।1।5।10।।

कोई भी वाणी अलंकारों से युक्त ही क्यों न हो अगर भगवान्‌के यश की कीर्ति से दूर है तो वह कौओं के उच्छिष्ट जैसा है। सन्त तो हंसों की भाँति भगवान्‌की कीर्ति के कमलवन में ही आनन्द लेते हैं।

तत्-वाक्-विसर्गो जनता-अघविप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकम्-अबद्धवत्यपि।
नामानि-अनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यत् श्रृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधव:।।1।5।11।।
नैष्कर्म्यम्-अपि-अच्युतभाव-वर्जितं न शोभते ज्ञानम्-अमलं निरञ्जनम्।
कुत: पुन: शश्वत्-अभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्।।1।5।12।।

प्रत्येक श्लोक में भगवान्‌के नाम का यश गाने से साधारण शब्दों से रचित रचना को भी सन्त लोग गाते तथा श्रवण करते हैं। भगवान् की भक्ति से विहीन तत्त्व ज्ञान की कोई शोभा नहीं है। भगवान्‌को अर्पित नहीं किया गया निष्काम एवं सकाम कर्म अमंगलसूचक है।

अथो महाभाग भवान्-अमोघदृक्शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः।

उरुक्रमस्य-अखिल-बन्धमुक्तये समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम्। ।**1**।**5**।**13**। ।

ततोऽन्यथा किंचन यद्विवक्षतः पृथक्-दृशः तत्कृत-रूपनामभिः।

न कुत्रचित्-क्वापि च दुःस्थिता मतिर्लभेत वाताहत-नौः इव-आस्पदम्। ।**1**।**5**।**14**। ।

हे महाभाग्यवान्, आप सफलदृष्टि के लिए विख्यात तथा यथार्थ ज्ञान वाले, सत्य में लीन तथा दृढ़ संकल्प वाले हैं। जगत के प्राणियों के बन्धन से मुक्ति के लिए भगवान्की लीला का समाधि भाव से निरन्तर स्मरण करें। भगवान् की लीला को छोड़ अन्य रचना करने से मन वैसे ही चञ्चल रहता है जैसे हवा से नाव डोलती है।

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेः भजन्-अपक्वोऽथ पतेत्-ततो यदि।

यत्र क्व वा-अभद्रम्-अभूदमुष्य किं को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः। ।**1**।**5**।**17**। ।

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।

अविच्युतोऽर्थः कविभिः निरूपितो यदुत्तमश्लोक-गुणानुवर्णनम्। ।**1**।**5**।**22**। ।

अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन नहीं भी करने वाला अगर भगवान्का भजन करता है और कभी भजन छूट भी जामे पर उसका कभी अमंगल नहीं होता जबकि भक्ति से रहित वर्णाश्रमधर्म पालन करने वाले को कोई लाभ नहीं मिलता। विद्वानों का यही मत है कि तपस्या, स्वाध्याय, ज्ञान, यज्ञादि का एकमात्र उद्देश्य है पुण्यकीर्ति भगवान्के गुणों तथा लीलाओं का वर्णन। नारद जी ने पूर्वकल्प के अपने जीवन की कहानी सुनायी। मैं वेदवादियों की सेवा में रत एक दासी का पुत्र था। संयोग से एकबार उनके चतुर्मास की सेवा में मैं संलग्न हो गया। उनके जूठन प्रसाद खाने से तथा भगवान्के नाम का संकीर्तन से मेरा चित्त निर्मल हो गया।

तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायताम्-अनुग्रहेण-अश्रृणवं मनोहराः।

ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विश्रृण्वतः प्रियश्रवस्य-अङ्ग मम-अभवत्-रुचिः । ।**1**।**5**।**26**। ।

सन्तलोगों के अनुग्रह से प्रतिदिन कृष्ण भगवान्की लीला कथा के एक-एक पद सुनते-सुनते प्रियकीर्ति भगवान्में मेरी रुचि हो गयी। जाते समय महात्माओं ने मुझे भगवान् के श्रीमुख से निकले रहस्यपूर्ण ज्ञान का उपदेश किया जिसके कारण मैं भगवान्की माया के प्रभाव को जान सका।

एतत्संसूचितं ब्रह्मन्-तापत्रय-चिकित्सितम्।

यदीश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम्। ।**1**।**5**।**32**। ।

भगवान् को समर्पित समस्त कर्म ही तीनों तापों की एकमात्र औषधि है।

आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत।

तदेव हि-आमयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम्। ।**1**।**5**।**33**। ।

एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः।

त एवात्मविनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे। ।**1**।**5**।**34**। ।

जिस वस्तु के प्रयोग से रोग होता है उसी वस्तु के सेवन से रोग दूर भी होता है।संसार के सभी कर्म जन्म-मृत्यु के चक्र में डालते हैं परन्तु भगवान्को समर्पित कर देने से वे संसार बन्धन से मुक्त करते हैं।

यदत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम्।

ज्ञानं यत्तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम्। ।**1**।**5**।**35**। ।

कुर्वाणा यत्र कर्माणि भगवत्-शिक्षया-असकृत्।

गृणन्ति गुणनामानि कृष्णस्य-अनुस्मरन्ति च।। 1|5|36।।

ॐ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि।

प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च।।1|5|37।।

भगवान्की प्रसन्नता हेतु किये गये कर्म भक्ति से युक्त ज्ञान देते हैं। **"भगवत्शिक्षया असकृत"** यानी भगवान्की आज्ञा से बार-बार कर्म करते हुए उनके नाम एवं कीर्तन से उनका स्मरण करते हैं। चतुर्व्यूह स्वरूप भगवान्वासुदेव का ध्यान करते हुए प्रद्युम्न अनिरुद्ध तथा संकर्षण को नमन करता हूँ ।

प्रारब्धवश साँप काटने से मेरी माँ की मृत्यु हो गयी। उनके सिवा मेरा कोई सहारा नहीं था। मैं घर से निकल पड़ा। जंगल पहाड़ से गुजरते हुए प्यास एवं भूख से मैं ग्रस्त हो गया। एक नदी में स्नान कर जल पीकर थकान मिटायी। वहीं पीपल वृक्ष के नीचे भगवान्के चरणारविन्द में ध्यान लगाया।

ध्यायतः चरणाम्भोजं भावनिर्जित-चेतसा।

औत्कण्ठ्य-अश्रुकल-अक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः।।1|6|17।।

वे मेरे हृदय में विराजमान हुए। आनन्दाश्रु बहने लगे और असीम आनन्द मिला। कुछ क्षण में वे हृदय से लुप्त हो गये। मैं व्याकुल हो गया। अनेकों बार प्रयास करते रहा लेकिन पुनः वह दर्शन नहीं मिला। एक आकाशवाणी से भगवान् ने आश्वासन दिया कि इस जन्म में नहीं अगले जन्म में तुम मेरे पार्षद बनोगे और तुम्हारी स्मृति बनी रहेगी। समय आने पर मेरा शरीर छूटा। कल्पान्त में भगवान्के उदर में सारी सृष्टि समा गयी। उनके उदर में प्रवेश करते ब्रह्मा के श्वास के साथ मैं ब्रह्मा के शरीर में समा गया। भगवान्ने जब पुनः सृष्टि की तब मैं ब्रह्मा के मरीचि आदि मानस पुत्रों के साथ प्रकट हुआ। तब से वैकुण्ठादि में मेरी अबाध गति हो गयी।

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः ।

आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसी।।1|6|34।।

एतदध्यातुः रचित्तानां मात्रास्पर्श-इच्छया मुहुः।

भवसिन्धु-प्लवो दृष्टो हरिचर्या-अनुवर्णनम्।।1|6|35।।

यम-आदिभिः योगपथैः कामलोभहतो मुहुः।

मुकुन्दसेवया यद्वत्-तथाऽऽद्धा न शाम्यति।।1|6|36।।

अहो देवर्षिः धन्योऽयं यत्कीर्ति शाङ्र्गधन्वनः।

गायन्-माद्यन्-इदं तन्त्र्या रमयति-आतुरं जगत्।।1|6|39।।

इस लोक में समस्त तीर्थो के उद्गमस्थान वाले श्रीचरणों के प्रिय यश एवं गुणगान से वे मेरे हृदय में आकर विराजते हैं। विषयातुर जनों के लिए भी भगवान्का नाम-लीला कीर्तन संसार से पार जाने का जहाज है। यम-नियमादि से भी वैसी शान्ति नहीं मिलती जैसी काम-लोभग्रस्त जनों को भगवान् की सेवा से मिल जाती है। सूत जी कहते हैं कि ये देवर्षि नारद जी धन्य हैं जो शाङ्र्गधन्वा भगवान्की कीर्ति को वीणा पर गाते हुए स्वयं तो आनन्दित होते ही हैं तीनों ताप से तपते इस संसार को भी आनन्दमग्न करते हैं। हरिकथाकार मधुसूदन सरस्वती जी ने भक्ति-रसायन

पुस्तक में भक्ति में पराकाष्ठा प्राप्ति हेतु ग्यारह साधनों का अभ्यास बताया है - **1**। महापुरुषों की सेवा। **2**। उनके कृपाभाजन बनना। **3**। उनके प्रति श्रद्धा। **4**। भगवद्गुण श्रवण। **5**। भगवद्भक्ति में बढ़ता अनुराग। **6**। स्व-स्वरूप का अनुभव। **7**। परमानन्द भगवान्में प्रेम का बढ़ना। **8**। स्फुरित प्रेम की अभिवृद्धि। **9**। भागवत धर्म में निष्ठा। **10**। भगवद् भक्तों के गुणों का अनुसरण। **11**। प्रेमाभक्ति की पराकाष्ठा।

भागवत के स्कन्ध **7** में नारद जी ने युधिष्ठर को अपनी आत्मकथा सुनायी है जो व्यास जी को सुनायी गयी दासीपुत्र की जीवन-कथा के पहले की है।

अहं पुराभवं कश्चिद् गन्धर्व उपबर्हण:।
नाम्नातीते महाकल्पे गन्धर्वाणां सुसम्मत:। ।**7**।**15**।**69**। ।
रूपपेशल-माधुर्य-सौगन्ध्यप्रियदर्शन:।
स्त्रीणां प्रियतमो नित्यं मत्तस्तु पुरुलम्पट:। । **7**।**15**।**70**। ।
एकदा देवसत्रे तु गन्धर्वाप्सरसां गणा:।
उपहूता विश्वसृग्भिर्हरि गाथोपगायने। ।**7**।**17**।**15**। ।
अहं च गायंस्तद्विद्वान्स्त्रीभि: परिवृतो गत:।
ज्ञात्वाविश्वसृजस्तन्मे हेलनं शेपुरोजसा।
याहि त्वं शूद्रतामाशु नष्टश्री: कृतहेलन:। । **7**।**15**।**72**। ।
तावद्दास्यामहं जज्ञे तत्रापि ब्रह्मवादिनाम्।
शुश्रूषयानुषङ्गेण प्राप्तोऽहं ब्रह्मपुत्रताम्। ।**7**।**15**।**73**। ।

मैं उपबर्हण नामका एक गन्धर्व था। भगवान्के निमित्त आयोजित यज्ञ में मेरे अशोभनीय व्यवहार से ब्राह्मणों ने शूद्र बनने का शाप दिया।मैं तब दासीपुत्र होकर आया। भगवद् कृपा से उसके उपरान्त मैं ब्रह्मा का मानस पुत्र हुआ। नारद जी के जाने के बाद व्यास जी ने भक्ति योग से मन को एकाग्र कर भगवान् एवं उनकी आश्रिता माया को देखा। इसी माया के कारण जीव अनेकों अनर्थ करता है।

भक्तियोगेन मनसि सम्यक्प्रणिहितेऽमले।
अपश्यत्पुरुषं पूर्वं मायां च तत्-अपाश्रयाम्। ।**1**।**7**।**4**। ।
अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगम्अधोक्षजे।
लोकस्याजानते विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम्। ।**1**।**7**।**6**। ।

नारद जी के जाने के बाद व्यास जी ने आचमन कर अपने मन को भक्तियोग में एकाग्र करके भगवान्के स्वरूप तथा उनकी सहायिका शक्ति का साक्षात्कार किया। संसार के लोग नहीं जानते हैं कि अनर्थों की शान्ति भगवान् की भक्ति से होती है। यह समझकर व्यास जी ने परमहंसों की सात्वतसंहिता भागवत की रचना की।

यास्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णं परमपूरुषे।
भक्ति: उत्पद्यते पुंस: शोकमोहभयापहम्। ।**1**।**7**।**7**। ।
स संहितां भागवतीं कृत्वानुक्रम्य चात्मजम्।
शुकम्अध्यापयामास निवृत्तिनिरतं मुनि:। ।**1**।**7**।**8**। ।

इसके श्रवण से ही सभी शोक-मोह-भय का नाश होकर भगवान्कृष्ण में भक्ति उत्पन्न होती है। भागवत की रचना एवं पुनरावृत्ति करके इसे व्यास जी ने सांसारिक कर्मो से निवृत्त अपने पुत्र शुकदेव मुनि को पढ़ाया।

आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्था अपि-उरुक्रमे।

कुर्वन्ति -अहैतुकीं भक्तिम्-इत्थम्भूत-गुणो हरिः।।1।7।10।।

श्री शुकदेव मुनि आत्मानन्द में रमने वाले तथा संसारिक बन्धनों से मुक्त थे। फिर भी भगवान्की अहैतुकी भक्ति में रत थे यानी बिना किसी कारण या किसी आकांक्षा के भक्ति करते थे। उनकी लीला कथा तथा अनन्तकल्याण गुणों से आकर्षित होकर उसमें आनन्द लेते थे।

हरेर्गुण-आक्षिप्त-मतिर्भगवान्बादरायणिः।

अध्यगात्-महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः ।।1।7।11।।

व्यास जी के पुत्र शुकदेव मुनि भगवान्के भक्तों के भी प्रियपात्र थे। इन्होंने भगवान्के अनन्तकल्याण गुणों से आकर्षित होकर इस महान ग्रन्थ भागवत का अध्ययन किया।

यं प्रव्रजन्तम्-अनुपेतम्-अपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।

पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोअस्मि।।1।2। 2।।

सूत जी ने शुकदेव जी को नमस्कार अर्पित करते हुए कहा - श्री शुकदेव मुनि जन्म के बाद ही बिना जनेऊ संस्कार के घर छोड़कर संन्यास के लिए जा रहे थे तब व्यास जी ने कातर भाव से पीछा करते हुए उन्हें घर लौटने को कहा परन्तु वे नहीं लौटे।उस समय वृक्षों ने तन्मय होकर सर्वभूत हृदयस्वरूप शुकदेव मुनि को नमस्कार करते हुए उनकी ओर से प्रतिध्वनि के रूप में उत्तर दिया था।

दृष्ट्वा-अनुयान्तम्-ऋषिम्-आत्मजम्-अपि-अनग्नं देव्यो ह्रिया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम्।

तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुः तवास्ति स्त्रीपुम्-भिदा न तु सुतस्य विविक्तदृष्टेः।।1।4।5।।

संन्यास लेने हेतु वन में जाते शुकदेव जी को देखकर स्त्रियाँ नग्न ही स्नान करती रहीं परन्तु उनके पिता व्यास जी को कातर भाव से पीछा करते देखकर नारियों ने वस्त्र पहन लिया। पूछने पर नारियों ने व्यास जी को बताया कि आप में स्त्री - पुरुष का भेद है परन्तु आत्मनिष्ठ शुकदेव जी के हृदय में ऐसा कोई भेद भाव नहीं है।

वर्त्तमान में उपलब्ध श्रीमद्भागवत कथा का स्वरूप एवं प्रारूप श्रीसूत जी द्वारा संग्रहित एवं संकलित है। श्रीवेदव्यास जी द्वारा विरचित भागवत पुराण प्रथम बार श्रीशुकदेव जी के मुखारविन्द से राजा परीक्षित को सुनाया गया। उस समय समस्त श्रेष्ठ मुनिजनों के साथ श्रीसूत जी भी वहाँ उपस्थित थे और उनको भी भागवत कथा सुनने का सुअवसर मिला। मानव कल्याण निमित्त भगवान श्रीकृष्ण की लीलावतार सम्बन्धित शौनकादि मुनि जनों के प्रश्न के समाधान में उन्होंने उसी कथा को कलिकाल के प्रारम्भ में अपनी बुद्धि एवं मति के अनुसार प्रकट किया। कथा का प्रवाह एवं विषयवस्तु श्रीशुकदेव जी की कथा का यथासाध्य रूप ही है जो प्रथम स्कन्ध के तृतीय अध्याय **1।3।40** से **45** तक तथा **12।4।43।।**के निम्नांकित श्लोकों से स्पष्ट होता है।

सूत उवाच-

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।

उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषिः।। **1।3।40।।**

निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत्।

ततः संग्राहयमास सुतमात्मवतां वरम्।।**1।3।41।।**

सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम्।

स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम्।।**1।3।42।।**

प्रायोपविष्टं गङ्गायां परीतं परमर्षिभिः।

तत्र कीर्तयतो विप्रा विप्रर्षेर्भूरितेजसः।। **1।3।43**।तिरुपति क्रीटीकल संस्करण।

अहं चाध्यगमं तत्र निविष्टस्तदनुग्रहात्।

सोऽहं वः श्रावयिष्यामि यथाधीतं यथामति।। **1।3।44**। तिरुपति क्रीटीकल संस्करण।

कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह।

कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः।। **1।3।45**। तिरुपति क्रीटीकल संस्करण।

भागवत के **9** वें स्कन्ध के **22** वें अध्याय के श्लोक **21** से **23** में श्रीशुकदेव जी ने उल्लेख किया है कि उनके पिता वेदव्यास जी ने अपने अन्य शिष्यों को छोड़ उन्हें ही रहस्यपूर्ण भागवत पढ़ाया।

यस्यां पराशरात् साक्षादवतीर्णो हरेः कला।।**9।22।21।।**

वेदगुप्तोमुनिः कृष्णो यतोऽहमिदमध्यगाम्।

हित्वा स्वशिष्यान्पैलादीन्भगवान बादरायणः ।।**9।22।22।।**

मह्यं पुत्राय शान्ताय परं गुह्यमिदं जगौ ।। **9।22।23।।**

स्कन्ध **2** अध्याय **1** श्लोक **8** से **10** में श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित को यह स्पष्ट किया है कि अपने पिता व्यासजी से प्राप्त भागवत की कथा अब वे राजा को सुनायेंगे क्योंकि राजा भगवान् कृष्ण के परम भक्त हैं तथा इस कथा से भगवान के प्रति उनकी श्रद्धा दृढ़ से दृढ़तर हो जायेगी।

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।

अधीतवान्द्वापरादौ पितुर्द्वैपायनादहम्।।**2।1।8।।**

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया।

गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्।। **2।1।9।।**

तदहं तेऽभिधास्यामि महापौरुषिको भवान्।

यस्य श्रद्दधतामाशु स्यान्मुकुन्दे मतिः सती।। **2।1। 10।।**

स्कन्ध **1** अध्याय **19** श्लोक **8** से **12** में गंगा किनारे राजा परीक्षित के पास मुनियों के एकत्र होने का उल्लेख है तथा समागत प्रमुख मुनियों के नाम भी ध्यातव्य हैं जिसमें अन्य मुनियों के अतिरिक्त उनके पिता व्यास जी भी वर्त मान थे। श्लोक **21** में मुनियों द्वारा राजा को उनके प्रयाण की अवधि तक वहीं उनके पास रहने के आश्वासन का उल्लेख है जिससे यह आभास मिलता है कि व्यास जी भागवत कथा के मूल प्रवर्तक होने के बाद भी अपने वरद पुत्र से उस कथा को सुनते रहे।

तत्र-उपजग्मु: र्भुवनं पुनाना महानुभावामुनय: सशिष्या :।

प्रायेण तीर्थाभिगम-अपदेशै: स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति-सन्त: ।। 1।19।8।।

राजा परीक्षित के पास तीर्थों को पवित्र करने वाले ऋषि मुनि अपने शिष्यों के साथ पधारे।

अत्रि: वसिष्ठ: च्यवन: शरद्वान्अरिष्टनेमि: भृगु: अंगिरा: च।

पराशरो गाधिसुतोऽथ राम उतथ्य इन्द्रप्रमद-इध्मवाहौ ।। 1।19।9।।

मेधातिथि: देवल आर्ष्टिषेणो भारद्वाजो गौतम: पिप्लाद: ।

मैत्रेय औौर्व: कवष: कुम्भयोनि: द्वैपायनो भगवान्नारद: च।। 1।19।10 ।।

अत्रि, वसिष्ठआदि उपर्युक्त मुनियों के साथ अगस्त्य, वेदव्यास तथा नारदजी भी पधारे।

अन्ये च देवर्षि ब्रह्मऋषिवर्या राजर्षिवर्या अरूणादय: च।

नाना-आर्षेयप्रवरान्समेतान्अभ्यर्च्य राजा शिरसा ववन्दे।। 1।19।11।।

राजा परीक्षित ने सभी समागत जनों का शिर झुकाकर स्वागत किया।तक्षक के विष की चिन्ता से निश्चिन्त एवं निर्भ य राजा ने सभी मुनियों से भगवान विष्णु की गाथा गाने का निवेदन किया।

तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा गङ्गा च देवी धृतचित्तमीशे।

द्विजोपसृष्ट: कुहक: तक्षको वा दशत्वलं गायत विष्णुगाथा:।। **1।19।15**।।

भगवान्में राजाकी दृढ़ भक्ति की प्रशंसा करते हुए मुनियोंने उन्हें आश्वासन दिया कि जब तक राजा शरीर छोड़कर परमधाम को नहीं चले जाते वे सब वहाँ उपस्थित रहते हुए भगवान्की गाथा गाते रहेंगे।

सर्वे वयं तावत्इह आस्महेऽद्य कलेवरं यावत्-असौ विहाय।

लोकं परं विरजस्कं विशोकं यास्यति-अयं भागवत-प्रधान:।। 1।19।21 ।।

जब राजा मुनियों से अपनी जिज्ञासा निवेदन कर रहे थे तब सहसा वहाँ व्यासजी के वरदपुत्र सुन्दर सुकुमार सोलह वर्षीय श्रीशुकदेव मुनि का आगमन हुआ।अपने आसन से उठकर सभी मुनिगणों ने उनका स्वागत किया।

तत्र-अभवत्-भगवान्व्यासपुत्रो यदृच्छया गाम्-अटमान: अनपेक्ष: ।

अलक्ष्यलिंगो निजलाभतुष्टो वृत: च बालै: अवधूत-वेष:।।1।19।25।।

तं द्वयष्टवर्षं सुकुमार-पाद-कर-उरु-बाहु-अंस-कपोल-गात्रम्।

चारु-आयत-अक्ष-उन्नस-तुल्यकर्ण-सुभ्रु-आननं कम्बु-सुजात-कण्ठम्।।26।।

शुकदेवजी ने ऊँचा आसन ग्रहण किया तथा नक्षत्रों से घिरे चन्द्रमा की भाँति शोभायमान होने लगे।

स संवृत: तत्र महान्महीयसां ब्रह्मर्षि-राजर्षि-देवर्षि-संघै: ।

व्यरोचत अलं भगवान्यथा इन्दु: ग्रह-ऋक्ष-तारा-निकरै: परीत: ।।1।19।30।।

राजा ने श्रीशुकदेव मुनि से संपूर्ण मानव समुदाय के साथ-साथ विशेषरूप से शीघ्र मरणासन्न व्यक्ति के कल्याण हेतु कर्त्तव्य के बारे में जानकारी हेतु अपनी जिज्ञासा प्रकट की।

अत: पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम्।

पुरुषस्य-इह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा। 1।19।37।।

यत्श्रोतव्यं अथो जप्यं यत्कर्तव्यं नृभिः प्रभो।

स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम्।**1**।**19**।**38**।।

इन दो प्रश्नों के समाधान हेतु श्रीशुकदेव जी ने भागवत कथा का शुभारम्भ किया। विभिन्न प्रश्नों एवं जिज्ञासाओं के साथ कथा स्कन्ध **12** के अध्याय **5** तक चली। भगवद् ज्ञान हेतु अन्य जानकारी के लिये राजा से श्रीशुकदेव जी ने जब पूछा-

एतत्-ते कथितं तात यथाऽऽत्मा पृष्टवान्नृप।

हरेः विश्वात्मनः चेष्टां किं भूयः श्रोतुमइच्छसि।**12**।**5**।**13**।।

तब उन्होंने उनके चरणारविन्द में बद्धांजलि हो अपने को उनका परम अनुग्रह पात्र बताते हुए अपनी आसन्न मृत्यु से सम्पूर्ण निर्भयता की बात कही।

सिद्धः अस्मि-अनुगृहितोऽस्मि भवता करुणात्मना ।

श्रावितो यत्च मे साक्षात्-अनादि-निधनो हरिः।**12**।**6**।**2**।।

भगवन्तक्षक-आदिभ्यो मृत्युभ्यो न बिभेमि-अहम्।

प्रविष्टो ब्रह्मनिर्वाणम्-अभयं दर्शितं त्वया।।**12**।**6**।**5**।।

अज्ञानं चनिरस्तं मे ज्ञानविज्ञान-निष्ठया

भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम्।।**12**।**6**।**7**।।

सूतजी ने कहा कि इसके उपरान्त श्रीशुकदेव जी मुनियों एवं राजा से पूजित हो वहाँ से शीघ्र ही चले गये।।
सूत उवाच

इति-उक्तः तम्-अनुज्ञाप्य भगवान् बादरायणिः ।

जगाम् भिक्षुभिः साकं नरदेवेन पूजितः।।**12**।**6**।**8**।।

इससे यह ज्ञात होता है कि श्रीशुकदेव जी के जाने के समय सम्पूर्ण कथा को सुनते हुए समस्त मुनिगण वहाँ उपस्थित थे। उपर्युक्त सन्दर्भ के विहंगावलोकन से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान भागवत पुराण की कथा शौनकादि ऋषियों की जिज्ञासा शांति हेतु पूछे गये प्रश्नों के समाधान में श्रीसूतजी द्वारा प्रस्तुत है। इसका अनुमोदन स्वयं श्रीव्यासजी ने किया है।

व्यास उवाच

इति सम्प्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः।

प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे।।**1**।**2**।**1** ।।

1।**4** । नैमिषारण्य में शौनकादि के छः मुख्य प्रश्न

नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः।

सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत।।**1**।**1**।**4**।।

भगवान् विष्णु - जो अपनी आँख की पलके कभी भी बन्द नहीं करते - उनके प्रिय नैमिषरण्य में हजारों वर्षो के लिए आयोजित कथा सत्र में लोककल्याण की जिज्ञासा से उग्रश्रवा सूत जी से ऋषियों के प्रवक्ता शौनक जी ने कई प्रश्न पूछे। इन प्रश्नों की संख्या कुछेक हरिकथाकार छः गिनाते हैं।

प्रश्न 1 -

तत्र तत्राञ्जसाऽऽयुष्मन्भवता यद्विनिश्चतम्।

पुंसामेकान्ततः श्रेयस्तत्रः शंसितुमर्हसि। ।1।1।9। ।

समस्त शास्त्रों के अवलोकन से कलिकाल के जीव के लिए मंगलदायक एवं शीघ्र हितकारी उपााय बतायें ।

प्रश्न 2 -

भूरीणि भूरिकर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः।

अतः साधोऽत्र यत्सारं समुद्धृत्य मनीषया।

ब्रूहि नः श्रद्दधानानां येनात्मा सम्प्रसीदति। ।1।1।11। ।

बहुत सारे कर्मो के लिए बहुत सारे शास्त्र हैं। अतः प्राणियों के हितकर एवं उनकी प्रसन्नता के लिए उपकारी मार्ग बताइये।

प्रश्न 3 -

सूत जानासि भद्रं ते भगवान् सात्वतां पतिः।

देवक्या वसुदेवस्य जातो यस्य चिकीर्षया। ।1।1।12। ।

तन्नः शुश्रूषमाणानाम्-अर्हसि-अङ्ग-अनुवर्णितुम्।

यस्यावतारो भूतानां क्षेमाय च भवाय च। ।1।1।13। ।

भगवान्श्रीकृष्ण ने किस उद्देश्य से वसुदेव एवं देवकी के पुत्र के रूप में जन्म लिया।उसका वर्णन कीजिए क्योंकि भगवान्का अवतार लोक कल्याण के लिए ही होता है।

प्रश्न 4 -

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन्।

ततः सद्यो विमुच्येत्यद्विभेति स्वयं भयम्। ।1।1।14। ।

भगवान्से भय भी डरता है।उनके नाम लेते ही तत्काल जन्म-मृत्यु के चक्कर से छुटकारा मिल जाता है।

यत्पादसंश्रयाः सूत मुनयः प्रशमायनाः।

सद्यः पुनन्त्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया। ।1।1।15। ।

मनुष्य गंगा जल के बहुत काल तक सेवन से पवित्र होता है परन्तु भगवान्के श्रीचरणों के आश्रित सन्त के स्पर्श करते ही वह पवित्र हो जाता है।

को वा भागवतस्तस्य पुण्यश्लोकेड्यकर्मणः।

शुद्धिकामो न श्रृणुयाद्यशः कलिमलापहम्। ।1।1।16। ।

तस्य कर्माण्युदाराणि परिगीतानी सूरिभि:।

ब्रूहि न: श्रद्दधानानां लीलया दधत: कला:। ।1।1।17। ।

इस कलिकाल के कल्मष को दूर करने के लिए कौन भगवान्‌का पुण्य गुणगान सुनना नहीं चाहेगा! सन्तलोग उनके कर्मों का गुणगान करते रहते हैं। वैसे देवकीपुत्र भगवान्‌कृष्ण की लीला सुनायें।

प्रश्न 5 -

अथाख्याहि हरे: धीमन्-अवतारकथा: शुभा: ।

लीला विदधत: स्वैरम्-ईश्वरस्य-आत्ममायया। ।1।1।18। ।

भगवान्‌के अन्य अवतारों की लीलाकथा का वर्णन कीजिए जो सब कुछ अपनी ईच्छा से करते हैं।

प्रश्न 6 -

कृत्वान् किल वीर्याणी सह रामेण केशव:।

अतिमर्त्यानि भगवान्गूढ़: कपटमानुष:। ।1।1।20। ।

क्रीड़ा-मानुष के रूप में बलराम जी के साथ भगवान्‌ने बहुत लीलायें की।

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि।

स्वां काष्ठाम्-अधुना-उपेते धर्म: कं शरणं गत:। ।1।1।23। ।

यह बतायें कि भगवान्‌कृष्ण के अपने धाम जाते ही धर्म ने किसकी शरण ली।

<u>**1।5।** भगवान्‌एवं भक्ति की महिमा तथा विभिन्न लीलावतार</u>

शौनकादि के प्रश्न सुनकर भागवत की महिमा बताते हुए सूत जी उनके प्रश्नों के उत्तर देने लगे। सम्पूर्ण भागवत सुनाये बिना उनके सभी प्रश्नों के उत्तर नहीं दिये जा सकते थे। इसलिए सूत जी ने भूमिका के रूप में कथा का शुभारम्भ भगवान् एवं भक्ति की महिमा तथा उनके विभिन्न लीलावतारों के उल्लेख से किया।

श्रीसूत जी ने कहा -

य: स्वानुभावम्-अखिलश्रुतिसारमेकम्-अध्यात्मदीपम्-अतितीर्षतां तमोऽन्धम्।

संसारिणां करुणयाऽऽह पुराणगुह्यं तं व्याससूनुम्-उपयामि गुरुं मुनिनाम्। ।1।2।3। ।

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।

अहैतुकी-अप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति। ।1।2।6। ।

संसार के गहन अंधकार को पार करने हेतु भागवत एक अनोखा दीपक है। सूत जी ने शुकदेव जी को नमस्कार किया जिन्होंने व्यास जी से इसे सीखकर अपने अनुभव के साथ समस्त श्रुतियों के सार के रूप में सुलभ कराया। बिना किसी शर्त के की जाने वाली भगवान्‌की भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। इसी से आत्मानन्द मिलता है।

वासुदेवे भगवति भक्तियोग: प्रयोजित:।

जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम्। ।1।2।7। ।

धर्म: स्वनुष्ठित: पुंसां विष्वक्सेन-कथासु य:।

न-उत्पादयेत्-आदि रतिं श्रम एव हि केवलम्। ।1।2।8। ।

भगवान्‌की भक्ति से शीघ्र ही हृदय में अकारण ज्ञान एवं वैराग्य का उदय होता है। धर्म के अनुष्ठान से अगर भगवान्‌की लीला-कथा में प्रेम न हो तब वह अनुष्ठान मात्र श्रम है।

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते। ।1।2।11। ।

परम तत्व को ही (ज्ञानयोग वाले) ब्रह्म, (कर्मयोग वाले) परमात्मा, (भक्तियोग वाले) भगवान्‌कहते हैं।

तस्मादेकेन मनसा भगवान्सात्वतां पति:।

श्रोतव्य: कीर्तितव्यश्च ध्येय: पूज्यश्च नित्यदा। ।1।2।14। ।

एकाग्र मन से सतत भगवान्‌की कथा सुने, कीर्तन करे, ध्यान करे तथा पूजा करे।

श्रृणवतां स्वकथां कृष्ण: पुण्यश्रवणकीर्तन:।

हृद्यन्त:स्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम्। ।1।2।17। ।

नष्टप्रायेषु-अभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया।

भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी। ।1।2।18। ।

संतों के नित्यसुहृद् भगवान्‌के यश का श्रवण एवं कीर्तन पुण्यप्रद होते हैं। कथा सुनने वाले के हृदय में विराजकर मन की अशुभ भावनाओं का नाश कर देते हैं। भागवत कथा का नित्य श्रवण करने तथा भक्तों की सेवा से अशुभ वासनायें नष्ट होकर भगवान्‌में स्थायी प्रीति हो जाती है।

अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा।

वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसादनीम्। ।1।2।22। ।

सत्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्त: पर: पुरुष एक इह्यस्य धत्ते।

स्थित्यादये हरिविरञ्चिहरेति संज्ञा: श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वनोर्नृणां स्यु:। ।1।2।23। ।

नित्य निरन्तर भक्ति करने वाले को आत्मसुख मिलता है। प्रकृति के तीन गुण सत्त्व-रज-तम के आश्रय से श्रीहरि-ब्रह्मा-शंकर तीन रूपों से पालन-सृष्टि-संहार का क्रम चलता है परन्तु सत्वगुण प्रधान श्रीहरि ही मनुष्यों के परमकल्याण कारक हैं।

मुमुक्षवो घोररूपान्हित्वा भूतपतीनथ।

नारायणकला: शान्ता भजन्ति हि-अनसूयव:। ।1।2।26। ।

संसार सागर को पार करनेवाले रजो-तमोगुणी भूतपति एवं भैरवादि आदि के प्रति द्वेषरहित होकर परमकल्याण कारी नारायण एवं उनके अंश का ही भजन करते हैं।

वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखा:।

वासुदेवपरा योगा वासुदेवपरा: क्रिया:। ।1।2।28। ।

वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तप:।

वासुदेवपरो धर्मो वासुदेव परा गति:। ।1।2।29। ।

वेदों में निहित श्रेष्ठतम ज्ञान भगवान् वासुदेव हैं।इन्हें ही प्रसन्न करने के लिए यज्ञ किया जाता है। ये ही योग के ध्येय हैं।ये ही सभी कर्मो के फल हैं। ये ही ज्ञान, तपस्या तथा धर्म के लक्ष्य हैं। यही परमगति देते हैं।

सृष्टि एवं विभिन्न लीलावतारों का वर्णन करने के पूर्व सूत जी ने भगवान्‌के विराट स्वरूप का परिचय दिया। प्रारम्भ में सोलह कलाओं यानी दस इन्द्रियाँ तथा पाँच भूत के साथ मन का संयोग कर उन्होंने पुरुष का रूप लिया। कारण-जल में सोते हुए अपनी नाभिकमल से ब्रह्मा को उत्पन्न किया। भगवान्‌का विराट रूप बना जिसके अंग-प्रत्यंग में समस्त सृष्टि समाहित हुई।

पश्यन्तदो रूपम्-अदभ्र-चक्षुषा सहस्त्रपाद-उरु-भुज-आनन-अद्भुतम्।
सहस्त्रमूर्ध-श्रवण-अक्षि-नासिकं सहस्त्रमौलि-अम्बर-कुण्डल-उल्लसत्।।1।3।4।।

योगियों को दर्शन देने वाले यह विलक्षण रूप हजारों चरण, जाँघ, भुजाएँ, मुख, सिर, कान, आँखें, एवं नासिकाएँ तथा हजारों मुकुट, वस्त्र, कुण्डल, आभूषणादि से सुशोभित रहता है। भगवान्‌का यही नारायण स्वरूप सभी अवतारों का मूल स्रोत है। भागवत में भगवान्‌के विभिन्न अवतारों की सूची भागवत में दो स्थान पर उपलब्ध है। पहला है स्कनध 1 के अध्याय 3 में जो सूत जी द्वारा प्रस्तुत है जिसमें 22 अवतारों का उल्लेख है। दूसरा है स्कन्ध 2 के अध्याय 7 में जो ब्रह्मा ने नारद जी को बताया है और इसमें 24 अवतारों का उल्लेख है। यहाँ निम्नांकित 22 अवतार सूत जी द्वारा वर्णित हैं। इन अवतारों के बारे में विशेष जानकारी भागवत के विभिन्न स्कन्धों में उपलब्ध है। निम्नांकित सूची के प्रत्येक अवताार के कोष्ठक में भागवत के द्रष्टव्य स्कन्ध एवं अध्याय का सन्दर्भ दिया गया है जहाँ उस अवतार के बारे में विशेष जानकारी ली जा सकती है।

अवतार-1 ः आजीवन ब्रह्माचारी बालस्वरूप सनक, सनन्दन, सनातन, और सनत्कुमार का है। (**3।12**)
अवतार-2 ः पृथ्वी के उद्धार के लिए यज्ञेश प्रभु ने वराह का रूप धारण किया। (**3।13**)
अवतार-3 ः ऋषि के रूप में नारद का अवतार "कर्मो के द्वारा कर्मो के बन्धन काटने हेतु" सात्वत तन्त्र पाञ्चरात्र के सूत्रधार के स्वरूप में हैं। (**1।5, 7।15**)
अवतार-4 ः धर्म की पत्नी मूर्ति से नर-नारायण के रूप में अवतार लेकर इन्द्रिय-संयम से कठिन तपस्या की है। (**11।4**) "तुर्ये धर्म-कला-सर्गे नर-नारायणौ-ऋषि। भूत्वा-आत्म-उपशम-उपेतम्-अकरोद्दुश्चरं तपः।।**1।3।9**।।
अवतार-5 ः कपिल के रूप में सिद्धों के स्वामी बने हैं। (**3।24**)
अवतार-6 ः अत्रि तथा अनसूया की सन्तान दत्तात्रेय बने हैं और प्रह्लाद आदि को ब्रह्मज्ञान दिया। देखें स्कन्ध **7** अध्याय **13** ।यहाँ दत्तात्रेय नाम नहीं दिया है परन्तु ब्रह्माण्ड पुराण के सन्दर्भ से हरिकथाकार ऐसा बताते हैं।
अवतार-7 ः रुचि एवं आकूति के पुत्र यज्ञ बने हैं। (**8।1**)
अवतार-8 ः कठोर व्रत करने वाले परमहंस ऋषभदेव बने हैं। (**5।3**)
अवतार-9 ः पृथ्वी से सभी औषधियों को प्राप्त करने वाले राज पृथु हुए। (**4।15**)
अवतार-10 ः लोक कल्याणार्थ प्रलय जल में मत्स्य अवतार। (**8।24**)
अवतार-11 ः कच्छप रूप में मन्दराचल को धारण कर समुद्र मंथन कराये। (**8।7**)
अवतार-12 ः अमृत कलश लिए समुद्र से धन्वन्तरि के रूप में आये। (**8।8**)

अवतार-**13** ः मोहिनी रूप में असुरों को मोहित कर देवों को अमृत पान कराये। (**8**।**8**)
अवतार-**14** ः नरसिंह रूप में प्रह्लाद का कल्याण किये। (**7**।**8**)
अवतार-**15** ः वामन रूप में राजा बलि से तीन पग जमीन मांगे। (**8**।**18**)
अवतार-**16** ः परशुराम बन ब्राह्मण विरोधी अहंकारी क्षत्रियों का इक्कीस बार नाश किये। (**9**।**5**)
अवतार-**17** ः पराशर एवं सत्यवती के पुत्र व्यास के रूप में वेदों की कई शाखायें किये। (**1**।**4**)
अवतार-**18** ः रामावतार में सेतु-बन्धन, रावण बध तथा अन्य पराक्रमी लीला किये। (**9**।**10**)
अवतार-**19** एवं **20** ः बलराम एवं कृष्ण बन पृथ्वी का भार हरे। जब यदुबंश कृष्न अवतारा।होइहिं हरन महा महिभारा।।मानस बा.**85**।**1**।। (**10**।**3**)
अवतार-**21** ः मगधदेश में अजन के पुत्र बुद्ध बन देव विरोधी दैत्यों को मोहित किये।इस सन्दर्भ में **10**।**40**।**22** श्लोक द्रष्टव्य है। आसुरी बुद्धिवालों को बुद्ध ने पाषण्ड मतावलम्बी बनाया। (**10**।**40**)
अवतार-**22** ः कलि के अन्त में विष्णुयश ब्राह्ण के पुत्र बन कल्कि रूप में जगत्रक्षक बनेंगे। (**12**।**2**)

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्त्रशः।।1।3।26।

बड़े सरोवर से अनेक नदी-नाले निकलते हैं उसीतरह सत्वनिधि भगवान्के असंख्य अवतार हुए हैं।

ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः।
कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा।।1।3।27।।

सभी तेजपूर्ण ऋषि, मनुगण, देवगण, मनु की वंशावली तथा प्रजापतिगण भगवान्के ही अंश हैं।

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे।।1।3।28।।

असुरों के अत्याचार से व्याकुल होने वाले की भगवान्विभिन्न अवतारों से रक्षा करते हैं।ये सभी अंशावतार हैं परन्तु कृष्णावतार पूर्ण अवतार है।

स वेद धातुः पदवीं परस्य दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः।
योऽमायया संततयानुवृत्त्या भजेत तत्पादसरोजगन्धम्।।1।3।38।।

चक्रपाणि परमपराक्रमी भगवान्के चरणकमल की अनवरत अहैतुकी सेवा करने वाले ही उनकी सृष्टि की अनन्त शक्ति को समझ सकते हैं।

1।6। गर्भ में परीक्षित की रक्षा तथा कुन्ती देवी द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति

महाभारत युद्धोपरान्त युधिष्ठर राजा हुए। हस्तिनापुर में शान्ति स्थापित कर भगवान्कृष्ण द्वारका जाने हेतु रथ पर सात्यकि एवं उद्धव के साथ सवार हुए। परन्तु उन्होंने देखा कि अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा उनकी ओर भयातुर दौड़ी आ रही है।

पाहि पाहि महायोगिन् देवदेव जगत्पते।

नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम्। ।1।8।9। ।

हे प्रभु रक्षा कीजिए। संसार में मृत्यु के कारण सभी बनते हैं परन्तु आपको छोड़कर अन्य किसी में मृत्यु को रोकने का सामर्थ्य नहीं है। मेरी ओर एक भयानक अग्निपुंज आ रहा है। मेरी मृत्यु हो जाये परन्तु मेरे गर्भ की रक्षा करें। भगवान्समझ गये कि यह अश्वत्थामा का दुष्कृत्य है। इसके अतिरिक्त पाँच बाणों को अपनी ओर आते देख पाण्डव धनुष बाण लेकर तैयार हो गये। भगवान्श्रीकृष्ण जानते थे कि ये ब्रह्मास्त्र हैं और इनका निवारण कठिन है परन्तु उन्होंने अपने सुदशर्नचक्र से । ।**सुदर्शनेन स्वास्त्रेण स्वानां रक्षां व्यधाद्विभुः**। । ब्रह्मास्त्र को निष्प्रभ कर दिया तथा उत्तरा के गर्भ की रक्षा की। विलक्षण स्थिति देख कुन्ती देवी ने द्वारका को प्रस्थान करते भगवान्की भावभीनी स्तुति की।

नमस्ते पुरुषं त्वाऽऽमीश्वरं प्रकृतेः परम्।

अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम्। ।1।8।18। ।

नमस्कार है आपको जो सभी प्राणियों के भीतर बाहर विराजते हैं परन्तु इसे कोई जान नहीं पाता।

माया-जवनिका-आच्छन्नम्-अज्ञा-अधोक्षजम्-अव्ययम्।

न लक्ष्यसे मूढदृशा नटो नाट्यधरो यथा। । 1।8।19। ।

माया के परदे में छिपे आपको देखते हुए भी मैं मूढ आपके स्वरूप को उसी तरह देख नहीं पाती जैसे नाटक के मंच पर नट को बदले हुए वेष में सभी पहचान नहीं पाते।

कृष्णााय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।

नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः। । 1।8।21। ।

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने।

नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये। । 1।8।22। ।

यथा हृषीकेश खलेन देवकी कंसेन रुद्धातिचिरं शुचार्पिता।

विमोहचिताहं च सहात्मजा विभो त्वयैव नाथेन मुहुः विपद्गणात्। ।1।8।23। ।

दुष्ट कंस से कैद में दीर्घकाल तक पीड़ित देवकी का आप ने जैसे उद्धार किया वैसे ही मुझे भी पुत्रों के साथ बार-बार विपत्ति से आपने रक्षा की है।

विषान्महाग्नेः पुरुष-अद-दर्शनात्-असत्सभाया वनवास-कृच्छ्रतः।

मृधे मृधेऽनेक-महारथ-अस्त्रतो द्रौणि-अस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिताः। । 1।8।24। ।

भीम को विष, लाक्षागृह की अग्नि, दुष्टों की जुआ, वनवास, महारथियों के भयानक अस्त्र तथा अश्वात्थामा के ब्रह्मास्त्र आपकी कृपा के कारण ही हमलोगों को क्षति न पहुँचा सके।

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।

भवतो दर्शनं यत्स्यात्-अपुनः भवदर्शनम्। ।1।8।25। ।

विपत्तियाँ ही सदा आती रहें जिससे आपका दर्शन मिलता रहे। आपका दर्शन जन्म-मृत्यु के चक्र का नाशक है।

नमोऽकिंचनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये।

आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः। । 1।8।27। ।

गरीबों के धन, माया-मोह भगानेवाले, आत्माराम एवं शान्त तथा आश्रितों को मोक्ष देनेवाले आपको प्रणाम है।

जन्म कर्म च विश्वात्मन्अजस्य-अकर्तुः आत्मनः।

तिर्यक्-नृ-ऋषिषु यादःसु तत्-अत्यन्त-विडम्बनम्। ।1।8।30। ।

तिर्यग योनि में वराह, मत्स्य, कूर्म, मानव रूप में भगवान्राम बनकर तथा ऋषियों में नारायण रूप में उस योनि के अनुरूप कर्म करते हैं जबकि आप जन्म एवं कर्म से निरत हैं। आपकी यही लीला मोह में डाल देती है।

गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्याते दशाश्रु-कलिल-अञ्जन-सम्भ्रम्-अक्षम्।

वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य सा मां विमोहयति भीः अपि यद्बिभेति ।।31।।

जिससे भय भी डरता है, वे यशादो की रस्सी से बंधकर कैसे अंजन बहते नयानों से डर कर खड़े रहे होंगे, यह सोचकर भाव विह्वल हो जाती हूँ।

अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात्।

अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम्।। 1।8।33।।

कुछ कहते हैं कि देवकी- वसुदेव(पृश्नि-सुतपा) की प्रार्थना पर और दूसरे कहते हैं कि ब्रह्मा की प्रार्थना पर अजन्मा होते हुए असुरों के नाश हेतु जन्म लिये हैं।

श्रृणवन्ति गायन्ति गृणन्ति-अभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः।

त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम्। ।1।8।36। ।

भक्तगण आपकी कथा का श्रवण, गान एवं स्मरण से आनन्दित होकर आपके चरणकमल का दर्शन करते हैं और संसार चक्र से मुक्त हो जाते हैं।

के वयं नामरूपाभ्यां यदुभिः सह पाण्डवाः।

भवतोऽदर्शनं यर्हि हृषीकाणाम्-इव-ईशितुः।। 1।8।38।।

भगवान्को द्वारका जाने से रोकते हुए कुन्ती कहती है - जैसे अर्न्तयामी से नहीं जुड़ने पर इन्द्रियाँ शक्तिहीन रहती हैं उसीतरह आप से विछुड़कर पाण्डव तथा यदुलोग कर ही क्या सकते हैं।

नेयं शोभिष्यते तत्र यथेदानीं गदाधर।

त्वदपदैरङ्किता भाति स्वलक्षणविलक्षितः।। 1।8।39।

आपके श्रीचरणों के ध्वज-वज्र-अङ्कुश चिह्नों से शोभती यहाँ की भूमि आपके जाने पर शोभाहीन हो जायेगी।

अथ विश्वेश विश्वात्मन्विश्वमूर्ते स्वकेषु मे।

स्नेहपाशमिमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु।। 1।8।41।।

हे विश्वपति-विश्वप्राण-विश्वमूर्ति ! आप पाण्डवों एवं यदुकुल से बंधे मेरे ममता-स्नेह बन्धन को काट दीजिये।कुन्ती चाहती है कि वह मात्र कृष्ण स्नेह में बंधे अन्य ममता में नहीं।

त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत्।

रतिम्-उद्वहतात्-अद्धा गङ्गा-इव-ओघम्-उदन्वति।। 1।8।42।।

जैसे गंगा अपने जल को समुद्र में मिला देती हैउसी तरह मेरा अनन्य प्रेम आपके श्रीचरणों में आश्रय प्राप्त करे।

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्णि-ऋषभ-अवनि-ध्रुक्-राजन्यवंश-दहन-अनपवर्ग-वीर्य।

गोविन्द गोद्विज-सुरार्तिहर-अवतार योगेश्वर-अखिलगुरो भगवन्नमस्ते।। 1।8।43।।

वृष्णि-ऋषभ-अवनिध्रुग-राजन्यवंश-दहन-अनपर्ग वीर्य - आप वृष्णिकुलभूषण तथा हिंसारत राजवंश के नाशक, पराक्रमी तथा अर्जुन के सखा हैं। गो-ब्राह्मण-देवगण के कष्ट हरने वाले विश्वगुरु -योगीश -गोविन्द आपको बार-बार नमस्कार है। इसके बाद युधिष्ठर के प्रेमासिक्त अनुरोध पर भगवान्द्वारका न जाकर पाण्डवों के साथ वहीं रुक गये।

1।7। बाणशय्या से भीष्म की भगवत्स्तुति

महाभारत युद्धोपरान्त युधिष्ठर राजा हुए। उनके मन में शान्ति नहीं थी कि मेरे राज्यलाभ के कारण कितने जनों की हत्या हुई। इस कुकृत्य के कारण मेरा अनन्तकाल तक नरक से छुटकारा नहीं होगा।

बाल-द्विज-सुहृन्मित्र-पितृ-भ्रातृ-गुरु-द्रुहः।

न मे स्यात्-निरयात्-मोक्षो ह्यपि वर्ष-अयुतायुतैः। ।1।8।49।।

सब के समझाने पर भी जब वे शान्त नहीं हुए तब सब पाण्डव बाणशय्या पर लेटे हुए भीष्मपितामह के पास राजधर्मादि का ज्ञान प्राप्त करने गये।

इति भीतः प्रजाद्रोहात्-सर्वधर्म-विवित्सया।

ततो विनशनं प्रागाद्यत्र देवव्रतोऽपतत्। ।1।9।1।।

युधिष्ठर युद्ध में अनेक लोगों के वध के कारण उत्पन्न पाप के भय से डरकर देवव्रत भीष्म के पास गये।भगवान्के समझाने पर भी युधिष्ठर को शान्ति नहीं मिल पा रही थी। उनलोगों के साथ भगवान्श्रीकृष्ण भी गये थे।वे जानते थे कि भीष्म मेरे एकनिष्ठ भक्त हैं और अन्त समय में मेरे दर्शन के लिए लालायित हैं। अतः अपने भक्त का मान बढ़ाने तथा उन्हें दर्शन देने के उद्देश्य से भक्त-वत्सल भगवान्ही भीष्म के पास गये।

दृष्ट्वा निपतितं भूमौ दिवः अच्युतम्-इव-अमरम्।

प्रणेमुः पाण्डवा भीष्मं सानुगाः सह चक्रिणा। ।1।9।4।।

वहाँ स्वर्ग से गिरे हुए देवता के समान भीष्म को शरशय्या पर देख पाण्डवों एवं भगवान्कृष्ण ने उन्हें प्रणाम किया। उसी समय अनेकों ब्रह्मर्षि वशिष्ठ, नारद, अत्रि आदि भी वहाँ आये। सबों को भीष्म ने मन ही मन आदर सत्कार किया।

कृष्णं च तत्प्रभावज्ञ आसीनं जगदीश्वरम्।

हृदिस्थं पूजयामास मायया -उपात्त-विग्रहम्। ।1।9।10।।

माया से मानुष रूपधारी भगवान्की महिमा से भीष्म अवगत थे। उन्हें हृदय में रखकर उनकी पूजा की।

अहो कष्टम्-अहोऽन्याय्यं यत्-यूयं धर्मनन्दनाः।

जीवतुं नार्हथ क्लिष्टं विप्रधर्म-अच्युताश्रयाः। ।1।9।12।।

पाण्डवों को ब्राह्मण, धर्म तथा भगवान्के आश्रित होते हुए भी उनके कष्ट का स्मरण कर भीष्म विह्वल हो गये।

यत्र धर्मसुतो राजा गदापाणिः वृकोदरः।

कृष्णोऽस्त्री गाण्डीवं चापं सुहृत्-कृष्णः ततो विपत्। ।1।9।15।।

यह कितना आश्चर्य है कि धर्मात्मा युधिष्ठर,गदाधारी भीम, गाण्डीवधारी अर्जुन एवं भगवान्कृष्ण के रहते विपत्ति आती है।

न ह्यस्य कर्हिचित्-राजन् पुमान् वेद विधित्सतम्।
यद्विजिज्ञासया युक्ता मुह्यन्ति कवयोऽपि हि।।1।9।16।।
तस्मादिदं वेदतन्त्रं व्यवस्य भरतर्षभ।
तस्य-अनुविहितोऽनाथा नाथ पाहि प्रजा: प्रभो।।1।9।17।।
एष वै भगवान् साक्षादायो नारायणः पुमान्।
मोहयन्मायया लोकं गूढश्चरति वृष्णिषु।।1।9।18।।

भीष्म ने युधिष्ठर को कहा - भगवान्की ईच्छा को कोई जान नहीं सकता। पंडित आदि मोहित रहते हैं। इसलिए सुख-दु:ख को ईश्वराधीन जानकर भगवान्के चरणाश्रित हो अनाथ प्रजा का पालन करो।भगवान्कृष्ण साक्षात्नारायण हैं। भक्तों को आनन्द तथा अन्य को मोहित करने हेतु वृष्णिवंश में रहस्यरूप से विराज रहे हैं।
भीष्म ने भगवान्से कहा -

स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षतां कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम्।
प्रसन्नहास-अरुणलोचन-उल्लसत्मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुज:।।1।9।24।।

हे ध्यान-ध्येय चतुर्भज स्वरूप वाले प्रभु ! मेरे शरीर त्यागने तक आप यहाँ विराजकर अपने प्रसन्नचित्त मुखारमण्डल का दर्शन देते रहें। युधिष्ठर कुछ काल तक भीष्म से धर्मतत्व का ज्ञान प्राप्त करते रहे। जब उत्तरायण का सूर्य आया तब भीष्म भगवान्की स्तुति करने लगे।

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौर-वराम्बरं दधाने।
वपु: अलक-कुलावृता-अननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या।। 1।9।33।।

तमालवृक्ष जैसा श्याम वर्ण, सूर्यप्रभा सा चमकता पीताम्बर, मुखारविन्द पर लटकते घुंघराले बाल वाले जो अर्जुन के प्रियमित्र और त्रिभुवन के सुन्दरतम स्वरूप हैं, आप में मेरी अहैतुकी भक्ति बनी रहे।

युधि तुरग-रजो-विधूम्र-विष्वक्-कच-लुलित श्रमवारि-अलङ्कृत-आस्ये।
मम निशित-शरै: विभिद्यमान-त्वचि विलसत्-कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा।। 1।9।34।।

मेरा मन अटल रूप से भगवान्कृष्ण में लगा रहे जिनका केश युद्ध क्षेत्र में घोड़ों के पैरों से उड़ती धूल से भर जाता था, जिनके मुखारविन्द पर पसीना की बूंदें झलकती थीं तथा मेरे वाणों से बिद्ध उनके शरीर बाणों से बने कवच धारण किये हुए जैसे दिखता था।

सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये निज-परया: बलयो रथं निवेश्य।
स्थितवति परसैनिक-आयु: अक्ष्णा हृतयति पार्थसखे रति: ममास्तु।। 1।9।35।।

मित्र अर्जुन के कहने पर शीघ्र रथ को दोनों सेनाओं के बीच स्थापित कर अर्जुन के आगे की राय की प्रतीक्षा में कालदृष्टि से कौरव की सेना को देखते हुए उनकी आयु का हरण करने वाले, पार्थसारथी भगवान् में मेरा अनुराग बना रहे। गीता 1।25 में कहा है - **पार्थ पश्यैतान्समवेतान् कुरून् इति।**

स्वनिगमम्-अपहाय मत्प्रतिज्ञाम्-ऋतम्-अधिकर्तुम्-अवप्लुतो रथस्य:।
धृत-रथचरणो-अभ्ययात्-चलद्गुह: हरिरिव हन्तुम्-इभं गतोत्तरीय:।। 1।9।37।।

आपने मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए अपनी प्रतिज्ञा का तिरस्कार किया। रथ से कूदकर मुझपर हाथ में रथ का चक्का लेकर, सिंह जैसे हाथी पर आक्रमण करता है वैसे, अपने गिरते पीताम्बर के साथ तथा अपने श्रीचरणों से पृथ्वी को दहलाते हुए मुझ पर टूट पड़े।अपने श्रीचरणों में मुझे दृढ़ भक्ति दें।

शित-विशिख-हतो विशीर्णदंश: क्षतज-परिप्लुत आततायिनो मे।
प्रसभम्-अभिससार मद्वधार्थं स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्द:।। 1।9।38।।

मेरे बाणों से आपके कवच छिन्न-भिन्न हुए और शरीर भी क्षत-विक्षत एवं लहू-लुहान हो गया था। अर्जुन के रोकने पर भी आप हमारा वध करने के लिए दौड़ पड़े थे।मेरी गति आपही भगवान् मुकुन्द हैं।

विजयरथ-कुटुम्ब आत्ततोत्रे धृत-हय-रश्मिनि तत्-श्रिया-ईक्षणीये।
भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षो:-यम्-इह निरीक्ष्य हता गता: सरूपम्।।1।9।39।।

आपके दर्शन से मारे जाने वाले सैनिकों को मोक्ष मिला। एक हाथ से चाबुक तथा दूसरे से घोड़े के लगाम संभालने वाले अलौकिक पार्थसारथी के स्वरूप के ध्यान में मेरा मन लगा रहे।

ललितगति-विलास-वल्गुहास-प्रणय-निरीक्षण-कल्पित-उरुमाना:।
कृत-मनु-कृतवत्य उन्मदान्धा: प्रकृतिमगन्किल यस्य गोपबध्व:।। 1।9।40।।

आपके हास, चाल तथा प्रेम चितवन से मोहित होने से गोपियों को मान मिला तथा वे आपकी गोवर्धन आदि लीलाओं का अनुकरण कर आपके स्वभाव को प्राप्त हो गयी थी।

मुनिगण-नृपवर्य-संकुलेऽन्त: सदसि युधिष्ठर-राजसूय एषाम्।
अर्हणम्-उपपेद ईक्षणीयो मम दृशीगोचर एष आविरात्मा।। 1।9।41।।

युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ में आपके अलौकिक सौन्दर्य से सभी मोहित हो राजाओं एवं मुनियों ने आपकी पूजा की। वही परमात्मा हमारे सामने विराजमान हैं। मैं धन्य-धन्य हो गया। ऐसा कहते कहते भीष्म मौन हो गये तथा परमधाम चले गये। समागत मुनिगण भी भगवान्की स्तुति कर लौट गये।भगवान्के साथ युधिष्ठर भी शान्त मन भीष्म का दाह संस्कार कर हस्तिनापुर आ गये।

1।8। भगवान् श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर से द्वारका के लिए प्रस्थान

युधिष्ठर को हस्तिनापुर का राजा बनाने के बाद भगवान् पाण्डवों के स्नेहवश द्वारका नहीं जा पा रहे थे। एक दिन जब प्रस्थान कर ही रहे थे कि अभिमन्यु की पत्नी अपने गर्भ पर अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र का आक्रमण देख दौड़ कर आयी और भगवान्से त्राहि माम्करते हुए गर्भ की सुरक्षा मांगने लगी। भगवान् ने गर्भ की रक्षा की और कुन्ती तथा पाण्डवों के अनुनय-विनय पर पुन: वहीं रुक गये। कुछ दिन बाद द्वारका के लिए प्रस्थान करते समय उनके साथ सात्यकि तथा उद्धव जी भी थे। पाण्डवों ने भारी मन से भावभीनी विदाईकी और बहुत दूर तक छोड़ने गये। पाण्डवों की सेना भगवान्के साथ द्वारका तक गयी।मार्ग में पुष्पवृष्टि की जा रही थी।

उद्धव: सात्यकिश्चैव व्यजने परमाद्भुते।
विकीर्यमाण: कुसुमै रेजे मधुपति: पथि।।1।10।18।।

अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुलमहो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम्।
यदेष पुंसामृषभः श्रियः पतिः स्वजन्मना चङ्क्रमणेन चाञ्चति।।1।10।26।।

हस्तिनापुर की नारियाँ युदवंश तथा ब्रजवासियों के भाग्य की सराहना करने लगी।द्वारका जाने के मार्ग के विभिन्न क्षेत्रों के निवासी भगवान्का स्वागत करते नहीं अघाते थे। मार्ग में भगवान् रुकते हुए नियमित रूप से समयानुसार सन्ध्यादि कर्म करते द्वारका पहुँचे। द्वारका में उनका भव्य स्वागत हुआ।

नित्यं निरीक्षमाणानां यदपि द्वारका-ओकसाम्।
नैव तृप्यन्ति हि दृशः श्रियो धामाङ्गम्-अच्युतम्।।1।11।25।।
श्रियो निवासो यस्योरः पानपात्रं मुखं दृशाम्।
बाहवो लोकपालानां सारङ्गणां पदाम्बुजम्।।1।11।26।।
सित-आतपत्र-व्यजनैः उपस्कृतः प्रसून-वर्षैः अभिवर्षितः पथि।
पिशाङ्गवाशा वनमालया बभौ घनो यथा-अर्क-उडुप-चाप-वैद्युतैः।।1।11।27।।

भगवान् लक्ष्मी के निवास हैं। उनकी भुजायें लोकपालों के तथा चरणकमल परमहंसों के आश्रय हैं। उनके अलौकिक स्वरूप का दर्शन कर द्वारकावासी कभी तृप्त नहीं होते थे।श्वेतवर्ण के छत्र, दोनों तरफ श्वेत चँवर की सेवा के साथ भगवान् वनमाला एवं पीताम्बर धारण किये हुए ऐसे शोभायमान हो रहे थे जैसे श्याम घन एक ही साथ सूर्य-चन्द्रमा-इन्द्रधनुष-चमकती बिजली से घिरे हुए हों। सबसे पहले अपने माता-पिता से मिलकर भगवान् ने उनका आशीर्वाद लिया। उनलोगों से आज्ञा लें वे अलग-अलग महलों में रहने वाली सोलह हजार पत्नियों से मिले। साधारण मनुष्य की तरह वे उनसे क्रीड़ारत रहते थे।

उद्दामभाव-पिशुन-अमल-वल्गुहास-व्रीड-अवलोकनिहतो मदनोऽपि यासाम्।
समुह्य चापम्-अजहात्-प्रमदोत्तमाः ता यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैर्न शेकुः।।1।11।36।।
तमयं मन्यते लोके ह्यसङ्गमपि सङ्गिनम्।
आत्म-औपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः।।1।11।37।।

विश्वविजयी कामदेव भी भगवान्के मधुर मुस्कान तथा लजीली चितवन से मोहित होकर अपना कामायुध धनुष-बाण छोड़कर भाग गये थे। कमनीय पत्नियाँ अपने कामुक हावभाव से उनके मन में तनिक भी क्षोभ नहीं उत्पन्न कर सकीं। ऐसे भगवान्को मूढ़ संसारी एक आसक्त मानव समझते हैं।

1।9 । राजा परीक्षित का जन्म, भगवान्के परमपदगमन पर पाण्डवों का विरह तथा स्वर्गारोहण, परीक्षित का राज्याभिषेक, उनका कलि दमन, ऋषि शाप, शुकदेव जी से भागवत श्रवण की जिज्ञासा

सम्पदः क्रतवो लोका महिषी भ्रातरो मही।
जम्बूद्वीपाधिपत्यं च यशश्च त्रिदिवं गतम्।।1।12।5।।
किं ते कामाः सुरस्पार्हा मुकुन्दमनसो द्विजाः।
अधिजह्रुर्मुदं राज्ञः क्षुधितस्य यथेतरे।।1।12।6।।

अनुकूल भाईयों तथा पत्नी के साथ यज्ञादि करते हुए युधिष्ठर जम्बूद्वीप के एकछत्र राजा थे। उनकी कीर्ति स्वर्ग तक फैली हुई थी। अपार सम्पत्ति से सम्पन्न होने पर भी भूखे की तरह आतुर हो पाण्डवों का मन भगवान् मुकुन्दके चरणारविन्द में रमा रहता था। माँ के गर्भ में परीक्षित ने अंगूठे के बरावर आकृति का एक अतीव सुन्दर प्रकाशपुञ्ज चतुर्भुज स्वरूप को हाथ में गदा घुमाते अपने चतुर्दिक चक्कर लगाते देखा था।

अङ्गुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमौलिनम्।
अपीच्यदर्शनं श्यामं तडिद्वाससमच्युतम्। ।1।12।8। ।
श्रीमद्दीर्घचतुर्बाहुं तप्तकाञ्चनकुण्डलम्।
क्षतजाक्षं गदापाणिमात्मनः सर्वतोदिशम्।
परिभ्रमन्तम्-उल्काभां भ्रामयन्तं गदां मुहुः। ।1।12।9। ।

अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र को शान्त करके भगवान्का वह स्वरूप गर्भ से लुप्त हो गया था। दस माह तक गर्भस्थ रहने पर एक तेजस्वी बालक का जन्म हुआ। ब्राह्मणों ने जातकर्म कर उस बालक का नाम विष्णुरात रखा और बताया कि यह भगवान् का महान्भक्त हागा। ऋषिकुमार के शाप से तक्षक के विष द्वारा मृत्यु सुनकर राज्यासक्ति छोड़ गंगा तट पर शुकदेव जी से कथा सुन अभयपद प्राप्त करेगा। गर्भ में दर्शन किये हुए भगवत्स्वरूप का जन्म के बाद बाहर भी खोजते रहने के कारण इस बालक का यश परीक्षित के नाम से फैलेगा। समय के साथ परीक्षित चन्द्रमा की कलाओं की तरह बढ़ने लगे।

कुछ समय बीतने पर राजा युधिष्ठर अपशकुनों को देख आशंकाग्रस्त हो गये। द्वारका का क्षेमकुशल जानने हेतु अर्जुन को वहाँ भेजा। भगवान्के परमपद गमन, यदुवंशियों के विनाश तथा द्वारका का समुद्र में विलय के बाद एकमात्र जीवित अनिरुद्ध के पुत्र बज्रनाभ के साथ अर्जुन द्वारका से बहुत ही उदास हस्तिनापुर लौटे।

यस्य क्षणवियोगेन लोको ह्यप्रियदर्शनः ।
उक्थेन रहितो ह्येष मृतकः प्रोच्यते यथा। ।1।15।6। ।

उनके क्षणमात्र के वियोग से यह संसार अप्रिय हो जाता है जैसे प्राण जाते ही शरीर शव हो जाता है। उनके ही आश्रय से द्रौपदी स्वयंवर, इन्द्र के देखते-देखते खाण्डव वन दहन से अग्नि की तृप्ति तथा मयदानव का सभागार बनाना, दसहजार हाथी के बलवाले भीम से जरासन्ध का अन्त तथा द्रौपदी के अपमान एवं उसके खुले केश के संकल्प से शत्रु की विधवाओं ने स्वयं अपने केश खोले।

यो नो जुगोप वनमेत्य दुरन्तकृच्छ्राद्दुर्वाससोऽरि-विहितात्-अयुत-अग्रभुग्यः।
शाक-अन्न-शिष्टम्-उपयुज्य यतस्त्रिलोकीं तृप्ताम्-अमंस्त सलिले विनिमग्नसङ्घः । ।1।15।11। ।

शत्रु दुर्योधन से भेजे दसहजार शिष्यों के साथ आये दुर्वासा ने जब वन में हमलोगों के लिए कठिन परिस्थिति उत्पन्न कर दी तब द्रौपदी के पात्र में बचे एक पत्ती साग खाकर भगवान्ने न केवल नदी में स्नान करते दुर्वासा की मण्डली को तृप्त किया अपितु त्रिलोक को तृप्त कर दिया।

यत्तेजसाथ भगवान् युधि शूलपाणिर्विस्मापितः सगिरिजोऽस्त्रम्-अदात्-निजं मे।
अन्येऽपि च-अहम्-अमुना-एव कलेवरेण प्राप्तो महेन्द्रभवने महदासन-अर्धम्। ।1।15।12। ।

उनकी कृपा से ही हमारे बाण के तेज से शंकर एवं पार्वती ने विस्मित हो हमे पाशुपातास्त्र दिया। अन्यों ने भी दिव्यास्त्र दिये तथा स्वर्ग में इन्द्र ने साथ में अपने सिंहासन पर बैठाया। राजा विराट का सारा गोधन अकेले ही जीत कर लाया तथा विरोधियों के मुकुट एवं अङ्गवस्त्र भी उतार लिया। भीष्म, कर्ण, द्रोण के रहते मेरे रथ में आगे-आगे चलकर उन सबकी आयु हर ली।

सौत्ये वृत: कुमतिनाऽऽत्मद ईश्वरो मे यत्पादपद्मम्-अभवाय भवन्ति भव्या:।

मां श्रान्त-वाहम्-अरयो रथिनो भुविष्ठं न प्राहरन्यदनुभाव-निरस्तचित्ता:। ।1।15।17।।

जिनके चरणारविन्द के मुनिगण आकांक्षी हैं उस भगवान्से मैंने मूढ़तावश रथ चलवाया। थके घोड़े को रथ से खोलने पर मैं जमीन पर खड़ा था परन्तु किसी शत्रु ने उनकी कृपा से मुझपर आक्रमण नहीं किया।

नर्माणि-उदाररुचिर-स्मित-शोभितानि हे पार्थ हेऽर्जुन सखे कुरुनन्दनेति।

संजल्पितानि नरदेव हृदिस्पृशानि स्मर्तुर्लुठन्ति हृदयं मम माधवस्य।।1।15।18।।

माधव के मधुर मुस्कान भरे वचन मुझे सखा, कुरुनन्दन, अर्जुन तथा पार्थ कहते हुए जब याद करता हूँ तब मेरा हृदय उनकी याद में व्याकुल हो जाता है।

शय्यासन-अटन-विकत्थन-भोजनादिषु-ऐक्याद्वयस्य ऋतवानिति विप्रलब्ध:।

सख्यु: सखेव पितृवत्-तनयस्य सर्व सेहे महान्महितया कुमते: अघं मे।।1।15।19।।

सोते, बैठते, टहलते, महत्वपूर्ण बातें करते तथा भोजन के समय सदा साथ रहते हुए मैं कभी व्यंग में "मित्र तुम बड़े सत्यवादी हो" कह देता। परन्तु जैसे मित्र अपने मित्र का तथा पिता अपने पुत्र की बात सह लेता है वैसे ही वे महानतावश मेरे व्यंग को अन्यथा नहीं लेते। वही मेरे मित्र जो मेरे हृदय थे अब नहीं रहे। द्वारका से मैं उनकी पत्नियों को लाते समय गोपों से हार गया। वही अर्जुन और वही गाण्डीव उनकी अनुपस्थिति में वैसे ही सारहीन हो गये जैसे भस्म में दी हुई आहुति, कपट भरी सेवा तथा ऊसर में बोया हुआ बीज व्यर्थ हो जाता है। उनके ही संकल्प से ऋषियों के शाप से यदुवंशी वारुणी की नशे में अपरिचितों की भाँति आपस में कट मरे।।

देशकालार्थ-युक्तानि हृत्ताप-उपशमानि च।

हरन्ति स्मरतश्चित्तं गोविन्दाभिहितानि मे।।1।15।27।।

भगवान् गोविन्द की गीता के उपदेश समय, स्थान तथा प्रयोजन के अनुसार हृदय के ताप को शान्त करने वाले हैं। उन्हें याद करते ही उनके वे उपदेश मेरे चित्त को व्याकुल कर देते हैं। अर्जुन की बात सुनकर युधिष्ठर व्याकुल हो उठे। भगवान् का परमपद गमन सुन कुन्ती देवी ने अपना मन भगवान्के चरणों में लगा दिया। तथा जन्म-मरण के चक्कर से निवृत्त हो गयी। भगवान्के स्वधाम गमन से कलि के प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगे।

स्वराट्पौत्रं विनयिनमात्मन: सुसमं गुणै:।

तोयनीव्या: पतिं भूमेरभ्यषिञ्चदगजाह्वये।।1।15।38।।

मथुरायां तथा वज्रं शूरसेनपतिं तत:।।39।।

युधिष्ठर ने प्रपौत्र परीक्षित को अपने समान गुणवाला देख हस्तिनापुर का तथा वज्रनाभ को मथुरा का राजा बनाकर स्वयं स्वर्गारोहण के लिए हिमालय की ओर जाने का मन बना लिया। राजकीय वेशभूषा का त्यागकर संन्यासवृत्ति

का सहारा ले वे सबों से निरपेक्ष हो गये। उनके सभी भाईयों ने भी उनका अनुसरण करते हुए उनके साथ हस्तिनापुर छोड़ चले।

ते साधुकृतसर्वार्था ज्ञात्वाऽऽत्यन्तिकमात्मनः।

मनसा धारयामासु-वैकुण्ठ-चरणाम्बुजम्। ।1।15।46।

द्रौपदी च तदाऽऽज्ञाय पतीनाम्-अनपेक्षताम्।

वासुदेवे भगवति ह्येकान्तमतिः आप तम्। ।1।15।50। ।

पाण्डवों को जीवन में सब कुछ प्राप्त हो चुके थे। उन्होंने भगवान्के चरणकमल को अपना परम पुरुषार्थ मान उसे अपने हृदय में धारण कर लिया। पाण्डवलोगों को निरपेक्ष देख मन को समाहित कर द्रौपदी अनन्य प्रेम से भगवान्वासुदेव को प्राप्त कर ली। पाण्डव लोग महाप्रस्थान के लिए रवाना हुए। राजा परीक्षित ने गंगा तट पर कृपाचार्य के तत्वाधान में तीन अश्वमेध यज्ञ किये। उनका विवाह उत्तर की कन्या इरावती से हुआ और जनमेजय आदि उनके चार पुत्र थे। इस संसार में जीव की दो बाध्यतायें हैं - अल्पायु तथा समझ की कमी। संसारी विषयी पुरुषों की आयु रात में नींद में तथा दिन में व्यर्थ की बातों में बीत जाती है।

मन्दस्य मन्दप्रज्ञस्य वयो मन्दायुषश्च वै।

निद्रया हृदये नक्तं दिवा च व्यर्थकर्मभिः। ।1।16।9। ।

राजा परीक्षित दिग्विजय पर निकले।सर्वत्र स्वागत हुआ तथा राजाओं से अनेकों उपहार मिले। उनके पूर्वज पाण्डवों की प्रशंसा तथा उनलोगों पर भगवान्कृष्ण की अहैतुकी कृपाभाजन की कथा सुनने को मिली।

सारथ्य-पारषद-सेवन-सख्य-दौत्य-वीरासन-अनुगमन-स्तवन-प्रणामान्।

स्निग्धेषु पाण्डुषु जगत्प्रणतिं च विष्णोर्भक्तिं करोति नृपतिः चरणारविन्दे। । 1।16।16। ।

परीक्षित को ज्ञात हुआ कि पाण्डवों के लिए सारथी, दूत, शस्त्र लेकर वीरासन में रात में शिविर की पहरेदारी, प्रणाम करना तथा उनके पीछे चलने आदि का कार्य भगवान्ने बड़ी सहजता से किया था। इस तरह से भगवान् की लीला को स्मरण कर परीक्षित आनन्दित होते रहते थे। एक दिन परीक्षित ने अपने शिविर से कुछ ही दूर पर बैल के रूप में धर्म को एक पैर से चलते देखा। वहीं पास में गाय के रूप में पृथ्वी रो रही थी। बैल ने गाय से पूछा, "क्या तुम्हें हमारे तीन टूटे पैर के लिए दुःख है या सर्वत्र शास्त्रादि के विपरीत कार्यो को देखकर दुःखी हो या भगवान्को अपने धाम चले जाने का दुःख है?" गाय बोली, "तुम्हें सब पता है। भगवान्के लीला-संवरण करते ही यह लोक कलियुग की कुदृष्टि का शिकार हो गया है। लक्ष्मी जी कमलवन के निवास को छोड़कर भगवान्के जिस चरणों की सेवा करती हैं उसी श्रीचरणों के शुभ चिह्नों से पदांकित होने से मेरी शोभा होती थी। मैं उससे अब विहीन हो गयी हूँ।" परीक्षित ने वहाँ पहुँचकर देखा कि राजवेष में एक आदमी डन्डे से गाय एवं बैल की इस जोड़ी को पीट रहा है। राजा ने अपना धनुष तानकर उस पुरुष को सावधान करते हुए कहा कि तू वध के योग्य है। बैल तथा गाय को धैर्य दिलाते हुए राजा उस दुष्ट कसाई की तत्क्षण वध करने को उद्धत हुए। राजा ने बैल से पूछा कि कमलतन्तु की तरह श्वेत वर्ण के शरीर वाले आप कोई देवता लगते हैं।आपके तीन पैर किसने काटे ? पाण्डवकुल के इस राज्य में इस तरह का अत्याचार करने वाले को उचित दण्ड दूँगा। बैल ने राजा का सम्मान करते हुए कहा -

केचिद् विकल्पवसना आहु: आत्मानम्-आत्मन:।
दैवमन्ये परे कर्म स्वभावमपरे प्रभुम्।।1।17।19।।
अप्रतर्क्यात्-निर्देश्यादिति केष्वपि निश्चय:।
अत्रानुरूपं राजर्षे विमृश स्वमनीषया।।1।17।20।।

क्लेश का कारण स्वयं जीव होता है या उसका कर्म या स्वाभाव यह कहना कठिन है। कुछ ईश्वर को भी दोष लगाते हैं। दु:ख का कारण तर्क से नहीं जाना सकता और न वाणी से उसका वर्णन किया जा सकता है। राजन्आप स्वयं इसको अपनी बुद्धि से विचार कर लीजिए।ऐसा सुन राजा ने बैल रूपी धर्म की प्रशंसा की। किसी का दोष बताना भी पापप्रद होता है। ध्यातव्य है कि धर्म ने कसाई को दोष नहीं दिया।

अथवा देवमायया नूनं गतिरगोचरा।
चेतसो वचश्चापि भूतानामिति निश्चय:।।1।17।23।।
तप: शौचं दया सत्यमिति पादा: कृते कृता:।
अधर्म-अंशैस्त्रयो भग्ना: स्मय-सङ्ग-मदै: तव।।1।17।24।।

जीव मन या वाणी से प्रभु की माया के स्वरूप को नहीं जान सकता। सत्ययुग के तप, शौच, दया और सत्य के चार चरणों में से वर्तमान में गर्व, नारी-आसक्ति एवं मद्यपान के नशा रूपी अधर्म के कारण आपके तीन चरण भग्न हो गये। सत्य वाला मात्र चौथा चरण ही बचा है। भागवत 12।3।17। तथा 12।3।20 से धर्म के चरण एवं अधर्म के चार चरण के कारण क्षीण होते धर्म के चरणों के वर्णन में थोड़ी भिन्नता है।

ये गौ माता के रूप में पृथ्वी भगवान्के समस्त चरणचिह्नों के अलंकार से रहित होकर अपने दुर्भाग्य पर रो रही हैं।राजा ने तलवार खींच कर उस छद्म राजवेषधारी कसाई को मारने दौड़े। उस दुष्ट ने अपना राजवेष फेंक दिया ओर राजा के चरणों में गिर पड़ा। राजा ने अपने राज्य से उसे बाहर जाने का आदेश दिया। कसाई ने कहा कि जहाँ कहीं भी जाता हूँ आपके धनुषबाण चढ़ाये देखकर भयभीत रहता हूँ। कृपा कर आप मेरे रहने के स्थान बतायें। छद्मवेष में वह कलियुग था और राजा ने उसके रहने के चार स्थान दिये - द्यूत, मद्यपान, स्त्री-संग और हिंसा। उसके एक स्थान और मांगने पर राजा ने उसे स्वर्ण यानी धन में रहने का भी स्थान दे दिया। राजा ने धर्म के तपस्या, शौच तथा दया रूपी तीन भग्न चरणों को पुन: स्वस्थ कर दिया।यद्यपि भगवान्श्रीकृष्ण के परमधाम जाने के बाद कलि का आगमन हो गया था परन्तु परीक्षित के जीवन काल तक उसका प्रभाव नहीं पड़ा था। शौनकादि ने सूत जी से भगवान्कृष्ण की विस्तारपूर्वक लीलाकथा सुनाने का अनुरोध किया।

न-उत्तमश्लोक-वार्तानां जुषतां तत्कथामृतम्।
स्यात्सम्भ्रमो-अन्तकालेऽपि स्मरतां तत्पदाम्बुजम्।।1।18।4।।
या या: कथा भगवत: कथनीय-उरुकर्मण:।
गुणकर्माश्रया: पुम्भि: संसेव्यास्ता बुभूषुभि:।।1।18।10।।

भगवान्के कथा-श्रवण तथा गाने से उनके चरणकमल का स्मरण अन्त तक बना रहता है। भगवान्जो भी लीला करते रहते हैं वे सर्वदा कीर्तन के योग्य हैं। कल्याणकामी जनों को इसका सदैव सेवन करना चाहिए।

कर्मणि-अस्मिन्-अनाश्वासे धूमधूम्रात्मनां भवान्।
आपाययति गोविन्द-पादपद्मासवं मधु। ।1।18।12। ।

शौनकादि ने कहा कि यज्ञ करते-करते उसके धुएँ से हमलोगों का शरीर काला हो गया परन्तु उसका क्या फल मिलेगा निश्चित नहीं है। परन्तु हे सूत जी ! गोविन्द के चरणामृत से आप हमलोगों सद्य: आनन्दित कर रहे हैं।

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गि-सङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिष:। ।1।18।13। ।
को नाम तृप्येद्रसवित्कथायां महत्तम-एकान्त-परायणस्य।
नान्तं गुणानाम-गुणस्य जग्मु: योश्वरा ये भव-पाद्म-मुख्या:। ।1।18।14। ।

क्षणमात्र की सत्संगति के सामने स्वर्ग तथा मोक्ष भी तुच्छ हैं।सांसारिक भोग को कौन पूछे? गुणातीत भगवान्के अनन्त गुणों को शिव तथा ब्रह्मा आदि भी जान नहीं कर पाते। लीलाकथा से भक्त कभी तृप्त नहीं होते।

अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हास्म वृद्ध-अनुवृत्त्यापि विलोमजाता:।
दौष्कुल्यम्-आधिं विधुनोति शीघ्रं महत्तमानाम्-अभिधानयोग:। ।1।18।18। ।
एतावतालं ननु सूचितेन गुणैरसाम्यानतिशायनस्य।
हित्वेतरान्प्रार्थयतो विभूतिर्यस्याङ्घ्रिरेणुं जुषतेऽनभीप्सो:। ।1।18।20। ।

सूत जी कहते हैं कि मेरा नीचकुल में जन्म होने के सारे अवगुण सन्तों-ऋषियों की वार्ता से नष्ट हो गये और आज मेरा जन्म सफल हो गया। यह निश्चित हो गया है कि भगवान्के अनन्तगुण हैं।जिस लक्ष्मी जी की कृपा के लिए अन्यदेवता तरसते रहते हैं वही लक्ष्मी जी भगवान् के चरणरज की सेवा में लगाी रहती हैं।

अथापि यत्पाद-नख-अवसृष्टं जगद्-विरिञ्च-उपहृत-अर्हण-अम्भ:।
स-ईशं पुनात्यन्यतमो मुकुन्दात् को नाम लोके भगवत्-पद-अर्थ:। ।1।18।21। ।

भगवान् के चरण को जब ब्रह्मा ने धोया तब भगवान्मुकुन्द के चरणनख के स्पर्श का चरणोदक शंकर एवं समस्त जगत को पवित्र करने वाली गंगा के रूप में अवतरित हुआ। भगवान्श्रीकृष्ण को छोड़कर आज कोई अन्य परमश्रेष्ठ भगवान्के नाम से कैसे समझा जा सकता है?

एक बार राजा परीक्षित वन के रास्ते प्यासे लौट रहे थे। एक आश्रम देख अन्दर जाकर जल मांगे परन्तु ध्यानस्थ शमीक नामके ऋषि से कुछ उत्तर न मिला। वे अपने को उपेक्षित महसूस कर प्यास एवं भूख से व्याकुल क्रोधावेश में लौट चले। पास में पड़े एक मरे साँप को अपने धनुष की नोक से उठाकर ध्यानस्थ ऋषि के गले में डाल दिया। इस तरह का अशोभनीय कार्य वे पहले कभी नहीं किये थे इसलिए अपने इस व्यवहार के लिए क्षुब्ध स्थिति में राजधानी लौट गये। ऋषि का पुत्र श्रृंगी बहुत तेजस्वी था। ऋषिकुमारों के साथ खेलते हुए उसने अपने पिता के साथ राजा के दुर्व्यहार के बारे में सुना और क्रोध में उसने राजा को शाप दे डाला कि सातवें दिन राजा तक्षक के डसने से मर जायेगा। आश्रम पर आकर पिता के सामने वह जोर से रोने लगा। उसकी चीख से पिता का ध्यान टूटा। जब ऋषिकुमार श्रृंगी ने सब हाल अपने पिता शमीक को सुनाया तब वे उसे डाँटते हुए बोले, “इतनी सी बात

के लिए भगवान्‌के परमप्रिय एवं अनेकों अश्वमेध यज्ञ करने वाले सम्राट्राजर्षि को तू ने इतना बड़ा शाप दे डाला। भूखे-प्यासे राजा सम्मान के पात्र थे न कि शाप के।"

धर्मपालो नरपतिः स तु सम्राड् बृहत्-श्रवाः।

साक्षात्-महाभागवतो राजर्षिः हयमेधयाट्।

क्षुत्-तृट्-श्रमयुतो दीनो न-एव-अस्मत्-शापमर्हति।।1।18।46।।

महात्मागण अपनी सहिष्णुता के कारण ही पूजनीय होते हैं।जीवन के दुःख-सुख से वे व्यथित या हर्षित नहीं होते। वे आत्मनिष्ठ होकर त्रिगुणों से अप्रभावित रहते हैं।

प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वन्देषु योजिताः।

न व्यथन्ति न हृष्यन्ति यत आत्माऽगुणाश्रयः।।1।18।50।।

राजा परीक्षित् स्वयं अपने अशोभनीय व्यवहार के लिए पश्चात्ताप कर रहे थे। राजधानी पहुँच कर वे इसी चिन्ता में निमग्न थे कि तक्षक के डसने से मृत्यु के शाप की सूचना उन्हें मिली। वे सहसा वैराग्य से ओतप्रोत हो गये। सोचने लगे इस आसक्ति के जीवन से मुक्ति मिली। राज्याधिकार अपने पुत्र को देकर आमरण अनशन का व्रत ले वे गंगा किनारे चले गये।

या वै लसत्-श्रीतुलसी-विमिश्र-कृष्णाङ्घ्रि-रेणु-अभ्यधिक-अम्बुनेत्री।

पुनाति लोकान्-उभयत्र स-ईशान्कस्तां न सेवेत-मरिष्यमाणः।।1।19।6।।

तत्रोपजग्मुः -भुवनं पुनाना महानुभावा मुनयः सशिष्याः।

प्रायेण तीर्थ-अभिगम-अपदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः।।1।19।8।।

गंगा जल भगवान्श्रीकृष्ण के चरणरज तथा उनके श्रीचरण की तुलसी के सुगंध से परिपूर्ण है। कौन मरणासन्न पुरुष समस्त लोकों को पवित्र करने वाली इस गंगा जी का सेवन नहीं करेगा। तीर्थों को भी पवित्र करने वाले समस्त जगत को पवित्र करते हुए अनेकानेक महान ऋषि-मुनि अपने शिष्यों के साथ वहाँ आ गये।

अत्रिः वसिष्ठः च्यवनः शरद्वान्-अरिष्टनेमि-भृगुः अंगिराः च।

पराशरो-गाधिसुतोऽथराम उतथ्य इन्द्रप्रमद-इध्मवाहौ।।1।19।9।।

मेधातिथिः देवल आर्ष्टिषेणो भारद्वाजो गौतमः पिप्लादः ।

मैत्रेय और्वः कवषः कुम्भयोनिः द्वैपायनो भगवान्नारदः च।।1।19।10।।

अत्रि, वसिष्ठ आदि के साथ पराशर, विश्वामित्र, अगस्त्य, वेदव्यास तथा नारदजी भी पधारे।

अन्येच देवर्षि-ब्रह्मऋषिवर्याः राजर्षिवर्या अरुणादयः च।

नानार्षेयप्रवरान् समेतान् अभियर्च्य राजा शिरसा ववन्दे।।1।19।11।।

राजा परीक्षित ने सभी समागत जनों का शिर झुकाकर स्वागत किया।तक्षक के विष की चिन्ता से निश्चिन्त एवं निर्भ य राजा ने सभी मुनियों से भगवान विष्णु की गाथा गाने का निवेदन किया ।

तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा गङ्गा च देवी धृतचित्तमीशे।

द्विजोपसृष्टः कुहकः तक्षको वा दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः।। 1।19।15।।

भगवान्में राजा की दृढ़ भक्ति की प्रशंसा करते हुए मुनियोंने उन्हें आश्वासन दिया कि जब तक राजा शरीर छोड़कर परमधाम को नहीं चले जाते वे सब उपस्थित रहते हुए भगवान्की गाथा गाते रहेंगे।

पुनश्च भूयाद्भगवति-अनन्ते रतिः प्रसङ्गश्च तदाश्रयेषु।

महत्सु यां यामुपयामि सृष्टिं मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः।।1।19।16।।

सभी ऋषियों के चरणों में यही बार-बार प्रार्थना है कि जहाँ कहीं भी मेरा जन्म हो भगवान्अनन्त में प्रेम बना रहे। उनके भक्तों एवं सभी प्राणियों में मेरा सुहृत्भाव रहे।

सर्वे वयं तावत्-इह-आस्महेऽद्य कलेवरं यावदसौ विहाय।

लोकं परं विरजस्कं विशोकं यास्यति-अयं भागवत-प्रधानः।। 1।19।21 ।।

जब राजा मुनि जनों से अपनी जिज्ञासा निवेदन करने लगे तब सहसा वहाँ श्रीव्यासजी के वरदपुत्र सुन्दर सुकुमार सोलहवर्षीय श्रीशुकदेव मुनि का आगमन हुआ।अपने आसन से उठकर सभी मुनिगणों ने उनका स्वागत किया।

तत्र अभवत् भगवान् व्यासपुत्रो यदृच्छया गाम्-अटमानो अनपेक्षः ।

अलक्ष्यलिंगो निजलाभ-तुष्टो वृतः च बालैः अवधूत वेषः।।1।19।25।।

तंद्वयष्टवर्षं सुकुमार-पाद-कर उरु बाहु-अंस-कपोलगात्रम्।

चारु-आयत-अक्ष-उन्नस-तुल्यकर्ण सुभ्रु-आननं कम्बु-सुजात-कण्ठम्।।1।19।26।।

निगूढ-जत्रुं पृथुतुङ्ग-वक्षसम्-आवर्तनाभिं वलि-वल्गु-उदरं च।

दिगम्बरं वक्त्र-विकीर्णकेशं प्रलम्बबाहुं सु-अमर-उत्तम-आभम्।।1।19।27।।

भगवान्कृष्ण की तरह आकर्षक स्वरूप वाले शुकदेव जी के कण्ठ का आधार मोटा, विशाल वक्षस्थल, गहरी नाभि, निर्वस्त्र -दिगम्बर, फैले हुए बाल एवं वे आजानबाहु थे।

श्यामं सदा-अपीच्य-वयोऽङ्गलक्ष्म्या स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरस्मितेन।

प्रत्युत्थितास्ते मुनयः स्वासनेभ्यः तत्-लक्षणज्ञा अपि-गूढवर्चसम्।।1।19।28।।

नारियों को मनमोहनेवाले भगवान्जैसा श्यामवर्ण वाले शुकदेव जी का तेज राख से छिपे हुए की अग्नि की तरह थी। वे असाधारण लक्षणों से सम्पन्न थे। सभी मुनियों ने खड़े होकर उनका अभिनन्दन किया।

स संवृतः तत्र महान्महीयसां ब्रह्मर्षि-राजर्षि-देवर्षि-संघैः ।

व्यरोचत-अलं भगवान्यथा इन्दुः-ग्रह-ऋक्ष-तारानिकरैः परीतः ।।1।19।30।।

भगवान् शुकदेव जी सभी महान ऋषियों से घिरे नक्षत्रों एवं तारों से घिरे चन्द्रमा के समान शोभायमान होने लगे।

येषां संस्मरणात्पुंसां सद्यः शुद्ध्यन्ति वै गृहाः।

किं पुनर्दर्शन-स्पर्श-पाद-शौच-आसनादिभिः।।1।19।33।।

अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम्।

पुरुषस्य- इह यत्कार्यं म्रियमाणस्य-सर्वथा। 1।19।37।।

यत् श्रोतव्यं अथो जप्यं यत्कर्तव्यं नृभिः प्रभो।

स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम्।1।19।38।।

नूनं भगवतो ब्रह्मन्‌गृहेषु गृहमेधिनाम्।
न लक्ष्यते हि-अवस्थानम्-अपि गोदोहनं क्वचित्।।1।19।39।।

राजा ने श्रीशुकदेव मुनि से संपूर्ण मानव समुदाय के साथ-साथ विशेषरूप से शीघ्र मरणासन्न व्यक्ति के कल्याण हेतु विधि-निषेध के बारे में जानकारी की जिज्ञासा प्रकट की। किनकी कथा, किनके नाम जप, स्मरण एवं भजन से कल्याण सम्भव है। जितनी देर गाय दुही जाती है उतनी देर भी आप लोगों के घर में नहीं टिकते। आपका दर्श न अत्यन्त दुर्लभ है। इन दो प्रश्नों के समाधान हेतु श्रीशुकदेव जी ने भागवत कथा का शुभारम्भ किया।

।। पहला स्कन्ध पूरा हुआ ।।

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध 2

वन्दउँ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

2।1 उपासना एवं भगवान्‌का विराट्स्वरूप

इस स्कन्ध के अध्याय तीन तक शुकदेव जी राजा को भगवान्‌की भक्ति की महिमा के साथ उनके दिव्य स्वरूप का ध्यान करने की सम्यक् विधि बतलाते हैं। इसके उपरान्त राजा परीक्षित ने भगवान्‌के विभिन्न लीलावतारों एवं सृष्टि की रचना के बारे में जानने की जिज्ञासा की। शुकदेव जी मुख्य कथा का शुभारम्भ इसी प्रश्न से करते हैं। कथारम्भ में अध्याय 4 में मंगलाचरण करते हुए कथा पूरी करने हेतु भगवान्‌का आशीर्वाद माँगते हैं।

वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितं नृप।
आत्मवित्सम्मतः पुसां श्रोतव्यादिषु यः परः।।2।1।1।।

शुकदेव जी ने राजा को बताया कि मानव हित का उत्तम उपाय है भगवान्‌की लीलाकथा सुनना एवं कीर्तन करना। संसार के मोह में आदमी सावधान होता नहीं और घर-परिवार में लगा रहता है।

तस्माद् भारत सर्वात्मा भगवानीश्वरो हरिः।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यः चे-इच्छता-भयम्।।2।1।5।।
एतावान् सांख्य-योगाभ्यां स्वधर्म-परिनिष्ठया।
जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः।।2।1।6।।

भगवान् को प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है उनकी लीला का श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण। इस देह का इतना लाभ है कि सांसारिक पदार्थ का अपनी आत्मा से सम्बन्ध का ज्ञान, नारायण की भक्ति और धर्मनिष्ठा से ऐसा बने कि अंतिम समय में भगवान्‌की स्मृति बनी रहे।

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।
अधीतवान् द्वापरा-आदौ पितुः द्वैपायनात्-अहम्।।2।1।8।।
परिनिष्ठतोऽपि नैगुर्ण्य उत्तमश्लोक-लीलया।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्।।2।1।9।।

मैंने यह भागवत् अपने पिता व्यास जी से द्वापर के अन्त में पढ़ा। इस कथा के स्मरण में मन मगन रहता है।

तदहं तेऽभिधास्यामि महापौरुषिको भवान्।
यस्य श्रद्दतामाशु स्यान्मुकुन्दे मतिः सती।।2।1।10।।

आपका मन श्रद्धा से भगवान् में स्थित है अतः यह कथा आपको सुनाऊँगा।

एतत्-निर्विद्यमानानाम्-इच्छताम्-अकुतोभयम्।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नाम-अनुकीर्तनम्।।2।1।11।।

हरिनाम का कीर्तन करना ही मुनियों का सन्देश है। इससे संसार का भय दूर हो जाता है।

किं प्रमत्तस्य बहुभि: परोक्षै: हायनै: इह।
वरं मुहूर्तं विदितं घटेत श्रेयसे यत:।2।1।12।।
खट्वाङ्गो नाम राजर्षि: ज्ञात्वा-इयत्ताम्-इहायुष:।
मुहूर्तात्-सर्वम्-उत्सृज्य गतवान्-अभयं हरिम्।।2।1।13।।
तव-अपि-ऐतर्हि कौरव्य सप्ताहं जीवित-अवधि:।
उपकल्पय तत्सर्वं तावत्-यत्-साम्परायिकम्।।2।1।14।

जीवन का एक मुहूर्त भी भगवान्के चरणों को स्मरण में लगाना श्रेयस्कर है। राजर्षि खट्वाङ्ग ने जीवन के अंतिम मुहूर्त में भगवान्को स्मरण करते हुए अभयपद प्राप्त किया। आपका जीवन अभी सात दिन का है जो भगवान् को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है। अंत में घवरायें नहीं। अष्टांग योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, पत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि के माध्यम से भगवान्के स्वरूप के किसी अंग पर मन स्थित करें।

मनो निर्विषयं युक्त्वा तत: किञ्चन न स्मरेत्।
पदं तत्परमं विष्णोर्मनो यत्र प्रसीदति।।2।1।19।।

तत्पश्चात् शुकदेव जी ने भगवान्के विराट्स्वरूप का विस्तार से वर्णन किया।

पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम्।
महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे।।2।1।26।।
ब्रह्माननं क्षत्रभुजो महात्मा वित्-उरु: अङ्घ्रिश्रित-कृष्णवर्ण:।
नाना-अभिधा-अभीज्यगण-उपपन्नो द्रव्यात्मक: कर्म वितानयोग:।।2।1।37।।

उनके विराट्स्वरूप के चरण पाताल-रसातल-महातल-तलातल आदि हैं। घुटने सुतल, जाँघें वितल-अतल, पेडू भूतल, नाभि आकाश, छाती स्वर्गलोक, गला महर्लोक, मुख जनलोक, ललाट तपोलोक, हजारों सिरवाला मस्तक सत्यलोक "**सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्ण: 2।1।28।।**", भुजायें देवगण, कान दिसायें, नाक देववैद्य अश्विनीकुमार, मुख की सुन्दरता प्रज्वलित अग्नि, नेत्र अन्तरिक्ष, दृष्टि सूर्य, पलकें रात-दिन, भ्रूविलास ब्रह्मलोक, तालु वरुण, जिह्वा रस, ब्रह्मरन्ध्र वेद, दाँत यमराज, मोहिनी मुस्कान माया, चितवन-कटाक्ष अनन्त सृष्टि, ऊपर का होठ लज्जा, नीचे का होठ लोभ, छाती धर्म, पीठ अधर्म, जनेन्द्रिय प्रजापति, अण्डकोश मित्रावरुण, कोख समुद्र, हड्डी पर्वत, नस-नाड़ी नदियाँ, रोम लता-वृक्ष, श्वास वायु, चाल काल-समय, सक्रियता सतोगुणादि, केस बादल, वस्त्र सन्ध्या, हृदय अव्यक्त प्रकृति, मन चन्द्रमा, चित्त महत्तत्व, अहंकार रुद्र, नख पशुगण, सृष्टि रचना कौशल पक्षियाँ, बुद्धि स्वायंभुव मनु, निवास मानव समुदाय, स्वर गन्धर्वादि, वीर्य दैत्य, विराट पुरुष के अवयवों का इसी तरह से शुकदेव जी ने विस्तार में वर्णन किया और अन्त में कहा कि ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजायें, वैश्य जंघा तथा शूद्र विराट्स्वरूप के चरण हैं। यज्ञादि भगवान्के कर्म हैं। जो अवयवादि की उपमा से विराट रूप को समझाया गया है उसका भाव है कि दिव्य साकार स्वरूप ही ध्यान की वस्तु हो सकती है। इस सन्दर्भ में स्कन्ध बारह का अध्याय ग्यारह (स्कन्ध **12।11**) द्रष्टव्य है जो विराट स्वरूप का ही पूरक है। स्कन्ध **12।11** में वैकुण्ठाधिपति भगवान्का नित्य साकार दिव्य स्वरूप के अंग, उपांग, आभूषणादि तथा पार्षदों को विराट स्वरूप के विभिन्न अवयवों के प्रतीक के रूप में

वर्णन किया गया है। अत: दिव्य साकार स्वरूप का ही ध्यान करना है और इसी से विराट स्वरूप को सुगमता से समझा जा सकता है।

स सर्व-धी-वृत्ति-अनुभूत-सर्व आत्मा यथा स्वप्न-जन-ईक्षित-एक:।

तं सत्यम्-आनन्दनिधिं भजेत नान्यत्र सज्जेद्यत आत्मपात:।।2।1।39।।

परीक्षित्! इस तरह के विराट स्वरूप की भावना करते हुए सत्यस्वरूप भगवान्का भजन करें। अन्य आसक्ति छोड़ दें। आसक्ति से ही व्यक्ति का पतन होता है।

2।2 भगवत् आराधना

सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा को भगवान्की आराधना से प्रलय के पूर्व की सृष्टि संरचना का यथावत ज्ञान हो गया। परन्तु वेदों की विधि ऐसी है कि प्राणी अनेकों कर्मो के कर्मकाण्ड के जाल में फंस जाता है।

एवं स्वचित्ते स्वत एव सिद्ध आत्मा प्रियोऽर्थो भगवान्-अनन्त:।

तं निर्वृतो नियतार्थो भजेत संसारहेतु-उपरम: च यत्र।।**2।2।6**।।

कस्तां त्वनादृत्य परानुचिन्तामृते पशूनसतीं नाम युञ्ज्यात्।

पश्यन्-जनं पतितं वैतरण्यां स्वकर्मजान्परितापान्-जुषाणम्।।।**2।2।7**।।

संसार से निवृत्ति का एकमात्र उपाय है भगवान्में चित्त लगाकर भजन करना। जब मनुष्य की बुद्धि पशु के समान हो जाती है तब वह संसार की वैतरणी को पार करनेवाले मंगलमय भगवत्स्वरूप से विमुख हो जाता है।

केचित् स्वदेहान्त: हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम्।

चतुर्भुजं कञ्ज-रथाङ्ग-शङ्ख-गदाधरं धारणया स्मरन्ति।।2।2।8।।

प्रसन्नवक्त्रं नलिन-आयतेक्षणं कदम्ब-किञ्जल्क-पिशङ्ग-वाससम्।

लसत्-महारत्न-हिरण्मय-अङ्गदं स्फुरत्-महारत्न-किरीट-कुण्डलम्।।2।2।9।।

उन्निद्र-हृत्पङ्कज-कर्णिकालये योगेश्वर-आस्थापित-पादपल्लवम्।

श्रीलक्ष्मणं कौस्तुभरत्न-कन्धरम्-अम्लान-लक्ष्म्या वनमालया-आचितम्।।2।2।10।।

विभूषितं मेखलय-आङ्गुलीयकै: महाधनै: नूपुर-कङ्कणादिभि:।

स्निग्ध-अमल-आकुञ्चित-नीलकुन्तलै: विरोचमान-आनन-हास-पेशलम्।।2।2।11।।

अदीन-लीला-हसितेक्षण-उल्लसत्भ्रूभङ्ग-संसूचित-भूरि-अनुग्रहम्।

ईक्षेत चिन्तामयम्-एनम्-ईश्वरं यावन्मनो धारणाय-अवतिष्ठते।।2।2।12।।

शुकदेव जी ने ध्यान के लक्ष्य भगवान्के स्वरूप का वर्णन किया। चक्र-शंख-गदा-कमल से युक्त चतुर्भुज स्वरूप, प्रसन्न मुखमंडल, कमल समान नयन का चितवन, कदम्ब के पुष्प के पराग के रंग का पीताम्बर, रत्नजड़ित बाजूबन्द, मुकुट, कुण्डल, हृदय के कमल की कर्णिकाओं पर विराजित भगवान्का चरणाविन्द, श्रीवत्स, कौस्तुभ, कभी न कुम्हलाने वाली वनमाला, करधनी, अंगुलियों में अंगूठी, श्रीचरणों में नूपुर, कंगन, चिकनी निर्मल नीली घुंघराली लटें, मन्द-मन्द मुस्कान से खिला हुआ मुखमंडल, लीलापूर्ण उन्मुक्त हास, भौंहे के संचालन तथा चितवन से भक्तों पर अनुग्रह की वर्षा करने वाले श्याम स्वरूप के एक-एक अंग पर क्रमश: ध्यान करे। बुद्धि शुद्ध होते ही ध्यान स्थिर होता है।

यावन्न जायेत परावरेऽस्मिन्विश्वेश्वरे द्रष्टरि भक्तियोगः।

तावत्स्थवीयः पुरुषस्य रूपं क्रियावसाने प्रयतः स्मरेत।।2।2।14।।

भगवान्दृश्य नहीं द्रष्टा हैं। अनन्य भक्तियुक्त प्रेम होने तक इस तरह से दिव्य स्वरूप का ध्यान करे।

परं पदं वैष्णवम्-आमनन्ति तद्यन्नेति न-इति-इति-अतत्-उत्सिसृक्षवः।

विसृज्य दौरात्म्यम्-अनन्य-सौहृदा हृदा-उपगुह्य-अर्हपदं पदे पदे।।2।2।18।।

सांसारिक वस्तुओं का **“यह नहीं - यह नहीं”** ऐसा सोंचकर त्याग करते हुए अन्ततः भगवान्के स्वरूप में लीन होते हैं। यही प्रेमपूर्ण ध्यान भगवान्विष्णु का परम पद है। शुकदेव जी ने विस्तार से सुषम्ना मार्ग का वर्णन किया। मणिपूर यानी नाभि चक्र से प्राण हृदय चक्र में, वहाँ से विशुद्ध चक्र कण्ठ में, आज्ञा चक्र भृकुटि के बीच में, सिर के सर्वोच्च भाग सहस्त्रार में तथा अन्ततः ब्रह्मरन्ध्र में प्राणवायु को ले जाकर शरीर छोड़े। योगी अर्चिमार्ग से अग्नि लोक होते क्रमशः मह- जन- तप- सत्य- ब्रह्म लोक जाता है।

एते सृती ते नृप वेदगीते त्वयाभिपृष्टे ह सनातने च।

ये वै पुरा ब्रह्मण आह पृष्ट आराधितो भगवान्वासुदेवः।।2।2।32।।

पूर्व में ब्रह्मा ने वासुदेव भगवान्की आराधना कर यही समझा था।

न ह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह।

वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत्।।2।2।33।।

संसार में भगवान्के भक्तियोग से ही कल्याण प्राप्त किया जा सकता है। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

तस्मात् सर्वात्मना राजन्हरिः सर्वत्र सर्वदा।

श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम्।।2।2।36।।

सभी परिस्थितियों में यथाशक्ति श्रीहरिगुण का ही श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण करे।

पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपुटेषु सम्भृतम्।

पुनन्ति ते विषय-विदूषित-आशयं ब्रजन्ति तच्चरण-सरोरुह-अन्तिकम्।।2।2।37।।

सन्तों द्वारा बाँटे गये कथामृत को कान से भर-भर कर पान करे। यह हृदय-विष को दूर कर श्रीहरि के चरणकमल में आश्रय प्रदान करता है।

2। 3 कामना पूर्ति के लिए अन्य देवों की पूजा से श्रीहरि की उपासना श्रेष्ठ

शुकदेव जी विभिन्न सांसारिक कामनाओं से भिन्न-भिन्न देवताओं की पूजा के बारे में बताते हुए कहते हैं।

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।

तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्।।2।3।10।।

चाहे निष्काम भाव या सकाम भाव से पूर्ण भक्ति के सहारे भगवान्की ही आराधना करे।

एतावानेव यजतामिह निःश्रेयसोदयः।

भगवति-अचलो भावो यद्भागवत-संगतः।।2।3।11।।

भगवान् में अविचल प्रेम ही कल्याणप्रद है जो भक्तों की संगति से प्राप्त करे ।

ज्ञानं यदा प्रतिनिवृत्त-गुणोर्मि-चक्रमात्मप्रसाद उत यत्र गुणेषु-असङ्ग:।
कैवल्य-सम्मत-पथ: -तु-अथ भक्तियोग: को निर्वृतो हरिकथासु रतिं न कुर्यात्।।2।3।12।।

भगवत् भक्तों से भगवान्‌की लीलाकथा सुनकर इन्द्रियों की आसक्ति से छुटकारा मिलता है। शौनक जी ने सूत जी से राजा के अन्य प्रश्नों तथा शुकदेव जी द्वारा उनके समाधान की बात विस्तार से सुनने की जिज्ञासा की। शौनक जी ने कहा -

स वै भागवतो राजा पाण्डवेयो महारथ:।
बालक्रीडनकै: क्रीडन् कृष्णक्रीडां य आददे।।2।3।15।।
वैयासकिश्च भगवान् वासुदेवपरायण:।
उरुगाय-गुणोदारा: सतां स्युर्हि समागमे।।2।3।16।।

राजा तो बचपन में भगवान् की गुड़िया से खेलते थे।शुकदेव जी बालकाल से ही भगवत्परायण थे। इन दोनों के समागम में जो भगवत्कथा की ही चर्चा हुई होगी वह सब सुनायें। शौनक जी ने जीवन की निरर्थकता को बताते हुए कहा -

आयुर्हरति वै पुंसाम्-उद्यन्-अस्तं च यन्नसौ।
तस्यर्ते यत्क्षणो नीत उत्तमश्लोकवार्तया।।2।3।17।।
तरव: किं न जीवन्ति भस्त्रा: किं न श्वसन्त्युत।
न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामपशवोऽपरे।।2।3।18।।
श्व-विट्-वराह-उष्ट्र-खरै: संस्तुत: पुरुष: पशु:।
न यत्कर्ण-पथोपेतो जातु नाम गदाग्रज:।।2।3।19।।

चूँकि सूर्य रोज व्यक्ति की आयु क्षीण कर रहे हैं।अत: भगवान्‌के भजन से रहित समय व्यर्थ ही बीत रहा है। वृक्ष भी जीवित रहते हैं, लोहार की धौंकनी भी साँस लेती है, पशुगण भी मनुष्य की तरह मैथुन तथा भोजन रत रहते हैं। जिसके कान में भगवान्‌की कथा नहीं जाती वह कुत्ता, सूअर, ऊँट तथा गदहा से भी गया गुजरा है।

बिले बत-उरुक्रम-विक्रमान्ये न श्रृण्वत: कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वासती दार्दुरिका-इव सूत न च-उपगायति-उरुगाय-गाथा:।।2।3।20।।
भार: परं पट्टकिरीट-जुष्टम्-अपि-उत्तमाङ्गं न नमेत्-मुकुन्दम्।
शावौ करौ नो कुरुत: सपर्या हरे: लसत्-काञ्चन-कङ्कणौ वा।।2।3।21।।
बर्हायिते ते नयने नराणां लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये।
पादौ नृणां तौ द्रुम-जन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरे: यौ।।2।3।22।।

कथा नहीं सुनने वाले कान बिल के समान हैं, लीलागान नहीं करनेवाली जीभ मेढ़क की तरह टर्र-टर्र करने वाली है, श्रीचरणों पर नहीं झुकनेवाले सिर बोझ हैं, सेवा-पूजा नहीं करने वाले सोने के कंगन वाले हाथ मुर्दे के हाथ हैं, तीर्थ तथा भगवान्‌की लीलाकथा से जुड़े स्थान के दर्शन नहीं करने वाली आँख मोरपंख के प्रतीक चिह्न मात्र हैं तथा पैर वृक्ष की तरह जड़वत हैं।

जीवन्-शवो भागवत-अङ्घ्रिरेणुं न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु।

श्रीविष्णुपद्या मनुजः तुलस्याः श्वसन्-शवो यस्तु न वेद गन्धम्। ।2।3।23। ।

संतचरणों की धूल सिर नहीं लगी, भगवत्श्रीचरणों की तुलसी की सुगन्ध नहीं मिली - ऐसे मनुष्य शवमात्र हैं।

2। 4 शुकदेव जी द्वारा कथारम्भ का मंगलाचरण

इस अध्याय से राजा परीक्षित प्रश्न करते हैं और शुकदेव जी कथा का शुभारम्भ करते हैं। इस अध्याय के श्लोक **12** से **24** तक शुकदेव जी का मंगलाचरण है।स्कन्ध **1** के अध्याय **1** के पहले तीन श्लोक व्यास जी के मंगलाचरण हैं। सांसारिक कामनाहीन राजा परीक्षित ने भगवान्की लीला की महिमा जानने की जिज्ञासा की।

यथा गोपायति विभुर्यथा संयच्छते पुनः।

यां यां शक्तिमुपाश्रित्य पुरुशक्तिः परः पुमान्।

आत्मानं क्रीडयन्क्रीडन्करोति विकरोति च। ।2।4।7। ।

कौन सी शक्तियों का सहारा लेकर श्रीहरि सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। वे स्वयं ही खिलौना बनकर स्वयं ही उससे खेलते हैं। उनके अवतारों का तात्पर्य बतायें। ऐसा सुन कथारम्भ हेतु शुकदेव जी भगवान्के गुणों का स्मरण करने लगे। श्लोक **12** से **24** तक उनका मंगलाचरण है। शुकदेव जी ने भगवान्की विभिन्न लीलाओं से जुड़े महिमा का स्मरण कर बार-बार उनको नमस्कार किया तथा उनकी कृपा-वर्षा की याचना की।

नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भव-स्थान-निरोध-लीलया।

गृहीत-शक्ति-त्रितयाय देहिनाम-अन्तर्भवाय-अनुपलक्ष्य-वर्त्मने। ।2।4।12। ।

भूयो नमः सद्वृजिन-छिदे-असताम्-असम्भवाय-अखिल-सत्त्वमूर्तये।

पुंसां पुनः पारमहंस्य आश्रमे व्यवस्थितानाम्-अनुमृग्य-दाशुषे। ।2।4।13। ।

तीनों गुणों का सहारा लेकर सृष्टि करने वाले प्रभु को मेरा प्रणाम। सबके हृदयस्थ श्रीहरि की गति अचिन्त्य है। सन्तों के कष्ट निवारण तथा अभक्तों की आसुरी प्रवृति को रोककर मोक्ष एवं परमहंसों को वांछित फल देनेवाले श्रीहरि को मेरा बार-बार प्रणाम।

नमो नमस्तेऽस्तु ऋषभाय सात्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम्।

निरस्त-साम्य-अतिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः। ।2।4।14। ।

कुछ हरिकथाकार इस श्लोक से शुकदेव जी का राधा जी को नमस्कार करने का भाव बताते हैं। भक्तवत्सल भगवान् अपने धाम में सर्व ऐश्वर्य एवं प्रेमस्वरूप राधा जी के साथ नित्य रमन करते हैं।

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्।

लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः। ।2।4।15। ।

विचक्षणा यच्चरणोपसादनात्सङ्गं व्युदस्य-उभयतो-अन्तरात्मनः।

विन्दन्ति हि ब्रह्मगतिं गतक्लमाः तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः। ।2।4।16। ।

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः।

क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः। ।2।4।17। ।

पुण्यकीर्ति भगवान् को नमस्कार है जिनका कीर्तन, ,स्मरण, दर्शन, वन्दन,श्रवण, तथा पूजन सभी पापों का तत्क्षण नाश करता है। जिनके चरणकमल का आश्रय इसलोक तथा परलोक की आसक्ति का नाश करता है उस मंगलकीर्ति भगवान् को नमस्कार है। तपस्वी, दानी आदि का तबतक कल्याण नहीं जबतक आपके चरणों के शरणागत नहीं होते। कल्याणकीर्ति भगवान्को बार-बार नमस्कार है।

किरात-हूण-आन्ध्र-पुलिन्द-पुल्कसा आभीर-कङ्का यवना: खसादय:।

येऽन्ये च पापा यत्-उपाश्रय-आश्रया: शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नम:। ।2।4।18। ।

स एष आत्मा-आत्मवताम्-अधीश्वर: त्रयीमयो धर्ममय: तपोमय:।

गत-व्यलीकै: अज-शङ्करादिभि: वितर्क्य-लिङ्गो भगवान् प्रसदिताम्। ।2।4।19। ।

शरणागतदाता प्रभु को नमस्कार है जिनके शरणागत भक्तों के शरण लेने वाले किरात, यवन आदि पापमय समुदाय के लोग शुद्ध हो जाते हैं। ज्ञानियों के आत्मा, भक्तों के स्वामी, कर्मकाण्डियों के वेदमूर्ति, धार्मिकों के धर्ममूर्ति तपस्यिों के तप:रूप भगवान्को ब्रह्मा तथा शंकर आदि भी चिन्तन करते हुए आश्चर्यचकित रहते हैं। प्रभु मुझपर अनुग्रह की वर्षा करें।

श्रिय: पति: यज्ञपति: प्रजापति: धियां पति: लोकपति: धरापति:।

पति: गतिश्च-अन्धक-वृष्णि-सात्वतां प्रसीदतां मे भगवान्सतां पतिा। ।2।4।20। ।

यत्-अङ्घ्रि-अभिध्यान-समाधि-धौतया धिया-अनुपश्यन्ति हि तत्त्वमात्मन:।

वदन्ति चैतत्कवयो यथारुचं स मे मुकुन्दो भगवान् प्रसीदताम्। ।2।4।21। ।

लक्ष्मीपति, यज्ञपति, प्रजापति, अन्तर्यामी लोकपति एवं धरादेवी के स्वामी मुझ पर प्रसन्न हों जिनसे यदुवंश धन्य हुआ है। योगी जिनके चरणकमल के चिन्तन से ध्यान शुद्ध करते हैं तथा आत्मसाक्षात्कार करके उनके स्वरूप का अपनी मति से वर्णन करते हैं वही भगवान् मुझपर प्रसन्न हों।

प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वता-अजस्य सतीं स्मृतिं हृदि।

स्वलक्षणा प्रादुरभूत्किलास्यत: स मे ऋषीणाम्-ऋषभ: प्रसीदताम्। ।2।4।22। ।

भूतै: र्महद्भि: य इमा: पुरो विभु: निर्माय शेते यत्-अमूषु पूरुष:।

भुङ्क्ते गुणान्षोडश षोडशात्मक: सोऽलङ्कृषीष्ट भगवान् वचांसि मे।23।

ब्रह्मा को पूर्वकल्पित सृष्टि का स्मरण कराने के लिए ज्ञान की अधिष्ठात्री सरस्वती देवी को अभिप्रेरित कर उनके मुख से वेद को प्रकट कराने वाले भगवान्प्रसन्न हो मेरे हृदय में प्रकट हों। पंचभूतों से जीव के शरीर का निर्माण कर भगवान्उसमें शयन करते हैं। पाँच-पाँच कर्मेन्द्रियाँ-ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच प्राण एवं मन से विलास करने वाले भगवान्मेरी वाणी को अपने गुणों से अलंकृत कर दें।

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय वेधसे।

पपु: ज्ञानम्-अयं सौम्या यत्-मुखाम्बुरुह-आसवम्। ।2।4।24।

अन्त में वासुदेव के अवतार अपने पिता वेदव्यास जी की शुकदेव जी वन्दना करते हैं जिनके मुखारविन्द से भगवद्लीला-कथामृत प्रवाहित हुआ।

एतत्-एव-आत्मभू राजन् नारदाय विपृच्छते।

वेदगर्भोऽभ्यधात् साक्षाद् यदाह हरिरात्मन:।।2।4।25।।

शुकदेव जी ने कहा कि ब्रह्मा जी से एकबार नारद जी ने इसी तरह का प्रश्न किया था। उसी प्रसंग में ब्रह्मा जी के मुख से निकली कथा का बखान करता हूँ।

2। 5 सृष्टि वर्णन

यहाँ से इस स्कन्ध की समूची कथा नारद - ब्रह्मा सम्बाद के रूप में है जो शुकदेव जी राजा को सुनाते हैं।

येन स्वरोचिषा विश्वं रोचितं रोचयाम्यहम्।

यथार्को अग्नि: यथा सोमो यथा-ऋक्ष-ग्रहतारका:।।2।5।11।।

तस्मै नमो भगवतो वासुदेवाय धीमहि ।

यन्मायया दुर्जया मां ब्रुवन्ति जगद्गुरुम्।।2।5।12।।

ब्रह्मा ने नारद से कहा - सूर्य, चन्द्र, अग्नि तथा तारे आदि की तरह मैं भी भगवान्से ही प्रकाशित होता हूँ।मैं उनको नमस्कार करता हूँ।उनकी विषम माया से मोहित होकर लोग मुझे भूलवश जगद्गुरु कहते हैं।

द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च।

वासुदेवात्परो ब्रह्मन्न चान्यो अर्थो अस्ति तत्त्वत:।।2।5।14।।

ब्रह्मा ने कहा कि हे नारद! सृष्टि के पाँच मूल द्रव्य क्षिति-जल-पावक-गगन-समीर, सनातन काल एवं व्यक्तिगत जीव का स्वभाव सब भगवान्वासुदेव स्वयं ही हैं।

नारायणपरा वेदा देवा नारायणाङ्गजा:।

नारायणपरा लोका नारायणपरा मखा:।।2।5।15।।

नारायणपरो योगी नारायणपर: तप:।

नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गति:।।2।5।16।।

नारायण ही सर्वश्रेष्ठ हैं। वे ही यज्ञ एवं भोक्ता हैं। तप, ज्ञान, वेदादि नारायण ही हैं। वे ही एकमात्र स्वामी हैं। समूची सृष्टि क्रमश: उनसे ही विकसित है। इन्द्रियाँ तथा पञ्चभूतादि उनकी परिकल्पना से ही उत्पन्न हैं। समूची विराट् स्वरूप सृष्टि वे स्वयं हैं।

कालं कर्म स्वभावं च मायेशो मायया स्वया।

आत्मन्यदृच्छया प्राप्तं विबुभूषु: उपाददे।।2।5।21।।

मायापति भगवान्ने स्वयं ही सनातन काल, समस्त जीवों के स्वभाव एवं उनके कर्म का सृजन किया।

न भारती मेऽङ्ग मृषोपलक्ष्यते न वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गति:।

न मे हृषीकाणि पतन्ति-असत्पथे यन्मे हृदा-औत्कण्ठ्यवता धृतो हरि:।।2।6।33।।

हे नारद! मैं प्रेम तथा उत्ससुक मन से भगवान्का स्मरण करते रहता हूँ। इससे मेरी वाणी न तो कभी असत्य होती हैं, मेरा मन कभी झूठा संकल्प नहीं करता तथा मेरी ईन्द्रियाँ मर्यादा का उल्लंघन नहीं करतीं।

2।6 ब्रह्मा जी ने भगवान्के विभिन्न चौबीस अवतारों का वर्णन किया

यहाँ स्कन्ध 2 के 24 अवतारों का उल्लेख ब्रह्मा जी द्वारा किया गया है जो उन्होंने नारद जी को बताया था। स्कन्ध 1 के अध्याय 3 में सूत जी ने भगवान् के 22 अवतारों का उल्लेख किया है। इसके 19 अवतार स्कन्ध 2 के अध्याय 7 के अवतार की सूची से मेल खाते हैं। अमृत के बँटवारा के लिए भगवान्का मोहिनी अवतार, नारद जी का अवतार तथा बलराम-कृष्ण को दो अलग-अलग अवतार स्कन्ध 2 के अध्याय 7 के अवतारों में नहीं है। यहाँ ब्रह्मा जी ने कुल 24 अवतारों का उल्लेख किया है जिसमें से 19 तो सूत जी द्वारा दिये गये स्कन्ध एक के अवतार हैं परन्तु पाँच जो अतिरिक्त अवतार हैं वे हैं ध्रुव, हयग्रीव, मनु, गजेन्द्र-मोक्ष एवं हंस का अवतार। सभी अवतारों का उसके कोष्ठक में भागवत का स्कन्ध एवं अध्याय का सन्दर्भ दिया गया है।

1।**यज्ञवराह** रूप में पृथ्वी का उद्धार।"**क्रौडीं तनुं सकल-यज्ञमयीम्-अनन्त:।2।7।1।**" भगवान्ने कौतुक के लिए वराह रूप बनाया।उनका समस्त शरीर यज्ञ के विभिन्न उपकरणों एवं सामग्रियों का प्रतीक था। (**3।13**)।

2।**अकूति** के गर्भ से **सुयज्ञ**। (**8।1**)

3।कर्दम देवहूति के पुत्र **कपिल**। (**3।24**)

4।**अत्रि से दत्तात्रेय**। "**यत्पाद-पङ्ज-पराग-पवित्रदेहा योग-ऋद्धिम्-आपु: उभयीं यदु-हैहय-आद्या: ।2।7।4।।**" भगवान्के चरणकमल की धूल से युद तथा हैहय आदि शुद्ध हुए। (**7।13**)

5।**सनक-सनन्दन**-सनातन-सनत्कुमार। (**3।12**)

6।**धर्मस्य दक्ष-दुहितरि-अजनिष्ट मूर्त्या नारायणो नर** इति स्वतप: प्रभाव:।

दृष्टवाऽऽत्मनो भगवतो नियमावलोपं देव्य: तु-अनङ्ग-पृतना घटितुं न शेकु:।।2।7।6।।

कामं दहन्ति कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या रोषं दहन्तमुत ते न दहन्त्यसह्यम्।

सोऽयं यदन्तरमलं प्रविशन्बिभेति काम: कथं नु पुनरस्य मन: श्रयेत।।2।7।7।।

दक्ष की कन्या मूर्ति से नर-नारायण। भगवान्ने इन्द्र की अप्सराओं का स्वभाव बदल दिया। शंकर ने क्रोध से कामदेव को जलाया परन्तु अपना क्रोध नहीं जला सके।नर-नारायण भगवान्के हृदय में प्रवेश से पहले ही क्रोध काँप उठता है। नर-नारायण ऋषि के रूप में भगवान्की अवतार-कथा का अन्य स्कन्धों में भी उल्लेख है उसका संकलन यहाँ विहंगम अवलोकन की सुविधा हेतु किया गया है।

स्कन्ध 1

धर्म की पत्नी मूर्ति से नर-नारायण के रूप में अवतार लेकर इन्द्रिय-संयम से कठिन तपस्या की है। "**तुर्ये धर्म -कला-सर्गे नर-नारायणौ-ऋषि। भूत्वा-आत्म-उपशम-उपेतम्-अकरोद्दुश्चरं तप:।।1।3।9।।**

स्कन्ध - 3

सोऽहं तत्-दर्शन-आह्लाद-वियोग-आर्तियुत: प्रभो।

गमिष्ये दयितं तस्य बदर्याश्रम-मण्डलम्।।3।4।21।।

यत्र नारायणो देवो नरश्च भगवान्-ऋषि:।

मृदु तीव्रं तपो दीर्घम्तेपाते लोकभावनौ।।**3।4।22**।।

स्कन्ध - 4

मूर्तिः सर्वगुणोत्पत्तिः नर-नारायणौ-ऋषि।। **4।1।52।।**
ययोः जन्मनि-अदः विश्वम्अभ्यनन्दत्-सुनिर्वृतम्।
मनांसि ककुभो वाताः प्रमेदुः सरितः अद्रयः।।**4।1।53।।**
दिव्यवाद्यन्त तूर्याणि पेतुः कुसुमवृष्ट्यः।
मुनयस्तुष्टुवस्तुष्टा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः।।**4।1।54।।**
नृत्यन्ति स्म स्त्रियो देव्य आसीत्परममङ्गलम्।
देवा ब्रह्मादयः सर्वे उपतस्थुरभिष्टवैः।। **4।1।55।।**

स्कन्ध - 5

विदित-अनुरागम्-आपौर-प्रकृति जनपदो राजा नाभिरात्मजं समयसेतुरक्षायाम-अभिषिच्य ब्राह्मणेषूपनिधाय सह मेरुदेव्या विशालायां प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन नरनारायणाख्यं भगवन्तं वासुदेवमुपासीनः कालेन तन्महिमानमवाप।।5।4।5।।

ऋषभदेव की प्रजा में लोकप्रियता देख राजा ने विधिवत उन्हें राजा के पद पर अभिषेक कराया तथा स्वयं अपनी पत्नी मेरुदेवी के साथ बदरीविशाल में जाकर वासुदेव स्वरूप नर-नारायण भगवान्की उपासना कर कालक्रम में परमपद प्राप्त किया।

भारतेऽपि वर्षे बगवान्नरनारायणाख्य आकल्प -अन्तम्-उपचित -धर्मज्ञानवैराग्य- ऐश्वर्य- उपशम - उपरम - आत्म - उपलम्भनम्-अनुग्रहाय - अनुकम्पयया - तपः अव्यक्तगतिः चरति।।5।19।9।।

दयावश भगवान्नर-नारायण के रूप में भारतवर्ष के वदरिकाश्रम में कल्पान्त तक तपस्या में लीन रहते हुए इन्द्रियनिग्रह के साथ धर्मादि का बोध कराते हुए अहंकार से मुक्तिकी शिक्षा देते हैं।

तं भगवान्-नारदो वर्णाश्रम- वतीभिः भारतीभिः प्रजाभिः भगवत्- प्रोक्ताभ्यां सांख्ययोगाभ्यां भगवत् - अनुभाव - उपवर्णनं सावर्णेः उपदेक्ष्यमानः परमभक्ति - भावेन - उपसरति इदं च - अभिगृणाति। **।5।19।10।।** परमभक्ति से भगवत् प्राप्ति की क्रिया को बताने वाला सांख्य योग की शिक्षा नारद जी ने सावर्णि मनु को दी जिससे कि वर्णाश्रम धर्मो का पालन करते हुए भगवद्भक्ति में दृढ़ता प्राप्त कर सकें। परमभागवत नारद जी द्वारा भगवान्नर-नारायण की सदैव उपासना में रत रहते वाला मन्त्र है -

ॐ नमो भगवते उपशमशीलाय - उपरत - अनात्म्याय नमो - अकिञ्चनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नम इति।।5।19।11।।

योऽसौ भगवति सर्वभूतात्मन्यनात्मनि - अनिरुक्तेऽनिलयने परमात्मनि वासुदेवेऽनन्यनिमित्त - भक्तियोगलक्षणो नानागतिनिमित्त - अविद्याग्रन्थि - रन्धेन - द्वारेण यदा हि महापुरुष- पुरुष- प्रसङ्गः।।5।19।20।।

स्कन्ध - 6

माम्-उग्रधर्मात्-अखिलात्प्रमादात्नारायणः पातु नरश्च हासात्।।।6।8।16।।

मारण-मोहन के घोर अभिचार एवं प्रमाद से ऋषि नारायण एवं अहंकार से नर ऋषि रक्षा करें। यह नारायण कवच का एक अंश है।

स्कन्ध - 7

ज्ञानं तत्एतत् अमलं दुरवापम्आह नारायणो नरसख: किल नारदाय।
एकान्तिनां भगवत: तत्अकिञ्चनानाम्पादारविन्द-रजसा-आप्लुत-देहिनां स्यात्।।7।6।27।।

प्रह्लाद जी अपने सहपाठियों को कहते हैं कि यह दुर्लभ निर्मल ज्ञान भगवान्नर-नारायण से पहले नारद मुनि को मिला था वही तुमलोगों को सुनाया हूँ। भगवान्के प्रेमी एवं अकिञ्चन सन्तों की धूल से शरीर चुपड़ने वाले को ही यह भागवत-धर्म प्राप्त हो सकता है।

नत्वा भगवतेऽजाय लोकानं धर्महेतवे।
वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायण-मुखात्श्रुतम्।।7।11।5।।
योऽवतीर्य-आत्मन: अंशेन दाक्षायण्यां तु धर्मत:।
लोकानां स्वस्तये-अध्यास्ते तपो बदरिकाश्रमे।।7।11।6।।

नारद जी ने राजा युधिष्ठर से कहा कि धर्म एवं दक्षपुत्री मूर्ति के द्वारा अपने अंश से अवतार लेकर भगवान्नारायण बदरिकाश्रम में तपस्या रत हैं।उन्हीं को नमस्कार करके उन्हीं के मुख से सुने हुए मानव धर्म का अब मैं वर्णन करता हूँ।

स्कन्ध - 8

आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नम:।
नारायणाय ऋषये नराय हरये नम:।।8।16।34।।

नार-नारायण ऋषि के रूप में अवतरित सबके अर्न्तयामी आदिदेव को नमस्कार है।पयोव्रत में कश्यप जी ने अदिति से स्तुति करने को कहा।

स्कन्ध 10

समाधाय मन: कृष्णे प्राविशद्‌गन्धमादनम्।।10।52।3।।
बदरी-आश्रमम्-आसाद्य नर-नारायण-आलयम्।
सर्वद्वन्दसह: शान्त: -तपसा-आराधयत्-हरिम्।।10।52।4।।

मन को भगवान्श्रीकृष्ण में लीन करके मुचुकुन्द गन्धमादन पर्वत पर आ गये जहाँ बदरिकाश्रम में नर-नारायण भगवान्का नित्य धाम है। यहाँ ठण्ठ-वर्षा-गर्मी के कष्ट को सहते हुए वे भगवान्की आराधना करने लगे।

सम्पूज्य देवऋषि-वर्यम्-ऋषि: पुराणो नारायणो नरसखो विधिना-उदितेन।
वाण्या-अभिभाष्य मितया-अमृत-मिष्टया तं प्राह प्रभो भगवते करवाम हे किम्।।10।69।16।।

नर के मित्र नारायण ऋषि ने देवर्षि नारद जी का विधिवत सत्कार करते हुए अमृत के समान मीठे वचनों से नारद जी से पूछा कि आपका कौनसा काम करुँ ?

नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णाय-अकुण्ठ-मेधसे।
नारायणाय ऋषये सुशान्तं तप ईयुषे।।10।86।35।।

मिथिला के राजा राजा बहुलाश्व ने स्तुति करते हुए भगवान्श्रीकृष्ण को कहा - असीम प्रज्ञावाले भगवान्श्रीकृष्ण को नमस्कार है। तपस्यारत शान्त स्वरूप नर-नारायण ऋषि को नमस्कार है।
शुकदेव जी ने नारद जी तथा नारायण ऋषि के सम्बाद को सुनाया।

एकदा नारदो लोकान्-पर्यटन्-भगवत्प्रियः।
सनातनम्-ऋषिं द्रष्टुं ययौ नारायणाश्रयम्। ।10।87।5। ।
यो वै भारतवर्षेऽस्मिन्क्षेमाय स्वतस्तये नृणाम्।
धर्म-ज्ञान-शम-उपेतम्-आकल्पात्-आस्थितः-तपः। ।10।87।6। ।

नारद जी एक बार आदि ऋषि नारायण का दर्शन करने बदरिकाश्रम आये। भारतवर्ष में धर्म-ज्ञान-इन्द्रिय संयम के अनुशीलन हेतु नारायण ऋपि कल्प के प्रारम्भ से तपस्या कर रहे हैं। जब नारद जी आये तब नारायण ऋषि बदरिकाश्रम के निकटवर्ती कलाप गाँव के मुनियों से घिरे हुए बैठे थे।

पूर्ण-कामौ-अपि युवां नर-नारायणौ-ऋषि।
धर्मम्-आचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहम्। ।10।89।60। ।

अनन्तशायी भगवान् ने कहा कि आप दोनों नर तथा नारायण ऋषि हैं। सर्वश्रेष्ठ महानतम तथा पूर्णकाम होते हुए लोकहित के लिए धर्माचरण करते रहें।

स्कन्ध -11

धर्मस्य दक्ष-दुहितरि-अजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नर ऋषिप्रवरः प्रशान्तः।
नैष्कर्म्य-लक्षणम्-उवाच चचार कर्म योऽद्यापि चास्त ऋषिवर्य-निषेवित-अङ्घ्रिः। ।11।4।6। ।

दक्ष प्रजापति की बेटी मूर्ति का विवाह धर्म से हुआ था। इनसे आदिदेव ने शान्त ऋषिश्रेष्ठ नर एवं नारायण के रूप में जन्म लिया। आज भी नर एक पैर पर खड़े होकर तथा नारायण पद्मासन में बैठकर बद्रिकाश्रम में तपस्यारत हैं। इन्होंने कर्म-बन्धन से छुड़ाने वाला निष्काम भगवदआराधना का उपदेश दिया। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि बद्रिकाश्रम में इनके चरणारविन्द की सेवा में लगे रहते हैं।
भगवान्से ऐसा सुन उद्धव जी ने उनसे नम्र निवेदन किया-

तस्माद्भवन्तम्-अनवद्यम्-अनन्तपारं सर्वज्ञम्-ईश्वरम्-अकुण्ठ-विकुण्ठ-धिष्णयम्।
निर्विण्ण-धीः-अहम्-उ ह वृजिन-अभितप्तो नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये। । 11।7।18। ।

आप निर्दोष, देशकल से परे, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, शाश्वत वैकुण्ठाधिपति तथा नर के नित्य सखा साक्षात् नारायण हैं। सांसारिक ताप से दग्ध तथा सांसारिक कामनाओं को त्याग कर मैं आपका शरणागत हूँ।
भगवान्ने अपनी विभूतियों को आंशिक रूप से गिनाते हुए कहा कि "**नारायणो मुनीनां च कुमारो ब्रह्मचारिणाम्। ।11।16।25। ।**" मुनियों में नारायण ऋषि हूँ तथा ब्रह्माचारियों में सनत्कुमार हूँ।
उद्धव जी का बद्रिकाश्रम गमन।भगवान्ने उद्धव जी को कहा -

गच्छ-उद्धव मयाऽऽदिष्टो बदरी-आख्यं ममाश्रमम्।
तत्र मत्पाद-तीर्थ-उदे स्नान-उपस्पर्शनैः शुचिः। ।11।29।41। ।

ईक्षया-अलकनन्दाया विधूत-अशेष-कल्मषः।

वसानो वल्कलानि-अङ्ग वन्यभुक्सुख-निःस्पृहः।।11।29।42।।

हे उद्धव ! मेरे बदरी आश्रम में जाकर वहाँ अलकनन्दा गंगा जी के जल में स्नान तथा उसका पान करके पवित्र बनो। अलकनन्दा गंगा के दर्शन से ही पाप-ताप दूर हो जाते हैं। वहाँ एकान्त में मेरी वार्ता का स्मरण, अनुशीलन तथा मुझमें चित्त लीन करके भागवत धर्म का अनुसरण करना।

स्कन्ध 12

नर-नारायण ऋषि का उपदेश

पुराणसंहिताम्एताम्ऋषिः नारायणोऽव्ययः।

नारदाय पुरा प्राह कृष्णद्वैपायनाय सः।।12।4।41।।

स वै मह्यं महाराज भगवान्बादरायणः।

इमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेदसम्मिताम्।।12।4।42।।

शुकदेव जी राजा परीक्षित को कहते हैं कि जो सब हमने तुम्हें सुनाया है वह श्रीमद्भागवतपुराण है। इसे सनातन नर-नारायण ऋषि ने सबसे पहले नारद जी को सुनाया था। इसे ही नारद जी ने बदरीवन में सदैव बसने वाले हमारे पिता श्रीकृष्णद्वैपायन को सुनाया। हमारे पिता ने वेदतुल्य इस संहिता को तब मुझे सुनाया।

मार्कण्डेय मुनि को नर-नारायण भगवान्का दर्शन

सूत जी श्रीमद्भागवत के उपसंहार में मार्कण्डेय मुनि को नर - नारायण भगवान्के दर्शन के फलस्वरूप बटपत्र पर लेटे बालमुकुन्द भगवान् का दर्शन हुआ। सूत जी ने कहा कि भगवद्कृपा से मार्कण्डेय जी ने करोड़ों-करोड़ वर्ष भगवान्की आराधना कर मृत्यु को जीत लिये थे। उनकी तपस्या से प्रसन्न हो नर-नारायण के रूप में भगवान्ने उन्हें दर्शन दिया। "**अनुग्रहाय-आविरासीत्-नर-नारायणो हरिः।12।8।32।**"

तौ शुक्ल-कृष्णौ नवकञ्ज-लोचनौ चतुर्भुजौ रौरव-वल्कल -अम्बरौ।

पवित्रपाणी उपवीतकं त्रिवृत्कमण्डलुं दण्डम्-ऋजुं च वैणवम्।।12।8।33।।

पद्माक्ष-मालाम्-उत जन्तु-मार्जनं वेदं च साक्षात्-तप एव रूपिणौ।

तपत्-तडित्-वर्ण-पिशङ्ग-रोचिषा प्रांशू दधानौ विबुध-ऋषभ-अर्चितौ।।12।8।34।।

चतुर्भुजी स्वरूप में नूतन कमल जैसी आँख वाले गोरे रंग के नर तथा श्यामवर्ण के नारायण थे। एक कृष्णमृगचर्म तथा दूसरे वृक्ष की छाल पहने थे। दोनों तीनसूत्र का यज्ञोपवीत धारण किये हुए हाथ में कमण्डल एवं बाँस का डण्डा तथा कमलबीज की माला एवं वेद धारण किये हुए थे। तपस्या की साक्षात् मूर्ति, देवों से पूजित, तेजपूर्ण विजली जैसे चकमक-चकमक दोनों ही ऊँचे कद के थे। उनके दर्शन से पुलकित हो डबडबायी आँखो से मार्कण्डेय जी ने उनका उठकर साष्टांग किया तथा पूजा-सत्कार करके स्तुति करने लगे।

तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूम्ने विश्वाय विश्वगुरवे परदेवतायै।

नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय।।12।8।47।।

विश्व के नियन्ता वेद के प्रवर्तक परमपूज्य नरोत्तम नर तथा ऋषि-प्रवर नारायण को नमस्कार करता हूँ।

7। **ध्रुव** जिनकी परिक्रमा सप्तर्षि करते हैं। (4।3)
8। **वेनपुत्र पृथु ने** धरती से औषधियाँ तथा अन्नादि प्रकट किया। (4।15)।
9। **ऋषभ ने जड़योग** से मन को समदर्शी बनाया। (5।3)
10। **ब्रह्मा के यज्ञ में यज्ञपुरुष हयग्रीव** प्रकट हुए जिनकी नासिका से वेदवाणी श्वास बनकर प्रकट हुई।इसके अतिरिक्त (10।40।17) में अक्रूर जी ने कहा कि - **"हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभ-मृत्यवे।।** अर्थात् हयग्रीव भगवान्ने वेद का उद्धार किया जो ब्रह्मा से छीन कर मधुकैटभ ले गये थे। ऐसा ही उल्लेख 5।18।6। में है।

वेदान्युगान्ते तमसा तिरस्कृतान्रसातलाद्यो नृतुरङ्गविग्रहः।
प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते तस्मै नमस्तेऽवितथेहिताय इति।।5।18।6।।

धार्मिक विधानों से परिपूर्ण अर्थात् वेद को उपलब्ध करानेवाले तथा सांसारिक दूषण से शुद्ध करने वाले भगवान्हयग्रीव को नमन करते हैं। जब अज्ञान की साक्षात् मूर्ति एक राक्षस ने वेद चुराकर रसातल ले गया तब आपने हयग्रीव के स्वरूप में उस राक्षस से वेद छीन लिया तथा ब्रह्मा की याचना पर पुनः उन्हें वेद उपलब्ध करा दिया। आपको सादर नमस्कार है।

11। **वेद उद्धारक मत्स्य**। (8।24)।
12। **कच्छप**। (8।7)।
13। **नृसिंह**। (7।8)।
14। **गजेन्द्र उद्धारकर्ता श्रीहरि**। ग्राह से पकड़े जाने पर गजेन्द्र ने पुकारा - "आह-इदम्-आदिपुरुष-अखिल लोकनाथ तीर्थश्रवः श्रवण-मङ्गल-नामधेय।1।7।15।" अर्थात् जिनका नाम तीर्थ की तरह पाप हरने के लिए विख्यात है। और उनके नाम श्रवण से मंगल ही मंगल होता है। (8।3)
15। **वामन**। (8।18)।
16। नारद को उपदेश के लिए **हंस**। (11।13)।
17। **स्वायंभुव मनु** एवं विभिन्न मन्वन्तरों के मनु भगवान् स्वयं बने । (3।12)
18। **धन्वन्तरि**। (8।8)।
19। **परशुराम**। (9।5)
20। **रामावतार में समुद्र ने** रास्ता दिया तथा अपनी छाती पर इन्द्र के वज्र को चूर करने वाला रावण मारा गया। (9।10)
21। **बलराम-कृष्ण पृथ्वी का** भार हरण करने वाले। सात वर्ष की आयु में सात दिन तक गोवर्धन धारण करने वाले। (10।3)
22। **सत्यवती एवं पराशर के पुत्र वेदव्यास** ने वेदों का विभाग किया। (12।7)।
23। दैत्यों का वैदिक धर्म की दक्षता से मन हटाने के लिए नास्तिकों का मनमोहक सिद्धान्त देनेवाले बुद्ध। (10।40, 1।3)।

24।कल्कि। (12।2)

विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि।

चस्कम्भ यः स्वरंहसास्खलता त्रिपृष्ठं यस्मात्त्रिसाम्यसदनादुरु कम्पयानम्। ।**2।7।40**। ।

पृथ्वी के धूलकण को गिना जा सकता है परन्तु भगवान्विष्णु के गुणों का थाहपाना असम्भव है।त्रिविक्रमावतार में उनके चरणकमल के वेग से ब्रह्माण्ड के बाह्य आवरण में छेद होने से सत्यलोक काँपने लगा जिसे उन्होंने स्वयं स्थिर कर दिया।

नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये।

गायन् गुणान् दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम्। ।**2।7।41**। ।

ब्रह्मा जी नारद जी कहते हैं कि मेरे समेत तुम्हारे अग्रज सनकादि तथा समस्त ऋषिगण भगवान्को नहीं जान पाये। हजारों सिर से आदिदेव शेष भगवान्के गुणों का गान करते-करते पार नहीं पा सके हैं।

इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम्।

संग्रहोऽयं विभूतीनां त्वमेतद्विपुलीकुरु। ।**2।7।51**। ।

यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति।

सर्वात्मन्यखिलाधारे इति सङ्कल्प्य वर्णय। ।**2।7।52**। ।

नारद ! भगवान् के विभिन्न अवतारों की कथा को भागवत कहते हैं। तू इसका प्रचार-प्रसार कर जिससे लोगों के हृदय में प्रेममयी भक्ति उत्पन्न हो सके।

2 । 7 भगवान्की कथा सुनने के लिए उत्सुक राजा परीक्षित के विभिन्न प्रश्न

कथयस्व महाभाग यथाहमखिलात्मनि।

कृष्णे निवेश्य निःसङ्गं मनस्त्यक्ष्ये कलेवरम्। ।**2।8।3**। ।

श्रृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम्।

कालेन नातिदीर्घेण भगवान्विशते हृदि। ।**2।8।4**। ।

प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम्।

धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्। ।**2।8।5**। ।

राजा ने शुकदेव जी से कहा कि आप ऐसा उपदेश दें जिससे कि मैं अपना आसक्ति रहित मन को सर्वात्मा भगवान्कृष्ण में तन्मय कर शरीर छोड़ सकूँ। श्रद्धा से नित्य कथा सुनने वाले के हृदय में भगवान् शीघ्र ही प्रकट हो जते हैं। भगवान् उसके हृदयकमल पर बैठकर शरद काल के जल की तरह उसे निर्मल बना देते हैं।सूत जी ने कहा कि शुकदेव जी ने वही भागवत सुनायी जो ब्राह्मकल्प के प्रारम्भ में भगवान् ने ब्रह्मा को सुनायी थी।

प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।

ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्पे उपागते। ।**2।8।28**। ।

2।8 चतुःश्लोकी भागवत

आत्मतत्त्वशुद्धि-अर्थं यदाह भगवान्-ऋतम्।

ब्रह्मणे दर्शयन् रूपमव्यलीक-व्रत-आदृत:।।2।9।4।।

ब्रह्मा के तपस्या से भगवान्ने उन्हें अपने रूप का दर्शन करा आत्मतत्त्व का उपदेश दिया।

स चिन्तयन्द्वि-अक्षरम्-एकदा-अम्भसि-युपाश्रृणोद् द्विर्गदितं वचो विभु:।

स्पर्शेषु यत्षोडशम्-एकविंशं निष्किञ्चनानां नृप यद्धनं विदु:।।2।9।6।।

ब्रह्मा को सृष्टि करने में कोई उपाय समझ में नहीं आ रहा था। एक दिन प्रलय समुद्र में व्यञ्जन वर्णमाला के सोलहवाँ अक्षर 'त' एवं इक्कीसवाँ 'प' यानी तप करो दो बार सुनाई पड़ी। उन्होंने एक हजार दिव्यवर्ष तक तपस्या की। भगवान् ने तब प्रसन्न होकर अपना श्रेष्ठतम लोक का उन्हें दर्शन कराया।

श्यामावदाता: शतपत्रलोचना: पिशङ्गवस्त्रा: सुरुच: सुपेशस:।

सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन्-मणि-प्रवेक-निष्काभरणा: सुवर्चस:।

प्रवाल-वैदूर्य-मृणाल-वर्चस: परिस्फुरत्-कुण्डल-मौलि-मालिन:।।2।9।11।।

ब्रह्मा ने देखा कि भगवान् के पार्षदों के श्यामस्वरूप कमलनेत्र के साथ वैदूर्यमणि एवं मूंगे जड़े मुकुट एवं कुन्डल चमक रहे थे। बादल से भरे आकाश में चमकती विजली सी कामिनियों की कान्ति एवं महात्माओं के विमान दिख रहे थे।

श्री: यत्र रूपिणी-उरुगाय-पादयो: करोति मानं बहुधा विभूतिभि:।

प्रेङ्खं श्रिता या कुसुमाकर-अनुगै: विगीयमाना प्रियकर्म गायती।।2।9।13।।

लक्ष्मी जी विभूतियों के साथ सेवा करती हैं तथा कभी झूले पर बैठ भगवान्का लीलागान करती हैं।भौंरे लक्ष्मी जी का गुणगान करते हैं। नन्द, सुनन्द, प्रवल और अर्हण नामके पार्षद भगवान्की सेवा कर रहे हैं।

भृत्य-प्रसाद-अभिमुखं दृगासवं प्रसन्न-हास-अरुण-लोचन-आननम्।

किरीटिनं कुण्डलिनं चतुर्भुजं पीताम्बरं वक्षसि लक्षितं श्रिया।।2।9।15।।

अध्यर्हणीय-आसनमास्थितं परं वृतं चतु:-षोडश-पञ्चशक्तिभि:।

युक्तं भगै: स्वैरितरत्र चाध्रुवै: स्व एव धामन् रममाणम्-ईश्वरम्।।2।9।16।।

इसके बाद भगवान् का मुस्कराता मुखमण्डल, मुकुट कुण्डल विभूषित, श्रीवत्स, पीताम्बर, चतुर्भुज स्वरूप का पञ्चमात्राओं के पच्चीस साक्षात्स्वरूप से सेवित देखा। ब्रह्मा जी गद्गदहो गये। भगवान्ने उनके हाथ का स्पर्श करते हुए वर मांगने को कहा। विना मेरे दर्शन के मात्र मेरी आवाज पर आपने तपस्या की। मैं प्रसन्न हूँ। ऐसा सुनकर ब्रह्मा ने कहा कि मुझे अहंकार विहीन करते हुए सृष्टि करने की क्षमता दें। भगवान्ने कहा - प्रेमा भक्ति से युक्त गोपनीय स्वरूप बताता हूँ । यह कहकर चतु:श्लोकी भागवत सुनाया। भगवान्ने भागवत का सार बह्मा को बताया। प्राय: श्लोक **32** से **35** तक ही चतु:श्लोकी कहे जाते हैं परन्तु "भगवानुवाच" के सभी श्लोक **30** से **36** तक इस परमगुह्य विषय को पूर्णतया स्पष्ट करते हैं।

स्वामी श्रीरङ्गरामानुजाचार्य के कृपा-प्रसाद के रूप में इनके विशेषार्थ प्रस्तुत है।

भगवान्ने कहा -

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद् विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया।2।9।30।।

अन्वय - भगवान्उवाच, ज्ञानं यत्, परमं गुह्यं, विज्ञान समन्वितम्, सरहस्यं, मे, ज्ञानम् तदङ्गं च, मया, गदितम्, गृहाण। शब्दार्थ - श्रीभगवान्उवाच = श्रीभगवान्ने कहा। यत्= जो। परमगुह्यम्= अति गोपनीय। विज्ञान समन्वितम्= विविक्ताकारं ज्ञानम्विज्ञानम्तेन समन्वितम्।सरहस्यम्= रहस्येन सहितम्। मे = मम। ज्ञानम्= भगवत्स्वरूप ज्ञानम्। तदङ्गञ्च = भगवदङ्ग चित्-अचित्स्वरूपज्ञानम्। मया गदितं गृहाण = मुझसे कहा गया ग्रहण करो। श्लोकार्थ - भगवान्ने ब्रह्मा से कहा कि अतिगोपनीय परम रहस्यमय शास्त्र सम्मत चित्-अचित् ज्ञान सहित ब्रह्मस्वरूप का ज्ञान मैं तुमसे बतलाता हूँ। उसे ग्रहण करो।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तँ्ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।।श्वे. 6।18।।

जो परमेश्वर पहले अपने नाभिकमल से ब्रह्मा को उत्पन्न करके उन्हें नि:सन्देह समस्त वेदों का ज्ञान प्रदान करते हैं तथा जो अपने स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए अपने भक्तों के हृदय में तदनुरूप विशुद्ध बुद्धि को प्रकट करते हैं, सर्वशक्तिमान्प्रसिद्ध देव परब्रह्म पुरुषोत्तम की मैं मोक्ष की अभिलाषा से युक्त हो शरण ग्रहण करता हूँ। वे ही मुझे इस संसार-बन्धन से मुक्त करें। विशेषार्थ - भगवान्ने ब्रह्मा से जिस ज्ञान का उपदेश करने के लिए कहा है उसमें चार विशेषण हैं - परमगुह्य, विज्ञान समन्वित, रहस्य युक्त और अङ्ग सहित। भगवान्ने ब्रह्मा को विज्ञान सहित ज्ञान का उपदेश करने के लिए कहा है। यहाँ ज्ञान से सामान्य विषयों का ज्ञान नहीं लिया गया है। क्योंकि सामान्य विषयों का ज्ञान तो सभी को रहता ही है। उसे उपदेश करने की क्या आवश्यकता है। इसलिए यहाँ ज्ञान से उस ज्ञान को लेना चाहिए जिसे प्राप्त कर लेने पर जन्म, जरा, मृत्यु आदि के कष्टों से छुटकारा मिल जाये। वह ज्ञान है भगवत्स्वरूप का ज्ञान। भगवत्विषयक ज्ञान हो जाने पर जीव भव-बन्धन से निवृत्त हो जाता है।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय।।श्वे. 3।8।।

इसीलिए उपनिषद में कहा गया है कि मानव ब्रह्म को जानकर जन्म-मृत्यु से रहित हो जाता है। कल्याण के लिए और दूसरा मार्ग नहीं है। जिस विज्ञान सहित ज्ञान का उपदेश करने के लिए भगवान्ने कहा है, वह विज्ञान एक विलक्षण अर्थ को बतलाता है। जड़-चेतन का समुदाय ही जगत् है। जड़ कहते हैं ज्ञानशून्य परिणामी को। ज्ञानयुक्त को चेतन कहते हैं। यह अणु और ईश्वर का शेष है। जड़-चेतन ये दोनों भगवान्से नियाम्य और धार्य हैं।भगवान् इन दोनों के संसर्ग से रहित तथा दोनों की आत्मा है।वे सम्पूर्ण प्राकृत गुणों से रहित अपरिमित कल्याण -गुणमय तथा अनन्त महाविभूतियों से युक्त हैं। इस रूप में परमात्मा को समझना विज्ञान है। इसलिए श्री भाष्यकार स्वामी ने गीता-भाष्य में कहा है - "विज्ञानम्विविक्तारविषयं ज्ञानम्।" चेतन और अचेतन से विलक्षण रूप में ब्रह्म को समझना विज्ञान है। भगवान्ने इस ज्ञान को परमगुह्य (गोपनीय) कहा है जो भगवान्की भक्ति से हृदय को उद्भासित करता है ।

सर्वगुह्यतमं भूय: श्रृणु मे परमं वच:।।गी. 18।64।।

अतिगोपनीय भागवत में कहा है, वहीं गीता में गुह्यतम शब्द का प्रयोग किया है। गुह्यतम का अर्थ है गोपनीय अति प्रेमयुक्त ज्ञान। श्लोक में जो तदङ्ग शब्द आया है इसका अर्थ है भगवान्का अङ्ग। चित्और अचित्ये दोनों भगवान्के अङ्ग हैं। चित्और अचित्भगवान्के विशेषण हैं और भगवान्विशेष्य हैं। सृष्टि और प्रलय, दोनों अवस्था में ये भगवान्के अङ्ग बनकर रहते हैं। प्रलय काल में सूक्ष्मरूप से चित्और अचित्भगवान्के विशेषण हैं तथा सृष्टि काल में स्थूलरूप से जड़ - चेतन भगवान्के विशेषण होते हैं। इसलिए भगवान् ने उनका ज्ञान भी आवश्यक बतलाया है।

पुराणों में श्रीविष्णुपुराण रत्न माना गया है। इसका निर्माण करने वाले श्री पराशर मुनि हैं जो व्यास जी के पिता हैं। श्रीविष्णुपुराण में चित्, अचित्, ईश्वररूप, तत्त्वत्रय का स्वरूप, ऐश्वर्य, पुरुषार्थ, भगवत्प्राप्ति रूप मोक्ष आदि के यथार्थ स्वरूप का वर्णन किया है।

श्री यामुनाचार्य स्वामी ने श्री पराशर मुनि की वन्दना करते हुए कहा है -

तत्वेन यश्चिदचिदीश्वर तत्स्वभाव भोगापवर्ग तदुपाय गतीरुदार:।

सन्दर्शयन्निरमिमीत पुराणरत्नं तस्मै नमो मुनिवराय पराशराय।।स्तोत्र रत्न 4।।

जो जीवात्मा, प्रकृति, परमात्मा और मोक्ष आदि के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं वे श्रीविष्णुपुराण का अध्ययन अवश्य करें।

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मक:।

तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्।।2।9।31।।

अन्वय - अहम्, यावान्, यथाभाव: , यत्-रूप-गुण-कर्मक:, तथा-एव, तत्त्व-विज्ञानम्, ते, मत्-अनुग्रहात्, अस्तु

शब्दार्थ - अहम्= मैं । यावान्= जैसा दिव्यस्वरूप वाला हूँ। यथाभाव: = जैसा विलक्षण स्वभाव वाला हूँ। यत्-रूप-गुण-कर्मक: = जैसा मेरा रूप, गुण और कर्म है। तथा-एव = वैसा ही। तत्त्व-विज्ञानम् = मेरा स्वरूप, गुण और विभूति है। मत्-अनुग्रहात्= मेरी कृपा से तुम्हें प्राप्त । अस्तु = हो।

श्लोकार्थ - मैं जैसा दिव्य स्वरूप से युक्त हूँ , जैसा विलक्षण स्वाभाव हूँ , जैसा मेरा रूप, गुण और कर्म है, वैसा ही स्वरूप, गुण और विभूति मेरी कृपा से तुम्हें प्राप्त हो।

विशेषार्थ - परमात्मा "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म - तै. " श्रुति के अनुसार सत्य, ज्ञान और अनन्त गुणवाले हैं। अर्थात्देश, काल और वस्तु परिच्छेद से रहित, सभी देश, सभी काल एवं सभी वस्तु में रहते हैं। "य: सर्वज्ञ: सर्व -वित्यस्य ज्ञानमयं तप:" भगवान्सर्वज्ञ हैं और सबको जाननेवाले हैं।

यथाभाव: = "स्वाभाविक ज्ञानवलक्रिया च।" इस श्रुति के अनुसार ब्रह्म में पराशक्ति, परवल, परज्ञान आदि गुण स्वाभाविक हैं। ये सब गुण भगवान्में स्वाभाविक रहते हैं। इसलिए भगवान्ने ब्रह्मा से कहा कि तुम इसको अनुभव कर अनुसरण करो। **"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभि संविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्य। तदब्रह्मेति।तै. "** इसके अनुसार जगत का सृजन, पालन एवं संहार तथा मोक्ष प्रदान करना ब्रह्म का काम है। श्रीवेदान्त देशिक ने तत्त्वमुक्ताकलाप के नायकसर में निम्नलिखित श्लोक का उल्लेख किया है। जिसमें श्रुतिसम्मत भगवान् के दिव्य गुणों एवं कर्मो का सविस्तर वर्णन किया है।

व्याप्तयाद्यण्याकुलभि: श्रुतिभिरधिगतो विश्वनोता स विश्वं

क्रीड़ाकारुण्यतन्त्र: सृजति समतया जीवकर्मानुरूपम्।

रोषोऽपि प्रीतये स्यात्सुनिरसविषय: तस्य नि:सीमशक्ते:

स्वेच्छायां त: सर्वसिद्धिं वदति भगवतोऽवाप्तकामत्वपाद:।। तत्त्वमुक्ताकलाप नायकसर 1।।

धर्मप्रवृत्तियुक्त सभी देशों तथा कालों में व्यापक होने के कारण व्याप्त्याभास तथा स्मृत्याभास के द्वारा जिसमें किसी भी प्रकार का दोष नहीं दिखाया जा सकता, ऐसी श्रुतियों के द्वारा दृढ़ निश्चय होता है कि सम्पूर्ण जगत्के नियामक श्रीभगवान्हैं। वे ही क्रीड़ा तथा अपनी करुणा के परतन्त्र होकर समानरूप से जीवों के पुरातन कर्मो के अनुसार सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं। उस अनन्तशक्ति सम्पन्न श्रीभगवान्का क्रोध भी अत्यन्त रसयुक्त होने के कारण आनन्दकर ही होता है। श्रीभगवान् का अवाप्त समस्त कामत्व यह विरुद अपनी सत्यसंकल्परूपी इच्छामात्र से ही उनकी सारी कामनाओं की सिद्धि को बतलाता है।

यथोर्णनाभि: सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधय: सम्भवन्ति।

यथा सत: पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्।मु. 1।7।।

मुण्डक उपनिषद के इस मन्त्र में तीन दृष्टान्तों द्वारा यह बात समझायी गयी है कि परब्रह्म-परमेश्वर ही इस जड़चेतात्मक समस्त जगत के निमित्त एवं उपादान कारण हैं।

1।जिस प्रकार मकड़ी अपने पेट में स्थित जाले को बाहर निकाल कर फैलाती है और फिर उसे निगल जाती है उसी प्रकार परब्रह्म परमेश्वर अपने अन्दर सूक्ष्मरूप से स्थित जड़-चेतन जगत् को सृष्टि के आरम्भ में नाना प्रकार से उत्पन्न करके फैलाते हैं और प्रलयकाल में पुन: उसे अपने में समेट कर रख लेते हैं।

2।दूसरे उदाहरण से यह बात समझायी गयी है कि जिस प्रकार पृथ्वी पर जैसे-जैसे अन्न, तृण, वृक्ष, लता आदि औषधियों के बीज पड़ते हैं उसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के पौधे वहाँ उत्पन्न हो जाते हैं। इसमें पृथ्वी का कोई पक्षपात नहीं है। इसी प्रकार जीवों के विभिन्न कर्मरूप बीजों के अनुसार ही भगवान्उनको भिन्न-भिन्न योनियों में उत्पन्न करते हैं। अत: भगवान्में किसी प्रकार की विषमता एवं निर्दयता दोष नहीं हैं

3। मनुष्य शरीर के उदाहरण से यह बात समझायी गयी है कि जिस प्रकार मनुष्य के जीवित शरीर से सर्वथा विलक्षण केश, रोएँ और नख अपने-आप उत्पन्न होते और बढ़ते रहते हैं । इसके लिए मनुष्य को कोई कर्म नहीं करना पड़ता। इसी प्रकार परब्रह्म परमेश्वर से यह जगत्स्वभाव से ही समय पर उत्पन्न हो जाता है और विस्तार को प्राप्त होता है। इसके लिए भगवान् को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। भगवान्ने इसीलिए गीता में कहा है -
" मैं इस जगत्को बनानेवाला होकर भी अकर्ता ही हूँ।"

भगवान्श्रीकृष्ण ने योग और विभूति का वर्णन करते हुए कहा है -

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित:।

अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।।गी.10।20।।

इसका भाव है कि सम्पूर्ण जड़-चेतन जगत्भगवान्का शरीर है। जो जिससे नियाम्य, धार्य और शेष होता है वह उसका शरीर होता है। सम्पूर्ण जगत्का आधार, नियन्ता और शेषी (स्वामी) भगवान्ही हैं। इसलिए जगत् भगवान् का शरीर है और सबमें स्थित रहने वाले भगवान्सबकी की आत्मा हैं। जैसे देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष आदि शब्द

तत्-तत् शरीरों के बोधक होते हुए उन-उन शरीरों में रहने वाली आत्मा के भी बोधक होते हैं। उसी प्रकार भगवान्की समस्त विभूति के अन्तर्गत जड़-चेतन पदार्थों के वाचक शब्द उनमें अन्तर्यामी रूप से रहनेवाले परमात्मा के भी बोधक होते हैं। इसी भाव से भगवान्ने कहा है कि आत्मा रूप से स्थित हूँ। बृहदारण्यकोपनिषद्में कहा गया है कि जो पृथवी, जल आदि सब पदार्थो में रहता हुआ सबसे भिन्न है जिसको भूतादि नहीं जानते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु आदि सब उनके शरीर हैं। जो सब भूतों का नियमन करता है वह सर्वान्तर्यामि अमृत स्वरूप आत्मा है। **शतपथ ब्राह्मण 14-15-30** में कहा गया है कि जो आत्मा में स्थित रहता हुआ आत्मा से भिन्न है, आत्मा उसको नहीं जानती है। आत्मा जिसका शरीर है, जो आत्मा के भीतर रहकर उसका नियमन करता है वह अन्तर्यामी अमृत स्वरूप आत्मा (ब्रह्म) है। इस तरह जड़ ओर चेतन ये दोनों ब्रह्म के शरीर रूप में तथा ब्रह्म सबों के अर्न्तयामी आत्मा के रूप में कहे गये हैं।

अतएव श्रीभाष्यकार स्वामी श्रीरामानुजाचार्य ने शरणागति गद्यम्में भगवान्से स्पष्ट कहा है "अशेषचिदचिद्वस्तुशेषिभूतनिखिलजगदाधार" अर्थात्आप समस्त चेतन और अचेतन पदार्थो के शेषी हैं तथा सम्पूर्ण जगत्के आधार हैं।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्।।**2।9।32**।।

अन्वय - सदसत्परम्, यत्, तत्, अहम्, एव, अन्यत्, न, अग्रे, अहम्, एव, आसम्, पश्चात्, यत्, अहमेव, एतत्, यो, अवशिष्यते, स: अपि, अहमेव। शब्दार्थ - सदसत्परम् = चिदचित्विलक्षण। यत्= जो। तदहमेव मैं ही। अन्यत्= चिदचित्विलक्षण। न = नहीं है। अग्रे = सृष्टि से पूर्व। यत्= जो वस्तु। पश्चात्= सृष्टिकाल में। यत्= जो वस्तु है। तत्अपि = यह भी । अहम्= मैं ही हूँ।

श्लोकार्थ - भगवान् ने ब्रह्मा से कहा कि चेतनाचेतन जीव और प्रकृति से विलक्षण जो है वह मैं ही हूँ। चित्कहते हैं चेतन को और अचित्कहते हैं प्रकृति को। ये दोनों की दो अवस्थायें होती हैं। सूक्ष्मावस्था और स्थूलावस्था। नाम-रूप से विहीन जड़-चेतन की सूक्ष्मावस्था होती है और नाम-रूप से युक्त जड़-चेतन की स्थूलावस्था होती है। ये दोनों परमात्मा के विशेषण हैं और परमात्मा विशेष्य है। सृष्टि से पूर्व प्रलयकाल में सूक्ष्म रूप से जड़-चेतन ब्रह्म के विशेषण होते हैं। इसलिए चित्- अचित्से विलक्षण मैं ही था और सृष्टिकाल में भी मैं ही हूँ। स्थूल जड़-चेतन एवं सूक्ष्म जड़-चेतन परमात्मा के सर्वथा सिद्ध विशेषण रहते हैं। अर्थात्जड़-चेतन सृष्टिकाल एवं प्रलयकाल में ब्रह्म से एक क्षण के लिए भी अलग नहीं होते।

विशेषार्थ - जड़-चेतन का समुदाय जगत्है। जगत्के सृजन, पालन और संहार करने वाले को ब्रह्म कहते हैं। उसी को गीता में श्रीकृष्ण तथा अन्यत्र सर्वेश्वर, परब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वर, पुरुषोत्तम, योगेश्वर, विष्णु आदि नामों से वर्णन किया गया है। श्रीभाष्यकार स्वामी श्रीरामानुजाचार्य ने "**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**" सूत्र की व्याख्या करते हुए कहा है कि "**ब्रह्मशब्देन च स्वभावतोनिरस्तनिखिल- दोषोऽनवाधिक- आतिशयासङ्ख्येय- कल्याणगुणगण: पुरुषत्तमोऽभिधीयते। सर्वत्रबृहत्त्वगुणयोगेन हि ब्रह्मशब्द:। बृहत्त्व च स्वरूपेण गुणैश्च यत्रानवधिकातिशयं सोऽस्य मुख्योऽर्थ:, स च सर्वेश्वरएव।**" स्वभावत: सबदोषों से रहित है अथात्जिसमें एक भी दोष नहीं हो। अवधिरहित, अतिशय, असंख्येय कल्याणगुण जिनमें हो वे पुरुषोत्तम ब्रह्म शब्द वाच्य हैं। सर्वत्र बृहत्वगुणयोग के

कारण ही ब्रह्म शब्द का प्रयोग होता है। जो सबसे रूपवान्और सबसे गुणवान्अर्थात् अवधिरहित अतिशय स्वरूप और गुण जिनमें हों वे ही ब्रह्म शब्द वाच्य होते हैं। वह ब्रह्म समस्त जगत्के स्वामी नारायण ही हैं। वे ही पुरुषोत्तम आदि से भी सम्बोधित किये जाते हैं। तीनों तापों से संतप्त जीव के लिए वे ही ध्येय एवं स्मरणीय हैं। उपनिषदों में ब्रह्म के स्वाभाविक शक्ति, ज्ञान, बल, क्रिया, सत्यकाम, सत्यसंकल्प, सौसील्य, सौलभ्य, वात्सल्यादि दिव्यगुणों का वर्णन प्रचूर मात्रा में मिलता है। अतएव श्रीकुरेश स्वामी ने लिखा है -

दुरे गुणास्तव तु सत्त्वरजस्तमांसि तेन त्रयी प्रथयति त्वयि निर्गुणत्वम्।
नित्यं हरे निखिलसदगुणसागरं हि त्वामामनन्ति परमेश्वरमीश्वराणाम्।।श्रीवैकुण्ठ स्तव 49 ।।

हे हरे ! आप में सत्व, रज एवं तमोगुण के मिश्रण नहीं हैं। इसलिए वेद आपको निर्गुण कहते हैं। और अनन्त कल्याणगुणों के सागर होने से आप सगुण हैं।

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यदब्रह्मणो विदु:।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जना:।।गी. 8।17।।
अव्यक्ताद्व्यक्तय: सर्वा: प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसञ्ज्ञके।। गी. 8।18।।
भूतग्राम: स एवायं भूत्वा भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवश: पार्थ प्रभवत्यहरागमे।। गी. 8।19।।

दिन-रात की व्यवस्था को जाननेवाले यह जानते हैं कि एक हजार युग का ब्रह्मा का एक दिन और एक हजार युग की ही उनकी एक रात्रि होती है। ब्रह्मा के दिन के आरम्भ में तीनों लोकों में रहने वाले शरीर, इन्द्रिय, उनके विषय और भोगों के स्थान ये सब वस्तुयें चतुर्मुख ब्रह्मा के देहरूप अव्यक्त से उत्पन्न होती हैं। पुनः रात्रि के आरम्भ समय में ब्रह्मा के उसी अव्यक्त देह में सब स्थित हो जाती हैं। कर्म के वश में रहनेवाले समस्त प्राणी ब्रह्मा के दिन के आरम्भ समय में उत्पन्न होते हैं और रात्रि के आरम्भ समय में उन्हीं में स्थित हो जाते हैं। इस प्रकार बार-बार दिन-रात के अनुसार उत्पत्ति और लय का क्रम चलता रहता है। स्थित होने का अर्थ है स्थूल से सूक्ष्म रूप में हो जाना और उत्पत्ति का अर्थ है सूक्ष्म से स्थूल रूप में हो जाना। दिन-रात की गणना के अनुसार जब ब्रह्मा की आयु एक सौ वर्ष की पूरी हो जाती है तब महाप्रलय होता है। उस महाप्रलय के समय ब्रह्मा के लोक पर्यन्त सभी लोक नारायण में सूक्ष्म रूप से स्थित हो जाते हैं। इसका क्रम इस प्रकार है - पृथ्वी जल में, जल तेज में, तेज वायु में, वायु आकाश में, आकाश अव्यक्त में, अव्यक्त अक्षर में, अक्षर तम में और तम भगवान्नारायण में स्थित हो जाते हैं। काल व्यवस्था के अनुसार सभी लोकों में उत्पत्ति -विनाशशील ऐश्वर्यवान्पुरुषों का संसार में पुन: आना निश्चित ही है। परन्तु जो भगवान्को प्राप्त कर लेते हैं उनका पुनरागमन नहीं होता है। गीता नवम् अध्याय के अनुसार सृष्टि-प्रलय की व्यवस्था -

सर्वानि भूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृज्याहम्।।गी. 9।7।।

जड़-चेतन का समुदाय रूप जगत्जो अभी स्थूल रूप में देखा जा रहा है यह कल्प के अन्त में (ब्रह्मा की आयु समाप्त होने पर) भगवान्के संकल्प से उनके शरीरभूत तम रूप प्रकृति में स्थित हो जाता है। स्थित होने का तात्पर्य है स्थूल से सूक्ष्म रूप में हो जाना। इसी प्रकार महाप्रलय के बाद सृष्टि के आरम्भ में भगवान्सूक्ष्म जड़-चेतन को स्थूल जड़-चेतन में परिणत कर देते हैं। यहाँ सूक्ष्म का अर्थ है नाम-रूप के अयोग्य एवं स्थूल का अर्थ है नाम-रूप के योग्य। जैसे किसी भी वृक्ष के बीज में उस वृक्ष की शाखाओं, पत्तों, फूलों और फलों को प्रत्यक्ष नहीं देखते हैं और शाखा, पत्ता, फूल तथा फल आदि शब्द का व्यवहार भी नहीं होता है। इसी तरह प्रलय काल में जब यह स्थूल जगत्सूक्ष्म रूप में हो जाता है तब जागतिक पदार्थों के समान उसके लिए नाम-रूप का व्यवहार नहीं होता है। परन्तु जब बीज जब वृक्ष के रूप में परिणत हो जाता है , तब उसमें शाखा, पत्ता आदि नामों से व्यवहार एवं उनके रूप भी प्रत्यक्ष दृष्टिगत होते हैं। इसी प्रकार जब महाप्रलय के बाद सृष्टि होती है तब नाम और रूप का उपयोग होता है। इसी भाव से स्वामी श्री यामुनाचार्य ने आलवन्दार में भगवान् से कहा है।

कस्योदरे हरविरञ्चिमुख: प्रपञ्च: को रक्षतीममजनिष्ट च कस्य नाभे:।
क्रान्त्वा निगीर्य पुनरुद्गिरति तदन्य: क: केन वैष परवानिति शक्यशङ्क:।।स्तो. रत्न 14।।

प्रलयकाल में शिव, ब्रह्मा आदि समस्त जड़-चेतन रूप प्रपञ्च सूक्ष्म रूप में किसके पेट में रहते हैं ? इस जड़-चेतन रूप प्रपञ्च की रक्षा कौन करता है? यह सब किसकी नाभि से उत्पन्न हैं ? आप से दूसरा कौन है जो इसे निगल कर पुन: उगल दे। अर्थात्ये सब गुण आप में ही हैं।

ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तम:।।2।9।33।।

परमात्स्वरूपमुक्त्वाऽथ चिदचितोस्तदङ्गभूतयो: परस्परविलक्षणस्वरूपमाह ऋते - इति।

अन्वय - अर्थम्, ऋते , यदचेतनम्, प्रतीयेत, आत्मनि, यद न प्रतीयेत ,तत, आत्मन: , मायाम्, विद्यात्, यथा, भास: , यथा, तम: न।शब्दार्थ - अर्थम् = पुरुषार्थरूप चिद्तत्व को। ऋते = बिना। यदचेतनम्= जो अचेतन तत्त्व। प्रतीयेत = प्रतीत होता है।देहानुस्मरण समय में आत्मस्वरूप का यथार्थ रूप से प्रकाशित नहीं होता हो। आत्मनि = जीवात्म स्वरूप के प्रतीति काल में। यत्= अचेतन। यद न प्रतीयेत = न प्रतीत होता है। तत्= वह। आत्मन: = परमात्मा की। मायाम्= प्रकृति। विद्यात्= समझे। यथा = जैसे। भास: = प्रकाश: तस्मिन्प्रकाशे। यथा तम: न = जैसे प्रकाश रहने पर अन्धकार भासित नहीं होता।तमसि च यथा प्रकाशो न भवति = अन्धकार हो जाने पर प्रकाश नहीं रहता उसी प्रकार चित्-अचित्दोनों परस्पर में विलक्षण हैं । परमात्मा के स्वरूप को कहकर उनके अङ्ग रूप चित्-अचित्के विलक्षण स्वरूप को कहते हैं।

श्लोकार्थ - चेतन तत्त्व के बिना जो अचेतन प्रतीत होता है - इसका भाव है कि देह के स्मरण समय में आत्मस्वरूप का यथार्थ में प्रकाशित न होना। जीवात्म स्वरूप के प्रकाश काल में अचित तत्त्व का प्रकाश नहीं होता है। यही परमात्मा की माया है। जैसे प्रकाश रहने पर अन्धकार भासित नहीं होता और अन्धकार हो जाने पर प्रकाश नहीं रहता। इसी प्रकार चेतन और अचेतन दोनों परस्पर में विलक्षण हैं।

विषेशार्थ - इस श्लोक का भाव है कि जड़ और चेतन दो तत्त्व हैं। इनमें से जड़ माया का पर्याय है। प्रकृति और अविद्या माया के अन्य नाम हैं। ज्ञानशून्य होने से जड़ को विकार उत्पन्न करने के कारण प्रकृति और देह में आत्मबुद्धि, परमात्मा के परतन्त्र आत्मा में स्वतन्त्र बुद्धि, अनीश्वर में ईश्वर बुद्धि, अन्यशेषत्व बुद्धि आदि विरीत ज्ञान उत्पन्न करने, अविद्या तथा सृष्टि के विशिष्ट कार्यो को करने से माया कहते हैं। भगवान् की अध्यक्षता में यह सृष्टि के निर्धारित कार्यो को करती है। इसीलिए भगवान्मायापति हैं। माया के कारण ही जीव संसार में अनेक प्रकार का कष्ट भोगता है। इसलिए कष्ट से सदा मुक्ति पाने के लिए सच्चे भक्त भगवान् की शरणागति करते हैं। अतएव स्वामी श्री रामानुजाचार्य ने शरणागति गद्यम्में भगवान्की शरणागति लेते हुए कहा है - **"मदीयानादिकर्म प्रवाहप्रवृत्तां भगवत्स्वरूपतिरोधानकरीं विपरीतज्ञानजननीं स्वविषयाश्च भोग्यबुद्धिर्जननीं देहेन्द्रियत्वेन भोग्यत्वेन सूक्ष्मरूपेण चावस्थितां दैवीं गुणमयीं मायां दासभूतम्शरणागतोऽस्मि तवास्मि दासः इति वक्तारं मां तारय।"** अर्थात् मेरे अनादि कर्मप्रवाह के कारण जिसकी प्रवृत्ति हुई है, जो भगवान्के स्वरूप को छिपाने वाली है, विपरीत ज्ञान की जननी है, अपने विषय में भोग्यबुद्धि उत्पन्न करने वाली है, देह, इन्द्रिय आदि शब्द, गुण तथा सूक्ष्म इन चार रूपों में स्थित है, ऐसी माया से मुझ दास का उद्धार करें, क्योंकि मैं आपका शरणागत हूँ एवं दास हूँ। चित्और अचित्तत्त्व में विलक्षणता यह है कि चित्यानी जीवात्मा सूक्ष्म है, नित्य तथा ज्ञानाश्रय स्वरूप है, और अचित्तत्त्व स्थूल, परिणामी और जड़ है। आत्मा स्वयं प्रकाशमान है उसे प्रकाशित करने के लिए प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती। अचित्तत्व अप्रकाशित है अतः उसे प्रकाशित करने के लिए अन्य प्रकाश की आवश्यकता होती है। इसीलिए प्रकाश और अन्धकार से उपमानित किया है। जैसे कि प्रकाश रहने पर अन्धकार नहीं रहता है और अन्धकार काल में प्रकाश नहीं रहता है - "यथाभासो यथातमः।" प्रकृति - पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार ये आठ रूप में विभक्त हैं। यह भोग्य, भोग, साधन और भोग स्थान के रूप में जगत्में स्थित है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि प्रकृति भोग्य है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ भोग के साधन हैं और जहाँ पर भोगते है वह स्थान भोग स्थान के रूप में है। भगवान्ने गीता सप्तम्अध्याय में अर्जुन से कहा कि मेरी माया त्रिगुणात्मक है। इस माया का विस्तार भी मैंने ही किया है। इस माया को पार पाना कठिन है। अगर मेरी माया से जो बचना चाहता है वह मेरी शरण में आ जाय।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्।।गी. 7।13।।
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।गी. 7।14।।

जीवात्मा के तीन भेद हैं - नित्य, मुक्त और बद्ध। नित्य जीव वैकुण्ठ में सदा भगवान्की सेवा में लगे रहते हैं। जो संसार में रहकर भगवान् की शरणागति आदि से माया के बन्धन से छूटकर वैकुण्ठ में चले गये हैं वे मुक्त कहलाते हैं। जो संसार की माया में लगे हुए हैं वे बद्ध जीव कहलाते हैं। बद्ध जीव को संसार की माया से छूटने के लिए भगवान् ने एकमात्र उपाय अपनी शरणागति बतलायी है।

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।

प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्।।2।9।34।।

इससे पूर्व परस्पर विलक्षण चिद्चिद्स्वरूप का वर्णन किया गया है। अब भगवान्यह बतला रहे हैं कि मैं इनमें प्रवेश कर इन पर शासन एवं इनका पालन करता हूँ। परन्तु इनके दोष मुझे स्पर्श नहीं कर पाते हैं।

अन्वय - अहम्, यथा, महान्ति, भूतानि, उच्चावचेषु, भूतेषु, प्रविष्टानि, तथा, तेषु, अप्रविष्टानि, अपि। शब्दार्थ - अहम् यथा महान्ति भूतानि = पृथ्वादीनि। उच्चावचेषु = उत्कृष्टापिकृष्टेषु। भूतेषु = सुरनरमृगादि शरीरेषु घटपटादिषु च प्रविष्टानि बहिरपि सन्ति। तथा = उसी प्रकार। तेषु = परिछिन्न चेतनाचेतन पदार्थेषु। अप्रविष्टानि अपि = न तेषु प्रविष्टः - बहिरपि व्याप्तः। श्लोकार्थ - भगवान् जैसे सुर-नर मृगादि शरीरों में और घट-पटादि प्राकृत पदार्थो में प्रविष्ट अर्थात्व्याप्त होकर भीतर में रहते हैं और वे चेतनाचेतन पदार्थो में प्रविष्ट न भी हैं और उनसे बाहर भी हैं।

विषेशार्थ - परस्पर में विलक्षण चित्-अचित्अर्थात चेतन-अचेतन इन दोनों के स्वरूप बतलाकर भगवान्इस श्लोक से यह बता रहे हैं कि वे उनमें प्रविष्ट रहते हैं, उन पर शासन करते हैं, और उनके अन्दर के दोष से बञ्चित रहते हैं। अर्थात् उनके अन्दर का दोष भगवान् को स्पर्श नहीं करता है।श्रुति कहती है - **"अन्तः प्रविष्टः शास्ताः जनानाम्।"** भगवान् सबके अन्दर में रहकर उनपर शासन करते हैं।

यच्चकिञ्चज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः।।नारायणानुवाक्।।

इस नारायणोपनिषद मन्त्र से यह सिद्ध है कि भगवान् जड़-चेतन रूप सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त होकर रहते हैं तथा उनके बाहर भी हैं।मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः।।गी.9।4।। यह सम्पूर्ण जड़-चेतन रूप जगत्अव्यक्त रूप मुझ परमेश्वर से व्याप्त है, परन्तु परमेश्वर जगत्में स्थित नहीं है। इसका भाव है भगवान्सम्पूर्ण जगत्के आधार हैं परन्तु भगवान्का आधार जगत् नहीं है। समस्त प्राणियों में रहने वाला वायु सबों को जीवित रखने के कारण सबका आधार है परन्तु वायु के आधार प्राणी नहीं होते हैं। इसी प्रकार परमात्मा सबों में रहकर सब के आधार हैं परन्तु परमात्मा का आधार कोई नहीं है। इसी भाव से भगवान्श्रीकृष्ण ने कहा **"न चाहं तेष्ववस्थितः।"**

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा।।2।9।35।।

अन्वय एवं शब्दार्थ - आत्मनः = परमात्मनः। तत्त्वजिज्ञासुना = स्वरूपं ज्ञातुमिच्छुना। एतावदेव = परस्पर विलक्षण स्वरूप स्वभाव चेतनाचेतनान्मरात्मभूतपरमात्मस्वरूपमेव। अन्वयव्यतिरेकाभ्यां= प्रकृतिपुरुष शरीरकपरमात्मन एव कार्यात्मना कारणात्मना च सद्भावात्। व्यतिरेकात्= चेतनाचेतनशरीरक परमात्मातितिक्तिवस्त्वन्तराभावात्। जिज्ञास्यम्= चिदचिद्विष्टब्रह्म प्रधानतया ज्ञेयम्।चेतनाचेतनवैलक्षण्माह = यः स्यादिति। यत्= परमात्मनस्तावन्मत्स्वरूपम्स्यात्इति। जीवत्यावृत्तिरभिहिता। तस्याणुत्वेन सार्वत्रिकत्वाभावात्इत्यञ्च। "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इत्युक्तब्रह्मस्वरूपलक्षणमभिसंहितं भवति।

श्लोकार्थ - परमात्मा के स्वरूप को जानने की जिनकी इच्छा है वे परस्पर विलक्षण स्वरूप स्वभाव चेतन और अचेतन के अन्दर रहनेवाले परमात्मा के स्वरूप को समझ ले। प्रलयकाल में सूक्ष्म चेतन और अचेतन परमात्मा के शरीर होते हैं। वे ही जगत्के उपादान कारण होते हैं और स्थूल जड़-चेतन स्वरूप परमात्मा के जगत्रूप कार्य हैं। यही अन्वय है और जड़-चेतन शरीरक परमात्मा के अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु नहीं है।

विषेशार्थ - चित्और अचित्विशिष्ट ब्रह्म प्रधान ज्ञेय एवं ध्येय हैं।

अन्योऽय सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेदं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा।।

सभी शास्त्रों को बार-बार अध्ययन कर तथा उनपर बार-बार विचार करने पर यही निश्चय होता है कि कल्याण चाहने वाले को एक नारायण का ही ध्यान करना चाहिए। माया के बन्धनों से जीवों का सदा के लिए वही कल्याण करने वाले हैं। महाभारत में युधिष्ठर जी ने भीष्मपितामह से यही प्रश्न किया है कि

केन सृष्टमिदं सर्वं जगत्स्थावर जङ्गमम्।
प्रलये च कमभ्येति तन्मे ब्रूहि पितामह।।

हे पितामह! इस स्थावर जङ्गात्मक सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि किसने की ? प्रलय में यह जगत्किसमें जाकर लीन होता है इस बात को बतावें। भीष्मपितामह ने कहा -

नारायणो जगन्मूर्तिरनन्तात्मा सनातनः।
ऋषयः पितरो देवाः महाभूतानि धातवः।
जङ्गमाजङ्गमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम्।।

अपरिछिन्न स्वरूप वाले नारायण ही विश्वरूप लेकर विराजमान हैं। ऋषिगण, पितृगण, आकाशादि पञ्चमहाभूत उनसे होनेवाले रक्त, मांस, मज्जादि सात धातु, स्थावर जङ्गम आदि सम्पूर्ण जगत् नारायण से ही उत्पन्न हुए हैं। महाभारत के इस प्रकरण से नारायण परम-तत्त्व एवं परब्रह्म सिद्ध होते हैं। श्रीविष्णुपराण के उपक्रम एवं उपसंहार से सिद्ध होता है कि श्रीविष्णु ही जगत्के कारण तथा परम तत्त्व हैं।

मैत्रेय मुनि ने श्री पराशर से प्रश्न किया है -

सोऽहमिच्छामि धर्मज्ञ श्रोतुं त्वत्तो यथा जगत्।
बभूव भूयश्च यथा महाभाग भविष्यति।।
यन्मयं च जगद्ब्रह्मन्यतश्चैतच्चराचरम्।
लीनमासीद्यथा यत्र लयमेष्यति यत्र च।। वि. पु. 1।1।4-5।

हे धर्मज्ञ! मैं आपसे सुनना चाहता हूँ कि यह चराचर जगत्पूर्व में किससे उत्पन्न हुआ है ? जगत्का उपादान कारण या निमित्त कारण एक ही था या भिन्न-भिन्न ? और आगे यह जगत्किससे उत्पन्न होने वाला है ? इस जगत्की स्थिति का कारण कौन है ? यह जगत्पूर्व में किसमें लीन था, उत्तर काल में किसमें और किस प्रकार लीन होगा ? पराशर जी ने कहा -

विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत्तत्रैव च स्थितम्।

स्थितिसंयमकर्ताऽसौ जगतोऽस्य जगच्च सः।। वि. पु. 1।1।31।।

यह जगत् श्रीविष्णु भगवान्से उत्पन्न हुआ है। आज का जगत्ही नहीं वल्कि पूर्व के सभी कल्पों में जितनी बार जगत् उत्पन्न हुआ है सभी श्रीविष्णु भगवान्से ही उत्पन्न हुआ है। ये ही जगत्के आदि, उपादान एवं निमित्त कारण हैं। जगत् इनमें ही स्थित है, ये ही इसके स्थिति एवं लय के कर्ता है। ये ही जगत्भी हैं।

यहाँ विष्णु शब्द व्यापक तत्त्व श्रीमन्नारायण का वाचक है। पुन: उपसंहार में पराशर जी कहते हैं -

प्रकृतिर्या मयाऽऽख्याता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी।

पुरुषश्चाप्युभावेतौ लीयेते परमात्मनि।।

परमात्मा च सर्वेषामाधार: परमेश्वर:।

विष्णुनामा स वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते।। वि. पु. 6।4।39-40।।

जिस व्यक्त और अव्यक्त स्वरूपिणी प्रकृति का मैंने वर्णन किया है वह तथा पुरुष ये दोनों भी उसी परमात्मा में लीन अर्थात स्थित हो जाते हैं। वह परमात्मा सबका आधार एवं एकमात्र अधीश्वर है। उसी का वेद और वेदान्तों में विष्णु नाम से वर्णन किया है। यहाँ भागवत में भी वही विष्णु भगवान् जगत्के कारण एवं परमतत्त्व से वर्णित हैं। ब्रह्मा ने भगवान्से प्रार्थना पूर्वक निवेदन किया था -

भगवच्छिक्षितमहं करवाणि ह्यतन्द्रित:।

नेहमान: प्रजासर्गं बध्येयं यदनुग्रहात्।।2।9।28।।

आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिए कि मैं सजग रहकर सावधानी से आपकी आज्ञा का पालन कर सकूँ और सृष्टि की रचना करते समय अभिमान से मुक्त रहूँ। ब्रह्मा के इसी निवेदन पर भगवान्ने कहा -

एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना।

भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्।।2।9।36।।

अन्वय - परमेण, समाधिना, एतत्, मतम्, समातिष्ठ, भवान्, कल्पविकल्पेषु, कर्हिचिदपि, न विमुह्यति। शब्दार्थ - परमेण समाधिना = चित्त को एकाग्र करके। एतत्मतम्= इस मत का।, समातिष्ठ = हृदय में स्थिर कर। भवान्= इसी से आप। कल्पविकल्पेषु = सर्ग, सृष्टि और प्रलय में, (कल्प यानी सृष्टि, एवं विकल्प अर्थात्संहार, अथवा कल्पों में जो विविध प्रकार की सृष्टि है)। कर्हिचित्अपि = कभी भी। न विमुह्यति = भगवत्अधीनता का स्मरण करके मोहित न होंगे।अर्थात्कर्तृत्व का अभिमान न होगा।

श्लोकार्थ - भगवान्ने ब्रह्मा से कहा कि एकाग्र चित्त होकर इस मत का स्मरण करो और हृदय में स्थित कर लो। इससे आप विविध प्रकार की सृष्टि और प्रलय के हेतु बन भगवत्आश्रय का स्मरण करते हुए कर्तृत्व के अभिमान से मुक्त रहेंगे।

विषेशार्थ - कर्मफल की आसक्ति होने पर कर्म बन्धन कारक होता है। परन्तु कर्मफल से आसक्ति नहीं होने पर कर्म बन्धन कारक नहीं होता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के चौथे अध्याय में कहा है कि -

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।

इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते।।गी. 4।14।।

अर्थात् ब्रह्मा से कीटाणु पर्यन्त जितने प्राणी हैं सबों के सृजन में पुण्य-पाप रूप अपने -अपने पूर्वजन्म के कर्म ही के कारण होते हैं।भगवान् तो निमित्त मात्र है। इसीलिए श्रीपराशर जी ने कहा है कि जीवों की रचना में देवाधिदेव परम पुरुष केवल निमित्त मात्र है। उनकी विचित्र रचना में प्रधान कारण जीवों का प्राचीन कर्म है। अपनी प्राचीन कर्म की शक्ति से देवादि अपने-आपही अपने स्वरूप को प्राप्त होते हैं।

जिस कर्म के फल की इच्छा होती है वही कर्म बन्धन कारक होता है। भगवान् सभी कामनाओं से परिपूर्ण हैं। उन्हें जगत् निर्माणादि से कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं होता। समस्त चराचर के कल्याण के लिए वे ऐसा करते हैं। अतएव जगत्की रचना आदि के कर्म उनके लिए बन्धन कारक नहीं होते हैं। गुण-कर्म के अनुसार सृष्टि की रचना के कारण जगत्में धनी-निर्धन, रोगी-निरोग, पण्डित-मूर्ख, सुखी-दु:खी आदि विविधता में भगवान्दोषी नहीं माने जाते हैं। अगर किसी के पूर्व कर्म की उपेक्षा कर भगवान् स्वतन्त्र रूप से प्राणियों की सृष्टि करते तब उनपर निर्दयता एवं विषमता का दोष आ सकता था, परन्तु ऐसी बात नहीं है।

ब्रह्मसूत्र प्रणेता श्रीव्यास जी ने स्पष्ट कर दिया है कि सृष्टि की विषमता से ईश्वर में निर्दयता एवं विषमता का दोष नहीं लगता है। क्योंकि सृष्टि रचना कर्म सापेक्ष है। जिसकी आत्मा में गुण-कर्म का जैसा संस्कार चिपका रहता है उसके अनुसार ही भगवान्सृष्टि करते हैं। **वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथा हि दर्शयति।।ब्र. सू. 2।1।34।।** जीवों का कर्म ही वैषम्य आदि का कारण है।जीवों को कर्मानुसार ही देव आदि शरीरों से सम्बन्ध होता है। इस अर्थ का वर्णन स्वयं श्रुति करती है। श्रुति का यह वचन है कि **"साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति।"** अर्थात् पुण्य करने वाला उत्तम शरीरधारी होता है तथा पाप करने वाला निकृष्ट शरीरधारी होता है। जिसने अपने मन को जीत लिया है उसका मन ही मित्र के समान हितकारी है। जिसने मन को वश में नहीं किया उसका मन ही उसके लिए है शत्रु।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जित:।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।।गी. 6।6।।

श्रीपराशर जी ने कहा है कि -

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:।
बन्धाय विषयासङ्गि मुक्त्यै निर्विषयं मन:।।वि.पु. 6।7।28।।

मन ही मनुष्य के बन्धन एवं मोक्ष में कारण है। विषयासक्त मन बन्धन में विषयासक्ति रहित मन मुक्ति में कारण है। इसी भाव को अवगत कराने के लिए भगवान्ने ब्रह्मा से कहा कि **"परमेण समाधिना एतन्मतं समातिष्ठ।"** यहाँ एक शंका होती है कि सृष्टि से पूर्व जीवों के कर्म नहीं रहते हैं क्योंकि उस समय जीव ही नहीं रहते हैं। उस समय जीवों का अभाव **"सदेव सोम्येदमग्र आसीत्।छा. 6।2।1।।"** इस श्रुतिवचन से यह सिद्ध होता है कि सृष्टि के पूर्व प्रलयकाल में एकमात्र सत् ब्रह्म ही था। उस समय जीवों का विभाग नहीं था। ऐसी स्थिति में जीवों के अभाव होने से उसके कर्म कैसे रह सकते हैं। इसका समाधान है कि जीव और उसका कर्म अनादि है। जीव का स्वरूप अनादि होने पर भी प्रलयकाल में नाम-रूप विभाग न होने से **"एकमेवाद्वितीयम्"** यह कह कर अविभाग का वर्णन किया गया है।

अतएव श्रीव्यास जी ने लिखा है कि - **न कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वात्।।ब्र. सू. 2।1।35।।** अर्थात् जगत्की उत्पत्ति के पूर्व जीवों एवं उनके कर्म का विभाग नहीं था ऐसी बात नहीं है "अनादित्वात्।" क्योंकि जीव और उनके कर्म अनादि हैं। जीवों के अनादि होने का वर्णन श्रुति-स्मृति में स्पष्ट किया गया है। **तद्धेदं तर्ह्य व्याकृतमासीत्, तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियत।बृ 1।4।7।। न जायते म्रियते वा विपश्चित्।।कठ. 1।2।18।। प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।।गी. 13।19।। नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।।कठ. 2।2।13।।**

मायां विविदिषन्विष्णोर्मायेशस्य महामुनिः।
महाभागवतो राजन्पितरं पर्यतोषयत्।।2।9।41।।
तस्मा इदं भागवतं पुराणं दशलक्षणम्।
प्रोक्तं भगवता प्राह प्रीतः पुत्राय भूतकृत्।।2।9।43।।
नारदः प्राह मुनये सरस्वत्यास्तटे नृप।
ध्यायते ब्रह्म परमं व्यासायामिततेजसे।।2।9।44।।

नारद जी ने अपनी सेवा से अपने पिता ब्रह्मा जी को प्रसन्न किया। ब्रह्मा जी ने उन्हें दस-लक्षण वाला भागवत महापुराण सुनाया। शुकदेव जी ने कहा कि बद्रिकाश्रम में सरस्वती के किनारे अवस्थित आश्रम में मेरे पिता व्यास जी को यही भागवत नारद जी ने सुनाया था। परीक्षित्! तुम्हारे सृष्टि-विषयक प्रश्नों का उत्तर उसी भागवत से सुनाता हूँ।

2।9 पुराणों के दस लक्षण

भागवत पुराण के दस लक्षण हैं - सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय।

सर्ग - गुणों के क्षोभ से पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रायें, इन्द्रियाँ, अहंकार एवं महतत्त्व की उत्पत्ति।

विसर्ग - ब्रह्मा जी द्वारा विराट स्वरूप से चराचर की सृष्टि।

स्थान - सृष्टि का भगवान्के कारण मर्यादा में स्थित होना।

पोषण - "पोषणं तदनुग्रहः" भगवान् की कृपा से सृष्टि के जीव का पालन होता है।

मन्वन्तर - भगवद्भक्ति और प्रजापालन के धर्म का अनुष्ठान मन्वन्तर के अधिपति करते हैं।

ऊति - वासना का कर्म-बन्धन।

ईशकथा - भगवान्के विभिन्न अवतार एवं उनके भक्तों के आख्यान।

निरोध - योगनिद्रा में प्रलयोपरान्त सृष्टि को समेट कर अपने उदर में अक्षुण्ण रखना।

मुक्ति - भगवद्स्वरूप में स्थित हो जाना।

आश्रय - उत्पत्ति एवं प्रलय करने वाले भगवान्ही आश्रय हैं।

।। दूसरा स्कन्ध पूरा हुआ ।।

श्रीमते रामानुजाय नमः।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध 3

वन्दउँ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

3।1 विदुर जी एवं उद्धव जी का समागम

एवमेतत्पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान् किल।
क्षत्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहमृद्धिमत्।।3।1।1।।

दूसरे स्कन्ध में वर्णित राजा परीक्षित के प्रश्न के सन्दर्भ को आगे बढ़ाते हुए शुकदेव जी ने कहा कि जब विदुर जी ने अपना सर्वस्व त्याग कर दिया था और तीर्थ-भ्रमण के अन्तराल उद्धव जी से भेंट होने पर भगवान् कृष्ण का आदेश सुन हरिद्वार गंगा तट पर मैत्रेय मुनि के पास जाकर तब इसी तरह के प्रश्न पूछे थे।

यद्वा अयं मन्त्रकृद्वो भगवानखिलेश्वरः।
पौरवेन्द्रगृहं हित्वा प्रविवेशात्मसात्कृतम्।।3।1।2।।

जब भगवान् पाण्डव-दूत बनकर हस्तिनापुर गये थे तब दुर्योधन का भोजन त्यागकर बिना बुलाये विदुर जी के घर पहुँचे थे। राजा ने जिज्ञासा कि विदुर जी एवं मैत्रेय का समागम कैसे हुआ था। महान लोगों का वार्तालाप लोकहित के लिए ही होता है। विदुर जी के घर छोड़ने का क्या कारण था। इस पर शुकदेव जी ने कहा -

यदा तु राजा स्वसुतानसाधून् पुष्णन्धर्मेण विनष्टदृष्टिः।
भ्रातुर्यविष्ठस्य सुतान् विबन्धून् प्रवेश्य लाक्षाभवने ददाह।।3।1।6।।

अपने पुत्रमोह में बुद्धि भ्रष्ट धृतराष्ट्र पाण्डवों को लाक्षागृह में जलाने की योजना का भागीदार बना।

यदा सभायां कुरुदेवदेव्याः केशाभिमर्शं सुतकर्म गर्ह्यम्।
न वारयामास नृपः स्नुषायाः स्वास्रैः हरन्त्याः कुच-कुङ्कुमानि।।3।1।7।।

भरी सभा में पुत्रवधू के अश्रुधार बहने पर भी द्रौपदी के केश खींचते अपने बेटे दुःशासन को नहीं रोका। उस सभा में उपस्थित वयोवृद्ध भी इस घटना का न तो प्रतिवाद कर सके थे और न धर्मलोप होने के द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर दे सके थे। उस समय विदुर ने भरी सभा में दोनों हाथ उठाकर कहा था कि आपलोग द्रौपदी के धर्म सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर न देकर बड़े अनर्थ को प्रोत्साहन दे रहे हैं। (महाभारत सभापर्व 65।52।)

द्यूते त्वधर्मेण जितस्य साधोः सत्यावलम्बस्य वनागतस्य
न याचतोऽदात्-समयेन तमो जुषाणो यदजातशत्रोः।।3।1।8।।

जुए में छल से युधिष्ठर को वनवास दिया। वन से लौटने पर धृतराष्ट्र ने उनका उचित राजभाग नहीं दिया।

यदा च पार्थप्रहितः सभायां जगद्गुरुः यानि जगाद कृष्णः।
न तानि पुसाम्-अमृतायनानि राजोरु मेने क्षतपुण्यलेशः।।3।1।9।।

पाण्डवों को राजभाग लौटाने के लिए अर्जुन द्वारा भेजे गये भगवान्कृष्ण की बात क्षीणपुण्य धृतराष्ट्र ने ठुकरा दी। भीष्म एवं विदुर को भगवान्की सलाह पसन्द थी। धृतराष्ट्र घटते पुण्य से शीघ्र ही राजपाट गँवायेगा।

यदोपहूतो भवनं प्रविष्टो मन्त्राय पृष्टः किल पूर्वजेन।

अथाह तन्मन्त्रदृशां वरीयान्यन्मन्त्रिणो वैदुरिकं वदन्ति।।3।1।10।।

भगवान्की अवज्ञा से धृतराष्ट्र ने भयभीत होकर विदुर को बुलाया। विदुर ने उचित नीति की बात कही जिसे **"विदुर नीति"** कहते हैं। निम्नांकित तीन श्लोकों में उसका सारांश है।

अजातशत्रोः प्रतियच्छ दायं तितिक्षतो दुर्विषहं तवागः।

सहानुजो यत्र वृकोदराहिः श्वसन्रुषा यत्त्वमलं बिभेषि।।3।1।11।

पार्थास्तु देवो भगवान्मुकुन्दो गृहीतवान्स क्षितिदेवदेवः।

आस्ते स्वपुर्यां यदुदेवदेवो विनिर्जित-अशेष-नृदेवदेवः।।3।1।12।।

युधिष्ठर आपके अपराधों को सहते जा रहे हैं। भीम से आप डरते हैं और वह अपने भाईयों के साथ काले नाग की तरह फुँफकार रहा है।पाण्डव भगवान् कृष्ण के आत्मीय हैं।भगवान् अपनी पुरी द्वारिका में रहते हैं। समस्त राजागण उनके मातहत हैं। वे ब्राह्मण एवं देवताओं के पूज्य हैं।

स एष दोषः पुरुषद्विडास्ते गृहान् प्रविष्टो यमपत्यमत्या।

पुष्णासि कृष्णाद्विमुखो गतश्रीः त्यज-आशु-अशैवं कुलकौशलाय।3।1।13।।

दुर्योधन दोष की मूर्ति है। आप उसके विरोध में बोल नहीं पाते हैं। वह भगवान्से विमुख होकर उनसे द्वेष रखता है। आप इसीलिए श्रीहीन हो रहे हैं।दुर्योधन का त्याग कर दीजिये।

इति-ऊचिवान्-तत्र सुयोधनेन प्रवृद्धकोप-स्फुरित-अधरेण।

असत्कृतः सत्स्पृहणीयशीलः क्षत्ता सकर्ण-अनुज-सौबलेन।।3।1।14।।

धर्मसंगत बात सुन दुर्योधन ने विदुर जी को अपमानित किया। कर्ण, दु:शासन तथा शकुनि के समर्थन से उनको अपमानित करते हुए बोला, "हमारा अन्न खाकर हम से ही शत्रुभाव रखता है। इस दासीपुत्र को किसने बुलाया? इसका जान मत लो परन्तु पीट-पीट कर यहाँ से दूर भगा दो।"

स इत्थम्-अतिउल्बण-कर्णबाणैः-भ्रातुः पुरो मर्मसु ताडितोऽपि

स्वयं धनुर्द्वारि निधाय मायां गतव्यथो-अयात्-उरु मानयानः।।3।1।16।।

धृतराष्ट्र के सामने अपमानित हो उन्हें मर्मभेदी दु:ख हुआ। परन्तु भगवान्की माया समझ अपना धनुष राजमहल के दरवाजे पर छोड़ हस्तिनापुर से बाहर चले गये।

स निर्गतः कौरव-पुण्यलब्धो गजाह्वयात्-तीर्थपदः पदानि।

अन्वाक्रमत्-पुण्यचिकीर्षया-उर्व्यां स्वधिष्ठितो यानि सहस्रमूर्तिः।।3।1।17।।

विदुर जी के पुण्य से कौरव लाभान्वित हुए थे। पुण्यार्जन की ईच्छा से वे भगवान्का ध्यान कर तीर्थपर गये।

गां पर्यटन्-मेध्य-विविक्तवृत्तिः सदाऽऽप्लुतोऽधः शयनोऽवधूतः।

अलक्षितः स्वैः अवधूतवेषो व्रतानि चेरे हरितोषणानि।।3।1।19।।

भगवद् प्रीति के लिए एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ में विदुर जी स्नान तथा भूमिशयन करते।

ततः तु अतिव्रज्य सुराष्ट्रमृद्धं सौवीर-मत्स्यान्कुरुजाङ्गलांश्च।

कालेन तावत्-यमुनाम्-उपेत्य तत्र-उद्धवं भागवतं ददर्श।।3।1।24।।

प्रभास क्षेत्र में कौरवों के नाश का समाचार मिला। दु:खी मन से सरस्वती किनारे मन्दिरों के दर्शन से शान्ति प्राप्त कर यमुना तट पर आये जहाँ उद्धव जी से भेंट हुई।

स वासुदेवानुचरं प्रशान्तं बृहस्पते: प्राक्तनयं प्रतीतम्।

आलिङ्ग्य गाढं प्रणयेन भद्रं स्वानाम्-अपृच्छत्-भगवत्प्रजानाम्।।3।1।25।।

बृहस्पति के शिष्य उद्धव जी का विदुर जी ने गाढ़ा आलिंगन किया।भगवान्एवं उनके सुहृतों के समाचार पूछे।

कच्चित्पुराणौ पुरुषौ स्वनाभ्य-पाद्म-अनुवृत्त्येह किल-अवतीर्णौ।

आसात उर्व्या: कुशलं विधाय कृतक्षणौ कुशलं शूरगेहे।।3।1।26।।

नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्मा जी की प्रार्थना पर पृथ्वी का भार हरने वाले पुराण-पुरुष भगवान्कृष्ण भाई बलराम के साथ शूरसेन पुत्र वसुदेव जी के घर कुशल हैं न ? विदुर जी ने आगे पूछा कि वसुदेव जी कुशल हैं न ? कंस से प्रताड़ित उग्रसेन कैदखाने से मुक्त हो अब कुशल हैं न ? भगवान्के सुहृद सात्यकि आदि कुशल हैं न ?

कच्चिद्बुध: स्वस्ति-अनमीव आस्ते श्वफल्कपुत्रो भगवत्प्रपन्न:।

य: कृष्णपादाङ्कित-मार्गपांसुषु-अचेष्टत प्रेमविभिन्न-धैर्य:।।3।1।32।।

भगवान् को मथुरा ले जाने जब अक्रूर व्रज आये थे तब वे भगवान्के चरणाङ्ति धूल में लेटने लगे थे।

अपि-स्वित्-आस्ते भगवान्सुखं वो य: सात्वतां कामदुघोऽनिरुद्ध:।

यमामनन्ति स्म ह शब्दयोनिं मनोमयं सत्त्व-तुरीय-तत्त्वम्।।3।1।34।।

मन के अधिष्ठातृ देव अनिरुद्ध जिनसे शब्द-ब्रह्म वेद की उत्पत्ति हुई है कुशल हैं न ?

अपि स्वदोर्भ्या विजय-अच्युताभ्यां धर्मेण धर्म: परिपातु सेतुम्।

दुर्योधनोऽतप्यत यत्सभायां साम्राज्य-लक्ष्म्या विजयानुवृत्त्या।।3।1।36।।

युधिष्ठर की राजसभा देख दुर्योधन ने ईर्ष्या की। भगवान्जिनकी भुजा हैं वही अर्जुन धर्म का पालन करते हैं?

किं वा कृताघेषु-अघम-अति-अमर्षी भीमोऽहिवत्-दीर्घतमं व्यमुञ्चत्।

यस्य-अङ्घ्रिपातं रणभू: न सेहे मार्गं गदायाश्चरतो विचित्रम्।।3।1।37।।

गदा के साथ भीम के पैंतरे से भूमि डोलती है। उन्होंने सर्प के फुफकार के समान क्रोध तथा दुर्योधन से प्रतिहिंसा भाव को अब त्याग दिया है न ?

कच्चित्-यशोधा रथयूथपानां गाण्डीवधन्व-उपरत-अरि: आस्ते।

अलक्षितो यत्-शर-कूटगूढो मायाकिरातो गिरिश: तुतोष।।3।1।38।।

शिव जी से पाशुपत दिव्यास्त्र प्राप्त करने वाले गाण्डीवधारी अर्जुन शत्रुओं का विनाश कर सकुशल हैं न ?

अहो पृथापि ध्रियतेऽर्भकार्थे राजर्षिवर्येण विनापि तेन।

य: तु-एकवीरोऽधिरथो विजिग्ये धनुर्द्वितीय: ककुभ: चतस्र:।।3।1।40।।

राजर्षि पाण्डु ने अकेले एक ही धनुष से विश्वविजय पायी थी।उनके निधन के बाद बहुत कष्ट से बच्चों का लालन-पालन करने वाली कुन्ती की कुशलता का क्या पूछूँ ?

सौम्यानुशोचे तमध:पतन्तं भ्रात्रे परेताय विदुद्रुहे य:।

निर्यापितो येन सुहृत्स्वपुर्या अहं स्वपुत्रान्समनुव्रतेन।।3।1।41।।

सोऽहं हरेः मर्त्यविडम्बनेन दृशो नृणां चालयतो विधातुः।

नान्योपलक्ष्यः पदवीं प्रसादाच्चरामि पश्यन् गतविस्मयोऽत्र। ।3।1।42। ।

पाण्डु पुत्रों के साथ दुर्व्यवहार कर अपने पुत्रों के कहने पर मुझे घर से निकालने वाले पतित धृतराष्ट्र के लिए मैं बहुत दुःखी हूँ।सबको भ्रमित रखने वाले भगवान्कृष्ण का ही स्मरण करते हुए मैं तीर्थों में घूम रहा हूँ।

नूनं नृपाणां त्रि-मद-उत्पथानां महीं मुहुश्चालयतां चमूभिः।

वधात्-प्रपन्नार्ति-जिहीर्षय-ईशो-अपि-उपैक्षत-अघं भगवान् कुरूणाम्। ।3।1।43। ।

पाण्डवों पर किये गये अत्याचार की उपेक्षा कर भगवान्ने सहयोगियों सहित दुर्योधन का अन्त करा दिया।

अजस्य जन्म-उत्पथ-नााशनाय कर्माणि-अकर्तुः ग्रहणाय पुंसाम्।

ननु-अन्यथा कोऽर्हति देहयोगं परो गुणानामुत कर्मतन्त्रम्। ।3।1।44। ।

भगवान् जन्म-कर्म से रहित हैं परन्तु अपने दिव्य जन्म एवं कर्म से मनुष्यों को आकर्षित करते हैं।

तस्य प्रपन्न-अखिल-लोक-पानाम्-अवस्थितानाम्-अनुशासने स्वे।

अर्थाय जातस्य यदुषु-अजस्य वार्ता सखे कीर्तय तीर्थकीर्तेः। ।3।1।45। ।

उद्धव जी को भगवान् का सखा तथा भक्त जान विदुर जी ने उन्हें अधिकारी होने के नाते तीर्थों को कीर्ति देने वाली भगवान्की पावन-कथा सुनाने को कहा जो विश्व के राजाओं को अहैतुकी आश्रय देने वाले हैं।

3।2 उद्धव जी द्वारा भगवान्का लीला गुणगान करना

इति भागवतः पृष्टः क्षत्त्रा वार्तां प्रियाश्रयाम्।

प्रतिवक्तुं न चोत्सेह औत्कण्ठ्यात्-स्मारितेश्वरः।3।2।1। ।

यः पञ्चहायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः।

तत्-न-ऐच्छत्-रचयन्यस्य सपर्यां बाललीलया। ।3।2।2। ।

स कथं सेवया तस्य कालेन जरसं गतः।

पृष्टो वार्तां प्रतिब्रुयाद्भर्तुः पादावनुस्मरन्। ।3।2।3। ।

विदुर जी के प्रश्न सुन ऊद्धव जी भावविह्वल हो गये।गला भर आया। कुछ बोल न सके। पाँच वर्ष की अवस्था में भगवान्की गुड़िया की सेवा छोड़ माँ के बुलाते रहने पर भी वे भोजन नहीं करते थे। सारा जीवन भगवान्की चरणसेवा में लगे रहे। वृद्धावस्था आने पर भी विदुर जी के प्रश्न से सब स्मरण हो आया।

स मुहूर्तम्-अभूत्तूष्णीं कृष्णाङ्घ्रि-सुधया भृशम्।

तीव्रेण भक्तियोगेन निमग्नः साधु निर्वृतः। ।3।2।4। ।

पुलकोद्भिन्न-सर्वाङ्गो मुञ्चन्-मीलत्-दृशा शुचः।

पूर्णार्थो लक्षितः तेन स्नेहप्रसर-सम्प्लुतः। ।3।2।5। ।

शनकैः भगवल्लोकात्-नृलोकं पुनरागतः।

विमृज्य नेत्रे विदुरं प्रत्याहोद्धव उत्स्मयन्। ।3।2।6। ।

मुहूर्त भर चुप रहे। प्रगाढ़ भक्तियोग में डूबकर आनन्दित हो गये। श्रीचरणों के अमृतरस में डूब गये। पुलकित हो गये। कुछ देर बाद भागवत-भाव से मनुष्य स्तर पर आकर आँसू पोछते हुए प्रसन्न होकर उद्धव जी बोले।

कृष्णद्युमणि-निम्लोचे गीर्णेषु-अजगरेण ह।

किं नु नः कुशलं ब्रूयां गतश्रीषु गृहेष्वहम्।।3।2।7।।

भगवान् रूपी सूर्य अस्त होते ही हम श्रीहीन हो गये।हमलोगों के घरों को कालरूपी अजगर निगल गया। आत्मीय जनों का मैं क्या हाल सुनाऊँ।इसी श्लोक से उद्धव जी ने विदुर जी को समाचार का सार सुना दिया।

दुर्भगो बत लोकोऽयं यदवो नितरामपि।

ये संवसन्तो न विदुर्हरिं मीना इवोडुपम्।।3।2।8।।

यदुवंशी भगवान्‌को समझ नहीं पाये। तालाव में मछलियाँ पूर्ण चन्द्र के प्रतिविम्ब के साथ उसे अपनों में से एक समझ खेलती रहती हैं। बादल से ओझल होने पर वस्तु स्थिति समझ पाती हैं।

इङ्गितज्ञा : पुरुप्रौढा एकारामश्च सात्वताः।

सात्वतामृषभं सर्वे भूत-आवासम्-अमंसत।।3।2।9।।

देवस्य मायया स्पृष्टा ये चान्यदसदाश्रिताः।

भ्राम्यते धीर्न तद्वावक्यैः आत्मनि-उप्तात्मनो हरौ।।3।2।10।।

यादवों ने उन्हें मात्र एक श्रेष्ठ यादव ही समझा। मायावश वे उन्हें एक मित्र ही मानते थे। परन्तु शिशुपाल के वैरभाव रखने पर भी सन्त-स्वभाववाले जरा भी विचलित नहीं होते थे।

प्रदर्श्य-अतप्त-तपसाम्-अवितृप्त-दृशां नृणाम्।

आदाय-अन्तः अधात्-यः तु स्वबिम्बं लोकलोचनम्।।3।2।11।।

यन्मर्त्य-लीलौपयिकं स्वयोग मायाबलं दर्शयता गृहीतम्।

विस्मापनं स्वस्य च सौभग-ऋर्द्धेः परं पदं भूषण-भूषणाङ्गम्।।3।2।12।।

भगवान् के श्रीस्वरूप से अभी कम तपस्यावाले तृप्त भी नहीं हो पाये थे कि वे तिरोहित हो गये।अपनी योगमाया से उन्होंने सुन्दर स्वरूप धारण किया था जिससे उनके शरीर के आभूषण भी शोभायमान रहते थे।

यद्धर्मसूनोः बत राजसूये निरीक्ष्य दृक्-स्वस्त्ययनं त्रिलोकः।

कार्त्स्न्येन चाद्येह गतं विधातुः -अर्वाक्सृतौ कौशलम्-इति-अमन्यत।।3।2।13।।

यस्यानुराग-प्लुत-हास-रास-लीलावलोक-प्रतिलब्ध-मानाः।

व्रज-स्त्रियो दृग्भिः अनुप्रवृत्त- धियो - अवतस्थुः किल कृत्यशेषाः।।3।2।14।।

स्वशान्तरूपेषु - इतरैः स्वरूपैः - अभ्यर्द्यमानेषुः - अनुकम्पितात्मा।

परावरेशो महदंशयुक्तो हि - अजोऽपि जातो भगवान् यथाग्निः ।।3।2।15।।

राजसूय यज्ञ में इनका सौन्दर्य देख सभी विस्मित हो यह समझते थे कि विधाता की सारी निपुणता के ये एकमात्र श्रेष्ठतम दृष्टान्त हैं। व्रज की गोपियाँ उनके अनुराग भरे हास-परिहास, सम्भाषण एवं लीलाओं से अभिभूत हो संसार की अन्य बातें भूल गयीं थी।शान्त स्वरूप महात्माओं की रक्षा एवं अशान्त स्वरूप असुरों के विनाशहेतु वे जन्म लिये थे। ब्रह्मा से लेकर अन्य सभी जीव यहाँ निम्नकोटि के हैं। चैतन्य - परावरेशो - भगवान् लकड़ी में सोयी अग्नि की भाँति प्रकट होनेवाले अपने नित्यधाम को चले गये।

मां खेदयति - एतत्- अजस्य जन्मविडम्बनं यत्वसुदेवगेहे।

व्रजे च वासोऽरिभयादिव स्वयं पुराद्व्यवात्सीत्यत्अनन्तवीर्य:। ।3।2।16। ।

अजन्मा होकर भी वसुदेव जी के घर में जन्म लिये। शत्रुभय से व्रज में निवास किये। अनन्त पराक्रमी होकर भी अपने शत्रु, जरासन्ध एवं कालयवन के कारण मथुरा पुरी छोड़कर भाग गये।

दुनोति चेत: स्मरतो ममैतद् यदाह पादावभिवन्द्य पित्रो:।

तात-अम्ब कंसात्उरु-शङ्कितानां प्रसीदतं नोऽकृत-निष्कृतीनाम्। ।3।2।17। ।

को वा अमुष्य-अङ्घ्रिसरोज-रेणुं विस्मर्तुम्-ईशीत पुमान् विजिघ्रन्।

यो विस्फुरद्-भ्रूविटपेन भूमेर्भारं कृतान्तेन तिरश्चकार। ।3।2।18। ।

कंस-बध के बाद भगवान् माता-पिता से क्षमा मांगते हैं। कंस के भय से आपकी सेवा में न आ सका था। आपलोग मुझ पर प्रसन्न हों। उनकी भौहों की आकृति बदलते ही असुरगण प्राणहीन हुए। उनके चरणों के धूलकण के सुगन्ध को जिसने एकबार भी प्राप्त किया वह उन्हें कैसे भूल सकता है।

दृष्टा भवद्भिर्ननु राजसूये चैद्यस्य कृष्णं द्विषतोऽपि सिद्धि:।

यां योगिन: संस्पृहयन्ति सम्यग्योगेन कस्तद्विरहं सहेत। ।3।2।19। ।

तथैव चान्ये नरलोकवीरा य आहवे कृष्ण-मुखारविन्दम्।

नेत्रै: पिबन्तो नयनाभिरामं पार्थास्त्रपूता: पदम्-आपु: अस्य। ।3।2।20। ।

राजसूय यज्ञ में शिशुपाल को वही गति मिली जो परमसिद्ध योगी को प्राप्त होती है। उनके वियोग को कैसे सहा जाय। हरिकथाकार कहते हैं कि भगवान्के वियोग से सन्तों के हृदय की स्थिति स्नान के बाद भींगे गमछे को निचोड़ने जैसी हो जाती है।

तत्तस्य कैङ्कर्यमलं भृतान्नो विगलापयति-अङ्ग यदुग्रसेनम्।

तिष्ठन्निषण्णं परमेष्ठिधिष्णये न्यबोधयद्देव निधारयेति। ।3।2।22। ।

हे विदुर जी ! राजा उग्रसेन के पास दासभाव से खड़े सभी राजाओं से पूज्य भगवान्सबको विस्मित कर देते थे। सारा जीवन साथ रहकर भी हम उनको समझ नहीं पाये। उद्धव जी अपने हृदयोद्गार प्रकट करते हुए भगवान्की बाल-लीला सुनाते हैं।

अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसया-अपाययत्-अपि-असाध्वी।

लेभे गतिं धात्री-उचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम। ।3।2।23। ।

विषपान कराने वाली पूतना को माता की गति दी। उनसे अधिक दयालु कौन है जिसकी मैं शरण ग्रहण करूँ

मन्येऽसुरान् भागवतान्-त्रि-अधीशे संरम्भ-मार्ग-अभिनिविष्ट-चित्तान्।

ये संयुगेऽक्षत तार्क्ष्यपुत्रम्-अंसे सुनाभ-आयुधम्-आपतन्तम्। ।3।2।24। ।

भक्तों से ज्यादा भाग्यवान् उन असुरों को समझता हूँ जिन्होंने शत्रुभाव से ग्रस्त होकर भगवान्से लड़ते हुए उनको तार्क्ष्यपुत्र यानी कश्यप-पुत्र गरुड़ जी के कन्धे पर चक्र धारण किये हुए सामने आते देखा।

वासुदेवस्य देवक्यां जातो भोजेन्द्रबन्धने।

चिकीर्षु: भगवान्-अस्या: शम्-अजेन-अभियाचित:। ।3।2।25। ।

ब्रह्मा की याचना पर पृथ्वी पर शांति स्थापित करने के लिए कंस के कारागार में वसुदेव-देवकी के पुत्र बने।

ततो नन्दव्रजमितः पित्रा कंसात्-विबिभ्यता।

एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत्।।3।2।26।।

कंस के भय से व्रज में छिपकर नन्दजी के घर बलराम जी के साथ ग्यारह वर्ष रहे।

परीतो वत्सपैः वत्सान् चारयन्व्यहरत्विभुः।

यमुनोपवने कूजत्द्विज-संकुलित्-अङ्घ्रिपे।।3।2।27।।

कौमारीं दर्शयंश्चेष्टां प्रेक्षणीयां व्रजौकसाम्।

रुदन्निव हसन्-मुग्ध-बालसिंह-अवलोकनः।।3।2।28।।

स एव गोधनं लक्ष्म्या निकेतं सितगोवृषम्।

चारयन्-अनुगान् गोपान् रणत्-वेणुः अरीरमत्।।3।2।29।।

प्रयुक्तान् भोजराजेन मायिनः कामरूपिणः।

लीलया व्यनुदत् तान् तान् बालः क्रीडनकानिव।।3।2।30।।

बाल-लीला में हँसते एवं रोते हुए गोपों को आनन्दित करते थे। पक्षियों की गूंज एवं यमुना किनारे के उपवनों में उन्होंने गायें चराने की लीला की। कम अवस्था में मिट्टी के खिलौने के समान कंस के असुरों का अन्त किया।

विपन्नान् विषपानेन निगृह्य भुजगाधिपम्।

उत्थाप्य-अपायत्-गावः तत्-तोयम् प्रकृतिस्थितिम्।।3।2।31।।

वर्षतीन्द्रे व्रजः कोपात्-भग्नमाने-अतिविह्वलः।

गोत्र-लीला-आतपत्रेण त्रातो भद्रानुगृह्णता।।3।2।33।।

कालियनाग के विष से यमुना-जल को मुक्त कर मूर्च्छित गायों को स्वस्थ किया। इन्द्र-यज्ञ बन्द किया तथा गो-पूजा कर लीला से छाता के रूप में गोवर्धन-धारण कर इन्द्र-कोप से सबकी रक्षा की।

शरत्-शशि-करैः मृष्टं मानयन् रजनीमुखम्।

गायन् कलपदं रेमे स्त्रीणां मण्डलमण्डनः।।3।2।34।।

शरद्-पूर्णिमा की रात्रि में गोपियों के साथ नृत्य एवं मधुरगीत के साथ रासलीला की।

ततः स आगत्य पुरं स्वपित्रोः -चिकीर्षया शं बलदेवसंयुतः।

निपात्य तुङ्गात्-रिपु-यूथनाथं हतं व्यकर्षद्व्यसुम-ओजसा-उर्व्याम्।।3।3।1।।

उद्धव जी कहते हैं - वसुदेव एवं देवकी ग्यारह वर्षो से अपने पुत्र के मुख नहीं देख पाये थे। व्याकुल थे। भगवान्कृष्ण भाई बलदेव जी के साथ मथुरा जाकर ऊँचे सिंहासन से कंस को नीचे पटक कर मार दिये। लोगों के विश्वास के लिए कि कंस सचमुच मर गया भगवान्ने उसके शव को जमीन पर दूर तक घसीटा।

सान्दीपनेः सकृत्प्रोक्तं ब्रह्माधीत्य सविस्तरम्।

तस्मै प्रादाद्वरं पुत्रं मृतं पञ्चजनोदरात्।।3।3।2।।

समाहुता भीष्मक-कन्यया ये श्रियः सवर्णेन बुभूषया-एषाम्।

गान्धर्ववृत्तया मिषतां स्वभागं जह्णे पदं मूर्ध्नि दधत्सुपर्ण:। ।3।3।3। ।

सन्दीपनि मुनि से एक बार सुनकर सबकुछ याद कर लेने वाले गुरुदक्षिणा में पञ्चन असुर के पेट से यमपुरी से लाकर गुरु को खोया हुआ पुत्र दिया। लक्ष्मी-सदृश भीष्मक की पुत्री रुक्मिणि का हरण राजाओं के सिर पर पैर रख किया जैसे गरुड़ अमृत-कलश ले गये थे और उनसे गन्धर्वरीति से विवाह किया। भगवान् ने सत्या एवं सत्यभामा आदि पटरानियों से विवाह किया। स्वर्ग से कल्पवृक्ष उठा लाये। भौमासुर का वध कर राजकन्याओं को मुक्त किया तथा योगमाया से उन सबों का एक ही मुहूर्त में पाणिग्रहण किया।

काल-मागध-शाल्व-आदीन्-अनीकै रुन्धत: पुरम्।

अजीघनत्-स्वयं दिव्यं स्वपुंसां तेज आदिशत्। ।3।3।10। ।

कालयवन, जरासन्ध, शाल्व आदि द्वारा मथुरा को घेर लेने पर उनकी हत्या मुचुकुन्द तथा भीम आदि से करा अपने लोगों के मान बढ़ाये।कर्ण, दु:शासन तथा शकुनि के नाश के बाद टूटी जांघ की पीड़ा से कराहते दुर्योधन को मरते देख भगवान्प्रसन्न नहीं दिखे। क्योंकि द्रोण, भीष्म, अर्जुन तथा भीमादि के द्वारा अठारह अक्षौहिणी सेना के नाश के बाद अपने यदुवंश के भार से पृथ्वी को मुक्त करने का काम शेष ही था। भगवान्ने सोचा कि यदुवंशी अहंकारी हैं और वे सब मधुपान कर आपस में ही कट मरेंगे।

एवं सञ्चिन्त्य भगवान् स्वराज्ये स्थाप्य धर्मजम्।

नन्दयामास सुहृद: साधूनां वर्त्म दर्शयन्। ।3।3।16। ।

उत्तरायां धृत: पूरो: वंश: साधु-अभिमन्युना।

स वै द्रौणि-अस्त्र-संछिन्न: पुनर्भगवता धृत:। ।3।3।17। ।

अयाजयत्धर्म-सुतम्अश्वमेधै: त्रिभि: विभु: ।

सोऽपि क्ष्माम्-अनुजै रक्षन् रेमे कृष्णमनुव्रत:। ।3।3।18। ।

ऐसा सोचते हुए भगवान् ने युधिष्ठर को राज्य दिलवाकर साधु-शैली का आदर्श स्थापित किया। द्रोण-पुत्र के अस्त्र से उत्तरा के गर्भ की रक्षा कर पुरु-वंश को बचाया।युधिष्ठर से तीन बार अश्वमेध यज्ञ कराया जिसने भाई यों से सम्वर्द्धित तथा भगवान्कृष्ण का अनुशरण करते हुए पृथ्वी पर अखण्ड राज किया। यदु एवं भोजवंशी बालकों को मुनियों के साथ दुर्व्यवहार के कारण शाप मिला। कुछ महीने बाद सबको लेकर भगवान्प्रभासक्षेत्र गये। वहाँ तर्पणादि कर दानादि देकर ब्राह्णों का सम्मान किया। भगवान्की माया ! यदुवंशियों ने भोजन कर मदिरा पान किया। वे अहंकार से अनियंत्रित हो गये। सन्ध्या होते सब आपस में ही कट मरे।

भगवान् स्वात्ममायाया गतिं तामवलोक्य स:।

सरस्वतीमुपस्पृश्य वृक्षमूलमुपाविशत्। ।3।4।3। ।

अहं चोक्तो भगवता प्रपन्नार्तिहरेण ह।

बदरीं त्वं प्रयाहीति स्वकुलं संजिहीर्षुणा। ।3।4।4। ।

भगवान् स्वयं सरस्वती तट पर पीपल वृक्ष की जड़ के पास बैठ गये। उन्होंने पहले ही उद्धव जी को बदरिकाश्रन जाने को कहा था। उद्धव जी दूर से ही भगवान्का पीछा करते हुए वहाँ पहुँचे।

अद्राक्षम्-एकम्- आसीनं विचिन्वन्दयितं पतिम्।

श्रीनिकेतं सरस्वत्यां कृत-केतम्-अकेतनम्।।3।4।6।।

श्यामावदातं विरजं प्रशान्त-अरुणलोचनम्।

दोर्भिः चतुर्भिः विदितं पीतकौश-अम्बरेण च।।3।4।7।।

वाम ऊरौ-अवधिश्रित्य दक्षिण-अङ्घ्रि-सरोरुहम्।

अपाश्रित-अर्भक-अश्वत्थम्-अकृशं त्यक्त-पिप्पलम्।।3।4।8।।

लक्ष्मीजी को धारण करने वाले, सबके स्वामी को, अकेले सरस्वती तट का आश्रय ले विचारमग्न उन्हें उद्धव जी ने बैठे हुए देखा। चतुर्भुज, श्यामवर्ण, शान्त सूर्योदय काल की लालिमा वाले नेत्र तथा पीले सिल्क वस्त्र धारण कर विराज रहे थे। बायीं जाँघ पर दायाँ पैर चढ़ाये हुए प्रसन्न मुद्रा में अश्वत्थ वृक्ष के सहारे बैठे थे।

तस्मिन्-महाभागवतो द्वैपायन-सुहृत्सखा।

लोकान्-अनुचरन् सिद्ध आससाद यदृच्छया।।3।4।9।।

तस्यानुरक्तस्य मुनेर्मुकुन्दः प्रमोदभाव-आनत-कन्धरस्य।

आश्रृण्वतो मामनुरागहास-समीक्षया विश्रमयन्-उवाच।।3।4।10।।

व्यास जी के सखा मैत्रेय जी घूमते हुए वहाँ स्वयं पहुँच गये। वे भगवान्के परमभक्त थे एवं कन्धे झुकाकर भगवान्की बात सुन रहे थे। मुझे देखकर भगवान्ने मुस्कुराते हुए कहा। तू पूर्व जन्म में वसु था। तूने मेरी आराधना की थी। मुझे प्राप्त करने की सिद्धि तुम्हें देता हूँ। अब तेरा जन्म नहीं होगा। मैं अब स्वधाम जा रहा हूँ। मेरे अन्तिम दर्शन से तू बड़े सौभाग्यवान् हो गये।

पुरा मया प्रोक्तमजाय नाभ्ये पद्मे निषण्णाय ममादिसर्गे।

ज्ञानं परं मत्-महिमा-अवभासं यत्सूरयो भागवतं वदन्ति।।3।4।13।।

इति-आदृतोक्तः परमस्य पुंसः प्रतिक्षण-अनुग्रह-भाजनोऽहम्।

स्नेह-उत्थरोमा स्खलित-अक्षरः तं मुञ्चन्-शुचः प्राञ्जलिः अबभाषे।।3।4।14।।

भगवान्ने कहा कि पूर्व में मैंने ब्रह्मा को उपदेश किया था। उसे ही लोग भागवत कहते हैं। भगवान्की बात सुन अश्रुपूरित तथा रोमांचित मैंने उनसे कहा - आपके श्रीचरणों की पूजा करनेवाले को चारो पुरुषार्थ स्वतः (देखें **3।29।3**) मिल जाता है। मुझे आपकी चरणसेवा छोड़ कुछ नहीं चाहिए।आप में परस्पर विरोधी बात देख मैं विस्मित हूँ।कामनाशून्य कर्म करे, अजन्मा जन्म ले, महाकाल के संहारक को शत्रुभय हो तथा आत्माराम पत्नियों के साथ गृहस्थ बने। आप सर्वज्ञ होकर मुझसे मन्त्रणा करते थे।उद्धव जी ने प्रार्थना करते हुए भगवान्से कहा कि अगर आप उचित समझते हैं तब ब्रह्मा जी को सुनाया हुआ भागवत हमलोगों को भी सुनाइये।

इति-आवेदित-हार्दाय मह्यं स भगवान्परः।

आदिदेश-अरविन्दाक्ष आत्मनः परमां स्थितम्।।3।4।19।।

स एवम्-आराधित-पादतीर्थात्-अधीत-तत्त्व-आत्म-विबोध-मार्गः।

प्रणम्य पादौ परिवृत्य देवम्-इहागतोऽहं विरहातुरात्मा।3।4।20।।

इस तरह निवदेन करने पर भगवान्ने अपना स्वरूप एवं लीला रहस्य बताया। उनसे सब सुन श्रीचरणों में प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिणा किया तथा वियोग-विरह से कातर बदरीकाश्रम के रास्ते में हूँ।

सोऽहं तत्-दर्शन-आह्लाद-वियोग-आर्तियुत: प्रभो।

गमिष्ये दयितं तस्य बदर्याश्रम-मण्डलम्। ।3।4।21। ।

यत्र नारायणो देवो नरश्च भगवान्-ऋषि:।

मृदु तीव्रं तपो दीर्घम्तेपाते लोकभावनौ। ।3।4।22। ।

भागवत सुन प्रसन्न परन्तु वियोग से दु:खी मैं बदरिकाश्रम जा रहा हूँ जहाँ दीर्घ काल से सर्वप्रिय नर-नारायण ऋषि लोक कल्याणार्थ तपस्या रत हैं। यह सब सुनकर विदुर जी भगवान्के महाप्रयाण के दु:ख से विह्वल हो गये। अपने को सम्भाल कर विदुर जी परम अधिकारी भक्त उद्धव जी से बोले।

ज्ञानं परं स्वात्मरह: प्रकाशं यदाह योगेश्वर ईश्वरस्ते।

वक्तुं भवान्नोऽर्हति यद्धि विष्णोर्भृत्या: स्वभृत्यार्थ-कृत: चरन्ति। ।3।4।25। ।

अपना दास समझ भगवान्के रहस्य-प्रकाश का परमज्ञान मुझे भी दें जो आपने भगवान्से सुना।उद्धव जी ने कहा-

ननु ते तत्त्वसंराध्य ऋषि: कौषारवोऽन्ति मे।

साक्षात्-भगवता-आदिष्टो मर्त्यलोकं जिहासता। ।3।4।26। ।

हे विदुर जी, आप मैत्रेय मुनि के शरणागत हों। संसार छोड़ते समय आपको इसे सुनाने का आदेश भगवान्ने उन्हीं को दिया है। भगवान्की लीलाकथा गाते उद्धव जी ने विदुर जी के साथ एक क्षण की तरह वह रात यमुना के बालुका-तट पर बिताई और प्रात: बदरिकाश्रम के लिए प्रस्थान कर गये। राजा परीक्षित ने पूछा -

निधनमुपगतेषु वृष्णिभोजेषु-अधिरथ-यूथप-यूथपेषु मुख्य:।

स तु कथमवशिष्ट उद्धवो यद्हरिरपि तत्यज आकृतिं त्रि-अधीश:। ।3।4।28। ।

समस्त यदुवंशी के नाश होने पर उद्धव जी कैसे बच गये ? शुकदेव जी ने कहा -

ब्रह्मशापापदेशेन कालेन-अमोघ-वाञ्छित: ।

संहृत्य स्वकुलं नूनं त्यक्ष्यन्-देहम्-अचिन्तयत्। ।3।4।29। ।

अस्मात्-लोकात्-उपरते मयि ज्ञानं मदाश्रयम्।

अर्हति-उद्धव एव-अद्धा सम्प्रति-आत्मवतां वर:। ।3।4।30। ।

न उद्धव: अणु-अपि मत्-न्यूनो यद्गुणै: न-अर्दित: प्रभु:।

अतो मत्-व्यूनं लोकं ग्राहयन्-इह तिष्ठतु। ।3।4।31। ।

शाप से यदुवंश के नाश का संकल्प कर अपने स्वधाम जाते समय पृथ्वी पर परमात्म-विषयक ज्ञान के धारक के रूप में उद्धव जी को ही भगवान्ने चुना। उद्धव मेरे ही समान त्रिगुण एवं माया के ऊपर है और इनसे भगवद्विषयक उपदेश पृथ्वी पर चलता रहेगा। उद्धव जी बद्रिकाश्रम जाकर भगवान्की आराधना करने लगे। उनके जाने पर विदुर जी भगवान्की लीला पर चिन्तन कर आनन्दित होने लगे।

आत्मानं च कुरुश्रेष्ठ कृष्णेन मनसेक्षितम्।

ध्यायन् गते भागवते रुरोद प्रेमविह्वल:। ।3।4।35। ।

कालिन्द्या: कतिभि: सिद्ध अहोभि: भरतर्षभ:।

प्रापद्यत स्व:सरितं यत्र मित्रासुतो मुनि:। ।3।4।36। ।

भगवान् ने स्वयं मैत्रेय जी को मुझे भागवत का ज्ञान देने का आदेश दिया है यह सोचकर प्रेमाश्रु से आह्लादित हो गये। विदुर जी यमुना नदी से कुछ ही दिनों में गंगा-तट स्थित मैत्रेय मुनि के पास पहुँच गये।

3।3 विदुर जी की मैत्रेय मुनि से जिज्ञासा

द्वारि द्युनद्या ऋषभ: कुरूणां मैत्रेयम्-आसीनम्-अगाधबोधम्।

क्षत्ता-उपसृत्य-अच्युतभावशुद्ध: पप्रच्छ सौशील्यगुणाभितृप्त:। ।3।5।1। ।

भगवद्प्रेम से ओत-प्रोत विदुर जी ने हरिद्वार स्थित गंगा-तट के आश्रम में सुखासीन अगाध ज्ञान से सम्पन्न मैत्रेय मुनि से यह जानने कि जिज्ञासा की कि -

सुखाय कर्माणि करोति लोको न तै: सुखं वा्-अन्यत्-उपारमं वा।

विन्देत भूतस्तत एव दु:खं यदत्र युक्तं भगवान्वदेन्न:। ।3।5।2। ।

तत्साधुवर्यादिश वर्त्म शं न: संराधितो भगवान्येन पुंसाम्।

हृदि स्थितो यच्छति भक्तिपूते ज्ञानं सतत्त्वाधिगमं पुराणम्। ।3।5।4। ।

संसार के प्राणी सुख के लिए कर्म करते हैं परन्तु बार-बार दु:ख से ग्रस्त होते रहते हैं। भगवान्से विमुख जनों की यही गति है।यहाँ क्या करना श्रेयस्कर होगा? कैसे भगवान् साधक के हृदय में बैठकर अपने स्वरूप का ज्ञान करा सकते हैं। सनातन वेदोक्त भक्ति एवं ज्ञान प्राप्ति के उपाय बतायें।

करोति कर्माणि कृतावतारे यान्यात्मतन्त्रो भगवान् त्रि-अधीश:।

यथा ससर्ज-अग्रे इदं निरीह: संस्थाप्य वृत्तिं जगतो विधत्ते। ।3।5।5। ।

यथा पुन: स्वे ख इदं निवेश्य शेते गुहायां स निवृत्तवृत्ति:।

योगेश्वराधीश्वर एक एतत्-अनुप्रविष्टो बहुधा यथाऽऽसीत्। ।3।5।6। ।

क्रीडन् विधत्ते द्विजगोसुराणां क्षेमाय कर्माणि -अवतार्-भेदै:।

मनो न तृप्यत्यपि श्रृण्वतां न: सुश्लोकमौले: चरितामृतानि। । 3।5।7। ।

भगवान् विभिन्न अवतारों में लीला करते हुए सव में प्रवेश कर सृष्टि विस्तार तथा पालन करते हैं। प्रलय के समय सबको अपने में उदरस्थ कर शयन करते हैं।साधु, गौ तथा देवों के हितार्थ अवतार लेते हैं। यशस्वियों के मुकुट-स्वरूप भगवान्की कथामृत सुनते रहने से मन कभी तृप्त नहीं होता।

परावरेषां भगवन् व्रतानि श्रुतानि मे व्यास-मुखात्-अभीक्ष्णम्।

अतृप्नुम क्षुल्ल-सुखावहानां तेषामृते कृष्णकथा-अमृत-ओघात्। ।3।5।10। ।

क: तृप्युनुयात्-तीर्थपदो-अभिधानात्सत्रेषु व: सूरिभि: ईड्यमानात्।

य: कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति। । 3।5।11। ।

ऊँच-नीच-वर्ण-धर्म आदि जो व्यास जी ने वर्णन किया है वे क्षणिक सुख देने वाले हैं। भगवान्के कथामृत की धारा की तुलना में ये सब व्यर्थ हैं।भगवत् कथा कान में प्रवेश करते ही सांसारिक आसक्ति का नाश करती है।

मुनि: विवुक्षु: भगवद्गुणानां सखापि ते भारतमाह कृष्ण:।

यस्मिन्नृणां ग्राम्यसुखानुवादै: मतिगृहीता नु हरे: कथायाम्।।3।5।12।।

आपके मित्र व्यास जी ने विषय-सुख का उल्लेख करते हुए भगवद्गुणगान के उद्देश्य से महाभारत की रचना की और सामान्यजनों का मन भगवान्‌की कथा की ओर उत्प्रेरित करने का प्रयास किया।

तान्-शोच्य-शोच्यान्-अविद: अनुशोचे हरे: कथायां विमुखान्-अघेन।

क्षिणोति देवोऽनिमिषस्तु येषाम्-आयु: वृथावाद-गति-स्मृतीनाम्।।3।5।14।।

विदुर जी कहते हैं कि मुझे हरिविमुखों की चिन्ता है जो अपनी आयु व्यर्थ की बातों में बिता देते हैं।

तदस्य कौषारव शर्मदातु: हरे: कथामेव कथासु सारम्।

उद्धृत्य पुष्पेभ्य इवार्तबन्धो शिवाय न: कीर्तय तीर्थकीर्ते:।। 3।5।15।।

हे मैत्रेय जी, आप पुष्प-सार-ग्राही भौरों के गुण से सम्पन्न है। अतएव तीर्थो को पवित्र करने वाले भगवान्‌की पवित्र-कीर्ति कथा सुनायें। लोकहित का प्रश्न सुन मैत्रेय जी बोले कि हे विदुर जी, आप तो भगवान् की बहुत सी लीलाओं को स्वयं देख चुके हैं। तथा भगवान्‌के स्वलोक-गमन का भी वर्णन उद्धव जी से सुन चुके हैं। परन्तु तीर्थ कीर्ति भगवान्‌की कथा का बार-बार आनन्द लेना चाहते हैं। मैत्रेय मुनि ने कहा -

साधु पृष्टं त्व्या साधो लोकान्साधु-अनुगृह्णता।

कीर्तिं वितन्वता लोके आत्मनो-अधोक्षजात्मन:।।3।5।18।।

नैतच्चित्रं त्वयि क्षत्त: बादरायण्-वीर्यजे।

गृहीतोऽनन्यभावेन यत्त्वया हरिरीश्वर:।।3।5।19।।

माण्डव्यशापात्-भगवान्प्रजासंयमनो यम:।

भ्रातु: क्षेत्रे भुजिष्यायां जात: सत्यवतीसुतात्।।3।5।20।।

भवान् भगवतो नित्यं सम्मत: सानुगस्य च।

यस्य ज्ञानोपदेशाय माऽऽदिशत्-भगवान् व्रजन्।।3।5।21।।

अथ ते भगवल्लीला योगमाया-उपबृंहिता:।

विश्वस्थिति-उद्भव-अन्तार्था वर्णयामि-अनुपूर्वश:।।3।5।22।।

आपको साधुवाद ! आप स्वयं धर्मराज के स्वरूप हैं। बचपन में माण्डव्य ऋषि द्वारा एक तिनके से एक फतिंगे की मृत्यु हो गयी थी। एक बार कुछ चोरों ने चोरी की बस्तु माण्डव्य मुनि के आश्रम में चुपके से छिपा दी। राजा के अनुचरों ने चोरी का सामान वहाँ देख मुनि को राजा के सामने उपस्थित किया। राजा द्वारा प्राणदण्ड से मुनि चौबीस दिन तक सूली पर लटकते रहे परन्तु मरे नहीं। राजा ने अन्त में इनसे क्षमा मांगी और सूली से उतार दिया। माण्डव्य मुनि संयमिनीपुरी जाकर धर्मराज को शूद्र होने का शाप दे डाले। धर्मराज ने उनको बताया कि बचपन में एक फतिंगे की हत्या के अपराध के कारण आप सूली पर चढ़ाये गये थे। माण्डव्य मुनि के शाप से धर्मराज विदुर जी के रूप में राजा की भोग-पत्नि दासी के गर्भ से व्यास जी द्वारा उत्पन्न हुए। मैत्रेय जी ने उक्त प्रसंग का स्मरण कराते हुए विुदर जी को कहा कि भगवान्‌ने स्वयं आपको मुझे भगवत्कथा सुनाने का आदेश दिया है। भगवान् माया से कैसे सृष्टि, पालन तथा प्रलय करते हैं यह सब आपको सुनाता हूँ। तब मैत्रेय जी ने तीनों गुण, इन्द्रियाँ, चित्त, अहंकार

तथा पञ्चभूत से क्रमिक सृजन का वर्णन किया। जब महत्वादि पृथक रहकर सृष्टि नहीं कर सके तब उनके अधिकारी देवों ने भगवान् से स्तुति की जिसमें विदुर जी के लोकहित में दु:ख-निवृत्ति एवं सुख-प्राप्ति के प्रश्नों के समाधान समाहित हैं। देवों की स्तुति -

नमाम ते देव पदारविन्दं प्रपन्न-ताप-उपशम-आतपत्रम्।

यन्मूलकेता यतय: अञ्जसा-उरु संसारदु:खं बहि: उत्क्षिपन्ति।।3।5।38।।

हे भगवन्! हम आपके शरणागत हैं, आपके श्रीचरणों की वन्दना करते हैं। आपके श्रीचरण जीवों को संसार-ताप से रक्षा के लिए छाता है।योगीगण इसी का सहारा पा कर संसार-दु:ख को दूर करने में समर्थ होते हैं। आपके श्रीचरण से जगपावनी गंगा जी का उद्गम है। ज्ञानियों को इसी का सहारा है।

यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या संमृज्यमाने हृदयेऽवधाय।

ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा व्रजेम तत्-तेऽङ्घ्रि-सरोजपीठम्।।3।5।41।।

भक्ति-स्वरूप गुरु की आज्ञा से श्रद्धा से भगवान्के नाम का भजन एवं उनकी कथा श्रवण से चित्त निर्मल होता है। श्रीचरणों के आश्रय से ज्ञान-वैराग्य मिलता है। भागवत के अनुसार गुरु के आश्रय का बहुत महत्व है। गुरु-कृपा से ही भगवद्भक्ति मिलती है। भगवद् भक्ति से ज्ञान-वैराग्य भी स्वत: सुगम हो जाते हैं। उपनिषद में ज्ञान की प्रधानता दी गयी है जिसका मार्ग बहुत ही क्लिष्ट है।

विश्वस्य जन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारस्य पदाम्बुजं ते।

व्रजेम सर्वे शरणं यदीशं स्मृतं प्रयच्छत्यभयं स्वपुंसाम्।।3।5।42।।

यत्सानुबन्धेऽसति देहगेहे मम-अहम्-इति-ऊढ-दुराग्रहाणाम्।

पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां भजेम तत्ते भगवन्पदाब्जम्।।3।5।43।।

आपका अवतार सृष्टि, पालन एवं संहार के लिए होता है। आपके चरणकमल भक्त को अभय करते हैं। हमें भी उसी का सहारा है।अहंकारी-मूढ़ घर-परिवार में ही बन्धा रहता है। सम्पूर्ण प्राणी में अन्तर्यामी बनकर रहने पर भी आपके चरणाश्रय की प्राप्ति कठिन है।

तान् वै हि-असत्-वृत्तिभि: अक्षिभि: ये पराहृत-अन्तर्मनस: परेश।

अथो न पश्यन्ति-उरुगाय नूनं ये ते पदन्यास-विलास-लक्ष्म्या:।।3।5।44।।

गुरु की महिमा स्पष्ट करते हुए देवगण कहते हैं कि इन्द्रिय-सुख में लगे जीव आपके श्रीचरणों की शोभा तथा महिमा के विशेषज्ञ-भक्त (यानी गुरु) का दर्शन नहीं करते।इसी कारण से वे जीव आपसे दूर हो जाते हैं।

पानेन ते देव कथासुधाया: प्रवृद्धभक्त्या विशद-आशया ये।

वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथा-अञ्जसा-अन्वीयु: अकुण्ठ-धिष्ण्यम्।।3।5।45।।

तथापरे चात्मसमाधियोग-बलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम्।

त्वामेव धीरा: पुरुषं विशन्ति तेषां श्रम: स्यान्न तु सेवया ते।।3।5।46।।

आपके वचनामृत एवं लीलामृत को चखने से भक्ति होती है। फलस्वरूप वैराग्य से समन्वित होकर वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। आत्मसमाधि-योग-ज्ञान का मार्ग कठिन है। परन्तु आपके भक्तों को आपकी सेवा सुगमता से प्राप्त होती है। यहाँ ज्ञान एवं भक्ति में लीलामृत पान तथा कथा-श्रवणादि से सम्पुष्ट भगवद्भक्ति ही सुगम है।

महतत्त्वादि के अधिकारी देवताओं की स्तुति के उद्धरण से उन्होंने विदुर जी के दो मुख्य प्रश्नों का उत्तर दिया।
प्रश्न - 1 ः सुख चाहने वाले को दु:ख मिलता है। दु:ख से निवृत्ति भगवान्के शरण में जाने से ही होती है।
प्रश्न - 2 ः भक्ति से आत्मज्ञान की प्राप्ति कैसे होती है। इसका समाधान गुरु-वचन के पालन में मन को दृढ़ करने से होता है। भक्ति की साधना से चित्त निर्मल होता है। ज्ञान तथा वैराग्य स्वत: उत्पन्न होते हैं। मुक्ति मिलती है। परन्तु भक्तगण भगवान्के श्रीचरणों की सेवा की तुलना में मुक्ति को तुच्छ मानते हैं।

एकान्तलाभं वचसो नु पुंसां सुश्लोकमौले: गुणवादमाहु:।

श्रुतेश्च विद्वद्भि: उपाकृतायां कथा सुधाधायाम्-उपसम्प्रयोगम्। ।3।6।37। । ऋषि-मुनियों का मत है कि पुण्यश्लोक श्रहरि का गुणानुवाद मनुष्य की वाणी का तथा विद्वानों से कही गयी कथा का श्रवण कानों का सार्थक सदुपयोग है।

3।4 उद्धव जी एवं मैत्रेय मुनि संवाद - विदुर जी के अन्य प्रश्न

ब्रह्न् कथं भगवत: चित्-मात्रस्य-अविकारिण:।
लीलया चापि युज्येरत्-निर्गुणस्य गुणा: क्रिया:। ।3।7।2। ।

ब्रह्म जब निर्गुण निर्विकार हैं तब वे सृष्टि, पालन तथा संहार में सक्रिय कैसे होते है ? मैत्रेय मुनि ने कहा -

सा-इयं भगवतो माया यत्-नयेन विरुध्यते।
ईश्वरस्य विमुक्तस्य कार्पण्यम्-उत बन्धनम्। ।3।7।9। ।
यदर्थेन विनामुष्य पुंस आत्मविपर्यय:।
प्रतीयत उपद्रष्टु: स्वशिर: छेदन-आदिक:। । 3।7।10। ।
यथा जले चन्द्रमस: कम्पादि: तत्कृतो गुण:।
दृश्यते-असन्नपि द्रष्टु: आत्मनो -अनात्मनो गुण:। । 3।7।11। ।
स वै निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकम्पया।
भगवद्भक्तियोगेन तिरोधत्ते शनैरिह। । 3।7।12। ।

भगवान् अपनी चित्-शक्ति के सहारे इस तरह की सक्रियता दिखाते हैं। भगवान्का सच्चिदानन्द विग्रह नित्यधाम वैकुण्ठ में सर्वदा विराजता है। विग्रह धारण करने के कारण उनमें गुण एवं क्रिया का दृष्टगत होना स्वाभाविक है। उनमें लौकिक गुण - सुख, दु:खादि तथा लौकिक क्रिया नहीं रहती है। जैसे कि स्वप्न में अपना शिर कटना वासनाजन्य भ्रम है। उसीतरह जीव के भीतर अन्तर्यामी भगवान्के रहते सांसारिक बन्धन एवं दु:ख वासना के कारण भ्रमवत हैं। दूसरा उदाहरण - जल में कम्पन से उसमें चन्द्रमा का प्रतिविम्ब भी हिलता-डुलता दिखायी देता है। जल, जलाशय एवं जीवात्मा सभी शरीरी भगवान्के शरीर हैं। जलाशय के जल में कम्पन प्रकृतिगत् है जिससे पुरुष-स्वरूप भगवान्के दृष्टान्त आकाश के चन्द्रमा किसी भी तरह प्रभावित नहीं होते हैं। पञ्चभूत- शरीर के गुणों के कारण आत्मा हिलता-डुलता यानी दु:खादि से प्रभावित प्रतीत होता है जो कि वस्तु स्थिति नहीं है। प्रश्न है कि इस तरह भ्रांति-मूलक दु:ख से छुटकार कैसे मिले।अत: सभी कर्मो के फल भगवान्को जब भक्तिभाव से समर्पित कर दिये जाते हैं तब वासनागत दु:ख से निवृत्ति सम्भव है।

यदा-इन्द्रियोपरामो-अथ द्रष्टात्मनि परे हरौ।
विलीयन्ते तदा क्लेशाः संसुप्तस्य-इव कृत्स्नशः।। 3।7।13।।
अशेष-संक्लेशशमं विधत्ते गुणानुवाद-श्रवणं मुरारेः।
कुतः पुनः तत्-चरणारविन्द-पराग-सेवा-रतिः आत्मलब्धा।। 3।7।14।।

भगवान्के गुणानुवाद-कीर्तन में चित्त लग जाने पर गाढ़ी-निद्रा में सोये मनुष्य की तरह उसे वासना-जनित क्लेश नहीं होता। श्रीचरणों की धूल से ही आसक्ति हो जाती है। विदुर जी ने आगे पूछा।

यत्सेवया भगवतः कूटस्थस्य मधुद्विषः।
रतिरासो भवेत्तीव्रः पादयोः-व्यसनार्दनः।।3।7।19।।
दुरापा ह्यल्पतपसः सेवा वैकुण्ठ-वर्त्मसु।
यत्रोपगीयते नित्यं देवदेवो जनार्दनः।।3।7।20।।

आपके श्रीचरणों के सेवा से ही मधुसूदन भगवान्की भक्ति में अनुराग होता है तथा संसार के आवागमन से मुक्ति मिलती है। श्रीहरि के नित्य गुणगान करने वाले आप जैसे सन्तगण भगवद्भक्ति प्राप्त कराने के साक्षात् उपाय हैं।अल्प पुण्यवालों को आपके समान सन्तों की सेवा का अवसर मिलना कठिन है।

3।5 विदुर जी एवं मैत्रेय मुनि संवाद - सङ्कर्षण जी द्वारा सनकादि को सुनाये गये भागवत पुराण का उद्धरण।

सोऽहं नृणां क्षुल्लसुखाय दुःखं महद्गतानां विरमाय तस्य।
प्रवर्तये भागवतं पुराणं यदाह साक्षात्-भगवान्-ऋषिभ्यः।।3।8।2।।
प्रोवाच मह्यं स दयालुरुक्तो मुनिः पुलस्त्येन पुराणमाद्यम्।
सोऽहं तवैतत्कथयामि वत्स श्रद्धालवे नित्यमनुव्रताय।।3।8।9।।

विदुर जी के प्रश्न "**क्षुद्र सुख की वासना में जीव दुःखी ही रहता है**" के समाधान में मैत्रेय मुनि ने उनको वही भागवत पुराण सुनाया जो सङ्र्षण जी से सनकादिक मुनियों ने सुना था। एक बार सनकादि मुनिगण मन्दाकिनी में स्नान कर भींगी जटाओं के साथ रसातल गये तथा वहाँ उपस्थित सङ्कर्षण (शेष) जी के चरणों में श्रद्धा से प्रणाम कर भगवद्लीला गुणगान से समन्वित भागवत पुराण सुनने की जिज्ञासा की। वही भागवत सनकादिक मुनियों ने सांख्यायन ऋषि को सुनाया जो उत्तरोत्तर मैत्रेय मुनि के गुरु पराशर जी एवं देवगुरु बृहस्पति ने सुना। पुलस्त्य जी के अनुरोध पर पराशर मुनि ने वही कथा मैत्रेय जी को सुनायी थी। वही भागवत मैत्रेय मुनि ने विदुर जी को सुनाया।

उदाप्लुतं विश्वमिदं तदाऽऽसीद्यत्-निद्रया-अमीलित-दृक्न्यमीलयत्।
अहीन्द्रतल्पेऽधिशयान्एकः कृतक्षणः स्वात्मरतौ निरीहः।। 3।8।10।।
चतुर्युगानां च सहस्त्रम्-अप्सु स्वपन्स्वयोदीरितया स्वशक्त्या।
कालाख्ययाऽऽसादित-कर्मतन्त्रो लोकान्-अपीतान्-ददृशे स्वदेहे।। 3।8।12।।
तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः प्रावीविशत्-सर्वगुण-अवभासम्।
तस्मिन् स्वयं वेदमयो विधाता स्वयम्भुवं यं स्म वदन्ति सोऽभूत्।।3।8।15।।

तस्यां स चाम्भोरुह कर्णिकायाम्-अवस्थितो लोकम्-अपश्यमानः।
परिक्रमन् व्योम्नि विवृत्तनेत्रः चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि।। 3।8।16।।

सृष्टि के पूर्व सम्पूर्ण विश्व को अपने में समेट भगवान् जल में आँख बन्द किये एक सहस्त्र चतुर्युगी शेषनाग पर योगनिद्रा में पड़े रहे। कालचक्र के अनुसार उनकी नाभि से एक कमल जल के ऊपर आया। उसपर ब्रह्मा प्रकट हुए। वे स्वयंभू कहे गये। चारों ओर प्रलय-जल की तरंगे को देखने के प्रयास में उनके चार सिर हो गये। कुछ समझ में न आने पर वे कमल की डन्ठल में ऊपर-नीचे आये-गये। परन्तु कुछ समझ नहीं पाये। अन्त में मन को समाधि में समाहित कर बैठ गये। कालान्तर में उन्हें एक दृश्य दिखा।

मृणालगौरायत-अशेष-भोगपर्यङ्क एकं पुरुषं शयानम्।
फण-आतपत्र-आयुत-मूर्धरत्न-द्युभिः हत-ध्वान्त-युगान्ततोये।। 3।8।23।।
पुंसां स्वकामाय विविक्तमार्गैः अभ्यर्चतां काम-दुघ-अङ्घ्रि-पद्मम्।
प्रदर्शयन्तं कृपया नखेन्दु-मयूख-भिन्न-अङ्गुलि-चारुपत्रम्।।3।8।26।।
मुखेन लोकार्तिहरस्मितेन परिस्फुरत्-कुण्डलमण्डितेन।
शोणायितेन-अधरबिम्बभासा प्रत्यर्हयन्तं सुनसेन सुभ्रूवा।। 3।8।27।।
कदम्ब-किञ्जल्क-पिशङ्गवाससा स्वलंकृतं मेखलया नितम्बे।
हारेण चानन्तधनेन वत्स श्रीवत्सवक्षःस्थलल्भेन।। 3।8।28।।
निवीतम्-आम्नाय-मधु-व्रत-श्रिया स्वकीर्तिमय्या वनमालया हरिम्।
सूर्य-इन्दु-वायु-अग्नि-अगमं त्रिधामभिः परिक्रमत्प्राधनिकैः दुरासदम्।।3।8।31।।

कमल की डन्ठल के समान गोरे शरीर वाले शेषनाग की शय्या पर पुरुषोत्तम भगवान् अकेले ही लेटे हैं। मरकत के पर्वत जैसा भगवान्का श्याम शरीर है। वनमाला-पीताम्बर से सुशोभित, भक्तों को सेवा का अवसर देने वाले श्रीचरणों के नख चन्द्रमा की तरह चमक रहे हैं। सुगन्धित चन्दन वृक्ष की तरह भगवान्का रत्नादि से अलंकृत शरीर अनन्त शेष के फनों से ढका है।समुद्र से घिरे पर्वत की शिखरों की तरह सहस्रों सिर पर मणि मुकुट तथा वक्षस्थल पर कौस्तुभ मणि शोभ रहे हैं। मुस्कुराता मुखमण्डल, चकमक कुण्डल, सुन्दर कपोल एवं नाक, लता के समान भौंहें, विम्बा फल जैसा लाल होठ, कटिभाग में कदम्ब-पराग जैसा पीतवस्त्र एवं श्रीवत्स से सुशोभित वक्षस्थल, गले का अनुपम हार, वेदों की गूंजवाले भौरों से सुशोभित वनमाला, सूर्यादि को अप्राप्य अवाध गति से सर्वत्र घूमते प्रभु के दिव्य सुदर्शन चक्र वहाँ विराजते देख ब्रह्मा भगवान्की स्तुति करने लगे।

ये तु त्वदीय त्वदीयचरणाम्बुज-कोशगन्धं जिघ्रन्ति कर्णविवरैः श्रुतिवातनीतम्।
भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां नापैषि नाथ हृदय-अम्बुरुहात्-स्वपुंसाम्।।3।9।5।।
तावद्भयं द्रविण-गेह-सुहृन्निमित्तं शोकः स्पृह्य परिभवो विपुलश्च लोभः।
तावत्-मम-इति-असत्-अवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः।।3।9।6।।

वायु से लायी गयी वेद की ध्वनि तथा आपके चरणारविन्द की सुगन्ध कान-नाक एवं हृदय में विराजमान है।देह-गेह की चिन्ता तथा लोभादि से ग्रस्त सांसारिकों का आपके चरणाम्बुज की शरण से कल्याण होता है।

दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसङ्गात्-सर्व-अशुभ-उपशमनात्-विमुखेन्द्रिया ये।
कुर्वन्ति कामसुख-लेश-लवाय दीना लोभाभिभूत-मनसोऽकुशलानि शाश्वत्।।**3।9।7**।।
अह्नि-आपृत-आर्तकरणा निशि निःशयाना नाना-मनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः।
दैव-आहतार्थ-रचना ऋषयोऽपि देव युष्मत्-प्रसङ्ग-विमुखा इह संसरन्ति।।**3।9।10**।।

दुर्भाग्यवश बुद्धिहीन जन आपके कथा श्रवण-कीर्तन से दूर क्षुद्र विषय-सुख के लिए दुष्कर्म करते हैं। आपकी कथा से विमुख मुनिगण भी सांसारिक मनोरथों में उलझकर अपनी सिद्धि में निष्फल हो जाते हैं।

यस्यावतार-गुणकर्म-विडम्बनानि नामाणि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति।
ते नैकजन्म-शमलं सहसैव हित्वा संयान्ति-अपावृत-अमृतं तमजं प्रपद्ये।।**3।9।15**।।
यत्-नाभिपद्म-भवनात्-अहम्-आसम्-ईड्य लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण।
तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योगनिद्रावसान-विकसित्-नलिनेक्षणाय।।**3।9।21**।।
एष प्रपन्नवरदो रमयाऽऽत्मशक्त्या यद्यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः।
तस्मिन् स्वविक्रममिदं सृजतोऽपि चेतो युञ्जीत कर्मशमलं च यथा विजह्याम्।।**3।9।23**।।

प्राण छोड़ते समय आपके अवतार के गुण-कर्म का स्मरण करने वाले के जन्म-जन्मान्तर के पाप मिट जाते हैं। मैं आपका शरणागत हूँ। नाभि-कमल के भवन से मैं उत्पन्न हुआ हूँ। सम्पूर्ण विश्व आपके पेट में बसता है। योगनिद्रा से जागने पर आपकी कमल रूपी आँखें पूर्णतया विकसित हैं। हे भक्त कल्पतरु! लक्ष्मी जी के साथ गुणावतार से इस जगत के अनेकों अद्भुत कर्मों में से यह सृष्टि रचना भी एक है। आप मुझे अहंकार रहित बनाकर सृष्टि रचने की शक्ति दें। इस तरह से भगवान्की प्रार्थना कर ब्रह्मा मौन हो गये। ब्रह्मा के मन के भाव समझ प्रलय-जल को देखकर भगवान्ने उनके मन की घबराहट को दूर किया तथा कहा कि पहले की तरह पुनः तप करो। सभी ज्ञान प्राप्त हो जायेंगे। मेरी इस स्तुति के पाठ करनेवाले का कल्याण होगा। ऐसा बोल नारायण-स्वरूप भगवान् अदृश्य हो गये।

3।6 ब्रह्मा के मानसिक चिन्तन से ऋषि-मुनियों का प्रकटीकरण

इति ते वर्णितः क्षत्तः कालाख्यः परमात्मनः।
महिमा वेदगर्भोऽथ यथा-अस्राक्षीत्-निबोध मे।।**3।12।1**।।
ससर्जाग्रे-अन्धतामिस्रम्अथ तामिस्रम्-आदिकृत्।
महामोहं च मोहं च तमः च अज्ञानवृत्तयः।।**3।12।2**।।
दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मानं बहु-अमन्यत।
भगवत्-ध्यानपूतेन मनसा-अन्यां ततः असृजत्।।**3।12।3**।।
सनकं च सनन्दं च सनातनम्अथ आत्मभूः।
सनत्कुमारं च मुनीन्-निष्क्रियान्-ऊर्ध्वरेतसः।।**3।12।।4**।।

मैत्रेय मुनि ने कहा - हे विदुर जी! अभीतक आपको भगवान्के कालस्वरूप का वर्णन सुनाया। अब वेदज्ञ ब्रह्मा जी द्वारा सृष्टि को प्रकट करने का बताता हूँ।ब्रह्मा के मन से सर्वप्रथम अज्ञान के विभिन्न रूप प्रकट हुए - जैसे

तमस (स्वरूप भ्रम), मोह (शरीर के साथ स्वयं को जोड़ने का भ्रम), महामोह (विषय सुख का भ्रम), तमिस्र (विषय-सुख के व्यवधान पर क्रोध), अन्धतमिस्र (पूर्ण ह्रास)। ऐसे पाप-पूर्ण मानसिक वृत्तियों को प्रकट होने पर ब्रह्मा को भारी असन्तोष हुआ। तदुपरान्त भगवान्के गहन ध्यान से ब्रह्मा ने अपने मनको पवित्र किया तब मन में भगवान्का चिन्तन करते-करते उनके मानसिक चिन्तन से पञ्चवर्षीय बालक स्वरूप में जटाजूट से सुशोभित नग्नावस्था के सनक-सनन्दन-सनातन एवं सनत्कुमार चार मुनिगण प्रकट हुए । ये सनकादि कहे जाते हैं और सदा इसी अवस्था के दिखते हैं। चाारो हमेशा साथ-साथ रहते हैं। सृष्टि की वृद्धि करने की ब्रह्मा की आज्ञा का अवहेलना कर सनकादिक ब्रह्मचर्य से युक्त तपस्वी हो गये। तब ब्रह्मा को क्रोध हुआ और उनकी भृकुटि से रोता हुआ नील-लोहित बालक प्रकट हुआ जो रुद्र कहा गया। इसने अपनी ग्यारह पत्नियों से डरावने रूप वाले जीवों को प्रकट किया जो जगत के विनाश करने लगे। सृष्टिकार्य से रोक कर ब्रह्मा ने रुद्र को तपस्या करने भेज दिया।

अथाभिध्यायतः सर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे।
भगवत्-शक्तियुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः। ।**3**।**12**।**21**। ।
मरीचिः अत्रि-अङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
भृगुः वशिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः। ।**3**।**12**।**22**। ।

भगवान् से शक्ति प्राप्त कर ब्रह्मा ने तब मन से मरीचि, नेत्र से अत्रि, मुख से अङ्गिरा, कान से पुलस्त्य, नाभि से पुलह, हाथ से क्रतु, त्वचा से भृगु, प्राण से वसिष्ठ, अँगूठा से दक्ष तथा दिव्य विचार से नारद दस मुनियों को प्रकट किया। नारद जी को छोड़कर अन्य सभी सृष्टि विस्तार में लग गये।

धर्मः स्तनात् दक्षिणतो यत्र नारायणः स्वयम्।
अधर्मः पृष्ठतो यस्मात्मृत्युः लोकभयङ्करः। ।**3**।**12**।**25**। ।
छायायाः कर्दमो जज्ञे देवहूत्याः पतिः प्रभुः।
मनसो देहतश्चेदं जज्ञे विश्वकृतो जगत्। ।**3**।**12**।**27**। ।

ब्रह्मा के दाहिने स्तन से धर्म आये जो स्वयं नारायण के पिता हुए। ब्रह्मा की पीठ से मृत्यु स्वरूप अधर्म उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा की छाया से सामर्थ्यवान्कर्दम मुनि प्रकट हुए जो मनु-पुत्री देवहूति के पति हुए और इनसे ही ब्रह्मा के नौ मानस पुत्रों की पत्नियाँ उत्पन्न हुईं जो सृष्टि विस्तार में सहायक बनीं।

कदाचिद् ध्यायतः स्रष्टुः वेदा आसन् चर्तुमुखात्।
कथं स्रक्ष्यामि-अहम् लोकान् समवेतान् यथा पुरा। ।3।12।34। ।
चातुर्होत्रं कर्मतन्त्रम्उपवेद-नयैः सह।
धर्मस्य पादाः चत्वारः तथैव-आश्रमवृत्तयः। ।3।12।35।

एक बार ब्रह्मा पहले की तरह सृष्टि कैसे करेंगे सोच ही रहे थे कि इनके चारों मुखों से चारो वेद प्रकट हुए। इसके अतिरिक्त न्यायशास्त्र, उपवेद, न्यायशास्त्र तथा यज्ञ के चार ऋत्विज - होता, उद्गाता, अध्वर्यु तथा यज्ञ के निमित्त ब्रह्मा एवं इन सबों के कर्म, यज्ञों का विस्तार, धर्म के चार चरण - विद्या, दान, तप और सत्य, एवं वृत्तियों के साथ चारों आश्रम ब्रह्मा जी के मुख से प्रकट हुए।

ऋक्-यजुः साम-अथर्व-अख्यान्वेदान्पूर्व-आदिभिः मुखैः।

शास्त्रम् इज्याम् स्तुति-स्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात्-क्रमात्। ।**3**।**12**।**37**। ।
आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वं वेदम्-आत्मनः।
स्थापत्यं च असृजद् वेदं क्रमात्-पूर्वादिभिमुखैः। ।**3**।**12**।**38**। ।
इतिहास-पुराणानि पञ्चमं वेदम्-ईश्वरः।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः। ।**3**।**12**।**39**। ।

ब्रह्मा ने अपने पूर्व के मुख से ऋक्, दक्षिण से यजु:, पश्चिम से साम और उत्तर के मुख से अथर्व वेद प्राप्त किया। इसी क्रम से होता का कर्म शास्त्र, अध्वर्यु का कर्म ईज्या अर्थात्पूजा, उद्‌गाता का कर्म स्तुति और यज्ञमण्डप के ब्रह्मा का कर्म प्रायश्चित्त को प्रकट किया। इसी प्रकार चिकित्साशास्त्र, शस्त्रविद्या, संगीतशास्त्र तथा शिल्पविद्या आदि उपवेदों का क्रम से पूर्वादिमुखों से प्रकट किये। सर्वदर्शी बह्मा ने चारों मुखों से पाँचवे वेद इतिहास-पुराणादि को प्रकट किया।

यस्तु तत्र पुमान्सोऽभूत्मनुः स्वायम्भुवः स्वराट्।
स्त्री याऽऽसीत्-शतरूपा-आख्या महिष्यस्य महात्मनः। ।**3**।**12**।**53**। ।
प्रियव्रत-उत्तानपादौ तिस्रः कन्याश्च भारत।
आकूतिः देवहूतिश्च प्रसूतिः इति सत्तम। ।**3**।**12**।**55**। ।

दो भाग में विभक्त ब्रह्मा की देह के एक भाग से परमस्वतन्त्र स्वायम्भुव मनु हुए तथा दूसरे भाग से शतरूपा नामकी नारी प्रकट हुई।इनके दो पुत्र प्रियव्रत तथा उत्तानपाद हुए और तीन पुत्रियाँ आकूति, देवहूति तथा प्रसूति हुई

3।7 सनकादिक का वैकुण्ठ भ्रमण, जय-विजय का पतन एवं भगवान् वराह का अवतरण।

एक बार ब्रह्मा के ज्येष्ठतम मानस-पुत्र सनकादिक मुनिगण भगवान्के दर्शन के लिए वैकुण्ठ लोक गये। वहाँ वैकुण्ठ लोक के सातवें फाटक के प्रहरी जय-विजय के व्यवहार से मुनिगण क्षुब्ध हो गये। उनलोगों को तीन जन्म का राक्षस बनने का शाप दे डाला। संयोगवश रतिभाव से कामातुर दैत्यमाता दिति ने हठात् सन्ध्या काल की अशुभ घड़ी में अपने पति कश्यप मुनि के मना करने पर भी गर्भ-धारण किया। जय-विजय शापवश वैकुण्ठ से स्थान-च्युत हो गये थे और मौका देख दिति के गर्भ में प्रवेश कर गये।

भविष्यतः तव-अभद्रौ-अभद्रे जाठर-अधमौ।
लोकान् सपालान्-त्रीन्-चण्डि मुहुः आक्रन्दयिष्यतः। ।**3**।**14**।**38**। ।
पुत्रस्यैव तु पुत्राणां भवितैकः सतां मतः।
गास्यन्ति यत्-यशः शुद्धं भगवत्-यशसा समम्। ।**3**।**14**।**44**। ।
यत्प्रसादादिदं विश्वं प्रसीदति यदात्मकम्।
स स्वदृग्भगवान्यस्य तोष्यतेऽनन्यया दृशा। ।**3**।**14**।**46**। ।
स वै महाभागवतो महात्मा महानुभावो महतां महिष्ठः।
प्रवृद्धभक्त्या ह्यनुभाविताशये निवेश्य वैकुण्ठमिमं विहास्यति। ।**3**।**14**।**47**। ।
अन्तर्बहिश्च-अमलमब्जनेत्रं स्वपूरुष-इच्छा-अनुगृहीत-रूपम्।

पौत्रस्तव श्रीललना-ललामं द्रष्टा स्फुरत्कुण्डल-मण्डित-आननम्। ।3।14।49। ।

कश्यप मुनि ने अशुभ समय में पुत्र कामना से संभोग करने वाली दिति को बताया कि तुम्हारे गर्भ से दो अत्याचारी राक्षस उत्पन्न होंगे जो सर्वदा तीनों लोकों को रुलाते रहेंगे। परन्तु तुम्हारे पुत्रों में से एक का पुत्र भगवान् का परम भक्त होगा जिसके यश भक्तगण गायेंगे। सन्तों की कृपा से विश्व कल्याण पाता है और उनकी भक्ति से भगवान् भी प्रसन्न हो जाते हैं। सज्जनों में श्रेष्ठ तुम्हारा पौत्र महाभागवत होगा और वह भगवान् को हृदयस्थ कर देहाभिमान से मुक्त हो जायेगा। जो जीवों के भीतर एवं बाहर रहते हुए भक्तों के मनोरूप मंगल-विग्रह धारण करते हैं वही श्रीललना-ललाम, लक्ष्मी को सुशोभित करने वाले, श्रीलक्ष्मीनरसिंह कुण्डलों से सुशोभित मुखवाले प्रभु का तुम्हारे पौत्र को साक्षात् दर्शन होगा। अन्ततः हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकशिपु नामक राक्षस दिति के गर्भ से पैदा हुए। हिरण्याक्ष ने पृथ्वी को समुद्र में डुबो दिया।

वराह भगवान्का अवतरण

विदुर जी ने पूछा कि स्वायम्भुव मनु ने आगे क्या किया ?

श्रुतस्य पुंसां सुचिर-श्रमस्य ननु-अञ्जसा सूरिभिः ईडितोऽर्थः।

यत्-तत्-गुणानुश्रवणं मुकुन्दपादारविन्दं हृदयेषु येषाम्। ।3।13।4। ।

जिनके हृदय में मुकुन्द भगवान् के चरणारविन्द सर्वदा विराजमान रहते हैं वैसे भक्तों के गुणानुवाद सुनने से सभी शास्त्रों का अभ्यास पूरा हो जाता है। विदुर जी की वाणी सुन मैत्रेय मुनि ने आगे की कथा सुनाई।

इत्यभिध्यायतो नासा-विवरात्-सहसानघ।

वाराहतोको निरगात्-अङ्गुष्ठ-परिमाणकः। ।3।13।18। ।

इति मीमांसतः तस्य ब्रह्मणः सह सूनिभिः।

भगवान् यज्ञपुरुषो जगर्ज-अगेन्द्र-सन्निभः। ।3।13।23। ।

जब ब्रह्मा ने मनु-शतरूपा की सृष्टि की तब मनु ने सृष्टि-विस्तार के लिए पृथ्वी के उद्धार की बात की जो उस समय समुद्र में डूबी हुई थी। ब्रह्मा मन में सोच ही रहे थे कि उनकी नाक से एक सूक्ष्म जीव बाहर आया जो धीरे-धीरे एक विशाल वराह के रूप में परिणत हुआ। ब्रह्मा एवं मरीचि आदि ने सोचा कि यह यज्ञमूर्ति वराह भगवान् हैं। इस सन्दर्भ में निम्नांकित श्लोक द्रष्टव्य हैं जिसमें भगवान्के वराह स्वरूप का उल्लेख है।

द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम्।

उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः। ।1।3।7। ।

सूत जी कहते हैं रसातल में गयी हुई पृथ्वी के उद्धार हेतु यज्ञेश भगवान्ने सूकर का शरीर धारण किया। ब्राह्म दक्ष के यज्ञ में भगवान्के प्रकट होने पर यज्ञ के ब्राह्मणों ने उनकी स्तुति करते हुए कहा-

त्वं पुरा गां रसाया महासूकरो दंष्ट्रया पद्मिनीं वारणेन्द्रो यथा।

स्तूयमानो नदन्-लीलया योगिभिः व्युज्जहर्थ त्रयीगात्र यज्ञक्रतुः। । 4।7।46। ।

हाथी जैसे कमलपुष्प को सरोवर से ऊपर उठाता है वैसे ही आपने महावराह के स्वरूप में पृथ्वी को जल सेउद्धार करते समय जो गर्जन लगायी थी वही यज्ञों के मन्त्र बन गये हैं।

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसाया जगत्-आदिसूकरः।

कृत्वा-अग्रदंष्ट्रे निरगात्-उदन्वत: क्रीडन्-इव-इभ: प्रणतास्मि तं विभुमिति। ।5।18।39।।

पृथ्वी माता प्रार्थना करते हुए कहती है कि आदिसूकर अर्थात् आदिवराह भगवान् ने युद्ध में हिरण्याक्ष दैत्य को मारकर सरोवर में हाथी जैसे कमल फूल से खेलता है उसीतरह मुझे अपने दाँतों के अगलाभाग पर सम्भाले सागर से बाहर लाये। इस स्वरूप को नमस्कार है।

उत्क्षिप्त-वाल: खचर: कठोर: सटा विधुन्वन्खर-रोमश-त्वक्।

खुर-आहत-अभ्र: सितदंष्ट्र ईक्षा ज्याति: बभासे भगवान् महीध्र:। ।3।13।27।।

सूकर रूप के वराह भगवान्के कठोर शरीर के चमड़े पर कड़े-कड़े बाल, सफेद दाँत तथा चमकती आँखों से शोभायमान हो रहे थे। पूँछ उठाकर बड़े वेग से आकाश में उछले तथा गर्दन के बालों को फटकारते हुए खुरों के आघात से बादलों को तितर-वितर करने लगे। वे पर्वताकार हो गरजते हुए सभी दिशाओं को गुंजाने लगे। मुनिगण पवित्र वेद के मन्त्रों से भगवान्की स्तुति करने लगे। भगवान् समुद्र जल में घुसे। सूँघ कर वराह भगवान् ने जल में डूबी पृथ्वी का पता कर लिया।

स्वद्रंष्ट्रया-उद्धृत्य महीं निमग्नां स उत्थित: संरुरुचे रसाया:।

तत्रापि दैत्यं गदयाऽऽपतन्तं सुनाभ-सन्दीपित-तीव्रमन्यु:। ।3।13।31।।

जघान रुन्धानम्-असह्यविक्रमं स लीलया-इभं मृगराड्-इव-अम्भसि।

तत्-रक्त-पङ्काङ्कित-गण्डतुण्डो यथा गजेन्द्रो जगतीं विभिन्दन्। ।3।13।32।।

अपने दाढ़ों पर पृथ्वी को उठाकर वराह भगवान् जल से बाहर आये। जैसे सिंह हाथी का वध करता है उसी तरह गदा लेकर आक्रमण करने वाले हिरण्याक्ष का वध भगवान्ने किया। भगवान् के कपोल एवं जिह्वा राक्षस के रक्त से सना हुआ था जैसे किसी हाथी का सूंढ़ मिट्टी से सना होता है।

तमालनीलं सितदन्तकोट्या क्ष्माम्-उत्क्षिपन्तं गजलीलया-अङ्ग।

प्रज्ञाय बद्धाञ्जलयोऽनुवाकै: विरञ्चिमुख्या उपतस्थु: -ईशम्। ।3।13।33।।

जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नम:।

यत्-रोमगर्तेषु निलिल्यु: - अध्वरा: - तस्मै नम: कारणसूकराय ते। ।3।13।34।।

तमाल जैसे नीले वर्ण के भगवान् पृथ्वी को अपने श्वेत बक्र दाँतों पर धारण किये थे मानो कोई हाथी अपनी सूँढ़ पर पृथ्वी उठाये हो। यह देख ऋषिगण एवं ब्रह्मादि वराह भगवान्की स्तुति करने लगे।आपकी जय हो, जय हो। तीनों वेद के स्वरूप हैं तथा आपके शरीर के प्रत्येक रोम-छिद्र में सम्पूर्ण यज्ञ लीन है। विशेष कार्य के लिए ही आपने सूकर का रूप धारण किया है। वराह भगवान्को नमस्कार है। ऋषियों ने भगवान् वराह के शरीर को यज्ञमय देखा जिसके सभी अवयव यज्ञ सम्पादन हेतु सामग्रियों के द्योत्तक हैं।

रूपं तव-एतत् ननु दुष्कृतात्मानां दुर्दशनं देव यत्यध्वर-आत्मकम्।

छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हि: रोमसु-आज्यं दृशि त्वङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम्। ।3।13।35।।

स्रुक्तुण्ड आसीत्-स्रुव ईश नासयो: इडा-उदरे चमसा: कर्णरन्ध्रे।

प्राशित्रम्-आस्ये ग्रसने ग्रहास्तु ते यत्चर्वणं ते भगवन् अग्निहोत्रम्। ।3।13।36।।

दुराचारियों को इस स्वरूप का दर्शन दुस्तर है। आपकी त्वचा में गायत्री आदि छन्द, रोमावली में कुश, नेत्रों में घृत एवं चारों ऋत्विजों के क्रियाकलाप आपके चारों चरणों में वर्तमान हैं। आपके थुथना में स्रुक है, नाकों के छिद्रों में स्रुवा है, उदर में यज्ञ के निमित्त काम आनेवाला भोजन-पात्र इडा है,कानों में चमस है, आपका मुख ब्रह्मा का यज्ञ पात्र प्राशित्र है, कण्ठछिद्र में ग्रह यानी सोमपात्र है और भगवान् आप जो चबाते हैं वही अग्निहोत्र है।

त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं भूमण्डलेनाथ दता धृतेन ते।

चकास्ति श्रृङ्ग-उढ-घनेन भूयसा कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रम:। ।3।13।41। ।

पृथ्वी आपके दाँतों पर आपके वेदमय-वराह-विग्रह पर पर्वत-शिखर के मेघमाला की तरह सुशोभित हो रही है।

इति-उपस्थीयमान: तै: मुनिभि: ब्रह्मवादिभि:।

सलिले स्वखुराक्रान्त उपाधत्ता-अविता-अवनिम्। ।3।13।46। ।

मैत्रेय मुनि ने कहा कि अपने खुरों से जल को स्तम्भित कर भगवान्‌ने जल पर पृथ्वी को स्थापित कर दी।

स इत्थं भगवानुर्वी विष्वकसेन: प्रजापति:।

रसाया लीलया-उन्नीताम्-अप्सु न्यस्य ययौ हरि:। ।3।13।47। ।

तदुपरान्त विष्वकसेन रूप से प्रजा के पालन करने वाले भगवान् पृथ्वी का उद्धार कर स्वधाम चले गये।

को नाम लोके पुरुषार्थसारवित् पुराकथानां भगवत्कथासुधाम्।

आपीय कर्णाञ्जलिभि: भव-अपहाम्-अहो विरज्येत विना नरेतरम्। ।3।13।50। ।

इस संसार में कौन ऐसा मनुष्य होगा जो कान की अंजलियों से भगवान्‌की अमृत-कथा पीकर तृप्त होगा !

<u>सनकादिक मुनियों का वैकुण्ठ-भ्रमण</u>

संसार की हानि की आशंका से दिति ने गर्भ को अनेकों वर्ष तक रोक रखा। फलस्वरूप सर्वत्र घोर अंधकार छाने लगा। देवगण घबरा कर ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने दिति के गर्भ में दो अत्याचरी राक्षसों के स्थित होने का कारण बता कर सनकादिक मुनि की वैकुण्ठ लोक भ्रमण की कथा सुनायी।

मानसा मे सुता युष्मत्पूर्वजा: सनकादय:।

चेरुर्विहायसा लोकान्-लोकेषु विगतस्पृहा:। ।3।15।12। ।

त एकदा भगवतो वैकुण्ठस्य-अमलात्मन:।

ययु: वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनम्स्कृतम्। ।3।15।13। ।

यत्र नै:श्रेयसं नाम वनं कामदुघै: द्रुमै:।

सर्व-ऋतु-श्रीभि: विभ्राजत्-कैवल्यमिव मूर्तिमत्। ।3।15।16। ।

एक बार सनकादि मुनिगण वैकुण्ठ पहुँचे और वहाँ नि:श्रेयस वन देखा। विभिन्न पक्षियों एवं फूलों से सुशोभित इस वन में गन्धर्व भगवान्‌का गुण-गान करते रहते हैं।

मन्दार-कुन्द-कुरब-उत्पल-चम्पक-अर्ण-पुन्नाग-नाग-बकुल-अम्बुज-पारिजाता:।

गन्धेऽर्चिते तुलसिका-आभरणेन तस्या यस्मिन्-तप: सुमनसो बहु मानयन्ति। ।**3**।**15**।**19**। ।

भगवान् को तुलसी प्रिय है। इस कारण अन्य पुष्प - मन्दार, चम्पा, पारिजातादि तुलसी की तपस्या की महिमा को ही सर्वोपरि मानते हैं।

श्री रूपिणी क्वणयती चरणारविन्दं लीलाम्बुजेन हरिसद्मनि मुक्तदोषा।

संलक्ष्यते स्फटिककुड्य उपेतहेम्नि सम्मार्जतीव यदनुग्रहणेऽन्ययत्न:।।।।3।15।21।।

जिस लक्ष्मी जी की कृपा प्राप्त करने के लिए अन्य देव लालायित रहते हैं वही यहाँ लीला-कमल घुमाती रहती हैं। उनकी छाया वैदूर्यमणि की दीवारों पर ऐसी दिखती है मानों वे इसे लीला-कमल से बुहार रही हैं।

यन्न व्रजन्ति-अघभिदो रचनानुवादात्-श्रृण्वन्ति येऽन्यविषया: कुकथा मतिघ्नी:।

यास्तु श्रुता हतभगै: नृभि: आत्त-सारा: तान्-तान्क्षिपन्ति-अशरणेषु तम: सु हन्त।।3।15।23।।

ये-अभ्यर्थिताम्-अपि च नो नृगतिं प्रपन्ना ज्ञानं च तत्त्वविषयं सहधर्म यत्र।

नाराधनं भगवतो वितरन्ति-अमुष्य सम्मोहिता विततया बत मायया ते।।3।15।24।।

अभागे लोग सांसारिक बातों में लगे रहते हैं परन्तु नित्यधाम वैकुण्ठ का गुण्गान नहीं करते। यह मानव शरीर तत्त्वज्ञान प्राप्ति का साधन है। इसे देवतालोग भी चाहते हैं। संसार में मनुष्य मायावश इसे यों हीं गँवा देते हैं। सदा श्रीहरि का चिन्तन करने वाले ही वैकुण्ठ के अधिकारी होते हैं।

तस्मिन्-अतीत्य मुनय: षडसज्जमाना: कक्षा: समान-वयसौ-अथ सप्तमायाम्।

देवावचक्षत गृहीतगदौ परार्ध्य-केयूर-कुण्डल-किरीट-विटङ्क-वेषौ।।3।15।27।।

मत्त-द्विरेफ-वनमालिकया निवीतौ विन्यस्तया-असित-चतुष्टय-बाहुमध्ये।

वक्त्रं भ्रुवा कुटिलया स्फुटनिर्गमाभ्यां रक्तेक्षणेन च मनाक्-रभसं दधानी।।3।15।28।।

सनकादि छ: दरवाजे पारकर अबाध-गति से सातवें पर पहुँचे। वहाँ गदा आदि धारण किये चतुर्भुज स्वरूप के दो समान अवस्था वाले पार्षदों के नाक तथा चेहरे पर क्षोभ के चिह्न एवं क्रोध से उनकी लाल आँखों की परवाह किये वगैर सातवें डयोढ़ी में प्रवेश कर गये। नंग-धड़ंग पाँच-वर्षीय सनकादिकों को घुसते देख पार्षदों ने डन्डों से उनका मार्ग रोका। वैकुण्ठ के प्रतिकूल स्वभाव देख मुनियों की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं। मुनियों ने कहा कि तू दोनों पाप-यानि में चला जा जहाँ काम-क्रोध-लोभ का निवास रहता है। दोनों पार्षदों ने उनके चरणों में गिर क्षमा मांगते हुए यह अनुरोध किया कि वे जिस योनि में जायें उनमें भगवत्-प्रेम का नाश न हो।

भूयात्-अघोनि भगवद्भि: अकारि दण्डो यो नौ हरेत सुरहेलनम्-अपि-अशेषम्।

मा वोऽनुतापकलया भगवत्-स्मृतिघ्नो मोहो भवेदिह तु नौ व्रजतो: अधोऽध:।।3।15।36।।

एवं तदैव भगवान्-अरविन्दनाभ: स्वानां विबुध्य सत्-अतिक्रमम्-आर्यहृद्य:।

तस्मिन् ययौ परमहंस-महामुनीनाम्-अन्वेषणीय-चरणौ चलयन् सहश्री:।।3।15।37।।

तं तु-आगतं प्रतिहृत-औपयिकं स्वपुम्भि: ते अचक्षत-अक्षविषयं स्वसमाधि-भाग्यम्।

हंसश्रियो: व्यजनयो: शिववायु-लोलत-शुभ्र-आतपत्र-शशि-केसर-शीकर-अम्बुम्।।3।15।38

जय-विजय ने कहा कि हमलोगों का दण्ड बहुत ही उचित है परन्तु जब हम अधोगति को प्राप्त हों तब भगवान् की स्मृति बनी रहने का आप आशीर्वाद दें। सनकादिकों की अवमानना का पद्मनाभ भगवान्को स्वयमेव ज्ञान हो

गया। जिनके चरणों को मुनिलोग खोजते रहते हैं वही भगवान् घटना ज्ञात होते ही लक्ष्मी जी के साथ पैदल ही वहाँ पहुँचे। सनकादिकों ने समाधि में दर्शन देने वाले भगवान्को आँखों से सामने आते देखा। पार्षदगण के हंस जैसा श्वेत चँवर से उत्पन्न शीतल वायु के अतिरिक्त भगवान्के श्वेत छत्र से चन्द्रमा की अमृतमयी फुहारें मोतीकण की तरह बरस रही थी।

कृत्स्न-प्रसाद-सुमुखं स्पृहणीयधाम स्नेहावलोक-कलया हृदि संस्पृशन्तम्।
श्यामे पृथौ-उरसि शोभितया श्रिया स्वः चूडामणिं सुभगयन्तम्-इवात्म-धिष्णयम्।।3।15।39।।
पीतांशुके पृथुनितम्बिनी विस्फुरन्त्या काञ्चया-अलिभिः विरुतया वनमालया च।
वल्गु-प्रकोष्ठवलयं विनता-सुत-अंसे विन्यस्तहस्तम्-इतरेण धुनानम्-अब्जम्।।3।15।40।।

मंगलस्वरूप भगवान् की हृदयस्पर्शी चितवन एवं विशाल श्याम वक्षस्थल पर विराजमान सौभाग्यप्रदा मगलस्वरूपा लक्ष्मी जी से वैकुण्ठलोक उद्भासित हो रहा था। पीताम्बर पर कमर का आभूषण तथा मँड़राती मधुमक्खियों वाली वनमाला शोभ रही थी। एक हाथ गरुड़ के कन्धे पर तथा दूसरे से भगवान् कमल नचा रहे थे।

विद्युत्-क्षिपत्-मकरकुण्डल-मण्डनार्ह - गण्डस्थल-उन्नस-मुखं मणिमत्किरीटम्।
दोः दण्ड-षण्डविवरे हरता परार्ध्यहारेण कन्धरगतेन च कौस्तुभेन।।3।15।41।।
अत्रोपसृष्टमिति च-उत्स्मतम्-इन्दिरायाः स्वानां धिया विरचितं बहुसौष्ठव-आढ्यम।
मह्यं भवस्य भवतां च भजन्तम्-अङ्गं नेमुर्निरीक्ष्य न-वितृप्तदृशो मुदा कैः।।3।15।42।।

विजली के समान चकमक मकराकृत कुण्डल से सुशोभित गाल, ऊँची नाक, मुखारविन्द एवं मणि से युक्त मुकुट सिर पर विराज रहे थे। विशाल चारो भुजाओं के बीच बहुमूल्य हार एवं कन्धे को कौस्तुभ मणि मनोहारी बना रहे थे। लक्ष्मी की सुन्दरता को पराजित करने वाले भगवान्का स्वरूप सभी सौन्दर्य की खान थी। ब्रह्मा देवताओं को कहते हैं कि मुझसे, शंकर एवं तुम सबों से पूज्य भगवान् के सौन्दर्य को सनकादिक एकटक देखते हुए उनके चरणारविन्द पर गिर पड़े।

तस्यारविन्द-नयनस्य पदारविन्द-किञ्जल्क-मिश्र-तुलसी-मकरन्दवायुः।
अन्तर्गतः स्वविरेण चकार तेषां सङ्क्षोभम्-अक्षर-जुषामपि चित्ततन्वोः।।3।15।43।।

कमलनयन भगवान्के चरण-कमल की सुगन्धित वायु से सुवासित तुलसी जी की मीठी महक मुनियों के हृदय में उनकी नाक से प्रवेश की। तुलसी को स्वाभाविक सुगन्ध भगवान्के चरणारविन्द की मीठी महक से ही प्राप्त है।

ते वा अमुष्य वदन-असित-पद्मकोशम्-उद्वीक्ष्य सुन्दरतर-अधरकुन्दहासम्।
लब्धाशिषः पुनरवेक्ष्य तदीयम्-अङ्घ्रि-द्वन्द्वं नखारुण-मणिश्रयणं निदध्युः।।3।15।44।।

नीलकमल जैसे मुख के कुन्दकली के समान होंठ पर मुस्कान और पद्मराग के रंगवाले चरणों के नखावली के सौंदर्य के दर्शन से सनकादिक कृतकृत्य हो उनका ध्यान करने लगे। सनकादिकों ने कहा -

योऽन्तर्हितो हृदि गतोऽपि दुरात्मनां त्वं सोऽद्यैव नो नयनमूलम्-अनन्त राद्धः।
यर्हि-एव कर्णविवरेण गुहां गतो नः पित्रा-अनुवर्णित-रहाः भवत्-उद्भवेन।।3।15।46।।

सबके हृदय में आप विराजते हैं परन्तु दुष्ट लोग आपके अनुभव से वंचित रहते हैं। हमलोगों के पिता ब्रह्मा जी द्वारा सुनाये गये आपके स्वरूप के सौंदर्य का वर्णन कानों से सुना था उसके दर्शन का आज सौभाग्य मिला।

नात्यन्तिकं विगणयन्त्यपि ते प्रसादं किन्त्वन्यत्-अर्पितभयं भुव उन्नयैस्ते।
येऽङ्ग त्वदङ्घ्रिशरणा भवत: कथाया: कीर्तन्य-तीर्थयशस: कुशला रसज्ञा:। ।3।15।48। ।
कामं भव: स्ववृजिनै: -निरयेषु न: स्तात्-चेतो -अलिवत्-यदि नु ते पदयो रमेत।
वाचश्च न: -तुलसीवत्-यदि तेऽङ्घ्रिशोभा: पूर्येत ते गुणगणै: यदि कर्णरन्ध्र:। ।3।15।49। ।

आपके सुयश का गान करनेवाले तथा चरणारविन्द के रसिक मोक्ष की भी उपेक्षा करते हैं। परन्तु आपकी टेढी भौं से डर लगता है। भौंरे की तरह हमारा चित्त आपके चरणकमल में रमे। हमारी वाणी आपके चरण की तुलसी-सुगंध से सुवासित रहे। हमारे कान आपके गुणगान से भरे रहें। प्रहरियों पर क्रोध के कारण अर्जित पाप से हमें नरक-योनि की भी कोई चिन्ता न होगी। भगवान्ने कहा -

एतौ तौ पार्षदौ मह्यं जयो विजय एव च।
कदर्थीकृत्य मां यद्वो बहु-आक्राताम्-अतिक्रमम्। ।3।16।2। ।

हमारी अवहेलना कर जय एवं विजय मेरे दोनों पार्षदों ने आपसे भारी अपराध किया है।

यस्य-अमृत-अमलयश:श्रवणावगाह: सद्य: पुनाति जगत्-आश्वपचात्-विकुण्ठ:।
सोऽहं भवद्‌भय उपलब्ध-सुतीर्थकीर्ति: छिन्द्यां स्वबाहुमपि व: प्रतिकूलवृत्तिम्। ।3।16।6। ।

मेरे निर्मल यश में गोता लगाने के कारण चाण्डाल भी पवित्र हो जाते हैं। इसी से मेरा नाम विकुण्ठ है। यह पवित्र कीर्ति आपलोगों से ही हमें मिली है। मेरी भुजा भी अगर आपके विरुद्ध आचरण करे तो मैं उसे काट डालूँगा। हे मुनिगण! इनकी सजा की अवधि आप निश्चित कर दें जिससे कि ये दोनों मेरी सेवा में पुन: यहाँ लौट आयें। स्कन्ध 7।1।37 - 38 से यह स्पष्ट है कि दण्ड तीन योनि के लिए है।मुनियों ने भगवान्की प्रार्थना की और वैकुण्ठ से लौट आये। भगवान् ने दोनों पार्षदों को दैत्य योनि में जन्म लेने का आदेश दिया।

एतत्पुरैव निर्दिष्टं रमया क्रुद्धया यदा।
पुरापवारिता द्वारि विशन्ती मय्युपारते। ।3।16।30। ।
विश्वस्य य: स्थिति-लय-उद्‌भव-हेतु: आद्यो योगेश्वरैरपि दुरत्यय-योगमाय:।
क्षेमं विधास्यति स नो भगवान्-त्री-अधीश: तत्र-अस्मदीय-विमृशेन कियान्-इहार्थ:। ।**3।16।37**। ।

एक बार मैं योगनिद्रा में था। उस समय लक्ष्मी जी को भी जो बाहर गयीं थीं यहाँ लौटने पर तुमलोगों ने रोका था। उन्होंने भी यही शाप दिया था। इसके बाद भगवान् लौट गये। तब ब्रह्मा ने कहा कि तीनों गुणों के स्वामी भगवान्जन्म-पालन-संहार के आदि-कारण हैं। उनकी योगमाया को योगीश्वरजन भी कठिनता से समझ पाते हैं।श्रीहरि ही कल्याण करेंगे । भगवान्से दण्डित हो दोनों पार्षद श्रीहीन हो वैकुण्ठ से नीचे गिरने लगे। सर्वत्र बड़ा हाहाकार मचा। ब्रह्मा ने देवों को यह पूरा वृत्तान्त सुना दिया।सूत जी ने कहा -

अन्येषां पुण्यश्लोकानाम्-उद्दाम-यशसां सताम्।
उपश्रुत्य भवेन्मोद: श्रीवत्साङ्कस्य किं पुन:। ।3।19।34। ।

भगवान्के भक्तों का कार्यकलाप जब आनन्दप्रद है तब उनकी लीला-श्रवण के आनन्द का क्या कहना है!

3।8 कर्दम जी की तपस्या एवं उनको भगवान्का वरदान।

स्वायम्भुवस्य च मनो: वंश: परमसम्मत:।

कथ्यतां भगवन्यत्र मैथुनेन-एधिरे प्रजा:। ।**3**।**21**।**1**। ।

प्रजा: सृजेति भगवान् कर्दमो ब्रह्मणोदित:।

सरस्वत्यां तपस्तेपे सहस्राणां समा दश। ।**3**।**21**।**6**। ।

विदुर जी ने स्वायम्भुव मनु द्वारा सृष्टि-विस्तार जानने की जिज्ञासा की। मैत्रेय मुनि ने मनु की संतान से वंशवृद्धि का विस्तार कहने के पूर्व विदुर जी को बताया कि ब्रह्मा के आदेश से सृष्टि करने हेतु ब्रह्मा की छाया से उत्पन्न कर्दम जी द्वारा सरस्वती नदी के किनारे दस हजार वर्ष की तपस्या का वृतान्त सुनाया जो मनु के सृष्टिकार्य का मुख्य भाग बना।

तावत्प्रसन्नो भगवान् पुष्कारक्ष: कृते युगे।

दर्शयामास तं क्षत्त: शाब्दं ब्रह्म दधद्वपु:। ।**3**।**21**।**8**। ।

स तं विरजम्-अर्काभं सित-पद्मोत्पल-स्रजम्।

स्निग्ध-नील-अलक-व्रात-वक्त्र-अब्जं विरजोऽम्बरम्। ।**3**।**21**।**9**। ।

किरीटिनं कुण्डलिनं शङ्ख-चक्र-गदाधरम्।

श्वेत-उत्पल-क्रीडनकं मन:स्पर्श-स्मितेक्षणम्। ।**3**।**21**।**10**। ।

विन्यस्त-चरणाम्भोजम्-अंस-देशे गरुत्मत:।

दृष्ट्वा खेऽवस्थितं वक्ष:श्रियं कौस्तुभ-कन्धरम्। ।**3**।**21**।**11**। ।

सत्ययुग के प्रारम्भ में कर्दम मुनि की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् स्वयं अपने नित्य-सुन्दर स्वरूप में प्रकट हुए।सूर्य सा तेज, श्वेत कमल एवं कुमुद की माला, लटकते केश से सुशोभित मुखमण्डल, मुकुट, कुण्डल, शङ्खचक्रादि युक्त, कमल घुमाते, गरुड़ जी के कन्धे पर चरण रखे, श्रीवत्स एवं कौस्तुभ से सुशोभित आकाश में स्थित भगवान्‌को देख पृथ्वी पर साष्टांग करते हुए कर्दम जी ने भगवान्‌की स्तुति की।

ये मायया ते हतमेधसस: त्वत्-पादारविन्दं भवसिन्धुपोतम्।

उपासते काम-लवाय तेषां रासीश कामान्-निरयेऽपि ये स्यु:। ।**3**।**21**।**14**। ।

तथा स चाहं परिवोढुकाम: समानशीलां गृहमेधधेनुम्।

उपेयिवान्मूलम्-अशेषमूलं दुराशय: कामदुघ-अङ्घ्रिपस्य। ।**3**।**21**।**15**। ।

आपका श्रीचरण भवसागर का जहाज है। ब्रह्मा जी के आदेश से सृष्टि हेतु अपने स्वभाव के अनुकूल पत्नी प्राप्ति के लिए आपकी शरण में आया हूँ।

एक: स्वयं सञ्जगत: सिसृक्षया-अद्वितीयया-आत्मन्-अधियोगमायया।

सृजस्यद: पासि पुन: ग्रसिष्यसे यथा-उर्णनाभि: भगवन् स्वशक्तिभि:। ।**3**।**21**।**19**। ।

नैतत्-बत-अधीश पदं तवेप्सितं यन्मायया नस्तनुषे भूतसूक्ष्मम्।

अनुग्रहाय-अस्तु-अपि यर्हि मायया लसत्तुलस्या तनुवा विलक्षित:। ।**3**।**21**।**20**। ।

मकड़ी जैसे ताना-बाना बुन निगलती है वैसे ही आप सृष्टि, पालन एवं संहार करते हैं। तुलसीमाला से विभूषित आपने दर्शन दिया है। मेरी सकाम आराधना सफल हो। भगवान्‌ने मुस्करा कर कहा -

स चेह विप्र राजर्षिर्महिष्या शतरूपया।

आयास्यति दिदृक्षुः त्वां परश्वो धर्मकोविदः।।3।21।26।।

आत्मजाम्-असित-अपाङ्गिं वयःशील-गुणान्विताम्।

मृगयन्तीं पतिं दास्यति-अनुरूपाय ते प्रभो।।3।21।27।।

परसो मनु-शतरूपा अपनी कन्या के साथ मिलने आयेंगे।वह कन्या रूप एवं शील में आपके अनुरूप है। वह भी अपने अनुरूप पति खोज रही है।

या त आत्मभृतं वीर्यं नवधा प्रसविष्यति।

वीर्ये त्वदीये ऋषय आधास्यन्ति-अञ्जसाऽऽत्मनः।।3।21।29।।

उस कन्या से विवाहोपरान्त आपकी नौ कन्यायें होंगी जिनका विवाह मरीचि आदि ऋषियों से होगी।

सहाहं स्वांशकलया त्वद्वीर्येण महामुने।

तव क्षेत्रे देवहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्वसंहिताम्।।3।21।32।।

मैं भी देवहूति के गर्भ से अपने अंश से उत्पन्न हो सांख्य शास्त्र का उपदेश करूँगा।।**3।21।32**।।

एवं तमनुभाष्याथ भगवान् प्रत्यक्-अक्षजः।

जगाम बिन्दुसरसः सरस्वत्या परिश्रितात्।।3।21।33।।

निरीक्षतस्तस्य ययौ-अशेष-सिद्धेश्वराभिष्टुत-सिद्धमार्गः।

आकर्णयन्पत्ररथेन्द्रपक्षैः उच्चारितं स्तोमम्-उदीर्ण-साम।।3।21।34।।

भगवान् ऐसा कह गरुड जी के पंख से निकलती सामवेद की ऋचायें सुनते सरस्वती से घिरे हुए बिन्दुसरोवर से अपने दिव्यधाम चले गये।

यस्मिन् भगवतो नेत्रात्-न्यपतन्-अश्रुबिन्दवः।

कृपया सम्परीतस्य प्रपन्नेऽर्पितया भृशम्।।3।21।38।।

तद्वै बिन्दुसरो नाम सरस्वत्या परिप्लुतम्।

पुण्यं शिवामृतजलं महर्षिगणसेवितम्।।3।21।39।।

सरस्वती नदी से घिरे बिन्दुसरोवर भगवान् के प्रेमाश्रु से ही निर्मित है। इस तीर्थ का सदा महर्षिगण सेवन करते हैं। बिन्दुसरोवर गुजरात के पाटन जिलें में है जो सिद्धपुर के पास है। सिद्धपुर अहमदावाद से **103** कि मी उत्तर में है। इसी के पास अन्हिलबाद है जो पूर्व में गुजरात की राजधानी हुआ करती थी और **10**वीं सदी में सोलंकी राजा की राजधानी के लिये प्रसिद्ध हो गयी थी। **15**वीं सदी से अहमदावाद राजधानी हुई। सिद्धपुर सरस्वती नदी के बायें तट पर है। विन्दु सरोवर को 'मातृ गया' या 'मातृ गया क्षेत्र' तथा 'मातृ श्राद्ध' कहा जाता है। यहाँ कपिल मुनि का आश्रम है और इस आश्रम के पास ही तीन कुंड हैंः 'ज्ञान वापिका' 'अल्प सरोवर' एवं 'बिन्दु सरोवर'। माँ के श्राद्ध के लिये पृथ्वी पर यह अकेला स्थल है। परशुराम जी ने भी अपनी माँ का श्राद्ध यहाँ किया था। कार्तिक माह में श्राद्ध करने का विधान है और इसे श्राद्धमास कहते हैं। बिन्दुसरोवर को 'श्रीस्थल' भी कहते हैं। इस पृथ्वी पर पाँच सरोवर प्रसिद्ध हैंः 'मान सरोवर तिब्वत में' 'पुष्कर सरोवर राजस्थान में' 'नारायण सरोवर कच्छ गुजरात में' 'पंपा सरोवर हम्पी कर्नाटक में' एवं 'बिन्दु सरोवर सिद्धपुर गुजरात में'। भगवान विष्णु के अश्रुबूँद इस सरोवर में गिरे थे

इसीलिये इसे बिन्दुसरोवर कहते हैं। यहाँ 'गया गदाधर' 'कपिलमुनि' 'देवहूति' एवं 'कर्दम मुनि' के अलग अलग मंदिर हैं। मनु-शतरूपा यथा निर्धारित अपनी कन्या के साथ वहाँ पहुँचे। प्रणाम करते देख मुनि ने उनलोगों का उचित सत्कार किया। मुनि ने मनु को विष्णु भगवान्का प्रतिनिधि कहा। उनकी प्रजापालन एवं दुष्टों पर नियन्त्रण की प्रशंसा की और उनके आगमन का कारण पूछा।

3।9 देवहूति-कर्दम विवाह ।

यदा तु भवत: शील-श्रुत-रूप-वयोगुणान्।

अश्रृणोत्-नारदात्-एषा त्वयि-आसीत्-कृतनिश्चया। ।3।22।10। ।

अहं त्वा-आश्रृणवं विद्वन् विवाहार्थं समुद्यतम्।

अत: त्वम्-उपकुर्वाण: प्रत्तां प्रतिगृहाण मे। ।3।22।14। ।

मनु ने कहा - मेरी कन्या देवहूति जब से नारद जी से आपकी प्रशंसा सुनी है आपसे ही विवाह का इसने निश्चिय किया है। मैं आप जैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी को यह कन्या समर्पित करता हूँ।

अतो भजिष्ये समयेन साध्वीं यावत्तेजो बिभृयात्-आत्मनो मे।

अतो धर्मान् पारमहंस मुख्यान् शुक्लप्रोक्तान् बहु मन्येऽविहिंस्रान्। ।3।22।19। ।

कर्दम मुनि ने इस सम्बन्ध में एक शर्त रखी।इनसे मेरी सन्तान होते ही मेरा गृहस्थ धर्म समाप्त हो जायेगा और मैं संन्यास ले लूँगा। इसके बाद कमलनाभ भगवान्का ध्यान करते हुए मुनि मौन हो गये। देवहूति इनके मुस्कान भरे मुख को देख इनके प्रति आसक्त हो गयी। मनु-शतरूपा ने विवाह सम्पन्न कर बहुत सारे दहेजादि दे बेटी के वियोग से भावविह्वल हो अन्य मुनियों के आश्रम देखते अपनी राजधानी बर्हिष्मतीपुरी लौट गये।

बर्हिष्मती नाम पुरी सर्वसम्पत्-समन्वित:।

न्यपतन् यत्र रोमाणि यज्ञस्याङ्गं विधुन्वत:। ।3।22।29। ।

बर्हिष्मतीं नाम विभुर्या निर्विश्य समावसत्।

तस्यां प्रविष्टो भवनं तापत्रय-विनाशनम्। ।3।22।32। ।

अयातयामा: तस्य-आसन्यामा: स्वान्तर-यापना:।

श्रृण्वतो ध्यायतो विष्णो: कुर्वतो ब्रुवत: कथा:। ।3।22।35। ।

शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषा:।

भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधन्ते हरिसंश्रयम्। ।3।22।37। ।

मनु बर्हिष्मती पुरी में निवास करते थे जहाँ पृथ्वी का उद्धार करते समय वराह भगवान्के रोएँ झरे थे और वे यज्ञ निमित्त पवित्र कुश हो गये थे। इकहत्तर चतुर्युगी का अपने पूरे मन्वन्तर भर वे भगवान्विष्णु की कथा सुनने, कीर्त न करने, ध्यान करने, कथा की रचना करने तथा उनकी प्रस्तुति में रत रहते थे। मैत्रेय मुनि बिदुर जी से कहते हैं कि श्रीहरि के शरणगत को दैविक, देहिक तथा भौतिक तीनों तापों से कोई भय नहीं होता।

तुष्टोऽहमद्य तव मानवि मानदाया: शुश्रूषया परमया परया च भक्त्या।

यो देहिनाम्-अयम्-अतीव सुहृत्स्वदेहो नावेक्षित: समुचित: क्षपितुं मदर्थे। ।3।23।6। ।

प्रियाया: प्रियमन्विच्छन् कर्दमो योगमास्थित:।
विमानं कामगं क्षत्त: तर्हि-एव-आविरचिकरत्। ।3।23।12। ।
अङ्गं च मलपङ्केन संछन्नं शबलस्तनम्।
आविवेश सरस्वत्या सर: शिवजलाशयम्। ।3।23।25। ।
किं दुरापादनं तेषां पुंसाम्-उद्दाम-चेतसाम्।
यै: आश्रित: तीर्थपद: चरणो व्यसन-अत्यय:। ।3।23।42। ।
नोधा विधाय रूपं स्वं सर्वसङ्कल्प-वित्-विभु:। ।3।23।47। ।
अत: सा सुषुवे सद्यो देवहूति: स्त्रिय: प्रजा:।
सर्वा: ता: चारुसर्वाङ्ग्यो लोहित-उत्पल-गन्धय:। ।3।23।48। ।

देवहूति की सेवा से प्रसन्न होकर कर्दम मुनि ने उनको अपनी देह की चिन्ता छोड़कर पति की सेवा-शुश्रूषा में लगे रहने की प्रशंसा की।तपबल से मुनि ने एक सुखदायी विमान प्रकट किया। सरस्वती के पास बिन्दुसरोवर के जल में स्नान कर देवहूति दिव्य शरीरवाली हो गयी। भगवान्‌के चरणारविन्द का आश्रय लेने वाले के लिए कोई वस्तु या शक्ति दुर्लभ नहीं है। विमान में घूमते हुए देवहूति के साथ मुनि ने दीर्घकाल तक विहार किया और अपने आप को नौ भागों में विभक्त कर देवहूति के गर्भ में स्थापित कर दिया।देवहूति को कमलगन्ध से युक्त नौ सर्वाङ्गसुन्दरी कन्यायें उत्पन्न हुई।

नेह यत्कर्मधर्माय न विरागाय कल्पते।
न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि स:। ।3।23।56। ।
साहं भगवतो नूनं वञ्चिता मायया दृढ़म्।
यत्त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमेक्षय बन्धनात्। ।3।23।57। ।

कन्यायों के जन्म के बाद कर्दम मुनि संन्यास में जाने को उद्धत हुए। देवहूति ने विकल होकर कहा कि ये कन्यायें अवश्य अपने लायक वर खोज लेगी परन्तु मुझे तो कोई धैर्य देने वाला होना चाहिए। आपकी अनुपस्थित में यह कैसे सम्भव होगा। देवहूति ने कहा कि वह प्राणी जीवित होते हुए भी मुर्दे के समान है जो इस शरीर से कर्म-धर्म जनित वैराग्य प्राप्त कर ले परन्तु भगवान्‌की भक्ति में नहीं लगे। मैंने भगवान् की माया के वशीभूत हो आप जैसे मुक्तिदाता पति को प्राप्त कर भी संसार-बन्धन से छूटने का उपाय नहीं जान सकी बल्कि इन्द्रिय-तृप्ति में ही लगी रही। कृपया आप अपनी संगति से मुझे भगवान्‌में प्रीति प्राप्त करने के मार्ग बतायें।

3।10 भगवान् कपिल का अवतार एवं देवहूति की नौ कन्याओं का विवाह।

मा खिदो राजपुत्री-इत्थं-आत्मानं प्रत्यनिन्दिते।
भगवान्-ते-अक्षरो गर्भम्-अदूरात्-सम्प्रपत्स्यते। ।3।24।2। ।

देवहूति की वैराग्य-जनक बात सुनकर कर्दम मुनि ने कहा कि तुम निराश मत हो। तुम्हारे गर्भ में शीघ्र ही भगवान् प्रवेश करेंगे। तुम व्रत-भजनादि करो वे तुम्हारे हृदय की गाँठ को खोलेंगे।

तस्यां बहुतिथे काले भगवान्मधुसूदन:।
कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिव दारुणि। ।3।24।6। ।

अवादयंस्तदा व्योम्नि वादित्राणि घनाघना:।
गायन्ति तं स्म गन्धर्वा नृत्यन्ति-अप्सरसो मुदा।।**3**।**24**।**7**।।
पेतु: सुमनसो दिव्या: खेचरै: अपवर्जिता:।
प्रसेदुश्च दिश: सर्वा अम्भांसि च मनांसि च।। **3**।**24**।**8**।।
तत्-कर्दम-आश्रमपदं सरस्वत्या परिश्रितम्।
स्वयम्भू: साकं-ऋषिभि: मरीचि: आदिभि: अभ्ययात्।।**3**।**24**।**9**।।
भगवन्तं परं ब्रह्म सत्त्वेनांशेन शत्रुहन्।
तत्त्व-संख्यान-विज्ञप्त्यै जातं विद्वान्-अज: स्वराट्।।**3**।**24**।**10**।।
सभाजयन्विशुद्धेन चेतसा तत्-चिकीर्षतम्।
प्रहृस्यमाणै: असुभि: कर्दमं च- इदम्-अभ्यधात्।।**3**।**24**।**11**।।

बहुत दिनों के बाद भगवान् मधुसूदन देवहूति के गर्भ में वैसे ही आये जैसे लकड़ी में आग छिपी रहती है। मेघ मधुर ध्वनि करने लगे, गन्धर्व के गान एवं अप्सराओं के नृत्य से उनका स्वागत हुआ। ब्रह्मा अपने मरीचि आदि पुत्रों के साथ कर्दम मुनि के पास आये।

अत: त्वम्-ऋषि-मुखेभ्यो यथाशीलं यथारुचि।
आत्मजा: परिदेहि-अद्य विस्तृणीहि यशो भुवि।। **3**।**24**।**15**।।
वेदाहमाद्यं पुरुषम्-अवतीर्णं स्वमायया।
भूतानां शेवधिं देहं बिभ्राणं कपिलं मुने।। **3**।**24**।**16**।।
ज्ञानविज्ञानयोगेन कर्मणाम्-उद्धरन्जटा:।
हिरण्यकेश: पद्माक्ष: पद्म-मुद्रा-पदाम्बुज:।। **3**।**24**।**17**।।

ब्रह्मा ने कर्दम जी से कहा कि तुम अपनी कन्याओं को इन मरीचि आदि ऋषियों को समर्पित कर दो। कपिल भगवान् तुम्हारे यहाँ पधारे हैं। इनके स्वर्णिम केश हैं, कमलनयन हैं, तथा चरणकमल में कमल का चिह्न है। ये संसारियों को शास्त्रों का निचोड़ बताकर कर्म के बन्धन से निवृत्त करेंगे। ब्रह्मा ऐसा कहकर हंस वाहन से सनकादिकों के साथ अपने लोक को लौट गये। ब्रह्मा के जाने पर कर्दम मुनि ने मरीचि आदि नौ ऋषियों से अपनी नौ कन्याओं का विवाह कर दिया। विवाहोपरान्त ऋषि सब भी अपने-अपने आश्रम में चले गये।

स चावतीर्णं त्रियुगम्-आज्ञाय विबुधर्षभम्।
विविक्त उपसङ्गम्य प्रणम्य समभाषत।।**3**।**24**।**26**।।
आ स्म-अभिपृच्छे-अद्य पतिं प्रजानां त्वयावतीर्ण-ऋण: उताप्तकाम:।
परिव्रजत्-पदवीम्-आस्थित: अहम्चरिष्ये त्वां हृदि युञ्जन् विशोक:।। **3**।**24**।**34**।।

कर्दम मुनि ने एकदिन एकान्त में कपिल जी को प्रणाम कर उनकी वन्दना की तथा उनसे आज्ञा ले संन्यास मार्ग के पथिक हुए। भगवान् ने मुनि को कल्याण का आश्वासन देते हुए माता देवहूति को भी कल्याण प्राप्त करने हेतु उपदेश देने की बात कही। कर्दम मुनि ने भगवान्की परिक्रमा की। वे वन जाकर सर्वात्मभाव की साधना से परमपद को प्राप्त किये।

3।11 भक्तियोग की महिमा ।

पितरि प्रस्थितेऽरण्यं मातुः प्रियचिकीर्षया।
तस्मिन् बिन्दुसरेऽवात्सीत्-भगवान् कपिलः किल। ।**3।25।5**। ।

पिता को वन में जानेपर कपिल जी माता को आनन्दित करने हेतु बिन्दुसर तीर्थ में रहने लगे।

निर्विण्णा नितरां भूमन्-असत्-इन्द्रिय-तर्षनात्।
येन सम्भाव्यमानेन प्रपन्नान्धं तमः प्रभो। । **3।25।7**। ।
तं त्वां गताहं शरणं शरण्यं स्वभृत्य-संसार-तरोः कुठारम्।
जिज्ञासयाहं प्रकृतेः पुरुषस्य नमामि सद्धर्मविदां वरिष्ठम्। ।**3।25।11**। ।

एक दिन देवहूति ने कहा- इन्द्रियों की विषय लोलुपता से ऊब गयी हूँ। आप भक्तों के लिए संसार-वृक्ष को काटने वाले कुठार हैं। प्रकृति-पुरुष के ज्ञान के लिए शरणागत हूँ।

चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम्।
गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये। । **3।25।15**। ।
प्रसङ्गमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारम्-अपावृतम्। ।**3।25।20**। ।
तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम्।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः। । **3।25।21**। ।
मदाश्रयाः कथा मृष्टाः श्रृण्वन्ति कथयन्ति च।
तपन्ति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसः। । **3।25।23**। ।
स एते साधवः साध्वि सर्वसङ्गविवर्जिताः।
सङ्गस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः सङ्गदोषहरा हि ते। ।**3।25।24**। ।
सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तत्-जोषणात्-आशु-अपवर्ग-वर्त्मनि श्रद्धा रतिः भक्तिः अनुक्रमिष्यति। ।**3।25।25**। ।

भगवान् कपिल कहते हैं - मन ही बन्धन एवं मोक्ष का कारण है। साधुओं की संगति से मोक्ष मिलता है। सांसारिक संगत से बन्धन मिलता है। सहिष्णुता, करुणा, सबसे प्रेम, शत्रुहीन एवं शान्त स्वभाव - ये सब साधु के गुण हैं। जो मेरे कथा-श्रवण में आसक्त रहते हैं उनका संसारिक ताप कट जाता है।

देवानां गुणलिङ्गानाम्-आनुश्रविक-कर्मणाम्।
सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या। ।**3।25।32**। ।
अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी।
जरयत्याशु या कोशं निगीर्णम्-अनलो यथा। ।**3।25।33**। ।
नैकात्मतां ते स्पृहयन्ति केचित्-मत्पाद-सेवा-अभिरता मदीहाः।
ये-अन्योन्यतो भागवताः प्रसज्य सभाजयन्ते मम पौरुषाणि। । **3।25।34**। ।

पश्यन्ति ते मे रुचिराणि-अम्ब सन्त: प्रसन्नवक्त्र-अरुणलोचनानि।
रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि साकं वाचं स्पृहणीयां वदन्ति।। **3।25।35।।**
तै: दर्शनीय-अवयवै: उदार-विलासहास-ईक्षित-वाम-सूक्तै:।
हृतात्मनो हृतप्राणांश्च भक्ति: अनिच्छतो मे गतिमण्वीं प्रयुङ्क्ते।। **3।25।36।।**

मेरे प्रियभक्त मेरे श्रीचरण की सेवा में प्रीति रखते हुए परस्पर मेरे पराक्रम की चर्चा करते हैं। मेरी अरुणोदयवत आँखें, मेरे मनोहर मुखारविन्द की दिव्य-झाँकी का आनन्द, मेरे सुन्दर अंग-प्रत्यंग, हास-विलास तथा मनोहर चितवन के ध्यान में इन्द्रियों को लगा देते हैं।

अथो विभूतिं मम मायाविन: ताम्-ऐश्वर्यम्-अष्टाङ्गम्-अनुप्रवृत्तम्।
श्रियं भागवतीं वास्पृहयन्ति भद्रां परस्य मे तेऽश्नुवते तु लोके।।**3।25।37।।**
न कर्हिचिन्मत्परा: शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेति:।
येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरु: सुहृदो दैवमिष्टम्।।**3।25।38।।**
इमं लोकं तथैव-अमुम्-आत्मानम् -उभयायिनम्।
आत्मानम्-अनु ये चेह ये राय: पशवो गृहा:।।**3।25।39।।**
विसृज्य सर्वान्-अन्यान्च मामेवं विश्वतोमुखम्।
भजन्ति-अनन्यया भक्त्या तान्-मृत्यो: अतिपारये।। **3।25।40।।**
नान्यत्र मद्भगवत: प्रधानपुरुषेश्वरात्।
आत्मन: सर्वभूतानां भयं तीव्रं निवर्तते।। **3।25।41।।**
मद्भयात्-वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात्।
वर्षति-इन्द्रो दहति-अग्नि: मृत्यु: चरति मद्भयात्।।**3।25।42।।**
ज्ञान-वैराग्य-युक्तेन भक्तियोगेन योगिन:।
क्षेमाय पादमूलं मे प्रविशन्ति-अकुतो-भयम्।।**3।25।43।।**
एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां नि:श्रेयसोदय:।
तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम्।।**3।25।44।।**

मेरी अनन्य भक्ति एवं भजन से भक्तगण मृत्यु को पार करते हैं। वायु, सूर्य, इन्द्र, अग्नि तथा मृत्यु मेरे ही भय से सदा कार्य करते हैं। ज्ञान एवं वैराग्ययुक्त भक्ति के लिए मेरे श्रीचरण का आश्रय आवश्यक है। मेरी अनन्य भक्ति से ही सदा कल्याण होता है।

यमादिभि: योगपथै: अभ्यसन् श्रद्धयान्वित:।
मयि भावेन सत्येन मत्कथाश्रवणेन च।।**3।27।6।।**
सर्वभूत-समत्वेन निर्वैरेण-अप्रसङ्गत:।
ब्रह्मचर्येण मौनेन स्वधर्मेण बलीयसा।। **3।27।7।।**

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के नियमित अभ्यास तथा श्रद्धा से मेरी कथा का श्रवण आवश्यक है। सबके प्रति समभाव, शत्रुभाव का त्याग, अनासक्ति, ब्रह्मचर्य, निरर्थक वार्तालाप का त्याग को अपनाकर स्वधर्म का अनुसरण उचित है। देवहूति कहती है -

यथा गन्धस्य भूमेश्च न भावो व्यतिरेकत:।
अपां रसस्य च यथा तथा बुद्धे परस्य च।।3।27।18।।

जैसे पृथ्वी से उसका गंध तथा जल से उसका रस अलग नहीं हो सकता उसी तरह से बुद्धि से भगवान्के परत्व का स्थान एवं उसकी सार्थकता भी दूर नहीं हो सकती।

3।12 भगवान् के ध्यान के स्वरूप ।

ध्यान के स्वरूप पर कपिल जी देवहूति से कहते हैं -

प्रसन्नवदनाम्भोजं पद्मगर्भ- अरुणेक्षणम्।
नीलोत्पलदल-श्यामं शङ्ख-चक्र-गदाधरम्।।3।28।13।।

भगवान् का मुखारविन्द सदा मुस्कराते रहता है। उनकी आँखे खिले हए कमल तथा शरीर नीले कमल के रंग का और वे शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण किये हैं।

लसत्पङ्कज-किञ्जल्क-पीतकौशेय-वाससम्।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभ-आमुक्त-कन्धरम्।।3।28।14।।

भगवान्चमकते पीताम्बर, वक्षस्थल का श्रीवत्स तथा कन्धे से लटकते कौस्तुभ के तेज से वे सुशोभित हैं।

मत्त-द्विरेफ-कलया परीतं वनमालया।
परार्घ्य-हार-वलय-किरीटाङ्गद-नूपुरम्।।3।28।15।।

वनमाला की सुगंध के भौंरे, मोती की माला, मुकुट, बाहों के आभूषण एवं चरणों में नूपुर से वे सुशोभित हैं।

काञ्ची-गुणोल्लसत्-श्रोणिं हृदयाम्भोज-विष्टरम्।
दर्शनीयतमं शान्तं मनो-नयन-वर्धनम्।।3।28।16।।

मनोहारी सौंदर्यवान् भगवान् भक्तों को प्रसन्न करते हुए उनके हृदयकमल में विराजते हैं।

अपीच्य-दर्शनं शश्वत्-सर्वलोक-नमस्कृतम्।
सन्तं वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रह-कातरम्।।3।28।17।।

अतीवसुन्दर भगवान् सबलोकों में पूज्य हैं। सर्वदा किशोरावस्था का ही उनका स्वाभाविक स्वरूप है।

स्थितं व्रजन्तम्-आसीनं शयानं वा गुहाशयम्।
प्रेक्षणीयेहितं ध्यायेत्-शुद्धभावेन चेतसा।।3।28।19।।

भगवान्के खड़े, चलते, बैठते तथा सोते हुए सभी अवस्थाओं के स्वरूप पर शुद्ध मन से ध्यान करें।

संचिन्तयेत्-भगवत: चरणारविन्दं वज्र-ध्वजांकुश-सरोरुह-लाञ्छनाढयम्।
उत्तुङ्-रक्तविलसत्-नखचक्रवाल-ज्योत्सनाभि:
आहत-महत् हृदयान्धकारम् ।।3।28।21।।

भगवान्‌के चरणारविन्द के विभिन्न चिह्नों में बज्र भक्तों के पाप का छेदन करता है, अंकुश भक्त के चंचल मन रूपी हाथी का नियंत्रक हैं। संसार रूपी शत्रु से बचा कर जीव को भगवान् अपने पास लाते हैं, उसी विजय का प्रतीक ध्वज है। कमल भक्तों को लुभा कर चरण में लगाता है। चरण की दसों अंगुलियों की ज्योति, पाप मुक्त चन्द्रमा की तरह भक्त के हृदय के अंधकार को दूर करती है। अत: भगवान्‌के चरणारविन्द का ध्यान ही भक्तों की आजीविका है।

यत्-शौचनि:सृत-सरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्नि-अधिकृतेन शिव: शिवोऽभूत्।
ध्यातुर्मन: शमलशैल-निसृष्टवज्रं ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम्। ।3।28।22।।

भगवान्‌के चरणोदक को शिरपर धारण करने के कारण शिवजीको कल्याणकारी स्वरूप मिला, नहीं तो वे श्मसान के भस्म धारण करने के कारण अपवित्र माने जाते थे। चरणारविन्द का ध्यान मन के मैल को धोता है।

जानुद्वयं जलजलोचनया जनन्या लक्ष्म्याखिलस्य सुरवन्दितया विधातु:।
उर्वोर्निधाय करपल्लव-रोचिषा यत्संलालितं हृदि विभो: अभवस्य कुर्यात्। ।3।28।23।।

ब्रह्मा की माँ कमलनयनी लक्ष्मी जी से सेवित भगवान्‌के पाँवों एवं जँघाओं का ध्यान करे।

ऊरू सुपर्ण-भुजयो: अधिशोभमानौ-ओजो-निधी अतसिका-कुसुम-अवभासौ।
व्यालम्बि-पीत-वर-वाससि वर्तमान-काञ्ची-कलाप-परिरम्भि नितम्ब-बिम्बम्। ।3।28।24।।

गरुड़ की पीठ पर आरूढ़ तीसी के फूल की तरह नीली जांघों का ध्यान करे। पीताम्बर पर बन्धे सुवर्ण की करधनी से सुशोभित भगवान्‌के गोल नितम्ब का ध्यान करे।

नाभिह्रदं भुवनकोश-गुहोदरस्थं यत्र-आत्मयोनि-धिषण-अखिललोक-पद्मम्।।
व्यूढं हरित्-मणि-वृष-स्तनयो: अमुष्य ध्यायेद्द्वयं विशदहार-मयूख-गौरम्। ।3।28।25।।

नाभि में स्थित ब्रह्मा के वासस्थान अखिललोक के आधार कमल का ध्यान करे। मरकतमणि सदृश भगवान्‌के स्तनाग्र का ध्यान करे जो मोती के सफेद हार के प्रकाश से गोरे रंग का दिखायी पड़ता है।

वक्षोऽधिवासम्-ऋषभस्य महाविभूते: पुंसां मनोनयन-निर्वृतिम्-आदधानम्।
कण्ठं च कौस्तुभमणे: अधिभूषणार्थं कुर्यात्-मनसि-अखिललोक-नमस्कृतस्य। ।3।28।26।।

लक्ष्मी जी के निवासस्थान मन एवं नेत्रों को प्रसन्न करने वाला वक्षस्थल का ध्यान करे। कौस्तुभ मणि को सुशोभित करने वाले भगवान्‌के कण्ठ का ध्यान करे।

बाहूंश्च मन्दरगिरे: परिवर्तनेन निर्णिक्त-बाहूवलयान्-अधिलोकपालान्।
सञ्चिन्तयेत्-दश-शत-अरम्-असह्यतेज: शङ्खं च तत्करसरोरुह-राजहंसम्। ।3।28।27।।

लोकपालों के आश्रय, भगवान्‌की भुजाओं का ध्यान करे जिसके आभूषण समुद्रमंथन के समय मन्दरगिरि की रगड़ से अधिक तेजपूर्ण हो गये हैं। भगवान् के करकमल को सुशोभित करते हुए चकाचौंध तेजपूर्ण वाले हजारो धारयुक्त सुदर्शन चक्र तथा राजहंस की तरह विराजते शंख का ध्यान करे।

कौमोदकीं भगवतो दयितां स्मरेत दिग्धाम्-अराति-भट-शोणित-कर्दमेन।
मालां मधुव्रत-वरूथ-गिरा-उपघुष्टां चैतस्य तत्त्वममलं मणिम्स्य कण्ठे। ।3।28।28।।

शत्रुओं के रक्त से सने प्रभु के प्रिय कौमोदकी गदा, भौरों से लिपटे वनमाला तथा समस्त निर्मल तत्त्व जीवों के प्रतीक कण्ठ में कौस्तुभ मणि का ध्यान करे।

भृत्य-अनुकम्पित-धिया-इह गृहीतमूर्त्ते: संचिन्तयेत्-भगवतो वदनारविन्दम्।
यद्विस्फुरन्-मकरकुण्डल-वल्गितेन विद्योतित-अमल-कपोलम्-उदारनासम्।।3।28।29।।

भगवान्के गाल की शोभा उनके कान के कुण्डल तथा सुन्दर नाक से बढ़ जाती है।उनके मुखारविन्द का ध्यान भक्तोंपर उनकी कृपा से ही होती है।

यत्-श्रीनिकेतम्-अलिभि: परिसेव्यमानं भृत्या स्वया कुटिल-कुन्तल-वृन्दजुष्टम्।
मीन-द्वयाश्रयम्-अधिक्षिपत्-अब्ज-नेत्रं ध्यायेत्-मनोमयम्-अतन्द्रित उल्लसत्-भ्रु।।3।28।30।।

भ्रमरों से घिरे कमलकोश जैसे घुँघराले बाल, नाचती मछलियों की जोड़ी जैसी कमल समान नेत्र तथा नाचती भौंहों से सुशोभित मुखमण्डल का ध्यान करे।

तस्यावलोकम्-अधिकं कृपयातिघोर-तापत्रयोपशमनाय निसृष्टमक्ष्णो:।
स्निग्ध-स्मित-अनुगुणितं विपुलप्रसादं ध्यायेच्चिरं विपुल-भावनया गुहायाम्।।3।28।31।।

भगवान्के विहसते मुख का हृदय में ध्यान करने से उनकी कृपादृष्टि से भक्तगण अनुगृहीत होते हैं। और दैविक, दैहिक एवं भौतिक तापरूपी संसार के भय का नाश हो जाता है।

हासं हरे: अवनत-अखिल-लोक-तीव्र शोकाश्रु-सागर-विशोषणम्-अतिउदारम्।
सम्मोहनाय रचितं निजमायया-अस्य भ्रूमण्डलं मुनिकृते मकरध्वजस्य।। 3।28।32।।

भगवान्के मुसकान भरे मुखमंडल का ध्यान संसार के शोक से रोते हुए जीवों के आँसू से बने महासागर को सुखा डालता है।भगवान की मनोहारी हास सदा कल्याणकारी ही है।

ध्यानायनं प्रहसितं बहुलाधरोष्ठ-भासारुणायित-तनु-द्विज-कुन्दपंक्तिम्।
ध्यायेत्-स्वदेहकुहरे-अवसितस्य विष्णो: भक्तया-आर्द्रया-अर्पितमना न पृथक्-दिदृक्षेत्।।**3।28।33**।।

ठहाका मारकर हँसते हुए भगवान् के होठों की लालिमा से लाल दिखते सुन्दर अनारदाने जैसी दन्तावली से युक्त मुखारविन्द का ध्यान भक्तों के लिये परम सुखकारक है। इसके अतिरिक्त भक्त अन्यवस्तु से मन हटा ले।

3।13। भक्तियोग के विविध आयाम

कपिल भगवान् भक्तियोग के विभिन्न आयामें को सुनाते हुए आगे कहते हैं -

भक्तियोगो बहुविधो मार्गै: भामिनी भाव्यते।
स्वभाव-गुण-मार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते।। 3।29।7।।
अभिसन्धाय यो हिंसा दम्भं मात्सर्यमेव वा।
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामस:।।3।29।8।।
विषयान्-अभिसन्धाय यश ऐश्वर्यमेव वा।
अर्चा-आदौ-अर्चयेत्यो मां पृथग्भाव: स राजस:।।3।29।9।।
कर्मनिर्हारम्-उद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम्।

यजेत्-यष्टव्यम्-इति वा पृथग्भाव: स सात्त्विक:।। 3।29।10।।

इसी क्रम में कपिल भगवान्ने सात्विक, राजसिक तथा तामसिक भक्ति का वर्णन किया। भगवान्में प्रीति के लिए सात्विक, सुख-यश-ऐश्वर्य के लिए राजसिक, हिंसा-लोभ-अभिमानादि में रत की भक्ति तामसिक होती है।

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्य-एकत्वम्अपि-युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जना:।। 3।29।13।।

सभी प्रकार की मुक्ति को ठुकरा कर भक्त मेरी सेवा की आकाङ्क्षा रखते हैं।

यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तम्-आत्मानम्-ईश्वरम्।
हित्वार्चां भजते मौढ्यात्-भस्मनि-एव जुहोति स:।। 3।29।22।।

सभी प्राणियों में मेरी अनुभूति न कर केवल अर्चा-मूर्ति की उपासना राख में आहुति देने के समान निरर्थक है।

अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मनं कृतालयम्।
अर्हयेत्-दान-मानाभ्याम्मैत्र्या-अभिन्नेन चक्षुषा।। 3।29।27।।

अतएव सबका मित्रभाव से यथायोग्य दान एवं सम्मान करे तथा सब पर समान भाव रखते हुए सबके हृदयस्थ मेरे स्वरूप की अर्चना-उपासना करे।

मय्यार्पितात्मन: पुंसो मयि संन्यस्तकर्मण:।
न पश्यामि परं भूतमकर्तु: समदर्शनात्।।3।29।33।।

जिन्होंने देह के समस्त कर्म, मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकारादि भगवान्में अर्पित कर दिये हैं, वे सभी कर्मो के फल का त्याग करनेवाले समदर्शी संसार में श्रेष्ठ हैं।

भक्तियोगश्च योगश्च मया मानवि-उदीरित:।
ययो: एकतरेण-एव पुरुष: पुरुषं व्रजेत्।।3।29।35।।

हे मनु की पुत्री! भक्तियोग करने वाले या भक्ति से समन्वित अष्टांग योग करने वाले भगवान्को पाते हैं।

योऽन्त: प्रविश्य भूतानि भूतै: अत्ति-अखिल-आश्रय:।
स विष्णु-आख्य: अधियज्ञ: असौ काल: कलयतां प्रभु:।। 3।29।38।।

सभी यज्ञों के भोक्ता भगवान् विष्णु ही काल (समय-चक्र) हैं और सभी देवों के देव हैं। वे सभी के हृदय में प्रवेश कर सबके आधार-आश्रय बनते हैं एवं सबके संहार कारक काल भी हैं। काल ही के भय से हवा, सूर्य, इन्द्र,तारेगण, औषधियाँ अर्थात् फल-फूल आदि, नदियाँ, सागर (मर्यादा में रहते हैं), अग्नि की दहनशीलता, प्राणियों का आश्रयस्थल आकाश, श्वास-प्रश्वास से जीवन, महत्त्वादि से ब्रह्माण्ड विस्तार तथा तीनों गुण (सत्व, रज, तम) स्वाभावानुरूप कार्यरत रहते हैं। काल ही मृत्यु के देवता यमराज का भी अन्त करता है।

जन्तुर्वै भव एतस्मिन् यां यां योनिमनुव्रजेत्।
तस्यां तस्यां स लभते निर्वृतिं न विरज्यते।।3।30।4।।
नरकस्थोऽपि देहं वै न पुमान्-त्यक्तुमिच्छति।
नारक्यां निर्वृतौ सत्यां देवमाया-विमोहित:।। 3।30।5।।

आसक्ति से ही जीव की अधोगति होती है और वह नरकगामी होता है। आसक्ति के कारण जिस योनि में जन्म लेता है उसे भी छोड़ना नहीं चाहता। यहाँ तक कि नरक में कीड़ा की योनि प्राप्त कर भी उससे आसक्त रहता है। विभिन्न नरक की यातना के बाद भी आसक्ति का बन्धन लगा ही रहता है।

3|14| गर्भ में जीव की स्थिति

पुरुष के वीर्य से स्त्री गर्भ में जाता है। पाँच रात्रि में स्त्री के रज से मिश्रित वीर्य बुदबुदे का रूप धारण करता है।दस दिन में बेर की तरह आकार पाता है। एक माह में सिर, दो माह में हाथ-पैर, तीन माह में नख, रोम, हड्डी, चर्म , स्त्री-पुरुष के चिह्न, चार माह में मांस, पाँच माह में भूख-प्यास लगती है। छठे माह में गर्भ में एक झिल्ली से बन्ध जाता है। माँ के भोजन से पलता है परन्तु खट्टे-कड़वे भोजन से उसकी देह जलती है। माँ के मल-मूत्र के कीड़े उसे गर्भ में नोचते हैं। उसका सिर, पेट एवं गर्दन से मिलकर कुण्डलाकार एक गठ्ठर जैसा हो जाता है। वह हिलने-डुलने में असमर्थ रहता है। भगवान् की प्रेरणा से उसे पूर्व के सैंकड़ो जन्म का स्मरण होता है। सातवें माह में ज्ञान-शक्ति मिलती है और गर्भ में स्थान बदलता रहता है। बड़े कातर भाव से भगवान्‌की स्तुति करते रहता है। दसवें माह तक उलटा पड़े रहकर भगवान्‌से क्षमा माँगते हुए उनकी शरण का आश्रय लेता है। गर्भ से बाहर आते ही उसकी साँस रुक जाती है एवं पूर्व की स्मृति मिट जाती है। उसकी पीठ थपथपाने से साँस चलने लगती है तथा बार-बार जोर से रोता है।

3|15| नरकगामी अवस्था एवं स्त्री आसक्ति

यद्यसद्भि: पथि पुन: शिश्नोदर-कृतोद्यमै:।
आस्थितो रमते जन्तुस्तमो विशति पूर्ववत्।।3|31|32।।

सन्मार्ग पर चलते हुए अगर पुन: विषयानुरागी व्यक्तियों की संगति में जाता है तब वह नरकगामी होता है।

सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धि: श्री: ह्री: यश: क्षमा।
शमो दमो भगश्चेति यत्सङ्गात्-याति सङ्क्षयम्।।3|31|33।।
तेषु-अशान्तेषु मूढेषु खण्डितात्मसु-असाधुषु।
सङ्गं न कुर्यात्-शोच्येषु योषित्-क्रीडामृगेषु च।।3|31|34।।

जिनकी संगति से सत्य-पवित्रता-दया-वाणीसंयम-बुद्धि-सम्पत्ति-लज्जा-यश-क्षमा-इन्द्रिय संयम-ऐश्वर्य आदि सद्गुण नष्ट हो जाते हैं, देहात्मबुद्धि वाले नारियों के खिलौना के रूप में रहने वाले पुरुषों की संगति न करे।

योपयाति शनैर्माया योषित्-देव-विनिर्मिता।
ताम्-ईक्षेत्-आत्मनो मृत्युं तृणै: कूपं-इव-आवृतम्।।3|31|40।।
यां मन्यते पतिं मोहात्-मन्मायाम्-ऋषभ-आयतीम्।
स्त्रीत्वं स्त्रीसङ्त: प्राप्तो वित्त-अपत्य-गृह-प्रदम्।।3|31|41।।

अन्य आसक्तियों के अतिरिक्त संसार में स्त्री की आसक्ति हरे घास से ढके कुँआ जैसा है। मरते समय स्त्री के स्मरण करते रहने से अगले जन्म में स्त्री- योनि मिलती है।

3|16| इतरदेवों की आराधना से धूममार्ग तथा भगवान् अच्युत की भक्ति से अर्चिमार्ग

जीव अहंकारवश मैं-मेरा-देह-गेह में लगारहकर पितरों एवं अन्य देवों का उपासक हो पुण्य अर्जित कर चन्द्रलोक

में जाता है। पुण्य क्षीण होने पर पुन: जन्म होता है। इस सन्दर्भ में भागवत **7।15।50-55** द्रष्टव्य है।

निवृत्ति-धर्म-निरता निर्ममा निरहङ्कृता:।
स्वधर्माख्येन सत्त्वेन परिशुद्धेन चेतसा।।3।32।6।।
सूर्यद्वारेण ते यान्ति पुरुषं विश्वतोमुखम्।
परावरेशं प्रकृतिम्-अस्य-उत्पत्ति-अन्त-भावनम्।।3।32।7।।
नूनं दैवेन विहता ये च-अच्युत-कथासुधाम्।
हित्वा श्रृण्वन्ति-असत्-गाथा: पुरीषम्-इव विट्-भुज:।।3।32।19।।
तस्मात्त्वं सर्वभावेन भजस्व परमेष्ठिनम्।
तद्गुण-आश्रयया भक्त्या भजनीय-पदाम्बुजम्।।3।32।22।।

जो अपने कर्म को भोग-विलास में न लगाकर भगवान्की प्रसन्नता प्राप्त करने में लगा रहता है वह सूर्य-मार्ग अर्थात्अर्चिमार्ग से श्रीहरि को प्राप्त करता है।भगवान् की कथा में मन न लगाकर अन्य सांसारिक प्रसंगो में रत रहनेवाल विष्ठा खाने वाले सूअर की तरह है।भगवान् कपिल कहते हैं कि हे माता! भगवान्के चरणारविन्द का प्रेम से शरण लेकर आप दिव्य भक्ति को प्राप्त कर सकेंगी। जो अपने कर्म को भोग-विलास में न लगाकर भगवान्की प्रसन्नता प्राप्त करने में लगाता है वह सूर्य मार्ग से अर्थात् अर्चिमार्ग से श्रीहरि को प्राप्त करता है। गर्भ से अन्त्येष्टि तक जो सकाम कर्म करते हैं वे सूर्य से दक्षिण ओर के धूममार्ग से पितृयान द्वारा पित्रेश्वर अर्यमा के लोक में जाकर पुन: पुण्य क्षीण होने पर पृथ्वी पर वापस देह लेकर आ जाते हैं। इस अर्चिरादि मार्ग के प्रसंग को विषय-लोलुप जीवों का न सुनाना चाहिए।

3।17। माता देवहूति द्वारा भगवान्कपिल की स्तुति

मैत्रेय मुनि ने विदुर जी से कहा कि तत्त्वज्ञान एवं भक्तियोग का उपदेश सुन माता देवहूति अपने पुत्र कपिल भगवान्की स्तुति करती है -

स एव विश्वस्य भवान् विधत्ते गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्य:।
सर्गादि-अनीह: अवितथ-अभिसन्धि: आत्म-ईश्वर: अतर्क्य-सहस्रशक्ति:।।3।33।3।।

अपार अकल्पनीय पराक्रम से पूर्ण आप अपनी शक्ति को गुण-प्रवाह में विभक्त कर स्वयं सृष्टि करते हैं।

स त्वं भृतो मे जठरेण नाथ कथं तु यस्योदर एतदासीत्।
विश्वं युगान्ते वटपत्र एक: शेते स्म मायाशिशु: अङ्घ्रिपान:।। 3।33।4।।

नाथ, यह अतिविचित्र बात है कि प्रलयकालीन समस्त प्रपञ्च जिनके उदर में स्थित हो जाता है और कल्पान्त में जो मायामय बालक का रूप धर कर अपने चरणारविन्द के अँगूठे को मुख में चूसते हुए बटपत्र पर चित्त लेटे हुए दर्शन देते हैं, वही भगवान् बालमुकुन्द मेरे गर्भ से प्रकट हुए हैं।भगवान् बालमुकुन्द की कथा भागवत स्कन्ध **12**, अध्याय **8** एवं **9** में विस्तार से वर्णित है।

यत्-नामधेय-श्रवण-अनुकीर्तनाद्यत्-प्रह्वणात्-यत्-स्मरणात्-अपि क्वचित्।
श्वादोऽपि सद्य: सवनाय कल्पते कृत: पुनस्ते भगवन् नु दर्शनात्।।3।33।6।।

आपके नाम-संकीर्तन एवं स्मरण से कुत्ते का मांस खानेवाला चाण्डाल भी पवित्र ब्राह्मण की तरह पवित्र हो जाता है। आपके दर्शन से लाभ की कोई सीमा है क्या ? अर्थात् नहीं है,अपार लाभ मिलता है।

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्यत्-जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।

तेपुः तपः ते जुहुवुः सस्नुः आर्याः ब्रह्म-अनूचुः नाम गृणन्ति ये ते।। **3।33।7।।**

चाण्डाल की जीभ पर आपका नाम रहने से वह शुद्ध हो जाता है। आपके नाम लेने वालों को तप, तीर्थ-स्नान तथा दान आदि के फल स्वयं ही मिल जाते हैं।

ते त्वामहं ब्रह्म परं पुमांसं प्रत्यक्-स्रोतसि-आत्मनि संविभाव्यम्।

स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहं वन्दे विष्णुं कपिलं वेदगर्भम्।।**3।33।8।।**

विषयराग से मुक्त ऋषि-मुनि आप पर ध्यानस्थ रहकर आपकी दया से गुण-प्रवाह से छूटते हैं। कल्पान्त में वेद आपके उदर में स्थित हो जाता है। आप सबसे परे हैं एवं कपिल के रूप में स्वयं विष्णु हैं।

3।18।भगवान्कपिल का माता देवहूति से विदा लेना

इति प्रदर्शय भगवान् सतीं तामात्मनो गतिम्।

स्वमात्रा ब्रह्मवादिन्या कपिलोऽनुमतो ययौ।।**3।33।12।।**

स चापि तनयोक्तेन योगादेशेन योगयुक्।

तस्मिन्नाश्रम आपीडे सरस्वत्याः समाहिता।।**3।33।13।।**

ध्यायती भगवद्रूपं यदाह ध्यानगोचरम्।

सुतः प्रसन्नवदनं समस्त-व्यस्त-चिन्तया।।**3।33।23।।**

भक्तिप्रवाह-योगेन वैराग्येण बलीयसा।

युक्त-अनुष्ठान-जातेन ज्ञानेन ब्रह्महेतुना।।**3।33।24।।**

माता की अनुमति ले कपिल भगवान् वहाँ से प्रस्थान कर गये। देवहूति भी सरस्वती-आश्रम में समाधि में लीन हो गयी। कपिल भगवान् के बताये हुए स्वरूप पर ध्यान करते हुए भक्ति एवं प्रवल वैराग्य से सम्पन्न हो गयी। उसने नित्यमुक्त परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त किया।

तत्-वीर-आसीत्-पुण्यतमं क्षेत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम्।

नाम्ना सिद्धपदं यत्र सा संसिद्धिम्-उपेयुषी।।**3।33।31।।**

तस्याः तत्-योग-विधुत-मार्त्य मर्त्यम्-अभूत्-सरित्।

स्रोतसां प्रवरा सौम्य सिद्धिदा सिद्धसेविता।।**3।33।32।।**

कपिलोऽपि महायोगी भगवान्पितुः आश्रमात्।

मातरं समनुज्ञाप्यं प्राक्-उदीचीं दिशं ययौ।।**3।33।33।।**

हे विदुर जी ! जहाँ देवहूति को सिद्धि मिली उस स्थान को सिद्धपद कहते हैं। भक्तियोग की साधना से उनका शरीर एक नदी के रूप में परिणत हो गया जो पवित्र तीर्थ के रूप में विख्यात है। कपिल जी भी माता की आज्ञा पाकर पिता के आश्रम से उत्तर- पूर्व दिशा में प्रस्थान कर गये।

सिद्धचारणगन्धर्वै: मुनिभि: च अप्सरोगणै:।
स्तूयमान: समुद्रेण दत्त-अर्हण-निकेतन:। ।**3**।**33**।**34**। ।
य इदम्-अनुश्रृणोति योऽभिधत्ते कपिलमुने: मतम्-आत्मयोग-गुह्यम्।
भगवति कृतधी: सुपर्णकेतौ-उपलभते भगवत्-पदारविन्दम्। ।**3**।**33**।**37**। ।

स्वर्ग में रहने वालों एवं मुनियों से वन्दित कपिल मुनि को समुद्र ने भी पूजा की तथा उन्हें गंगा-सागर में रहने का स्थान दिया। जो इस रहस्यपूर्ण प्रकरण को गाता या सुनता है वह गरूड-ध्वज भगवान् की भक्ति प्राप्त कर उनके लोक में जाकर उनके श्रीचरणों की सेवा में लगता है।

। । तीसरा स्कन्ध पूरा हुआ । ।

श्रीमते रामानुजाय नमः ।
श्रीमद्भागवत स्कन्ध 4
वन्दउँ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

इस स्कन्ध में भगवान् ने दो अवसरों पर आठ भुजाओं वाले स्वरूप से अध्याय **7** में ब्रह्मा के पुत्र दक्ष को तथा अध्याय **30** में प्रचेता को दर्शन दिय है।

4।1। नर-नारायण ऋषि का अवतार

स्वायम्भुव मनु के दो पुत्र हैं उत्तानपाद एवं प्रियव्रत। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव जी भगवान्के परम भक्त हुए जिनकी कथा इस चौथे स्कन्ध में विस्तार से है। प्रियव्रत की कथा पाँचवें स्कन्ध में वर्णित है। मनु को तीन पुत्रियाँ थीं आकूति, देवहूति एवं प्रसूति। अपनी पत्नी शतरूपा की सहमति से मनु ने आकूति का विवाह रुचि प्रजापति से इस शर्त पर किया कि इससे जो पुत्र उत्पन्न होगा वह मनु को लौटा देंगे जिसे मनु का पुत्र समझा जायेगा। आकूति को एक पुत्र एवं कन्या उत्पन्न हुई। पुत्र भगवान् विष्णु के अंश थे जिनका नाम यज्ञ था और कन्या लक्ष्मी थीं जिसका नाम दक्षिणा था। यज्ञ को रुचि ने मनु को उनके पुत्र के रूप में लौटा दिया गया तथा कन्या दक्षिणा अपने माता-पिता आकूति एवं रुचि के साथ रही। बाद में यज्ञों के स्वामी भगवान् का विवाह दक्षिणा से हुआ। इनसे बारह पुत्र हुए जो सामूहिक रूप से तुषित देव कहे गये। जब ब्रह्मा के पुत्र मरीचि सप्तर्षियों के प्रधान थे उस समय यज्ञ देवों के राजा इन्द्र हुए थे।

मनु की दूसरी पुत्री देवहूति का विवाह ब्रह्मा के पुत्र कर्दम से हुआ था जिनकी कथा तीसरे स्कन्ध में विस्तार से वर्णि त है। देवहूति की नौ पुत्रियों का विवाह ब्रह्मा के नौ मानस पुत्रों मरीचि आदि से हुआ था। देवहूति के पुत्र भगवान् कपिल थे जिन्होंने माता को तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया और अन्त में समुद्र में प्रवेश कर गये थे।

मनु की तीसरी पुत्री प्रसूति का विवाह ब्रह्मा के मानस पुत्र दक्ष प्रजापति से हुआ।दक्ष का पहले भी विवाह देवहूति की पुत्री से हुआ था जो सृष्टि कार्य में सहायक था।भागवत **3।24।22** से **24**। के अनुसार देवहूति की नौ कन्यायों में से मरीचि को कला, अत्रि को अनुसूया, अंगिरा को श्रद्धा, पुलस्त्य को हविर्भू, पुलह को गति, क्रतु को क्रिया, भृगु को ख्याति, वसिष्ठ को अरुन्धती तथा अथर्वा अर्थात् दक्ष को शान्ति मिली। प्रसूति से दक्ष को सोलह कन्यायें उत्पन्न हुई जिनमें से तेरह धर्म को, एक अग्नि को, एक पितृलोक में दान दी गयी तथा अन्तिम कन्या शिव जी को पत्नी के रूप में दी गयीं। धर्म की एक पत्नी मूर्ति थी जिससे साक्षात्पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्दो ऋषि नर-नारायण के रूप में प्रकट हुए।

> **मूर्तिः सर्वगुणोत्पत्तिः नर-नारायणौ-ऋषि।। 4।1।52।।**
> **ययोः जन्मनि-अदः विश्वम्-अभ्यनन्दत्-सुनिर्वृतम्।**
> **मनांसि ककुभो वाताः प्रमेदुः सरितः अद्रयः।।4।1।53।।**
> **दिव्यवाद्यन्त तूर्याणि पेतुः कुसुमवृष्टयः।**
> **मुनयः तुष्टुवः तुष्टा जगुः गन्धर्व-किन्नराः।।4।1।54।।**
> **नृत्यन्ति स्म स्त्रियो देव्य आसीत्-परम-मङ्गलम्।**

देवा ब्रह्मादय: सर्वे उपतस्थु: अभिष्टवै:।। 4।1।55।।

नर-नारायण भगवान्के अवतार पर समस्त विश्व आनन्दमग्न हो गया। वायु, नदियाँ तथा पर्वतादि मनोहर छटायुक्त हो गये। स्वर्गलोक से बाजे नगाड़े के साथ पुष्प-वृष्टि हुई।गन्धर्व तथा किन्नर गाने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं। सर्वत्र मंगलसूचक दृश्य के बीच ब्रह्मादि ने भगवान्की स्तुति की। देवों ने कहा -

यो मायया विरचितं निजया-आत्मनीदं खे रूपभेदमिव तत्प्रतिचक्षणाय।

एतेन धर्मसदने ऋषि-मूर्तिना-अद्य प्रादुश्चकार पुरुषाय नम: परस्मै।। 4।1।56।।

सोऽयं स्थिति-व्यतिकर-उपशमनाय सृष्टान्सत्त्वेन न: सुरगणान्-अनुमेयतत्त्व:।

दृश्यात्-अभ्रक-करुणेन विलोकनेन यत्-श्रीनिकेतम्-अमलं क्षिपत-अरविन्दम्।।4।1।57।।

धर्म के यहाँ अवतरित नर-नारायण ऋषि स्वरूप भगवान् को हम नमन करते हैं। आप ही समस्त दृश्य जगत के स्रष्टा हैं। समस्त संसार उनमें उसीतरह अवस्थित है जैसे आकाश में वायु एवं बादल-समूह। सृष्टि की विपदाओं को अपनी शक्ति से शान्त करते हैं। हम आपके दयापूर्ण चितवन के आकांक्षी हैं जो लक्ष्मी जी के पद्मासन के कमल की शोभा को भी मात करती है।

एवं सुरगणैस्तात भगवन्तौ-अभिष्टुतौ।

लब्धावलोकै: ययतु अर्चितौ गन्धमादनम्।।4।1।58।।

ताविमौ वै भगवतो हरे: अंशौ-इहागतौ।

भारव्ययाय च भुव: कृष्णौ यदु-कुरु-उद्वहौ।। 4।1।59।।

मैत्रेय मुनि ने विदुर जी को कहा कि भगवान् नर-नारायण ने देवताओं से पूजा स्वीकार कर उनपर कृपाचितवन डालते गन्धमादन पर्वत को प्रस्थान किया। संसार का भार हरने के लिए कृष्ण के अंश से अवतरित नर-नारायण ऋषि युदकुल के कृष्ण एवं कुरुवंश के अर्जुन के रूप में वर्तमान में प्रकट हुए हैं।

4।2। ब्राह्म-दक्ष के यज्ञ में भगवान् विष्णु का आगमन

एक बार सृष्टि के प्रमुख नायकों ने एक यज्ञके सम्पादन हेतु सभा का आयोजन किया था जिसमें सभी ऋषि-मुनि तथा देवगण उपस्थित थे।उस सभा में दक्ष प्रजापति का प्रवेश हुआ। उनके तेज से प्रभावित होकर सभा के सभी लोग उनके सम्मान में उठ खड़े हए परन्तु ब्रह्मा तथा शिव बैठे रहे। ब्रह्मा ने दक्ष के सम्मान में उनको आसन दिया। दक्ष आसन ग्रह्ण कर शिष्टाचार की अवहेलना के लिए शिव को श्मसान-सेवी तथा अभद्र कहा। जबकि मेरा मन नहीं था परन्तु मैंने अपनी कन्या का विवाह ब्रह्मा के कहने पर इनसे किया था। ऐसा कह दक्ष ने आचमन कर शिव को देवों में अधम कहते हुए देवों के यज्ञ में कोई भी भाग नहीं मिलने का शाप दे डाला।क्रोधवश दक्ष तुरत अपने घर चले गये। शिव के प्रमुख पार्षद नन्दीश्वर ने भी दक्ष को शाप दिया कि उसे दिव्यज्ञान न मिले तथा उसका शिर बकरे का हो जाये। नन्दीश्वर ने उपस्थित ब्राह्मणों को शाप दिया कि ये लोग शरीर पालन के लिए ही विद्या तथा व्रतादि का आश्रय लें और ये द्वार-द्वार भिक्षा माँग कर शरीर की तुष्टि के लिए ही धन अर्जित करें। नन्दीश्वर द्वारा ब्राह्मणों के शाप देने पर भृगु ऋषि ने शिव के अनुयायियों को शाप दे दिया कि जो शिव का उपासक होगा वह नास्तिक होगा तथा शास्त्रों के विरुद्ध आचरण करने वाला होगा। शिव इन सब बातों को सुनकर सभा छोड़ अपने

अनुयायियों के साथ चले गये। परन्तु यज्ञ भगवान्श्रीहरि की पूजा के रूप में एक हजार वर्षो तक चलता रहा और अन्त में गंगा-यमुना में अवभृथ स्नान कर सभी प्रजापतिगण अपने धाम को गये। ब्रह्मा ने दक्ष को सभी प्रजापतियों का प्रधान बना दिया। दक्ष ने एक यज्ञ किया जिसमें अनेकों ऋषि तथा देवगण अपनी पत्नियों के साथ सम्मिलित हुए। दक्षपुत्री सती भी शिव से उस यज्ञ में बिना बुलाये ही पिता के घर में जाने का अनुरोध करने लगी। शिव ने पूर्व के अपमान का स्मरण कर सती से कहा -

सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं यदीयते तत्र पुमानपावृतः।
सत्त्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवो हि-अधोक्षजो मे नमसा विधीयते।।4।3।23।।

मैं भगवान् वासुदेव को सदैव नमस्कार करता हूँ और मुझे उनके साथ कभी कोई दुराव का अनुभव नहीं होता। तुम्हारे पिता को मुझसे ईर्ष्या है और तुम्हें वहाँ नहीं जाना चाहिए। सती शिव की बात नहीं मानी और क्रोध में उनको छोड़कर पिता के यज्ञ में चली गयी। ऐसा देखकर शिव ने नन्दी एवं अन्य अनुचरों को सती के साथ लगा दिया। सती नन्दी बैल पर चढ़कर अनुचरों के साथ नगाड़ो आदि की शोभायात्रा के साथ पिता के यज्ञ में पहुँची। माता तथा बहनों ने प्रेम से सती का सम्मान किया परन्तु पिता अनादर करते रहे। अपमान के शोक से सती ने योगाग्नि से अपनी देह को भस्मीभूत कर प्राण छोड़ दिया। नन्दी तथा शिव के अन्य अनुचरों ने दक्ष को मारने के लिए अपने हथियार उठा लिए। भृगु ने इसी बीच यज्ञ के विध्वंसकारियों को परास्त करने के लिए यज्ञाग्नि में आहुति डाली। इससे ऋभु नामक हजारों देवता प्रकट हुए जो शिव के अनुचरों को मार भगाये। शिव ने जब ऐसा सुना तब वे क्रोध से अपनी एक जटा को भूमि पर पटक कर घोर असुर पैदा किया और उसे दक्ष को मारने का आदेश दिया। उनलोगों ने भृगु की मूँछ नोच ली तथा दक्ष एवं पूषा के दाँत तोड़ डाले एवं भग के नेत्र फोड़ डाले। जब वे दक्ष का शिर नहीं काट पा रहे थे तब उनलोगों ने यज्ञ के अरनियों से उसका शिर काट यज्ञाग्नि में जला डाला। सर्व त्र आग लगा वे यज्ञस्थल से चले गये। ब्रह्मा देवों के साथ कैलास गये। वहाँ की प्राकृतिक सुषमा तथा सौगन्धिक पर्वत के मनमोहक सुन्गन्ध से सभी प्रसन्न थे।

नन्दा च अलकनन्दा च सरितौ बाह्यतः पुरः।
तीर्थपाद-पदाम्भोज-रजसा-अतीव पावने।। 4।6।24।।

भगवान् गोविन्द के चरणरज से पवित्र नन्दा एवं अलकनन्दा नदियों को देखा। एक विशाल वट वृक्ष के नीचे शिव को नारदादि को उपदेश देते वीरासन मुद्रा में बैठा देखा। ब्रह्मा को देख शिव ने उठकर उनका सत्कार किया। ब्रह्मा ने शिव की प्रशंसा करते हुए दक्ष को जीवित करने तथा भग की आँखें एवं पूषा के भंग दाँत को ठीक करने का अनुरोध किया जिससे कि यज्ञ पुनः सुचारु रूप से चल सके। शिव ने दक्ष को बकरे का सिर प्रदान किया। भग मित्र के नेत्रों से यज्ञ देखेंगे तथा पूषा अपने शिष्यों के दाँत से चबा सकेंगे। अन्य देव भी स्वस्थ हो जायेंगे। भृगु को बकरे की दाढ़ी प्राप्त होगी। ब्रह्मा एवं शिव के साथ सभी यज्ञशाला पर गये। दक्ष बकरे के शिर प्राप्त कर जीवित हो गये तथा शिव से क्षमा याचना की। यज्ञ का पुनरारम्भ हुआ।

अध्वर्युणा-आत्त-हविषा यजमानो विशाम्पते।
धिया विशुद्धया दध्वौ तथा प्रादुः अभूत्-हरिः।। 4।7।18।।

तदा स्वप्रभया तेषां द्योतयन्त्या दिशो दश।
मुष्णन्-तेजः उपानीतः तार्क्ष्येण स्तोत्रवाजिना।।4।7।19।।

यजुर्वेद के मन्त्रों से आहुति डालते ही भगवान्विष्णु प्रकट हुए। वे नारायण-स्तोत्र के प्रतीक गरुड़ जी के कन्धे पर आये। गरुड़ जी के पंख बृहत्एव रथन्तर कहलाते हैं। गरुड़ जी की पाँख से सामवेद की ध्वनि निकलती रहती है। भगवान्के तेज से सर्वत्र प्रकाश फैल गया। उनकी कान्ति के सामने ब्रह्मादि की कान्ति फीकी पड़ गयी। यहाँ भगवान्ने अष्टभुज स्वरूप में दर्शन दिया है।

श्यामो हिरण्य-रशनो-अर्क-किरीटजुष्टो नील-आलक-भ्रमरमण्डित कुण्डलास्यः।
कम्बुः अब्ज-चक्र-शर-चाप-गदा-असि-चर्म व्यग्रैः हिरण्यमय-भुजैः इव कर्णिकारः।।4।7।20।।

श्यामवर्ण के भगवान् सुनहले पीले वस्त्र, सूर्य सा चमकता मुकुट, भौंरो के समान काला बाल, कानों के कुण्डल से शोभायमान मुखमण्डल तथा आठों भुजाओं में शङ्ख, कमल फूल, चक्र, बाण, धनुष, गदा, तलवार एवं ढाल धारण किये थे। काञ्चीपुरम्के अष्टभुज भगवान् का ऐसा ही स्वरूप है। सुवर्ण बाजूबन्द तथा अन्य आभूषणों से सुशोभित शरीर पर पुष्पादि की माला ऐसी लग रही थी मानों भगवान्की देह ही साक्षात् पुष्पवृक्ष हो।

वक्षसि-अधिश्रित वधूः वनमाली-उदार-हास-अवलोक-कलया रमयन्च विश्वम्।
पार्श्व-भ्रमत्-व्यजन-चामर-राजहंसः श्वेत-आतपत्र-शशिना-उपरि रज्यमानः।।4।7।21।।

भगवान् के वक्षस्थल पर लक्ष्मी जी तथा एक हार विराज रहे थे। मुस्कुराता मुखमण्डल भक्तों का मन चुरा रहा था। उनके ऊपर चन्द्रमा के समान शीतल छत्र लगा था और दोनों ओर हंस की तरह चँवर सेवा चल रही थी।

तमुपागतम्-आलक्ष्य सर्वे सुरगणादयः।
प्रणेमुः सहसोत्थाय ब्रह्मेन्द्र-त्रि-अक्षनायकाः।। 4।7।22।।
तत्तेजसा हतरुचः सन्नजिह्वाः ससाध्वसाः।
मूर्ध्ना धृताञ्जलिपुटा उपतस्थुः अधोक्षजम्।।4।7।23।।
अपि-अर्वाक्-वृत्तयो यस्य महि तु-आत्मभू-आदयः।
यथामति गृणन्ति स्म कृतानुग्रह-विग्रहम्।।4।7।24।।

भगवान्को देख ब्रह्मा, इन्द्र, शिव आदि देवों ने दण्डप्रणाम किया। उनकी कान्ति से सब की कान्ति फीकी पड़ गयी। सब मौन और उनके सम्मान में भयग्रस्त थे। दोनों अँजलियों को शिर पर रख उनकी प्रार्थना शुरु की। ब्रह्मादि देवगण भगवान्को समझ नहीं सकते थे परन्तु भगवान्की कृपा से सब उनके स्वरूप का दर्शन कर पाये। नन्द-सुनन्द पार्षदों से सेवित भगवान् यज्ञों के स्वामी तथा सबके गुरु हैं। दक्ष की आहुति को भगवान्ने स्वीकार कर ली। दक्ष तथा सभी ऋत्विजों, पुरोहितों, भृगु मुनि तथा शिव, ब्रह्मा आदि भगवान् की स्तुति की।

रुद्र उवाच - **तव वरद वर-अङ्घ्रौ-आशिषा-इह-अखिलार्थे**
हि-अपि-मुनिभः असक्तैः आदरेण-अर्हणीये।। 4।7।29।।

आपके चरणारविन्द की पूजा मुनि लोग करते हैं वही श्रीचरण हमारा भी आश्रय है।

इन्द्र उवाच - **इदमप्यच्युत विश्वभावनं वपुरानन्दकरं मनोदृशाम्।**
सुर-विद्वट्-क्षपणैः उद्-आयुधैः भुजदण्डैः उपपन्नम्-अष्टभिः।। 4।7।32।।

आपकी आठ भुजाओं के सुन्दर स्वरूप से विश्व मोहित है। आपकी आयुधें विरोधियों को दण्ड देता है।

ऋषिय ऊचु: - **अनन्वितं ते भगवन् विचेष्टितं यदात्मना चरसि हि कर्म नाज्यसे।**

विभूतये यत उपसेदु: ईश्वरीं न मन्यते स्वयम्-अनुवर्ततीं भवान्। ।4।7।34। ।

लक्ष्मी जी की कृपा के लिए ब्रह्मादि देवगण लालायित रहते हैं परन्तु आप उनमें भी लिप्त नहीं होते जबकि आप विभिन्न शक्तियों से समस्त काम कराते रहते हैं।

सिद्धा ऊचु: - **अयं त्वत्कथा-मृष्ट-पीयूषनद्यां मनोवारण: क्लेश-दावाग्नि-दग्ध:।**

तृषार्तो-अवगाढो न सस्मार दावं न निष्क्रामति ब्रह्म-सम्पन्न-वत्-न:। ।4।7।35। ।

संसार की दावाग्नि से ग्रस्त एवं प्यासा हमारा मन रूपी हाथी आपके अमृतमयी कथा में गोता लगाये बैठा है।

गन्धर्वा ऊचु: - **अंश-अंशा: ते देव मरीच्यादय एते ब्रह्मेन्द्राद्या देवगणा रुद्रपुरोगा:।**

क्रीडाभाण्डं विश्वमिदं यस्य विभूमन्तस्मै नित्यं नाथ नमस्ते करवाम। । 4।7।43। ।

ब्रह्मा, इन्द्र तथा रुद्र आदि समस्त देव एवं ऋषि आपके शरीर के भिन्न-भिन्न अंश हैं। समस्त सृष्टि आपका खेल मैदान है। हमारा नमस्कार स्वीकार करें।

ब्राह्मणा ऊचु: - **त्वं पुरा गां रसाया महासूकरो दंष्ट्रया पद्मिनीं वारणेन्द्रो यथा।**

स्तूयमानो नदन्-लीलया योगिभि: व्युज्जहर्थ त्रयीगात्र यज्ञक्रतु:। । 4।7।46। ।

हाथी जैसे कमलपुष्प को सरोवर से ऊपर उठाता है वैसे ही आपने महावराह के स्वरूप में पृथ्वी को जल सेउद्धार करते समय जो गर्जन लगायी थी वही यज्ञों के मन्त्र बन गये हैं।वराह भगवान् का विस्तृत स्वरूप भागवत **3**।**13**। में द्रष्टव्य है। श्रेष्ठ योगी सनकादि आपका ध्यान एवं स्तुति करते हैं। भगवान् की स्तुति से विशुद्ध चित्तवाले दक्ष ने यज्ञ का कार्य प्रारम्भ किया। भगवान्ने कहा कि विभिन्न शक्तियों से जगत्का कार्य कराता हूँ। ब्रह्मा तथा रुद्रादि एवं जीवात्माओं को मुझसे स्वतन्त्र समझने वाले अज्ञानी हैं। सब मुझ पर ही आश्रित हैं। भगवान् सबों की पूजा स्वीकार कर चले गये। मैत्रेय मुनि ने विदुर जी को कहा कि शिव द्वारा ब्राह्म-दक्ष के यज्ञ को विध्वंस किये जाने की कथा हमने उद्धव जी से सुनी थी।

<u>**4**।**3**। भक्तराज ध्रुव जी का चरित</u>

प्रियव्रतोत्तानपादौ शतरूपापते: सुतौ।

वासुदेवस्य कलया रक्षायां जगत: स्थितौ। ।4।8।7। ।

भगवान् वासुदेव के अंश से मनु के पुत्र उत्तानपाद एवं प्रियव्रत पृथ्वी के राज-काज के लिए सक्षम थे।

जाये उत्तानपादस्य सुनीति: सुरुचिस्तयो:।

सुरुचि: प्रेयसी पत्यु: न इतरा यत्सुतो ध्रुव:। ।4।8।8। ।

एकदा सुरुचे: पुत्रमङ्कमारोप्य लालयन्।

उत्तमं न आरुरुक्षन्तं ध्रुवं राजाभ्यनन्दत्। ।4।8।9। ।

राजा उत्तानपाद की सुनीति एवं सुरुचि दो पत्नियाँ थीं। सुरुचि राजा को अधिक प्रिय थीं। राजा से उपेक्षित दूसरी रानी सुनीति के पुत्र ध्रुव जी थे। एकबार राजा की गोाद में सुरुचि का पुत्र था। सुनीति का पुत्र ध्रुव जी जब वहाँ गये तब वे भी पिता की गोद में चढ़ने का प्रयास करने लगे परन्तु पिता ने उन्हें प्रश्रय नहीं दिया।

तथा चिकीर्षमाणं तं सपत्न्यास्तनयं ध्रुवम्।
सुरुचिः श्रृण्वतो राज्ञः स-ईर्ष्यम्-आह-अतिगर्विता।।**4**।**8**।**10**।।
न वत्स नृपतेः धिष्ण्यं भवान्-आरोढुम्-अर्हति।
न गृहीतो मया यत्त्वं कुक्षौ-अपि नृपात्मजः।। **4**।**8**।**11**।।
तपसाऽऽराध्य पुरुषं तस्यैवानुग्रहेण मे।
गर्भे त्वं साधयात्मानं यदीच्छसि नृपासनम्।।**4**।**8**।**13**।।

राजा को सुनाते हुए सुरुचि ईर्ष्यावश ध्रुव जी से बोलती है कि तुम मेरे गर्भ से नहीं जन्मे हो इसलिए राजा की गोद में बैठने के अधिकारी नहीं हो। भगवान् की आराधना करो और जब मेरे गर्भ से तुम्हारा पुनर्जन्म होगा तब राज्याधिकारी बन पाओगे।

मातुः सपत्न्याः स दुरुक्तिविद्धः श्वसन्रुषा दण्डहतो यथा-अहिः।
हित्वा मिषन्तं पितरं सन्नवाचं जगाम मातुः प्ररुदन्सकाशम्।।**4**।**8**।**14**।।

अपनी सौतेली माँ के व्यवहार से ध्रुव जी नाराज होकर साँप की तरह फुफकारते अपनी माँ के पास आये।

आतिष्ठ तत्तात विमत्सरः त्वम्-उक्तं समात्रा-अपि यदव्यलीकम्।
आराधय-अधोक्षज-पादपद्मं यदीच्छसे-अध्यासनम्-उत्तमो यथा।।**4**।**8**।**19**।।

माँ ने विमाता को उचित बताया। भगवान्की आराधना से वे राजा की गोद के राज्याधिकारी हो सकते हैं।

यस्याङ्घ्रि-पद्मं परिचर्य विश्व-विभावनाय-आत्त-गुणाभिपत्तेः।
अजो-अध्यतिष्ठत्-खलु पारमेष्ठयं पदं जितात्म-श्वसन-अभिवन्द्यम्।।**4**।**8**।**20**।।

परमपुरुष भगवान्के चरणाविन्द की सेवा से सृष्टि रचने में ब्रह्मा सक्षम हुए हैं तथा मुनिगण श्वास के नियन्त्रण से मन को वश में कर सदा उसी भगवान्का ध्यान करते हैं।

तमेव वत्साश्रय भृत्यवत्सलं मुमुक्षुभिः मृग्य-पदाब्ज-पद्धतिम्।
अनन्यभावे निजधर्म-भाविते मनसि-अवस्थाप्य भजस्व पूरुषम्।।**4**।**8**।**22**।। नान्यं ततः पद्म-पलाश-लोचनाद्दुःखच्छिदं ते मृगयामि कंचन।
यो मृग्यते हस्तगृहीत-पद्मया श्रिया-इतरैः अङ्ग विमृग्यमाणया।। **4**।**8**।**23**।।

ध्रुव जी की माँ कहती हैं कि जन्म-मरण से छुटकारा दिलाने वाले भगवान् को हृदय में बैठाकर उनकी उपासना कर। कमलदललोचन श्रीहरि को छोड़कर तेरा कोई सहायक नहीं है। जिसे देवगण खोजते फिरत हैं, उनकी सेवा से ही लक्ष्मी जी को यश मिला है। विदुर जी से मैत्रेय मनु आगे कहते हैं -

एवं संजल्पितं मातुः आकर्ण्य-अर्थागमं वचः।
संनियम्य-आत्मना-आत्मानं निश्चक्राम पितुः पुरात्।।**4**।**8**।**24**।।
नारदस्य-तदुपाकर्ण्य ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम्।
स्पृष्ट्वा मूर्धनि-अघ-घ्नेन पाणिना प्राहः विस्मितः।। **4**।**8**।**25**।।
नाधुना-अपि-अवमानं ते सम्मानं वापि पुत्रक।
लक्षयामः कुमारस्य सक्तस्य क्रीडनादिषु।। **4**।**8**।**27**।।

गुणाधिकात्-मुदं लिप्सेत्-अनुक्रोशं गुणाधमात्।

मैत्रीं समानात्-अन्विच्छेत्-न तापैः अभिभूयते।।4।8।34।।

माँ की राय पर मन स्थिर कर ध्रुव जी दृढ़ संकलप से पिता के घर से बाहर निकले। नारद जी ध्रुव जी की गतिविधि का संवाद सुन चकित हुए तथा उनके पास पहुँच कर अपने पापविनाशक हाथ को उनके सिर पर रखकर उनकी परीक्षा लेने हेतु बोले। अभी तुम्हारी आयु खेलने की है। विमाता के वचन सुनकर इतना क्यों दुःखी हो गये हो? इस संसार में दुःख से निवृत होने का उपाय है कि अपने से ज्ञानवान के वचन सुन बहुत प्रसन्न हो जाये, अपने से कम ज्ञान वाले की बात सुन उस पर दया करे तथा अपने समानवालों के साथ मित्रता करे।।

अथापि मेऽविनीतस्य क्षात्रं घोरम्-उपेयुषः।

सुरुच्या दुर्वचोबाणैः न भिन्ने श्रयते हृदि।।4।8।36।।

पदं त्रिभुवनोत्कृष्टं जिगीषोः साधु वर्त्म मे।

ब्रूहि-अस्मत्-पितृभिः ब्रह्मन्-अन्यैः अपि-अनधिष्ठतम्।।4।8।37।।

ध्रुव जी बोले - विमाता सुरुचि के कटु वचनों से मेरा हृदय क्षत-विक्षत है। क्षत्रिय होने के कारण मैं आपके घर लौटने के उपदेश को धारण नहीं कर सकता।मेरा लक्ष्य है उस श्रेष्ठतम पद को प्राप्त करना जो न तो मेरे कुल में कोई कर सका है और न विश्व में कोई अन्य। आप मुझे सत्य के मार्ग प्राप्त करने के उपाय बतायें। ध्रुव जी की दृढ़ता देखकर नारद ने कहा -

धर्म-अर्थ-काम-मोक्षाख्यं य इच्छेत्-श्रेयः आत्मनः।

एकं ह्येव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम्।।4।8।41।।

तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायाः तटं शुचि।

पुण्यं मधुवनं यत्र सानिध्यं नित्यदा हरेः।।4।8।42।।

चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति भगवान् के चरणकमलों की पूजा से हो जाती है। यमुना किनारे मधुवन में जाकर साधना करो वहाँ वृन्दावनवासी भगवान् के सदैव निकट रहोगे।तीन बार यमुना में स्नान कर शान्त मुद्रा में आसन पर बैठना। प्राणायम की विधियों से मन एवं इन्द्रियों को वश में कर भगवान्पर ध्यान लगाना।

प्रसादाभिमुखं शश्वत्-प्रसन्नवदन-ईक्षणम्।

सुनासं सुभ्रुवं चारुकपोलं सुरसुन्दरम्।।4।8।45।।

सुन्दर मुखमण्डल वाले भगवान् सदा प्रसन्न मुद्रा में रहते हुए भक्तों को वर देने को उद्यत रहते हैं। समस्त देवों में सबसे सुन्दर भगवान्के नेत्र, सुसज्जित भौहें, उन्नत नाक तथा चौड़ा मस्तक अतीव सुन्दर हैं।

तरुणं रमणीय-अङ्गम्-अरुणोष्ठ-ईक्षण-अधरम्।

प्रणत-आश्रयणं नृम्णं शरण्यं करुणार्णवम्।।4।8।46।।

श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं पुरुषं वनमालिनम्।

शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मैः अभिव्यक्त-चतुर्भुजम्।।4।8।47।।

किरीटनं कुण्डलिनं केयूर-वलयान्वितम्।

कौस्तुभ-आभरण-ग्रीवं पीतकौशेय-वाससम्।।4।8।48।।

लाल होंठ, सुन्दर आँखे तथा सुडौल अंग-प्रत्यंगवाले दया के सागर भगवान्शरणागतों के एक मात्र आश्रय हैं। नीले मेघ के वर्णवाले भगवान्वनमाला एवं श्रीवत्स से विभूषित अपनी चारो भुजाओं में शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण कर नित्य दर्शन देते हैं। पीताम्बरधारी भगवान्मुकुट, कुण्डल, बाजूबन्द, गले में कौस्तुभ तथा सुन्दर आभूषणों से युक्त हैं।

काञ्ची-कलापपर्यस्तं लसत्काञ्चन-नूपुरम्।
दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयन-वर्धनम्।।4।8।49।।
पद्भ्यां नखमणि-श्रेण्या विलसद्भ्यां समर्चताम्।
हृत्पद्म-कर्णिका-धिष्ण्यम्आक्रम्य-आत्मनि-अवस्थितम्।।4।8।50।।
स्मयमानम्-अभिध्यायेत्-सानुराग-अवलोकनम्।
नियतेन-एकभूतेन मनसा वरदर्षभम्।।4।8।51।।
जपश्च परमो गुह्य: श्रूयतां मे नृपात्मज।
यं सप्तरात्रं प्रपठन् पुमान् पश्यति खेचरान्।। 4।8।53।।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।
मन्त्रेण-अनेन देवस्य कुर्याद् द्रव्यमयीं बुध:।
सपर्यां विविधै: द्रव्यै: देश-काल-विभागवित्।।4।8।54।।
सलिलै: शुचिभिर्माल्यै: वन्यै: मूलफलादिभि:।
शस्त-अङ्कुर-अंशुकै: च अर्चेत् तुलस्या प्रियया प्रभुम्।।4।8।55।।
परिचर्या भगवतो यावत्य: पूर्वसेविता:।
ता मन्त्रहृदयेनैव प्रयुञ्ज्यात्-मन्त्रमूर्तये।।4।8।58।।

कमर में छोटे-छोटे घुँघरू एवं पैरों में नूपुर धारण किये मनोहारी स्वरुपवाले भगवान् शान्तभाव में रहते हैं। योगियों के हृदय-कमल में विराजमान भगवान्के मणिमय नख चमकते रहते हैं। नारद जी ने कहा कि मुस्कराते मुखारविन्द पर ध्यान करे जो भक्तों को कृपादृष्टि से देखते हुए भगवान् समस्त वरों को देनेवाले हैं। इस तरह से मंगलमय स्वरूप पर ध्यान करते हुए सात रात सावधानी से द्वादशक्षर वासुदेव मंत्र का जप करने से गगनाचारी सिद्धगण भी दृश्यमान हो जाते हैं। शास्त्रीय विधि से समय एवं स्थान के अनुकूल फल-फूल तथा भगवान् को अत्यन्त प्रिय तुलसी अर्पि त करते हुए उनकी पूजा करे। भक्तों की परम्परागत विधि से भगवान् की पूजा मन से हृदय में मन्त्रों को स्मरण करते हुए करे।

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य प्रणम्य च नृपार्भक:।
ययौ मधुवनं पुण्यं हरे: चरण-चर्चितम्।।4।8।62।।

भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीचरणों के दिव्य चिह्नों से अंकित मधुवन में ध्रुव जी, नारद जी की परिक्रमा एवं प्रणाम कर चले गये। नारद जी उनके पिता उत्तानपाद के पास गये तथा उनसे उनकी उदासी का कारण जानना चाहे। राजा

ने कहा कि **"निर्वासित: पञ्चवर्ष: सह मात्रा महान्कवि:।4।8।65।।"** हमने परम भक्त पाँच वर्ष के पुत्र एवं उसकी माता के साथ पतित जैसा व्यवहार किया है। कहीं जंगल में हिंसक पशु सुकुमार ध्रुव की हानि न करे इस आशंका से चिन्तित रहता हूँ। नारद जी ने राजा को ध्रुव जी के बारे में निश्चिन्त रहने को कहा क्योंकि वह भगवान् के पूर्ण संरक्षण में है। ध्रुव को जगत्-व्याप्त ख्याति मिल चुकी है। वह शीघ्र सिद्ध होकर घर लौटेगा। नारद जी राजा उत्तानपाद को समझा कर चले गये। ध्रुव जी पहले मास में हर तीसरे दिन बेर-कैथे खाकर रहते थे। दूसरे मास में हर छठे दिन सूखी घास एवं पत्ता खाते थे। तीसरे मास में हर नवें दिन केवल जल पीकर रहते थे। चौथे मास में प्राणायाम में निपुण हो गये। पाँचवें मास में श्वास पर नियन्त्रण कर एक ही पैर पर खड़े हो गये।

आधारं महदादीनां प्रधानपुरुषेश्वरम्।
ब्रह्म धारयमाणस्य त्रयो लोका: चकम्पिरे।। 4।8।78।।
यदैकपादेन स पार्थिव-अर्भक: तस्थौ तत्-अङ्गुष्ठा-निपीडिता मही।
ननाम तत्र-अर्धम्इभ-इन्द्र-धिष्ठिता तरी-इव सव्य-इतरत: पदे पदे।। 4।8।79।।
तस्मिन्-अभिध्यायति विश्वमात्मनो द्वारं निरुध्य-असुम्-अनन्यया धिया।
लोका निरुच्छ्वास-निपीडिता भृशं सलोकपाला: शरणं ययु: हरिम्।।4।8।80।।

समस्त सृष्टि के आधार भगवान् को उन्होंने जब प्रभावित कर लिया तब तीनों लोक हिलने लगे। जैसे नदी के पानी में स्थित नाव पर हाथी के चढ़ने से उसके कदम-कदम पर नाव कभी बायें तथा कभी दायें हिलती है वैसे ही ध्रुव जी के एक पाँव पर खड़े होने से पृथ्वी डगमगाने लगी। भगवान्के स्वरूप को अपने हृदय में पूर्णत: स्थित करने से उनके शरीर के सभी छिद्र बन्द हो गये। जब भगवान के स्वरूप पर ध्रुव जी पूर्णतया ध्यानस्थ हा गये तब उनकी सभी इन्द्रियों की बाह्य वृत्तियाँ शिथिल हो गयीं। ध्रुव जी का श्वास भी रुक गया। तब उनके हृदयस्थ अन्तर्यामी अंशी परमात्मा ने **"यो यथा मां प्रपद्यन्ते तां तथैव भजाम्यहम्"** से ध्रुव जी का अनुसरण किया और परमात्मा की साँस रुकने से सम्पूर्ण सृष्टि के चराचर जीवों का दम घुटने लगा। लोकपालों आदि की साँस घुटने लगी। वे सभी भगवान्की शरण में गये। भगवान्ने उनलोगों को बताया कि ध्रुव जी की घोर तपस्या का यह परिणाम है। मैं शीघ्र ही उनके पास जाता हूँ।

त एवम्-उत्सन्नभया उरुक्रमे कृत-अवनामा: प्रययु: त्रिविष्टपम्।
सहस्रशीर्षापि ततो गरुत्मता मधोर्वनं भृत्य-दिदृक्षया गत:।।4।9।1।।
स वै धिया योग-विपाक-तीव्रया हृत्पद्मकोशे स्फुरितं तडित्प्रभम्।
तिरोहितं सहसा-उपलक्ष्य बहि: स्थितं तदवस्थं ददर्श।।4।9।2।।
तत्-दर्शनेन-आगतसाध्वस: क्षितौ-अवन्दत-अङ्गं विनमय्य दण्डवत्।
दृग्भ्यां प्रपश्यन्-प्रपिबन्-इव-अर्भक: चुम्बन्-इव-आस्येन भुजै: इव-आश्लिषन्।।4।9।3।।
स तं विवक्षन्तम्-अतत्-विदं हरि: ज्ञात्वा-अस्य सर्वस्य च हृदि-अवस्थित:।
कृताञ्जलिं ब्रह्ममयेन कम्बुना पस्पर्श बालं कृपया कपोले।। 4।9।4।।

देवता लोग भगवान् से आश्वासित होकर अपने-अपने लोक गये। गरुड़ पर चढ़कर हजारों सिर से युक्त भगवान् अपने भक्त ध्रुव को देखने मधुवन पहुँचे। विजली के समान चमकते भगवान्का स्वरूप जिसमें ध्रुव जी ध्यानस्थ थे सहसा उनके हृदय से लुप्त हो गया। विकल होकर जब वे आँखें खोलते हैं तब भगवान्को साक्षात् अपने सामने खड़े देखते हैं। ध्रुव जी उनके श्रीचरणों पर दण्ड की तरह गिर पड़े। भगवत्प्रेम में मग्न हो भगवान्के सौंदर्य को मानो आँखों से पीने लगे, श्रीचरणों को चूमने लगे तथा अपनी भुजाओं से उन्हें पकड़ने लगे। सबके हृदय में बसने वाले भगवान्जब यह समझ गये कि ध्रुव जी स्तुति करना चाहते हैं परन्तु अपने को असमर्थ अनुभव कर रहे हैं तब भगवान्ने अंजलिबद्ध ध्रुव जी के गाल से अपना शंख स्पर्श करा दिया।

योऽन्त: प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां संजीवयति-अखिलशक्तिधर: स्वधाम्ना।
अन्यांश्च हस्त-चरण-श्रवण-त्वक्-आदीन्प्राणान्-नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्।।4।9।6।।

ध्रुव जी भावभीनी स्तुति करने लगे। प्रभु ! आपने हमारे अन्त:करण में प्रवेश कर हमारी सभी सोयी इन्द्रियों को शुद्ध कर जगा दिया। आपको नमस्कार है।

एक: त्वमेव भगवन्-इदम्-आत्मशक्त्या माया-आख्यया- उरुगुणया महत्-आदि-अशेषम्।
सृष्ट्वा-अनुविश्य पुरुषस्तत्-असत्-गुणेषु नाना-इव दारुषु विभावसु-वत्-विभासि।।4।9।7।।

विभिन्न आकार की लकड़ियों में एक ही अग्नि विभिन्न रूपों में जलती एवं चमकती दिखती है। उसी तरह से आप सम्पूर्ण सृष्टि में प्रवेश कर भिन्न-भिन्न स्वरूपों से दिखते हैं।

नूनं विमुष्ट-मतय: तव मायया ते ये त्वां भव-अप्यय-विमोक्षणम्-अन्यहेतो:।
अर्चन्ति कल्पकतरुं कुणप-उपभोग्यम्-ईच्छन्ति-यत्स्पर्शजं निरयेऽपि नृणाम्।।4।9।9।।

मायावश देहधारी जीव इन्द्रिय-तृप्ति के लिए आपकी आराधना करता है। मैंने भी मूर्खतावश वही किया।

या निर्वृति: तनुभृतां तव पादपद्म-ध्यानात्-भवत्-जन-कथाश्रवणेन वा स्यात्।
सा ब्रह्मणि स्व-महिमनि-अपि नाथ मा भूत्किं तु-अन्तक-असि-लुलितात्-पततां विमानात्।।**4।9।10**।।

भक्तिं मुहु: प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो भूयाता् अनन्त महताम्अमल-आशयानाम्।
येन-अञ्जसा-उल्बणम्उरु-व्यसनं भवाब्धिं नेष्ये भवत्-गुणकथा-अमृतपानमत्त:।। 4।9।11।।

ते न स्मरन्ति-अतितरां प्रियमीश मर्त्यं ये चान्वद: सुत-सुहृद्-गृह-वित्त-दारा:।
ये तु अब्जनाभ भवदीय-पदारविन्द-सौगन्ध्यलुब्ध-हृदयेषु कृतप्रसङ्गा:।।4।9।12।।

आपके चरणकमल का ध्यान तथा आपके भक्तों का चरित्र सुनने से जो आनन्द होता है वह मात्र ब्रह्मानन्द में लीन रहने के आनन्द से कहीं ज्यादा है। केवल ब्रह्मानन्द के ध्यान वाले की वही हालत होती है जो पुण्य समाप्ति के बाद स्वर्ग के विमान से गिरने वाले की होती है। हे अनन्त ! मुझे अपने अनन्य भक्तों की संगति दीजिये जिनसे आपके कथामृत को पान में सदा उन्मत्त रहते हुए दहनशील संसार-सागर से पार हो जाऊँ। आपके चरणारविन्द के सुगन्ध में मस्त रहने वाले भक्तों की संगति मिले जिससे प्रिय शरीर तथा पुत्र-गृहादि की सुध भी नहीं रहे।।

कल्पान्त एतदखिलं जठरेण गृह्णन् शेते पुमान् स्वदृक्-अनन्त-सख: तदङ्के।
यत्-नाभि-सिन्धु-रुह-काञ्चन-लोक-पद्मगर्भे द्युमान् भगवते प्रणतोऽस्मि तस्मै।। 4।9।14।।

कल्पान्त में समस्त चराचर जगत् को आप अपने पेट में समेटकर शेष जी के गोद में सोते हैं। आपकी नाभि से उत्पन्न कमल पर ब्रह्मा विराजते हैं। आपके शरणागत हूँ।

सत्याशिषो हि भगवंस्तव पादपद्म्-आशी: तथा-अनुभजत: पुरुषार्थमूर्ते:।

अप्येवम्-अर्य भगवान्परिपाति दीनान्-वाश्रा-इव वत्सकम्-अनुग्रह कातर: अस्मान्। ।**4**।**9**।**17**। ।

जैसे गाय अपने नवजात बछड़े को देखभाल करती हुई दूध पिलाती है उसी तरह आप मुझ जैसे मूर्ख भक्त की रक्षा करें। वरों के साक्षात् स्वरूपवाले प्रभु ! मुझे राजपाट के बदले अपने चरणाविन्द का राज्य दें।

मैत्रेय मुनि विदुर जी को कहते हैं कि ध्रुव जी की स्तुति समाप्त होने पर हर्षित होते हुए भगवान्ने उन्हें अचल स्थान दिया तथा पृथ्वी पर छत्तीस हजार वर्ष राज्य करने को कहा। तुम्हारा भाई उत्तम वन में हिंसक पशु से मारा जायेगा तथा उसकी माँ भी पुत्रशोक में मर जायेगी।

ततो गन्तसि मत्स्थानं सर्वलोक-नमस्कृतम्।

उपरिष्टात्-ऋषिभ्य: त्वं यतो नावर्तते गत:। । 4।9।25। ।

भगवान्ने कहा कि सांसारिक जीवन के बाद सभी लोकों के निवासी से वन्दित मेरे लोक में आओगे जो सप्त-ऋषियों के लोकों से भी ऊपर स्थित है। इस संसार में तुम्हें पुन: लौटना नहीं पड़ेगा।

इत्यर्चित: स भगवान्-अतिदिश्य-आत्मन: पदम्।

बालस्य पश्यतो धाम स्वम्-अगात्-गरुडध्वज:। । 4।9।26। ।

बालक ध्रुव जी से पूजित होकर भगवान् उन्हें अक्षय पद देकर देखते-देखते गरुड जी पर सवार हो अपने धाम में चले गये। भगवान् द्वारा अक्षय पद मिलने पर भी ध्रुव जी खिन्न मन अपने घर को लौटे। क्योंकि अपनी विमाता के दुर्व्यहार से दु:खी थे और सांसारिक लाभ के लिए भगवान्की आराधना में आये थे। जब भगवान्उनके सामने प्रकट हुए तब वे छुद्रलाभ की धारणा के कारण लज्जित होकर खिन्न मन घर लौट रहे थे। ध्रुव जी को घर लौटते जानकर राजा उत्तानपाद रानियों के साथ उनकी आगवानी में आये।

यस्य प्रसन्नो भगवान्गुणै: मैत्री-आदिभि: हरि।

तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नम्-आप इव स्वयम्। ।4।9।47। ।

सुरुचि ने कहा कि जिसे भगवान् अपना लेते हैं उसे समस्त जगत् नमस्कार करता है। ध्रुव जी अपने भाई तथा पिता से सम्मानित होकर राजा के साथ महल में रहने लगे। जब राजा ने समझा कि अब ध्रुव जी वयस्क एवं परिपक्व हो गये हैं तब उन्हें राज्याधिकार देकर उत्तानपाद स्वयं वन में चले गये। ध्रुव जी का प्रथम विवाह शिशुमार की पुत्री से हुआ जिनसे इनके कल्प एवं वत्सर नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। इनकी दूसरी पत्नी वायुदेव की पुत्री इला थी उससे एक कन्या एवं एक पुत्र उत्कल था। एक बार इनका भाई उत्तम आखेट के लिए वन गया और वहाँ एक यक्ष द्वारा मारा गया। उसकी माँ सुरुचि भी पुत्र-वियोग में मर गई। ध्रुव जी ने भाई का बदला लेने के लिए यक्षों की अलकापुरी पर चढ़ाई कर दी। घोर युद्ध हुआ। यक्षों के संहार देख स्वायम्भुव मनु आये और अपने पौत्र ध्रुव जी से बोले -

सर्वभूतात्मभावेन भूतावासं हरिं भवान्।

आराध्याप दुराराध्यं विष्णो: तत्परमं पदम्। ।4।11।11। ।

आपने अपनी साधना से समस्त जीवात्माओं के परमधाम भगवान्‌के धाम में जाने का निश्‍चित वर प्राप्त कर लिया है जो अत्यन्त दुष्कर है। तुम्हारे भाई की हत्या यक्षों ने नहीं की है। प्रत्येक जीवात्मा का जन्म एवं मृत्यु भगवान्‌द्वारा निर्धारित है। तुम्हारे इस कर्म से कुबेर दु:खी हो गये हैं। तुम उन्हें मना लो और मैं-मेरा-तेरा की देहात्म भावना से मुक्त होकर युद्ध बन्द करो। ध्रुव जी मान गये। कुबेर प्रसन्न हुए तथा ध्रुव जी को यह वर दिया कि आपका मन निरन्तर भगवान्‌में लगा रहे। ध्रुव जी ने समस्त यज्ञों के भोक्ता भगवान्‌को प्रसन्न करने के लिए यज्ञोत्सव सम्पन्न किये। छत्तीस हजार वर्ष तक ध्रुव जी का धरती पर राज्य था। बाद में अपने पुत्र को राजसिंहासन दे वे बदरिकाश्रम में जा तपस्या करने लगे।

भक्ति हरौ भगवति प्रवहन्-अजस्रम्-आनन्द-वाष्प-कलया मुहु: अर्द्यमान:।

विक्लिद्यमान-हृदय: पुलक-आचित-अङ्गो न-आत्मानम्-अस्मरत्-असौ-इति मुक्तलिङ्ग:। ।**4**।**12**।**18**। ।

भगवान्‌के दिव्यानन्द से अभिभूत ध्रुव जी की आँखों से निरन्तर अश्रु प्रवाहित होते रहते थे। सदा पुलकित रहते हुए समाधि में लीन हो भौतिक वन्धन से मुक्त हो गये। उन्होंने एक दिव्य विमान को ऊपर से नीचे आते देखा जिसमें भगवान्‌के नन्द एवं सुनन्द दो सुन्दर चतुर्भुजी पार्षद सवार थे।उनको आते देख उनको नमस्कार कर ध्रुव जी भगवान्‌के पवित्र नामों की महिमा का जप करने लगे। पार्षदों ने कहा -

भो भो राजन्सुभद्रं ते वाचं नोऽवहित: श्रुणु।
य: पञ्चवर्षस्तपसा भवान्देवम्-अतीतृपत्। ।4।12।23। ।
तस्याखिल-जगत्-धातु: आवाम्देवस्य शार्ङ्गिण:।
पार्षदौ-इह सम्प्राप्तौ नेतुं त्वां भगवत्पदम्। ।4। ।12।24। ।

आपने पाँच वर्ष की अवस्था में घोर साधना से भगवान्‌को प्रसन्न किया था। हम दोनों शार्ङ्गपाणि भगवान्‌के पार्ष द हैं और आपको वैकुण्ठ ले जाने के लिए आये हैं। ध्रुव जी ने स्नादि कर पवित्र हो ऋषियों की पूजा कर विमान की पूजा की। उसका परिक्रमा कर पार्षदों को प्रणाम कर विमान पर चढ़ने जा रहे थे कि उन्होंने मृत्यु को पास आते देखा। उसके सिर पर पैर रख वे भगवान्‌के विमान पर सवार हुए और मन में अपनी माँ का स्मरण कर स्वयं अकेले वैकुण्ठ जाने के लिए चिन्तित हो गये। उनके मन का भाव जानकर पार्षदों ने उन्हें आगे-आगे सुनीति को विमान से जाते दिखाया। ध्रुव जी ने समस्त तारा मण्डल तथा सप्तऋषियों के लोकों को पार करते हुए अविचल दिव्य पद प्राप्त कर लिया जहाँ भगवान् विष्णु का निरन्तर वास रहता है।

इत्युत्तानपाद: पुत्रो ध्रुव: कृष्णपरायण:।
अभूत्त्रयाणां लोकानां चूडामणिरिवामल:। ।4।12।38। ।
गम्भीरवेगोऽनिमिषं ज्योतिषां चक्रमाहितम्।
यस्मिन् भ्रमति कौरव्य मेढ्यामिव गवां गण:। ।4।12।39। ।

कृष्णपरायण ध्रुव जी ने तीनों लोकों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। हे विदुर ! जैसे गेहूँ-धान आदि के पके पौधे से अन्न प्राप्त करने के लिए खलिहान की दमाही में बैल केन्द्रस्थ खम्भे के चारों ओर चक्कर लगाते हैं उसी तरह समस्त नक्षत्र तेज गति से ध्रुव जी के धाम का निरन्तर चक्कर लगाते रहते हैं। एक बार नारद जी प्रचेताओं के यज्ञ में गये और ध्रुव जी की महिमा का वहाँ वीणा पर गान किया।

नूनं सुनीतेः पतिदेवतायाः तपः प्रभावस्य सुतस्य तां गतिम्।
दृष्टवा-अभ्युपायान्-अपि वेदवादिनो नैवाधिगन्तुं प्रभवन्ति किं नृपाः।।4।12।41।।
यः पञ्चवर्षो गुरुदार-वाक्शरैः भिन्नेन यातो हृदयेन दूयता।
वनं मदादेशकरो-अजितं प्रभुं जिगाय तद्भक्तगुणैः पराजितम्।।4।12।42।।
यः क्षत्रबन्धुः भुवि तस्याधिरूढम्-आरुरुक्षेत्-अपि वर्षपूगैः।
षट्पञ्चवर्षो यत्-अहोभिः अल्पैः प्रसाद्य वैकुण्ठम्-अवाप तत्पदम्।।4।12।43।।

वेदान्तियों को अप्राप्त उच्च पद पतिपरायण सुनीति के पुत्र ध्रुव जी ने कठिन तपस्या से प्राप्त किया। पाँच वर्ष की अवस्था में मेरे द्वारा बताये मार्ग का अनुसरण करते हुए भगवद्भक्तों के विशिष्ट गुणों से समन्वित हो उन्होंने अजेय भगवान्को जीत लिया। बड़े से बड़े क्षत्रिय द्वारा अनेकों वर्षों की तपस्या से न प्राप्त होने वाले भगवत्पद को ध्रुव जी ने पाँच-छह वर्ष की अवस्था में ही छह मास की तपस्या से ही प्राप्त किया।

मैत्रेय मुनि ने विदुर जी से आगे कहा कि जो ध्रुव जी के पावन चरित को श्रद्धा एवं भक्ति के साथ सुनता एवं समझने का बारम्बार प्रयास करता है उसके संसार के तीनों तापों का नाश हो जाता है। यह चरित प्रातः एवं सायं गायन करने से भगवान्की परम भक्ति मिलती है। विशेष रूप से पूर्णमासी, अमावस्या, द्वादशी, श्रवण नक्षत्र में, तिथिक्षय एवं व्यतिपात के अवसर पर, रविवार या मासान्त में इस कथा को विना किसी व्यावसायिक लाभ के सुनाने एवं सुनने वाले को भगवत्पद मिलता है।

इदं मया तेऽभिहितं कुरूद्वह ध्रुवस्य विख्यातविशुद्धकर्मणः।
हित्वार्भकः क्रीडानकानि मातुर्गृहं च विष्णुं शरणं यो जगाम।।4।12।52।।

हे विदुर ! परम पुनीत ध्रुव-चरित विस्तार से आपको सुनाया।बचपन में खिलौने एवं खेल तथा माता का संरक्षण त्याग कर ध्रुव जी भगवान्विष्णु के शरणाश्रित हुए एवं परमोच्च स्थान प्राप्त किये।

<u>4।4। ध्रुव जी के वंश में भगवान् विष्णु के अंश से अवतरित राजा पृथु जी</u>

प्रचेताओं के यज्ञ में नारद जी ने ध्रुव चरित का गान किया था। इसे सुनकर विदुर जी की जिज्ञासा प्रचेताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने की हुई। मैत्रेय जी ने प्रारम्भ से ही ध्रुव जी के वंश की कथा कहनी शुरु की। इसी क्रम में मैत्रेय मुनि ने कहा कि ध्रुव जी अपने पुत्र उत्कल को राज्यभार दे कर महल का त्याग कर दिये थे। उत्कल भी भगवद्भक्ति में लीन रहते थे।

अव्यवछिन्न-योगाग्नि-दग्ध-कर्ममलाशयः।
स्वरूपम्-अवरुन्धानो न-आत्मनो-अन्यं तदा-ऐक्षत।4।13।9।।

भक्तियोग की अग्नि में समस्त भौतिक कामनाओं को भस्मीभूत कर उत्कल सदैव आत्मसाक्षात्कार की स्थिति में रहते थे। "ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्ति लभते पराम्।।गी. 18।54।।" उत्कल के स्थान पर उसके छोटे भाई वत्सर को राजा बनाया गया। इसी के वंश में राजा अंग हुए जिनका पुत्र वेन बहुत दुराचारी निकला।

कद्-अपत्यम् वरं मन्ये सत्-अपत्यात्-शुचां पदात्।
निर्विद्येत गृहात्-मर्त्यः यत्-क्लेश-निवहा गृहाः।। 4।13।46।।

अंग ने सोंचा कि सुपुत्र से घर में आसक्ति होती है परन्तु कुपुत्र उससे अच्छा है जो घर से वैराग्य उत्पन्न कर देता है। फलत: अंग राजपाट छोड़ जंगल चले गये। वेन भगवान्के नाम यज्ञादि में विश्वास न करके अपने को ही सर्वे सर्वा समझता था क्योंकि सभी देवता एक राजा के शरीर में बसते हैं, ऐसी उसकी दृढ़ धारणा थी। यज्ञादि कर्म बन्द करा दिया। वेन के दुराचार से ऊब कर ऋषियों ने उसे शाप दे दिया और उनलोगों के हुँकार से उसकी मृत्यु हो गयी। राजा के अभाव में सर्वत्र अराजकता की स्थिति होने पर ऋषियों ने वेन की जांघ का मंथन किया जिससे उसका पाप मूर्तमान होकर निषाद नाम से प्रकट हुआ जो जंगलों में रहकर लूट-मार में प्रवृत हुआ।

अथ तस्य पुन: विप्रै: अपुत्रस्य महीपते:।
बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्यत। ।4।15।1। ।
एष विष्णोर्भगवत: कला भुवनपालिनी।
इयं च लक्ष्म्या: सम्भूति: पुरुषस्य-अनपायिनी। ।4।15।3। ।
अयं तु प्रथमो राज्ञां पुमान्-प्रथयिता यश:।
पृथुर्नाम महाराजो भविष्यति पृथुश्रवा:। । 4।15।4। ।
इयं च सुदती देवी गुणभूषणभूषणा।
अर्चिर्नाम वरारोहा पृथुमेव-अवरुन्धती। ।4।15।5। ।
एष साक्षात्-हरेरंशो जातो लोक-रिरक्षया।
इयं च तत्परा हि श्री: अनुजज्ञे-अनपायिनी। । 4।15।6। ।

वेन की भुजाओं का मंथन किया जिससे एक जोड़ी नर-नारी प्रकट हुए। नररूप में भगवान्विष्णु के अंश से पराक्रमी पृथु जी प्रकट हुए। भगवान की निरन्तर सहचरी लक्ष्मी जी के अंश से अर्चि नामकी नारी प्रकट हुई जो पृथु जी की पत्नी थी। ब्राह्मणों ने पृथु जी की स्तुति की। स्वर्ग में अप्सरायें नाचने लगी तथा गन्धर्व गायन करने लगे। दुन्दुभी आदि मंगल वाद्य बजने लगे।

ब्रह्मा जगद्गुरु: देवै: सहासृत्य सुरेश्वरै:।
वैन्यस्य दक्षिणे हस्ते दृष्ट्वा चिह्नं गदाभृत:। ।4।15।9। ।
पादयोररविन्दं च तं वै मेने हरे: कलाम्।
यस्याप्रतिहतं चक्रम्-अंश: स परमेष्ठिन:। । 4।15।10। ।
वरुण: सलिल-स्रावम्-आतपत्रं शशिप्रभम्। ।4।15।14। ।

ब्रह्मा जी अन्य देवताओं के साथ पधारे। वे पृथु जी के दाहिने हाथ की हथेली तथा चरण के तलवों में कमल के चिह्न देख समझ गये कि पृथु जी भगवान् विष्णु के अंशावतार हैं। चक्रादि चिह्न भी भगवान्के अंश के द्योत्तक हैं। सबों ने मिलकर पृथु जी का राज्याभिषेक किया। दम्पति को सुन्दर वस्त्र एवं भूषणादि से सुसज्जित किया गया। उपहार में कुबेर ने स्वर्णिम सिंहासन, वरुण ने शीतल जल की फुहारें वर्षाते चन्द्रमा के समान श्वेत छत्र, वायु ने दो चँवर, धर्म ने पुष्पहार, इन्द्र ने मुकुट, यमराज ने राजदण्ड, ब्रह्मा ने कवच, ब्रह्मा की पत्नी भारती ने दिव्य हार, भगवान्विष्णु ने चक्र, लक्ष्मी ने ऐश्वर्य, शिव ने दस चन्द्रमाओं से अंकित म्यान में तलवार, दुर्गा ने चन्द्रमाओं से

अंकित ढ़ाल, चन्द्रमा ने घोड़ा, विश्वकर्मा ने रथ, अग्निदेव ने धनुष, सूर्य ने बाण, भूर्लोक के प्रमुख देव ने चरण-पादुका, आकाश के देवगणों ने पुष्पमाला, गगनाचारी देवों ने वाद्ययंत्र तथा इच्छानुसार अदृश्य होने की कला, ऋषियों ने आशीर्वाद, सागर ने शंख तथा समुद्र, पर्वत एवं नदियों ने उनके रथ के लिए अवाध मार्ग प्रशस्त किये। सबों के उपहार से उपकृत पृथु जी ने बन्दी एवं सूतगणों को अपनी स्तुति करने से मना किया क्योंकि उनके द्वारा उल्लेख किये जाने वाले गुण अभी पृथु जी में है नहीं।

प्रभवो ह्यात्मन: स्तोत्रं जुगुप्सन्त्यपि विश्रुता:।

ह्रीमन्त: परमोदारा: पौरुषं वा विगर्हितम्।।4।15।25।।

नालं वयं ते महिमानुवर्णने यो देववर्योऽवतार मायया।

वेनाङ्गजातस्य च पौरुषाणि ते वाच: पतीनाम्-अपि बभ्रमु: धिय:।।4।16।2।।

कोई सम्मानित व्यक्ति निन्दनीय कार्यों के विषयों में सुनना पसन्द नहीं करता उसी तरह प्रसिद्ध एवं पराक्रमी मनुष्य अपनी प्रशंसा सुनना नहीं चाहता। पृथु जी से गायकों ने विनम्रता से कहा कि आप देवों में सबसे श्रेष्ठ भगवान्विष्णु की अहैतुकी कृपा से उनके साक्षात अवतार हैं। यद्यपि आप वेन की देह से प्रकट हुए परन्तु आपकी महिमा के गायन में ब्रह्मा एवं देवों के श्रेष्ठ वक्ता और वाचक भी सक्षम नहीं हैं तब हमलोग कहाँ से आपके गुणों का गान कर सकते हैं।

दृढ़व्रत: सत्यसन्धो ब्रह्मण्यो वृद्धसेवक:।

शरण्य: सर्वभूतानां मानदो दीनवत्सल:।।4।16।16।।

आप सत्यनिष्ठ एवं दृढ़संकल्प होंगे। वैदिक संस्कृति के संरक्षक, वयवृद्धों की सेवा करने वाले, शरणागतों को आश्रय देने वाले, सबके सम्मान करनेवाले तथा दीन-दुखियों तथा अवोधों पर दयावान रहेंगे।

अयं महीं गां दुदुहेऽधिराज: प्रजापति: वृत्तिकर: प्रजानाम्।

यो लीलया-अद्रीन्- स्वशराश-कोट्या भिदन्समां गाम्-अकरोत्-यथा-इन्द्र:।।4।16।22।।

प्रजापालन में आप अद्वितीय होंगे तथा प्रजा के लिए गौ रूपी पृथ्वी को दुहेंगे। जैसे इन्द्र अपने वज्र से पहाड़ों को तोड़ते हैं वैसे ही आप बाण की नोक से पहाड़ों को तोड़ पृथ्वी को समतल बनायेंगे। सरस्वती तट पर आप एक सौ अश्वमेध यज्ञ करेंगे तथा आपके अंतिम यज्ञ में इन्द्र ईर्ष्यावश यज्ञ का घोड़ा चुरायेगा। आपको सनकादि मुनि उपदेश देंगे। विदुर जी मैत्रेय मुनि से पूछते हैं -

यच्चान्यदपि कृष्णस्य भवान् भगवत: प्रभो:।

श्रव: सुश्रवस: पुण्यं पूर्वदेह-कथाश्रयम्।।4।17।6।।

भक्ताय मेऽनुरक्ताय तव चाधोक्षजस्य च।

वक्तुमर्हसि यो-अदुह्यत्-वैन्य-रूपेण गाम्-इमाम्।।4।17।7।।

भगवान् की कथा मनमोहक एवं कल्याणप्रद है।पृथु जी भगवान्कृष्ण के अंश से थे। मैं भी आपका तथा अधोक्षज भगवान्का सेवक हूँ। वेन के पुत्र पृथु जी की समस्त कथायें हमें सुनायें। पृथ्वी गाय क्यों बनी तथा उनके दुहने के लिए बछड़े तथा पात्र कैसा था। पृथ्वी के सतह को समतल क्यों किया गया तथा इन्द्र ने घोड़ा क्यों चुराया। मैत्रेय मुनि कहते हैं कि जब पृथु जी राजा बने उस समय अन्न का अत्यन्त अभाव था। प्रजा से वास्तविक स्थिति समझ

कर राजा ने पृथ्वी को लक्ष्य बनाकर बाण संधान करना चाहा। पृथ्वी भय से काँपती गाय का रूप धारण कर भागने लगी। पृथ्वी उनकी अनेकों महिमा का गुणगान करने लगी।

स वै भवानात्म-विनिर्मितं जगद् भूतेन्द्रियान्त: करणात्मकं विभो।

संस्थापयिष्यत्-अज मां रसातलात्-अभ्युज्जहार-अम्भस आदिसूकर:।। 4।17।34।।

अजन्मा भगवान् आपने मुझे एकबार रसातल के जल से आदि-वराह बनकर बाहर निकाला था।

नूनं जनै: ईहितम्-ईश्वराणाम्-अस्मत्-विधै: तत्-गुण-सर्गमायया।

न ज्ञायते मोहित-चित्त-वर्त्मभि: तेभ्यो नमो वीरयश: करेभ्य:।।4।17।36।।

आपको नमस्कार है। आपके मत्स्यादि अनेकों अवतार हैं। त्रिगुणात्मक माया से भ्रमित होकर आपके भक्तों के कार्य कलाप तो समझ ही नहीं पाती हूँ तब आपकी लीला को क्या समझूँ।

पुरा सृष्टा ह्योषधयो ब्रह्मणा या विशाम्पते।

भुज्यमाना मया दृष्टा असद्भि: अधृतव्रतै:।।4।18।6।।

पूर्व में ब्रह्मा द्वारा यज्ञ हेतु रचित अन्न-औषधि आदि यज्ञ में न लगाकर अधर्मी लोग इससे मात्र इन्द्रियतृप्ति कर रहे हैं। फलस्वरूप उनको हमने छिपा लिया है। आप शास्त्रीय विधि से आचार्यों के मार्ग का अनुसरण कर उन्हें निकालने का प्रयास करें। इसके लिए यथायोग्य बछड़ा, दुहनेवाला तथा पात्र की व्यवस्था करें।

इति प्रियं हितं वाक्यं भुव आदाय भूपति:।

वत्सं कृत्वा मनुं पाणौ अदुहत्-सकलौषधी:।। 4।18।12।।

पृथ्वी के प्रिय वचन को सुन राजा ने स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बनाकर अपनी अंजुली में औषधि तथा अन्नादि का दोहन किया। ऋषियों ने बृहस्पति को बछड़ा बनाकर इन्द्रियों को पात्र बना वैदिक ज्ञान को दुहा। इन्द्र को बछड़ा बनाकर देवताओं ने सोमरस अर्थात्अमृत दुहा। दैत्य माता दिति के पुत्रों ने प्रह्लाद जी को बछड़ा बनाकर आयुर्वेदिक औषधि सुरा तथा आसव के ज्ञान को दुह कर लोहे के पात्र में रखा। गन्धर्वों ने कमल फूल के पात्र में विश्वावसु को बछड़ा बनाकर मधुर संगीत-कला तथा सुन्दरता दुहा। पितृलोक के निवासियों ने अर्यमा को बछड़ा बनाकर मिट्टी के पात्र में पिण्ड की सामग्री दुहा। कपिल मुनि को बछड़ा बनाकर सिद्धों ने आकाश को पात्र बनाकर गगनाचारी की कला प्राप्त की। किम्पुरुषों ने मय दानव को बछड़ा बनाकर ओझल होने की योगशक्ति प्राप्त की।तक्षक को बछड़ा बनाकर सर्पों तथा नागों एवं अन्य विषैले जीवों ने विष दुहा। गायों एवं चौपायों पशुओं ने नन्दी को बछड़ा बनाकर जंगल के पात्र में ताजी हरी घास पाया। पक्षियों ने गरुड़ को बछड़ा बनाकर चर कीटगण तथा अचर घास एवं पौधे दुहा। वृक्षों ने वरगद को बछड़ा बनाकर सुस्वादु रस दुहे। पर्वतों को हिमालय रूपी बछड़े से शिखरों के पात्र में धातुयें मिली।

एवं पृथ्वादय: पृथ्वीमन्नादा: स्वन्नमात्मन:।

दोह-वत्सादि-भेदेन क्षीरभेदं कुरु-उद्वह।।4।18।27।।

ततो महीपति: प्रीत: सवेकामदुधां पृथु:।

दुहितृत्वे चकारेमां प्रेम्णा दुहितृवत्सल:।। 4।18।28।।

हे कुरुश्रेष्ठ विदुर जी ! समस्त चर-अचर के लिए दूध के प्रतीकरूप में पृथ्वी ने राजा को यथायोग्य भोजनादि तथा जीवन सहायक वस्तुयें प्रदान की। राजा ने अपनी पुत्री की तरह पृथ्वी को स्नेह दिया। इसी प्रकार राजा ने विधिवत योजना के अन्तर्गत अनेक प्रकार के गाँवों तथा नगरों की स्थापना की।

अथादीक्षत राजा तु हयमेधशतेन सः।
ब्रह्मावर्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती।। 4।19।1।।

ब्रह्मावर्त क्षेत्र में राजा पृथु ने पूर्वमुखी सरस्वती के किनारे सौ अश्वमेध यज्ञ का शुभारम्भ किया।

यत्र यज्ञपतिः साक्षात्-भगवान्-हरिः ईश्वरः।
अन्वभूयत सर्वात्मा सर्वलोकगुरुः प्रभुः।।4।19।3।।
कपिलो नारदो दत्तो योगेशः सनकादयः।
तम्-अन्वीयुः भागवता ये च तत्सेवन-उत्सुकाः।।4।19।6।।
इति च-अधोक्षज-ईशस्य पृथोस्तु परमोदयम्।
असूयन् भगवान्-इन्द्रः प्रतिघातम्-अचीकरत्।।4।19।10।।

सबके हृदय में बसने वाले भगवान् विष्णु ही यज्ञभोक्ता हैं।राजा के यज्ञ में भगवान्स्वयं प्रकट हुए। उनके साथ ब्रह्मादि देवगण, गन्धर्व, नारद तथा सनकादि भी आये।पृथ्वी कामधेनु बनकर यज्ञ की सारी आवश्यकताओं को उपलब्ध करायी। भगवान्अधोक्षज पर आश्रित राजा के यज्ञ में इन्द्र ने विघ्न डालने का प्रयास किया। राजा के अन्तिम यज्ञ में इन्द्र ने एक संन्यासी के छद्म वेष में यज्ञ का घोड़ा चुरा लिया। अत्रि मुनि ने देखा और समझ गये कि यह इन्द्र है। राजा के पुत्र को जब अत्रि मुनि ने बताया तब वह इन्द्र को मारने के लिए दौड़े। संन्यासी का वेष देख राजा पृथु के पुत्र ने बाण नहीं छोड़ा। पीछा करते देख इन्द्र ने घोड़ा छोड़ दिया और राजा के पुत्र ने घोड़ा यज्ञस्थल पर ला दिया। इन्द्र ने इस घटना में पाषण्ड संन्यास का सूत्रपात किया था। पृथु जी को पाषण्ड के लिए इन्द्र पर क्रोध हुआ। उनके ऋत्विकों ने वैदिक मन्त्र से इन्द्र को हवन कुण्ड में खीच कर लाने को हवन करना ही चाहा कि ब्रह्मा ने प्रकट होकर बीच-बचाव कर दिया। ब्रह्मा ने पृथु जी को निन्यानव्वे यज्ञ पर ही रोक दिया और कहा कि आप मोक्ष मार्ग से अवगत हैं इसलिए आपको अब आगे यज्ञ की आवश्यकता नहीं है। राजा ब्रह्मा की बात मान गये।

भगवानपि वैकुण्ठः साकं मघवता विभुः।
यज्ञैः यज्ञपतिः तुष्टो यज्ञभुक्-तम्-अभाषत।।4।20।1।।
एष ते-अकार्षीत्-भङ्गं हयमेधशतस्य ह।
क्षमापयत आत्मानम्-अमुष्य क्षन्तुम्-अर्हसि।। 4।20।2।।
श्रेयः प्रजापालनमेव राज्ञो यत्सम्पराये सुकृतात्-षष्ठम्-अंशम्।
हर्तान्यथा हृतपुण्यः प्रजानामरक्षिता करहारो-अगम्-अत्ति।। 4।20।14।।

यज्ञ से प्रसन्न होकर यज्ञपति भगवान् स्वयं इन्द्र को साथ लेकर राजा के यज्ञस्थल पर पधारे। भगवान्ने कहा कि सौवें यज्ञ में विघ्न डालनेवाला इन्द्र आपसे क्षमा माँगने आया है। आप इसे क्षमा कर दें। प्रजापालन राजाका धर्म

है और प्रजा के पुण्य का राजा को छठा भाग मिल जाता है। प्रजापालन में पिछड़ने पर राजा पाप का भागी बनता है। प्रजापालन का काम अनासक्त भाव से करते रहो। सनकादिकों का आपको शीघ्र ही दर्शन होगा।

वरं च मत् कञ्चन मानवेन्द्र वृणीष्व तेऽहं गुणशीलयन्त्रितः।

नाहं मखैर्वै सुलभः तपोभिः योगेन वा यत्-समचित्त-वर्ती।।4।20।16।।

केवल यज्ञ, तपस्या एवं योग से मेरी कृपा नहीं मिलती है। समस्त परिस्थितियों में समभाव बनाये रखना होगा। आपके शील एवं गुण से मैं प्रभावित हूँ। आप मनचाहा वर माँग सकते हैं।

स्पृशन्तं पादयोः प्रेम्णा व्रीडितं स्वेन कर्मणा।

शतक्रतुं परिष्वज्य विद्वेषं विससर्ज ह।। 4।20।18।।

इन्द्र राजा के चरणों पर गिर पड़ा। राजा ने उठाकर हृदय से लगा लिया तथा यज्ञ में उत्पन्न विघ्न के कारण उनके प्रति अपने मनोमालिन्य को त्याग दिया।

भगवानथ विश्वात्मा पृथुना-उपहृत-अर्हणः।

समुज्जिहानया भक्त्या गृहीत-चरणाम्बुजः।।4।20।19।।

प्रस्थानाभिमुखो-अप्येनम्-अनुग्रह-विलम्बितः।

पश्यन् पद्मपलाशाक्षो न प्रतस्थे सुहृत्सताम्।।4।20।20।।

स आदिराजो रचिताञ्जलिः हरिं विलोकतुं न-अशकत्-अश्रुलोचनः।

न किञ्चनोवाच स बाष्पविक्लवो हृदा-उपगुह्य-अमुम्-अधात्-अवस्थितः।। 4।20।21।।

अथ-अवमृज्य-अश्रुकला विलोकयन्-न-तृप्तदृग्गोचरमाह पूरुषम्।

पदा स्पृशन्तं क्षितिमंस उन्नते विन्यस्त-हस्ताग्रम्-उरङ्ग-विद्विषः।। 4।20।22।।

भगवान् के चरणकमल की पूजा से राजा अतिआनन्दित हुए। कमल की पंखुड़ियों के समान नेत्रवाले भगवान् राजा की भक्ति के वशीभूत हो जाते-जाते रुक गये। नेत्रों के अश्रु से देखने तथा अवरुद्ध कण्ठ से बोलने में असमर्थ राजा भगवान्‌को अपने हृदय में आलिंगन की भावना करते हुए हाथ जोड़कर खड़े रहे। धरती को छूते भगवान्‌का चरणारविन्द तथा हाथ का अगला भाग गरूड़ के कन्धे पर था। राजा पृथु आँसू के कारण भगवान् को ठीक से नहीं देख पा रहे थे परन्तु उनका मन भगवान्‌के दर्शन से तृप्त नहीं हो रहा था।

वरान्विभो त्वत्-वरद-ईश्वराद्बुधः कथं वृणीते गुण-विक्रिया-आत्मनाम्।

ये नरकाणामपि सन्ति देहिनां तनीश कैवल्यपते वृणे न च।। 4।20।23।।

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचित्-न यत्र युष्मत्-चरणाम्बुज-आसवः।

महत्तम-अन्तः-हृदयात्-मुखच्युतो विधत्स्व कर्ण-अयुतम्-एष मे वरः।। 4।20।24।।

राजा भगवान्‌की स्तुति करने लगे। आप कैवल्य देने वाले हैं तथा सभी वरदेने वालों में सर्वश्रेष्ठ हैं। त्रिगुणमय संसार के विषयभोग तो नरकगामी भी करता है। भक्त ऐसा वर क्यों माँगेगा ! मुझे कैवल्य भी न चाहिए। हे प्रभु ! मुझे आपके भक्तों के हृदय के अन्तस्थल से निकली आपके चरणाम्बुज की महिमा गान करने वाली अमृत-कथा सुनने के लिए दस लाख कान प्रदान करें।

स उत्तमश्लोक महत्-मुखच्युतो भवत्-पदाम्भोज-सुधाकण-अनिल:।
स्मृतिं पुनर्विस्मृत-तत्त्ववर्त्मनां कुयोगिनां नो वितरति-अलं वरै:। ।4।20।25। ।
यश: शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे यदृच्छया चोपश्रृणोति ते सकृत्।
कथं गुणज्ञो विरमेत्-विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुण-सङ्ग्रह-इच्छया। । 4।20।26। ।

महापुरुषों के मुख की वाणी से आपके चरणाम्बुज के मकरन्द से सुवासित वायु प्रथ-भ्रमित योगियों को सन्मार्ग पर ला देती है।हमें उनकी संगिति के अतिरिक्त अन्य कोई वर नहीं चाहिए। मंगल कीर्तिवाले प्रभु के भक्तों की संगति में एकबार भी आपकी कीर्ति-कथा को सुनने वाला सत्संग नहीं छोड़ता। पशु-बुद्धि वाले ही संगति छोड़ते हैं। लक्ष्मी जी आपके अनन्तगुणवाली महिमा को सुनने हेतु सदा उत्सुक रहती हैं।

अथा-आभजे त्वा-अखिलपूरुषोत्तमं गुणालयं पद्मकरा-इव लालस:।
अपि-आवयो: एकपति-स्पृधो: कलि: न स्यात्कृत-त्वत्-चरण-एकतानयो:। ।4।20।27। ।
जगज्जनन्यां जगदीश वैशसं स्यादेव यत्कर्मणि न: समीहितम्।
करोषि फल्गु-अपि-उरु दीनवत्सल: स्व एव धिष्णये-अभिरतस्य किं तया। ।4।20।28। ।

जगतमाता लक्ष्मीजी सदा आपके चरणारविन्द की सेवा में लगी रहती हैं। आपके चरणों की सेवा में मेरे लगने से हो सकता है अपनी सेवा-क्षेत्र में हस्तक्षेप समझ मुझपर क्रोध करें।विश्वास है कि आप दीनवत्सल हैं और हमारा ही पक्ष लेकर चरणकमल की सेवा में मुझे लगे रहने देंगे।

भजन्त्यथ त्वाम्-अत: एव साधवो व्युदस्त-माया-गुण-विभ्रम-उदयम्।
भवत्-पदानुस्मरणात्-ऋते सतां निमित्तमन्यत्-भगवन्-न विद्महे। । 4।20।29। ।
मन्ये गिरं ते जगतां विमोहिनीं वरं वृणीष्वेति भजन्तमात्थ यत्।
वाचा नु तन्त्या यदि ते जनोऽसित: कथं पुन: कर्म करोति मोहित:। । 4।20।30। ।

आपकी भक्ति से ही संतजन संसार की माया से मुक्त होने का प्रयास करते हैं। आपके चरणारविन्द ही संतों के एकमात्र आश्रय हैं। वेद की सकाम कर्म वाली वाणी अत्यन्त मोह में डालने वाली है।

त्वत्-मायया-अद्धा जन ईश खण्डितो यदन्यत्-आशास्त ऋतात्मनोऽबुध:।
यथा चरेत्-बालहितं पिता स्वयं तथा त्वमेव-अर्हसि न: समीहितुम्। ।4।20।31। ।

जैसे पिता स्वयं पुत्र के कल्याण के लिए चिन्तित रहता है उसीतरह आप भी स्वयं मेरे कल्याण के लिए जो अनुकूल हो वह करें। सांसारिक कामना-पूर्ति का कोई वर मुझे न दें। ऐसा सुनकर भगवान् ने राजा को अपनी शुद्ध भक्ति में रत रहने का वरदान दिया। राजा को प्रजापालन-कार्य में लगे रहने की प्रेरणा दी तथा सदा उनकी मंगल कामना का आशीर्वाद देकर वहाँ से प्रस्थान का निश्चय किया। यज्ञस्थल पर समागत ऋषिगणों, भगवान्के दिव्यपार्षदों तथा पितरों आदि का यथोचित सम्मान करते हुए राजा ने सबकी विदाई की।

भगवानपि राजर्षे: सोपाध्यायस्य चाच्युत:।
हरन्-इव मनोऽमुष्य स्वधाम प्रत्यपद्यत। ।4।20।37। ।
अदृष्टाय नमस्कृत्य नृप: सन्दर्शित-आत्मने।

अव्यक्ताय च देवानां देवाय स्वपुरं ययौ। ।4।20।38। ।

राजा तथा उनके पुरोहितों के मन को चुराते हुए भगवान् अपने स्वधाम लौट गये। भगवान् साधारणतया दिखने वाले नहीं हैं परन्तु पृथु जी को उन्होंने साक्षात् दर्शन दिया। भगवान् को सादर नमस्कार कर राजा पृथु भी अपने घर को लौट आये। नगर लौटने पर प्रजा ने उनका अत्यन्त भावपूर्ण अभिनन्दन किया। राजा पृथु ने आदर्श तथा उदार शासन प्रणाली की स्थापना की। सभी लोकों में उनके चरण-चिह्णों पर चलकर राजालोग शासन व्यवस्था करते हैं।

गङ्गा-यमुनयोः नद्योः अन्तरा क्षेत्रम्-आवसन्।

आरब्धानेव बुभुजे भोगान्-पुण्य-जिहासया। ।4।21।11। ।

गंगा एवं यमुना नदी के बीच वाले क्षेत्र में राजा पृथु की राजधानी थी। वे परम ऐश्वर्यशाली थे और लगता है पूर्व के पुण्य के फल को कम करने के लिए ही वे संसार में सम्पत्ति का भोग करने आये थे। वे चक्रवर्ती नरेश थे तथा पृथ्वी के सातों द्वीपों के एकछत्र अधिपति थे। एक बार उन्होंने एक अतिशय श्रेष्ठ यज्ञ करने की दीक्षा ली। उसमें सभी ऋषिगण तथा देवगण आदि उपस्थित हुए। सबको सम्बोधित कर राजा ने कहा कि मुझे जो प्रजापालन का उत्तरदायित्व भगवान्ने दिया है उसके निर्वाह में समस्त प्रजावर्ग को उचित मार्गदर्शन करना मेरा परम कर्त्तव्य है। कर वसूलना मात्र ही राजा का काम नहीं है क्योंकि इससे राजा का ऐश्वर्य घटने लगता है।

कुरुत-अधोक्षजः धियः तर्हि मेऽनुग्रहः कृतः।4।21।25। ।

यूयं तदनुमोदध्वं पितृ-देव-ऋषयोऽमलाः।

कर्तुः शास्तुः अनुज्ञातुः तुल्यं यत्प्रेत्य तत्फलम्। ।4।21।26। ।

राजा ने आगे कहा कि इन्द्रियातीत भगवान् का निरन्तर चिन्तन करते रहना है। समस्त समागत सन्तों, पितरों तथा देवों आदि से अपने प्रस्ताव के अनुमोदन की आकांक्षा से उन्होंने कहा कि मृत्यु के बाद किसी कर्म का फल उसके कर्ता, आदेशकर्ता तथा समर्थक द्वारा समान रूप से भोगना पड़ता है।

मनोरुत्तानपादस्य ध्रुवस्यापि महीपतेः।

प्रियव्रतस्य राजर्षे-अङ्गस्य-अस्मत्-पितुः पितुः। ।4।21।28। ।

ईदृशानाम्-अथ-अन्येषाम्-अजस्य च भवस्य च।

प्रह्लादस्य बलेश्चापि कृत्यमस्ति गदाभृता। ।4।21।29। ।

मनु, उत्तानपाद, ध्रुव, प्रियव्रत, मेरे पिता के पिता अंग, प्रह्लाद तथा बलि जैसे महान लोगों से भी यही सीख मिलती है कि गदाधारी भगवान्ही सबके कल्याण करने वाले हैं।

यत्पाद-सेवाभिरुचिः तपस्विनाम्-अशेष-जन्म-उपचितं मलं धियः।

सद्यः क्षिणाति-अन्वहम्-एधती सती यथा पदाङ्गुष्ठ-विनिःसृता सरित्। ।4।21।31। ।

विनिर्धुत-अशेष-मनोमलः पुमान्-असङ्ग-विज्ञान-विशेष-वीर्यवान्।

यत्-अङ्घ्रिमूले कृतकेतनः पुनः न संसृतिं क्लेशवहां प्रपद्यते। ।4।21।32। ।

जैसे भगवान् के चरणकमल के अंगूठे से निकली गंगा सब को पवित्र करती हैं उसी तरह भगवान्के चरणाविन्द की सेवा की अभिरुचि से जन्म-जन्मान्तर के पाप धोये जा सकते हैं। भगवद् भक्ति से वैराग्य प्रकट होता है और संसार

ताप से मुक्ति मिलती है। अपने मन, वचन, देह तथा कर्म सहित सदा भगवान्‌की भक्ति करनी चाहिए। भगवान् की दिव्यता भौतिक जगत की कलुषता से दूषित नहीं होती। वे जीव के कल्याणार्थ अनेकों भौतिक तत्त्वों, अनुष्ठानों तथा मन्त्रों द्वारा यज्ञों को स्वीकार करते हैं।

प्रधान-कालाशय-धर्मसङ्ग्रहे शरीर एष प्रतिपद्य चेतनाम्।

क्रियाफलत्वेन विभुः विभाव्यते यथानलो दारुषु तद्गुणात्मकः।। 4।21।35।।

सर्वव्यापी होते हुए भी भगवान् समय एवं प्रकृति से उत्पन्न विभिन्न प्रकार के शरीरों में भी प्रकट होते हैं जैसे विभिन्न आकार-प्रकार वाले लकड़ियों में एक ही अग्नि विभिन्न रूपों में प्रकट होती है।

अहो मम-अमी वितरन्ति-आनुग्रहं हरिं गुरुं यज्ञभुजाम्-अधीश्वरम्।

स्वधर्मयोगेन यजन्ति मामका निरन्तरं क्षोणितले दृढ़व्रताः।। 4।21।36।।

राजा पृथु ने कहा कि भगवान् ही सब यज्ञों के फल के अधिकारी हैं और सबों के गुरु भी हैं। वे सभी लोग जो भगवान्‌की पूजा कर रहे हैं उन सबों के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ।

ब्रह्मण्यदेवः पुरुषः पुरातनो नित्यं हरिः यत्-चरण-अभिवन्दनात्।

अवाप लक्ष्मीम्-अनपायिनीं यशो जगत्पवित्रं च महत्तमाग्रणीः।।4।21।38।।

पुमान्-लभेत-अनतिवेलम्-आत्मनः प्रसीदतो-अत्यन्तशमं स्वतः स्वयम्।

यत्-नित्यसम्बन्ध-निषेवया ततः परं किमत्रास्ति मुखं हविर्भुजाम्।।4।21।40।।

अश्नाति-अनन्तः खलु तत्त्वकोविदैः श्रद्धाहुतं यन्मुख इज्यनामभिः।

न वै तथा चेतनया बहिष्कृते हुताशने पारमहंस्य-पर्यगुः।।4।21।41।।

तेषामहं पादसरोजरेणुं-आर्याः वहेय-अधि-किरीटं-आयुः।

यं नित्यदा विभ्रत आशु पापं नश्यति-अमुं सर्वगुणा भजन्ति।।4।21।43।।

सन्त श्रीवैष्णवों के चरणकमल समस्त विश्व को पवित्र करते हैं। पुरातन पुरुष भगवान् अपना शाश्वत ऐश्वर्य श्रीवैष्णवों के चरणों की भक्ति से ही प्राप्त किये हैं। जो देवगण यज्ञादि से प्रसन्न रहते हैं वे भी श्रीवैष्णवों की सेवा से प्रसन्न रहते हैं। श्रीवैष्णवों की नित्य एवं नियमित सेवा से मन निर्मल होकर संसार की आसक्ति से मुक्त हो जाता है। भगवान् अग्नि में अर्पित हवि से ज्यादा अभिरुचि सन्तों एवं श्रीवैष्णव भक्तों के मुख से प्राप्त होने वाले भोगों में रखते हैं। मैत्रेय मुनि ने कहा कि पृथु जी के पुण्य से पापी वेन का कल्याण हुआ। इसी तरह प्रह्लाद जी के कारण हिरण्यकशिपु को भी अपने पापकर्मो से निवृत्ति मिली थी। प्रजा ने राजा से ऐसा सुनकर उनकी स्तुति करते हुए कहा कि आपने हमारी आँखें खोल दी तथा इस घोर संसार को पार करने का उचित मार्ग वताया। प्रजा ने पृथु जी को नमस्कार करते हुए कहा कि -

नमो विवृद्धसत्त्वाय पुरुषाय महीयसे।

यो ब्रह्म क्षत्रमाविश्य बिभर्तीदं स्वतेजसा।।4।21।52।।

राजा को शुद्ध सत्त्व भगवान्‌के साक्षात् सक्षम प्रतिनिधि बताते हुए प्रजा ने उनको नमस्कार है। प्रजा के रक्षणार्थ एवं श्रीवैष्णव परम्परा के पुर्नस्थापन हेतु ही आपने क्षात्र धर्म स्वीकार किया है।

जनेषु प्रगृणत्स्वेवं पृथुं पृथुलविक्रमम्।
तत्रोपजग्मु: मुनय: चत्वार: सूर्यवर्चस:। ।**4।22।1**। ।
अधना अपि ते धन्या: साधवो गृहमेधिन:।
यद्गृहा हि-अर्हवर्य-अम्बुतृण-भूमीश्वर-अवरा:। ।**4।22।10**। ।

प्रजा जब इस तरह से राजा पृथु की स्तुति कर रहे थे तब सूर्य के समान तेजस्वी चारो सनकादिक वहाँ पधारे। शिव जी के बड़े भाईयों का राजा ने पूजा कर निवेदन किया कि मेरे पुण्य के उदय होने से आपका आगमन हुआ है। जिसपर सन्त प्रसन्न होते हैं उसपर भगवान्‌विष्णु भी प्रसन्न रहते हैं। निर्धन गृहस्थ भी अपने सहायकों एवं कुटुम्बों के साथ सन्तों के आगमन पर उनकी सेवासे धन्य-धन्य हाते हैं तथा उनका घर पवित्र हो जाता है।सम्पति से सम्पन्न रहने पर भी जिस घर में साधुओं का सम्मान नहीं होता वह घर विषैले सर्प से भरे वृक्ष के समान है।

तदहं कृतविश्रम्भ: सुहृदो वस्तपस्विनाम्।
सम्पृच्छे भव एतस्मिन्क्षेम: केनाञ्जसा भवेत्। ।**4।22।15**। ।

राजा ने पूछा कि संसार के ताप से कैसे जल्दी से जल्दी छुटकारा पाया जा सकता है क्योंकि आप जिज्ञासुओं के एकमात्र उपकारी हैं। लोकहित में राजा का प्रशन सुन मुनि ने राजा की प्रशंसा की।

सङ्गम: खलु साधूनाम्-उभयेषां च सम्मत:।
यत्सम्भाषण-सम्प्रश्न: सर्वेषां वितनोति शम्। ।**4।22।19**। ।
सश्रद्धया भगवत्-धर्म-चर्यया जिज्ञासया-आध्यात्मिक योगनिष्ठया।
योगश्वर-उपासनया च नित्यं पुण्यश्रव: कथया पुण्यया। । **4।22।22**। ।
अहिंसया पारमहंस्य-चर्यया स्मृत्या मुकुन्द-आचरित-अछय-सीधुना।
यमै: अकामै: नियमै: च-अपि-अनिन्दया निरीहया द्वन्द्व-तितिक्षया। । **4।22।24**। ।
हरे: मुहु: तत्परकर्णपूर-गुणाभिधानेन विजृम्भमाणया।
भक्त्या ह्यसङ्ग: सदसत्यनात्मनि स्यान्निर्गुणे ब्रह्मणि चाञ्जसा रति:। । **4।22।25**। ।

भक्तों के समागम में जो वार्ता होती है वह सदा लोकहित हेतु ही होती है। भगवान्‌की लीलाकथा के श्रवण से भगवान्‌में भक्ति एवं उपासना में दृढ़ता होती है। यम-नियमादि का पालन करते हुए अहिंसा, गुरु एवं आचार्यो में श्रद्धा, भगवान्‌की अमृत कथाओं का सदैव स्मरण करते हुए किसी की निन्दा से तथा भगवत्‌विरोधियों से दूर रहे।भगवान्‌के लीलागुणों का श्रवण ही कान के आभूषण हैं। इसी से भगवान्‌में प्रेम स्थायी होता है। गुरु कृपा से भगवान् में प्रेमासक्ति बढ़ती है और ज्ञान तथा वैराग्य के उदय होने से सांसारिक कामना ऐसी जल जाती है जैसी लकड़ी की आग लकड़ी को भस्म करती है। धन एवं इन्द्रियतृप्ति की चिन्ता से मनुष्य वृक्ष तथा पत्थरादि जड़ योनि में जन्म लेता है।

यत्पादपङ्कज-पलाश-विलासभक्त्या कर्माशयं ग्रथितम्-उद्ग्रथयन्ति सन्त:।
तत्-वत्-न रिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्ध-स्रोतोगणा: तम्-अरणम् भज वासुदेवम्। ।**4।22।39**। ।
कृच्छ्रो महानिह भवार्णवं अप्लव-ईशां षड्वर्ग-नक्रम्-असुखेन तितीरषन्ति।

तत् त्वं हरेर्भगवतो भजनीयम्-अङ्घ्रिं कृत्वा-उडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम्।।4।22।40।।
भगवान् के चरणारविन्द के अंगूठों की सेवा से ही कर्म के गाँठ खुल जाते हैं। भक्ति के बिना केवल ज्ञान एवं योग से भौतिक सुख के तरंगों को रोकना कठिन हो जाता है। इसीलिए भगवान् वासुदेव की भक्ति में लगो।सनकादिक मुनियों के वचनामृत सुनकर राजा बोले कि भगवान्विष्णु ने पूर्व में ही मुझे आपलोगों के आगमन के संकेत दिया था। राजा ने मुनिकुमारों को राज्य तथा परिवारादि सर्वस्व अर्पित कर दिया। राजा से सम्मानित होकर वे अत्यन्त गद्गद् हुए।

वैन्यस्तु धुर्यो महतां संस्थित्या-अध्यात्मशिक्षया।
आप्तकामम्-इवात्मानं मेन आत्मनि-अवस्थित:।। 4।22।49।।
कीत्या-उर्ध्वगीतया पुम्भि: त्रैलोक्ये तत्र तत्र ह।
प्रविष्ट: कर्णरन्ध्रेषु स्त्रीणां राम: सतामिव।। 4।22।63।।

राजा पृथु अध्यात्म ज्ञान में परिपक्व होने से आप्तकाम थे। वे अपने को भगवान्का शाश्वत दास के रूप में रखकर समस्त कर्मो के फल भगवान्को अर्पित करते थे। समस्त ब्रह्माण्ड में इनकी कीर्ति उच्च स्वर में सुनायी पड़ती थी। भक्तों को राजा पृथु की महिमा में भगवान् रामचन्द्र की मधुर महिमा का आनन्द मिलता था।
वृद्धावस्था आने पर पृथु जी अपने पुत्रों को राजपाट देकर पत्नी के साथ वन में चले गये। वानप्रस्थ के नियमों का पालन करते हुए वे गर्मी में पञ्चाग्नि, वर्षा में भींगकर, जाड़े में गर्दन तक जल में खड़ा रहकर सदा भूमि पर शयन करते थे। प्राणवायु पर नियन्त्रण कर भगवान्के स्वरूप में ध्यान स्थिर रहते थे। समय आने पर राजा ने अपना शरीर त्याग दिया। राजा पृथु के चरित गान से भगवत्धाम मिलता है। तीन बार इसे सुनने से मनोवांछित भौतिक सुख भी मिलता है।

छिन्न-अन्यधी: अधिगत-आत्मगति: निरीह: तत् तत्यजे-अच्छिन्नत्-इदं वयुनेन येन।
तावत्न योगगतिभि: यति: अप्रमत्तो यावद् गदाग्रज-कथासु रतिं न कुर्यात्।।4।23।12।।
राजा पृथु देहात्मबुद्धि से मुक्त हो भगवान् कृष्ण के ध्यान में लीन रहते थे। जीवन का लक्ष्य भगवान्की कथा से आनन्द लेना है।इसके बिना सांसारिक मोह दूर नहीं होता।

अनुदिनम्-इदम्-आदरेण श्रृण्वन्पृथुचरितं प्रथयन्-विमुक्तसङ्ग:।
भगवति भवसिन्धु-पोतपादे स च निपुणां लभते रतिं मनुष्य:।।4।23।39।।
पृथु जी के चरित का श्रद्धा से नित्य गान करने वाला, पढ़ने वाला तथा सुनने वाला भगवान्में अटल विश्वास प्राप्त करके उनके चरणारविन्द रूपी नौके से संसार सागर पार कर जाता है।

4।5। राजा पृथु के वंश में प्राचीनबर्हि तथा उनके पुत्र प्रचेतागण

राजा पृथु के वंश में आगे प्राचीनबर्हि या बर्हिषत्हुए। ब्रह्मा जी के आदेश से इनका विवाह समुद्र की पुत्री से हुआ। प्राचीनबर्हि के दस पुत्र थे जो समेकितरूप से प्रचेता कहे गये। पिता के वंशवृद्धि के आदेश की पूर्ति हेतु प्रचेता ने समुद्र में प्रवेश किया तथा दस हजार वर्ष तक पुरुषोत्तम भगवान्की तपस्या की। समुद्र की ओर जाते समय में मार्ग में इनलोगों को शिव का दर्शन हुआ। भगवान्की साधाना में सिद्धि हेतु शिव ने प्रचेता को भगवान्की स्तुति सुनाई।

य: परं रंहस: साक्षात्-त्रिगुणात्-जीव-संज्ञितात्।
भगवन्तं वासुदेवं प्रपन्न: स प्रियो हि मे। ।**4**।**24**।**28**। ।
अथ भागवता यूयं प्रिया: स्थ भगवान्यथा।
न मद्भागवतानां च प्रेयान्-अन्योऽस्ति कर्हिचित्। ।**4**।**24**।**30**। ।

जो प्रकृति तथा जीव के नियामक भगवान्वासुदेव का शरणागत है वह हमें अतिप्रिय है। शिव ने भगवान्वासुदेव की स्तुति की तथा प्रचेता को ध्यान से उसे सुनकर स्मरण करने को कहा। इसी स्तुति को मन्त्रवत स्मरण कर प्रचेता ने समुद्र के जल में स्थित रहकर भगवान् वासुदेव की उपासना की। भगवान् वासुदेव की शिव द्वारा स्तुति जो रुद्रगीत भी कहा जाता है -

जितं त आत्मवित्-वर्य-स्वस्तये स्वस्ति: अस्तु मे।
भवता राधसा राद्धं सर्वस्मा आत्मने नम:। ।**4**।**24**।**33**। ।

भगवान्के चतुर्व्यूह स्वरूप - वासुदेव, संकर्षण, पद्युम्न एवं अनिरुद्ध की स्तुति

नम: पङ्कजनाभाय भूतसूक्ष्म्- इन्द्रियात्मने।
वासुदेवाय शान्ताय कूटस्थाय स्वरोचिषे। । **4**।**24**।**34**। ।
सङ्कर्षणाय सूक्ष्माय दुरन्ताय-अन्तकाय च।
नमो विश्व-प्रबोधाय प्रद्युम्नाय-अन्तरात्मने। । **4**।**24**।**35**। ।
नमो नमोऽनिरुद्धाय हृषीकेशेन्द्रियात्मने।
नम: परमहंसाय पूर्णाय निभृतात्मने। । **4**।**24**।**36**। ।
स्वर्गापवर्ग-द्वाराय नित्यं शुचिषदे नम:।
नमो हिरण्यवीर्याय चातुर्होत्राय तन्तवे। । **4**।**24**।**37**। ।
नम ऊर्ज इषे त्रय्या: पतये यज्ञरेतसे।
तृप्तिदाय च जीवानां नम: सर्वरसात्मने। । **4**।**24**।**38**। ।
सर्वसत्त्वात्म-देहाय विशेषाय स्थवीयसे।
नम: त्रैलोक्यपालाय सह ओजोबलाय च। । **4**।**24**।**39**। ।
अर्थलिङ्गाय नभसे नमोऽन्तर्बहिरात्मने।
नम: पुण्याय लोकाय अमुष्मै भूरिवर्चसे। । **4**।**24**।**40**। ।
प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवाय कर्मणे।
नमोऽधर्मविपाकाय मृत्यवे दु:खदाय च। । **4**।**24**।**41**। ।
नमस्त आशिषाम्-ईश मनवे कारणात्मने।
नमो धर्माय बृहते कृष्णाय-अकुण्ठमेधसे।
पुरुषाय पुराणाय साङ्ख्य-योगेश्वराय च। । **4**।**24**।**42**। ।
शक्तित्रय-समेताय मीढुषेऽहंकृतात्मने।
चेत-आकूतिरूपाय नमो वाचो विभूतये। । **4**।**24**।**43**। ।

दर्शनं नो दिदृक्षूणां देहि भागवतार्चितम्।
रूपं प्रियतमं स्वानां सर्वेन्द्रिय-गुणाञ्जनम्। ।**4**।**24**।**44**। ।

भगवान्का सुन्दर स्वरूप -

स्निग्ध-प्रावृट्-घनश्यामं सर्वसौन्दर्य-सङ्ग्रहम्।
चारु-आयत-चतुर्बाहु सुजातरुचिराननम्। ।**4**।**24**।**45**। ।
पद्म-कोशपलाशाक्षं सुन्दरभ्रु सुनासिकम्।
सुद्विजं सुकपोलास्यं समकर्ण-विभूषणम्। ।**4**।**24**।**46**। ।
प्रीति-प्रहसित-अपाङ्गम्-अलकै-रूपशोभितम्।
लसत्-पङ्कज-किञ्जल्क-दुकूलं मृष्टकुण्डलम्। ।**4**।**24**।**47**। ।
स्फुरत्-किरीट-वलय-हार-नूपुर-मेखलम्।
शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-माला-मणि-उत्तम-ऋद्धि-मत्। ।**4**।**24**।**48**। ।
सिंहस्कन्ध-त्विषो बिभ्रत्-सौभग-ग्रीव-कौस्तुभम्।
श्रिया-अनपायिन्या-क्षिप्त-निकष-अश्म-उरसोल्लसत्। ।**4**।**24**।**49**। ।
पूर-रेचक-संविग्न-वलि-वल्गु-दल-उदरम्।
प्रतिसङ्क्रामयत्-विश्वं नाभ्या-आवर्त-गभीरया। । **4**।**24**।**50**। ।

भगवान्के लावण्यपूर्ण विभिन्न अवयवों, उनके तेजामय आभूषणों तथा आयुधों का वर्णन करते हुए शिव अब भगवान्के पेट पर की श्वास की गति से वट के पत्ते के समान सुन्दर त्रिवली का उल्लेख करते हैं। नाभि इतनी गहरी है मानो वह उसीसे निकले समस्त ब्रह्माण्ड को उसी में पुन: समेट लेना चाहती है।

श्यामश्रोणि-अधिरोचिष्णु-दुकूल-स्वर्ण-मेखलम्।
समचारु-अङ्घ्रि-जङ्घ-ऊरु-निम्नजानु-सु-दर्शनम्। ।**4**।**24**।**51**। ।
पदा शरत्पद्मपलाश-रोचिषा नख-द्युभि: न: अन्त: अघं विधुन्वता।
प्रदर्शय स्वीयम्-अपास्त-साध्वसं पदं गुरो मार्गगुरु: तमोजुषाम्। ।**4**।**24**।**52**। ।
एतत्-रूपम्-अनुध्येयम्-आत्मशुद्धिम्-अभीप्सताम्।
यद्भक्तियोगो-अभयद: स्वधर्मम्-अनुतिष्ठताम्। ।**4**।**24**।**53**। ।
भवान्-भक्तिमता लभ्यो दुर्लभ: सर्वदेहिनाम्।
स्वाराज्यस्य-अपि-अभिमत एकान्तेन-आत्मविद्गति:। । **4**।**24**।**54**। ।
तं दुराराध्यम्-आराध्य सतामपि दुरापया।
एकान्तभक्त्या को वाञ्छेत्-पादमूलं विना बहि:। । **4**।**24**।**55**। ।
यत्र निर्विष्टम्-अरणं कृतान्तो नाभिमन्यते।
विश्वं विध्वंसयन्-वीर्य-शौर्य-विस्फूर्जित-भ्रुवा। । **4**।**24**।**56**। ।
क्षणार्धेनापि तुलय न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्-सङ्गि-सङ्गस्य मर्त्यानां किम्-उत-आशिष:। । **4**।**24**।**57**। ।

भगवान् के भक्त के आधे क्षण की संगति से कर्म एवं ज्ञान के फल के प्रति अभिरुचि समाप्त हो जाती है।

अथ-अनघ-अङ्घ्रे: तव कीर्ति-तीर्थयो: अन्तर्बहि: स्नान-विधूत-पाप्मनाम्।

भूतेषु-अनुक्रोश-सुसत्त्व-शीलिनां स्यात्सङ्गमो-अनुग्रह एष न: तव।। 4।24।58।।

भगवान्के ऐसे भक्त जिनका चित्त आपकी भक्ति से निर्मल हो गया है उनकी संगति मुझे दें।

न यस्य चित्तं बहिरर्थविभ्रमं तमोगुहायां च विशुद्धमाविशत्।

यद्भक्तियोग-अनुगृहीतम्-अञ्जसा मुनिर्विचेष्टे ननु तत्र ते गतिम्।।4।24।59।।

यत्रेदं व्यज्यते विश्वं विश्वस्मिन्-अवभाति यत्।

तत्त्वं ब्रह्म परं ज्योति: आकाशमिव विस्तृतम्।।4।24।60।।

यो माययेदं पुरु-रूपया-असृजद्बिभर्ति भूय: क्षपयति-अविक्रिय:।

यद्भेदबुद्धि: सत्-इव-आत्म-दु:स्थया त्वमात्म-तन्त्रं भगवन्-प्रतीमहि।। 4।24।61।।

क्रियाकलापै: इदमेव योगिन: श्रद्धान्विता: साधु यजन्ति सिद्धये।

भूतेन्द्रिय-अन्त: करण-उपलक्षितं वेदे च तन्त्रे च त एव कोविदा:।। 4।24।62।।

वेद, आगम शास्त्र तथा पाञ्चरात्र के अनुसार केवल आप ही पूज्य हैं।

त्वमेक आद्य: पुरुष: सुप्तशक्तिस्तया रज:सत्त्वतमो विभिद्यते।

महानहं खं मरुत्-अग्नि-वा: धरा: सुरर्षयो भूतगणा इदं यत:।। 4।24।63।।

सृष्टि के पूर्व के सुप्तावस्था से जब गतिमान होते हैं तब सत्त्व, रज एवं तम तथा अहंकार एवं आकाशादि पञ्चमहाभूतों से आपकी सृष्टि में सबसे पहले देव तथा ऋषिगण प्रकट होते हैं।

सृष्टं स्वशक्त्या-इदम्-अनुप्रविष्ट: चतुर्विधं पुरम्-आत्म-अंशकेन।

अथो विदुस्तं पुरुषं सन्तम्अन्त: भुङ्क्ते हृषीकै: मधु सारघं य: ।। 4।24।64।।

चार प्रकार के जीव हैं जरायुज गुण से उत्पन्न, अण्डज अण्डे से उत्पन्न, स्वेदज पसीना से उत्पन्न तथा उद्भिज बीज से उत्पन्न।उन शरीरों में रहकर जीव इन्द्रिय द्वारा विषयों को वैसे ही भोगता है जैसे मधुमक्खी अपना मधु स्वयं चखती है।

स एष लोकान्-अतिचण्डवेगो विकर्षसि त्वं खलु कालयान:।

भूतानि भूतै: अनुमेय-तत्त्वो घनावली: वायु: इव-अविषह्य:।। 4।24।65।।

प्रमत्तम्-उच्चैरिति कृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम्।

त्वमप्रमत्त: सहसाभिपद्यसे क्षुत्-लेलिहान: अहि: इव-आखुम्-अन्तक:।। 4।24।66।।

विषय सुख की लालसा के लोभी प्राणी पर काल अन्त में वैसे ही टूट पड़ता है जैसे चूहे पर साँप।

कस्त्वपदाब्जं विजहाति पण्डितो यस्तेऽवमान्-व्ययमान-केतन:।

विशङ्कया-अस्मद्गुरु: अर्चति स्म यद् विनोपपत्तिं मनव: चतुर्दश।। 4।24।67।।

हमारे गुरु एवं पिता जी ने जैसे आपके चरणाविन्द की पूजा की उसी तरह चौदह मनुओं ने भी की।

अथ त्वमसि नो ब्रह्मन् परमात्मन् विपश्चिताम्।

विश्वं रुद्रभय-ध्वस्तम्-अकुतश्चिद्भया गतिः।। 4।24।68।।

आप ही परब्रह्म एवं परमात्मा हैं तथा भक्तों के लिए निर्भय आश्रय हैं जो प्रलयकारी रुद्र से भी नहीं डरते।

इदं जपत भद्रं वो विशुद्धा नृपनन्दनाः।

स्वधर्मम्-अनुतिष्ठन्तो भगवति-अर्पताशयाः।। 4।24।69।।

राजकुमारों प्रचेता को इसी स्तुति के अभ्यास से आगे के अनुष्ठान में लगने की राय देकर शिव चले गये। शिव ने बताया कि यह स्तोत्र सबसे पहले ब्रह्मा से भृगु आदि हमसब पुत्रों को सृष्टि विस्तार हेतु मिला था। शिव द्वारा रचित भगवान् की स्तुति का अभ्यास करते हुए प्रचेता ने समुद्र में दस हजार वर्षो तक कठोर तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान्ने अपने मनोहारी स्वरूप में प्रचेता को दर्शन दिया।

सुपर्ण-स्कन्धमारूढो मेरु श्रृङ्गम्-इवाम्बुदः।

पीतवासा मणिग्रीवः कुर्वन्-वितिमिरा दिशः।।4।30।5।।

काशिष्णुना कनकवर्ण-विभूषणेन भ्राजत्-कपोलवदनो विलसत्-किरीटः।

अष्टायुधैः अनुचरैः मुनिभिः सुरेन्द्रैः आसेवितो गरुड-किन्नर-गीतकीर्तिः।। 4।30।6।।

पीनायत-अष्टभुजमण्डल-मध्य-लक्ष्मया स्पर्धत्-श्रिया परिवृतो वनमालय-आद्यः।

बर्हिष्मतः पुरुष आह सुतान् प्रपन्नान् पर्जन्य-नाद-रुतया सघृणावलोकः।। 4।30।7।।

श्यामलमेघ के वर्ण वाले भगवान्गरुड के कन्धे पर विराज रहे थे। वे पीताम्बर तथा गले में कौस्तुभमणि से सुशोभित हो रहे थे। देवों एवं ऋषियों से घिरे सुन्दर मुखमण्डल एवं मुकुट से सुशोभित भगवान् अष्टभुजी स्वरूप में थे। गरुड के पंखों से उनकी महिमा गान की ध्वनि हो रही थी। गले की माला घुटनों तक लटक रही थी। वनमाला के सौन्दर्य के सामने वक्षस्थलवासी लक्ष्मी जी की सुन्दरता भी फीकी पड़ रही थी। गम्भीर आवाज में भगवान्ने प्रचेताओं से अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए वर माँगने को कहा। भगवान्ने कहा कि तुमलोग अपने पिता के आज्ञाकारी पुत्र हो। कण्डु की पुत्री जिसका वृक्षों ने लालन पालन किया है तुम्हारी सुयोग्य पत्नी होगी जिससे अतितेजस्वी पुत्र प्राप्त होगा जिसकी सन्तान से पृथ्वी भर जायेगी।

गृहेषु-आविशतां चापि पुंसां कुशल-कर्मणाम्।

मद्वार्ता-यात-यामानां न बन्धाय गृहा मताः।। 4।30।19।।

गृहस्थाश्रम में रहकर भी कर्मफल से प्रभावित न होनेवाले मेरे भक्त मेरे धाम पहुँचते हैं। प्रचेता भगवान्के दर्शन से शुद्धचित्त हो गये। उनलोंगों ने भगवान्की भावभीनी स्तुति की।

नमो विशुद्धसत्त्वाय हरये हरिमेधसे।

वासुदेवाय कृष्णाय प्रभवे सर्वसात्वताम्।।4।30।24।।

नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने।

नमः कमलपादाय नमस्ते कमलेक्षण।। 4।30।25।।

नमः कमल-किञ्जल्क-पिशङ्ग-अमल-वाससे।

सर्वभूत-निवासाय नमोऽयुङ्गक्ष्महि साक्षिणे।। 4।30।26।।

सभी भक्तों के स्वामी सत्त्वरूप, अज्ञान के अन्धकार दूर करने वाले, वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण को नमस्कार है। ब्रह्माण्ड का उद्भव करने वाले कमल की नाभि से युक्त, गले में कमलमाल धारण करनेवाले, कमल के पराग सा सुगन्धित श्रीचरण वाले कमलनयन को बार-बार नमस्कार है। समस्त जीवों के आश्रयस्थल होने से सबके साक्षी तथा कमलपराग सा निर्मल पीतवस्त्र धारण करने वाले भगवान्‌को नमस्कार है।

असौ-एव वरोऽस्माकमईप्सतो जगत: पते।
प्रसन्नो भगवान्येषामम्-अपवर्ग-गुरु: गति:।। 4।30।30।।
यावत्ते मायया सपृष्टा भ्रमाम इह कर्मभि:।
तावद्-भवत्-प्रसङ्गानां सङ्ग: स्यान्नो भवे भवे।। 4।30।33।।
तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्-सङ्गि-सङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिष:।। 4।30।34।।
यत्र-ईडयन्ते कथा मृष्टा: तृष्णाया: प्रशमो यत:।
निर्वैरं यत्र भूतेषु न-उद्वेगो यत्र कश्चन।। 4।30।35।।
यत्र नारायण: साक्षाद्-भगवान्-न्यासिनां गति:।
संस्तूतये सत्कथासु मुक्तसङ्गै: पुन: पुन:।। 4।30।36।।
तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया।
भीतस्य किं न रोचते तावकानां समागम:।। 4।30।37।।

हे जगत्पति एवं सबके गुरु! आप प्रसन्न रहें यही हमारा अभीष्ट वर है। अनेकों जन्मों में इस संसार में भ्रमण करते रहें परन्तु आपके भक्तों की संगति मिलती रहे। निर्मल भक्त के एक क्षण की संगति स्वर्ग से श्रेयस्कर है।हम यही वर माँगते हैं। जहाँ भगवान्‌की पूजा-कथा होती है वहाँ सभी भौतिकवाद से, क्षण-भर के लिए ही सही, मुक्त होकर आपसी भय या कुण्ठा से मुक्त हो जाते हैं। संन्यासियों के चरमलक्ष्य नारायण ही हैं। जहाँ उनकी कथा तथा पुन: पुन: नामकीर्तन होता है वहाँ भगवान्स्वयं विराजमान रहते हैं।संसार के भय से मुक्त भक्तगण तीर्थों को भी पवित्र करते हैं। प्रचेता कहते हैं **- सर्व तदेतत्पुरुषस्य भूम्नो वृणीमहे ते परितोषणाय।। 4।30।40।-** कि हम अपनी तपस्या का फल आपको प्रसन्न करने के लिए आप को ही समर्पित करते हैं।यही वर आप हमें दें।

प्रचेता जब समुद्र से बाहर आये तब मार्ग में वृक्षों को अवरोध करते देख अपनी साँस से उन्हें भस्म करने लगे। ब्रह्मा जी ने बीच-बचाव कर वृक्षों की रक्षा की तथा प्रचेता को वृक्षों से पालित मारिषा कन्या को सुपुर्त कराया। उसी कन्या से विवाह कर प्रचेता ने दक्ष की उत्पत्ति की जो इसके पूर्व शिव जी के क्रोध से यज्ञ में शरीर खो चुके थे। भगवान्‌की प्रेरणा से इसी नये शरीर से दक्ष ने चाक्षुष मन्वन्तर में मनोवांछित जीवों की सृष्टि की।

प्रचेता हजारों वर्षों तक राज्य करते हुए अपने पुत्रों को राजपाट देकर वन में आ गये। भगवान्‌की चिन्ता में लीन प्राणायाम की विधि से भगवान्‌के स्वरूप पर मन स्थिर करने लगे। इसी बीच नारद जी प्रचेता से मिलने आये। प्रचेता ने नारद जी का सम्मान किया। तदुपरान्त उन्हें आध्यात्मिक ज्ञानोपदेश करने का निवेदन किया। नारद जी

ने भगवान्की भक्ति को ज्ञान, तप तथा योगादि से श्रेष्ठ बतात हुए कहा कि इसी मार्ग से श्रेयस प्राप्त होता है तथा सभी प्राणियों के प्रति समानता का भाव उत्पन्न होता है।

यथा तरोः मूल-निषेचनेन तृप्यन्ति तत्-स्कन्ध-भुजोपशाखाः।

प्राण-उपहारात्-च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्व-अर्हणम्-अच्युत-इज्या।। 4।31।14।।

जैसे वृक्ष की जड़ को सिंचित करने से समूचा वृक्ष पुष्ट होता है तथा भोजन करने से सभी इन्द्रियाँ तृप्त होती हैं उसी तरह मात्र एक भगवान्की पूजा-भक्ति से सभी देवता की पूजा हो जाती है।

एतत्पदं तज्जगदात्मनः परं सकृत्-विभातं सवितुर्यथा प्रभा।

यथासवो जाग्रति सुप्तशक्तयो द्रव्य-क्रिया-ज्ञान-भिदा-भ्रम-अत्ययः।।4।31।16।।

भगवान्से यह जगत् उसी तरह से जुड़ा हुआ है जैसे सूर्य से उसका प्रकाश। यह जगत् भगवान्का शरीर है। जागे हुए के लिए सभी इन्द्रियाँ विभिन्न अंगों की तरह क्रियाशील दिखती हैं परन्तु सोते ही सभी क्रियायें अव्यक्त हो जाती हैं। इसी तरह यह जगत् भिन्न प्रतीत होने पर भी परम पुरुष भगवान्से अभिन्न है।

दयया सर्वभूतेषु सन्तुष्ट्या येन केन वा।

सर्वेन्द्रिय-उपशान्त्या च तुष्यति-आशु जनार्दनः।।4।31।19।।

श्रियम्-अनुचरतीं तदर्थिनश्च द्विपद-पतीन् विबुधांश्च यत्स्वपूर्णः।

न भजति निज-भृत्य-वर्गतन्त्रः कथम्-अमुम्-उद्विसृजेत्-पुमान् कृतज्ञः।।4।31।22।।

इन्द्रिय निग्रह तथा सभी प्राणियों पर दया रखने से भगवान्शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। नारद जी इस तरह से प्रचेता को भगवान्से सम्बन्ध का वर्णन कर ब्रह्मलोक चले गये। प्रचेता ने भी भगवान्के चरणारविन्द में स्थित होकर परमपद प्राप्त किया।

4।6। <u>पृथु जी के वंश के प्राचीनबर्हि को नारद जी द्वारा पुरञ्जन की कथा सुनाना</u>

एक बार नारद जी प्रचेता के पिता राजा प्राचीनबर्हि को सकाम यज्ञादि से मन हटाने हेतु तथा अध्यात्म ज्ञान देने के लिए उनके पास पहुँचे। प्रचेता की कथा पूर्व में कही गयी है। नारद जी ने एक रूपक कथा के माध्यम से राजा को आत्मज्ञान कराया। इस कथा को पुरञ्जन आख्यान कहते हैं।

आसीत्पुरञ्जनो नाम राजा राजन् बृहच्छ्रवाः।

तस्य-अविज्ञात-नाम-आसीत्-सखा-अविज्ञात-चेष्टितः।।4।25।10।।

जीव रूपी राजा पुरञ्जन का भगवान् रूपी मित्र था जिसका नाम अविज्ञात था। अविज्ञात के कार्यो को समझा नहीं जा सकता था। राजा पुरञ्जन नौ प्रवेश वाले नगर में रहता था। नौ दरवाजे थे दो आँखें, दो कान, दो नासिका छिद्र, मुँह, मूत्रांग तथा मलविसर्जन वाला गुदा। राजा पुरञ्जन की बुद्धि रूपी पत्नी अतीव सुन्दरी थी जो पाँच फन वाले प्राण रूपी एक सर्प से सुरक्षित थी। ये पाँच फन प्राण, अपान, उदान, व्यान एवं समान वायु थे। उस नारी के ग्यारह सेवक थे - पञ्च कर्मेन्द्रियाँ, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मन। भगवान् से विमुख हो विलासिता में ही लगा रह कर राजा पुरञ्जन तामस प्रवृति में लीन रहता था। इसी तरह से उसका जीवन बीत रहा था कि एक बार कालरूपी चण्डवेग नामक गन्धर्व ने राजा के नगर पर आक्रमण कर दिया। चण्डवेग के रात और दिन रूपी सात सौ बीस बड़े पराक्रमी सैनिक थे। राजा की तरफ से पाँच फनवाला सर्प कालरूपी चण्डवेग से लड़ते-लड़ते कमजोर हो गया था। काल

की बेटी जरा अर्थात् वृद्धावस्था अपना पति खोज रही थी। नारद जी ने कहा कि जरा मुझे अपनाना चाह रही थी। मैंने मना कर दिया। मुझे शाप देकर चली गयी कि कहीं किसी स्थान पर शान्त नहीं रहोगे। नारद जी कह रहे हैं कि मेरी और से निराश होकर जरा यवनों के राजा पुरञ्जन के भय से विवाह करना चाही। उसने उसका विवाह प्रज्वार से करने को कहा और जरा को भय ने अपनी बहिन के रूप में स्वीकार किया। भगवान्‌विष्णु द्वारा उत्प्रेरित ज्वर को प्रज्वार कहते हैं। कालकन्या ने पुरञ्जन की नगरी पर आक्रमण कर दिया। नगरी तहस नहस हो गयी। पुरञ्जन पत्नी को याद करते हुए मर गया। मरते समय स्त्री का स्मरण करते रहने से उसका जन्म एक सुन्दर स्त्री के रूप में विदर्भराज की कन्या के रूप में हुआ। उसका विवाह मलयध्वज नाम के राजा से हुआ। राजा मलयध्वज राजपाट छोड़कर भगवान्‌की भक्ति में लग गये। राजा को ऐसा आभास हुआ कि परमात्मा सर्वव्यापी हैं जब कि आत्मा स्थानिक है। देह आत्मा नहीं है। आत्मा तो इस भौतिक देह का मात्र साक्षी है। उसकी पत्नी ने भी अपने पति से वैराग्य की दीक्षा ली और पति के मार्ग का अनुसरण करने लगी। पति की मृत्यु पर स्वयं भी चिता की आग में भस्म होने को तैयार थी।

यो अविज्ञात-आहृत: तस्य पुरुषस्य सखेश्वर:।
यत्-न विज्ञायते पुम्भि: नामभि: वा क्रियागुणै:।।4।29।3।।

इसी अन्तराल में उसके पूर्व जन्म का अविज्ञात नामक ब्राह्मण-मित्र उपस्थित हुआ। उसने उसके पूर्व जन्म के वृत्तान्त को दुहराते हुए कहा कि तू पुरञ्जन नामक राजा था। तुम्हें एक सुन्दर नगर का अधिपति होने के अहंकार था। नगर से मोहग्रस्त होकर जीवन व्यतीत कर रहा था। वह नगर तुम्हारा शरीर था और तू उसमें वन्दी था। तूने मुझसे कितनी बार राय ली थी परन्तु दुर्भाग्यवश मेरा साथ छोड़कर इस भौतिक जगत की विलासिता में फँस गया। मैं तुम्हारे हृदय में सदा तुम्हारे साथ वास करता हूँ परन्तु तू अपने मूल निवास से बहुत दूर होते गया। आत्मा एवं परमात्मा रहते साथ हैं परन्तु दोनों पृथक हैं। जीव अपने कर्म के अनुसार विभिन्न रूपों में देहान्तर करती रहती है। अविज्ञात रूपी परमात्मा को भौतिक नामों, गुणों तथा कर्मो से नहीं जाना जा सकता है।

यथा यथा विक्रियते गुणोक्तो विकरोति वा।
तथा तथा-उपद्रष्टा-आत्मा तत्-वृत्ती: अनुकार्यते।। 4।29।17।।

राजा पुरञ्जन की रानी उसकी बुद्धि थी। सोते जागते बुद्धि ही विभिन्न परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं।

देहो रथ: तु इन्द्रिय-अश्व: संवत्सर: रयो-अगति:।
द्वि-कर्म-चक्र: त्रिगुण-ध्वज: पञ्च-असु-बन्धुर:।। 4।29।18।।
मनोरश्मि: बुद्धि-सूतो हृत्-नीडो द्वन्द्व-कूबर:।
पञ्चेन्द्रियार्थ-प्रक्षेप: सप्तधातु-वरूथक:।। 4।29।19।।
आकूति: विक्रमो बाह्यो मृगतृष्णां प्रधावति।
एकादशेन्द्रिय-चमू: पञ्चसूना-विनोदकृत्।।4।29।20।।

शरीर रथ है।इन्द्रियाँ घोड़े हैं जो सदा लक्ष्यविहीन दिशा में निरर्थक रथ खींचते रहते हैं। पाप-पुण्य दो पहिये हैं। तीनों गुण ध्वज है।मन रस्सी है। जीव के पाँच प्राण बन्धन है। बुद्धि सारथी है जो हृदय रूपी स्थान में बैठता है। हर्ष एवं पीड़ा दो जुए हैं। सात धातुएँ रथ के आवरण हैं। इन्द्रिय सुख की झूठी अभिलाषाओं के साथ

जन्म-जन्मान्तर तक जीव चक्कर लगाते रहता है। नारद जी ने इस रूपक कहानी का उपसंहार करते हुए कहा कि ब्रह्मा, शिव, सनकादिक, मैं तथा अन्य ऋषि गण भगवान्में नित्य लगे रहने पर भी पूर्णतया उनको जान नहीं पाते। ये वैदिक यज्ञादि भगवान्को समझने में कभी सहायक नहीं बनते।

तस्मिन् महत्-मुखरिता मधुभित्-चरित्र-पीयूष-शेष-सरित: परित: स्रवन्ति।
ता ये पिबन्ति-अवितृषो नृप गाढकर्णै: तान्न स्पृशन्ति-अशन्-तृट्-भय-शोक-मोहा:। ।**4।29।40**। ।

एतै: उपद्रुतो नित्यं जीवलोक: स्वभावजै:।
न करोति हरे: नूनं कथा-अमृत-निधौ रतिम्। ।4।29।41। ।
यदा यम-अनुगृह्णति भगवान्-आत्मभावित:।
स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्। । 4।29।46। ।
स्तब्धो बृहत्-वधात्-मानी कर्म नावैषि यत्परम्।
तत्कर्म हरितोषं यत्सा विद्या तन्मति: यया। ।4।29।49। ।
हरि: देह-भृताम्-आत्मा स्वयं प्रकृतिरीश्वर:।
तत्पादमूलं शरणं यत: क्षेमो नृणामिह। । 4।29।50। ।

साधुओं के समाज में उनके मुख से मधुसूदन भगवान्की अमृत कथा की अनेकों नदियाँ बहती हैं। जो इस कथापीयूष को अपने कानों से सुनकर सदा अतृप्त रहता है वह सांसारिक शोक-मोह-भूख-प्यास के भय से मुक्त रहता है। ऐसा देखा गया है कि सांसारिक कामनाओं की भूख-प्यास से ग्रस्त व्यक्ति भगवान्की अमृत कथा से सदा दूर रहता है। भगवान्का निरन्तर चिन्तन करने से उनकी अहैतुकी कृपा होती है और भक्त सकाम वैदिक-अनुष्ठानों को त्याग देता है। वैदिक यज्ञों में कुश विछाने तथा पशुवध की औपचारिकता को सर्वश्रेष्ठ कर्म मानने वाले कर्माहंकारी हैं। जो श्रीहरि को समर्पित नहीं हो वह कर्म निरर्थक है। वह विद्या किसी काम का नहीं जिससे भगवान् का ज्ञान न हो। भगवान्ही देहधारियों के परमात्मा तथा पथप्रदर्शक हैं।उनके चरणारविन्द का आश्रय कल्याणकारी होता है। नारद जी एक अन्य रूपक में बताते हैं कि सुन्दर उद्यान में चरने वाला हिरन यह नहीं जानता कि उसके आगे भेड़िया तथा पीछे व्याधा घात लगाये बैठा है। नारद जी की बातें सुनकर राजा प्राचीनबर्हि ने कहा कि अब वह भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य के अन्तर को समझ सका है। स्थूल शरीर का त्याग करने पर सूक्ष्म शरीर कर्मों का फल भोगने को तैयार रहता है। सूक्ष्म मानसिक शरीर ही पूर्वजन्मों के देखी हुई वस्तु को स्वप्नादि में देखता है। जबतक पूर्व जन्म में कोई वस्तु नहीं देखी जाती तबतक वर्तमान शरीर का मन उसकी कल्पना कर ही नहीं सकता। मन ही पूर्व तथा भावी शरीर की सूचना देता है।

अत: तत्-अपवाद-अर्थम् भज सर्वात्मना हरिम्।
पश्यन् तदात्मकं विश्वं स्थिति-उत्पत्ति-अप्यया यत:। । 4।29।79। ।

भगवान्ही सदा विश्व का सृजन, पालन तथा संहार के नियामक हैं। अत: हे राजा ! कर्मों के बन्धन से छुटकारा के लिए सदैव भगवद्भक्ति में लग जाओ। नारद जी के अपने धाम चले जाने पर राजा ने राजपाट अपने पुत्रों को दे दिया और स्वयं कपिलाश्रम तीर्थ चला गया।

<u>**4।7। मैत्रेय - विदुर संवाद का अन्त तथा प्रियव्रत की कथा का उल्लेख**</u>

स्कन्ध **3** एवं **4** की कथा मैत्रेय मुनि ने विदुर जी को सुनायी थी जिसे शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को सुनायी।

इमां तु कौषारविणा-उपवर्णितां क्षत्ता निशम्य-अजितवाद-सत्कथाम्।

प्रवृद्धभावो-अश्रुकलाकुलो मुनेः दधार मूर्ध्ना चरणं हृदा हरेः।।4।31।28।।

सोऽयमद्य महायोगिन्भवता करुणात्मना।

दर्शितः तमसः पारो यत्र-अकिञ्चनगो हरिः।। 4।31।29।।

शुकदेव जी कहते हैं कि मैत्रेय मुनि से भगवान् एवं उनके भक्तों की कथा सुनकर विदुर जी की आँखों में आँसू भर आये। अपने हृदय में विदुर जी ने भगवान्को स्थापित किया तथा मैत्रेय मुनि के चरणों पर अपना शिर रखते हुए कहा कि आप परमयोगी तथा भक्तों में महान्हैं। आपकी अहैतुकी कृपा से संसार का अंधकार दूर हुआ। विदुर जी आत्मलाभ से तृप्त होकर मैत्रेय मुनि की वन्दना कर हस्तिनापुर को प्रस्थान कर गये।

य एष उत्तानपदो मानवस्य-अनुवर्णितः।

वंशः प्रियव्रतस्यापि निबोध नृपसत्तम।। 4।31।26।।

यो नारदात्-आत्मविद्याम्-अधिगम्य पुनर्महीम्।

भुक्त्वा विभज्य पुत्रेभ्य ऐश्वरं समगात्पदम्।।4।31।27।।

शुकदेव जी ने राजा से कहा कि यहाँ तक स्वाम्भुव मनु के पुत्र उत्तानपाद की कथा चली और अब आगे मनु के दूसरे पुत्र प्रियव्रत के वंश की कथा सुनाता हूँ। नारद जी ने राजा प्रियव्रत को आत्मविद्या का उपदेश किया था। राजा प्रियव्रत अन्त में अपने पुत्रों को राज्य दे स्वयं भगवद्धाम को चले गये थे।

।। स्कन्ध 4 पूरा हुआ ।।

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध 5

वन्दउँ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

5।1।राजा प्रियव्रत का चरित्र

इस स्कन्ध से राजा परीक्षित एवं शुकदेव जी के बीच सीधे सम्बाद से कथा आगे बढ़ती है। इसके पूर्व स्कन्ध तीन एवं चार में उद्धव - विदुर सम्बाद तथा मैत्रेय-विदुर सम्बाद के माध्यम से शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को कथा सुनायी थी। इस स्कन्ध की विशेषता है कि इसके कुछ श्लोक अनुष्टुपछन्द में है और अधिकांश गद्य की शैली में हैं। हरिकथाकार कहते हैं कि पद्य भाग को अनुष्टुप छन्द के नियम पर अर्थात् प्रत्येक बत्तीस अक्षरों को एक श्लोक मान लेने पर भागवत के अठारह हजार श्लोक पूरे हो जाते हैं।

राजा ने पूछा कि प्रियव्रत गृहस्थाश्रम में रहते हुए भगवान्कृष्ण के प्रेमी कैसे हुए।शुकदेव जी ने कहा -

बाढमुक्तं भगवत उत्तमश्लोकस्य श्रीमच्चरणारविन्द-मकरन्दरस आवेशितचेतसो भागवत-परमहंस-दयितकथां किञ्चित्-अन्तराय-विहतां स्वां शिवतमां पदवीं न प्रायेण हिन्वन्ति।।**5।1।5**।

भगवान्की कीर्ति-कथा मनमोहक होती है। भगवान्के चरणारविन्द के मकरन्दरस के प्रेमी कभी-कभी विघ्नादि के कारण रुक तो जाते हैं परन्तु भगवान् के श्रीचरणों का आश्रय कभी नहीं छोड़ते। राजा प्रियव्रत नारद जी के शिष्य थे। वे सर्वदा भगवान्के प्रेम से उन्मत्त हो गन्धमादन पर्वत की घाटी में ध्यानस्थ रहते थे। अपने पिता स्वाम्भुव मनु के कहने पर भी विश्व के राजकाज सम्भालने की गृहस्थी में नहीं रहना चाहते थे। ब्रह्मा के आदेश से वे गृहस्थाश्रम में प्रवेश किये। ब्रह्मा ने कहा कि मैं, शिव, मनु आदि समस्त जीव संसार के कर्म तथा गुणों से बन्धे हैं। नाक के नथुने से बंधे बैल की तरह संसार में कर्म निर्वाह से मुक्ति असंभव है।

भयं प्रमत्तस्य वनेषु-अपि स्यादयतः स आस्ते सह-षट्-सपत्नः।

जितेन्द्रियस्य-आत्मरतेः बुधस्य गृहाश्रमः किं नु करोति-अवद्यम्।।5।1।17।।

कोई वन में भी रहने पर मन तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियों के रूप में छः पत्नियों के साथ रहता है। जो आत्मतुष्ट हैं उन्हें गृहस्थाश्रम से कोई हानि नहीं होती।

यावत्-अवभासयति सुरगिरिम्-अनुपरिक्रामन्भगवान्-आदित्यो वसुधातलम्-अर्धेन-एव प्रतपति-अर्धेन-अवच्छादयति तदा हि भगवदुपासना-उपचित-अतिपुरुष-प्रभावः तत्-अनभिनन्दन्समजवेन रथेन ज्योतिर्मयेन-रजनीमपि दिनं करिष्यामीति सप्तकृत्-वस्तरणिम्अनुपर्यक्रामद् द्वितीय इव पतङ्गः।**5।1।30**।।

प्रियव्रत भगवान्की उपासना से शौर्यवान् हो चुके थे। एक बार उन्होंने यह अनुभव किया कि सूर्य के कारण धरती का एक भाग प्रकाश में रहता है तथा बचे हुए भाग में रात्रि रहती है। वे सूर्य के समान तेजस्वी रथ में सवार होकर सूर्य के परिभ्रमण मार्ग का अनुसरण करते हुए रात्रि के अंधकार से पृथ्वी को मुक्त करने लगे। ऐसा सातो दिन तक चक्कर लगाने से उनके रथ के पहियों से सात समुद्र वन गये तथा धरती सात द्वीपों में बँट गयी।

जम्बू-प्लक्ष-शाल्मलि-कुश-क्रौंच-शाक-पुष्कर-संज्ञा: तेषां परिमाणं पूर्वस्मात्-पूर्वस्मात्-उत्तर उत्तरो यथा-सङ्ख्यं द्विगुणमानेन बहि: समन्तत उपक्लृप्ता: ।।5।1।32।।

जम्बू-प्लक्ष-शाल्मलि-कुश-क्रौंच-शाक-पुष्कर ये सात द्वीप बने जो एक दूसरे से उत्तरोत्तर आकार में दुगुना तथा प्रत्येक के बीच में क्रमश: खारे जल, ईख के रस, सुरा, घृत, दूध, मट्ठा तथा पेय मीठे जल के समुद्र थे। ऐसा अनुमान है कि वर्तमान में एकमात्र जम्बू द्वीप ही दृश्यमान है जो समस्त धरती का बोध कराता है। प्रियव्रत भौतिक सुख की तुच्छता को समझते हुए राजपाट अपने पुत्रों में बाँट कर वन चले गये।

प्रियव्रतकृतं कर्म को नु कुर्यात्-विना-ईश्वरम्।
यो नेमि-निम्नै: अकरोत्-छायां घ्नन्-सप्त वारिधीन्। ।5।1।39

प्रियव्रत के बारे में यह प्रसिद्ध श्लोक है - भगवान्को छोड़कर प्रियव्रत जैसा कोई पराक्रमी नहीं हुआ जिसने धरती से अंधकार मिटाया तथा अपने रथ के चक्के से सात द्वीप बनाये। इन्होंने नदियों, पहाड़ों तथा वनों के द्वारा विभिन्न राज्यों की सीमाएँ निर्धारित की जिससे कि कोई एक दूसरे की सीमा का अतिक्रमण न कर सके।

प्रियव्रत की दो पत्नियाँ थीं। पहली पत्नी से दस पुत्र तथा एक पुत्री थी। पुत्री ऊर्जस्वती का विवाह इन्होंने शुक्राचार्य से किया था जिसकी पुत्री देवयानी थी। देवयानी का विवाह ययाति से होने की कथा नवम स्कन्ध में है जिससे यदुवंश का उद्भव हुआ। दस पुत्रों में से तीन ने संन्यास ले लिया। बाकी सातो पुत्र सातो द्वीपों के अधिपति हुए। राजा प्रियव्रत की दूसरी पत्नी के पुत्र उत्तम, रैवत तथा तामस मनु की पदवी प्राप्त कर मन्वन्तर कल्पों के अधिकारी हुए।

5।2।राजा प्रियव्रत के प्रपौत्र ऋषभदेव का चरित्र

प्रियव्रत के पुत्र आग्नीध्र जम्बू द्वीप के राजा हुए। इन्होंने जम्बू द्वीपों के नौ खण्डों को अपने नौ पुत्रों में बाँट दिया। आग्नीध्र के सबसे बड़े पुत्र नाभि ने तपस्या एवं यज्ञों से भगवान्विष्णु को प्रसन्न किया।

अथ ह तम्-आविष्कृत-भुज-युगल-द्वयं हिरण्मयं पुरुषविशेषं कपिश-कौशेय-अम्बरधरम्-उरसि विलसत्-श्रीवत्स-ललामं दरवर-वनरुह- वनमाला- अच्छूरि- अमृतमणि- गदादिभि: उपलक्षितं स्फुटकिरण- प्रवर-मुकुट-कुण्डल-कटक- कटिसूत्र - हार -केयूर-नूपुर-आदि-अङ्ग-भूषण- विभूषितम्-ऋत्विक- सदस्य - गृहपतय: अधना: इव- उत्तमधनम्- उपलभ्य-स- बहुमानम्-अर्हणेन्- अवनत- शीर्षाण: उपतस्थु: ।।5।3।3।।

उनके यज्ञ में भगवान् विष्णु चतुर्भुज स्वरूप में प्रकट हुए। तेजपूर्ण स्वरूप, अधोभाग में रेशमी पीताम्बर, वक्षस्थल पर श्रीवत्स, हाथों में शंख, कमल, चक्र तथा गदा विराजमान थे। गले में वनमाला तथा कौस्तुभ मणि, मुकुट, कुण्डल, कंकण, करधनी, मुक्ताहार, बाजूबन्द, नूपुर तथा अन्य रत्नजटित आभूषणों से पुरुषोत्तम भगवान् सुशोभित थे। निर्धन को सहसा जैसे धन मिलता है वैसी ही प्रसन्नतापूर्वक राजा तथा ऋत्विकों ने भगवान् को प्रणाम एवं स्तुति कर पूजा की। तब राजा नाभि ने भगवान्के समान पुत्र की कामना प्रकट की। भगवान्ने प्रसन्न होकर उनके यहाँ ऋषभदेव के रूप में अवतार लिया। जन्म के समय से ही उनमें भगवान्के मंगलपूर्ण लक्षण दिखने लगे। राजा नाभि ने पुत्र के सुन्दरतम रूप तथा अन्य देवत्वपूर्ण लक्षणों से युक्त देखकर इनका नाम ऋषभदेव अर्थात्सर्वश्रेष्ठ रखा। ऋषभदेव के ऐश्वर्य से इन्द्र ईर्ष्या करने लगे तथा इन्द्र ने अजनाभ वर्ष में वर्षा का अभाव कर दिया। राजा नाभि

उस समय अजनाभवर्ष के अधिपति थे। यही क्षेत्र ऋषभदेव के सौ पुत्रों में सर्वश्रेष्ठ भरत के नाम पर बाद में भारतवर्ष कहलाने लगा। इन्द्र की मनसा समझ कर अपने देश में महान्योगवल से सम्पन्न ऋषभदेव जी ने पर्याप्त वर्षा करायी।

विदित-अनुरागम्-आपौर-प्रकृति जनपदो राजा नाभिरात्मजं समय-सेतु-रक्षायाम-अभिषिच्य ब्राह्मणेषु-उपनिधाय सह मेरुदेव्या विशालायां प्रसन्न-निपुणेन तपसा समाधियोगेन नर-नारायण-आख्यं भगवन्तं वासुदेवम्-उपासीन: कालेन तन्महिमानम्-अवाप। ।**5**।**4**।**5**। ।

ऋषभदेव की प्रजा में लोकप्रियता देख राजा ने विधिवत उन्हें राजा के पद पर अभिषिक्त कर दिया।स्वयं वे पत्नी मेरुदेवी के साथ बदरीविशाल में जाकर वासुदेव स्वरूप नर-नारायण भगवान्की उपासना कर परमपद प्राप्त किये। ऋषभदेव ने गुरुकुल में रहकर विधिवत शिक्षा प्राप्त की। इन्द्र की पुत्री जयन्ती से इनका विवाह हुआ जिससे इनके एक सौ पुत्र हुए। सबसे बड़े भरत थे जो बड़े गुणवान् थे तथा इन्हीं के नाम पर इस देश अजनाभवर्ष को भारतवर्ष कहा जाने लगा।ऋषभदेव के नौ महाभागवत पुत्र योगीश्वर हुए जिनके नाम थे - कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, अग्निर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन जिनकी कथा ग्यारहवें स्कन्ध में है। ।

इति भागवत-धर्मदर्शना नव महाभागवता: तेषां सुचरितं भगवन्-महिमा-उपबृंहितं वसुदेव- नारद-संवादम्-उपशमायनम्- उपरिष्टात्- वर्णयिष्याम:। ।5।4।12। ।

भक्तियोग के अभ्यास हेतु नौ कवीश्वरों के बताये मार्ग को नारद जी ने वसुदेव जी को सुनाया था। यह कथा भागवत के एकादश स्कन्ध में आती है।ऋषभदेव ने अपने पुत्रों को भागवत-धर्म का उपदेश दिया। जीवन का गूढ़ार्थ किसी भगवान्के भक्त की संगति से ही प्राप्त की जा सकती है।

महत्सेवां द्वारम्-आहु: विमुक्ते: तमोद्वारं योषितां सङ्गि-सङ्गम्।
महान्तस्ते समचित्ता: प्रशान्ता विमन्यव: सुहृद: साधवो ये। ।5।5।2। ।
ये वा मयीशे कृतसौहृद-अर्था जनेषु देहम्भर-वार्तिकेषु।
गृहेषु जाया-आत्मज-राति-मत्सु न प्रीतियुक्ता यावदर्थाश्च लोके। ।5।5।3। ।
एवं मन: कर्मवशं प्रयुङ्क्ते अविद्यया-आत्मनि-उपधीयमाने।
प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन तावत्। ।5।5।6। ।
गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद्य: समुपेतमृत्युम्। ।5।5।18। ।

शान्तचित्त, क्रोधहीन, समदर्शी तथा सदाचारी महापुरुष की संगति से मुक्ति तथा नारीप्रेमियों की संगति से नरक मिलता है। महापुरुष को भगवत्प्रेम होता है और वे विषयादि तथा धन परिवार में अरुचि रखते हुए लोकहित के लिए शरीर निर्वाह करते हैं। कर्मवासना में लीन तमोगुणी जीव को देह के बन्धन से छुटकारा नहीं मिलता।जब तक भगवान् वासुदेव से प्रेम नहीं होगा तब तक इसद`ह से मुक्ति संभव नहीं। वह गुरु गुरु नहीं, स्वजन स्वजन नहीं, पिता पिता नहीं, माँ माँ नहीं, इष्टदेव इष्टदेव नहीं और पति पति नहीं जो भगवद्भक्ति का उपदेश देकर मृत्यु के फन्दे से नहीं छुड़ाता। ऋषभदेव अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को राज्याधिकार देकर स्वयं परमहंसवृत्ति में घर छोड़कर चले गये। सर्वत्र गूँगे, बहरे एवं पागल के समान घूमते रहते थे। उनका शरीर सुगठित तथा सुकोमल था। वे

अत्यन्त सुन्दर थे। आँखें कमल के समान थीं। सिर पर बाल घुँघराले थे। अजगर की तरह एक ही जगह लेटे रहते हुए अपने मल-मूत्र से घृणा नहीं करते थे। उनके मल-मूत्र से सुगन्धि फैलती थी। वे गाय, हिरण तथा कौआ की वृत्ति का आचरण करते हुए कभी एक स्थान पर ही रहते तथा कभी तुरत इधर-उधर घूमते रहते। समस्त भौतिक भावनाओं से ऊपर उठकर शरीर की इस गति से पूर्णतया अवगत रहते हुए आत्माराम हो चुके थे। साधारण योगी अपनी सिद्धि का लाभ उठाकर भौतिक सुख में लग जाते हैं परन्तु वे उच्चकोटि के योगी होते हुए भी संसार को इस बात का ज्ञान कराने हेतु कि मन बहुत ही चंचल तथा अविश्वसनीय है। वे अवधूत वृत्ति से देह को कर्मबन्धन का कारक मानते हुए यत्र-तत्र घूमते रहते थे।

सत्यम्-उक्तं किन्तु-इह वा एके न मनसोऽद्धा विश्रम्भम्-अनवस्थानस्य शठ-किरात इव सङ्गच्छन्ते।5।6।2।।
तथा च उक्तम्-

न कुर्यात्-कर्हिचित्-सख्यम्मनसि हि-अनवस्थिते।
यत्-विश्रम्भात्-चिरात्-चीर्णम्चस्कन्द तप ऐश्वरम्।।5।6।3।।

महापुरुष अपने मन पर वैसे ही नियन्त्रण करते हैं जैसे चतुर बहेलिया वन से पकड़कर लाये हुए पशुओं पर ध्यान रखता है कि वह भाग न जाये। तप: सिद्ध शिव भी भगवान्के मोहिनी स्वरूप देखकर विचलित हो गये। मन से मित्रता न रखे वह किसी क्षण धोखा दे सकता है। ऋषभदेव ने मन को नियन्त्रित किया। वे नग्नावस्था में रहते हुए देह की परवाह न कर दक्षिण के कोङ्क, वेङ्, कुटक तथा कर्णाटक क्षेत्र में गये। वहाँ का अर्हत् नामका राजा उनके संदेश को ठीक से न समझकर भक्तियोग की ओर प्रवृत न हुआ। वह राजा योगी की देह की उपेक्षा से भ्रमित होकर पाषण्ड मत का प्रर्वतक हो गया। ऋषभदेव अपनी समस्त योगसिद्धियों का तिरस्कार करते हुए वन की आग मे जलकर मर गये।

राजन्पतिर्गुरु: अलम्भवतां यदूनां दैवं प्रिय: कुलपति: क्व च किङ्करो व:।
अस्तु-एवम्-अङ्ग भगवान्भजतां मुकुन्दो मुक्तिं ददाति कर्हिचित्-स्म न भक्तियोगम्।।5।6।18।।

शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को कहा कि भगवान्वासुदेव पाण्डवों के मित्र, गुरु तथा कर्मो के निदेशक होते हुए भी वे दूत बने तथा रथ चलाये परन्तु अपनी प्रत्यक्ष सेवा तथा भक्ति का पाण्डवों को उन्होंने कभी अवसर नहीं प्रदान किया। भगवान् को समझना बहुत कठिन हैं। इसीतरह ऋषभदेव भगवान्के अवतार होते हुए भी अपनी जीवनशैली से किसी को अपनी भक्ति योग में प्रवृत्त होने के लिए उन्होंने उपदेश नहीं किया।

5।3।ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र राजा भरत का चरित्र

प्रियव्रत के वंश में ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत पिता से प्राप्त राज्य बहुत निपुणता से चलाते हुए भगवान्वासुदेव के अनन्य भक्त हो गये थे। इन्हीं के नाम पर उनके राज्य के क्षेत्र को भारत वर्ष कहा जाने लगा।

सम्प्रचरत्सु नानायागेषु विरचिताङ्ग-क्रियेषु-अपूर्व यत्-तत्-क्रियाफलं धर्माख्यं परे ब्रह्मणि यज्ञपुरुषे सर्व देवता-लिङ्गानां मन्त्राणाम्- अर्थ - नियामकतया साक्षात्कर्तरि परदेवतायां भगवति वासुदेव एव भावयमान आत्म - नैपुण्य - मृदित - कषायो हवि:षु -अध्वर्युभि: गृह्यमाणेषु स यजमानो यज्ञभाजो देवान्-तान्पुरुष-अवयवेषु -अभ्यध्यायत्।।5।7।6।।

ब्रह्मणि भगवति वासुदेवे महापुरुषरूपोपलक्षणे श्रीवत्स-कौस्तुभ-वनमाला-अरि-दर- गदादिभि: उपलक्षिते निजपुरुष-हृत्-लिखितेन-आत्मनि पुरुषरूपेण विरोचमान उच्चैस्तरां भक्ति: अनुदिनम्-एधमान-रया - अजायत। ।5।7।7। ।
यज्ञ में अर्पित विभिन्न देवों के नाम की हविष्यों को वे यज्ञपुरुष भगवान् वासुदेव के विभिन्न अंग-प्रत्यंग के स्वरूप के प्रतिनिधि के रूप को समर्पित होने का ही भाव करते थे। जैसे इन्द्र को भगवान्‌का बाहु तथा सूर्य को उनका नेत्र। अपने हृदय में भगवान्‌को श्रीवत्स, कौस्तुभ मणि, वनमाला, हाथों में शंख, चक्र, गदा तथा कमल से सुशोभित स्वरूप का सर्वदा ध्यान करते रहते थे। अनेकों यज्ञादि सम्पादित कर अन्त में राज्यभार अपने पुत्रों में बाँटकर स्वयं शालग्राम भगवान्‌की शिला मिलनेवाली गण्डकी के किनारे पुलहाश्रम में आ कर भगवत्सेवा में ही तल्लीन रहने लगे। यह आश्रम वर्तमान काल में बिहार प्रान्त में अवस्थित हाजीपुर के पास शालग्रामी गण्डकी के किनारे सोनपुर से 3 कि. मी. पर दर्शनीय है।
यत्र ह वाव भगवान्हरि: अद्यापि तत्रत्यानां निजजनानां वात्सल्येन संनिधाप्यत इच्छारूपेण।**5**।**7**।**9**। ।
यत्राश्रमपदानि- उभयतो नाभिभि: दृषत्चक्रै: चक्रनदी नाम सरित्प्रवरा सर्वत: पवित्रीकरोति। ।**5**।**7**।**10**। ।
पुलहाश्रम में भक्तवत्सल भगवान् साक्षात दर्शन देते हैं। यहाँ शालग्रामी नदी को चक्र नदी भी कहते हैं तथा भगवान्‌शालग्राम की नीचे ऊपर दोनों तरफ नाभी जैसी चक्रांकित शिला मिलती है। यहाँ भरत भगवान्‌की आराधना में तुलसी, पुष्प तथा फल आदि अर्पित करते। भगवान् के स्मरण में पुलकित तथा अश्रुपूरित नयनों से सर्वदा लीन रहते। सूर्योदय होते ही सूर्य के भीतर वास करने वाले नारायण की उपासना ऋग्वेद के गायत्री मंत्र से करते हुए निम्नांकित श्लोक से स्तुति करते।

परोरज: सवितुर्जातवेदो देवस्य भर्गो मनसेदं जजान।
सुरेतसाद: पुनराविश्य चष्टे हंसं गृध्राणं नृषत्-रिङ्गिरामिम:। ।5।7।14। ।

रजोगुण से ऊपर सत्त्व में स्थित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आलोकित करने वाले वरदायी भगवान् अपनी तेज से सृष्टि की रचना कर उसमें प्रवेश करते हुए अपनी विभिन्न शक्तियों से भौतिक सुख की इच्छावाले समस्त जीवों का पालन करते हैं। सद्बुद्धि देने वाले ऐसे भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ।
एक बार राजा भरत शालग्रामी नदी गण्डकी के किनारे जप कर रहे थे। एक गर्भवती मृगी जल पी रही थी। सहसा सिंह की दहाड़ सुन मृगी छलांग लगाते हए नदी पार कर गयी परन्तु उसके कोख से बच्चा जल में गिर गया। भयग्रस्त नदी पार कर वह मर गयी। राजा भरत ने जल में उपराते उस बच्चे का प्राण बचाया और उसे अपने आश्रम में लाकर वे उसका लालन पालन करने लगे। धीरे-धीरे वे उस मृग शावक से इतने जुड़ गये कि भक्ति शिथिल पड़ गयी और सर्वदा उस बच्चे के हित की बातों में लगे रहते और सर्वदा उसके साथ ही रहते। एक दिन वह मृग शावक आश्रम से कहीं दूर चला गया। राजा ने उसे बहुत खोजा। सबेरे से साम हो गयी। रात में चाँद के धब्बे को मृगशावक समझ उन्होंने चन्द्रमा की प्रशंसा करते हुए उस मृग शावक को शरण देने के लिए उन्हें धन्यवाद दिया। राजा उसकी खोज में उन्मत्त की भाँति लगे हुए थे। इसी बीच वे मरन्नासन्न हो गये और उस बच्चे को मरते समय अपने पास बैठे हुए देखा। चूँकि मृग शावक में निमग्न मन से उनका शरीर छूटा था इसलिए वे एक मृग के रूप में जन्म लिये। लेकिन उनकी पूर्व की स्मृति बनी रही और वे अन्य मृगों से अपने को दूर रखते हुए पुलहाश्रम

में आकर रहने लगे। पिछले जन्म में भक्तिपथ से च्युत होने तथा मृग में आसक्ति होने के कारण मृग की योनि में जन्म लिए थे। पूर्व जन्म के कृत्य का उन्हें पश्चात्ताप होते रहता।

तस्मिन्नपि कालं प्रतीक्षमाण: सङ्गाच्च भृशमुद्विग्न आत्मसहचर: शुष्क-पर्ण-तृण-वीरुधा वर्तमानो मृगत्वनिमित्त-अवसानमेव गणयन्मृगशरीरं तीर्थोदक-क्लिन्नम्-उत्ससर्ज ।।**5**।**8**।**31**।।

मृगों के झुण्ड से अलग रहते हुए पुलहाश्रम में सूखी पत्ती तथा घास आदि खाते हुए अपने आत्मसहचर परमात्मा के भाव में लीन रहते थे।शालग्रामी नदी के तीर्थ जल का सेवन करते हुए समय आने पर उनका शरीर छूट गया।

यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय योगाय साङ्ख्यशिरसे प्रकृतीश्वराय।

नारायणाय हरये नम इत्युदारं हास्यन्मृगत्वमपि य: समुदाजहार।।5।14।45।।

राजा भरत ने मृग का शरीर मिलने पर भी पूर्ण पुरुषोत्तम को नहीं भूला। मृग योनि में भी हँसते हुए भगवान्का नाम जपते उन्होंने शरीर छोड़ा। मृग का शरीर छोड़ने पर राजा भरत का जन्म एक ब्राह्मण घर में मनुष्य के देह में हुआ। भगवान्के विमुख लोगों की कुसंगति से बचने के लिए वे बहरे तथा गूँगे जैसा जड़वत व्यवहार करते थे। अपन मन में सर्वदा भगवान्के चरणारविन्द का स्मरण करते हुए उनके लीलागुणों का जप करते रहते। उन्हें वैदिक शिक्षा देने का पिता का सब प्रयास विफल रहा। लोग इन्हें जड़भरत कहते थे। जो कुछ भी काम में लोग लगा देते वे करते परन्तु पढ़ाई लिखाई से दूर रहते। इन्द्रिय तृप्ति के लिए भोजन नहीं करते परन्तु जो भी थोड़ा तथा स्वादु या अस्वादु भोजन मिलता शांत मन से खा लेते। वे शरीर से सुडौल एवं बलिष्ठ दिखते। सर्वदा एक मात्र मैला कुचैला कोपिन पहने रहते। केवल भोजन पर भाइसब उन्हें खेती के काम में लगाये रहता।एक बार डाकुओं के सरदार को पुत्र प्राप्ति की ईच्छा से भद्रकाली को एक नरवलि देनी थी। रात्रि में जड़भरत खेत की पहरेदारी परे थे। डाकू के अनुचरों ने उन्हें पकड़कर भद्रकाली के मन्दिर में उपस्थित किया। जड़भरत को नये वस्त्रादि से सुसज्जित कर भोजनादि कराने के उपरान्त जैसे ही तलवार से उसके सिर को काटने का उपक्रम हुआ कि देवी प्रकट होकर तलवार छीन कर डाकूदल की हत्या करने लगी और उन लोगों का रक्तपान करने लगी।

एवमेव खलु महत्-अभिचार-अतिक्रम: कात्स्र्न्येन-आत्मने फलति।।5।9।19।।

साक्षात्-भगवता -अनिमिष- अरिवर- आयुधेन- अप्रमत्तेन तै: तै: भावै: परिरक्ष्यमाणानां तत्पादमूलम्-अकुतश्चित्-भयम्-उपसृतानाम्भागवत-परमहंसानाम्।।5।9।20।।

जब कोई साधु पुरुष पर अनाचार करता है तो उसे दण्डित होना पड़ता है। आत्मनिष्ठ की रक्षा स्वयं भगवान्करते हैं। परमहंस भक्त सदैव भगवान्के चरणाविन्द की शरणागत रहता है।जड़भरत को देवी पर बलि चढ़ाये जाने का तनिक भी भय नहीं था। अनन्य भक्त के लिए इस तरह की घटना आश्चर्यजनक नहीं है।

एक बार सिन्धु तथा सौवीर नरेश रहूगण पालकी से कपिलाश्रम जा रहे थे। उन्हें रास्ते में पालकी ढ़ोने वाले एक अन्य कहार की आवश्यकता हुई। उनके अनुचर ने संयोग से पास में बैठे जड़भरत जी को शरीर से हृष्ट-पुष्ट देखकर पालकी ढ़ोने वाले कहार में लगा दिया। जड़भरत जी रास्ते में चींटी आदि को बचाने में अन्य कहारों से तालमेल नहीं बना पा रहे थे। फलस्वरूप पालकी में असुविधा के लिए राजा रहूगण ने कहारों को चेताया। अन्य कहारों ने नये कहार जड़भरत जी पर ही सारा दोष मढ़ दिया। आगे बढ़ने पर पालकी की गति में सुधार नहीं देखकर राजा ने सोचा इसकी संगति में अन्य कहार भी अवज्ञा न करने लगे, इसलिए उसने पालकी रोककर

जड़भरत जी पर व्यंग किया। बूढ़े हो तथा दुबले-पतले हो न ! जड़भरत जी पर इस व्यंग का असर नहीं हुई क्योंकि वे देहात्म-बुद्धि से ऊपर उठ चुके थे। आगे बढ़ने पर जब पालकी में पूर्ववत्असुविधा होती रही तब रोष में पालकी रोककर जड़भरत जी को बहुत भला-बुरा कहते हुए राजा ने राजाज्ञा की अवज्ञा के लिए मृत्यु दण्ड तक की सजा की धमकी दी।

ऐसा सुनकर जड़भरत जी ने राजा से आत्मज्ञान की बात की। शरीर एवं आत्मा को एक समझने वाले जैसी बात आपने की है। मैं आत्मा हूँ और शरीर नहीं हूँ। आपके व्यंग से कही बात सही है। मोटा तथा दुबला-पतला तो शरीर है आत्मा नहीं। दण्ड शरीर को मिलेगा उससे मेरी आत्मा को कोई कष्ट नहीं क्योंकि भार तो शरीर ढ़ो रहा है मेरी आत्मा नहीं। आप स्वामी और मैं दास हूँ। यह सब क्षणिक स्थिति है।हरकोई प्रकृति के गुणों से प्रेरित है। अत: सांसारिक स्वामी-सेवक का सम्बन्ध बदलते रहता है।

त्वयोदितं व्यक्तम्-अविप्रलब्धं भर्तु: स मे स्याद्यदि वीर भार:।

गन्तुर्यदि स्यात्-अधिगम्यम्-अध्वा पीवेति राशौ न विदां प्रवाद:।।5।10।9।।

उन्मत्त-मत्त-जड़वत्-स्वासंस्थां गतस्य मे वीर चिकित्सितेन।

अर्थ: कियान् भवता शिक्षितेन स्तब्धप्रमत्तस्य च पिष्टपेष:।।5।10।13।।

आपने मेरी जड़ता तथा पागलपन की चिकित्सा करने यानी दण्ड से ठीक करने की बात कही। मैं आत्मनिष्ठ हूँ और पागलपन दण्ड से ठीक नहीं होता। पीसे हुए आँटा को आप क्या पीसेंगे ? राजा का राजमद दूर हो गया क्योंकि सत्य की चर्चा में राजाकी निष्ठा थी। पालकी से उतरकर रहूगण राजा जड़भरत जी के चरणों पर गिर पड़े। राजा ने निवेदन किया कि ब्राह्मण के वेष में अवधूत की तरह आप कौन हैं?

अहं च योगेश्वरम्-आत्मतत्त्वविदां मुनीनां परमं गुरुं वै ।

प्रष्टुं प्रवृत्त: किम्-इह-अरणं तत्साक्षात्-हरिं ज्ञानकला-अवतीर्णम्।।5।10।19।।

आप योगेश्वर तथा ईश्वर के स्वरूप ज्ञानावतार कपिलदेव भगवान्के साक्षात्प्रतिनिधि प्रतीत होते हैं। मुझपर अनुग्रह करके आपने दर्शन दिया है।

स्थालि-अग्नितापात्-पयसो-अभिताप: तत्-तापत: तण्डुल-गर्भ-रन्धि:।

देहेन्द्रिय-अस्वाशय-सन्निकर्षात्तत्संसृति: पुरुषस्य-अनुरोधात्।।5।10।22।।

राजा रहूगण ने जिज्ञासा की कि आग पर रखे वर्तन के दूध एवं चावल साथ-साथ तपते हैं तथा चावल पूरा पक जाता है। इसी प्रकार हमारे शरीर के सुख एवं दु:ख के कारण हमारा मन, इन्द्रियाँ तथा आत्मा साथ-साथ कैसे प्रभावित नहीं होंगे इसका बोध कराने की कृपा करें।

तन्मे भवान्-नरदेव-अभिमान-मदेन तुच्छीकृत-सत्तमस्य।

कृषीष्ट मैत्री-दृशम्-आर्तबन्धो यथा तरे सत्-अवध्यानम् अंह:।।5।10।24।।

राजा होने के मद में मैंने आपकी अवमानना करके अपराध किया है। आपकी कृपा से ही इस अपराध से मुक्त हो सकूँगा। जड़भरत जी राजा को आत्मज्ञान में अनुभवहीन कहते हैं। जो भौतिक विषयों में प्रेम करते हैं वे आत्मज्ञान

से दूर रहते हैं। मन, ग्यारह इन्द्रियों तथा पाँच तत्त्वों का प्रधान है और जन्म का बन्धन मन के ही कारण होता है। मन की वासना ही आत्मा को विभिन्न योनियों की देह में ले जाता है।

क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः साक्षात्स्वयं ज्योतिः -अजः परेशः।

नारायणो भगवान्वासुदेवः स्वमायया-आत्मनि-अवधीयमानः। ।5।11।13। ।

भ्रातृव्यम्-एनं तत्-अदभ्र-वीर्यम्-उपेक्षया-अध्येधितम्-अप्रमत्तः।

गुरोः हरेः चरण-उपासना-अस्त्रो जहि व्यलीकं स्वयम्-आत्म-मोषम्। ।5।11।17। ।

सृष्टि के नियामक हैं और सबमें स्थित वासुदेव की अहैतुकी कृपा से ही कल्याण संभव है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मन छः शत्रु हैं जो जीव को बद्ध बना देते हैं। आत्मा की स्वाभाविक स्थिति मन के भ्रम से ढ़की हुई दिखती है। गुरु के चरणारविन्द तथा भगवान्की उपासना छः शत्रुओं को जीतने के अमोघ अस्त्र हैं।

राजा के अनेकों प्रश्नों के समाधान में जड़भरत जी ने कहा कि -

यदा क्षितौ-एव चराचरस्य विदाम निष्ठां प्रभवं च नित्यम्।

तन्नामतोऽन्यद् व्यवहारमूलं निरूप्यतां सत्क्रियया-अनुमेयम्। ।5।12।8। ।

इस पृथ्वी पर चर एवं अचर मिट्टी के विभिन्न स्वरूप हैं। अन्त में सब धूल में बदल जाते हैं। विभिन्न उपाधियाँ नाम मात्र के लिए ही हैं। पदार्थ, प्रकृति, उद्देश्य, काल तथा कर्म द्वारा ही सृष्टि की विभिन्नता जानी जाती है।

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थम्-एकम्-अनन्तरं तु-अबहिः ब्रह्म सत्यम्।

प्रत्यक्प्रशान्तं भगवत्-शब्दसंज्ञं यत्वासुदेवं कवयो वदन्ति। ।5।12।11। ।

रहूगण-एतत्-तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।

न-छन्दसा नैव जल-अग्नि-सूर्यैः विना महत्-पादरजो-अभिषेकम्। ।5।12।12। ।

कल्पनातीत परमसत्य पर ध्यानस्थ होने के लिए प्रयत्नशील योगी उन्हें वासुदेव, ब्रह्म या परमात्मा आदि से सम्बोधित करते हैं। तपस्या,दान, वैदिक कर्म, जल, सूर्य तथा अग्नि की उपासना आदि से परम सत्य की अनुभूति नहीं होगी जबतक कि महानभक्तों की चरणधूलि को अपने शरीर पर मल कर शुद्ध एवं पवित्र नहीं किया जाय।

अहं पुरा भरतो नाम राजा विमुक्त-दृष्ट-श्रुत-सङ्गबन्धः।

आराधनं भगवत ईहमानो मृगोऽभवं मृगसङ्गात्-हतार्थः। ।5।12।14। ।

सा मां स्मृतिः मृगदेहेऽपि वीर कृष्णार्चन-प्रभवा नो जहाति।

अथो अहं जनसङ्गात्-असङ्गो विशङ्कमानो-अविवृतः चरामि। ।5।12।15। ।

मैं पूर्व जन्म में राजा भरत था। संसार से विरक्त होकर प्रत्यक्ष अनुभव से भगवान्की सेवा में लगा रहता था। संयोग से एक मृगशावक के प्रति स्नेह बढ़ गया और मेरा पुनर्जन्म मृग योनि में हुआ। पूर्वजन्म की भगवद्भक्ति के फलस्वरूप मृगयोनि में भी स्मृति बनी रही और पुनः अब मनुष्य योनि में आया परन्तु मैं सामान्य व्यक्तियों की कुसंगति से अपने को दूर रखते हुए अकेला घूमता-फिरता हूँ।

तस्मात्-नरोऽसङ्ग-सुसङ्ग-जात-ज्ञान-असिना-इह-एव विवृक्णमोहः।

हरिं तद्-इहा-कथन-श्रुताभ्यां लब्धस्मृतिः याति-अतिपारम्-अध्वनः। ।5।12।16। ।

इसलिए भक्तों की संगति से व्यक्ति प्राप्त ज्ञान की तलवार से संसार के मोह को काटकर भगवान् की लीलाकथा का श्रवण एवं कीर्तन करते हुए परमधाम को जा सकता है।

दुरत्यये-अध्वनि-अजया निवेशतो रजस्तम: सत्त्व-विभक्त-कर्मदृक्।
स एष सार्थोऽर्थपर: परिभ्रमन्भवाटवीं याति न शर्म विन्दति।।5।13।1।।

जड़भरत जी ने राजा रहूगण को भवाटवी नामक एक रूपक सुनाया। सात्त्विक कर्म से विमुख रजोगुण तथा तमोगुण में लगा जीव दुस्तर माया के जाल में पड़कर जन्म-मृत्यु का ही चक्कर लगाते रहता है। भगवत् प्राप्ति के वास्तविक सुख को प्राप्त नहीं कर पाता। संसार को एक घनघोर जंगल बताते हुए जड़भरत जी ने कहा कि इस जंगल में छ: लुटेरे हैं और अनेक हिंसक पशु जंगल में फँसे मानवों का रक्त पीते रहते हैं। मन तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ डाकू हैं तथा प्राय: पत्नी तथा पुत्रादि हिंसक पशु की तरह व्यवहार करते हैं। जीव छ: शत्रुओं को अपना मानकर भ्रमवश सांसारिक कामनाओं का शिकार होताा है। भगवान्को भूलकर क्षणिक भौतिक सुख-दु:ख के चक्कर में समय व्यर्थ गँवाता है।

तै: वञ्चितो हंसकुलं समाविशन्-अरोचयन्-शीलम्-उपैति वानरान्।
तत्-जाति-रासेन सुनिर्वृत-इन्द्रिय: परस्पर-उद्वीक्षण-विस्मृत-अवधि:।।5।13।17।।

सद्गुरु को त्यागकर भौतिक कामनाओं के चक्कर में कपटी साधुओं के जाल में पड़कर वानरों की तरह एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर कूदता चलता है।समय का ज्ञान खोकर मृत्यु के निकट पहुँचता है।

अहो नृजन्म-अखिल-जन्मशोभनं किं जन्मभि: तु-अपरै: अपि-अमुष्मिन्।
न यत्-हृषीकेशयश: कृतात्मनां महात्मनां व: प्रचुर: समागम:।।5।13।21।।
न हि- अद्भुतं त्वच्चरणाब्ज-रेणुभि: हत-अहंसो भक्ति: अधोक्षजेऽमला।
मौहूर्तिकात् यस्य समागमात्च मे दुस्तर्क-मूलो-अपहतो-अविवेक:।।5।13।22।।
नमो महद्भ्योऽस्तु नम: शिशुभ्यो नमो युवभ्यो नम आवटुभ्य:।
ये ब्राह्मणा गाम्-अवधूत-लिङ्गा: चरन्ति तेभ्य: शिवमस्तु राज्ञाम्।।5।13।23।।

राजा रहूगण ने कहा कि समस्त योनियों में मनुष्य जन्म ही श्रेष्ठ है। भगवान् हृषीकेश के आप जैसे भक्त के समागम से विहीन स्वर्ग के देवों का जन्म निरर्थक है। आपके चरणरज से धूसरित होकर समस्त कुतर्को, अहंकार तथा अविवेक से मुक्त होकर भगवान् अधोक्षज की भक्ति दृढ़ हो जाती है।भगवन्निष्ठ वयोवृद्ध, युवा, बालक, वटुक या अवधूत हों मैं उन सबों को नमस्कार करता हूँ।मेरे जैसे अहंकारी का उनकी कृपा से ही कल्याण होगा।

सौवीरपति: अपि सुजन-समवगत-परमात्म-स-तत्त्व आत्मनि-आविद्या-अध्यारोपितां च देहात्म-मतिं विससर्ज। एवं हि नृप भगवत्-आश्रित-आश्रित-अनुभाव:।।5।13।25।।

शुकदेव जी ने कहा कि सौवीरनरेश जड़भरत जी का उपदेश ग्रहण कर आत्मनिष्ठ हो गये। भगवान् के दास के दास का जो आश्रय ग्रहण करता है वह देहात्मबुद्धि से मुक्त होता है।शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को जड़भरत जी एवं राजा रहूगण के संवाद में आये भवाटवी के भाव को स्पष्ट करते हुए बताया कि प्राणी का भौतिक जीवन छ: ठगों

यानी मन तथा पाँच इन्द्रियों के साथ शुरु होता है।सकाम कर्म के चक्कर में किसी योनि में कभी स्वर्ग का देवता भी बनता है परन्तु पुण्य समाप्त होने पर पुन: पृथ्वी पर नये शरीर में आ जाता है।

हरि-गुरु-चरणारविन्द-मधुकर-अनुपदवीम्-अवरुन्धे।। 5।14।1।।

भगवान्के चरणारविन्द के मकरन्द के लिए भौंरे जैसा मँड़राते हैं वैसे भगवान्के भक्तों की संगति से वंचित रहने के कारण ही जीव सांसारिक घोर वन से निकल नहीं पाता है।

कदाचित्-ईश्वरस्य भगवतो विष्णो: चक्रात्-परमाणु-आदि-द्विपरार्ध-अपवर्गकाल-उपलक्षणात्-परिवर्तितेन वयसा रंहसा हरत आब्रह्म-तृण-स्तम्ब-आदीनां भूतानाम्-अनिमिषतो मिषतां वित्रस्त-हृदय: तम्-एव-ईश्वरं काल-चक्र-निजायुधं साक्षाद्भगवन्तं यज्ञपुरुषम्-अनादृत्य पाखण्डदेवता: कङ्क-गृध्र-बक-वटप्राया आर्य-समय -परिहृता: साङ्केत्येन-अभिधत्ते।।5।14।29।।

भगवान् का अपना आयुध सुदर्शन चक्र कालचक्र की तरह घूमते हुए एक धूलकण से लेकर ब्रह्मा तक सबकी आयु का हरण करते रहता है। भवाटवी का भ्रमित प्राणी सर्वनियन्ता भगवान् विष्णु को भूलकर पाखण्ड मत के अन्य देवों की शरण लेकर संसार के चक्कर में ही लगा रह जाता है।

तस्य-इदम्-उपगायन्ति -

आर्षभस्य- इह राज-ऋषे: मनसा-अपि महात्मन:।
न अनुवर्त्म-अर्हति नृपो मक्षिकेव गरुत्मत:।।5।14।42।।
यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय योगाय साङ्ख्यशिरसे प्रकृति-ईश्वराय।
नारायणाय हरये नम इत्युदारं हास्यन्मृगत्वम्-अपि य: समुदाजहार।।5।14।45।।

जड़भरत के उपदेशों का सार सुनाने के बाद शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को कहा कि गरुड़ जी के मार्ग का जैसे एक मक्खी अनुसरण नहीं कर सकती उसी तरह सामान्य राजागण जड़भरत जी के बताये मार्ग पर चलने में सक्षम नहीं हैं। राजा भरत ने मृग का शरीर मिलने पर भी पूर्ण पुरुषोत्तम को नहीं भूला। मृग योनि में भी हँसते हुए भगवान्का नाम जपते उन्होंने शरीर छोड़ा।

5।4।गंगा का अवतरण एवं राजा प्रियव्रत द्वारा विभक्त भूभाग के उपास्य देव

राजा प्रियव्रत के रथ के पहिए से सात द्वीप बने थे जिसके कारण भूमंडल पृथक-पृथक खण्डो में बँट गया था। भूमण्डल कमल के फूल के समान है। इसके सातों द्वीप पुष्प-कोष के समान लगते हैं। इसके मध्य में जम्बूद्वीप है। जम्बूद्वीप आठ पर्वतों से नौ अलग-अलग खण्डों में बँटा है जिसे वर्ष कहते हैं। खण्डों के बीच में इलावृत नामका एक खण्ड है जिसके केन्द्र में ठोस स्वर्ण का बना सुमेरु पर्वत है। इलावृत वर्ष के दक्षिण में पूर्व से पश्चिम की ओर विस्तरित तीन पर्वत हैं। **5।16।9** श्लोक के अनुसार सबसे उत्तर वाला निषध, उसके दक्षिण हेमकूट तथा सबसे दक्षिण हिमालय पर्वत है जो क्रमश: किम्पुरुषवर्ष, हरिवर्ष तथा भारतवर्ष की सीमा निर्धारित करते हैं। सुमेरु पर्व त चारों दिशाओं में चार पर्वत से घिरा है जिसमें से प्रत्येक के शिखर पर मध्य में एक - एक सरोवर है। ये सरोवर पृथक रूप से दूध, घी, इक्षुरस तथा जल के हैं जिसका उपभोग देवतालोग करते हैं।

एक बार भगवान् विष्णु वामन बनकर बलि से उसके यज्ञ में पधारकर तीन कदम जमीन दान में प्राप्त किये थे। तीन पग जमीन लेने के लिए वामन भगवान्ने त्रिविक्रम भगवान्का स्वरूप धारण कर जब अपने बायें पैर को ऊपर उठाया तब वह ब्रह्माण्ड के बाहरी आवरण में लगा तथा उनके बायें चरण के अँगूठे से आवरण में छेद हो गया। उस छिद्र से कारण-समुद्र का जल गिरा जो भगवान्के चरणारविन्द को धोते हुए गंगा नदी के रूप में इस ब्रह्माण्ड में प्रवेश किया। भगवान् विष्णु के चरण को धोने के कारण यह गंगा और विष्णुपदी भी कही जाती है तथा इस दिव्य जल से सभी प्राणियों का कल्याण होता है। एक हजार वर्ष के बाद गंगा विष्णुपद के नाम से विख्यात ध्रुवलोक में गिरी। राजा उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव जी विष्णुपदी जल को अपने शिर पर धारण करते हुए अपने हृदयस्थ भगवान्कृष्ण को स्मरण कर पुलकित शरीर से नयनों से अश्रुधार बहाते रहते हैं। ध्रुवलोक से नीचे सप्तर्षि गण इस जल को अपनी जटाओं में धारण करते हैं। वहाँ से गंगा चन्द्रलोक में गिरती हुई मेरु पर्वत के शिखर पर ब्रह्मा के आवास लोक से होकर बहती है। मेरु के शिखर से गंगा चार धारओं में बँटकर चारो दिशाओं में सीता, अलकनन्दा, चक्षु तथा भद्रा नाम से बहती हुई सागर में जा मिलती है। सीता नदी भद्राश्व वर्ष से बहती हुई पश्चिम दिशा के लवणसागर में जा मिलती है। चक्षु नाम की धारा केतुमाल वर्ष से बहती हुई पश्चिम के लवणसागर में जा मिलती है। कुरु प्रदेश से बहती हुई भद्रा नामकी धारा उत्तर के लवण सागर में जा मिलती है।गंगा की अलकनन्दा नामकी धारा ब्रह्मलोक के दक्षिण से निकलकर भारतवर्ष से भगवान् बद्रीनारायण के क्षेत्र से बहती हुई दक्षिण के लवणसागर में जा मिलती है। जम्बू द्वीप के नौ वर्षों में भारतवर्ष ही कर्म प्रधान है तथा बाकी आठ वर्ष देवतुल्य पुण्यात्मओं के क्षेत्र हैं।

इला वर्ष -1- शिवजी द्वारा सङ्कर्षण भगवान्की उपासना

नवस्वपि वर्षेषु भगवान्नारायणो महापुरुषः पुरुषाणां तदनुग्रहाय-आत्मतत्त्व-व्यूहेन-आत्मना-अद्यापि सन्निधीयते।5।17।14।।

भगवान् नारायण अपने चतुर्व्यूह अर्थात् वासुदेव-सङ्कर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध रुप से इन नौ वर्षों में भक्तों के कल्याणार्थ निवास करते हैं। इलावृत वर्ष में शिव जी एकमात्र पुरुष स्वरूप में रहते हैं बाकी सभी वहाँ नारी योनि में निवास करते हैं। चतुर्व्यूह के संकर्षण स्वरूप जो संहारकारक होने के कारण तामस माने जाते हैं शिव जी के उपास्यदेव हैं।

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुण-सङ्ख्यानाय-अनन्ताय-अव्यक्ताय नम इति।।5।17।17।।

शिव जी इसी मन्त्र से भगवान्संकर्षण की आराधना में लीन रहते हैं तथा भगवान् सङ्कर्षण की निम्नवत् स्तुति करते हुए नमन करते हैं -

भजे भजन्य-अरण-पाद-पङ्कजं भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम्।
भक्तेषु-अलम्भावित-भूतभावनं भवापहं त्वा भवभावम्- ईश्वरम्।।5।17।18।।
यमाहुः अस्य स्थिति-जन्मसंयमं त्रिभिः विहीनं यम्-अनन्तम्-ऋषयः।
न वेद सिद्ध-अर्थमिव क्वचित्स्थितं भूमण्डलं मूर्ध-सहस्र-धामसु।।5।17।21।।
यन्निर्मितां कर्हि-अपि कर्मपर्वणीं मायां जनोऽयं गुणसर्ग-मोहितः।
न वेद निस्तारण-योगम्-अञ्जसा तस्मै नमस्ते विलय-उदय-आत्मने।।5।17।24।।

आप ही आराध्य और भक्तों के एकमात्र आश्रय हैं तथा संसार से मुक्त करने वाले हैं। आपकी भक्ति से विमुख होकर संसार में लगा रहना भी आपकी ही ईच्छा से होता है। मैं आपका नित्य सेवक हूँ। हे अनन्त ! आपही को ऋषि लोग सृजन, पालन तथा संहार के नियन्ता कहते हैं। आपके फणों पर प्रत्येक ब्रह्माण्ड सरसों के दाने के समान ही दिखता है। कौन आपकी आराधना नहीं करेगा? आपकी माया से हम सभी बंधे हुए हैं तथा इससे छूटने का मार्ग नहीं जानते। जगत की उत्पत्ति और लय के कारण स्वरूप को नमस्कार है।

भद्राश्व वर्ष -2- भद्रश्रवा द्वारा हयशीर्ष (हयग्रीव) भगवान्‌की उपासना

भद्राश्व वर्ष के स्वामी भद्रश्रवा धर्मराज के पुत्र हैं तथा हयशीर्ष भगवान्‌की निम्न मंत्र से उपासना करते हैं।

ॐ नमो भगवते धर्माय-आत्मविशोधनाय नम इति। 5।18।2।।

वेदान् युगान्ते तमसा तिरस्कृतान्रसातलाद्यो नृ-तुरङ्ग-विग्रहः।

प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते तस्मै नमस्ते-अवितथ-इहिताय इति।।5।18।6।।

धार्मिक विधानों से परिपूर्ण अर्थात् वेद को उपलब्ध करानेवाले तथा सांसारिक दूषण से शुद्ध करने वाले भगवान्हयग्रीव को नमन करते हैं। जब एक राक्षस वेद चुराकर रसातल ले गया तब आपने हयग्रीव के स्वरूप में उस राक्षस से वेद छीन लिया तथा ब्रह्मा की याचना पर पुनः उन्हें वेद उपलब्ध करा दिया। नमस्कार है।

हरिवर्ष -3- महाभागवत प्रह्लाद जी द्वारा नरसिंह भगवान्‌की उपासना

इस खण्ड में महाभागवत प्रह्लाद जी अपने इष्टदेव भगवान् नरसिंह की उपासना में लीन रहते हैं।इष्टमन्त्र है।

ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविः आविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान्रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा। अभयम्-अभयम्-आत्मनि भूयिष्ठा ॐ क्ष्रौम्।।5।18।8।।

तेजो के तेज, वज्र के समान नख एवं दाँत वाले भगवान्नरसिंह को नमस्कार करते हुए प्रार्थना है कि आसुरी प्रवृति से निवृत करें जिससे निडर होकर सांसारिक जीवन के लिए संघर्ष कर सकूँ।

मा-अगार-दार-आत्मज-वित्त-बन्धुषु सङ्गो यदि स्यात्भगवत्प्रियेषु नः।

यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान्सिद्ध्यति-अदूरात्न तथा इन्द्रियप्रियः।।5।18।10।।

यत्सङ्गलब्धं निजवीर्यवैभवं तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम्।

हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽङ्गजं को वै न सेवत मुकुन्दविक्रमम्।।5।18।11।।

प्रह्लाद जी स्तुति करते हुए भगवान्से निवेदन करते हैं कि मुझे घर, पत्नी, सम्पत्ति तथा मित्रादिकों में आसक्ति न करा कर, इन्द्रियादि की तुष्टि से दूर रखकर, आपके प्रेम में लीन रहने वाले आपके दर्शनादि की सिद्धि में लगे भक्तों की संगति में आसक्ति दें। तीर्थो के सेवन से लम्बे समय के बाद भक्ति में प्रवीणता आती है। परन्तु आपकी लीला तथा कीर्ति-कथा के श्रवण से ही आप हृदय में विराजकर कल्मषादि को दूर कर देते हैं। आप कृपा करें जिससे कि आपके भक्तों से ही सर्वदा मेरी संगति बनी रहे।

यस्यास्ति भक्तिर्भगवति-अकिञ्चना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।

हरावभक्तस्य कुतो महद्‌गुणा मनोरथेनासति धावतो बहिः।।5।18।12।।

हरिर्हि साक्षाद्‌भगवान्शरीरिणाम्-आत्मा झषाणामिव तोयम्-ईप्सितम्।

हित्वा महान्-तं यदि सज्जते गृहे तदा महत्त्वं वयसा दम्पतीनाम्।।5।18।13।।

तस्मात्-रजोराग-विषादमन्यु-मानस्पृहा-भयदैन्य-अधिमूलम्।

हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं नृसिंहपादं भजत-अकुतो-भयमिति।। 5।18।14।।

भगवान्के सच्चे भक्त की देह पर अन्य देवगण विराजकर उसमें सद्‌गुण प्रवेश कराते हैं। जो भक्ति से रहित है वह सद्‌गुण हीन रहता है और संसार के फन्दे में दिन बिताता है। जैसे जल मछली के जीवन का आधार है उसीतरह बद्धजीव का भगवान्ही एकमात्र सहारा हैं। भगवान् में अनुराग छोड़कर संसार में लगा रहना नवविवाहित दम्पति के समान है जो घर गृहस्थी में लग जाता है।इससे आध्यात्मिक शक्ति का ह्रास होता है। जो राग, दु:ख, मान, अपमान आदि सांसारिक भाव से हटकर भगवान् नरसिंह का चरणाश्रित है उसका जन्म-मरण के चक्कर से मुक्ति हो जाती है।

<u>केतुमालवर्ष -4- लक्ष्मी जी तथा संवत्सर प्रजापति (दिन-रात- महीना - संवत्सर के अधिकारी) द्वारा कामदेव रूपी हृषीकेश भगवान् की उपासना</u>

उपासना का मन्त्र है - **ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुण-विशेषै: विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय-छन्दोमयाय-अन्न-मयाय-अमृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे चलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात्।।5।18।18।।**

ॐ अर्थात् हे नारायण।'अ' 'उ' एवं 'म' के संयोग से ॐ बना है। 'अ' सर्वनियन्ता नारायण के लिए है। 'उ' सर्व दा नारायण के साथ रहने वाली लक्ष्मी जी का प्रतीक है तथा 'म' अहंकार एवं ममकार वाले जीव के साथ भौतिक जगत् का बोध कराता है।तीनों मिलकर ॐ से नारायण के विराट स्वरूप का ज्ञान कराते हैं। ह्राम्ह्रीम्ह्रूम्कामना सिद्धि के लिए जप करनेवाले के लिए बीज मन्त्र है। हमारी समस्त ईन्द्रियों के स्वामी हृषीकेश भगवान्को नमस्कार है। आप ही सब जीवों के दैहिक तथा मानसिक शक्ति के कारण हैं तथा सोलह इन्द्रियों तथा उनके विषय में आपकी ही आंशिक अभिव्यक्ति है। समस्त वेद के आप ही उपाय एवं उपेय अर्थात् साधन एवं प्राप्य साध्य हैं। इस जन्म तथा अगले जन्म में भी आपकी कृपा की प्रार्थना है।

स वै पति: स्यादकुतोभय: स्वयं समन्तत: पाति भयातुरं जनम्।

स एक एवेतरथा मिथो भयं नैवात्मलाभात्-अधि मन्यते परम्।।5।18।20।।

मत्प्राप्तये-अज-ईश-सुरासुरादय: तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रिये-धिय:।

ऋते भवत्पाद-परायणात्-न मां विन्दन्ति-अहं त्वत्-हृदया यतोऽजित।।5।18।22।।

स त्वं ममाप्यच्युतं शीर्ष्णि वन्दितं कराम्बुजं यत्त्वदधायि सात्वताम्।

विभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया क ईश्वरस्य-ईहितम्-ऊहितुं विभु: इति।।5।18।23।।

लक्ष्मी जी कहती हैं कि भगवान्से बढ़कर कोई नहीं है। वे निर्भय करते हैं तथा भयातुर को शरण देते हैं। सबके स्वामी एवं रक्षक हैं। ब्रह्मा तथा शिव समेत सभी देव-असुरादि विषयसुख को प्राप्त करने की ईच्छा से मेरा आशीर्वा द प्राप्त करने हेतु कठोर तपस्या करते हैं।हे प्रभु! हमारे हृदय में आप ही सदैव विराजते हैं, अत: मैं आपके भक्तों के अतिरिक्त अन्य किसी पर अनुग्रह नहीं करती। हे अच्युत! यद्यपि आप मुझे अपने वक्षस्थल पर रखते हैं परन्तु अपने भक्तों की तरह मेरे शिर पर भी आप अपना वरदहस्त बनाये रखें।

<u>रम्यकवर्ष -5 - मनु द्वारा मत्स्य स्वरूप भगवान्‌की उपासना</u>

पिछले चाक्षुष मन्वन्तर में इस रम्यक खण्ड में मत्स्य के स्वरूप में भगवान्प्रकट हुए थे। रम्यकवर्ष के अधिपति मनु का उपासना-मन्त्र है - **ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणाय-ओजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नम इति।।5।18।25।।**

<u>हिरण्मयवर्ष -6 - पितृगण अर्यमा द्वारा कच्छप स्वरूप भगवान्‌की उपासना</u>

उपासना का मन्त्र है - **ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्व-गुण-विशेषणाय-अनुपलक्षित-स्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते।।5।18।30।।**

<u>कुरुवर्ष -7 - पृथ्वी के द्वारा वराह स्वरूप भगवान्‌की उपासना</u>

जम्बू द्वीप के उत्तरी भाग के कुरु खण्ड में सभी यज्ञाहुतियों को स्वीकार करनेवाले वराह स्वरूप में भगवान् प्रकट हुए थे।वराह भगवान् कलियुग को छोड़कर बाकी तीनों युगों में प्रकट होने के कारण त्रियुगी नारायण कहे जाते हैं। पृथ्वी माता द्वारा उपासना का मन्त्र है - **ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्व-लिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वर-अवयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते।।5।18।35।।**

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसाया जगत्-आदिसूकरः।

कृत्वा-अग्रदंष्ट्रे निरगात्-उदन्वतः क्रीडन्-इव-इभः प्रणतास्मि तं विभुमिति।।5।18।39।।

पृथ्वी माता प्रार्थना करते हुए कहती है कि आदिसूकर अर्थात्आदिवराह भगवान्ने युद्ध में हिरण्याक्ष दैत्य को मारकर सरोवर में हाथी जैसे कमल फूल से खेलता है उसीतरह मुझे अपने दाँतों के अगलाभाग पर सम्भाले सागर से बाहर लाये। इस स्वरूप को नमस्कार है।

<u>किम्पुरुष वर्ष -8 - परमभागवत हनुमान जी द्वारा भगवान् राम की उपासना</u>

उपर्युक्त वर्णित जम्बूद्वीप के सभी आठ खण्ड अदृश्य हैं। जम्बूद्वीप का केवल नौंवा खण्ड जो भारतवर्ष है वही वर्त मान में समस्त देशों का मूल रहा है और सभी देश या महादेश इसी के अंश हैं। इसी तरह जम्बूद्वीप के अतिरिक्त अन्य छः द्वीप भी वर्तमान में अदृश्य हैं।अनुमान यही लगाया जाता है कि जम्बूद्वीप ही आज के सभी महादेशों का प्रतिबोधक है। **किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तम्-आदिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तत्-चरण-सन्निकर्ष-अभिरतः परमभागवतो हनुमान-सह किम्पुरुषैः अविरत-भक्तिः उपास्ते।।5।19।1।।**

इस खण्ड के समस्त निवासियों के साथ परमभागवत हनुमान जी लक्ष्मण जी के बड़े भाई तथा माता सीता के परमप्रिय भगवान्राम की पूजा में संलग्न रहते हैं। गन्धर्व भगवान् के यशगान करते रहते हैं तथा हनुमान जी बड़े योग से भगवान्राम के यश को सुनते रहते हैं। हनुमान जी द्वारा भगवान्राम की उपासना का मन्त्र है -

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षण-शीलव्रताय नम उपशिक्षित-आत्मन उपासितलोकाय नमः साधुवाद-निकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति।।5।19।3।।

भगवान्राम सभी तरह के गुणों को परखने की कसौटी यानी मापदण्ड हैं।

मर्त्यावतारः तु-इह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधाय-एव न केवलं विभोः।

कुतोऽन्यथा स्यात्-रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानि-ईश्वरस्य ।। 5।19।5।।

भगवान् राम का मनुष्य शरीर में अवतार मात्र रावण के वध के लिए ही नहीं था। उन्होंने इस बात की शिक्षा दी कि भोग-विलास तथा पत्नी से भौतिक सुख के चक्कर अनेक प्रकार की परेशानियों को देनेवाला है। पूर्ण परमात्मा होने से माता जानकी के अपहरण से उन्हें कष्ट क्यों होगा?

न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ्ग न बुद्धि: न-अकृति: तोषहेतु:।

तै: यत्-विसृष्टान्-अपि नो वनौकस: चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रज:। ।5।19।7। ।

सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नर: सर्वात्मना य: सुकृतज्ञम्-उत्तमम्।

भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तरान्-अनयत्-कोसलान्-दिवमृइति। ।5।19।8। ।

उच्च कुल, विद्या, बोलने की कला तथा शारीरिक सौन्दर्य से हीन वनवासी वानर भी भगवान्के मित्र हुए। भगवान्विना शर्त के अहैतुकी कृपा करते हैं। देव, दानव, मानव तथा पशु-पक्षी आदि समस्त जीव भगवान्की पूजा बिना किसी विशेष योग्यता के कर सकते हैं क्योंकि वे तुच्छ सेवा से भी प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान्राम अयोध्या के समस्त भक्तों तथा प्राणियों को वैकुण्ठ साथ ले गये थे।

<u>भारत वर्ष -9 - परमभागवत नारद जी द्वारा भगवान्नर-नारायण की उपासना</u>

अजनाभ वर्ष (**5-19-28**) के नाम से विदित जम्बूद्वीप का यह भूखण्ड अव भारतवर्ष कहा जाता है। ऋषभदेव के यशस्वी पुत्र राजा भरत के नाम पर इसे अब भारतवर्ष कहते हैं। राजा भरत दूसरे जन्म में मृग के रूप में आये थे और तीसरे जन्म में जड़भरत नामके परमहंस वृत्ति से युक्त अवधूत की तरह ही पूरा जीवन व्यतीत किये। इन्होंने राजा रहूगण को तत्त्वज्ञान का बोध कराया था। **भारतेऽपि वर्षे भगवान्-नरनारायणाख्य आकल्प -अन्तम्-उपचित -धर्मज्ञानवैराग्य- ऐश्वर्य- उपशम - उपरम - आत्म - उपलम्भनम्-अनुग्रहाय - आत्मवताम्-अनुकम्पयया - तप: अव्यक्तगति: चरति। ।5।19।9। ।**

दयावश भगवान् नर-नारायण के रूप में भारतवर्ष के बदरिकाश्रम में कल्पान्त तक तपस्या में लीन रहते हुए इन्द्रियनिग्रह के साथ धर्मादि का बोध कराते हुए अहंकार से मुक्ति की शिक्षा देते हैं।

तं भगवान्-नारदो वर्णाश्रम- वतीभि: भारतीभि: प्रजाभि: भगवत्- प्रोक्ताभ्यां सांख्ययोगाभ्यां भगवत्-अनुभाव-उपवर्णनं सावर्णे: उपदेक्ष्यमान: परमभक्ति-भावेन- उपसरति इदं च - अभिगृणाति । ।5।19।10। ।

परमभक्ति से भगवत् प्राप्ति की क्रिया को बताने वाला सांख्य योग की शिक्षा नारद जी ने सावर्णि मनु को दी जिससे कि वे वर्णाश्रम धर्मो का पालन करते हुए भगवद्भक्ति में दृढ़ता प्राप्त कर सकें। परमभागवत नारद जी द्वारा भगवान्नर-नारायण की सदैव उपासना में रत रहते वाला मन्त्र है -

ॐ नमो भगवते उपशम-शीलाय - उपरत - अनात्म्याय नमो - अकिञ्चन-वित्ताय ऋषि-ऋषभाय नरनारायणाय परमहंस-परमगुरवे आत्माराम-अधिपतये नमो नम इति। ।5।19।11। ।

योऽसौ भगवति सर्वभूत-आत्मनि-अनात्मये - अनिरुक्ते-अनिलयने परमात्मनि वासुदेव-अनन्य-निमित्त - भक्तियोग-लक्षणो नानागति-निमित्त -अविद्याग्रन्थि- रन्धन- द्वारेण यदा हि महापुरुष- पुरुष- प्रसङ्ग: । ।5।19।20। ।

एतदेव हि देवा गायन्ति -

अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरि:।

यैर्जन्म लब्धं नृषु भारत-अजिरे मुकुन्द-सेवा-औपयिकं स्पृहा हि नः। ।5।19।21। ।

जीव को शुद्ध भक्त की संगति अनेकानेक जन्मों के पुण्य से होता है। सकाम कर्मों की अज्ञान-ग्रन्थि कट जाती है। मन तथा वाणी से परे सबसे श्रेष्ठ भगवान् वासुदेव की सेवा में मन लगना ही भक्तियोग का लक्षण है। भारत वर्ष के मनुष्यों के भाग्य की सराहना करते हुए देवगण कहते हैं कि इनके पूर्व जन्म के तपस्या के कारण ही भगवान्इन्हें भारत में भेजते हैं जहाँ मनुष्यों को आत्मसाक्षात्कार का पूर्ण अवसर मिलता है। इस तरह का कोई मौका स्वर्ग में रहने वालों को नहीं मिलता है।

कल्पायुषां स्थान-जयात्-पुनर्भवात्क्षणायुषां भारत-भू-जयो वरम्।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयान्ति-अभयं पदं हरेः। ।5।19।23। ।
न यत्र वैकुण्ठ-कथा-सुधापगा न साधवो भागवताः तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम्। ।5।19।24। ।

कल्प भर के ब्रह्मलोक की आयु के बाद भी पुनर्जन्म होता है परन्तु भारत की अल्पायु में भी भगवान्के चरणारविन्द में प्रीति करने के अवसर का सुदपयोग करने से संसार के आवगमन से छुटकार मिल जाता है।यह अवसर ब्रह्मलोक में नहीं मिलता है क्योंकि वहाँ की जीवन शैली में भगवान् से अनुराग करने का कोई मौका नहीं मिलता। जहाँ भगवान्की कथामृत की गगांधार नहीं बहती और जहाँ भगवान्के अनुरागी सन्त नहीं रहते तथा जहाँ भगवान्का उत्सव आदि नहीं मनाया जाता उस स्थान में बुद्धिमान् पुरुष की अभिरुचि नहीं रहती।

सत्यं दिशति-अर्थितम्-अर्थितो नृणां नैवार्थदो यत्-पुनः अर्थिता यतः।
स्वयं विधत्ते भजताम्-अनिच्छताम्-इच्छा-पिधानं निजपादपल्लवम्। ।5।19।27। ।

भगवान् अपने अनुग्रह से सकामी भक्त की बार-बार की इच्छा की पूर्ति करते हैं परन्तु अपने चरणारविन्द में अतिशय प्रीति न रहने पर भी उसे शरणागत बनाते हैं जिससे उसकी सारी इच्छा बिना माँगे स्वयमेव पूरी हो जाती है। पुराकाल से भारत में मानव समुदाय को चार वर्णो तथा चार आश्रमों में वर्गीकृत करने की प्रथा है। वर्ण व्यवस्था कर्मानुसार है इसे जन्म से लगाव नहीं है। महर्षि विश्वामित्र क्षत्रिय कुल के होकर भी अपनी तपस्या के कर्म से ब्रह्मर्षि यानी ब्राह्मण के गुणों से समायुक्त हो गये। आधुनिक काल में वर्गहीन समाज बनाने की प्रवृति के कारण वर्ण व्यवस्था में कुरीतियाँ भर गयी है। इसका श्रेय वर्तमान कलियुग को ही है क्योंकि कलियुग का युगधर्म तामस एवं रजोगुण प्रधान है। इस युग में सतोगुण का लोप होना स्वाभाविक है। जन्म से वर्ण को जोड़ दिया गया है। कोई संस्था भी ऐसी नहीं है जो वर्णव्यवस्था को ठीक रास्ते से चलाये। कलियुग को छोड़कर अन्य तीन युगों में ऋषि-मुनियों के आश्रम से स्वतः धर्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था को चलाया जाता था।

अस्मिन्नेव वर्षे पुरुषैः लब्धजन्मभिः शुक्ल-लोहित-कृष्ण-वर्णेन स्वारब्धेन कर्मणा दिव्यमानुष-नारक-गतयो वह्व्य आत्मन आनुपूर्व्येण सर्वा ह्येव सर्वेषां विधीयन्ते यथावर्ण-विधानम्-अपवर्गः -च-अपि भवति। । 5।19।19। ।

भारत में जन्म से ही सतोगुण-रजोगुण-तमोगुण के आधार पर मानव समुदाय का विभाजन है। विगत जन्म के कर्म के अनुसार ही नया जन्म होता है। सद्‌गुरू द्वारा ही मनुष्य को चार वर्णो में रखा जा सकता है तथा उसे भगवान् विष्णु की सेवा में लगे रहने का सही मार्ग बताया जा सकता है।

स्वामी श्रीरामानुजाचार्य जी ने अपनी पुस्तक वेदान्त संग्रह में लिखा है -

एवंविधपराभक्तिस्वरूपज्ञानविशेषस्योत्पादक: पूर्वोक्ताहरहरुपचीयमानज्ञानपूर्वककर्मानुगृहीतभक्तियोग एव; यथोक्तं भवता पराशरेणवर्णाश्रमेति। निखिलज्गदुद्धारणायावनितलेऽवतीर्णं परब्रह्मभूत; पुरुषोत्तम: स्वयमेतदुक्तवान्- "स्वकर्म-निरत: सिद्धि यथा विन्दति तच्छृणु" "यत: प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्। स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानव:।।"

महर्षि पराशर मुनि ने विष्णुपुराण 3।8।9। में कहा है -

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण पर: पुमान्।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकार:।।वि पु 3।8।9।।

वर्णाश्रम की व्यवस्था के अन्तर्गत आराधना से भगवान् विष्णु प्रसन्न रहते हैं।

5।5। सूर्यमण्डल के अन्य ग्रहों की स्थिति एवं वासुदेव स्वरूप शिशुमार चक्र

सूर्य बारह राशियों में घूमता है। **यदा मेष-तुलयो वर्तते तदा-अहोरात्राणि समानानि भवन्ति यदा वृषभ-आदिषु पञ्चसु च राशिषु चरति तदा-अहानि-एव वर्धन्ते ह्रसति च मासि मासि-एक-एका घटिका रात्रिषु।5।21।4।।** मेष एवं तुला में सूर्य की स्थिति रहने पर दिन एवं रात बराबर होते हैं। वृष से कन्या तक पाँच राशियों में दिन का बढना एवं घटना होता है परन्तु सदा रात्रिमान से दिनमान बड़ा ही रहता है। वृष से कर्क तक दिन प्रत्येक माह में उत्तरोत्तर चौबीस मिनट बढ़ते जाता है। पुन: कर्क से तुला में प्रवेश तक दिन हर माह चौबीस मिनट क्रमश: छोटा होता है तथा तुला में पहुँच कर पुन: दिन रात बराबर हो जाता है। अर्थात् कर्क राशि में सबसे बड़ा दिन होता है। **यदा वृश्चिकादिषु पञ्चसु वर्तते तदाहोरात्राणि वर्तते तदाहोरात्राणि विपर्ययाणि भवन्ति।। 5।21।5।।** इसी तरह से वृश्चिक से रात्रिमान दिनमान की अपेक्षा क्रमश: बढ़ती जाती है और मकर में प्रवेश तक सबसे लम्बी रात होती है। उसके बाद रात्रिमान घटने लगता है तथा मेष में प्रवेश करने पर रात्रि तथा दिन बराबर हो जाते हैं।उपर्युक्त बातें सायन सूर्य की स्थिति में होती है। वर्तमान में स्थूल रूप से तेईस डिग्री सूर्य का अयनांश है। निरयन्सूर्य में अयनांश जोड़ने से सायन सूर्य का ज्ञान होता है।

यावत्-दक्षिणायनम्-अहानि वर्धन्ते यावत्-उदगयनं रात्रय:।।5।21।6।।

सूर्य के दक्षिणायन होने तक दिनमान बड़ा रहता है और उत्तरायण होने तक रात्रिमान बड़ा रहता है।

पुरस्तात्-सवितु: अरुण: पश्चात्-च नियुक्त: कर्मणि किलास्ते।।5।21।16।।

तथा वालिखिल्या ऋषयोऽङ्गुष्ठ-पर्वमात्रा: षष्टिसहस्राणि पुरत: सूर्य सूक्तवाकाय नियुक्ता: संस्तुवन्ति।।5।21।17।।

अरुण सूर्य के सम्मुख बैठकर सूर्य की तरफ पीछे देखते हुए उनका रथ चलाते हैं। सूर्य की ओर देखते हुए अँगूठे के आकार के साठ हजार वालखिल्य ऋषिगण सूर्यदेव का स्वस्तिवाचन करते रहते हैं।

लक्षोत्तरं सार्ध-नवकोटि-योजन-परिमण्डलं भूवलयस्य क्षणेन सगव्यूति-उत्तरं द्विसहस्रयोजनानि स भुङ्क्ते।।5।21।19।।

नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन लंबे परिक्रमा पथ पर सूर्य दो हजार योजन तथा दो कोस प्रतिक्षण अर्थात्हर विपल में तय की गयी दूरी की गति से दिन-रात में एक बार घूम जाता है।

स एव भगवान्-आदिपुरुष एव साक्षान्नारायणो लोकानां स्वस्तय आत्मानं त्रयीमयं कर्म-विशुद्धि-निमित्तं कविभिरपि च वेदेन विजिज्ञास्यमानो द्वादशधा विभज्य षटसु वसन्त-आदिषु-ऋतुषु यथा-उपजोषम्-ऋतु-गुणान्-विदधाति।।5।22।3।।

संसार की कर्मशुद्धि के लिए सूर्यदेव के रूप में प्रकट होकर बारह भाग में विभक्त राशि एवं मासादि कालचक्र के माध्यम से आदिकारण भगवान्नारायण ने वसन्तादि ऋतुएँ तथा उनसे सम्बद्ध शीत-ताप-वर्षा गुणों की सृष्टि की। चन्द्रगणना से दो पक्ष का एक माह, दो माह का एक ऋतु, छः ऋतुओं का एक वर्ष जो ज्योतिष गणना के लिए सवा दो नक्षत्र का एक मास के अनुसार संचालित होता है। धरती के शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष पितरलोक में एक दिन तथा रात के बराबर होते हैं। सूर्य के प्रकाश की किरणों से एक लाख ऊपर चन्द्र स्थित होकर सूर्य से तेज गति से घूमते रहता है। शुक्ल पक्ष में देवताओं का दिन परन्तु पितरों की रात्रि होती है और कृष्ण पक्ष में देवों की रात तथा पितरों का दिन होता है।इसी कारण से पितरों का पिण्ड एवं जलाञ्जली कृष्ण पक्ष तथा अमावस्या को करने की प्रथा है।

तत उपरिष्टात्- त्रिलक्षयोजनतो नक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेनैव कालायन ईश्वर-योजितानि सह-अभिजिता-अष्टाविंशति।।5।22।11।।

चन्द्रमा से तीन लाख योजन ऊपर अन्य अभिजित को लेकर अट्ठाइस नक्षत्र मेरु की परिक्रमा करते हैं। इन नक्षत्रों से दो लाख योजन ऊपर शुक्र लगभग सूर्य की गति के समान वर्षा कारक होकर घूमता रहता है परन्तु कभी सूर्य से आगे, कभी पीछे तथा कभी सामने रहता है। शुक्र से दो लाख योजन ऊपर रहकर चन्द्रमा का पुत्र बुध भी सूर्य से आगे, पीछे तथा सामने रहते हुए घूमता है। सूर्य के साथ नहीं रहने पर यह कभी अनावृष्टि तथा कभी अतिवृष्टि का कारक होता है। बुध से दो लाख योजन ऊपर रहकर मंगल सर्वदा वर्षा के प्रतिकूल स्थिति उत्पन्न करता है। मंगल से दो लाख योजन ऊपर रहकर बृहस्पति एक वर्ष में एक राशि पार करता हुआ मार्गी गति में अनुकूल परन्तु वक्री गति में प्रतिकूल स्थिति उत्पन्न करता है। बृहस्पति से दो लाख योजन ऊपर रहकर शनि एक राशि में तीस माह रहता है। यह एक अत्यन्त अशुभ ग्रह है।

तत उत्तरस्मात्-ऋषयः एकादश-लक्षयोजनान्तर उपलभ्यन्ते य एव लोकानां शमनुभावयन्तो भगवतो विष्णोः यत्परमं पदं प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति।।5।22।17।।

शनि ग्रह से ग्यारह लाख योजन पर सप्तर्षिगण लोकहित की कामना से भगवान् विष्णु के परम धाम ध्रुवलोक की प्रदक्षिणा करते रहते हैं।

स हि सर्वेषां ज्यातिर्गणानां ग्रहनक्षत्रादीनाम्-अनिमेषण -अव्यक्त-रंहसा भगवता कालेन भ्राम्यमाणानां स्थाणुः इव-अवष्टम्भ ईश्वरेण विहितः शश्वत्-अवभासते।।5।23।2।।

ध्रुवलोक सभी नक्षत्रों तथा ग्रहों के मध्यवर्ती प्रकाशमान स्तम्भ है जिसके चारों ओर भगवान्द्वारा प्रकृति-यन्त्र से बंध कर सभी नक्षत्र-ग्रह सर्वदा घूमते रहते हैं।

केचन - एतत्- ज्योतिः अनीकं शिशुमार-संस्थानेन भगवतो वासुदेवस्य योग - धारणायाम्-अनुवर्ण यन्ति। ।5।23।4।।

नक्षत्रों और ग्रहों का यह विराट यन्त्र जल का प्राणी शिशुमार के स्वरूप में दिखता है जिसे योगी लोग भगवान्वासुदेव का स्वरूप मानकर उस पर ध्यान लगाते हैं। यह कुण्डली मारे है जिसका शिर नीचे तथा पूँछ के अन्त में ध्रुवलोक अवस्थित है। इसके कटि भाग में सप्तर्षि हैं। इसके दाहिने भाग में अभिजित्से पुनर्वसु तक के चौदह नक्षत्र हैं तथा बायीं ओर शेष पुष्य से उत्तराषाढ़ा तक चौदह नक्षत्र हैं। इसके उदर में आकाश-गंगा है। इसके मुँह में मंगल, उपस्थ में शनि, गर्दन पर बृहस्पति, छाती पर सूर्य, हृदय में नारायण, मन में चन्द्रमा, नाभि में शुक्र, स्तनों पर अश्विनी कुमार, प्राण तथा अपान वायु में बुध, गले में राहु, समस्त शरीर में केतु तथा रोमावली में समस्त तारे स्थित हैं।

एतदु हैव भगवतो विष्णोः सर्वदेवतामयं रूपम्-अहः अहः सन्ध्यायां प्रयतो वाग्यतो निरीक्षमाण उपतिष्ठेत नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनाय - अनिमिषां पतये महापुरुषाय-अभिधीमहि-इति ।।**5।23।8।।**

शिशुमार का यह कल्पित स्वरूप भगवान्विष्णु का वाह्य रूप है। तीनों काल में मौन होकर दर्शन करते हुए मन्त्र से उपासना करे - "कालरूप धारण करने वाले, समस्त घूमने वाले ग्रहों के आश्रय, देवों के स्वामी तथा परम पुरुष भगवान्! आपका ध्यान करते हुए नमस्कार करता हूँ।"

सूर्य से दस हजार योजन नीचे अतिदुष्ट ग्रह सिंहिका-पुत्र राहु अवस्थित है। सूर्य गोलक दस हजार योजन वाला तथा चन्द्रमा का गोलक बीस हजार योजन वाला है जबकि राहु का गोलक तीस हजार योजन का है। राहु , सूर्य तथा चन्द्रमा से सदा शत्रुभाव में रहते हुए क्रमशः अमावस्या या पूर्णिमा को इनको ढकने का प्रयास करता है। जब राहु इन्हें सता देता है तब ग्रहण लगता है। राहु से दस हजार योजन नीचे सिद्ध, चारण तथा विद्याधर का लोक है। इन सबों के नीचे यक्ष, राक्षस तथा पिशाचादि का लोक है और वायु यहीं तक विराजमान है। इससे ऊपर का अन्तरिक्ष वायु विहीन है। यक्ष लोक से नीचे एक सौ योजन पर पृथ्वी अवस्थित है।

5।6। <u>पातालादि लोक तथा वामन भगवान्का राजा बलि पर अनुग्रह</u>

इस पृथ्वी के नीचे सात अन्य लोक हैं जो अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल तथा पाताल कहे जाते हैं। पृथ्वी के नीचे के सात लोकों में सूर्य का प्रकाश नहीं जाने से यहाँ दिन तथा रात नहीं होते हैं। बड़े-बड़े सर्पो का यहाँ वास है और इनके मणियों से ही यहाँ अत्यन्त प्रकाश बना रहता है। इन लोकों के निवासियों का जीवन जड़ी- बूटियों के रसायन से चलता है और इनके शरीर पर सर्वदा कान्ति रहती है, वृद्धावस्था का चिह्न कभी नहीं प्रकट होता। **न हि तेषां कल्याणानां प्रभवति कुतश्चन मृत्युर्विना भगवत्-तेजसः चक्र-अपदेशात्। ।5।24।14।।**

भगवान्के चक्र के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु या प्राणी से इन्हें मृत्यु का भय कदापि नहीं होता।

अतल लोक में मय-दानव का पुत्र बल नामक असुर का सामाज्य है जो अति मायावी है। अतल लोक के नीचे वितल लोक हैं जहाँ स्वर्ण खानों के स्वामी शिव जी भवानी के संग में अपने गणों तथा भूतों के साथ रहते हैं। वितल के नीचे सुतल लोक हैं जहाँ विरोचन के पुत्र राजा बलि महाराज का राज्य है।

नो एव-एतत्साक्षात्कारो भूमिदानस्य यत्-तत्- भगवति - अशेष - जीव-निकायानां जीवभूतात्मभूते परमात्मनि वासुदेवे तीर्थतमे पात्र उपपन्ने परया श्रद्धया परमादर-समाहित-मनसा सम्प्रतिपादितस्य साक्षात्-अपवर्गद्वारस्य यत्- विल- निलय - ऐश्वर्यम्।।5।24।19।।

भगवान् विष्णु ने वामन से त्रिविक्रम बनकर तीन पग भूमि के मात्र दान से ही नहीं अपितु इनकी श्रद्धापूर्ण भक्ति से प्रसन्न हो बिल-स्वर्ग यानी नीचे के स्वर्ग का इन्हें अधिपति बनाया है जो स्वर्ग के इन्द्र के साम्राज्य से भी श्रेष्ठ है। बलि महाराज सदा भगवान्विष्णु की भक्ति में रत रहते हैं।

तत्- भक्तानाम्- आत्मवताम्सर्वेषाम्- आत्मनि - आत्मद - आत्मतया-एव।।5।24।21।।

शुद्ध भाव वाले अपने आप को भगवान्को सर्वसमर्पित करते हैं और ऐसे भक्तों के हाथ भगवान्बिके रहते हैं। राजा बलि का सर्वस्व लेकर भी भगवान्ने इन्हें वरुण पाश में बन्दी बनाया था परन्तु इनकी श्रद्धा अक्षुण्ण रही। इनके भीतर भौतिक सुख की प्राप्ति का लेशमात्र भी अवशेष नहीं था। राजा बलि इन्द्र तथा उनके गुरु बृहस्पति को धिक्कारते हैं कि इन्द्र ने भगवान्वामन के प्रकट होने पर भी स्वर्ग का क्षरणशील ऐश्वर्य ही माँगा।

यस्य - अनुदासस्यम्-एव-अस्मत्पितामहः किल वव्रे न तु स्वपित्र्यं यत्-उत - अकुतो-भयं पदं दीयमानं भगवतः परमिति भगवता-उपरते खलु स्वपितरि।।5।24।25।।

राजा बलि कहते हैं कि हमारे पितामह प्रह्लाद जी ने अपने पिता के राज्य को ठुकरा कर भगवान्नरसिंह से भगवान्के दासों के दास की सेवा माँगी। हम तो अपनी भौतिक कामनाओं में इतने लीन हैं कि महाभागवत प्रह्लाद जी का अनुसरण कैसे कर सकते हैं ? शुकदेव मुनि राजा परीक्षित से कहते हैं -

तस्य-अनुचरितम्-उपरिष्टात्-विस्तरिष्यते यस्य भगवान्स्वयम्-अखिल - जगत्- गुरुः नारायणो द्वारि गदापाणिः -अवतिष्ठते निजजन-अनुकम्पित-हृदयो येनाङ्गुष्ठेन पदा दशकन्धरो योजन-अयुतायुतं दिग्विजय उच्चाटितः।।5।24।27।।

मैं ऐसे राजा बलि के चरित का कैसे वर्णन कर सकता हूँ ? फिर भी आगे की कथा में विस्तार से प्रयास करूँगा जिसके द्वार पर गदा लेकर विराजमान वामन भगवान्ने दिग्विजय की कामना से आये रावण को अपने श्रीचरण के अँगूठे से अस्सी हजार योजन दूर फेंक दिया था। राजा बलि के सुतल लोक के नीचे तलातल हैं जहाँ माया का आचार्य मयदानव का साम्राज्य है। तलातल के नीचे महातल में अत्यन्त क्रोधी अनेको फनों से युक्त कद्रू की सर्प -सन्तानों तक्षक तथा कालिय आदि का निवास है जो भगवान्विष्णु के वाहन गरुड़ जी महाराज से सदा भयभीत रहते हैं। महातल के नीचे रसातल में दनु एवं दिति के आसुरी पुत्रों का राज्य है जो सर्पो की तरह बिलों में रहते हैं। रसातल के नीचे पाताल लोक को नागलोक कहते हैं जहाँ वासुकि नाग प्रमुख हैं। नागों के फणों की मणियों से सम्पूर्ण बिल-स्वर्ग यानी नीचे के सभी सात लोक सर्वदा प्रकाशित रहते हैं।

5।7। भगवान्सङ्कर्षण की महिमा

स्कन्ध **3** के अध्याय **8** एवं **9** में सनकादि मुनियों को सङ्कर्षण भगवान्से भागवत सुनने का प्रकरण द्रष्टव्य है। सकन्ध **3** के भगवान्सङ्कर्षण के लोक का यहाँ पाँचवें स्कन्ध में विशेष वर्णन मिलता है।

तस्य मूलदेशे त्रिंशत्-योजन-सहस्रान्तर आस्ते या वै कला भगवतस्तामसी समाख्याता-अनन्त इति सात्वतीया द्रष्ट्र-दृश्ययोः सङ्कर्षणम्-अहम्-इति-अभिमान-लक्षणं यं सङ्कर्षणम्-इति-आचक्षते।।5।25।1।।
यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्तेः सहस्रशिरस एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते।।5।25।2।।

पाताल लोक से तीस हजार योजन नीचे भगवान् सङ्कर्षण का स्थान है। तामसी गुण के नियंत्रक सङ्कर्षण भगवान्ही अनन्त भगवान्भी कहे जाते हैं। अहंकार से आकर्षित प्राणियों की तरह आप भी सबको अपनी ओर आकर्षित करने के कारण सङ्कर्षण कहे जाते हैं। आपके हजारों फणों में से एक के ऊपर यह समस्त ब्रह्माण्ड सरसों के एक दाने के बराबर स्थित है। प्रलयकाल में जब आप क्रुद्ध होते हैं तो आपके भौहें के बीच से एकादश रुद्र प्रकट होते हैं जो संहार कार्य में आपके सहायक बनते हैं।

यस्य-अङ्घ्रि-कमलद्ययुगल- अरुण-विशद-नख-मणि-षण्ड-मण्डलेषु - अहिपतियः सह सात्त्वत-ऋर्षभैः एकान्त-भक्तियोगेन - अवनमन्तः स्ववदनानि परिस्फुरत्-कुण्डल - प्रभामण्डित-गण्डस्थलानि- अतिमनोहराणि प्रमुदितमनसः खलु विलोकयन्ति।।5।25।4।।

भगवान्सङ्कषर्ण के चरणारविन्द के गुलाबी मणि के समान चमकते नख हैं। नागों के अधिपति शुद्ध भक्तगण इन नखों में अपने मुखारविन्द तथा गाल के कुण्डल की शोभा देख आनन्दित हो उठते हैं।

यस्यैव हि नागराज-कुमार्य आशिष आशासानाः चारु- अङ्गवलय- विलसित - विशद- विपुल - धवल - सुभग - रुचिर- भुज - रजत-स्तम्भेषु - अगुरु - चन्दन-कुङ्कुम-पङ्कानुलेपेन - अवलिम्पमानाः तत्अभिमर्शन्- उन्मथित- हृदय - मकरध्वज - आवेश - रुचिर - ललित-स्मिताः तदनुरागमद- मुदित - मदविघूर्णित - अरुण - करुण - अवलोक - नयन - वदन-अरविन्दं सव्रीडं किल विलोकयन्ति।।5।25।5।।

भगवान् अनन्त की सफेद बड़ी भुजायें कंगनों से चाँदी के खम्भों के समान अलंकृत हैं। नागकुमारियाँ जब इन्हें चन्दनादि का लेप लगाती हैं तो इनके स्पर्श से कामुक होती हैं परन्तु भगवान् इनकी मनोभावना को देखकर जब मुस्कराते हैं तो वे लज्जाग्रस्त हो जाती हैं कि भगवान्हमारे मनोभाव को जानते हैं। तब वे भगवान् के मुस्कराते मुखमण्डल को देखती हैं जो भक्तों के प्रेम से प्रमुदित तथा मदविह्वल घूमती लाल - लाल आँखों से सुशोभित होते रहता है। **स एव भगवाननन्तः अनन्तगुणार्णव आदिदेव उपसंहृत-अमर्ष-रोषवेगो लोकानं स्वस्तय आस्ते।।5।25।6।।**

भगवान् सङ्कर्षण अनन्तगुण के सागर होने से अनन्त कहाते हैं तथा लोक कल्याण के लिए अपने रोष तथा असहनशीलता को रोके हुए रहते हैं।

ध्यायमानः सुरासुर-उरग-सिद्ध-गन्धर्व-विद्याधर-मुनिगणैः अनवरत- मदमुदित - विकृत-विह्वल-लोचनः सुललित - मुखरिक - अमृतेन - आप्यायमानः स्वपार्षद - विबुधयूथपतीन्- अपरिम्लान - राग - नवतुलसिका - आमोद - मधु - आसवेन - माद्यन्- मधुकरव्रात - मधुरगीत-श्रियं वैजयन्ती स्वां वनमालां नीलवासा एककुण्डलो हल-ककुदि कृतसुभग-सुन्दरभुजो भगवान्माहेन्द्रो वारणेन्द्र इव काञ्चनीं कक्षामुदारलीलो विभर्ति।।**5**।**25**।**7**।।

देवगणादि भगवान्‌की स्तुति करते रहते हैं। खिले हुए फूल की तरह भगवान्‌की आँखें चंचल रहती हैं तथा अपने मुखारविन्द की वाणी से सबको प्रसन्न रखते हैं। नील वस्त्रधारी भगवान्‌के एक कान में कुण्डल है तथा दोनों हाथ से वे अपने कन्धे पर एक हल को पकड़े हुए हैं। इन्द्र के समान्‌तेजपूर्ण भगवान् के गले में नवीन तुलसी मंजरी की माला की मिठास में लिपटे भौंरों से दिव्य लीला करते हुए भगवान् शोभायमान होते हैं।

5।8। सकाम कर्म से नरक

अनन्त भगवान्‌की महिमा का गान नारद जी अपने पिता ब्रह्मा के दरवार में अपने तम्बूरे पर करते हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भक्तों के हितार्थ ही नाना स्वरूपों में विराजते हैं। शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि आपकी जिज्ञासा के अनुसार सृष्टि का पूर्ण वर्णन आपको वैसा ही सुना दिया जैसा हमने अपने गुरु तथा अधिकारी भक्तों से सुना है। आगे क्या जिज्ञासा है आपकी ? राजा ने जानना चाहा कि जीवात्माओं को विभिन्न गतियाँ क्यों मिलती हैं ? शुकदेव जी ने बताया कि भौतिक जगत के सभी कर्म सत्त्व, रज तथा तामस गुणों से प्रभावित रहते हैं। सतोगुण वाले धार्मिक एवं सुखी रहते हैं। रजोगुण वाले सुख तथा दु:ख से मिश्रित जीवन बिताते हैं। तमोगुण वाले दुष्कर्म में प्रवृत्त, सदा दु:खी तथा पशुवत रहते हैं। दुष्कर्मो के कारण ही विभिन्न नारकीय गतियाँ मिलती हैं। मानसिक रूप से विक्षिप्तावस्था के कारण करने वाले दुष्कर्म में दु:ख घटा रहता है परन्तु नास्तिकतावश किये जाने वाले कर्म उन्हें नरक में ले जाता है। राजा परीक्षित ने पूछा कि क्या ये नरक ब्रह्माण्ड के बाहर हैं या भीतर हीं अन्य लोक की तरह स्थित हैं ? शुकदेव जी ने बताया कि नरक भूमण्डल के नीचे तथा गर्भोदक सागर के जल से थोड़ा ऊपर स्थित है। मृत्यु के बाद विभिन्न गतियों का निर्णय सूर्यदेव के पुत्र यमराज करते हैं। कुछ इक्कीस तरह के नरक बताते हैं परन्तु कुछ लोग इसे अट्ठाईस बताते हैं।

श्रुत्वा स्थूलं तथा सूक्ष्मं रूपं भगवतो यति:।
स्थूले निर्जितमात्मानं शनै: सूक्ष्मं धिया नयेदिति।।5।26।39।।

वासना-बद्ध जीवन के प्रति आकर्षित नहीं रहने वाला ही भक्त है। भक्त को पहले पूर्व में वर्णित लोकादि के स्थूल विराट स्वरूप पर ध्यान करते हुए भगवान्‌के सुन्दर स्वरूप पर मन केन्द्रित करना है। इसी प्रकार यह जीवन सफल होता है।

।। स्कन्ध पाँच पूरा हुआ।।

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध 6

वन्दउँ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

6।1। अजामिल का उद्धार

इस स्कन्ध में दो ऐसी कथाओं का उल्लेख है जिसमें अजामिल और वृत्रासुर के जीवन में दुष्कर्मों में प्रवृत रहने पर भी अन्त में भगवान् के नाम तथा उनकी भक्ति में अनुराग होने के कारण उनका उद्धार हो गया। राजा ने शुकदेव जी से कहा कि द्वितीय स्कन्ध में आपने मुख्यतया निवृत्ति अर्थात् सांसारिक सकाम भाव से छुटकार प्राप्त करने की आधारशिला रखी। विदुर जी तथा उद्धव जी तथा विदुर जी एवं मैत्रेय मुनि के संवाद से तृतीय स्कन्ध में प्रवृत्ति यानी सांसारिक अभिरुचियों के प्रभाव का वर्णन सुना जिससे समस्त भवरोग एवं दु:ख की जड़ सांसारिक कर्मबन्धनों के बारे में स्थिति स्पष्ट हुई। चौथे स्कन्ध में पहले मन्वन्तर के स्वायम्भुव मनु तथा उनके वंशज के ध्रुव जी महाराज की भगवद्भक्ति की दृढ़ता को दर्शाया जिससे वे समस्त ब्रह्माण्ड के सर्वोच्च लोक प्राप्त कर सके। पाँचवें स्कन्ध स्वाम्यभुव मनु के अन्य वंशज में प्रधानतम चरित्र राजा भरत के तीन जन्मों, ब्रह्माण्ड तथा भूमण्डल के विस्तार तथा सूर्यादि ग्रहों की स्थिति एवं उनके प्रभाव का विशद वर्णन सुना। समस्त व्योम में स्थित सभी ग्रह एवं नक्षत्रादि शिंशुमार चक्र के स्वरूप के अंग हैं एवं इसपर ध्यान करने से भगवत् प्राप्ति का मार्ग भी समझा। भगवान् सङ्कर्षण के स्वरूप एवं उनके लोक का वर्णन सुनकर निवृत्ति मार्ग की सार्थकता विशेष रूप से स्पष्ट हुई। पापियों को दुष्कर्म से विभिन्न नरक योनी की यातना भोगने का वर्णन सुना। प्राणियों को नरक की यातना से बचने का मार्ग अब कृपा कर के बतायें। ऐसा सुनकर शुकदेव जी ने कहा -

इतिहासमिमं गुह्यं भगवान् कुम्भसम्भवः ।
कथयामास मलय आसीनो हरिमर्चयन्।।6।3।35।।

मलय पर्वत पर मैंने यह कथा भगवान् अगस्त्य से सुनी थी उसे ही आपको सुनाता हूँ। हरिकथाकारों के विचार हैं कि भागवत का यह अंश वेदव्यास जी का न होकर शुकदेव जी का अपना है जो अगस्त्य मुनि से उनको प्राप्त हुआ था। उन्होंने राजा को बताया कि प्रायश्चित्त से नरक योनी की यातना से बचा जा सकता है। प्रायश्चित्त के लिए वेद विहित सकाम कर्म करके मुक्ति पाने वाले पाप से नहीं छूट पाते।यह नहाये धोये हाथी के जैसा है जो अपने ऊपर पुनः कीचड़ डाल लेता है।

केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः।
अघं धुन्वति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः।।6।1।15।।
न तथा हि-अघवान्राजन्पूयेत तप आदिभिः।
यथा कृष्णार्पितप्राणः तत्-पुरुष - निषेवया।।6।1।16।।

जैसे सूर्य कुहरे का नाश करता है उसी तरह भगवान्वासुदेव की भक्ति से ही भव-बन्धन से छुटकारा सम्भव है। तपस्या तथा दान आदि से पाप का प्रायश्चित्त नहीं किया जा सकता। जो भगवान् कृष्ण के आश्रित शुद्ध भक्त हैं

उनकी सेवा से पाप का प्रायश्चित्त अवश्य सम्भव है।

सध्रीचीनो ह्ययं लोके पन्था: क्षेमोऽकुतोभय:।

सुशीला: साधवो यत्र नारायणपरायणा:।।6।1।17।।

सकृन्मन: कृष्ण-पदारविन्दयो: निवेशितं तद्‌गुणरागि यै: इह ।

न ते यमं पाशभृतश्च तत्-भटान् स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृता:।।6।1।19।।

नारायण भक्त जो साधु स्वभाव के हैं उनके मार्ग का अनुसरण ही भवरोग से निर्भय करने वाला है। प्रायश्चित्त का सबसे अच्छा उपाय भगवान् कृष्ण के दर्शन नहीं भी होने पर उनके दोनों श्रीचरणों की शरणागति है। उनकी लीला तथा गुण-यश आदि के गान करने से यमदूत के पाश का भय स्वप्न में भी नहीं होता। शुकदेव जी ने एक पुरानी कथा सुनायी जिसमें यमदूत एवं विष्णुदूत का संवाद है। अजामिल ब्राह्मण कुल का होते हुए भी एक दासी के संसर्ग से चरित्रहीन हो गया। अट्ठासी वर्ष की उम्र तक वह जुए में धोखा देना तथा लूट-मारकर दस दासीपुत्रों के लालन-पालन में लगा रहा। सबसे छोटे पुत्र का नाम नारायण था। स्वाभाविक रूप से नारायण से उसका लगाव ज्यादा था। नारायण की बोली सुनना तथा उसके खेलकूद देखते रहना ही उसको प्रिय था। उसके सभी काम उसी के साथ होते थे यहाँ तक कि उसके बिना भोजनादि भी नहीं करता था। उसकी मृत्यु समीप आ गयी और एक दिन काले-कलूटे तीन भयावनी बदसूरत यमदूत हाथों में पाश लिए उसके पास आये। डर से रोते हुए अपनी आँखों में पानी भरकर किसी तरह से नारायण का नाम पुकारा। उसके मुँह से नारायण का नाम सुनकर चार विष्णुदूत भी उसके पास आ गये। भगवान्‌विष्णु के पार्षदों ने यमदूतों को रोका और उनसे दण्ड का विधान पूछा। यमदूतों ने अजामिल के कुकृत्यों को उजागर किया कि ब्राह्मण होकर यह वेश्यावृत्ति तथा लूट-मार में लगा तथा इसने अपने पैतृक सम्पत्ति का दुरुपयोग किया। अपनी धर्मपत्नी को त्याग दिया एवं माता-पिता की सेवा से निरत हो गया। यमदूतों ने कहा -

सूर्योऽग्नि: खं मरुद्‌गाव: सोम: सन्ध्या-अहनी दिश:।

कं कु: कालो धर्म इति ह्येते दैह्यस्य साक्षिण:।।6।1।42।।

सभी प्राणियों के कर्मों के साक्षी सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, देवगण, चन्द्रमा, संध्या, दिन-रात, दिशायें, जल, थल तथा स्वयं परमात्मा हैं। साक्ष्य के माध्यम से ही दण्ड का निर्णय होता है। इस जीवन के धर्म तथा अधर्म पर आधारित कर्मों के सहारे आगे के जीवन के फल निश्चित होते हैं। अजामिल ने अपने दुष्कर्मों के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं किया है अत: वह दण्ड का भागी है। ऐसा सुनकर विष्णु भगवान्‌के पार्षदों ने कहा कि -

अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोटि-अहंसाम्-अपि।

यद्‌व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरे:।।6।2।7।।

एतेनैव हि-अघोन: अस्य कृतं स्यात्-अघ- निष्कृतम्।

यदा नारायणाय-इति जगाद चतुरक्षरम्।।6।2।8।।

अजामिल के जीवन के अंतिम में नारायण नाम मात्र के उच्चारण से न केवल इस जन्म का बल्कि पूर्व के करोड़ो जन्मों का पाप नष्ट हो गया। कातर भाव से हरिनाम स्मरण से स्वत: प्रायश्चित हुआ और वह मोक्ष का अधिकारी

बन गया। खाते-पीते बड़े प्रेम से वह अपने लाड़ले को नारायण के चारों अक्षरों का उच्चारण कर बुलाता था।

स्तेन: सुरापो मित्रधुक्-ब्रह्म-हा गुरु-तल्पग:।

स्त्री-राज-पितृ-गोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे। ।6।2।9। ।

सर्वेषाम्-अपि-अघवताम्-इदमेव सुनिष्कृतम्।

नाम-व्याहरणं विष्णो: यत: तत्-विषयामति:। ।6।2।10। ।

चोरी, मदिरापान, मित्रादिक से छल, ब्रह्म-हत्या, गुरु-पत्नी से संभोग तथा स्त्री, पिता, गौ आदि सभी तरह की हत्या के पाप का प्रायश्चित्त भगवान्‌विष्णु के नाम का कीर्तन है। भगवान्‌का ध्यान इसकी ओर खींच जाता है और वे इसकी रक्षा करते हैं।

न निष्कृतै: उदितै: ब्रह्मवादिभि: तथा विशुद्धयति-अघवान् व्रतादिभि:।

यथा हरेर्नाम-पदै: उदाहृतै: तत्-उत्तमश्लोक-गुण-उपलम्भकम्। ।6।2।11। ।

वैदिक रीति के व्रतादिक तथा कर्मकाण्ड से किया गया प्रायश्चित्त शुद्ध तो करता है परन्तु भगवान्‌की भक्ति तथा उनकी लीला-कथा एवं गुणानुवाद के आनन्द से दूर रहता है जो हरिनाम कीर्तन से प्राप्त होता है।

नैकान्तिकं तद्धि कृतेऽपि निष्कृते मन: पुनर्धावति चेदसत्पथे।

तत्- कर्म -निर्हारम् - अभीप्सतां हरेर्गुणानुवाद: खलु सत्त्वभावन:। ।6।2।12। ।

भगवान् के गुणानुवाद के कीर्तन से मन स्वच्छ हो जाता है जबकि कर्मकाण्ड का सकाम प्रायश्चित्त पुन: भौतिक कर्मो में प्रवृत्त कर दे सकता है क्योंकि इससे मन शुद्ध नहीं होता।

अथैनं मा-अपनयत कृत-अशेष-अघनिष्कृतम्।

यदसौ भ्गवन्नाम म्रियमाण: समग्रहीत्। ।6।2।13। ।

मरते समय असहाय होकर इसने भगवान्‌के नाम का उच्चारण किया है जिससे इसके पूर्व के सभी पाप कट गये । अत: हे यमदूतगण ! इसे यमलोक ले जाने का प्रयास मत करो।

साङ्केत्यं पारिहास्यं व स्तोभं हेलनमेव वा।

वैकुण्ठ-नाम-ग्रहणम्- अशेष - अघहरं विदु:। ।6।2।14। ।

पतित: स्खलितो भग्न: सन्दष्टस्तप्त आहत:।

हरि: इति-अवशेन-आह पुमान्-न-अर्हति यातनाम्। ।6।2।15। ।

विद्वानों का मत है कि भगवान्‌का नाम हास-परिहास तथा संगीतादि मनोरंजन के उद्देश्य से ही क्यों न लिया जाय वह समस्त पापों का नाशक होता है। किसी भी आपत्कालिक स्थिति में गिरने तथा साँप काटने आदि के समय भगवान्‌के नाम के उच्चारण से पापी भी नरक-यातना से मुक्त हो जाता है।

गुरूणां च लघूनां च गुरूणि च लघूनि च।

प्रायश्चित्तानि पापानां ज्ञात्वोक्तानि महर्षिभि:। ।6।2।16। ।

महर्षियों ने भारी पाप तथा हल्के पाप के प्रायश्चित्त के लिए भारी तथा हल्के विधियों का प्रावधान किया है। परन्तु नाम संकीर्तन सभी भारी तथा हल्के पापों के प्रायश्चित्त में सहायक है।

तै: तानि-अघानि पूयन्ते तपोदानजपादिभि:।
नाधर्मजं तत्-हृदयं तत्-अपि-ईश-अङ्घ्रिसेवया।।6।2।17।।
अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेत्-एध: यथानल:।।6।2।18।।
यथागदं वीर्यतमम्-उपयुक्तं यदृच्छया।
अजानतोऽपि-आत्मगुणं कुर्यात्-मन्त्रोऽपि-उदाहृत:।।6।2।19।।

तप तथा दानादि से पाप का प्रायश्चित्त होता है परन्तु हृदय में सकाम कर्म का बीज रहता ही है। भगवान्‌की चरण सेवा से हृदय विशुद्ध हो जाता है। जैसे आग सूखी घास को जलाकर भस्म कर देती है उसी तरह से जानकर या अनजान में भगवत्‌नाम लेने से सभी पाप भस्मीभूत हो जाते हैं। भगवत् नाम की महिमा न जानते हुए भी उसके कीर्त न से पाप उसी तरह समाप्त होता है जैसे दवा के प्रभाव से अनजान रोगी निरोग होता है। इस तरह से भगवान्‌विष्णु के पार्षदों ने भक्ति के सिद्धान्त को प्रतिपादित कर अजामिल को यमदूतों के बन्धन से मुक्त करा दिया। अजामिल ने संपूर्ण संवाद को सुनकर यमदूतों के विदा होते ही विष्णुदूतों के चरणों में प्रणाम किया। अजामिल को मुक्त देख विष्णुदूत भी सहसा चले गये। अजामिल को अपने कुकृत्यों के कारण पापग्रस्त होने से बहुत ही पश्चात्ताप हुआ।

अथापि मे दुर्भगस्य विबुधोत्तमदर्शने।
भवितव्यं मङ्गलेन येनात्मा मे प्रसीदति।।6।2।32।।

अपने पाप कर्मो में डूबा हुआ अजामिल अपने को बहुत अभागा मानकर दु:खी था परन्तु भगवान् विष्णु के पार्ष द के दर्शन तथा प्राणदान से बहुत प्रसन्न हुआ।

अन्यथा म्रियमाणस्य नाशुचेर्वृषलीपते:।
वैकुण्ठनाम ग्रहणं जिह्वा वक्तुम्-इह-अर्हति।। 6।2।33।।
क्व चाहं कितव: पापो ब्रह्मघ्नो निरपत्रप:।
क्व च नारायण-इति-एतत्-भगवन्नाम मङ्गलम्।।6।2।34।।

उसने अपने पूर्व के बचे हुए पुण्यकर्म का भी कुछ प्रभाव समझा जिसके कारण भगवन्नाम का उच्चारण कर सका था। ब्राह्मणत्व के तिरस्कार से अपने को निर्लज्ज तथा वंचक मानते हुए उसने सोचा कि भगवान्‌के मंगलमय नाम के कीर्तन के पुण्य की बराबरी भला मैं कैसे कर सकता हूँ ?

इति जातसुनिर्वेद: क्षणसङ्गेन साधुषु।
गङ्गा-द्वारमुपेयाय मुक्तसर्वानुबन्धन:।। 6।2।39।।

क्षण भर के विष्णु पार्षदों की संगति से पवित्र होकर सबकुछ त्याग कर अजामिल गंगाद्वार हरिद्वार के लिए शीघ्र ही प्रस्थान कर गया।वहाँ भगवान्‌के स्वरूप एवं गुणों में चित्त लगाते हुए उसने अपना शरीर छोड़ दिया।

साकं विहायसा विप्रो महापुरुषकिङ्करै:।
हैमं विमानमारुह्य ययो यत्र श्रिय: पति:।। 6।2।44।।

विष्णु पार्षद पुन: आकर उसे दिव्य विमान में बैठाकर भगवान्‌के पास वैकुण्ठ लोक ले गये।

एवं स विप्लावित-सर्वधर्मा दास्या: पति: पतितो गर्ह्यकर्मणा।

निपात्यमानो निरये हतव्रत: सद्यो विमुक्तो भगवन्नाम गृह्णन्।। 6।2।45।।

वेश्यापति अजामिल अपने गर्हित कर्मों के कारण नरक में गिरने ही वाला था कि कातरता से नारायण नाम के उच्चारण से उसका उद्धार हो गया।

नात: परं कम-निबन्ध-कृन्तनं मुमुक्षतां तीर्थपद-अनुकीर्तनात्।

न यत्पुन: कर्मसु सज्जते मनो रज: तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा।। 6।2।46।।

भगवान् के चरणारविन्द में ही सभी तीर्थ अवस्थित हैं। भगवान्का लीला-गुणानुवाद संकीर्तन से भवबन्धन से मुक्ति होती है। अन्य वैदिक प्रायश्चित्त की विधियों के सम्पादन के बाद पाप तो कटता है परन्तु हृदय से पाप-वासना नहीं जाती है। पाप एवं पाप-वासना दोनों का नाश मात्र भगवन्नाम संकीर्तन से ही होता है।

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणेन् पुत्रोपचारितम्।

अजामिलोऽपि-अगात्-धाम किमुत श्रद्धया गृणन्।।6।2।49।।

मरने के डर से भयातुर जब अपने पुत्र का नारायण नाम लेने के कारण अजामिल भगवद्धाम गया तो जो श्रद्धामय हृदय से भगवन्नाम का कीर्तन करेगा उसके उद्धार में शंका ही कहाँ है। अजामिल सकामभाव से नारायण नाम का उच्चारण नहीं कर रहा था कि भगवान्का नाम ले रहा हूँ, अत: मेरे सारे पाप कट जायेंगे। वह तो पुत्र में अतिशय प्रेमवश उसके नारायण नाम को हमेशा पुकारता रहता था। प्रेम से किया गया अनेकों बार का नारायण नाम का उच्चारण अनजाने रूप से उसकी भक्ति के कोष को सम्वर्द्धित करता गया। भगवान्से याचना स्वरूप उनका नाम नहीं लेता था। शुद्ध भाव से नाम उच्चारण उसके उद्धार का मुख्य कारण हुआ न कि मरते समय मात्र एकबार का नारायण का उच्चारण। निष्काम भाव से किया गया संकीर्तन इसीलिए अत्यन्त प्रभावी माना गया है। वस्तुत: प्रतिदिन प्रेम से नारायण का नाम लेने का वह अभ्यासी हो गया था। पुत्र के साथ उसकी भावना सकाम थी परन्तु नारायण नाम उच्चारण में वह निष्काम भाव से मात्र अभ्यासवस ऐसा करते रहता था।

यमराज के दूत शीघ्र उनके पास पहुँच गये और अजामिल की घटना का विवरण सुनाया कि कैसे भगवान्विष्णु के सौंदर्यवान चार पार्षद ने अजामिल को हमारे बन्धन की गाँठ को खोल कर उसे मुक्त कर दिया। यमदूतों ने कहा कि प्राणी के कर्मों के अनुसार दण्ड निर्धारण में आपकी सार्वभौम सत्ता है तब यह सब कैसे हुआ ?

इति देव: स आपृष्ट: प्रजासंयमनो यम:।

प्रीत: स्वदूतान्प्रत्याह स्मरन्पादाम्बुजं हरे:।।6।3।11।।

दूतों से ऐसा पूछे जाने पर संयमनी पुरी के राजा यम ने भगवान्के चरणारविन्द का स्मरण किया और दूतों को धर्म का मार्ग तथा परमनियन्ता नारायण की सत्ता के बारे में समझाया। यह भी बताया कि -

स्वयम्भू: नारद: शम्भु: कुमार: कपिलो मनु:।

प्रह्लादो जनको भीष्मो बलि-र्वैयासकि: वयम्।।6।3।20।।

द्वादश-एते विजानीमो धर्मं भागवतं भटा:।

गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वामृतमश्नुते।।6।3।21।।

ब्रह्मा, नारद, शंकर, सनकादि चारो मुनि, देवहूति - पुत्र भगवान्कपिल, मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्म, बलि, शुकदेव

मुनि तथा मैं अर्थात् यमराज ये सभी बारह धर्म के शुद्ध एवं रहस्यपूर्ण सिद्धान्त यानी अमृतपद वैकुण्ठ प्रदान करने वाला भागवत्धर्म तथा भगवत् शरणागति के मर्म को जानते है।

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां धर्मः परः स्मृतः।
भक्तियोगो भगवति तन्नाम-ग्रहणादिभिः।। 6।3।22।।

इस संसार में भगवद्भक्ति सुदृढ करनेवाला भगवन्नाम का कीर्तन ही परमधर्म है।

नामोच्चारण-माहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः।
अजामिलोऽपि येनैव मृत्यु-पाशात्-अमुच्यत।।6।3।23।।
एतावता-अलम्-अघ-निर्हरणाय पुंसां सङ्कीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम्।
विक्रुश्य पुत्रम्-अघवान्-यत्-अजामिलोऽपि नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम्।।6।3।24।।
प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं देव्या विमोहितमतिर्बत मायया-अलम्।
त्रय्यां जडीकृतमतिः मधु-पुष्पितायां वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः।।6।3।25।।

अजामिल भगवान् के नाम के उच्चारण करते रहने से ही मृत्यु के बन्धन से छुटकारा पा सका। भगवान्के गुण तथा लीला का सङ्कीर्तन मानव को पापरहित बना देता है। निष्काम भाव से मरते समय पुत्र का नारायण नाम बोलने से पापी अजामिल मुक्त हो गया। भगवान्की माया से मोहित होकर वेद के अधिकारी जड़मति होकर कर्मकाण्ड में ही लगे रहते हैं तथा भगवान्के बारह महान भक्तों की रहस्यपूर्ण भक्ति के मार्ग को नहीं समझ पाते।

एवं विमृश्य सुधियो भगवति-अनन्ते सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम्।
ते मे न दण्डं-अर्हन्ति-अथ यदि-अमीषां स्यात्पातकं तदपि हन्ति-उरुगायवादः ।।6।3।26।।

बुद्धिमान लोगों द्वारा पवित्र नाम के कीर्तन में ही सभी समस्याओं का निदान है। ऐसे लोग हमारे दण्डक्षेत्र से बाहर हैं। सदैव भगवन्नाम कीर्तन से ये लोग पापफलों से मुक्त हो जाते हैं।

ते देवसिद्ध-परिगीत-पवित्रगाथा ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः।
तान्-न-उपसीदत हरेः गदया-अभिगुप्तान् नैषां वयं न च वयः प्रभवाम दण्डे।।6।3।27।।
तान्-आनयध्वम्-असतो विमुखान्मुकुन्द-पादारविन्द-मकरन्द-रसात्-अजस्रम्।
निष्किञ्चनैः परमहंसकुलै रसज्ञैः जुष्टात्-गृहे निरय-वर्त्मनि बद्धतृष्णान्।।6।3।28।।

भगवान् के प्रति समर्पित भक्तों को हम या ब्रह्मादि भी दण्ड देने के अधिकारी नहीं है क्योंकि वे भगवान् की गदा से सुरक्षित हैं और वैसे भक्तों की गाथा देव-सिद्धादि भी गाते रहते हैं। सांसारिक वासनारत ही नरक के योग्य हैं। भगवान् के चरणारविन्द के मकरन्द का आनन्द लेने वाले भक्त हमारे अधिकार में नहीं हैं।

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनाम-धेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।।
कृष्णाय नो नमति यत्-शिर एकदापि तान्-आनयध्वम्-असतो अकृत-विष्णुकृत्यान्।। 6।3।29।।

जो भगवान् कृष्ण को नमस्कार नहीं करते तथा विष्णु भगवान्के नाम तथा गुण का संकीर्तन नहीं करते केवल उन्हीं को मेरे सामने लाना। ऐसा कह यमराज ने अपने सेवकों के अपराध के लिए परमनियन्ता भगवान्से क्षमा-प्रार्थना की और यह स्वीकार किया कि अजामिल के साथ हमारे दूतों ने दुर्व्यवहार किया।

शुकदेव मुनि राजा परीक्षित से कहते हैं -

तस्मात्सङ्कीर्तनं विष्णोः जगन्मङ्गलम्- अंहसाम्।

महतामपि कौरव्य विद्धि-ऐकान्तिक-निष्कृतम्।।6।3।31।।

हे राजन्! भगवन्नाम सङ्कीर्तन ही प्रायश्चित्त का सर्वश्रेष्ठ साधन है। संसार के मंगल हेतु इसे समझो जिससे कि सामान्य जन भी इसका अनुसरण करें।

श्रृण्वतां गृणतां वीर्याणि-उद्यामानि हरेर्मुहुः।

यथा सुजातया भक्त्या शुद्धयेत्-न - आत्मा व्रतादिभिः।।6।3।32।।

कृष्णाङ्घ्रिपद्म-मधु-लिट्न पुनर्विसृष्ट-मायागुणेषु रमते वृजिन-अवहेषु।

अन्यस्तु कामहत आत्मरजः प्रमार्ष्टुम्-ईहेत कर्म यत एव रजः पुनः स्यात्।।6।3।33।।

केवल वैदिक कर्मकाण्ड हृदय को ऐसा शुद्ध नहीं करते जैसा बार-बार भगवान्की लीला एवं नाम के गायन करने वालों का हृदय भक्ति से शुद्ध हो पाप-वासना विहीन हो जाता है। भगवान् कृष्ण के चरणारविन्द के मधु को चाटने वाले भक्त तीनों गुणों से अभिभूत संसार की कभी भी चिन्ता नहीं करते। यमराज की आज्ञा मानते हुए यमदूत भगवान्के भक्तों से डरते हैं तथा उनकी ओर नजर उठाकर भी नहीं देखते।

6।2। प्रचेता के पुत्र दक्ष को भगवान्के अष्टभुज स्वरूप का दर्शन एवं नारद जी का प्रसंग

भागवत में दो दक्ष की कथा है। एक ब्रह्मा से उत्पन्न होने के कारण ब्राह्म-दक्ष हुए तथा दूसरे प्राचेतस दक्ष कहे गये। दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं। चौथे स्कन्ध में ब्राह्म-दक्ष की कथा है जिनका आविर्भाव ब्रह्मा के अँगूठा से हुआ था। इनका विवाह स्वाम्भुव मनु की पुत्री प्रसूति से हुआ था। इनसे सोलह कन्यायें उत्पन्न हुई जिनमें से तेरह धर्म को, एक अग्नि को, एक पितृलोक में दान दी गयी तथा अन्तिम कन्या शिव को पत्नी के रूप में दी गयी थी। धर्म की एक पत्नी का नाम मूर्ति था जिससे साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम दो ऋषि के रूप में भगवान् नर-नारायण में प्रकट हुए तथा शाश्वत रूप से बद्रिकाश्रम में रहते हैं। शिव-पत्नी सती ने अपनी अवमानना के फलस्वरूप ब्राह्म-दक्ष के यज्ञ में अपने शरीर का त्याग कर दिया था। शिव के अनुचरों ने दक्ष का शिर काट लिया था। बाद में ब्रह्मा के हस्तक्षेप से शिव ने दक्ष को बकरे का शिर लगवा दिया और तब भगवान् विष्णु के आगमन पर उनका यज्ञ पूरा हुआ। यहाँ इस छठे स्कन्ध में प्राचेतस दक्ष की कथा है। ध्रुव जी के वंश में हुए प्राचीनबर्हि के समेकित रूप से प्रचेता कहे जाने वाले दस पुत्रों का प्रसंग चौथे स्कन्ध में है। सृष्टि में संलग्न होने के पूर्व प्रचेता समुद्र में प्रवेश कर तप करने चले गये थे।वहाँ से तपस्या पूरी कर जब बाहर आये तब राजा का अभाव था एवं समूची पृथ्वी वृक्षादि से ढ़क गयी थी। मार्ग में इसके कारण अवरोध देख प्रचेता अपने तपस्या के प्राप्त बल के फलस्वरूप अपनी साँस से ही वृक्षादि को नष्ट करने लगे। वृक्षादि के देवता सोम विकल हो गये तथा ब्रह्मा जी के हस्तक्षेप से प्रचेता को उन्होनें वृक्षादि की कन्या मारिषा से प्रचेता का विवाह कर दिया। उसी से दक्ष की उत्पत्ति हुई। प्रजा विस्तार में प्रवीण होने के कारण ही उन्हें दक्ष कहा जाता था। प्रारम्भ में दक्ष ने देव, असुर, मनुष्य, पशु-पक्षी तथा जलचर आदि की सृष्टि की। परन्तु सृष्टि में प्रत्याशित विस्तार न देख वे विन्ध्याचल के वन में अघमर्षण नामक स्थल पर तपस्या करने चले गये। भगवान्को प्रसन्न करने हेतु अपनी कठोर तपस्या के साथ हंसगुह्य स्तुति सुनायी । इस स्तुति का भाव है कि परमात्मा जीवात्मा के हृदय में विराजमान रहकर उसे निर्देश देते हैं परन्तु वह भौतिक इन्द्रियों के चक्कर में परमात्मा के निर्देश को समझ नहीं पाता है।

यदा-उपरामो मनसो नामरूप-रूपस्य दृष्टस्मृति-सम्प्रमोषात्।
य ईयते केवलया स्वसंस्थया हंसाय तस्मै शुचिसद्मने नमः।।6।4।26।।

जीव का मन गाढ़ी निद्रा की सुषुप्ति अवस्था में पूर्णतया विराम में रहता है। वह समाधि की अवस्था में चला जाता है। नाम तथा रूप वाली भौतिक स्मृति नष्ट हो जाती है। उस समाधि अवस्था में हंस जैसे विशुद्ध स्वरूप में दर्श न देने वाले भगवान्को नमस्कार करता हूँ। तात्पर्य है कि भगवान्का हंस के समान निर्मल आध्यात्मिक स्वरूप जीव के भौतिक उपाधियों वाले इन्द्रियों से अचिन्त्य है। उनके विशुद्ध स्वरूप का अनुभव भक्ति-संकीर्तन करके ही पाया जा सकता है।

इति स्तुतः संस्तुवतः स तस्मिन्नघमर्षणे।
आविरासित् कुरुश्रेष्ठ भगवान् भक्तवत्सलः।।6।4।35।।
कृतपादः सुपर्ण-अंसे प्रलम्ब-अष्टमहाभुजः।
चक्र-शङ्ख-असि-चर्म-इषु-धनुः पाश-गदाधरः।। 6।4।36।।
पीतवासा घनश्यामः प्रसन्न-वदनेक्षणः।
वनमाला-निवीताङ्गो लसत्-श्रीवत्सकौस्तुभः।। 6।4।37।।
महाकिरीट-कटकः स्फुरन्मकरकुण्डलः ।
काञ्ची-अङ्गुलीय-वलय-अङ्गद-भूषितः।। 6।4।38।।
त्रैलोक्यमोहनं रूपं बिभ्रत् त्रिभुवनेश्वरः।
वृतो नारद-नन्दाद्यैः पार्षदैः सुरयूथपैः।। 6।4।39।।

अघमर्षण नामक स्थान पर दक्ष की स्तुति से प्रसन्न होकर अष्टभुज स्वरूप में गरुड़ के कंधे पर अपने श्रीचरणों के रखे प्रलम्ब बाहु भगवान् प्रकट हुए। उनके हाथों में चक्र, शंख, तलवार, ढ़ाल, बाण, धनुष, रस्सी तथा गदा धारण किये हुए थे। सुन्दर मुख तथा मोहक आँखों वाले उनके नीले शरीर पर पीला रेशमी वस्त्र तथा गले से श्रीचरणों तक वनमाला लटक रही थी। वक्षस्थल श्रीवत्स एवं कौस्तुभ से सुशोभित, माथे पर मुकुट एवं कान में कुण्डल विराजमान थे। कमर में कमरधनी, बाहों में बाजूवन्द, श्रीचरणों में पायल एवं अंगुलियों में अँगूठी से भगवान्सुशोभित हो रहे थे। इनके साथ नारद तथा नन्द आदि भक्त थे। गन्धर्व, सिद्ध एवं चारणादि गुणगान एवं इन्द्रादि उनकी स्तुति कर रहे थे।

वर्तमान में तमिलनाडु में स्थित काञ्चीपुरम्में भगवान् अष्टभुज की एक सन्निधि है जो एक विख्यात दिव्यस्थल है। अष्टभुज पेरूमाल के आठ हाथों में दिव्य आयुध विराजमान हैं। दाहिनी तरफ ऊपर से नीचे की ओर भगवान्के हाथों में सुदर्शन चक्र, नन्दकी खड्ग, कमल पुष्प तथा बाण विराजमान हैं। बायीं तरफ के चार हाथो में ऊपर से नीचे की ओर पाञ्चजन्य शंख, शार्ङ्ग धनुष, ढाल तथा कोमोदकी गदा विराजमान हैं। प्राचेतस दक्ष को दर्शन देने वाले अष्टभुज भगवान्के हाथों के आयुध काञ्ची के अष्टभुज भगवान्से मिलते जुलते हैं परन्तु एक आयुध भिन्न हैं। कमल के स्थान पर पाश अर्थात् बान्धने वाली रस्सी का उल्लेख है।

श्यामो हिरण्यरशनोऽर्ककिरीटजुष्टो नीलालक-भ्रमरमण्डित कुण्डलास्यः।

शङ्ख-अब्ज-चक्र-शर-चाप-गदा-असि-चर्म व्यग्रै: हिरण्यमय-भुजै: इव कर्णिकार:। ।**4**।**7**।**20**। ।
श्यामवर्ण के भगवान् सुनहले पीले वस्त्र, सूर्य सा चमकता मुकुट, भौंरो के समान काला बाल, कानों के कुण्डल से शोभायमान मुखमण्डल तथा आठों भुजाओं में शङ्ख, कमल फूल, चक्र, बाण, धनुष, गदा, तलवार एवं ढाल धारण किये थे।स्कन्ध **4** ।**7**।**20**। के आठों आयुध एवं काञ्चीपुरम्के अष्टभुज पेरुमाल में पूर्ण समानता है। स्कन्ध **4** के अष्टभुज स्वरूप का दर्शन ब्राह्म दक्ष को हुआ था। दोनों दक्षों को भगवान्ने अष्टभुज स्वरूप में ही दर्शन दिया है परन्तु प्राचेतस दक्ष के दर्शन स्वरूप में कमल फूल के बदले रस्सी यानी फंदा है।
अष्टभुज भगवान्ने दक्ष की सृष्टि हेतु तपस्या को सफल बताते हुए उन्हें सृष्टि कार्य करने का वरदान दिया।

ब्रह्मा भवो भवन्तश्च मनवो विबुधेश्वरा:।
विभूतयो मम ह्येता भूतानां भूतिहेतव:। ।6।4।45।
अहम्-एव-आसम्-एव-अग्रे नान्यत् किञ्चान्तरं बहि:।
संज्ञानमात्रम्-अव्यक्तं प्रसुप्तमिव विश्वत:। ।6।4।47। ।

अष्टभुज भगवान् ने कहा कि ब्रह्मा, शंकर, तू यानी दक्ष तथा अन्य देवता हमारे ही अंश से उत्पन्न हैं। सृष्टि के पूर्व मात्र मैं ही अकेला था तथा सोये हुए प्राणी की जैसे चेतना अप्रकट रहती है उसी तरह समस्त चेतन मुझमें ही लुप्त थे। भगवान् ने पञ्चजन प्रजापति की असिक्नी नाम की कन्या दक्ष को पत्नी के रूप में दिया। मैथुनी सृष्टि विस्तार हेतु वर देकर भगवान्चले गये। दक्ष के दस हजार पुत्र हुए जो हर्यश्व कहे गये। पिता की आज्ञा से सभी सृष्टि-विस्तार हेतु तपस्या करने पश्चिम सागर एवं सिन्धु नदी के संगम पर ऋषियों के प्रिय नारायण-सरस नामक स्थान पर गये। इन बालकों को घोर तपस्यारत देख नारद जी इनके पास गये। मात्र सृष्टि-विस्तार हेतु उनकी तपस्या देख नारद जी ने सोचा कि ये तपस्वी संसार में फँस जायेंगे क्योंकि इन्हें आध्यात्मिक ज्ञान है नहीं। उनका कल्याण करने हेतु जिससे कि वे संसार में नहीं फँस जायें उन्होंने हर्यश्व से कुछ पहेलियाँ पूछी और यह भी कहा कि अभी तक तुमलोगों ने पृथ्वी का छोर नहीं देखा है तब सृष्टि-विस्तार कैसे करोगे। अज्ञानवश ही पुत्र पिता की आज्ञा की अवहेलना करता है। नारद जी के अभिप्राय को अपनी बुद्धि से समझकर हर्यश्व ने जो उत्तर दिया वह कोष्ठक में दिया हुआ है। ।

- एक राज्य ऐसा है उसमें एक ही व्यक्ति रहता है। (मनुष्य शरीर)
- एक ऐसा छेद है जिसमें जो घुसता है वह लौटता नहीं है। (पाताल या वैकुण्ठ धाम)
- उस राज्य में अनेक चेहरा वाली एक कुलटा स्त्री रहती है। (बुद्धि)
- पुरुष जिसकी वह पत्नी है। (जीव)
- उस राज्य में दोनों ओर से बहने वाली एक नदी है। (सृष्टि एवं प्रलय को छिपानेवाली माया)
- पच्चीस वस्तुओं से बना एक विलक्षण घर है। (तन्मात्रा के साथ ज्ञानेन्दि, कर्मेन्दि तथा महतत्त्व)
- अनेक तरह की बोली बोलने वाला एक हंस है। (शास्त्र)
- अनेक तेज छूरों एवं बज्रों से बना स्वत: घूमने वाला एक चक्र है। (समय)

हर्यश्व ने यह भी समझा कि वास्तविक पिता शास्त्र ही हैं। आत्मा एवं परमात्मा को समझना उनकी आज्ञा है, न कि

संसार के मोह में लिप्त रहना। स्थान बदल कर हर्यश्व आध्यात्मिक विकास के लिए प्रस्थान कर गये।

स्वरब्रह्मणि निर्भात-हृषीकेशपदाम्बुजे।

अखण्डं चित्तमावेश्य लोकान्-अनुचरन् मुनि:।।6।5।22।।

अपनी वीणा पर भगवान् के श्रीचरणों की महिमा की स्वरसाधना करते नारद जी लोक हितार्थ विचरन्के लिए प्रस्थान कर गये। दक्ष को जब नारद जी ने जाकर हर्यश्व की आध्यात्मिक अभिरुचि बतायी तब वे पुत्रों के लिए दु:खी हुए। दक्ष ने ब्रह्मा की शान्त्वना से पुन: सवलाश्व नाम के एक हजार पुत्र उत्पन्न किए।

ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने।

विशुद्ध-सत्त्व-धिष्णाय महाहंसाय धीमहि।।6।5।28।।

अष्टाक्षर मन्त्र की साधना करते हुए सवलाश्व भी नारायण-सरस पवित्र स्थल पर रहकर कठोर तपस्या करने लगे। वे सभी भी नारद जी से प्रभावित होकर सृष्टि-विस्तार की दक्ष की आज्ञा की अवहेलना कर तपस्थल नारायण-सरस से अन्यत्र प्रस्थान कर गये। दक्ष को जब ज्ञात हुआ तब वे नारद जी पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए। इसी बीच उनकी भेंट नारद जी से हुई। दक्ष ने उन्हें एक स्थान पर स्थिर नहीं रहने का शाप दे दिया। ब्रह्मा के आदेशानुसार प्राचेतस दक्ष ने अपनी पत्नी से साठ कन्यायें उत्पन्न की। दस धर्मराज को, सत्ताईस चन्द्रमा को, कश्यप को सत्रह, दो - दो कन्यायें अंगिरा, कृशाश्व तथा भूत को उनकी पत्नी के रूप में दे दीं। वर्तमान जगत्के सभी मनुष्य, देवता, असुर, पशु, पक्षी तथा नागादि प्राचेतस दक्ष की कन्याओं की सन्तान हैं।

6।3। नारायण कवच

एक बार वैभव एवं ऐश्वर्य मद के कारण इन्द्र ने अपनी सभा में आये देवों के गुरु बृहस्पति का सम्मान नहीं किया। इससे गुरु अप्रसन्न मन से सभा से चुपके से निकल गये। खोजने पर भी उनका पुन: दर्शन नहीं हो सका। इससे इन्द्र के वैभव का ह्रास हुआ और असुरों ने इन्द्रासन पर कब्जा कर लिया। बृहस्पति के लुप्त हो जाने के कारण बह्मा जी ने त्वष्टा ऋषि के पुत्र विश्वरूप ऋषि को देवों का गुरु नियुक्त किया। विश्वरूप ने नारायण कवच का अनुष्ठान इन्द्र को सिखाया जो इन्हें अपने पिता त्वष्टा से मिला था। त्वष्टा मुनि को नारायण कवच का ज्ञान दधीचि ऋषि से मिला था। वृत्रासुर के नाश के लिए दधीचि ऋषि ने अपने शरीर की हड्डी का दान देवों को किया था जिससे वज्र का निर्माण हुआ था। इसी वज्र से इन्द्र ने वृत्रासुर का अन्त किया था और अन्तत: इन्द्रासन पर इनका अधिकार हुआ था। इस तरह से नारायण कवच एवं वज्र दोनों दधीचि ऋषि की देन थी जिससे वृत्रासुर का अन्त हुआ था।

विश्वरूप ने देवों के राजा इन्द्र को नारायण कवच के अनुष्ठान की विधि बतायी। अष्टाक्षर मन्त्र **"ॐ नमो नारायणाय"** तथा द्वादशाक्षर मन्त्र **"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नम:"** से अंग न्यास तथा कर न्यास सम्पन्न करने के वाद षडाक्षर मन्त्र **"ॐ विष्णवे नम:"** के जपोपरान्त नारायण कवच के पाठ से समस्त देह को बांधने का विधान है जो अनुष्ठानकर्ता को पूर्णतया सभी तरह के भय एवं खतरे की परिस्थितियों में सुरक्षा प्रदान करता है।

धौत-अङ्घ्रि-पाणि: आचम्य स पवित्र उदङ्मुख:।

कृत-स्वाङ्ग-करन्यासो मन्त्राभ्यां वाग्यत: शुचि:।।6।8।4।।

नारायणमयं वर्म सन्नह्येद् भय आगते।
पादयो: जानुनो: ऊर्वो: उदरे हृदि-अथ-उरसि ।।6।8।5।।
मुखे शिरसि-आनुपूर्व्यात्-ओङ्गकार-आदीनि विन्यसेत्।
ॐ नमो नारायणाय - इति विपर्ययम्-अथ-अपि वा।।6।8।6।।

हाथ-पैर धोकर उत्तर की ओर मुख कर बैठे तथा आचमन कर अष्टाक्षर मंत्र के प्रथम अक्षर "ॐ" से प्रारम्भ कर देह की दाहिनी ओर से शुरु करके आठ अंगो को दोनों पैर, घुटने, जाँघ, पेट, हृदय, छाती, मुँह एवं शिर छूते हुए आठवें अक्षर "य" तक अंग (उत्पत्ति) न्यास करे।इसके बाद अष्टाक्षर मंत्र के अंतिम अक्षर "य" से प्रारम्भ कर उलटे क्रम से अंगो को छूते हुए यानी शिर से पैर तक अंग (संहार) न्यास को पूरा करे।

करन्यासं तत: कुर्याद् द्वादशाक्षरविद्यया।
प्रणवादि-य-कार-अन्तम्अङ्गुलि-अङ्गुष्ठ-पर्वसु।।6।8।7।।

कर न्यास में "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" के बारह अक्षरों के ॐ से प्रारम्भ कर एक-एक अक्षरों से दोनों हाथ की आठ अँगुलियों तथा दो अँगूठे के दोनों छोरों को दाहिनी तर्जनी से शुरु कर क्रमश: पूरा करे।

न्यसेत्-हृदय ओङ्कारं वि-कारम्-अनु मूर्धनि।
ष-कारम्तु भ्रुवो: मध्ये ण-कारम् शिखया न्यसेत्।।6।8।8।।
वे-कारम् नेत्रयो: युञ्ज्यात्न-कारम् सर्वसन्धिषु।
म-कारम् अस्त्रम् उद्दिश्य मन्त्रमूर्ति: भवेद् बुध:।।6।8।9।।
स-विसर्गम् फट्-अन्तम् तत् सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत्।
ॐ विष्णवे नम इति।।6।8।10।।

ॐ विष्णवे नम: के 'ॐ' का हृदय में, 'वि' का ब्रह्मरन्ध्र में, 'ष्' का भौंहों के बीच में, 'ण' का शिखा में, 'वे' का नेत्रों में और 'न' का देह की सभी गाँठों में न्यास करे। तब "ॐ म: अस्त्राय फट्" कहकर दिग्बन्ध करे। इस तरह से व्यक्ति मन्त्रस्वरूप हो जाता है। अपने को भगवान् के गुणों से ओतप्रोत समझते हुए विद्या, तेज तथा तप स्वरूप नारायण कवच का पाठ करे।

ॐ हरि: विदध्यात् मम सर्वरक्षां न्यस्ताङ्घ्रिपदम: पतगेन्द्रपृष्ठे।
दर-अरि-चर्म-असि-गदा-इषु-चाप-पाशान्दधानो-अष्टगुणो-अष्टबाहु:।।6।8।12।।

गरुड के कन्धे पर चरणारविन्द रखे ॐकारस्वरूप अष्टभुज प्रभु मेरी सब ओर से रक्षा करें। अणिमादि आठों सिद्धियाँ उनकी सेवा में हैं। वे अपनी आठों भुजाओं में शङ्ख-चक्र-ढाल-तलवार-गदा-बाण-धनुष-फन्दा धारण किये हुए हैं।

जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्ति: यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात्।
स्थलेषु मायावटुवामनोऽव्यात्त्रिविक्रम: खेऽवतु विश्वरूप:।।6।8।13।।

जल के भीतर मत्स्य भगवान् जल के जन्तुओं तथा वरुण के फन्दा से मेरी रक्षा करें। माया से विद्यार्थी स्वरूप बने वामन भगवान् जमीन पर तथा आकाश में त्रिविक्रम भगवान् मेरी रक्षा करें।

दुर्गेषु-अटवि-आजि-मुखादिषु प्रभु: पायात् नृसिंह: असुर-यूथप-अरि:।
विमुञ्च्यतो यस्य महा-अट्टहासं दिशो विनेदु: न्यपतन् च गर्भा:। ।6।8।14। ।
रक्षतु-असौ माध्वनि यज्ञकल्प: स्वदंष्ट्रया-उन्नीत-धर: वराह:।
राम: अद्रिकूटेषु-अथ विप्रवासे सलक्ष्मणो-अव्याद् भरताग्रजो-अस्मान्। ।6।8।15। ।

जंगल तथा युद्ध क्षेत्र के भय से भगवान् नरसिंह रक्षा करें जिनके अट्टहास से सभी दिशायें गुँज उठी थी तथा असुरों की पत्नियों के गर्भ गिर गये थे। अपने दाँतों पर पृथ्वी को जल से बाहर लानेवाले यज्ञमूर्ति वराह भगवान्मार्ग में मेरी रक्षा करें। परशुराम पर्वतशिखरों पर मेरी रक्षा करें। भरत जी के बड़े भाई भगवान्राम अपने भाई लक्ष्मण जी के साथ विदेश में मुझे रक्षा प्रदान करें।

माम्-उग्रधर्मात्-अखिलात् प्रमादात्नारायण: पातु नरश्च हासात्।
दत्त: तु-अयोगात्-अथ योगनाथ: पायाद् गुणेश: कपिल: कर्मबन्धात्। ।6।8।16। ।
सनत्कुमारोऽवतु कामदेवात् हयशीर्षा मां पथि देवहेलनात्।
देवर्षिवर्य: पुरुष-अर्चन-अन्तरात् कूर्मो हरि: माम् निरयात्-अशेषात्। ।6।8।17। ।
धन्वन्तरि: भगवान् पातु-अपथ्यात् द्वन्द्वाद् भयात्-ऋषभो निर्जितात्मा।
यज्ञश्च लोकात्-अवतात्-जन-अन्ताद् बलो गणात् क्रोधवशात् अहीन्द्र:। ।6।8।18। ।

मारण-मोहन के घोर अभिचार एवं प्रमाद से ऋषि नारायण एवं अहंकार से नर ऋषि रक्षा करें। योगेश्वर दत्तात्रेय योग की बाधाओं से एवं तीनों गुणों के अधीश्वर भगवान् कपिल कर्मबन्धन से रक्षा करें। ऋषिवर सनत्कुमार कामदेव से, हयग्रीव भगवान् मार्ग में दिखने वाले देवों को नमस्कार न करने के अपराध से, देवर्षि नारद सेवापराध से एवं भगवान् कच्छप सब प्रकार के नरक से रक्षा करें। धन्वन्तरि भगवान् कुपथ्य से, सुख-दु:ख के द्वन्द्व से भगवान् ऋषभ, लोकापवाद से यज्ञ भगवान्, बलराम जी कष्टों से तथा भगवान् शेष जी क्रोधी सर्पो से रक्षा करें।

द्वैपायनो भगवान्-अप्रबोधात्बुद्ध: तु पाषण्ड-गणात्प्रमादात्।
कल्कि: कले: कालमलात् प्रपातु धर्म-अवनाय-उरु-कृतावतार:। ।6।8।19। ।
मां केश्वो गदया प्रात: अव्यात् गोविन्द आसङ्गवम्-आत्तवेणु:।
नारायण: प्राह्ण उदात्तशक्ति: मध्यम्-दिने विष्णु: अरीन्द्रपाणि:। ।6।8।20। ।
देवोऽपराह्णे मधुहा-उग्रधन्वा सायं त्रिधामा-अवतु माधवो माम्।
दोषे हृषीकेश उतार्धरात्रे निशीथ एकोऽवतु पद्मनाभ:। ।6।8।21। ।
श्रीवत्सधामा-अपररात्र ईश: प्रत्यूष ईशोऽसिधरो जनार्दन:।
दामोदरो-अव्यात्-अनुसन्ध्यं प्रभाते विश्वेश्वरो भगवान् कालमूर्ति:। ।6।8।22। ।

व्यास जी अज्ञान से, बुदद्धदेव पाषण्डियों एवं आलस से तथा भगवान् कल्कि कलिकाल के दोषों से रक्षा करें। प्रात: काल भगवान् गदा लेकर, दिन चढ़ने पर भगवान् गोविन्द मुरली लेकर, भगवान् नारायण दोपहर के पहले शक्ति लेकर तथा दोपहर में भगवान् विष्णु अपना चक्र लेकर रक्षा करें। अपराह्न काल में प्रचण्ड धनुष लेकर भगवान्म धुसूदन, ब्रह्मा आदि त्रिमूर्ति के एकीकृत स्वरूप भगवान् माधव संध्या में, भगवान् हृषीकेश प्रदोषकाल में

तथा अर्धरात्रि में भगवान् पद्मनाभ रक्षा करें। रात के पिछले पहर में श्रीवत्स धारण करने वाले भगवान् श्रीहरि, उषाकाल में खड्गधारी भगवान् जनार्दन, सूर्योदय से पूर्व भगवान् दामोदर और सम्पूर्ण सन्धाओं में कालस्वरूप भगवान् विश्वेश्वर रक्षा करें।

चक्रं युगान्त-अनल-तिग्म-नेमि भ्रमत् समन्ताद् भगवत्-प्रयुक्तम्।

दन्दग्धि दन्दग्धि-अरिसैन्यम्-आशुकक्षं यथा वातसखो हुताश:। ।6।8।23। ।

भगवान्की प्रेरणा से ही प्रलय-अग्नि की तरह तेज धारवाले सुदर्शन चक्र तेजी से घूमते रहते हैं। आग जैसे सूखे घास को जलाती है वैसे ही हे सुदर्शन! शत्रु सेना को आप जला डालिये - जला डालिये।

गदे-अशनि-स्पर्शन-विस्फुलिङ्गे निष्पिण्ढि निष्पिण्ढि-अजितप्रिया-असि।

कुष्माण्ड-वैनायक-यक्ष-रक्ष: भूत-ग्रहान्-चूर्णय चूर्णय-अरीन्। ।6।8।24। ।

भगवान् के हाथ को सुशोभित करने कौमोदकी गदा! आपसे निकली चिन्गारियाँ का स्पर्श वज्र के समान असह्य होता है। आप भगवान्अजित की प्रिया हैं और मैं उनका सेवक हूँ। कुष्माण्ड-वैनायक-यक्ष-राक्षस-भूत-ग्रह आदि को अभी कुचल डालिये - कुचल डालिये तथा मेरे शत्रुओं को चूर-चूर कर दीजिये।

त्वं यातुधान-प्रमथ-प्रेत-मातृ-पिशाच-विप्रग्रह-घोर-दृष्टीन्।

दरेन्द्र विद्रावय कृष्णपूरितो भीमस्वनो-अरे: हृदयानि कम्पयन्। ।6।8।25। ।

हे पाञ्चजन्य शंख! भगवान्कृष्ण के फूँके जाने पर भयंकर आवाज से मेरे शत्रुओं के दिल दहला दीजिये। यातुधान-प्रमथ-प्रेत-मातृका-पिशाच-ब्रह्मराक्षस आदि भयावने जीवों को यहाँ से शीघ्र भगा दीजिये।

त्वं तिग्म-धार-असि-वर-अरिसैन्यम्-ईशप्रयुक्तो मम छिन्धि छिन्धि।

चक्षूंषि चर्मन्-शतचन्द्र छादय द्विषाम्-अघोनां हर पाप-चक्षुषाम्। ।6।8।26। ।

हे भगवान् का प्यारा तीक्ष्ण धारवाला नन्दक खड्ग ! भगवान्की प्रेरणा से आप शत्रुओं को छिन्न-भिन्न कर दीजिये। सैकड़ों चन्द्रमा के चिह्न से अंकित ढ़ाल ! पापी शत्रुओं की पाप-दृष्टि को बन्द करते हुए उनकी पापी आँखों को हर लीजिये।

यन्नो भयं ग्रहेभ्योऽभूत् केतुभ्यो नृभ्य एव च।

सरीसृपेभ्यो दंष्ट्रिभ्यो भूतेभ्योंऽहोभ्य एव वा। ।6।8।27। ।

सर्वाण्येतानि भगवत्-नाम-रूप-अस्त्र-कीर्तनात्।

प्रयान्तु संक्षयं सद्यो ये न: श्रेय: प्रतीपका:। ।6।8।28। ।

सूर्यादि ग्रह तथा धूमकेतु आदि, दुष्ट मनुष्य, सर्पादि रेंगने वाले जन्तु, हिंसक जन्तु, भूत-प्रेतादिकों से हमें जो भी भय हो या अमंगलजनक हो, वे सभी भगवान्के नाम-रूप-गुण-आयुध के संकीर्तन से तत्क्षण नष्ट हो जायें।

गरुडो भगवान् स्तोत्र-स्तोभ: छन्दोमय: प्रभु:।

रक्षतु-अशेष-कृच्छ्रेभ्यो विष्वकसेन: स्वनामभि:। ।6।8।29। ।

सामवेद के विभिन्न बृहन्तथा रथन्तर स्तोत्रों से पूजा किये जाने वाले वेदमूर्ति गरुड तथा विष्वकसेन जी नाम-स्मरण से सब आपदाओं से रक्षा करें।

सर्व-आपद्भ्यो हरे: नाम-रूप-यान-आयुधानि न:।

बुद्धि-इन्द्रिय-मनः प्राणान् यान्तु पार्षदभूषणाः। ।6।8।30। ।

सभी संकट में हमारी बुद्धि, इन्द्रिय, मन तथा प्राण की रक्षा आपके नाम-रूप-वाहन-आयुध तथा पार्षदगण करें।

यथा हि भगवानेव वस्तुतः सत्-असत्च यत्।

सत्येन-अनेन नः सर्वे यान्तु नाशम् उपद्रवाः। ।6।8।31। ।

सभी कार्य तथा उसके कारण स्वयं भगवान्ही हैं। इस परमसत्य भगवान्से ही हमारे उपद्रव शान्त हो जायें।

यथा-एकात्म्य-अनुभावानां विकल्परहितः स्वयम्।

भूषण-आयुध-लिङ्गाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया। ।6।8।32। ।

तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान् हरिः।

पातु सर्वैः स्वरूपैः नः सदा सर्वत्र सर्वगः। ।6।8।33। ।

भगवान् का स्वरूप विकल्परहित है। विभिन्न आभूषणों एवं आयुधों को धारण करने वाले अनेकानेक स्वरूप वाले सर्वज्ञ एवं सर्वव्यापी प्रभु हमारी रक्षा करें।

विदिक्षु दिक्षु-उर्ध्वम् अधः समन्तात् अन्तः बहिः भगवान् नारसिंहः।

प्रहापयन्-लोकभयं स्वनेन स्वतेजसा ग्रस्त समस्त तेजाः। ।6।8।34। ।

अपने अट्टहास से भय हरने वाले तथा अपने तेज से सबके तेज को ढकने वाले नरसिंह प्रभु नीचे-ऊपर, बाहर-भीतर सभी दिशाओं में रक्षा करें।

मघवन्- इदम्-आख्यातं वर्म नारायण-आत्मकम्।

विजेष्यस्य-अञ्जसा येन दंशितोऽसुर-यूथपान्। ।6।8।35। ।

एतद् धारयमाणः तु यं यं पश्यति चक्षुषा।

पदा वा संस्पृशेत् सद्यः साध्वसात् स विमुच्यते। ।6।8।36। ।

न कुतश्चिद् भयं तस्य विद्यां धारयतो भवेत्।

राज-दस्यु-ग्रह-आदिभ्यो व्याघ्र-आदिभ्यः च कर्हिचित्। ।6।8।37। ।

विश्वरूप ने इन्द्र से कहा कि जो नारायण-कवच तुमको सुनाया उसे धारण करके सभी असुर-नायकों को जीत लो। इस नारायण-कवच को धारण करने वाला जिस किसी को देखता तथा अपने पैर से छू देताा है वह भय से मुक्त हो जाता है। इस वैष्णवी विद्या को धारण करता है उसे राजा-डाकू-ग्रह-बाघ आदि हिंसक जीवों का भय नहीं होता।

इमां विद्यां पुरा कश्चित् कौशिको धारयन् द्विजः।

योगधारणया स्वाङ्गं जहौ स मरुधन्वनि। ।6।8।38। ।

तस्योपरि विमानेन गन्धर्वपतिः एकदा।

ययौ चित्ररथः स्त्रीभिर्वृतो यत्र द्विजक्षयः। ।6।8।39। ।

गगनात्न्यपतत्सद्यः सविमानो हि अवाक्-शिराः।

स वालखिल्य-वचनात्-अस्थीनि-आदाय विस्मितः।

प्रास्य प्राची-सरस्वत्यां स्नात्वा धाम स्वम्-अन्वगात्। ।6।8।40।।

पूर्व में कौशिक नामक ब्राह्मण ने योग से इस विद्या को धारण कर मरुभूमि में शरीर छोड़ा। अपनी पत्नियों के साथ गन्धर्वराज चित्ररथ का विमान उस ब्राह्मण के मृतक शरीर के ऊपर से गुजरा। विमान के साथ शिर के बल चित्ररथ वहाँ गिरा। बालखिल्य मुनियों से नारयण-कवच की महिमा सुनने के बाद उस ब्राह्मण की हड्डियों को चित्ररथ ने पूर्ववाहिनी सरस्वती नदी में प्रवाहित कर स्नान किया और अपना लोक चला गया। शुकदेव मुनि ने नारायण कवच की महिमा बतायी -

य इदं श्रृणुयात् काले यो धारयति चादृत:।
तं नमस्यन्ति भूतानि मुच्यते सर्वतो भयात्। ।6।8।41।।
एतां विद्यामधिगतो विश्वरूपात् शतक्रतु:।
त्रैलोक्यलक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधेऽसुरान्। ।6।8।42।।

जो इस नारायण कवच को समय पर सुनता है तथा धारण करता है वह समस्त भय से मुक्त हो जाता है। विश्वरूप से इसे प्राप्त कर इन्द्र ने असुरों को पराजित कर अपना ऐश्वर्य पुन: प्राप्त कर लिया।

6।4। वृत्रासुर का वृत्तान्त ।

बृहस्पति के लुप्त हो जाने के बाद तीन सिरवाले विश्वरूप को ब्रह्मा ने देवों का पुरोहित बनाया था। इसकी माँ असुर कुल की थी परन्तु त्वष्टा नामक उसके पिता देवकुल के थे। देवों की विजय कामना तथा ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए विश्वरूप ने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया। देवों के समक्ष वह देवों के नाम से आहुति देता था परन्तु चुपके से वह असुरों के नाम से भी आहुति दे देता था। इन्द्र को जब यह ज्ञात हुआ तब उसने विश्वरूप का तीनों सिर काट डाला। विश्वरूप एक सिर से सोमरस, दूसरे से सुरापान तथा तीसरे से भोजनादि करता था। सोमरस वाला सिर पपीहा, सुरापान वाला गौरैया तथा भोजन वाला तीतर पक्षी बन गया। इन्द्र को पुरोहित की हत्या का पाप लगा। उसके पाप को पृथ्वी, जल, वृक्षा तथा स्त्रियों ने बाँट लिया। त्वष्टा ने पुत्र की हत्या से नाराज होकर एक अनुष्ठान किया जिसमें इन्द्र के शत्रु की अभिवृद्धि के लिए आहुति दी गयी। मन्त्र में उच्चारण की त्रुटि के कारण यज्ञाग्नि से एक विकराल स्वरूप उत्पन्न हुआ जिसका शत्रु इन्द्र था। वह त्वष्टा का ही पुत्र था जिसने सभी लोकों को आच्छादित अर्थात्वृत्र कर लेने के कारण वृत्रासुर कहलाया। देवों ने इसपर आक्रमण कर दिया परन्तु देवगण उसका बाल-बाँका नहीं कर पाये। निराश होकर देवों ने नारायण को प्रसन्न करने हेतु उनकी पूजा प्रारम्भ प्रारम्भ कर दी। देवताओं ने प्रार्थना में कहा कि -

अविस्मितं तं परिपूर्णकामं स्वेनैव लाभेन समं प्रशान्तम्।
विना-उपसर्पति-अपरं हि बालिश: श्व-लाङ्गुलेन-अतितितर्ति सिन्धुम्। ।6।9।22।।
तमेव देवं वयमात्मदैवतं परं प्रधानं पुरुषं विश्वमन्यम्।
व्रजाम सर्वे शरणं शरण्यं स्वानां स नो धास्यति शं महात्मा। ।6।9।27।।

हे पूर्णकाम प्रभु ! आपके लिए कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है। आपकी शरण छोड़कर जो अन्य की शरण लेता है वह कुत्ते की पूँछ पकड़ कर सागर पार करने जैसा असंभव काम करना चाहता है। हम सभी विश्व के नियामक

तथा शरणागतवत्सल परम आराध्य प्रधान पुरुष की शरण में हैं। अवश्य वे हमारा कल्याण करेंगे।

इति तेषां महाराज सुराणाम्-उपतिष्ठताम्।

प्रतीच्यां दिशि-अभूत्-आविः शङ्ख-चक्र-गदाधरः। ।6।9।28। ।

शुकदेव जी ने कहा कि देवताओं की प्रार्थना सुनकर शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् पहले उनके अन्तःकरण में पधारे और तदुपरान्त उनके सामने भी प्रकट हो गये।

आत्मतुल्यैः षोडशभिः विना श्रीवत्सकौस्तुभौ।

पर्युपासितम्-उन्निद्र-शरत्-अम्बुरुह-ईक्षणम्। ।6।9।29। ।

दृष्ट्वा तम्-अवनौ सर्व ईक्षण-आह्लाद-विक्लवाः।

दण्डवत्पतिता राजन्शनैः उत्थाय तुष्टुवुः। ।6।9।30। ।

शरत् कालीन कमल के समान आँखों वाले भगवान् चारों ओर से अपने सोलह पार्षदों से सेवित घिरे हुए थे। पार्ष दगण देखने में भगवान् जैसे ही स्वरूप वाले थे परन्तु उनलोगों के वक्षस्थल पर श्रीवत्स नहीं था और गले में कौस्तुभ मणि नहीं थी। दर्शन से प्रफुल्लित देवगणों ने जमीन पर लोटकर भगवान्का साष्टांग-दण्डवत किया। उठकर पुनः स्तुति कर भगवान्को प्रसन्न किया। भगवान्ने प्रसन्न होकर इन्द्र को कहा कि ज्ञान, व्रत तथा तपस्या आदि से सिद्ध दधीचि मुनि के पास उनके शरीर का दान माँग लो। इन्होंने ही अश्विनीकुमारों को घोड़े के सिर से ब्रह्मज्ञान का मन्त्र दिया था। नारायण कवच के अनुष्ठान से ये पूर्णतया सम्बलित हैं और इस कवच का ज्ञान इन्होंने अपने पुत्र त्वष्टा को कराया था। त्वष्टा ने तब उस कवच का ज्ञान अपने पुत्र विश्वरूप को कराया था। तुमलोगों के बदले जब अश्विनीकुमार दधीचि मुनि से उनका शरीर माँगेंगे तब वे अवश्य दे देंगे। उनकी हड्डी से विश्वकर्मा वज्र का निर्मा ण करेंगे। मैं भी अपनी शक्ति से उस वज्र को सम्बर्द्धित करूँगा जिससे वृत्रासुर का विनाश होगा। भगवान्ऐसा कहकर चले गये।

लोकहित के लिए देवताओं ने दधीचि मुनि से उनका शरीर माँगा। दधीचि मुनि की हड्डी से विश्वकर्मा ने वज्र का निर्माण किया। ऐरावत पर चढ़कर इन्द्र देवों की सेना के साथ वृत्रासुर के वध के लिए प्रस्थान किये। सत्ययुग के अन्त एवं त्रेता के प्रारम्भ में नर्मदा के तट पर देवों एवं असुरों के बीच घोर युद्ध हुआ। असुर-सेना पराजित होकर भाग गयी। असुरों के प्रधान सेनानायक वृत्रासुर युद्ध भूमि में डँटा रहा। इन्द्र को अपने भाई विश्वरूप का हत्यारा बताते हुए उसने क्रूरतापूर्ण पुरोहित की हत्या की निन्दा की।

ननु-एष वज्रः तव शक्र तेजसा हरेः दधीचेः तपसा च तेजितः।

तेनैव शत्रुं जहि विष्णुयन्त्रितो यतो हरिः विजयः श्रीगुणाः ततः। । 6।11।20। ।

तुम्हारी गदा हमपर निष्फल हो गयी परन्तु जिस वज्र को लेकर आये हो उसे मुझपर चलाओ। यह निष्फल नहीं होगा क्योंकि वह भगवान् विष्णु के तेज तथा दधीचि की तप-शक्ति से समन्वित है। जिसके साथ भगवान् हरि रहते हैं विजय, ऐश्वर्य तथा समस्त सद्गुण भी उसी के साथ रहते हैं। मैं भगवान् सङ्कर्षण के चरणारविन्द में मन लगाकर इस शरीर को त्याग मुनियों की गति को प्राप्त करूँगा। पिछले जन्म में वृत्रासुर राजा चित्रकेतु था तथा नारद जी की कृपा से उसने सङ्कर्षण-मन्त्र की उपासना करके सङ्कर्षण भगवान्का दर्शन प्राप्त किया था। अहंकार के

कारण पार्वती के शाप से वह राक्षस हो गया था।

अहं हरे तव पादैकमूल-दासानुदासो भवितास्मि भूय:।

मन: स्मरेत-असुपते: गुणान्ते गृणीत वाक् कर्म करोतु काय:।।6।11।24।।

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।

न योगसिद्धी: अपुन: भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे।।6।11।25।।

लगा कि भगवान् समक्ष खड़े हैं ऐसा समझ वृत्रासुर भगवान् की स्तुति करते हुए कहता है कि अगले जन्म में आप मुझे अपने दासों की सेवा का अवसर प्रदान करें। मेरा मन आपके मंगलमय गुण का स्मरण तथा वाणी उन्हीं का गान करते हुए सेवा में लगा रहे। हे प्रभु ! आपको छोड़कर मुझे मोक्ष तो नहीं ही चाहिए और न ब्रह्मलोक- स्वर्ग -रसातल का राज्य तथा न कोई योग की सिद्धियाँ ही चाहिए।

अजातपक्षा इव मातरं खगा: स्तन्यं यथा वत्सतरा: क्षुधार्ता:।

प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्।।6।11।26।।

जैसे पक्षी के पंखहीन नवजात बच्चे अपनी माँ की प्रतीक्षा करते हैं, जैसे भूखा बछड़ा अपनी माता गाय की ओर देखता रहता है, जैसे विरह से आतुर पत्नी विदेश में रहने वाले पति से मिलने को लालायित रहती है उसी तरह कमलनयन प्रभु मेरा मन आपके दर्शन के लिए छटपटा रहा है।

मम-उत्तमश्लोक-जनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमत: स्वकर्मभि:।

त्वत्-मायया-आत्म-आत्मज-दार-गेहेषु-आसक्त-चित्तस्य न नाथ भूयात्।।6।11।27।।

जन्म-मरण के संसार चक्र की मुझे चिन्ता नहीं परन्तु जिस किसी भी योनि में जाऊँ आपके भक्तों की संगति तथा प्रेम मिलता रहे। आपकी माया के कारण जो पुत्र-देह-घर आदि में ही आसक्त हैं उनकी संगति से मुझे दूर रखें। वृत्रासुर ने इन्द्र के साथ घोर युद्ध किया। उसके त्रिशूल को इन्द्र ने वज्र से चूर-चूर कर दिया तथा उसकी दायीं भुजा काट डाली। वृत्रासुर ने बायें हाथ से लोहे के परिघ से इन्द्र पर प्रहार किया। बचने के प्रयास में इन्द्र का वज्र हाथ से छूट कर गिर गया। वृत्रासुर ने इन्द्र को प्रोत्साहित किया कि वह वज्र को जमीन से उठाये और उसके साथ युद्ध करे। वृत्रासुर का ध्येय विजय नहीं अपितु मृत्यु थी। उसने इन्द्र से कहा -

यथा दारुमयी नारी यथा यन्त्रमयो मृग:।

एवं भूतानि मघवन्- ईश-तन्त्राणि विद्धि भो:।।6।12।10।।

जैसे कठपुतली तथा यन्त्र का हरिण स्वयं नाच नहीं सकते उसी तरह समस्त जगत भगवान्के नियन्त्रण में है। मेरी दायीं भुजा नष्ट हो गयी है परन्तु मैं युद्ध करना चाहता हूँ। तू भी उत्साहित होकर वज्र उठा और युद्ध कर। निहत्थे पर मैं प्रहार नहीं करता। इन्द्र ने वृत्रासुर की प्रशंसा करते हुए कहा -

अहो दानव सिद्धोऽसि यस्य ते मति: ईदृशी।

भक्त: सर्वात्मना-आत्मानाम् सुहृदं जगदीश्वरम्।।6।12।19।।

यस्य भक्ति: भगवति हरौ नि:श्रेयस-ईश्वरे।

विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रै: खातक-उदकै:।।6।12।22।।

इस विकट समय में भी तू विवेक से भगवान्के महान भक्त बनकर संसार के मित्र हो गये हो। तू परमश्रेय भगवान्

के भक्त हो गये हो तथा अमृत के सागर में तैर रहे हो, विजय रूपी जल के छोटे गड्ढ़ों की तुम्हें क्या आवश्यकता है। शुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित को बताया कि भक्तियोग की इस तरह संवाद करते हुए दोनों योद्धा युद्धरत हो गये। इन्द्र ने जब उसकी बायीं भुजा भी काट डाली तब वह अपने पर्वतनुमा शरीर के विकराल मुँह से ही इन्द्र को निगल गया। नारायण कवच से सुरक्षित इन्द्र उसके पेट में मरा नहीं और वज्र से उसका उदर फाड़ कर बाहर निकला तथा उसका पर्वतनुमा सिर पूरे एक वर्ष में धीरे-धीरे काट सका।

वृत्रासुर भगवान्का परम भक्त था इसलिए इन्द्र को उसके वध से ब्रह्महत्या का दोष लगा। प्रारम्भ में इन्द्र विश्वरूप के हत्या से ब्रह्महत्या का दु:ख झेल चुका था। पुन: वह त्वष्टा के दूसरे पुत्र की हत्या में लिप्त नहीं होना चाहता था। परन्तु ऋषियों ने उसे अश्वमेध यज्ञ से नारायण के प्रसन्न होने पर इस तरह का पाप नहीं लगने की बात समझायी। भगवत्नाम के कीर्तन की महिमा में कहा कि -

ब्रह्महा पितृहा गो-घ्नो मातृहा-आचार्यहा-अघवान्।

श्वाद: पुल्कसको वापि शुद्धयेरन् कीर्तनात्।।6।13।8।।

ब्राह्मण, पिता, गाय, माता, आचार्य का हत्यारा, कुत्ते का मांसभक्षी तथा कसाई भी भगवान्के नाम-कीर्तन से पवित्र हो जाता है। ऋषियों के समझाने पर इन्द्र ने वृत्रासुर का वध तो किया लेकिन वह जानता था कि वृत्रासुर भगवान् का महान भक्त है।उसकी हत्या का पाप चाण्डाल महिला के रूप में उसे वेदनाग्रस्त करने लगा। इन्द्र भागकर मानस-सरोवर के जल में एक हजार वर्ष कमल-नाल के भीतर घुसकर बैठा रहा। अग्निदेव ने यज्ञ में इन्द्र के भाग को वहीं सूक्ष्म रूप से पहुँचा दिया करते थे। कमल में विराजमान भगवान्विष्णु की पत्नी की कृपा से अन्तत: उसका उद्धार हुआ। उसकी अनुपस्थिति में ऋषियों ने नहुष को इन्द्र बना दिया था परन्तु इन्द्र-पत्नी शची के साथ दुर्व्य वहार के कारण ऋषियों का कोपभाजन होकर नहुष सर्प बन गया। इन्द्र हत्या दोष से मुक्त होकर पुन: स्वर्ग का अधिपति हो गया तथा अश्वमेध यज्ञ करके नारायण की कृपा से पूर्णतया शुद्ध हो गया। वृत्रासुर पूर्व जन्म में चित्रकेतु नामका चक्रवर्ती सम्राट था। राजा नि:सन्तान था। महर्षि अंगिरा के वरदान से उसे एक पुत्र प्राप्त हुआ था।महर्षि अंगिरा ने कहा था कि उसका पुत्र हर्ष तथा शोक दोनों का कारण होगा। चित्रकेतु की अन्य पत्नियों ने ईर्ष्यावश उस बालक को विषपान करा दिया। उसके मरने से चित्रकेतु विकल हो उठा। अंगिरा ऋषि के साथ नारद जी उसके यहाँ पधारे। दोनों ने उसे सांसारिक सम्बन्ध की क्षणभंगुरता बताते हुए आत्मबोध कराया। नारद जी ने अपनी योग शक्ति से उसके पुत्र को उसके सामने प्रकट किया। परन्तु उस पुत्र ने शरीर की क्षणभंगुरता को बताते हुए कहा कि पूर्व में वह कितने शरीर बदल चुका है। आत्मा का किसी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता।उसने राजा चित्रकेतु को पिता मानने से इन्कार कर दिया। राजा की आँख खुली। नारद जी ने उसे सङ्कर्षण मन्त्र दिया। नारद जी ने कहा कि भगवान्सङ्कर्षण के चरणारविन्द की शरण में जाने से शिव तथा अन्य देवताओं का पूर्व में कल्याण हुआ है।

ॐ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि।

प्रद्युम्नाय-अनिरुद्धाय नम: सङ्कर्षणाय च।।6।16।18।।

चित्रकेतु ने उपवास करते हुए केवल जल पीकर एक सप्ताह तक नारद जी के मन्त्र का अनुष्ठान किया।

भगवान्सङ्कर्षण ने उसे चरणाश्रित समझ अपना अनुपम स्वरूप का साक्षात् दर्शन दिया।

मृणालगौरं शितिवाससं स्फुरत् किरीट-केयूर-कटित्र-कङ्कणम्।

प्रसन्न-वक्त्र-अरुणलोचनं वृतं ददर्श सिद्धेश्वर-मण्डलै: प्रभुम्। ।6।16।30। ।

भगवान्सङ्कर्षण का स्वरूप कमलनाल के समान कोमल एवं गोरा था। उनके शरीर पर नीले रंग का रेशमी वस्त्र फहरा रहा था। वे मुकुट-बाजूबन्द-कमरधनी-कंगन आदि से आभूषित, प्रसन्न मुखमण्डल पर रतनारे आँखों से सुशोभित, सिद्धेश्वरों से घिरे हुए थे। दिव्यदर्शन से आनन्दविभोर होकर राजा चित्रकेतु ने आँखों से स्तुति की।

तव विभव: खलु भगवन् जगत् उदय-स्थिति-लय-आदीनि।

विश्वसृज: ते अंश-अंशा: तत्र मृषा स्पर्धन्ते पृथक्-अभिमत्या। ।6।16।35। ।

संसार की सृष्टि रचना, उसका पालन तथा अन्तत: सबका संहार यह आपका स्वाभाविक गुण है। परन्तु आपके अंशो के अंश ब्रह्मा आदि झूठमूठ अपने को जगत्कर्ता ईश्वर मान आपस में स्पर्धा करते हैं।

क्षित्यादिभि: एष: किल-आवृत: सप्तभि: दशगुण-उत्तरै: अण्डकोश:।

यत्र पतति-अणु-कल्प: सह-अण्ड-कोटि-कोटिभि: तत्-अनन्त:। ।6।16।37। ।

आप अपरम्पार अनन्त भगवान्हैं। यह ब्रह्माण्डकोश एक के बाद एक दशगुणे सात आवरणों (पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु-आकाश-अहंकार-महदादि) से घिरा हुआ है और ऐसे करोड़ों-करोड़ ब्रह्माण्ड आपमें एक परमाणु की तरह घूमते रहते हैं।

जितम्-अजित तदा भवता यदाऽऽह भागवतं धर्मम्-अनवद्यम्।

निष्किञ्चना ये मुनय आत्मारामा यमुपासते-अपवर्गाय। ।6।16।40। ।

सनकादि कुमारों को आपने भागवत-धर्म (देखें स्कन्ध 3 अध्याय 8) सुनाकर सबको जीत लिया क्योंकि देह-गेह की आसक्ति से रहित महर्षिगण वैकुण्ठ प्राप्ति हेतु इसी भागवत धर्म का आश्रय लेते हैं। यह भागवत-धर्म परम विशुद्ध है।इसमें मैं-मेरा-तू-तेरा वाली विषम बुद्धि नहीं रहती है। चर-अचर समस्त प्राणियों में समदृष्टि वाले सन्तलोग इसी भागवत-धर्म का अनुसरण करते हैं।

न हि भगवन्-अघटितम्- इदम्त्वत्दर्शनात्-नृणाम्अखिल-पापक्षय:।

यत्-नाम-सकृत्-श्रवणात् पुल्कशोऽपि विमुच्यते संसारात्। ।6।16।44। ।

यं वै श्वसन्तम्-अनु विश्वसृज: श्वसन्ति यं चेकितानम्-अनु चित्तय उच्चकन्ति।

भूमण्डलं सर्षपायति यस्य मूर्ध्नि तस्मै नमो भगवतेऽस्तु सहस्रमूर्ध्ने। ।6।16।48। ।

इसमें कोई अचम्भा नहीं कि आपके दर्शन से ही समस्त पाप मिट जाते हैं।एक चाण्डाल भी एक बार आपका नाम लेकर संसार से मुक्त हो जाता है। आपकी चेष्टा करने पर ही ब्रह्मादि को सृष्टि करने का बल मिलता है।इन्द्रियाँ आपकी चितवन से ही सक्रिय होती हैं। समस्त भूमण्डल आपके फन पर एक सरसो के दाने की तरह स्थित है। सहस्रफन वाले प्रभु आपको नमस्कार है। वैकुण्ठाधिपति भगवान्नारायण जगत्सृजन, पालन तथा संहार अपने चर्तु व्यूह स्वरूप से करते हैं। चतुर्व्यूह के स्वरूप हैं - वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध। चित्रकेतु की शरणागति स्वीकार करते हुए भगवान्सङ्कर्षण ने उनकी राज्य कामना की पूर्ति की। उनको विद्याधर का राज्य दे

दिया। चित्रकेतु में भक्ति के साथ-साथ भौतिक कामना की आसक्ति भी थी। एक दिन चित्रकेतु कैलास के ऊपर से अपने विमान में जाते हुए शंकर जी को पार्वती को गोद में बैठाये देखा। उस समय सिद्ध-चारणादि शंकर-पार्वती को घेरे हुए उनका यशोगान कर रहे थे। शंकर जी की सार्वजनिक निर्लज्जता पर चित्रकेतु हँसा। पर्वती जी ने उसे असुर बनने का शाप दे दिया। उसने पार्वती जी से क्षमा याचना की और वहाँ से विमान द्वारा निर्भय की तरह प्रस्थान कर गया। उसकी निर्भयता की सराहना शिव ने पार्वती से की।

दृष्टवती-असि सुश्रोणि हरेः अद्‌भुतकर्मणः।
माहात्म्यं भृत्य-भृत्यानां निःस्पृहाणां महात्मनाम्।।6।17।27।।
नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति।
स्वर्ग-अपवर्ग-नरकेषु अपि तुल्यार्थदर्शिनः।।6।17।28।।

हे सुन्दरि ! लीलाबिहारी भगवान्‌के उदार तथा निःस्पृह दासों के दास चित्रकेतु की महिमा देखी। हरि-भक्ति के कारण वह निर्भय हो गया है। स्वर्ग, वैकुण्ठ तथा नरक में समभाव प्राप्त हो जाने से कहीं कोई भय नहीं सताता।

नाहं विरञ्चो न कुमारनारदो न ब्रह्मपुत्रा मुनयः सुरेशाः।
विदाम यस्य-ईहितम्‌अंशक-अंशका न तत्स्वरूपं पृथक्-ईश मानिनः।।6।17।32।।

शिव कहते हैं कि मैं, ब्रह्मा, सनकादि, नारद, ब्रह्मा के पुत्र भृगु आदि तथा इन्द्र के साथ अन्य बड़े देवगण भी भगवान्‌की लीला को समझ नहीं पाते। भगवान्‌के छोटे से छोटे अंश होते हुए भी हमलोग अपने को उनसे अलग ईश्वर मान बैठे हैं। इसी लिए हमलोग उनके स्वरूप को नहीं जान पाते। चित्रकेतु चाहता तो हमलोगों को भी शाप दे सकता था परन्तु भगवान्‌की भक्ति से परिपूर्ण वह नम्रता पूर्वक हमसबों को प्रणाम कर चला गया। शुकदेव जी ने कहा कि वही, विद्याधर लोक का राजा चित्रकेतु, वृत्रासुर बनकर इन्द्र का शत्रु हुआ। चित्रकेतु के इस प्रकरण के पाठ से भगवान्‌प्रसन्न होते हैं तथा भौतिक कामनाओं से मुक्त कर देते हैं।

6।5। लक्ष्मी-नारायण व्रत (पुंसवन व्रत) तथा मरुद्‌गण का जन्म।

कश्यप मुनि की देवमाता अदिति के बारह आदित्य कहे जाने वाले पराक्रमी एवं पूज्य देवगण थे। इनमें से बारहवाँ आदित्य उरुक्रम नाम से भगवान् विष्णु स्वयं थे।

उरुक्रमस्य देवस्य माया-वामन-रूपिणः।।6।18।8।।

देवमाता के नौवें पुत्र वरुण से वाल्मीकि तथा भृगु की भी उत्पत्ति थी। वल्मीक से जन्म लेने के कारण ये वाल्मीकि कहलाये। भृगु ब्रह्मा के दस मानस पुत्रों में से एक थे परन्तु उन्हें पुनः वरुण की पत्नि के गर्भ से जन्म लेना पड़ा था। अदिति के दसवें पुत्र मित्र थे। उर्वशी के सौंदर्य से मोहित होकर मित्र एवं वरुण दोनों के एक ही समय वीर्य स्खलित हुए जिसे मिट्टी के घड़े में रखा गया था और उसी से अगस्त्य तथा वसिष्ठ का जन्म हुआ था। इसीलिए इन दोनों को मित्र एवं वरुण का संयुक्त पुत्र माना जाता है। अदिति के ग्यारहवें पुत्र इन्द्र स्वर्ग के राजा थे। बारहवें भगवान् वामन थे जो उपेन्द्र अर्थात् इन्द्र के छोटे भाई भी कहे गये।

वाल्मीकिश्च महायोगी वल्मीकात् अभवत्-किल।
अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च मित्रावरुणयोः ऋषि।।6।18।5।।
रेतः सिषिचतुः कुम्भे उर्वश्याः सन्निधौ हुतम्।।6।18।6।।

उरुक्रमस्य देवस्य माया-वामन-रूपिण:।।6।18।8।।

दैत्यमाता दिति के गर्भ से हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु हुए थे। एक का अन्त वराह भगवान्ने तथा दूसरे का अन्त नरसिंह भगवान्ने किया था। हिरण्यकशिपु के प्रह्लाद महाभागवत पुत्र हुए थे जिनके रक्षार्थ भगवान् विष्णु ने नरसिंह का स्वरूप धारण किया था। प्रह्लाद के पौत्र महाराज बलि थे जिनकी कथा वामन भगवान्तथा त्रिविक्रम भगवान्की भक्ति के लिए सर्वदा गायी जाती है।

दैत्यमाता दिति के गर्भ से ही मरुदगण जन्मे परन्तु इन्द्र ने उन्हें देवों की श्रेणी में रखा। इन्द्र के ही कारण भगवान्विष्णु ने दिति के पराक्रमी पुत्रों हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकशिपु का वध किया था। दिति इन्द्र के नाश कराने हेतु एक पुत्र चाहती थी। इसी कामना से उसने अपने पतिदेव कश्यप मुनि को सेवा से प्रसन्न की। मुनि ने ने प्रसन्न होकर वर देने का वचन दिया। दिति ने एक पुत्र की कामना की जो इन्द्र का वध कर सके। कश्यप मुनि को यह सुनकर दु:ख हुआ। परन्तु अपने वचन के अधीन होने के कारण उन्होंने दिति को नियम पूर्वक किये जानेवाले एक वर्ष का भगवान्विष्णु के प्रिय लक्ष्मी-नारायण की पूजा के लिए पुंसवन व्रत करने को कहा। साथ ही में यह भी कहा कि व्रत में नियम तथा आचार का उल्लंघन होने पर जो पुत्र होगा वह इन्द्र का अनुयायी मित्र हो जायेगा। इन्द्र को दिति की मनसा का ज्ञान हो गया। वह छद्म वेष में अपनी मौसी दिति की सेवा में लग गया।एक दिन कठोर व्रत के कारण कमजोर दिति भोजनोपरान्त मुँह, हाथ तथा पाँव धोये विना सन्ध्याकाल में ही सो गयी। नियम का उल्लंघन होते देख इन्द्र उसके गर्भ में सूक्ष्म रूप से प्रवेश कर गर्भस्थ शिशु के सात टुकड़ किये परन्तु वे सभी जीवित थे। इन्द्र ने प्रत्येक के सात-सात टुकड़े किये परन्तु वे सभी उनचास रोने लगे। इन्द्र ने रोओ मत अर्थात्मा रुद कहा। इसी से उन सबों का नाम मरुत्हो गया। वे सभी हाथ जोड़ कर इन्द्र से बोले कि हम तुम्हारे मौसेरा भाई मरुद्गण हैं। वे सभी भगवान् की कृपा से बच गये।दिति जब जागी तब उसने अपने उनचास पुत्रों एवं इन्द्र को साथ देखा और बहुत प्रसन्न हुई। इन्द्र ने दिति को सारा वृत्तान्त सुनाया और उनसे क्षमा माँगी। चूँकि इन्द्र ने दिति को सबकुछ सच-सच बता दिया इसलिए दिति ने उसे क्षमा प्रदान की। इन्द्र भी मरुद्गण को साथ ले स्वर्गलोक चले गये। शुकदेव मुनि ने समस्त कामनाओं को पूरा करनेवाले पुंसवन व्रत की विधि बतायी।स्त्री को चाहिए कि पति की आज्ञा ले अगहन शुक्ल प्रतिपदा को इस व्रत का शुभारम्भ करे।पहले मरुद्गण के जन्म की कथा का पाठ करले या सुन ले। प्रात:कालीन नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर स्नानादि करके वस्त्र तथा आभूषणादि धारण कर लक्ष्मी-नारायण भगवान्की पूजा स्तुति करे ।

अलं ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमोऽस्तु ते।
महाविभूतिपतये नम: सकलसिद्धये।।6।19।4।।
यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा महिनौजसा।
जुष्ट ईश गुणै: सर्वैस्ततोऽसि भगवान् प्रभु:।।6।19।5।।
विष्णुपत्नि महामाये महापुरुषलक्षणे।
प्रीयेथा मे महाभागे लोकमात: नमोऽस्तुते।।6।19।6।।

पूर्णकाम, सकलसिद्धस्वरूप तथा समस्त विभूतियों के स्वामी को बार-बार नमस्कार है।आप कृपा, विभूति, तेज,

महमिा तथा वीर्यादि गुणों से युक्त सर्वशक्तिमान नित्ययुक्त भगवान्हैं। महाभाग्यवती जगन्माता माँ लक्ष्मी ! आप महामाया स्वरूपिणी भगवान्की अर्द्धाङ्गिनी हैं तथा भगवान्के समस्त गुणों का आप में वास है। आप प्रसन्न हों। आपको बार-बार नमस्कार है। **"ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सह महाविभूतिभि: बलिम् उपहराणि"** मन्त्र से प्रतिदिन शान्त मन से विष्णु भगवान् का आवाहन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, गन्ध, पुष्प, दीप और नैवेद्य आदि निवेदन करके पूजा करे। बचे नैवेद्य से अग्नि में **"ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहा"** मन्त्र से बारह आहुतियाँ दे। उनकी स्तुति करके दण्डवत प्रणाम करे। पुन: पति की भी पूजा करे। ब्राह्मणों तथा भक्तों के बीच प्रसाद वितरण करे। नित्य वर्ष पर्यन्त पूजा कर कार्तिक पूर्णिमा को उपवास कर भगवान्की पूजा करे तथा आहुतियाँ दे। इस व्रत को करने से अविवाहित कन्या को सुयोग्य पति मिलता है तथा सन्तानहीन को सन्तान मिलती है।

।। **स्कन्ध 6 पूरा हुआ**।।

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध 7

वन्दउँ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

7।1।प्रह्लाद चरित

छठे स्कन्ध की कथा के अनुसार इन्द्र के कारण वृत्रासुर का वध करने वाले भगवान्का प्राणियों के साथ पक्षपात करने का परीक्षित ने प्रश्न खड़ा किया। शुकदेव जी ने भगवान्की निष्पक्षता का भाव रखते हुए युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ में शिशुपाल एवं दन्तवक्त्र की घटना को युधिष्ठर एवं नारद संवाद के प्रसंग को सुनाया।

दृष्ट्वा महाद्भूतं राजा राजसूये महाक्रतौ।
वासुदेवे भगवति सायुज्यं चेदिभू-भुजः।।7।1।13।।
अहो अत्यद्भुतं हि-एतत्-दुर्लभ-एकान्तिनाम्-अपि।
वासुदेवे परे तत्त्वे प्राप्तिः चैद्यस्य विद्विषः।।7।1।15।।

युधिष्ठर ने भगवान् कृष्ण द्वारा शिशुपाल के वध के बाद उसकी ज्योति को भगवान् कृष्ण के शरीर में प्रवेश करते देख विस्मित होकर नारद जी से पूछा - शत्रुभाव से उद्वेलित शिशुपाल का भगवान्ने क्यों कल्याण किया।

तस्मात्-वैर-अनुबन्धेन निर्वैरेण भयेन वा।
स्नेहात्-कामेन वा युञ्जात् कथञ्चित्न ईक्षते पृथक्।।7।1।25।।
गोप्यः कामात्-भयात्-कंसो दोषात्-चैद्य-आदयः नृपाः।
समबन्धाद् वृष्णयः स्नेहात्-यूयम् भक्त्या वयं विभो।।7।1।30।।

नारद जी ने कहा कि वैर से, मित्रता से, कामना से, प्रेम से जैसे भी भगवान्में सदा मन लग जाने पर भगवान्की ओर से कोई भेदभाव नहीं माना जाता। गोपियाँ प्रेम से, कंस भय से, शिशुपाल द्वेष से, यदुवंश पारीवारिक सम्बन्ध से, तुमलोग अर्थात्पाण्डव स्नेह से तथा हमलोग अर्थात्नारद मुनि आदि भक्ति से भगवान्में लगे रहते हैं। सनकादिक जब वैकुण्ठ गये थे तब जय तथा विजय द्वारा भगवान्के दर्शन में अवरोध करते देख सनकादिक ने कहा कि तुमलोगों का स्वभाव वैकुण्ठ के विपरीत है। मुनियों ने असुर बनने का शाप दे दिया।

एवं शप्तौ स्वभवनात् पतन्तौ तैः कृपालुभिः।
प्रोक्तौ पुनर्जन्मभिः वां त्रिभिः लोकाय कल्पताम्।।7।1।38।।

शापवश दोनों का वैकुण्ठ से पतन होते देख दयालु सनकादिकों ने उन्हें कहा कि तीन जन्म की असुर-योनि के बाद शापमुक्त हो फिर से वैकुण्ठ आ जाओगे।

जज्ञाते तौ दितेः पुत्रौ दैत्यदानव-वन्दितौ।
हिरण्यकशिपुः ज्येष्ठो हिरण्याक्षो-अनुजः ततः।।7।1।39।।

पहले जन्म में ये लोग दैत्यमाता दिति से उत्पन्न हुए जिसमें हिरण्यकशिपु बड़ा था तथा हिरण्याक्ष छोटा भाई था।पृथ्वी के उद्धार हेतु भगवान्ने हिरण्याक्ष का वध किया। हिरण्यकशिपु भगवान्विष्णु का वैरी हो गया। उसने

अपने पुत्र प्रह्लाद से भी शत्रुवत व्यवहार किया क्योंकि वह भगवान् विष्णु का अनन्य भक्त था। प्रह्लाद की रक्षा हेतु भगवान् विष्णु ने नरसिंह के रूप में हिरण्यकशिपु का वध किया। दूसरे जन्म में ये रावण तथा कुम्भकर्ण हुए जिनका अन्त भगवान्राम ने किया। तीसरे तथा अन्तिम जन्म में ये शिशुपाल तथा दन्तवक्त्र हुए जिनका अन्त भगवान् कृष्ण ने किया। अन्तिम योनि में होनें के कारण इन दोनों की ज्योति भगवान् में मिलकर वैकुण्ठ चली गयी। शिशुपाल वैरभाव के कारण निरन्तर भगवान्का ही चिन्तन किया करता था। भगवान्के नाम में तन्मयता के कारण इसका कल्याण हुआ।

हिरण्यकशिपु अपने छोटे भाई हिरण्याक्ष के वध के पश्चात्दु:खी होकर भगवान् विष्णु पर पक्षपात का दोष लगाया। अपनी माँ दिति तथा हिरण्याक्ष की पत्नी को सान्त्वना देते हुए अध्यात्म से तत्त्वज्ञान की बातें सुनाया। शरीर नाशवान है परन्तु आत्मा नहीं। शरीर का सुख या दु:ख सकाम कर्म से ही मिलता है। उसने विष्णु भगवान्से बदला लेने का संकल्प लेते हुए ऋषियों के यज्ञादि में विघ्न उत्पन्न कराया। सोचा कि यज्ञों को बन्द कराने से देवता तथा यज्ञपुरुष विष्णु भगवान्का नाश हो जायेगा। हिरण्यकशिपु स्वयं घोर तपस्या करके ब्रह्मा से वर प्राप्त किया कि उसकी मृत्यु किसी प्राणी या जीव-जन्तु या देवताओं से,घर में या घर से बाहर, दिन या रात में, भूमि पर या आकाश में, किसी हथियार से न हो तथा उसका ऐश्वर्य दिक्पालों एवं तपस्वियों जैसा हो। सब पर मेरा स्वामित्व हो एवं कोई मेरा प्रतिद्वन्दी न हो। वर प्राप्ति के बाद निरंकुश हिरण्यकशिपु ने समस्त जगत में यज्ञादि बन्द करा दिये तथा समस्त देवतागण या असुरादि उसके अधीन हो गये। वामन भगवान्ने आठवें स्कन्ध अध्याय **19** के प्रकरण से राजा बलि को बताया कि हिरण्यकशिपु अपने भाई का बदला लेने वैकुण्ठ लोक पहुँच गया। भगवान्उसे देखकर भागने लगे और वह उनका पीछा कर रहा था। भगवान्ने सोचा कि इसे अन्तर्दृष्टि है नहीं इसलिए मैं इसके हृदय में जा बैठूँ।

एवं स निश्चित्य शरीरम्-अधावतो निर्विवेशे-असुर-इन्द्र।
श्वास-अनिल-अन्तर्हित-सूक्ष्मदेह: तत्-प्राण-रन्ध्रेण विविग्नचेता:।।8।19।10।।

भगवान् ऐसा सोच उसकी नासिका से श्वास के सहारे सूक्ष्मरूप में जाकर उसके हृदय में विराज गये। हिरण्यकशिपु ने उन्हें सर्वत्र खोजा परन्तु वे नहीं मिले तब उन्हें मरा हुआ समझ अपने को विश्वविजयी मान लिया।उसके अत्याचार से पीड़ित देवगण भगवान्विष्णु के पास गये। भगवान् विष्णु ने देवताओं को आश्वासन देते हुए धैर्य रखने को कहा जब वह अपने ही शान्त एवं शत्रुरहित पुत्र को सतायेगा तब मैं उसका अन्त करूँगा।
नारद जी ने महाराज युधिष्ठर को कथा सुनाते हए कहा -

तस्य दैत्यपते: पुत्राश्चत्वार: परमाद्भुता:।
प्रह्लादोऽभूत्-महान्-तेषां गुणै: महत्-उपासक:।।7।4।30।।
वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रति:।।7।4।35।।
न्यस्तक्रीडनको बालो जडवत्-तत्-मनस्तया।
कृष्णग्रह-गृहीतात्मा न वेद जगत् ईदृशम्।।7।4।37।।
आसीन: पर्यटन्-अश्नन् शयान: प्रपिबन् ब्रुवन्।
न-अनुसन्धत्त्एतानि गोविन्द-परिरम्भित:।।7।4।38।।

हिरण्यकशिपु के चार पुत्रों में प्रह्लाद सर्वोत्तम, सब दिव्यगुणों के खान तथा भगवान् नारायण के महान् उपासक थे। भगवान् वासुदेव में उनकी सहज अनुरक्ति थी। संसार की चिन्ता से मुक्त वे वचपन से ही खेल-कूद छोड़कर भगवान्कृष्ण के ध्यान में सुध-बुध खोकर होकर निमग्न रहते। वे ऐसा अनुभव करते कि भगवान् गोविन्द उन्हें अपनी गोद में लेकर आलिंगन कर रहे हैं। खाना-पीना, सोना-जागना, चलना-फिरना तथा बोलना आदि अपनी क्रियाओं का उन्हें ध्यान ही नहीं रहता। कभी जोर से रोते, कभी ठठाकर हँसते तथा कभी नाचने भी लगते।

स उत्तमश्लोक-पद-अरविन्दयोः निषेवया-अकिञ्चन-सङ्ग्-लब्ध्या।

तन्वन्परां निर्वृतिम् आत्मनो मुहुः दुःसङ्ग-दीनान्यमनः शमं व्यधात्। ।7।4।42। ।

तस्मिन् महाभागवते महाभागे महात्मनि।

हिरण्यकशिपू राजन्अकरोत्अघम्आत्मजे। ।7।4।43। ।

भगवान् कृष्ण के चरणारविन्द की भक्ति भगवान्के प्रेमी अकिञ्चन सन्तों की संगति से मिलती है। कुसंगति के कारण आध्यात्मिक ज्ञान से विहीन लोगों के भी मन में प्रह्लाद जी शान्ति प्रदान करते। ये भगवान्के परम प्रेमी भक्त, परम भाग्यवान तथा उच्च कोटि के महात्मा थे। ऐसे पुत्र को भी अपराधी बताकर हिरण्यकशिपु अनिष्ट करने की चेष्टा करने लगा। पुरोहित शुक्राचार्य के पुत्र शण्ड एवं अमर्क प्रह्लाद जी के गुरु थे।

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां सदा समुद्विग्न-धियाम्-असत्-ग्रहात्।

हित्वा-आत्मपातम्गृहमन्धकूपं वनं गतो यत्हरिम्-आश्रयेत। ।7।5।5। ।

हिरण्यकशिपु ने एकबार प्रह्लाद जी को गोद में लेकर पूछा कि क्या पढ़ते हो। उन्होंने कहा कि मैं-मेरा का पाठ से अच्छा है कि वन में रहकर श्रीहरि की सेवा करूँ। घास से ढके अन्धे कुएँ में रहना नरक तुल्य है। हिरण्यकशिपु ने शिक्षकों से कहा कि पता करो कि कौन इस बच्चे की बुद्धि खराब कर रहा है। शिक्षकों को प्रह्लाद जी ने मायापति भगवान्को नमस्ते करते हुए बोला कि पशु-बद्धि के कारण ही मैं-मेरा का भाव बनता है।

यथा भ्राम्यति-अयो ब्रह्न्स्वयम्-आकर्ष-सन्निधौ।

तथा मे भिद्यते चेतः चक्रपाणेः यदृच्छया। ।7।5।14। ।

चुम्बक से लोहा जैसे स्वयं खिच जाता है उसीतरह भगवान्में मेरा मन लगता है। शिक्षकों ने डाँटते हुए कहा कि तुम दैत्यकुल के चन्दन-वन के बबूल हो। इस कुल के वन को काटने वाली कुल्हाड़ी विष्णु है और तू उस कुल्हाड़ी की बेंट हो। कुछ समय शिक्षकों से पढ़ने के बाद हिरण्यकशिपु ने एक बार पुनः प्रह्लाद को गोद में लेकर पूछा कि अच्छी शिक्षा जो सीखो हो उसमें से कुछ सुनाओ। प्रहलाद जी ने कहा -

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यम्-आत्मनिवेदनम्। ।7।5।23। ।

इति पुंसा-अर्पिता विष्णौ भक्ति-चेत्-नवलक्षणा।

क्रियते भगवति-अद्धा तत्-मन्ये-अधीतम्-उत्तमम्। ।7।5।24। ।

भगवान् विष्णु की भक्ति नौ प्रकार की है। उनकी लीला एवं गुण आदि का श्रवण, कीर्तन, उनके रूप नामादि का स्मरण, चरणों की सेवा, पूजा-अर्चा, वन्दन, दास भाव में रहना, सखा भाव में रहना औरआत्म-समर्पण। सबकुछ

भगवान्‌को समर्पित करते हुए ये नौ प्रकार की भक्ति ही सर्वोत्तम शिक्षा है। ऐसा सुनकर हिरण्यकशिपु ने शिक्षकों को डाँटा। राजा से शिक्षकों ने प्रह्लाद जी की इसतरह की जन्मजात बुद्धि बतायी। हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद जी से जानना चाहा कि किसने उसे ऐसा सिखाया। प्रह्लाद जी ने कहा -

मतिः न कृष्णे परतः स्वतो वा मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम्।
अदान्त्-गोभिः विशतां तमिस्रं पुनः पुनः चर्वित-चर्वणाम्। ।7।5।30। ।
न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुं दुराशया ये बहिः अर्थ-मानिनः।
अन्धा यथा-अन्धैः उपनीयमाना वाचीशतन्त्याम्-उरु-दाम्नि बद्धाः। ।7।5।31। ।

संसार के लोग पिसे हुए को पीस रहे हैं तथा चबाये हुए को चबा रहे हैं। विषय भोग को बार-बार भोगते हुए संसार रूपी नरक में लगे रहते हैं। हमारे स्वार्थ और परमार्थ सबकुछ भगवान्‌विष्णु हैं। अपनी इन्द्रयों से सांसारिक वस्तुओं के सुख के पीछे लगे रहनेवाले को यह नहीं समझ में आता। और अन्धों के पीछे अन्धों की तरह चलने वाले गड्ढ़े में गिरने की तरह सकाम कर्मों की रस्सी में बन्धे हैं तथा संसार में आते जाते रहते हैं।

न-एषां मतिः तावत्-उरुक्रम-अङ्घ्रिं स्पृशति-अनर्थ-उपगमो यदर्थः।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत्। ।7।5।32। ।

ऐसे गृहासक्त जनों की बुद्धि अपने जैसे लोगों की संगति के कारण स्वतः नहीं सुधरती। अपने शरीर में सन्तों की चरण-धूल नहीं चुपड़नेवाले के लिए विषय-बयार से बचना कठिन है तथा भगवान्‌के चरणकमल से आसक्ति नहीं हो पाती। ऐसा सुन हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद जी को गोद से भूमि पर पटक दिया। यह पाँच वर्ष का होते हुए भी हमलोगों को त्यागकर विष्णु का अनुयायी और मेरा शत्रु हो गया है। दैत्यों को इनका वध करने को कहा।

परे ब्रह्मणि -अनिर्देश्ये भगवति-अखिलात्मनि।
युक्त-आत्मनि-अफला आसन्-अपुण्यस्य इव सत्-क्रियाः। ।7।5।41। ।

सर्वात्मा, समस्त शक्ति के आधार परब्रह्म में चित्त समाहित रहने से प्रह्लाद जी ने सब प्रहार सह लिये। इन पर सारे प्रहार वैसे ही निष्फल हुए जैसे भाग्यहीनों के उद्योग-धन्धे। हिरण्यकशिपु ने इन्हें हाथी से रौंदवाया, सर्प से कटवाया, पहाड़ से गिरवाया परन्तु इनकी कोई क्षति नहीं हुई। हिरण्यकशिपु प्रह्लाद जी को निडर देख उदास हो गया। हिरण्यकशिपु को उदास देख शिक्षकों ने इन्हें तबतक वरुण पाश में बांधने को कहा जबतक गुरु शुक्राचार्य वाहर से लौट नहीं आते। उनके उपदेश से प्रह्लाद प्रभावित होगा। हिरण्यकशिपु ने शिक्षकों को इन्हें ले जाकर राजधर्म सिखाने का आदेश दिया। शिक्षक राजा की आज्ञा के अनुसार पाठशाला में प्रह्लाद जी को पढ़ाने लगे। जब कभी शिक्षकों की अनुपस्थिति होती तब प्रह्लाद जी अपने सहपाठियों को बताने लग जाते।

कौमार आचरेत्-प्राज्ञो धर्मान् भागवतान् इह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तत्‌अपि-अध्रुवम्-अर्थ-दम्। ।7।6।1। ।

यह मानव शरीर दुर्लभ है और क्षणभंगुर भी है। अतः जवानी एवं बुढ़ापे में अध्यात्ममार्ग पर चलने के अवसर की प्रतीक्षा न कर बचपन से ही भगवान्‌की प्राप्ति के साधन में लग जाना चाहिए।

यथा हि पुरुषस्येह विष्णोः पाद-उपसर्पणम्।
यदेष सर्वभूतानां प्रिय आत्मेश्वरः सुहृत्। ।7।6।2। ।

भगवान् विष्णु ही सबके पियतम, सुहृद, स्वामी एवं आत्मा हैं। उनके चरण में शरण प्राप्त करना ही इस जीवन की सार्थकता है। शीघ्र ही प्रयास कर भगवान्‌को प्राप्त करें। बीमारी एवं विपत्ति में उलझ जाने पर कुछ होता नहीं। एक सौ वर्ष के जीवन में आधा पचास वर्ष सोने में, बचपन एवं कुमारावस्था में बीस वर्ष, अंतिम बीस वर्ष बुढ़ापे एवं बीमारी में तथा जवानी का दस वर्ष कामनाओं की प्राप्ति के भाग-दौड़ में चला जाता है।

ततो विदूरात् परिहृत्य दैत्या दैत्येषु सङ्गं विषय-आत्मकेषु।
उपेत नारायणम्-आदिदेवं स मुक्तसङ्गै: इषितो-अपवर्ग:। ।7।6।18।।
न हि अच्युतं प्रीणयतो बहु-आयासो-असुरात्मजा:।
आत्मत्वात् सर्वभूतानां सिद्धत्वात्- इह सर्वत:। ।7।6।19।।

विलासी दैत्यों से दूर रहते हुए आदिदेव नारायण की शरण लो जिन्हें ऋषि आदि भजते हैं। सबकी आत्मा, सर्वव्यापी एवं स्वयंसिद्ध भगवान्‌को पाने में बहुत परिश्रम नहीं करना पड़ता।सभी आसुरी प्रवृत्तियों को छोड़कर सब प्राणियों पर दया रखो। भगवान्‌के गुण-कीर्तन एवं उनके चरणामृत से सब कुछ प्राप्त होता है।

धर्मार्थकाम इति यो-अभिहित: त्रिवर्ग ईक्षा त्रयी नय-दयौ विवधा च वार्ता।
मन्ये तत्-एतत्-अखिलं निगमस्य सत्यं स्व-आत्म-अर्पणं स्वसुहृद: परमस्य पुंस:। ।7।6।26।।

शास्त्रों में धर्म,अर्थ तथा काम के साथ-साथ न्याय, दण्ड, नीति तथा जीविका के विविध साधनों का उल्लेख है। ये सब तभी सार्थक हैं जब ये परमहितैषी श्रीहरि को आत्मसमर्पण करने में सहायक हों।

ज्ञानं तत्-एतत्-अमलं दुरवापम्-आह नारायणो नरसख: किल नारदाय।
एकान्तिनां भगवत: तत्-अकिञ्चनानां पादारविन्द-रजसा-आप्लुत-देहिनां स्यात्। ।7।6।27।।
श्रुतम्-एतत्-मया पूर्वं ज्ञानं विज्ञानसंयुतम्।
धर्मं भागवतं शुद्धं नारदाद् देव-दर्शनात्। ।7।6।28।।

यह दुर्लभ निर्मल ज्ञान भगवान् नर-नारायण से पहले नारद मुनि को मिला था वही तुमलोगों को सुनाया हूँ। भगवान्‌के प्रेमी एवं अकिञ्चन सन्तों की धूल से शरीर चुपड़ने वाले को ही यह भागवत-धर्म प्राप्त हो सकता है। मैंने इसे पहले भगवान्‌के दर्शन करनेवाले नारद मुनि से प्राप्त किया है। प्रह्लाद जी से ऐसा सुनकर सहपाठियों ने उनसे पूछा कि तुम तो सदा महलों में ही रहे हो तब तुम्हें नारद जी का दर्शन कैसे हुआ ?

सहपाठियों के प्रश्न सुन उन्हें यह स्मरण हो गया कि जब पिता जी तपस्या करने वन गये थे तब देवताओं ने राजधानी पर आक्रमण किया था। इन्द्र मेरी माँ कयाधु का राजमहल से अपहरण कर देवलोक ले जा रहा था। रास्ते में नारद जी ने रोका और मेरी माँ को मुक्त करा दिया क्योंकि वे जानते थे कि मेरी माँ के गर्भ से एक महाभागवत का जन्म होने वाला है। मेरी माँ को नारद जी अपने आश्रम ले गये। नारद जी ने मेरी माँ को भगवान्‌की भक्ति के दिव्यज्ञान का उपदेश किया। गर्भ में मैंने भी उस उपदेश को सुना और नारद जी के आशीर्वाद से आज तक मेरी स्मृति अक्षुण्ण है।

जन्माद्या: षडिमे भावा दृष्टा देहस्य नात्मन:।
फलानाम्-इव वृक्षस्य कालेन-ईश्वरमूर्तिना। ।7।7।18।।
आत्मा नित्योऽव्यय: शुद्ध: एक: क्षेत्रज्ञ आश्रय:।

अविक्रिय: स्वदृग्हेतु: व्यापको असङ्गी-अनावृत:। ।7।7।19। ।

समय भगवान्‌का साक्षात् प्रतिनिधि है। इसके कारण ही वृक्षों के फल फलते, बढ़ते, पकते, क्षीण होते तथा नष्ट हो जाते हैं। इसी तरह से प्राणी का जन्म, शरीर का बना रहना, शरीर का बढ़ना, चेहरा आदि में परिवर्तन, वृद्धावस्था की क्षीणता तथा मृत्यु से नष्ट होने की छ: क्रियायें चलती हैं परन्तु इनसे आत्मा प्रभावित नहीं होती। आत्मा नित्य, अविनाशी, शुद्ध, एक दूसरे से भिन्न, क्षेत्रज्ञ, आश्रय, निर्विकार, स्वयंप्रकाश, सबका कारण, व्यापक, असङ्ग तथा आवरण-रहित है। आत्मा के बारह गुण बताये गये हैं।

गुरुशुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्ध-अर्पणेन च।
सङ्गेन साधु-भक्तानाम्-ईश्वर-आराधनेन च। ।7।7।30। ।
श्रद्धया तत्कथायां च कीर्तनै: गुण-कर्मणाम्।
तत्-पाद-अम्बुरुह-ध्यानात्तत्-लिङ्ग-ईक्ष-अर्हण-आदिभि:। ।7।31। ।
निशम्य कर्माणि गुणान् अतुल्यान् वीर्याणि लीलातनुभि: कृतानि।
यदा-अतिहर्ष-उत्पुलक-अश्रु-गद्गदं प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति। ।7।31।34। ।
यदा ग्रहगस्त इव क्वचित् हसति-क्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम्।
मुहु: श्वसन् वक्ति हरे जगत्पते नारायण-ईति-आत्म-मति: गत-त्रप:। ।7।35।35। ।

गुरु की प्रेमपूर्वक सेवा, श्रद्धा से सबकुछ भगवान्‌को समर्पण, भगवत्प्रेमी सन्तों का सत्सङ्ग, भगवान्‌की आराधना, उनकी कथा-वार्ता में प्रेम, उनके गुण और लीलाओं का कीर्तन, उनके चरणारविन्द का ध्यान और उनकी मूर्ति का ध्यान-पूजन से भगवान्‌में प्रेम हो जाता है। उनकी लीला-कथा सुन रोमांचित होना,अश्रु बहाना, लाज छोड़ नाचना-गाना, पागल की तरह हँसना, करुण-क्रन्दन, ध्यान तथा भक्तों की बन्दना, लम्बी साँस लेते हुए बोलते हुए भगवान्‌को "हरे जगत्पते" तथा "नारायण" कहकर लाज-रहित होकर पुकारना आदि से भगवान्‌में तन्मयता हो जाती है। उसके जन्म-मृत्यु का बीज जल जाता है और वह भगवान् को प्राप्त कर लेता है।

क: अतिप्रयासो असुर-बालका हरे: उपासने स्वे हृदि छिद्रवत्सत:।
स्वस्य-आत्मन: सख्यु: अशेष-देहिनां सामान्यत: किं विषय-उपपादनै:। ।7।7।38। ।
राय: कलत्रं पशव: सुतादयो गृहा मही कुञ्जर-कोश-भूतय: ।
सर्वेऽर्थकामा: क्षणभङ्गुर-आयुष: कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत् प्रियं चला:। ।7।7।39। ।
एवं हि लोका: क्रतुभि: कृता अमी क्षयिष्णव: सातिशया न निर्मला:।
तस्मात्-अदृष्ट-श्रुत-दूषणं परं भक्त्या-एक-ईशं भजत-आत्म-लब्धये। ।7।7।40। ।

हे असुरकुमारो ! भगवान्सबके परममित्र हैं एवं सबके हृदय में अन्तर्यामी रूप में रहते हैं। इनकी पूजा में कोई कठिनाई भी नहीं है परन्तु हम इन्हें छोड़कर मूर्खतावश सांसारिक भोग-सामग्री जमा करने में लगे रहते हैं। धन, स्त्री, पशु, सन्तान, घर, जमीन, हाथी एवं खजाना आदि समस्त भोग-सामग्रियाँ स्वयं क्षणभङ्गुर हैं तब यह मरणशील मनुष्य को क्या सुख दे सकती हैं ! यज्ञादि से प्राप्त स्वर्ग आदि विभिन्न लोक एक दूसरे बड़े-छोटे, दोषपूर्ण तथा उसी तरह नाशवान हैं जैसे इस संसार की भोग-सामग्रियाँ।एक मात्र परमात्मा ही शाश्वत एवं निर्दोष हैं।अत: अनन्य भक्ति से उनका ही भजन करें।

देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गन्धर्व एव च।
भजन् मुकुन्दचरणं स्वस्तिमान्स्याद्यथा वयम्।।**7।7।50**।।
नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वा-असुरात्मजाः।
प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता।।**7।7।51**।।
न दानं न तपो न-इज्या न शौचं न व्रतानि च।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिः अन्यत्विडम्बनम्।।**7।7।52**।।
देवता, दैत्य, मनुष्य, यक्ष या गन्धर्व सभी भगवान्‌के चरणकमल के सेवन से हमारे तरह कल्याण प्राप्त करते हैं। हे असुरकुमारो ! भगवान्‌को प्रसन्न करने के लिये ब्राह्मण, देवता, ऋषि तथा सदाचारी होना पर्याप्त नहीं है। दान, तप, यज्ञ, शारीरिक या मानसिक पवित्रता तथा बड़े-बड़े व्रतादि का अनुष्ठान मात्र विडम्बना हैं।

ततो हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवाः।
आत्म-औपम्येन सर्वत्र सर्वभूतात्मनि-ईश्वरे।।7।7।53।।
दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रजौकसः।
खगा मृगाः पापजीवाः सन्ति हि-अच्युततां गताः।।7।7।54।।
एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः।
एकान्तभक्तिः गोविन्दे यत् र्स्वत्र तत्-ईक्षणम्।।7।7।55।।

इसलिए सभी प्राणियों को अपने समान समझ सर्वत्र विराजमान भगवान्‌की भक्ति करो। भगवान्‌की भक्ति से दैत्य, यक्ष, राक्षस, स्त्रियाँ, शूद्र, व्रजवासी, पक्षी, मृग और बहुत से पापी प्राणी भी भगवद्भाव को प्राप्त हो गये हैं। इस संसार में एक मात्र स्वार्थ भगवान्‌कृष्ण की अनन्य भक्ति है। सभी वस्तुओं में सर्वत्र उनको ही देखे।
घबराये हुए षण्ड एवं अमर्क नामक प्रह्लाद जी के शिक्षकों ने हिरण्यकशिपु से प्रह्लाद जी द्वारा अपने सहपाठियों को भगवान्‌की भक्ति करने के उपदेश के बारे में बताया। हिरण्यकशिपु आग-बबूला होकर प्रह्लाद जी का स्वयं वध करने को चला। प्रह्लाद जी से हिरण्यकशिपु ने पूछा कि तुम्हारा सर्वव्यापी भगवान् इस खम्भे में भी है क्या ? ऐसा कहकर उसने खम्भे पर मुक्के से प्रहार किया।

तदैव तस्मिन् निनदोऽतिभीषणो बभूव येन-अण्डकटाहम् अस्फुटत्।
यं वै स्व-धिष्ण्य-उपगतं तु-अज-आदयः श्रुत्वा स्व-धाम-अत्ययम्अङ्ग मेनिरे।।7।8।16।।
सत्यं विधातुं निजभृत्य-भाषितं व्याप्तिं च भूतेषु-अखिलेषु चात्मनः।
अदृश्यत-अति-अद्भुत-रूपम्-उद्वहन् स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम्।।7।8।18।।

नारद जी ने राजा युधिष्ठर को कहा कि उस खम्भे से बहुत भयंकर शब्द सुनाई पड़ा। उसको ब्रह्मा आदि ने भी सुना और सोचा कि यह प्रलयकाल की ध्वनि है। अपने भक्त प्रह्लाद जी की बात को सच करने के लिए श्रीहरि अद्भुत रूप में प्रकट हुए जो न तो मनुष्य का था और न सिंह का।

मीमांसमानस्य समुत्थितोऽग्रतो नृसिंहरूपः तत्-अमलम् भयानकम्।
प्रतप्त-चामीकर-चण्ड-लोचनं स्फुरत्-सटाकेसर-जृम्भित-आननम्।।7।8।20।।
करालदंष्ट्रं करवाल-चञ्चल-क्षुरान्तजिह्वं भ्रुकुटी-मुख-उल्बणम्।

स्तब्ध-उर्ध्व-कर्णम्गिरिकन्दर-अद्‍भुत-व्यात्तास्य-नासं हनु-भेद-भीषणम्। ।7।8।21। ।
दिवि-स्पृशत्-कायम्-अदीर्घ-पीवर-ग्रीव-उरु-वक्ष:स्थलम्-अल्प-मध्यमम्।
चन्द्रांशु-गौरे: छुरितं तनूरुहै: विष्वक्-भुज-अनीक-शतं नखायुधम्। ।7।8।22। ।

हिरण्यकशिपु के सामने डरावने स्वरूपवाले नृसिंह भगवान्‌की सोने जैसी तपती पीली-पीली तेजपूर्ण आँखें तथा जँभाई लेने से लहराते गर्दन के बाल दिख रहे थे। विकराल दाढ़ें, तलवार तथा छूरे की धार जैसी लपलपाती जीभ थी।टेढी भौंहे, दारुण पहाड़ की गुफा जैसा खुला मुख, खड़े कान, फूली हुई नासिका तथा फटा हुआ जबड़ा, आकाश को छूता हुआ विशाल शरीर, नाटी तथा मोटी गर्दन, चौड़ी छाती, पतली कमर, चन्द्र-किरण जैसे श्वेत रोएँ, तीक्ष्ण आयुध जैसे नखों से युक्त उनकी सैकड़ों भुजायें थीं।नृसिंह भगवान्‌ने चक्र तथा गदा आयुधों से राक्षसों को मारकर भगा रहे थे। एक फतिंगे की तरह हिरण्यकशिपु गदा लेकर भगवान् पर टूट पड़ा। भगवान्‌ने उसे वैसे ही पकड़ा जैसे गरुड़ साँप को।कुछ काल बाद उनके हाथ से छूटकर तलवार लेकर पैंतरे मारने लगा। साँप से पकड़े चूहे की तरह पुन: भगवान्‌ने उसे पकड़ा। सन्ध्याकाल में सभा भवन के दरवाजे पर बैठ अपनी जाँघों पर उसे पटक कर भगवान्‌ने उसके कलेजे और पेट को नखों से फाडकर उसे जमीन पर फेंक दिया।

संरम्भ-दुष्प्रेक्ष्य-कराललोचनो व्यात्त-आनन-अन्तं विलिहन् स्वजिह्वया।
असृक्-लव-आक्त-अरुण-केशर-आननो यथा-अन्त्रमाली द्विप-हत्यया हरि:। ।7।8।30। ।

क्रोध से भरे विकराल आँखों देखी नहीं जा सकती थीं।लपलपाते जीभ से अपने फैले मुँह के दोनों कोनो को चाट रहे थे।खून के छींटे से रंगे हुए उनके मुख तथा गर्दन के बाल वैसे लगरहे थे जैसे कि कोई सिंह हाथी को मारकर उसके आँतों की माला पहने हुए हो।

नखाङ्कुर-उत्पाटित-हृत्-सरोरुहं विसृज्य तस्य-अनुचरान्-उदायुधान्।
अहन्समस्तान्नख-शस्त्र-पार्ष्णिभि: दोर्दण्ड-यूथो अनुपथान्-सहस्रश:। ।7।8।31। ।
सटा-अवधूता जलदा: परापतन् ग्रहाश्च तत्-दृष्टि-विमुष्ट-रोचिष:।
अम्भोधय: श्वास-हता विचुक्षुभु: निर्ह्राद-भीता दिगिभा चिचुक्रुशु:। ।7।8।32। ।
द्यौ: तत्-सटा-उत्क्षिप्त-विमान-सङ्कुला प्रोत्सर्पत क्ष्मा च पदातिपीडिता।
शैला: समुत्पेतु: अमुष्य रहंसा तत्-तेजसा खं ककुभो न रेजिरे। ।7।8।33। ।
तत: सभायाम् उपविष्टम्-उत्तमे नृपासने संभृत-तेजसं विभुम्।
अलक्षित-द्वैरथम्-अति-अमर्षणं प्रचण्ड-वक्त्रं न बभाज कश्चन। ।7।8।34। ।

भगवान्अपने तीखे नखों से हिरण्यकशिपु का कलेजा फाड़कर फेंक दिये। हजारों दैत्यों को खदेरते हुए वे अपने हाथों तथा नखों से मार डाले। गर्दन के लहराते बाल से बादल छितराने लगे। आँखों की ज्वाला से सूर्यादि ग्रह फीके पड़ गये। श्वास के प्रवाह से समुद्र का जल उछलने लगा। सिंहनाद से दिग्पाल चिग्घाड़ने लगे। लहराते बालों से देवों के विमान अस्त-व्यस्त हो गये। पदचाप से भूकम्प आया।पर्वत उछलने लगे।उनके शरीर के तेज की चकाचौंध से आकाशादि का दिखना बन्द हो गया। किसी प्रतिद्वन्दी के नहीं दिखने पर भी भगवान्‌का क्रोध शान्त नहीं हो रहा था। हिरण्यकशिपु के ऊँचे सिंहासन पर वे जाकर विराज गये। डर से कोई उनकी सेवा के लिए आगे

नहीं आ रहा था। देवलोक से पुष्पवृष्टि हुई। नगाड़े बजे। अप्सराओं ने नृत्य किया। गन्धर्व गाने लगे। ब्रह्मा, रुद्रादि देवता, ऋषि, पितर, सिद्ध, विद्याधर, महानाग, मनु, प्रजापति, चारण, यक्ष, किम्पुरुष, वेताल, सिद्ध, किन्नर, सुनन्द-कुमुदादि भगवान के पार्षदों ने करबद्ध होकर पृथक-पृथक भगवान के सिंहासन से कुछ दूर स्तुति की। देवगण भगवान् के समक्ष जाने का साहस नहीं कर रहे थे। लक्ष्मी जी भी आयीं परन्तु भगवान्का अनजाना स्वरूप जानकर पास नहीं गयीं। ब्रह्मा ने प्रह्लाद जी को भेजा। जमीन पर लेटकर उन्होंने नरसिंह भगवान्को साष्टांग प्रणाम किया।

स्वपादमूले पतितं तमर्भकं विलोक्य देव: कृपया परिप्लुत:।
उत्थाप्य तत्-शीर्ष्णि-अदधात्कराम्बुजं काल-अहि-वित्रस्त-धियां कृत-अभयम्। ।7।9।5। ।

अपने चरण पर छोटे बालक को गिरा देख भगवान्ने अपना करकमल उनके शिर पर रखकर उन्हें निर्भय कर दिया। प्रह्लाद जी के सारे कल्मष दूर हो गये और वे भावपूर्ण स्तुति करने लगे।

मन्ये धन-अभिजन-रूप-तप: श्रुत-ओज: तेज: प्रभाव-बल-पौरुष-बुद्धि-योगा:।
न-आराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान्गजयूथपाय। ।7।9।9। ।
विप्राद् द्विषडगुण-युतात् अरविन्दनाभ-पादारविन्द-विमुखात् श्व-पचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पित-मनोवचन-ईहित-अर्थ-प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमान:। ।7।9।10। ।
नैवात्मन: प्रभुरयं निजलाभपूर्णो मानं जनादविदुष: करुणो वृणीते।
यद्यज्जनो भगवते विदधीत मानं तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथामुखश्री:। ।7।9।11। ।
तस्मादहं विगतविक्लव ईश्वरस्य सर्वात्मना महि गृणामि यथामनीषम्।
नीचोऽजया गुणविसर्गम्-अनुप्रविष्ट: पूयेत येन हि पुमान् अनुवर्णितेन। ।7।9।12। ।

धन, कुलीनकुल, रूप, तप, विद्या, दक्षता, कान्ति, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि और यौगिक शक्ति भगवान्को प्रसन्न नहीं कर पाते जितना वे भक्ति से प्रसन्न होते है। गजेन्द्र का उदाहरण स्मरणीय है। भक्ति विहीन ब्राह्मण इन बारह गुणों से सम्पन्न रहने पर भी भगवान्के चाण्डाल जाति के भक्त से भी नीचे है। भगवान् पूर्णकाम हैं। उन्हें भक्तगण जो अर्पित करते हैं वह भक्त के लाभ के लिए ही है जैसे सुसज्जित मुख दर्पण में सुन्दर दिखता है। अयोग्य होकर स्तुति कर रहा हूँ। अविद्या से ग्रस्त प्राणी भी भगवान्की भक्ति से पवित्र हो जाता है।

सोऽहं प्रियस्य सुहृद: परदेवताया लीलाकथास्तव नृसिंह विरिञ्चगीता:।
अञ्ज: तितर्मि-अनुगृणन् गुण-विप्रमुक्तो दुर्गाणि ते पादयुगालय-हंससङ्ग:। ।7।9।18। ।
बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह नार्तस्य च अगदम्-उदन्वति मज्जतो नौ:।
तप्तस्य तत्प्रतिविधि-य: इह-अञ्जसा-इष्ट: तावत्-विभो तनुभृतां त्वत्-उपेक्षितानाम्। । 7।9। 19। ।

इस उग्र संसार से मुझे भय है। आप ही परमप्रिय तथा अहैतुक हितैषी हैं। मैं ब्रह्मा द्वारा गाई हुई आपकी लीला-कथा को गाता हुआ प्रकृति के गुणों के कारण उत्पन्न रागादि से मुक्त हो सकूँगा क्योंकि आपके चरणारविन्द के आश्रित परमहंस जनों की संगति तो मुझे मिलती ही रहेगी। आपकी उपेक्षा करने वाले इस संसार के दु:ख में फँसे रहते हैं। यहाँ तक कि माँ-बाप बालक की रक्षा नहीं कर पाते, औषधि निरोग करने में निष्फल हो जाती है तथा

डूबते को नाव नहीं बचा पाती।

तस्मात्-अमूः तनुभृताम्-अहम्-आशिषो ज्ञ आयुः श्रियं विभवम-ऐन्द्रियम् आविरिञ्च्यात्।
नेच्छामि ते विलुलितान् उरुविक्रमेण कालात्मना-उपनय मां निजभृत्यपार्श्वम्।।7।9।24।।
एवं जनं निपतितं प्रभव-अहिकूपे काम-अभिकामम् अनु यः प्रपतन् प्रसङ्गात्।
कृत्वाऽऽत्मसात् सुरर्षिणा भगवन् गृहीतः सोऽहं कथं नु विसृजे तव भृत्यसेवाम्।।7।9। 28।।

ब्रह्मलोक के ऐश्वर्य तथा आयु काल से ग्रस्त हैं। अतः मुझे यह नहीं चाहिए। अपने भक्त की मुझे सान्निध्य प्रदान करें। यह संसार एक अन्धा कुँआ है जहाँ कालरूपी सर्प डसने को तैयार रहता है। कुसंगति से इसी कुँए में गिरने वाला था कि देवऋषि नारद जी ने मेरी रक्षा की। मैं आपके भक्तों की सेवा कैसे छोड़ सकता हूँ।

तस्यैव ते वपुरिदं निजकालशक्त्या सञ्चोदित-प्रकृतिधर्मण आत्मगूढ़म्।
अम्भसि-अनन्तशयनात् विरमत् समाधेः नाभेः अभूत् स्वकणिका-वट-वत् महाब्जम्।। 7।9।33।।

आपमें लीन यह ब्रह्माण्ड आपका शरीर है जो कालशक्ति के द्वारा संचालित प्रकृति के गुणों से जुड़ा है। प्रलय के जल में आप अनन्तशायी हैं। जब आपने शयन-समाधि त्यागी तब आपकी नाभि के छोटे बीज से उत्पन्न विशाल वट वृक्ष की तरह एक कमल निकला। उस पर ब्रह्मा प्रकट हुए। आपको अपने भीतर बीज की तरह नहीं समझकर वे आपको बाहर ढूँढ़े। हारकर अंत में कमल पर बैठ तपस्या में लीन हुए और आपके विराट परन्तु सूक्ष्म स्वरूप का दर्शन उसी तरह अपने भीतर ही किया जैसे मिट्टी में उसका गन्ध व्याप्त रहता है।

एवं सहस्र-वदन-अङ्घ्रि-शिरः कर-उरु-नासास्य-कर्ण-नयन-आभरण-आयुध-आढ्यम्।
मायामयं सदुपलक्षित-सन्निवेशं दृष्ट्वा महापुरुषम् आप मुदं विरिञ्चः।।7।9।36।।
तस्मै भवान्हयशिरः तनुवं च बिभ्रद्वेद-द्रुहौ-अतिबलौ मधुकैटभ-आख्यौ।
हत्वा-आनयत् श्रुतिगणांस्तु रजस्तमश्च सत्त्वं तव प्रियतमां तनुम्-आमनन्ति।।7।9।37।।

आपके सहस्रों मुख, चरण, शिर, हाथ, जंघा, नाक, कान, नेत्र, आभूषण एवं आयुधों से सम्पन्न था। आपके लीलामयी मूर्ति को देखकर ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए। रज एवं तम गुण के स्वरूप मधु और कैटभ दो बड़े बलवान दैत्यों का हयग्रीव के रूप में आपने वध किया। सत्त्वगुण आपका प्रिय रूप है और सत्त्वगुण स्वरूप श्रुतियों को आपने ब्रह्मा को लौटा दिया। संसार के प्राणी संसार की वैतरणी में फँस गये हैं। कर्म के कारण जन्म-मृत्यु की जाल से निकल नहीं पा रहे हैं। आप कृपा कर इन भटके हुए प्राणियों का उद्धार करें। विषय-सुख खुजली खुजलाने की तरह क्षणिक सुख देकर भयंकर कष्ट देता है। मौन, ब्रह्मचर्य, शास्त्रश्रवण, तपस्या, स्वाध्याय, स्वधर्मपालन, शास्त्र की व्याख्या, एकान्त सेवन, जप और समाधि ये ग्यारह मोक्ष के साधन हैं। इसे व्यापार का साधन बनाकर कुछ लोग प्राणियों को ठगते हैं।

तत् ते अर्हत्-तम नमः स्तुति-कर्म-पूजाः कर्म स्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम्।
संसेवया त्वयि विनेति षडङ्गया किं भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत।।7।9।50।।

हे परमपूज्य ! नमस्कार, स्तुति, समस्त कर्मो का समर्पण, सेवा-पूजा, श्रीचरणों का चिन्तन और कथा-श्रवण आपकी सेवा के छः अंग हैं। इसके बिना आपकी भक्ति और आपके परमहंस पद की प्राप्ति संभव नहीं है। प्रह्लाद जी

की स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान्ने अपना क्रोध त्याग दिया और उन्हें वर माँगने को कहा।

भक्तियोगस्य तत् सर्वम्-अन्तरायतया-अर्भकः।
मन्यमानो हृषीकेशं स्मयमान उवाच ह।।7।10।1।।
मा मां प्रलोभय-उत्पत्त्या-आसक्तं कामेषु तैः वरैः।
सत्सङ्गभीतो निर्विण्णो मुमुक्षुः त्वामुपाश्रितः।।7।10।2।।
यदि रासीश मे कामान् वरान् त्वं वरदर्षभ।
कामानां हृदि-असंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्।।7।10।7।।
ॐ नमो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने।
हरयेऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने।।7।10।10।।

बाल्यावस्था होने पर भी वर को भक्तियोग में अवरोधक मानते हुए प्रह्लाद जी ने विनम्र होकर मुस्कराते हुए कहा। बचपन से ही विषय भोगों में लगा हूँ। अब लुभाइये नहीं प्रभु। इनसे छूटने के लिए ही आपकी शरण में आया हूँ। हे सर्वश्रेष्ठ वरदाता! अगर वर देना ही है तब वर यह दीजिये कि हमारे हृदय में कभी कोई कामना उत्पन्न न हो। अद्भुत नरसिंह स्वरूप वाले परब्रह्म परमात्मा को सादर नमस्कार है।
भगवान्ने कहा कि एक मन्वन्तर तक इस लोक के समस्त भोग का उपयोग करते हुए मेरी भक्ति में अनुरक्त रहो। तुम्हारी कीर्ति सर्वत्र गायी जायेगी। प्रह्लाद जी ने कहा कि आपकी दृष्टि पड़ते ही मेरे पिता का कल्याण निश्चित है। फिर भी दुष्कर कर्म-दोष से उन्हें मुक्त करें। भगवान्ने कहा कि अपने कुल को ही तू ने पवित्र कर दिया है। तुम्हारी इक्कीस पीढ़ी पवित्र हो गयी है। पिता की अन्तयेष्टि सम्पन्न करके राजसिंहासन पर विराजो। ब्रह्मा ने पुनः भगवान्की स्तुति की। भगवान्ने ब्रह्मा को सावधान करते हुए कहा कि असुरों को वर देना साँप के बच्चे को दूध पिलाने की तरह है। आगे से ऐसा वर किसी को मत देना।

एवं तौ पार्षदौ विष्णोः पुत्रत्वं प्रापितौ दितेः।
हृदि स्थितेन हरिणा वैर भावेन तौ हतौ।।7।10।35।।

नारद जी ने युधिष्ठर को बताया कि दिति के पुत्र हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकशिपु का वध भगवान्ने उनके उद्धार के लिए किया। सनकादि के शाप के कारण जय एवं विजय को राक्षसकुल में दो जन्म लेना बाकी था। वैर भाव हृदय में रहने पर भी उन्हें परमपद नहीं मिला केवल उनका शरीर ही बदला।दूसरे जन्म में रावण तथा कुम्भकर्ण के रूप में भगवान्के रूप निहारते उनके हाथो वे मारे गये। वे अव शिशुपाल एवं दन्तवक्त्र होकर जन्मे। दोनों भगवान्से वैर भाव बनाये रखे। इस बार उनका वध कर भगवान्ने उन्हें परमपद दे दिया।

एनः पूर्वकृतं यत् तद् राजानः कृष्णवैरिणः।
जहुस्त्वन्ते तदात्मनः कीटः पेशस्कृतो यथा।।7।10।39।।

भृंगी द्वारा पकड़ा गया कीड़ा भय से उसी के अनुरूप हो जाता है। उसी तरह भगवान्कृष्ण से वैर रखने वाले समस्त राजाओं का उद्धार हुआ।

प्रह्लादस्य-अनुचरितं महाभागवतस्य च।

भक्तिर्ज्ञानं विरक्तिश्च याथात्म्यं चास्य वै हरेः। ।7।10।43। ।

धर्मो भागवतानां च भगवान् येन गम्यते।

आख्याने-अस्मिन् समाम्नातम्-आध्यात्मिकम्-अशेषतः। ।7।10।45। ।

इस कथा में भगवान्के परमभक्त प्रह्लाद जी की भक्ति, ज्ञान, वैराग्य एवं भगवान्के लीला-चरित का वर्णन है। आध्यात्म की सारी बातों से भरपूर भगवान्की प्राप्ति का यही भागवत धर्म है।

7।2। मानव धर्म निरूपण - वर्ण एवं आश्रम धर्म

युधिष्ठर के पूछने पर नारद जी ने इसकी सांगोपाग व्याख्या की। उन्होंने कहा कि मानव धर्म का उपदेश उन्हें बद्रीनारायण भगवान्से मिला था।

नत्वा भगवतेऽजाय लोकानं धर्महेतवे।

वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायण-मुखात्श्रुतम्। ।7।11।5। ।

योऽवतीर्य-आत्मनः अंशेन दाक्षायण्यां तु धर्मतः।

लोकानां स्वस्तये-अध्यास्ते तपो बदरिकाश्रमे। ।7।11।6। ।

धर्म एवं दक्षपुत्री मूर्ति के द्वारा अपने अंश से अवतार लेकर भगवान्नारायण बदरिकाश्रम में तपस्या रत हैं।उन्हीं को नमस्कार करके उन्हीं के मुख से सुने हुए मानव धर्म का अब मैं वर्णन करता हूँ। नवधा भक्ति को लेते हुए भगवान्को प्रसन्न करने वाले धर्म के तीस लक्षण हैं - सत्य, दया, व्रत उपवासादि तपस्या, स्वच्छता शौच, सहनशक्ति तितिक्षा, ईक्षा उचित-अनुचित का विचार, अन्तःइन्द्रियों मन तथा बुद्धि आदि का संयम शम, बाह्य इन्द्रियों का संयम दम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शी, महात्माओं की सेवा, विषय निवृत्ति, अहंकार से विपरीत परिणाम की समझ, मौन, आत्मचिन्तन, अन्नादि वितरण, सभी प्राणियों में प्रभु का दर्शन, भगवान्के गुण लीला का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवा, पूजा, सेवक भाव, सखा भाव तथा आत्म-समर्पण।

श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।

सेवा-इज्या-अवनतिः दास्यं सख्यम् आत्मसमर्पणम्। ।7।11।11। ।

शास्त्र के नियमों का पालन कर ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास वृत्ति के अनुरूप कार्यशील रहना है।

यदाकल्पः स्वक्रियायां व्याधिभिः जरया-अथवा।

आन्वीक्षिक्यां वा विद्यायां कुर्याद् अनशनादिकम्। ।7।12।23। ।

जब रोग या बुढ़ापा के कारण शास्त्रादि अध्ययन तथा चिन्तनमें असमर्थ होने लगे तब अनशन व्रत का पालन करे। इस तरह से भगवान्में मन को लगाये हुए शरीर छोड़ने का उपक्रम करे।

नारद जी ने कहा कि मनुष्य के कर्म से वर्ण व्यवस्था बनी -

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।

यदन्यत्रापि दृश्येत तत् तेनैव विनिर्दिशेत्। ।7।11।35। ।

किसी वर्ण के व्यक्ति का लक्षण अगर दूसरे वर्ण के किसी व्यक्ति में दिखता है तब दोनों एक ही वर्ण के हो गये।

7।3। अवधूत दत्तात्रेय से प्रह्लाद जी की वार्ता

संन्यास वृत्ति का विशद विवरण देते हुए नारद जी ने प्रह्लाद जी तथा अजगर वृत्ति में लीन अवधूत दत्तात्रेय की

वार्ता सुनायी। प्रह्लाद जी एक बार विश्व-भ्रमण पर निकले थे। कावेरी के किनारे सह्य पर्वत की तलहटी में उन्हें अवधूत दत्तात्रेय का दर्शन हुआ था। प्रह्लाद जी ने पूछा कि आप कोई काम करते नहीं, केवल लेटे रहते हैं परन्तु आप हृष्ट-पुष्ट हैं। दत्तात्रेय जी ने कहा कि तृष्णा ही जन्म-मृत्यु का कारण है।

अत्रापि दम्पतीनां च सुखाय-अन्य-अपनुत्तये।

कर्माणि कुर्वतां दृष्ट्वा निवृत्तोऽस्मि विपर्ययम्।।7।13।25।।

संसार के स्त्री-पुरुष सुख प्राप्ति एवं दुःख निवृत्ति के लिए कर्म करते हैं परन्तु इसका परिणाम उल्टा होता है। इसीलिए हे प्रह्लाद ! मैं कर्म से अलग रहता हूँ।

भौतिक जीवन प-वर्ग है। प - परिश्रम, फ - फल उलटा, ब - बन्धन, भ - भय, म - मृत्यु।

मधुकार-महासर्पौ लोकेऽस्मिन् नः गुरूत्तमौ।

वैराग्यं परितोषं च प्राप्ता यत्-शिक्षया वयम्।।7।13।34।।

दत्तात्रेय ने कहा कि इस लोक में अजगर एवं मधुमक्खी हमारे सबसे बड़े गुरु हैं। इनसे हमें सन्तोष एवं वैराग्य का ज्ञान हुआ है। स्कन्ध 11।4 में इनके चौबीस गुरु का वर्णन है।

7।4। गृहस्थ धर्म

गृहेषु-अवस्थितो राजन् क्रियाः कुर्वन् गृहोचिताः।

वासुदेव-अर्पणं साक्षात् उपासीत महामुनीन्।।7।14।2।।

श्रृण्वन् भगवतो अभीक्षणम्-अवतारकथा-अमृतम्।

श्रद्दधानो यथाकालम्-उपशान्त-जनावृतः।।7।14।3।।

सत्सङ्गात् शनकैः सङ्गम्-आत्म-जाया-आत्मज-आदिषु।

विमुञ्चेत्-मुच्यमानेषु स्वयं स्वप्न-वत्-उत्थितः।।7।14।4।।

गृहस्थों को अपने कर्म करते हुए भगवान्‌की प्राप्ति एवं सन्तों की सत्संगति प्राप्त करने के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए। समय निकाल कर सन्तों की संगति करे तथा श्रद्धा के साथ भगवान्‌की लीला-कथा का बार-बार श्रवण करे। सपना टूटने पर सपने की घटनाओं से जैसे सम्बन्ध हट जाता है उसी तरह भगवान् में प्रेम बढ़ाते हुए स्त्री तथा पुत्रादि से आसक्ति को हटाये। गृहस्थ अपने अग्निहोत्रादि तथा पितृ-श्राद्ध कार्यादि अवश्य करे तथा पशु-पक्षियों से सप्रेम व्यवहार करे। संक्रान्ति, व्यतीपात योग, ग्रहण, अन्य शास्त्रविहित श्रीजयन्ति के श्रवण तथा उत्तरा नक्षत्रों के व्रत तथा एकादशी आदि अवश्य करे।

यत्र यत्र हरेरर्चा स देशः श्रेयसां पदम्।

यत्र गङ्गादयो नद्यः पुराणेषु च विश्रुताः।।7।14।29।।

जहाँ गंगा आदि पवित्र नदियाँ तथा भगवान्‌के अर्चा-विग्रह वाले तीर्थों के दर्शन परम कल्याणकारी होते हैं।

देवर्षि-अर्हत्सु वै सत्सु तत्र ब्रह्म-आत्मजादिषु।

राजन्यत्-अग्रपूजायां मतः पात्रतया-अच्युतः।।7।14।35।।

जीवराशिभिः आकीर्ण अण्डकोश-अङ्घ्रिपो महान्।

तत्-मूलत्वात्-अच्युत-इज्या सर्वजीवात्म-तर्पणम्।।7।14।36।।

पुराणि-अनेन सृष्टानि नृ-तिर्यक्-ऋषि-देवताः।
शेते जीवेन रूपेण पुरेषु पुरुषो हि-असौ।।7।14।37।।

नारद जी युधिष्ठर को बताते हैं कि राजसूय यज्ञ में ऋषिगण, देवों तथा सनकादिकों के रहने पर भी भगवान्कृष्ण को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हुए उनकी सर्वप्रथम पूजा की गयी थी। सभी जीवों के इस ब्रह्माण्ड महावृक्ष की जड़ भगवान् अच्युत ही हैं। इनकी पूजा से सभी जीव तृप्त होते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, ऋषि तथा देवता के शरीर भगवान् का निवास स्थान है। सभी जीवों के शरीर में शयन करने के कारण भगवान् पुरुष कहे जाते हैं।

दृष्ट्वा तेषां मिथो नृणाम्-अवज्ञान-आत्मतामं नृप।
त्रेतादिषु हरेः अर्चा क्रियायै कविभिः कृता।।7।14।39।।
ततोऽर्चायां हरिं केचित्संश्रद्धाय सपर्यया।
उपासत उपास्तापि न-अर्थ-दा पुरुष-द्विषाम्।।7।14।40।।
पुरुषेषु-अपि राजेन्द्र सुपात्रं ब्राह्मणं विदुः।
तपसा विद्यया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेः तनुम्।।7।14।41।।
ननु-अस्य ब्राह्मणा राजन्कृष्णस्य जगदात्मनः।
पुनन्तः पादरजसा त्रिलोकीं दैवतं महत्।।7।14।42।।

मनुष्यों को एक दूसरे के प्रति सम्मानसूचक भाव की कमी देखकर शास्त्रवेत्ताओं द्वारा त्रेता आदि युगों में भगवान्की प्रतिमा का मन्दिरों में स्थापित कर उनकी उपासना करने का शुभारम्भ किया गया। श्रद्धा के साथ सभी आवश्यक वस्तुओं के साथ प्रतिमा पूजन करने पर भी अगर आपस में मनुष्य द्वेष भाव रखे तो ऐसी पूजा निष्फल रहती है।मनुष्यों में तपस्या, विद्या और सन्तोष आदि गुणोंवाले भगवान् के भक्त भगवान्के वेदरूप शरीर को धारण करते हैं। इनके चरणों की धूल से तीनों लोक पवित्र होते हैं और ये भगवान्के भी पूज्य हैं।

यस्य साक्षाद् भगवति ज्ञानदीप-प्रदे गुरौ।
मर्त्य-असत्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत्।।7।15।26।।

हृदय में ज्ञान का दीप जलाने वाले गुरु साक्षात् भगवान्हैं। इन्हें मनुष्य समझने वाले के लिए शास्त्र का ज्ञान हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है। भगवान्ही गुरु के शरीर से आते हैं।

आहुः शरीरं रथमिन्द्रियाणि हयान्-अभीषून्मन इन्द्रियेशम्।
वर्त्मानि मात्रा धिषणां च सूतं सत्त्वं बृहद् बन्धुरम्-ईश-सृष्टम्।।7।15।41।।
अक्षं दशप्राणम्-अधर्म-धर्मौ चक्रे-अभिमानं रथिनं च जीवम्।
धनुर्हि तस्य प्रणवं पठन्ति शरं तु जीवं परमेव लक्ष्यम्।।7।15।42।।

उपनिषदों में कहा है कि शरीर रथ है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं, इन्द्रियों का स्वामी मन लगाम है, विषयादि मार्ग हैं, बुद्धि सारथी है, चित्त ही भगवान्के द्वारा बान्धने वाली रस्सी है, दस प्राण धुरी है, धर्म एवं अधर्म दो पहिए हैं, और अभिमानी देव जीव ही रथी है। ॐकार ही रथी का धनुष है, जीवात्मा बाण है और परमात्मा लक्ष्य है। इसी तरह का उल्लेख भागवत 4।29।18 से 20 में पुरञ्जन उपाख्यान में द्रष्टव्य है।

कठोपनिषद **1**।**3**।**3-4,9**। **"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रमेव च। इन्द्रियाणि हयानाहुः** विषयान् तेषु गोचरान्सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्।।"

यावत् नृ-काय रथम् आत्मवश-उपकल्पं धत्ते गरिष्ठ-चरण-अर्चनया निशातम्।
ज्ञान-असिम्-अच्युत-बलो दधत्-अस्त-शत्रुः स्व-राज्यतुष्ट उपशान्त इदं विजह्यात्।।**7**।**15**।**45**।।

मनुष्य की इन्द्रियाँ तथा मन भगवान् अच्युत के आश्रित गुरु की सेवा से वश में रहती हैं। गुरु से मिले ज्ञानरूपी तलवार से विषयरूपी शत्रुओं का अन्त कर अपने आत्मराज्य के आनन्द से शान्त मन से शरीर का त्याग करे। अन्यथा ये इन्द्रियाँ संसार के अन्धे कुएँ में रथ को गिरा देंगी तथा जन्म-मृत्यु का चक्कर लगा रहेगा। भौतिक विलास का जीवन प्रवृत्ति मार्ग में लगा देता है। भौतिक इच्छा का अन्त निवृत्तिपरक यानी कल्याणप्रद होता है।

द्रव्य-सूक्ष्म-विपाकः च धूमो रात्रिः अपक्षयः।
अयनं दक्षिणं सोमो दर्श ओषधि-वीरुधः।।7।15।50।।
अन्नं रेत इति क्ष्मेश पितृयानं पुनर्भवः।
एक-एकश्येन-अनुपूर्वं भूत्वा भूत्वेह जायते।।7।15।51।।

प्रवृत्तिपरक सकाम भाव से लोग यज्ञादि में सम्मिलित होते हैं। हवन सामग्रियों से निकली धुआँ से संपूरित शरीर जब छूटता है तब जीव धूमाभिमानी देवों के पास जाता है। फिर रात्रि, कृष्णपक्ष और दक्षिणायन के अभिमानी देवों के पास से होते हुए चन्द्रलोक जाता है। अमावस्या के चाँद की तरह समय का क्षय होने से चन्द्रलोक से वृष्टि के माध्यम से औषधि, लता तथा अन्नादि में प्रवेश कर माता-पिता के वीर्य में प्रवेश करता है। और पितृयान मार्ग से पुनः संसार में ही जन्म लेता है। इस सन्दर्भ में भागवत स्कन्ध **3**।**32** द्रष्टव्य है।

अग्निः सूर्यो दिवा प्राह्णः शुक्लो राक-उत्तरं स्वराट्।
विश्वश्च तैजसः प्राज्ञस्तुर्य आत्मा समन्वयात्।।7।15।54।।
देवयानमिदं प्राहुर्भूत्वा भूत्वानुपूर्वशः।
आत्म-याजी-उपशान्त-आत्मा हि-आत्मस्थो न निवर्तते।।7।15।55।।

निवृत्तिनिष्ठ जीव यज्ञादि के कर्मों को इन्द्रियों में ही हवन कर प्राण को ब्रह्मलीन कर देता है। अग्नि, सूर्य, दिन, सायंकाल, शुक्लपक्ष, पूर्णमासी और उत्तरायण के अभिमानी देवों से होकर ब्रह्मलोक में रहकर स्थूल उपाधि को तैजस में लीन कर तुरीयावस्था प्राप्त करता है। यह देवयान मार्ग है जिसे अर्चिमार्ग भी कहते हैं। पुनः वह जीव संसार में नहीं लौटता। निवृत्तिपरक जीव वेदों के ज्ञान से समन्वित होकर भगवद्भक्ति में लग कर अंततः भगवान्कृष्ण की गति को प्राप्त करता है।

7।5। नारद जी की आत्मकथा

नारद जी ने युधिष्ठर को अपनी आत्मकथा सुनायी जो व्यास जी को सुनायी गयी दासीपुत्र की जीवन-कथा के पूर्व की है। इस सन्दर्भ में भागवत स्कन्ध **1** अध्याय **5** तथा **6** द्रष्टव्य है।

अहं पुराभवं कश्चिद् गन्धर्व उपबर्हणः।
नाम्नातीते महाकल्पे गन्धर्वाणां सुसम्मतः।।7।15।69।।

रूप-पेशल-माधुर्य-सौगन्ध्य-प्रियदर्शनः।
स्त्रीणां प्रियतमो नित्यं मत्तस्तु पुरुलम्पटः।। 7।15।70।।
एकदा देवसत्रे तु गन्धर्व-आप्सरसां गणाः।
उपहूता विश्व-सृग्भिः हरि-गाथ-उपगायने।।7।15।71।।
अहं च गायन् तत्-विद्वान् स्त्रीभिः परिवृतो गतः।
ज्ञात्वा-विश्वसृजः तन्मे हेलनं शेपुः ओजसा।
याहि त्वं शूद्रताम्-आशु नष्टश्रीः कृतहेलनः।। 7।15।72।।
तावत्-दास्याम्-अहं जज्ञे तत्रापि ब्रह्म-वादिनाम्।
शुश्रूषया-अनुषङ्गेण प्राप्तोऽहं ब्रह्म-पुत्रताम्।।7।15।73।।

मैं उपवर्हण नामका एक गन्धर्व था। भगवान्के निमित्त आयोजित यज्ञ में मेरे अशोभनीय व्यवहार से ब्राह्मणों ने शूद्र बनने का मुझे शाप दिया। मैं तब दासीपुत्र होकर आया। संतो की सेवा एवं संगति से मुझपर भगवद्कृपा हुई। उसके उपरान्त मैं ब्रह्मा का मानस पुत्र हुआ। संतों की अवहेलना एवं सेवा का मेरा यह प्रत्यक्ष अनुभव है।संत सेवा से ही भगवान् प्रसन्न होते हैं।

धर्मस्ते गृहमेधीयो वर्णितः पापनाशनः।
गृहस्थो येन पदवीम् अञ्जसा न्यासिनाम् इयात्।।7।15।74।।

नारद जी ने कहा कि गृहस्थ भगवान् से प्रेमासक्त होकर वही पदवी पाता है जो संत-संन्यासियों को मिलता है। नारद जी के इस उपख्यान से युधिष्ठर बहुत प्रसन्न हुए।

।। स्कन्ध सात पूरा हुआ ।।

श्रीमते रामानुजाय नमः ।
श्रीमद्भागवत स्कन्ध 8
वन्दउँ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

सातवें स्कन्ध तक की कथा स्वाम्भुव मनु के काल की है। इस स्कन्ध में भूत, वर्तमान तथा भविष्य के कुल चौदह मनुओं की कथा का उल्लेख है। इसके साथ भगवान्‌के उन अवतारों की कथा है जो उनकी अद्भुत लीला का वर्ण न करती है।सबसे पहले गजेन्द्र के उद्धारक भगवान के श्रीहरि अवतार (1) का वर्णन है। इसके बाद समुद्र मंथन में एक ही समय में कच्छप (2) तथा अजित (3) के रूप में भगवान्‌के क्रियाशील होने की कथा है। तदुपरान्त अमृत मन्थन से प्राप्त अमृत-कलश को हाथ में ग्रहण किये भगवान्‌के धन्वन्तरि (4) अवतार के स्वरूप का वर्ण न है। अमृत का उचित बँटवारा हो इसके लिए भगवान्‌ने मोहिनी (5) स्वरूप को प्रकट किया। असुरों के ऐश्वर्य वान्सम्राट बलि महाराज को आत्मबोध कराने हेतु भगवान्‌ने वामन (6) स्वरूप को प्रकट किया। अन्त में बलि महाराज की भक्ति को महिमान्वित करने हेतु वामन भगवान्‌ने त्रिविक्रम (7)स्वरूप धारण कर लिया । त्रिविक्रम स्वरूप की लीला से भगवान्‌ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने चरणारविन्द का दर्शन कराके अपनी अहैतुकी कृपा की वर्षा की। (8) मत्स्यावतार। प्रह्लाद जी ने नवधा भक्ति में श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्यभाव, सखाभाव तथा आत्मनिवेदन का उल्लेख किया है। द्रष्टव्य भागवत 7।5।23।। नवधा भक्ति का चरम लक्ष्य आत्मनिवेदन है और इसके ज्वलन्त उदाहरण बलि महाराज हैं। हरिकथाकार निम्नांकित उक्ति से नवधा के नौ रत्नों का उल्लेख करते हैं।भगवान्‌श्रीकृष्ण की लीला कथा में प्रेमासिक्त होकर परीक्षित जी श्रवण के, शुकदेव जी कीर्तन के, प्रह्लाद जी हरिनाम स्मरण के, लक्ष्मी जी भगवान्‌के चरणारविन्द की सेवा के, राजा पृथु जी पूजा के, अक्रूर जी वन्दना के, हनुमान जी सेवक भाव के, अर्जुन जी सखाभाव के तथा बलि महाराज आत्मनिवेदन के शिरोमणि हैं।

श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षद्भवद वैयासिकः कीर्तने।
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रि भजने लक्ष्मीः पृथु पूजने।।
अक्रूरः तु अभिवन्दने कपिपते दास्येऽस्थ सख्ये अर्जुने।
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिभूर्त कृष्णप्रिरेषां परम्।।

8।1। मन्त्रोपनिषद, भगवान् यज्ञपति (पहले मन्वन्तर में) एवं दूसरे मन्वन्तर में भगवान् विभु का अवतार।

इस स्कन्ध में विभिन्न मन्वन्तरों के सन्दर्भ में भगवान्‌की कथा का वर्णन है। ब्रह्मा के एक दिन को एक कल्प कहते हैं।उसी तरह उनकी रात्रि को भी दूसरा कल्प कहते हैं। रात्रि वाले कल्प में भगवान्‌के उदरस्थ हो समस्त सृष्टि के साथ ब्रह्मा भी शयन करते हैं। सम्पूर्ण सृष्टि भगवान्‌के उदर में वास करने के कारण अव्यक्त कही जाती है। रात्रि कल्प का अन्त होने पर दूसरे दिन के प्रारम्भ में पुनः भगवान् समस्त अव्यक्त सृष्टि को ब्रह्मा के साथ प्रकट कराते हैं। एक कल्प में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर तथा कलयुग की एक हजार आवृत्तियाँ होती हैं। प्रत्येक कल्प के अन्त में नैमित्तिक प्रलय होता है। उसके बाद नयी सृष्टि हेतु भगवान् के नाभिकमल पर प्रकट होकर ब्रह्मा जो अपना कार्य भार संभालते है उस कल्प को पाद्म कल्प कहते हैं। ब्रह्मा की आयु सौ दिव्य वर्षो की होती है। उनकी आयु के

अन्त में जो प्रलय होता है वह प्राकृतिक प्रलय कहा जाता है और उसके बाद हिरण्यगर्भा के स्वरूप से नये ब्रह्मा को भगवान्प्रकट कराते हैं। उस समय नये ब्रह्मा के एक दिन वाले पहले कल्प को ब्राह्म कल्प कहते हैं। तदुपरान्त कल्पान्त के नैमित्तक प्रलय के बाद के कल्पों को पाद्म कहते हैं। ब्रहमा के दिन के एक कल्प के एक हजार चतुर्यु गी के आवृत्ति-काल में चौदह मनु होते हैं जो इस संसार का प्रशासन चलाते हैं। प्रथम मनु स्वयम्भू ब्रह्मा के पुत्र हैं जो स्वयम्भू ब्रह्मा से उत्पन्न होने के कारण स्वायम्भुव मनु कहे गये तथा समस्त मुख्य देवों की उत्पत्ति इनके समय में ही हुई थी। इनकी पत्नी भी ब्रह्मा से ही उत्पन्न थीं जिनका नाम शतरूपा था। सातवें स्कन्ध तक की कथा स्वाम्भुव मनु के काल की है। इनका जीवन काल एक हजार चर्तुयुगी के पहले चौदहवें भाग का है। स्थूल रूप से इनका समय एकहत्तर से थोड़ा अधिक (**71.428**) चतुर्युगियों का था। पहले मनु जीवन के अन्त में तपस्या में चले गये थे। वहाँ इन्होंने भगवान् की जो स्तुति की थी उसे मन्त्रोपनिषद कहते हैं।

येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम्।
यो जागर्ति शयाने-अस्मिन्-न-अयं तं वेद वेद स: ।।8।1।9।।

परमात्मा विश्व को चेतना देते हैं परन्तु विश्व इन्हें चेतना नहीं दे सकता। प्रलय में विश्व के शयन करने पर भी ये जागते हैं और ये विश्व को जानते हैं परन्तु विश्व इन्हें नहीं जानता।

आत्म-आवास्यम्-इदम्विश्वं यत्किञ्चित्-जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध: कस्य-स्वित्-धनम्।।8।1।10।।

समस्त चर-अचर जगत् में परमात्मा व्याप्त हैं। इस संसार की वस्तुओं का अपनी आवश्यकता भर ही उपयोग करे। तृष्णा का त्याग कर दे। भला इस संसार की सम्पत्तियाँ किसी की हैं क्या ?

यं न पश्यति पश्यन्तं चक्षुर्यस्य न रिष्यति।
तं भूतनिलयं देवं सुपर्णम्-उपधावत।।8।1।11।।

भगवान्को हम नहीं देख सकते परन्तु वे हमें देखते रहते हैं। अन्तर्यामी बनकर वे जीव से मित्रवत रहते हैं।

न यस्य-आदि-अन्तौ मध्यं च स्व: परो नान्तरं बहि:।
विश्वास्य-अमूनि यद्यस्माद्विश्वं च तदृतं महत्।।8।1।12।।

जिनका न आदि है न अन्त, तब मध्य कैसे होगा? जिनका न कोई अपना है न पराया। जो न भीतर हैं न बाहर। वे ही एकमात्र आदि,मध्य और अन्त हैं। वे विश्व के अपने-पराये, भीतर-बाहर सबकुछ हैं।

स विश्वकाय: पुरुहूत ईश: सत्य: सत्यं स्वयं-ज्योति: अज: पुराण:।
धत्तेऽस्य जन्मादि-अजया-आत्मशक्त्या तां विद्यया-उदस्य निरीह आस्ते।।8।1।13।।

समस्त विश्व भगवान्का शरीर है।ये आत्मतेजोमय, अजन्मा, परिवर्तनरहित, अनन्त नाम तथा अनन्त शक्ति सम्पन्न हैं। सबके कारण हैं परन्तु उनका कोई कारण-आदि नहीं है। इस विराट जगत्की सृष्टि इनकी बहिरंगा शक्ति करती है। भौतिक शक्ति से अछूते, ये आध्यात्मिक स्तर पर निष्क्रिय रहते हैं।

अथाग्रे ऋषय: कर्माणि-ईहन्ते-अकर्म-हेतवे।
ईहमानो हि पुरुष: प्रायोऽनीहां प्रपद्यते।।8।1।14।।

ईहते भगवानीशो न हि तत्र विषज्जते।

आत्मलाभेन पूर्णार्थो नावसीदन्ति येऽनु तम्।।8।1।15।।

कर्म करने वाला ही सकाम कर्म से निवृत्त होता है। ऋषि-मुनि भी कर्म का अनुष्ठान करते हैं और परमात्मा को प्राप्त करते हैं। भगवान् सर्वशक्तिमान होकर भी कर्म करते हैं परन्तु आत्मलाभ से पूर्णकाम होने के कारण उसमें आसक्त नहीं होते।उनके बताये मार्ग का अनुसरण करने वाला भक्त कर्म-बन्धन में नहीं पड़ता।

तमीहमानं निरहङ्कृतं बुधं निराशिषं पूर्णम्-अनन्य-चोदितम्।

नृन्शिक्षयन्तं निजवर्त्म-संस्थितं प्रभुं प्रपद्ये-अखिल-धर्मभावनम्।।8।1।16।।

मैं प्रभु की शरण ग्रहण करता हूँ। वे ज्ञानसम्पन्न होकर भी अहंकारहीन हैं, परिपूर्णकाम हैं और बिना किसी की प्रेरणा के कर्म करते हैं। मर्यादा में रहते हुए भगवान्कर्म करते हुए सबको शिक्षा देते हैं।

प्रार्थना करते-करते मनु समाधि में चले गये। ऐसा देखकर असुरादि उनको जीवित निगल जाने के लिए दौड़े। सबकी आत्मा भगवान्विष्णु ने यज्ञपति के रूप में अवतार लेकर देवों को एकत्रित कर असुरों का अन्त किया। स्वायंभुव मनु के बाद अग्नि के पुत्र स्वारोचिष दूसरे मनु हुए थे।उनके समय में भगवान्विभु का अवतार हुआ।

ऋषेस्तु वेदशिरसः तुषिता नाम पत्न्यभूत्।

तस्यां जज्ञे ततो देवो विभुः इति-अभिविश्रुतः।।8।1।21।।

अष्टाशीति-सहस्राणि मुनयो ये धृतव्रताः।

अन्वशिक्षन्व्रतं तस्य कौमार-ब्रह्मचारिणः।।8।1।22।।

वेदशिरा एवं उनकी पत्नि तुषिता से भगवान् विभु का अवतार हुआ। आजन्म ब्रह्मचारी स्वरूप के विभु भगवान्ने अठ्ठासी हजार मुनियों को आत्मनिग्रह, तपस्या तथा अन्य नियमादि की शिक्षा दी।

8।2। चौथे मन्वन्तर में श्रीहरि का अवतार एवं गजेन्द्र मोक्ष ।

स्वायंभुव मनु के पुत्र प्रियव्रत थे जिनका पुत्र उत्तम तीसरा मनु हुआ। उत्तम के भाई तामस चौथे मनु हुए।पाँचवें एवं छठे मनु रैवत एवं चाक्षुष थे। रैवत भी प्रियव्रत के पुत्र तामस के भाई थे। शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को बताया कि वर्तमान में सातवें मनु श्राद्धदेव का राज्य है। इन्हें विवस्वान्अर्थात् सूर्य के पुत्र होने के कारण वैवस्वत भी कहते हैं। वर्तमान मन्वन्तर को वैवस्वत मन्वन्तर कहा जाता है। इस कल्प के आगामी सात मनुओं के नाम होंगे - सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि तथा इन्द्रसावर्णि।

चौथे मनु के समय में ही भगवान्विष्णु का श्रीहरि नामका अवतार हुआ था। भगवान्श्रीहरि ने ही अपने भक्त गजेन्द्र नामक हाथी को घड़ियाल के मुख से छुड़ाया था। इस गजेन्द्र मोक्ष की कथा सुनने की जिज्ञासा में राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से निवेदन किया -

तत्कथा सुमहत् पुण्यं धन्यं स्वत्ययनं शुभम्।

यत्र यत्र-उत्तमश्लोको भगवान्गीयते हरिः।।8।1।32।।

उत्तमश्लोक भगवान् की महिमा का गान करने वाली कथा महान्कल्याणकारी होती है। कृपा कर गजेन्द्र मोक्ष की कथा सुनायें। शुकदेव जी ने कहा कि क्षीर सागर में त्रिकूट नामक सुन्दर पर्वत है। इस पर्वत के वरुण देव के उद्यान के बीच एक मनोरम सरोवर था। वहाँ के वन में बहुत हथिनियों के साथ एक गजेन्द्र रहता था। एक बार वह थका

एवं प्यासा अपने संगी साथियों के साथ सरोवर में जल पीने पहुँचा। जल पीने के बाद हथिनियों एवं बच्चों के साथ वह जल-क्रीड़ा करने लगा। प्रारब्धवश एक ग्राह ने उसका पैर पकड़ लिया और अथाह जल की ओर खींचने लगा। बहुत प्रयास के बाद भी गजेन्द्र उससे अपना पैर छुड़ा न सका। साथियों की सहायता असफल रही। बहुत दिनों की खीच-तान से गजेन्द्र कमजोर होने लगा तथा ग्राह बलवान होता गया।

न मामिमे ज्ञातय आतुरं गजा: कुत: करिण्य: प्रभवन्ति मोचितुम्।

ग्राहेन पाशेन विधातु: आवृतोऽपि-अहं च तं यामि परं परायणम्।।8।2।32।।

य: कश्चनेशो बलिनोऽन्तक-उरगात् प्रचण्डवेगात्-अभिधावतो भृशम्।

भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भयान्मृत्यु: प्रधावति-अरणम् तमीमहि।।8।2।33।।

आतुर होकर गजेन्द्र ने इस विषम परिस्थिति को विधाता का फन्दा समझा क्योंकि उसके साथी उसे ग्राह से छुड़ा न सके तब हथिनियाँ कर ही क्या सकती थीं।सम्पूर्ण विश्व को आश्रय देनेवाले ही एक मात्र उपाय हैं। तेज दौड़ते साँप की तरह काल सबको निगलते रहता है। जिनके भय से मृत्यु डरती है उसी प्रभु की शरणागति सबकी रक्षा करती है। ऐसा सोच वह प्रभु की शरण में गया।

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि।

जजाप परमं जाप्यं प्राक्-जन्मनि-अनुशिक्षितम्।।8।3।1।।

मन में दृढ़ निश्चय कर पूर्वजन्म में सीखे स्तोत्र का गजेन्द्र हृदय में ही जप करने लगा।

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतत्-चित्-आत्मकम्।

पुरुषाय-आदिबीजाय पर-ईशाय-अभिधीमहि।।8।3।2।।

सबके हृदय में विराजमान, जगत् के मूल कारण एवं एकमात्र स्वामी को नमस्कार करते हुए गजेन्द्र प्रेम से ध्यान करने लगा।गजेन्द्र स्तुति श्लोक 2 से 29 तक सदा पठनीय है। श्रीपञ्चरत्नगीता में गीताप्रेस ने श्रीवामन पुराण से गजेन्द्रमोक्ष स्तोत्र को उद्धृत किया है जो भागवत के स्कन्ध 8 के अध्याय 3 की स्तुति जैसा ही है। गजेन्द्र चाहता था कि ग्राह के चंगुल से छूटने के बाद वह हाथी के इस भौतिक शरीर को रखना नहीं चाहता था।

एवं गजेन्द्रमुपवर्णित-निर्विशेषं ब्रह्मादयो विविध-लिङ्ग-भिदा-अभिमाना:।

नैते यदा-उपससृपु: निखिल-आत्मकत्वात् तत्राखिल-अमरमयो हरि: आविरासीत्।।8।3।30।।

गजेन्द्र ने किसी के नाम से स्तुति नहीं की।ब्रह्मादि नहीं आये परन्तु परमनियन्ता भगवान् श्रीहरि प्रकट हो गये।

तं तद्वत् आर्तम्उपलभ्य जगन्निवास: स्तोत्रं निशम्य दिविजै: सह संस्तुवद्भि:।

छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमान: चक्रायुधो अभ्यगमत्आशु यतो गजेन्द्र:।।8।3।31।।

सोऽन्त: सरसि-उरुबलेन गृहीत आर्तो दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम्।

उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरम्-आह कृच्छ्रात्-नारायण-अखिलगुरो भगवन् नमस्ते।।8।3।32।।

संसार के एकमात्र आधार, चक्रधारी भगवान्, गजेन्द्र की स्तुति सुन वेदमय गरुड की सवारी पर अतिशीघ्रता से वहाँ पहुँचे जहाँ गजेन्द्र संकट में पड़ा था। देवगण भी उनकी स्तुति करते उनके साथ आये। सरोवर में ग्राह से ग्रस्त गजेन्द्र विकल था। जब उसने आकाश में भगवान्को चक्र घुमाते आते देखा तो अपनी सूँड़ में एक सुन्दर कमल का फूल ऊपर उठाते हुए बहुत कष्ट से बोला, "नारायण! जगदगुरु ! भगवान्! आपको नमस्कार है।" गजेन्द्र को

अतिशय कष्ट में देख श्रीहरि यकायक गरुड़ से कूद गये और ग्राह के साथ गजेन्द्र को सरोवर से बाहर लाकर ग्राह का मुँह चक्र से फाड़ डाले। ग्राह का अन्त करके श्रीहरि ने गजेन्द्र का साराकष्ट मिटा दिया।
देवताओं ने प्रसन्न होकर आकाश से भगवान्श्रीहरि तथा गजेन्द्र के ऊपर पुष्पवृष्टि की। गन्धर्व, सिद्ध, चारण आदि गान एवं नृत्य करने लगे। ग्राह पूर्व में हूहू नामक गन्धर्व था। जलविहार में एकबार देवल ऋषि को स्नान करते समय उसने विनोद में जल के भीतर छिपकर उनके पैरों में लिपटा। ऋषि ने उसकी हरकत से उसे ग्राह बनने का शाप दे दिया। ऋषि से विनती करने पर दयावश उन्होंने कहा कि तुम्हारा कल्याण भगवान् स्वयं करेंगे। वही गन्धर्व उस सरोवर में ग्राह बनकर रहता था और गजेन्द्र उद्धार हेतु वह भगवान्के हाथो मारा गया।

प्रणम्य शिरसा-अधीशम् -उत्तम-श्लोकम्-अव्ययम्।
अगायत यशोधाम कीर्तन्य-गुण-सत्-कथम्।।8।4।4।।
सोऽनुकम्पित ईशेन परिक्रम्य प्रणम्य तम्।
लोकस्य पश्यतो लोकं स्वम्-अगात्-मुक्त-किल्बिषः।।8।4।5।।

ग्राह अपने पुराने गन्धर्व के स्वरूप को प्राप्त करके जगत् नियन्ता, पुण्यश्लोक, अविनाशी भगवान्के चरणों में शिरके बल प्रणाम कर उनकी कीर्तिगान करने लगा। भगवान्की अहैतुकी कृपा से शापविमुक्त हो उनकी परिक्रमा एवं प्रणाम कर अपना लोक वापस गया।

गजेन्द्रो भगवत्स्पर्शाद् विमुक्तो-अज्ञान-बन्धनात्।
प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः।।8।4।6।।

भगवान्से स्पर्श होने के कारण गजेन्द्र भी अज्ञान-बन्धन से मुक्त हो भगवान्के दिव्य पीताम्बरधारी चतुर्भुज सारूप्य को प्राप्त कर वैकुण्ठ लोक गया। गजेन्द्र पूर्वजन्म में द्रविड देश के पांड्यवंशी इन्द्रद्युम्न नामका राजा था। भगवान्का प्रेमी भक्त था। राजपाट छोड़कर वह मलयपर्वत पर जाकर एक आश्रम बनाकर भगवान्की आराधना में लग गया। एकबार अगस्त्य मुनि उसके आश्रम पर पहुँचे। राजा भगवान्के चिन्तन में लीन था। वह मुनि के आगमन को देख नहीं सका। मुनि ने अपनी उपेक्षा समझ राजा को शाप दे दिया। प्रजापालन तथा अतिथि-सत्कार से विमुख होकर यह जड़वत हो गया है। मुनि ने उसे जड़ हाथी बनने का शाप दे दिया। अगस्त्य मुनि के शाप का स्वागत करते हुए वह हाथियों का यूथपति गजेन्द्र बन गया। पूर्वजन्म के उसके भगवान्में प्रेम के कारण ही उसने सरोवर के संकट से निवृत्ति हेतु भगवान्की अद्भुत स्तुति की थी।

एवं विमोक्ष्य गजयूथपम्-अब्जनाभः तेनापि पार्षदगतिं गमितेन युक्तः।
गन्धर्व-सिद्ध-विबुधैः उपगीयमान-कर्म-अद्भुतम् स्वभवनं गरुडासनोऽगात्।।8।4।13।।

भगवान्से उद्धार के बाद गन्धर्व आदि सब देवों के सामने ही गजेन्द्र वैकुण्ठ-पार्षद के स्वरूप में गरुडगामी भगवान्के साथ ही वैकुण्ठ लोक चला गया। शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि वैकुण्ठ गमन के समय भगवान्ने समस्त देवों के समक्ष गजेन्द्र को कहा - **क्षीरोदं मे प्रियं धाम श्वेतद्वीपं च भास्वरम्।8।4।18।।**

श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां गदां कौमोदकीं मम।
सुदर्शनं पाञ्चजन्यं सुपर्णं पतगेश्वरम्।।8।4।19।।

शेषं च मत्कलां सूक्ष्मां श्रियं देवीं मदाश्रयाम्।
ब्रह्माणं नारदम्-ऋषिं भवं प्रह्लादमेव च।।**8।4।20**।।
मत्स्य-कूर्म-वराह-आद्यै: अवतारै: कृतानि मे।
कर्माणि-अनन्तपुण्यानि सूर्य सोमं हुताशनम्।।**8।4।21**।।
ये मां स्तुवन्ति-अनेनाङ्ग प्रतिबुध्य निशात्यये।
तेषां प्राणात्यये चाहं ददामि विमलां गतिम्।।**8।4।25**।।
इत्यादिश्य हृषीकेश: प्रध्माय जलजोत्तमम्।
हर्षयन्विबुध-अनीकम्-आरुरोह खगाधिपम्।।**8।4।26**।।

गजेन्द्र ! जो ब्राह्म-मुहूर्त में जागकर मेरे दिव्य धाम, आयुध, वाहन, शय्या, लक्ष्मीजी, भक्तगण तथा अवतार स्वरूपादि के ध्यान के साथ तुम्हारी स्तुति का पाठ करेंगे उनको मरने के बाद वैकुण्ठ में स्थायी स्थान प्रदान करूँगा। इसके बाद भगवान्ने प्रसन्न होकर अपना पाञ्चजन्य शंख बजाया और गरुडगामी हो गये।

8।3। पाँचवें मन्वन्तर में भगवान्वैकुण्ठ का अवतार एवं छठे मन्वन्तर में कच्छप एवं अजित भगवान्का अवतार और समुद्र मन्थन।

रैवत पाँचवें मनु थे जो चौथे मनु तामस के भाई थे। ये दोनों स्वांयभुव मनु के पुत्र प्रियव्रत के पुत्र थे। इसी अवधि में भगवान् वैकुण्ठ ने अवतार लिया था। लक्ष्मी जी के अनुरोध पर इन्होंने वैकुण्ठ बनाया था।

वैकुण्ठ: कल्पितो येन लोको लोकनमस्कृत:।
रमया प्रार्थ्यमानेन देव्या तत्प्रिय-काम्यया।।**8।5।5**।।
तस्यानुभाव: कथितो गुणाश्च परमोदया:।
भौमान् रेणून्स: विममे यो विष्णो: वर्णयेद्-गुणान्।।**8।5।6**।।

लक्ष्मी जी की प्रार्थना पर समस्त लोकों में श्रेष्ठ वैकुण्ठ लोक की रचना भगवान् वैकुण्ठ ने की। भगवान् विष्णु के समस्त गुणों का वर्णन तो वही कर सकता है जो धरती के सभी धूलकण की गिनती कर चुका हो। दूसरे स्कन्ध के नौवें अध्याय में भगवान्ने ब्रह्मा को सृष्टि के पूर्व अपने दिव्यधाम वैकुण्ठ लोक का दर्शन कराया था और इन्हें चतु:श्लोक भागवत का ज्ञान दिया था। तीसरे स्कन्ध के पन्द्रवें अध्याय में भगवान् वैकुण्ठनाथ के गुणों एवं महिमा का वर्णन हो चुका है। पाँचवें मन्वन्तर का वैकुण्ठ भिन्न है जो स्वामी वीरराघवाचार्य की भागवती-टीका में पृथ्वी के लोकालोक पर्वत के ऊपर स्थित कहा गया है। दूसरे एवं तीसरे स्कन्ध का वैकुण्ठलोक शाश्वत है जो सभी प्रलयों के बाद भी वर्तमान रहता है। छठे मन्वन्तर के मनु चाक्षुष थे। इसी अवधि में समुद्र मन्थन के कार्य हेतु अजित भगवान्का अवतार हुआ था।

तत्रापि देव: सम्भूत्यां वैराजस्य-अभवत्सुत:।
अजितो नाम भगवानंशेन जगत: पति:।।**8।5।9**।।
पयोधिं येन निर्मथ्य सुराणां साधिता सुधा।
भ्रममाणोऽम्भसि धृत: कूर्मरूपेण मन्दर:।।**8।5।10**।।

वैराज की पत्नि सम्भूति से जगत्पति भगवान्ने अजित नाम से समुद्र मन्थन हेतु अंशावतार ग्रहण किया था। भगवान्अजित ही कच्छप स्वरूप में मन्दराचल की मथानी के सुदृढ़ आधार बने थे और समुद्र मन्थन से अमृत निकालकर देवों को पिलाया था। श्रीमद्भागवत में इतना ही लिखा है कि दुर्वासा के शाप से देवगण श्रीहीन हो गये थे और असुरों से पराजित हुए थे। दुर्वासा के शाप का उल्लेख विस्तार से श्रीविष्णुपुराण (**1।9।2-5**) में आया है। उसकी कथा है कि शंकर के अंशावतार दुर्वासा मुनि ने घूमते-घूमते एक विद्याधरी को सुगन्धित सन्तानक पुष्प की माला लिए देखा। मुनि के माँगने पर उसने माला उन्हें दे दी। मुनि उसे अपने मस्तक पर धारण कर चले। रास्ते में देवराज इन्द्र को ऐरावत पर सबार देख उन्होंने उस माला को इन्द्र पर फेंक दिया। इन्द्र ने उस माला को ऐरावत हाथी के माथे पर डाल दिया। हाथी ने उसे उतारकर सूँघा और जमीन पर फेंक दिया। दुर्वासा मुनि ने क्रोध में इन्द्र को शाप दे दिया। उनके शाप से इन्द्र तथा देवगण श्रीहीन हो गये। देवगण असुरों से युद्ध में पराजित हुए और अनेकों देवता मारे गये। इन्द्रासन तथा स्वर्ग का राज्य असुरों के कब्जे में चला गया। देवताओं ने ब्रह्मा के पास जाकर उनको अपनी परिस्थिति बतायी। ब्रह्मा के साथ सभी भगवान्के धाम गये और ब्रह्मा भगवान् का साक्षात्कार प्राप्त करने हेतु प्रार्थना करने लगे। वैदिक ज्ञान से सम्पन्न ब्रह्मा भगवान्के विराट स्वरूप के विभिन्न अवयवों का वर्णन करते हुए कहते हैं -

यथा हि स्कन्धशाखानां तरोः मूल-अवसेचनम्।
एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषां आत्मनः च हि।। 8।5।49।।

वृक्ष के जड़ को सींचने से समस्त वृक्ष हरा-भरा रहता है।भगवान्विष्णु की सेवा से सबों की सेवा हो जाती है। ब्रह्मा की स्तुति से प्रसन्न हो भगवान्प्रकट हुए। उनके शरीर के तेज से देवगणों की आँखें चौंधिया गयी परन्तु ब्रह्मा एवं शंकर को उनके स्वरूप का दर्शन मिला।

विरिञ्चो भगवान्दृष्ट्वा सह शर्वेण तां तनुम्।
स्वच्छां मरकतश्यामां कञ्ज-गर्भ-अरुण-ईक्षणाम्।।8।6।3।।
तप्त-हेम-अवदातेन लसत्कौशेय-वाससा।
प्रसन्न-चारु-सर्वाङ्गीं सुमुखीं सुन्दर-भ्रुवम्।।8।6।4।।
महामणिकिरीटेन केयूराभ्यां च भूषिताम्।
कर्ण-आभरण-निर्भात-कपोल-श्रीमुखाम्बुजाम्।।8।6।5।।
काञ्ची-कलाप-वलय-हार-नूपुर-शोभिताम्।
कौस्तुभ-आभरणां लक्ष्मीं बिभ्रतीं वनमालिनीम्।।8।6।6।।
सुदर्शनादिभिः स्व-अस्त्रैः मूर्तिमद्भिः उपासिताम्।
तुष्टाव देवप्रवरः सशर्वः पुरुषं परम्।
सर्व-अमरगणैः साकं सर्वाङ्गैः अवनिं गतैः।।8।6।7।।

मरकतमणि की तरह श्यामशरीर, कमलफूल के लाल पराग जैसी आँखें, पिघलते सोने के रंग का रेशमी पीताम्बर, सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर के रोम-रोम से प्रसन्नता की झलक, सुन्दर मुख एवं सुन्दर भौंहें, रत्नों से जड़ा हुआ मुकुट, सर्वा

ंग आभूषणों से सुसज्जित, कान कुण्डल की मणियों से चमकता कपोल, कमल जैसा मुस्कराता मुखमण्डल, कमर की करधनी, हाथ के बाजूबंद, गले में हार, पाँवों में घुँघुरु, साथ में लक्ष्मी जी तथा गले में वनमाला सुशोभित हो रही थीं। भगवान्के सुदर्शन चक्रादि सभी आयुध मूर्तिमान् होकर उनकी सेवा कर रहे थे। भगवान्के अद्भुत् स्वरूप के दर्श न होते ही शिवादि सहित सभी देवगणों ने धरती पर लेटकर उनका साष्टांग प्रणाम किया। ब्रह्मा पुन: भगवान्की स्तुति करने लगे।

अहं गिरित्रश्च सुरादयो ये दक्ष-आदयो-अग्ने: इव केतव: ते।
किं वा विदाम-ईश पृथक्-विभाता विधत्स्व शं नो द्विजदेवमन्त्रम्। ।8।6।15। ।
एक एव-ईश्वर: तस्मिन्सुरकार्ये सुरेश्वर:।
विहर्तु-काम: तान्आह समद्र-उन्मथन-आदिभि:। ।8।6।17। ।

ब्रह्मा ने कहा कि मैं, शकर, दक्ष तथा अन्य प्रजापति अग्नि स्वरूप आपसे निकली छोटी चिन्गारी की तरह होते हुए भी अपने को स्वतन्त्र समझते हैं। आपके अलावे हम देवगण एवं ऋषियों का कल्याण कर ही कौन सकता है? भगवान् समुद्र मन्थन आदि करने में स्वयं समर्थ होते हुए भी लीला की इच्छा से देवों से कहा कि आपलोग वर्तमान में असुरों से सन्धि कर लें। आपलोग अमृत उत्पन्न करने का प्रयास करें जिसे पीने से अमरत्व मिलता है। समुद्र में औषधियों को डालकर मन्दर पर्वत को मथानी बनाकर बासुकी नाग को मथने की रस्सी बनायें तथा असुरों के श्रम का उपयोग कर समुद्र मन्थन करें। इससे अमृत निकलेगा जो आपको प्राप्त हो जायेगा।असुरों की सभी माँगे मानकर उनसे सन्धि करें। क्षीरसागर के मन्थन से कालकूट विष के अतिरिक्त अन्य वस्तुयें भी निकलेंगी। धैर्य के साथ रहना और किसी वस्तु को प्राप्त करने का लोभ नहीं दिखाना। भगवान् के अन्तर्धान होने पर ब्रह्मा अपने लोक गये। इन्द्र अन्य देवों के साथ निहत्थे होकर असुरों के राजा बलि से संधि करने के लिए मिले। भगवान् के बताये प्रस्ताव को इन्द्र ने संयत भाषा में बलि महाराज के सामने रखा। बलि ने इन्द्र के प्रस्ताव को मान लिया और समुद से अमृत्र निकालने की संयुक्त उद्यम करने की योजना बनायी। देवगण असुरों के साथ मन्दर पर्वत को उखाड़कर ले चले परन्तु रास्ते में ही थककर उसे छोड़ दिया।

तान् तथा भग्नमनसो भग्न-बाहु-उरु-कन्धरान्।
विज्ञाय भगवान् तत्र बभूव गरुडध्वज:। ।8।6।36। ।

मन्दराचल के भार के कारण अनेकों देवों तथा असुरों के हाथ, जंघा तथा कन्धादि टूटे देख गरुड़वाही भगवान्वहाँ प्रकट हुए। अपनी कृपाचितवन से घायलों को स्वस्थ करते हुए मन्दराचल को आसानी से भगवान्ने एक हाथ से उठाकर गरुड़ पर रखा तथा स्वयं भी उसपर सवार होकर देवों तथा असुरों से घिरे क्षीरसागर पहुँच गये। मन्दराचल को नियतस्थान पर रखकर भगवान्ने गरुड़ को विदा कर दिया।

देवों और असुरों ने हजार सिरवाले सर्पो के राजा वासुकि को आश्वासन दिया कि मन्थन से अमृत मिलेगा उसमें उसका भी हिस्सा रहेगा। वासुकि की सहमति से उसे मन्दराचल के चारों ओर मथानी की रस्सी जैसा लपेटा गया। भगवान्अजित ने मन्थन शुरु करने के उद्देश्य से वासुकि सर्प के मुँहवाले अगले हिस्से को पकड़ा। देवगण भी उनके साथ लग गये परन्तु असुरगण अहंकार से चुपचाप खड़े रहे। वासुकि की पूँछ वाले भाग को पकड़ना असुरों ने

अपना अपमान माना। भगवान्अजित ने तुरन्त ही मुँहवाले भाग को छोड़ दिया और पूँछ की ओर चले गये। समुद्र मन्थन आरम्भ हुआ परन्तु आधारहीन मन्दराचल जल में डूबने लगा।

विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो दुरन्तवीर्यो-अवितथ-अभिसन्धि:।

कृत्वा वपु: काच्छपम्अद्भुतं महत्प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार।।**8**।**7**।**8**।।

भगवान्अजित ने इसे विघ्नेश की करतूत समझ एक विशाल एवं विचित्र कछुए का रूप धारण कर जल में प्रवेश किया और मन्दराचल को ऊपर उठा दिया। मन्थन का काम पुन: शुरु हो गया। कच्छप भगवान्ने मन्दराचल के भार से अपनी पीठ में सुखद खुजलहाट की अनुभूति की।

उपरि-अगेन्द्रं गिरि-राट्-इव-अन्य आक्रम्य हस्तेन सहस्रबाहु:।

तस्थौ दिवि ब्रह्म-भव-इन्द्र-मुख्यै: अभिष्टुवद्भि: सुमनोऽभिवृष्ट:।।**8**।**7**।**12**।।

इधर भगवान्अजित पर्वतराज की तरह मन्दराचल के ऊपर हजारों भुजायें के साथ प्रकट हुए और मन्दराचल को ऊपर से दवाकर खड़े हो गये। ब्रह्मा-शंकर आदि देवों ने आकाश से उनपर फूल वरसाये तथा उनकी स्तुति करने लगे। भगवान्अजित स्वयं ही मन्दराचल के ऊपर सहस्रबाहु रूप से तथा नीचे कच्छप रूप से पधारकर मन्थन कार्य में तेजी ला दी। वासुकि के हजारों मुख से विषाग्नि निलने लगी। असुर शक्तिहीन होने लगे। विष से प्रभावित पूँछ की ओर देवता लोग भी हुए।

मथ्यमानात्तथा सिन्धो: देव-असुर-वरुथपै:।

यदा सुधा न जायेत निर्ममन्थ-अजित: स्वयम्।।**8**।**7**।**16**।।

मेघश्याम: कनकपरिधि: कर्ण-विद्योत-विद्युत्-मूर्ध्नि भ्राजत्-विलुलित-कच: स्रग्धरो रक्तनेत्र:।

जैत्रै: दोर्भि: जगत्-अभय-दै:-दन्दशूकं गृहीत्वा मथ्नन्मथ्ना प्रतिगिरि: इव-अशोभत-अथोद्धृताद्रि:।।**8**।**7**।**17**।।

मन्थन से अमृत न आते देख अजित भगवान्स्वयं मथने में लग गये । मेघश्याम शरीर, पीताम्बर, बिजली जैसे चमकते कान के कुण्डल, लहराते घुँघराले सिर के बाल, लाल आँखें तथा गले में वनमाला से सुशोभित भगवान्अजित विश्वविजयी हाथों से वासुकी को पकड़कर मन्थन के काम में पर्वतराज जैसे दिख रहे थे। इससे सबसे पहले हलाहल विष निकला। संसार में अग्नि-ज्वाला की तरह फैलने लगा। देवताओं ने शंकर जी की भावपूर्ण विनती के क्रम में कहा कि सद्योजातादि पाँच उपनिषद (मुखानि पञ्चोपनिषद: तव-ईश यै: त्रिंशत्-अष्ट-उत्तर-मन्त्रवर्ग:।**8**।**7**।**29**) ही आपके तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव एवं ईशान नामक पाँच मुख हैं। इन्हीं के पदच्छेद से आपकी आराधना के अड़तीस मन्त्र बने। देवों की विनती से द्रवित होकर शंकर जी ने हलाहल को हथेली में समेटकर पी लिया जिससे उनका कण्ठ नीला हो गया। पद्म पुराण में ऐसा उल्लेख है कि 'ॐ अच्युताय नम:' 'ॐ अनन्ताय नम:' 'ॐ गोविन्दाय नम:' कहते हुए विष को तीन चुल्लु से पी गये थे। हाथ से कुछ विष धरती पर गिरा जिसे सर्प, विच्छू तथा कतिपय पौधे उसे ग्रहण कर विषाक्त हो गये। श्रीवैष्णव आगम में पञ्चोपनिषद के भाव निम्नवत हैं -

निरन्तरं सामगान परिपूर्ण सुखश्रिता।

सर्वे पंचोपनिषद स्वरूपा वेद वर्चस:। ।पद्म पु उत्तर 228।4। ।

करोड़ो सूर्य के प्रकाश को फीका करने वाला त्रिपाद विभूति का अविनाशी एवं अपरिमेय वैभव सत्-चित्-आनन्द से परिपूर्ण है। काम एवं क्रोध से विहीन त्रिपाद विभूति की सभी मुक्तात्मायें भगवान्विष्णु के चरणकमल की सेवा के आनन्द से ओत-प्रोत हैं। सम्पूर्ण परिवेश सामवेद के गान से आनन्दमय है। तेजोमय वेद ही यहाँ पञ्चोपनिषद के स्वरूप में विराजमान है।

परमेष्ठी पुमान् विश्वो निवृत्ति: सर्वसंज्ञित:।

शक्तय: पञ्च तस्योक्ता: पञ्चोपनिषदाख्यया । । परम संहिता 2।30। ।

वैकुण्ठ धाम में विराजमान परम पुरुष की पाँच शक्तियाँ हैं जिसे पञ्चोपनिषद कहते हैं - परमेष्ठी, पुमान्, विश्व, निवृत्ति एवं सर्व। शब्द या आकाश में विराजमान आवाज परमेष्ठी के माध्यम से नियन्त्रित है। स्पर्श के रूप में पुमान् हैं। प्रकाश से वे विश्वात्मा कहे जाते हैं। स्वाद या रस से वे निवृत्ति हैं। गन्ध से वे सर्वात्म हैं। पञ्चोपनिषद न्यास विधि - पूजा आदि करने के पूर्व पञ्चोपनिषद न्यास अवश्य करना चाहिए।

ॐ षौं नम: पराय परमेष्ठ्यात्मने वासुदेवाय नम: शिरसि।

ॐ यां नम: पराय पुरुषात्मने सङ्कर्षणाय नम: आस्ये।

ॐ रां नम: पराय विश्वात्मने प्रद्युम्नाय नमो हृदये।

ॐ वां नम: पराय निवृत्यात्मने अनिरुद्धाय नमो गुह्यये।

ॐ लां नम: पराय सर्वात्मने नारायणाय नम: पादयो:।

हलाहल से शान्ति के बाद देवों एवं दानवों ने पुन: त्वरित गति के साथ समुद- मन्थन प्रारम्भ किया।

ममन्थु: तरसा सिन्धुं हविर्धानी ततोऽभवत्। ।8।8।1। ।

(1) पहले हविर्धानी सुरभि गाय निकली। यज्ञ सम्पन्न करने के लिए दूध एवं घी देनेवाली सुरभि गाय ऋषियों ने ग्रहण की। (2) तब श्वेत ऊच्चै:श्रवा घोड़ा निकला जिसे दानवराज बलि ने ग्रहण किया। (3) तदुपरान्त श्वेत रंग का ऐरावत हाथी निकला जिसे इन्द्र ने ग्रहण किया। (4) तब अष्टदिग्गज दिक्पाल निकले।

कौस्तुभ-आख्यम्-अभूद्रत्नं पद्मरागो महोदधे:।

तस्मिन्हरि: स्पृहां चक्रे वक्षोऽलङ्करणे मणौ। ।8।8।5। ।

(5) इसके बाद निकले कौस्तुभ एवं पद्मराग मणियों को भगवान्विष्णु ने अपने वक्षस्थल पर लगाया। (6) तदुपरान्त स्वर्गलोक को विभूषित करने वाला पारिजात पुष्प निकला। (7) तब अप्सरायें निकलीं।

ततश्चाविरभूत् साक्षात्श्री रमा भगवत्परा।

रञ्जयन्ती दिश: कान्त्या विद्युत् सौदामनी यथा। ।8।8।8। ।

(8) बिजली जैसा तेज से चारो दिसाओं को चकमकाती भगवान्की नित्यशक्ति सौन्दर्य की मूर्ति लक्ष्मी जी प्रकट हुई। इन्द्र ने उन्हें बैठने का सुन्दर अद्भुत आसन दिया। पवित्र नदियाँ मूर्तिमती होकर सोने के घडे में जल लाकर भेंट किया। अभिषेक के लिए पृथ्वी ने औषधियाँ, गायों ने पञ्चगव्य - दूध, दही, घी, गोमूत्र तथा गोबर एवं वसन्त

ऋतु ने फल-फूल समर्पित किये। ऋषियों ने लक्ष्मी जी का विधिवत अभिषेक किया। गन्धर्वों ने गायन तथा अप्सराओं ने नृत्य किया। बादलों ने पञ्चवाद्य बजाया। हाथ में कमल फूल लिए लक्ष्मी जब सिंहासन पर विराजीं तब बाह्णों द्वारा वेदपाठ के साथ दिक्पालों ने स्नान कराया। समुद्र ने पीले रेशमी वस्त्र तथा वरुण ने भौंरो को मतवाले करने वाले सुगन्ध की वैजयन्ती माला दी। विश्वकर्मा ने आभूषण, सरस्वती ने हार, बह्मा ने कमलफूल तथा नागों ने कान के कुण्डल दिये। तत्पश्चात्लक्ष्मी जी हाथ में कमलफूल की माला लिए सर्वगुणसम्पन्न पुरुष को पहनाने के लिए निरीक्षण करती हुई घूमने लगीं।

स्तनद्वयं चातिकृशोदरी समं निरन्तरं चन्दन-कुङ्कुम-उक्षितम्।
ततस्ततो नूपुर-वल्गु-शिञ्जितैः विसर्पती हेमलता-इव सा बभौ।।8।8।18।।
एवं विमृश्य-अव्यभिचारि-सत्गुणैः वरं निजैक-आश्रयता-अगुणाश्रयम्।
वव्रे वरं सर्वगुणैः अपेक्षितं रमा मुकुन्दं निरपक्षम् ईप्सितम्।।8।8।23।।

सोने की लता जैसी सुशोभित नूपुर की मन्द झनकार के साथ लक्ष्मी जी अत्यन्त सुन्दर लग रही थीं। सर्वत्र निरीक्षण करती हुई सर्वगुण सम्पन्न, किसी पर आश्रित नहीं रहनेवाले, किसी से कुछ अपेक्षा नहीं करनेवाले, अपने एकमात्र आश्रय भगवान्मुकुन्द का लक्ष्मी जी ने वरण किया।

(9) इसके बाद समुद्रमन्थन से कमलनयनी वारुणी देवी प्रकट हुई जिसे दानवों ने ग्रहण किया।

(10) इसके बाद एक अलौकिक स्वरूप वाले पुरुष धन्वन्तरि प्रकट हुए।

दीर्घ-पीवर-दोः दण्डः कम्बुग्रीवोऽरुणेक्षणः।
श्यामलस्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरणभूषितः।।8।8।32।।
पीतवासा महा-उरस्कः सुमृष्ट-मणिकुण्डलः।
स्निग्ध-कुञ्चितकेशान्तः सुभगः सिंहविक्रमः।।8।8।33।।
अमृत-आपूर्ण-कलशं बिभ्रद् वलयभूषितः।
स वै भगवतः साक्षात् विष्णोः अंशांश-सम्भवः।।8।8।34।।

मोटी एवं लम्बी भुजायें, शंख के समान सुन्दर गला, माला एवं आभूषणों से सुसज्जित पीताम्बरयुक्त श्यामला शरीर, चमकते मणियों के कुण्डल, चौड़ी छाती, तरुणावस्था, चिकने एवं लहराते घुँघराले केश के साथ उनकी अत्यन्त अनोखी छवि थी और वे सिंह के समान पराक्रमी दिख रहे थे। कंगनयुक्त हाथों में अमृत का कलश था। वे साक्षात्भगवान् विष्णु के अंशांश अवतार थे। आयुर्वेद के प्रवर्तक तथा यज्ञभोक्ता के रूप में वे धन्वन्तरि के नाम से प्रसिद्ध हुए। असुरों ने अमृत कलश उनके हाथ से छीन लिया। पहले कौन अमृत पिये इसके लिए असुरगण आपस में झगड़ने लगे। विषादग्रस्त देवों को भगवान्अजित ने सान्त्वना दी।

एतस्मिन्नतरे विष्णुः सर्वोपाय-वित्-ईश्वरः।
योषित्-रूपम्-अनिर्देश्यं दधार परम-अद्भुतम्।।8।8।41।।

इसी बीच चतुरशिरोमणि भगवान् अजित ने मनोहारी नारी के रूप में मोहिनी स्वरूप को प्रकट किया।

प्रेक्षणीय-उत्पल-श्यामं सर्वावयवसुन्दरम्।
समान-कर्ण-आभरणं सुकपोल-उन्नस-आननम्।।8।8।42।।

नवयौवन-निर्वृत्त-स्तनभार-कृश-उदरम्।
मुख-आमोद-अनुरक्त-अलि-झङ्कार-उद्विग्न-लोचनम्।।8।8।43।।
बिभ्रत् स्वकेशभारेण मालाम्-उत्फुल्ल-मल्लिकाम्।
सुग्रीवकण्ठ-आभरणं सुभुज-अङ्गद-भूषितम्।।8।8।44।।
विरज-अम्बर-संवीत-नितम्ब-द्वीपशोभया।
काञ्चया-प्रविलसत्-वल्गु-चलत्-चरण-नूपुरम्।।8।8।45।।
सव्रीड-स्मित-विक्षिप्त-भ्रू-विलास-अवलोकनैः।।
दैत्य-यूथप-चेतःसु कामम्-उद्दीपयन् मुहुः।।8।8।46।।

नीले कमल जैसा श्याम वदन, मनोरम मुखारविन्द, सुन्दर गाल, ऊँची नाक, समान आकार के दोनों कानों में लटकते कुण्डल, अतिआकर्षक अंग-प्रत्यंग, नययुवती का स्तन, कमर पतली, मुख के सुगन्ध से गुंजार करते भौंरे, चंचल आँखें, मल्लिका के फूलों से सुशोभित सुन्दर बाल, दर्शनीय गले में सुन्दर हार, बाहों में बाजूबंद, सुन्दर श्वेत वस्त्र से ढके नितम्बद्वीप पर शोभायमान करधनी तथा पैरों के नूपुर के रुनझुन से सबका मन उनकी ही ओर खींच रहा था। रमणीय मोहिनी स्वरूप के लज्जापूर्ण मुस्कान एवं उनकी बाँकीं तिरछी नजरों से असुरों के मन में बार-बार काम भावना का उदय हो रहा था। उनके सौंदर्य से मोहित असुरों ने उन्हें अमृत बाँटने का पूरा अधिकार दे दिया। उनकी बात सुनकर मोहिनी भगवान् ने कहा कि विद्वान लोग कभी नारी पर विश्वास नहीं करते। अनजान स्त्री का चरित्र विश्वसनीय नहीं होता है। असुर पूर्णतया आश्वस्त हुए और अमृत घट भगवान्को दे दिया। भगवान्ने कहा कि मैं जैसा भी करूँ तुमलोग उसे स्वीकार करो। देव तथा असुर सबों ने एकदिन का उपवास किया। अग्नि में हवन दे कर अपने पुरोहितों को दानादि दे कर उनसे अनुष्ठान का उचित अनुदेश ले पूर्वाभिमुख कुश के आसन पर बैठ गये।

असुराणां सुधादानं सर्पाणामिव दुर्नयम्।
मत्वा जाति-नृशंसानां न तां व्यभजत्-अच्युतः।।8।9।19।।

असुरों को अमृत देने का भगवान्ने साँप को दूध पिलाने जैसा खतरा समझा और उनलोगों को अमृत में हिस्सा नहीं दिया। देवों एवं असुरों को अलग-अलग पंक्ति में बैठाकर जगत्पति भगवान्मोहिनी ने पहले असुरों की पंक्ति में घूमकर उनका निरीक्षण किया। तत्पश्चात्देवों की पंक्ति में जाकर भगवान्उधर से अमृत बाँटने लगे। असुरों ने अपने दिये गये वचन के अनुसार संयमित रहकर अपनी बारी की प्रतीक्षा में चुपचाप बैठे रहे।इसी बीच देवों जैसा अलंकरण धारण कर छल से राहु देवोंके बीच बैठ गया और भगवान्से भी नजर बचाकर अमृत प्राप्त कर उसे पीने लगा। चन्द्रमा तथा सूर्य का राहु सर्वदा से शत्रु रहा है इसलिए उन्होंने उसे पहचान लिया उसके छल का रहस्योद्घाटन कर दिया।

चक्रेण क्षुरधारेण जहार पिबतः शिरः।
हरिस्तस्य कबन्धस्तु सुधया-अप्लावितोऽपतत्।।8।9।25।।

तेज धार वाले चक्र से भगवान्ने उसका शिर अलग कर दिया। अमृत का स्पर्श नहीं होने के कारण धड़ भाग सिर से अलग हो गया। अमृत का स्पर्श होने से राहु के सिर को अमर होने के कारण उसे ग्रहों की दर्जा मिल गया।

अमावास्या के दिन सूर्य को तथा पूर्णिमा की रात्रि में चन्द्रमा को अपने शाश्वत वैर भाव से सताने के लिए राहु उनलोगों पर आक्रमण करने का प्रयत्न करने लगा। जब देवताओं के बीच समस्त अमृत बँट गया तब भगवान्ने मोहिनी रूप को त्यागकर अपने मूल स्वरूप में प्रकट हो गये।

एवं सुरासुरगणाः समदेशकाल-हेतु-अर्थ-कर्म-मतयोऽपि फले विकल्पाः।
तत्रामृतं सुरगणाः फलम्अञ्जसा-आपुः यत्पादपङ्कज-रजः श्रयणात्-न दैत्याः।8।9।28।।

शुकदेव जी राजा परीक्षित को बताते हैं कि एक ही प्रयोजन से एक ही स्थान एवं समय पर असुरों तथा देवों ने समान कर्म किये परन्तु भगवान् के चरणारविन्द में प्रीति न रहने के कारण असुरगण अमृत से वञ्चित रह गये।

यद् युज्यते-असु-वसु-कर्ममनो-वचोभिः देह-आत्मज-आदिषु नृभिः तत् असत् पृथक्त्वात्।
तैरेव सद् भवति यत् क्रियते-अपृथक्त्वात् सर्वस्य तद् भवति मूलनिषेचनं यत्।।8।9।29।।

प्राण, धन, कर्म, मन और वाणी से मनुष्य भगवान्के लिए जो समर्पित करता है वह सफल हो जाता है परन्तु उनसे विमुख होकर सारी क्रियायें निष्फल हो जाती हैं। भगवान्को सबकुछ समर्पित वृक्ष की जड़ को पटाकर समस्त वृक्ष को हरा-भरा रखने जैसा मनुष्य के स्वयं तथा उसके समस्त परिवार के लिए पूर्णकाम होता है।

साधयित्वामृतं राजन् पाययित्वा स्वकान् सुरान्।
पश्यतां सर्वभूतानां ययौ गरुडवाहनः।।8।10।2।।

अपने भक्तों को अमृत पिलाकर सबके देखते-देखते भगवान्ग रुड़ पर सवार हो वहाँ से प्रस्थान कर गये। देवताओं की विजय देख अमृत न मिलने से रोषातुर असुरों ने देवताओं पर आक्रमण कर दिया। नारायण के चरणाश्रित देवगणों ने असुरों को मुँहतोड़ उत्तर दिया। असुरों के सेनानायक विरोचन-पुत्र बलि मयदानव द्वारा निर्मित अद्भुत् विमान पर सवार थे। देवों के अधिपति इन्द्र ऐरावत हाथी पर सवार थे। असुरों की मायाशक्ति के सामने देवगण टिक नहीं पाये। हताश हो देवों ने भगवान् को स्मरण किया और वे प्रकट हो गये।

ततः सुपर्ण-अंस-कृत-अङ्घ्रिपल्लवः पिशङ्गवासा नवकञ्जलोचनः।
अदृश्यत-अष्टायुध-बाहुः उल्लसत् श्री-कौस्तुभ-अनर्घ्य-किरीट-कुण्डलः।।8।10।54।।

भगवान्के चरणारविन्द गरुड के कन्धे पर विराजमान थे।नूतन कमल जैसी आँखों वाले पीताम्बरधारी कौस्तुभ तथा लक्ष्मी जी से सुशोभित वक्षस्थल वाले भगवान् अमूल्य मुकुट तथा कुण्डल धारण किये हुए थे। भगवान्के आठ हाथों में आठ आयुध शोभायमान हो रहे थे। इसके पूर्व ब्राह्म दक्ष को श्रीहरि ने अष्टभुज स्वरूप से दर्शन दिया था। द्रष्टव्य 4।7।20।। **श्यामो हिरण्यरशनोऽर्ककिरीटजुष्टो नीलालकभ्रमरमण्डित कुण्डलास्यः। शङ्ख-अब्ज-चक्र-शर-चाप-गदा-असि-चर्म व्यग्रैः हिरण्यमय-भुजैः इव कर्णिकारः।।4।7।20।।** श्यामवर्ण के भगवान् सुनहले पीले वस्त्र, सूर्य सा चमकता मुकुट, भौंरो के समान काला बाल, कानों के कुण्डल से शोभायमान मुखमण्डल तथा आठों भुजाओं में शङ्ख, कमल फूल, चक्र, बाण, धनुष, गदा, तलवार एवं ढाल धारण किये थे। पुनः प्राचीनबर्हि के प्रचेता पुत्रों को भी भगवान्ने 4।30।6।। अष्टभुज स्वरूप से दर्शन दिया था।

काशिष्णुना कनकवर्णविभूषणेन भ्राजत्कपोलवदनो विलसत्किरीटः।
अष्टायुधैरनुचरैर्मुनिभिः सुरेन्द्रै रासेवितो गरुडकिन्नरगीतकीर्तिः।। 4।30।6।।

देवों एवं ऋषियों से घिरे सुन्दरमुखमण्डल एवं मुकुट से सुशोभित भगवान् अष्टभुजी स्वरूप में थे। इसके उपरान्त **6।4।36।।** के अनुसार प्राचेतस दक्ष को भगवान्के अष्टभुज स्वरूप का दर्शन हुआ था।
कृतपाद: सुपर्ण -अंसे प्रलम्बाचष्टमहाभुज:। चक्रशङ्ख-असि-चर्म-इषु-धनु: पाशगदाधर:।। 6।4।36।। उनके हाथों में चक्र, शंख, तलवार, ढ़ाल, बाण, धनुष, रस्सी तथा गदा धारण किये हुए थे। इसके अतिरिक्त **6।8।12** में नारायण कवच में भगवान् के अष्टभुज स्वरूप के ध्यान का उल्लेख है।

तस्मिन्प्रविष्टे-असुरकूट-कर्मजा माया विनेशु: महिना महीयस:।
स्वप्नो यथा हि प्रतिबोध आगते हरिस्मृति: सर्व-विपत्-विमोक्षणम्।।8।10।55।।

भगवान्के प्रकट होते ही असुरों की माया वैसे ही लुप्त हो गयी जैसे सोये हुए का स्वप्न जागने पर समाप्त हो जाता है। यह सच है कि भगवान्के नाम-स्मरण से सभी विपत्तियों का नाश हो जाता है। भगवान् पर असुरगण टूट पड़े। एक-एक कर भगवान् असुरों का नाश करने लगे। देवगण भी आक्रमणकारी हो गये। इन्द्र ने वज्र से बलि महाराज को मृतवत कर दिया। असुरों का भीषण नाश होते देख ब्रह्मा जी ने नारद जी को बीच-बचाव कर युद्ध बन्द कराने के लिए भेजा।

भवद्भि: अमृतं प्राप्तं नारायण-भुजाश्रयै:।
श्रिया समेधिता: सर्व उपारमत विग्रहात्।।8।11।44।।

नारद जी ने देवों से कहा कि भगवान्की भुजाओं की छत्रच्छाया में आपलोगों ने अमृत प्राप्त किया। लक्ष्मी जी की कृपाकटाक्ष से आपलोगों को यश एवं कीर्ति मिली है। आपलोग अब युद्ध बन्द कर दें। देवों ने नारद जी की बात मान ली और युद्ध बन्द हो गया। नारद जी के परामर्श पर असुरों ने महाराज बलि को अस्तगिरि पर पहुँचा दिया। वहाँ असुरों के गुरु शुक्राचार्य ने उन्हें स्वस्थ कर दिया।

8।4। शंकर को भगवान्के मोहिनी स्वरूप का दर्शन

जब शंकर ने यह सुना कि श्रीहरि ने मोहिनी स्वरूप धारण कर असुरों को मोह लिया और देवों को ही अमृत पिला दिया तब पार्वती जी एवं अन्य अनुचरों को साथ लेकर भगवान्मधुसूदन के निवास-धाम वैकुण्ठ गये। शंकर ने भगवान्की पूजा की एवं उनकी स्तुति करते हुए कहा-

तवैव चरणाम्भोजं श्रेयस्कामा निराशिष:।
विसृज्य-उभयत: सङ्गं मुनय: समुपासते।।8।12।6।।
त्वां ब्रह्म केचित्-अवयन्ति-उत धर्मम् एके एके परं सदसतो: पुरुषं परेशम्।
अन्ये-अवयन्ति नवशक्तियुतं परं त्वां केचित्-महापुरुषम्-अव्ययम्-आत्म-तन्त्रम्।।8।12।9।।

कल्याणकामी महात्मा लोग इस लोक तथा परलोक की समस्त कामनाओं का त्याग करके आपके चरणकमल से प्रीति करते हैं। वेदान्ती आपको ब्रह्म, मीमांसक धर्म, सांख्य दार्शनिक प्रकृति-पुरुष से परे परमेश्वर, पाञ्चरात्र पद्धति वाले विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना और अनुग्रहा - नौ शक्तियों से युक्त और कोई आपको परम स्वतन्त्र, अविनाशी भगवान् कहते हैं।

अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणै:।

सोऽहं तद् द्रष्टुम्-इच्छामि यत् ते योषित्-वपुः धृतम्। ।8।12।12। ।

आपके दिव्यगुणों से भरपूर अनेकों लीलावतारों को मैंने देखा है परन्तु आपके उस नवयुवती मोहिनी स्वरूप का दर्शन करना चाहता हूँ जिससे आपने असुरों को मोहित किया। भगवान्ने हँसते हुए कहा कि मैं आपको वह रूप दिखाऊँगा और इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गये। पार्वती तथा शंकर ने चारों दिशाओं में नजर दौड़ायी परन्तु भगवान्नहीं दिखे। फूलों से भरे एक रमणीक उद्यान में एक युवती को शंकर ने गेंद खेलते देखा।

आवर्तन-उद्वर्तन-कम्पित-स्तन-प्रकृष्ट-हार-उरुभरैः पदे पदे।

प्रभज्यमानामिव मध्यतः चलत् पदप्रवालं नयतीं ततस्ततः। ।8।12।19। ।

अपने मूँगों जैसे लाल कोमल मुलायम पाँवों से मोहिनी ठुमुक-ठुमुक चल रही थीं। उछलती गेंद के साथ उनके स्तन भी गतिमान हो रहे थे। हार तथा गतिमान स्तन के भार से कमर की लचक अनोखी थी।

दिक्षु भ्रमत्-कन्दुक-चापलैः भृशं प्रोद्विग्न-तार-आयत-लोल-लोचनाम्।

स्वकर्ण-विभ्राजित-कुण्डल-उल्लसत्कपोल-नील-अलक-मण्डित-आननाम्। ।8।12।20। ।

उछलते एवं बहकते गेंद को लपककर पकड़ने के लिए उनकी चंचल आँखें, कानों के लटकते कुण्डल से गाल तथा उसपर लटकते काले बाल की लटें मुखारमण्डल के सौंदर्य को निखार रही थीं।

श्लथद् दुकूलं कबरीं च विच्युतां सन्नह्यतीं वामकरेण वल्गुना।

विनिघ्नतीम्-अन्य-करेण कन्दुकं विमोहयन्तीं जगदात्ममायया। ।8।12।21। ।

जब देह से साड़ी खिसकती एवं केशों की बेणी खुलने लगती तब वे उसे बायें हाथ से ठीक करतीं। दायें हाथ से गेंद खेलती हुई जगत् को अपनी माया से विमोहित कर रही थीं। मोहिनी शंकर को देख कर हँसीं और शंकर अपने ऊपर नियन्त्रण खो बैठे। सती एवं अन्य अनुचरों की उपस्थिति को भूलते हुए मोहिनी से मोहित हो उनके पीछे दौड़ चले। कामातुर होकर उन्होंने मोहिनी की जूड़ा पकड़ उनका आलिंगन किया।मोहिनी जब छूट कर भागने लगीं तब वे पीछे-पीछे दौड़ते और शंकर का वीर्य स्खलित होने लगा। जमीन पर जहाँ-जहाँ वीर्य गिरा वहाँ सोना-चाँदी की खानें प्रकट हुई। मोहिनी का पीछे करते शंकर ऋषि-मुनियों के आश्रमों से भी पार कर गये। पीछे-पीछे दौड़ते समस्त वीर्य के स्खलन हो जाने पर शंकर को भगवान्विष्णु की माया से पूर्णग्रस्त होने की अनुभूति होने लगी।

अथ-अवगत-माहात्म्य आत्मनो जगदात्मनः।

अपरिज्ञेय-वीर्यस्य न मेने तत्-उ ह-अद्भुतम्। ।8।12।36। ।

तम्-अविक्लवम्-अव्रीडम्-आलक्ष्य मधुसूदनः।

उवाच परमप्रीतो बिभ्रत्-स्वां पौरुषीं तनुम्। ।8।12।37। ।

आत्मस्वरूप सर्वात्मा भगवान्की असीम शक्ति का शंकर को बोध हो गया। भगवान्की अद्भुत्माया से ग्रस्त होने का उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ। शंकर को अब लज्जारहित एवं अविचलित देख भगवान्मधुसूदन पुरुष रूप में प्रकट होकर प्रसन्नापूर्वक शंकर के कल्याण की मनोकामना से बोले। हमारी माया के प्रभाव को लाँघ पाना कठिन है। आज से आप हमारे त्रिगुणात्मक माया से वञ्चित रहेंगे।

एवं भगवता राजन् श्रीवत्साङ्केन सत्कृतः।

आमन्त्र्य तं परिक्रम्य सगणः स्वालयं ययौ। ।8।12।41। ।

शंकर ने वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न धारण करने वाले भगवान्‌के मुख से मंगलाशासन सुना और उनकी परिक्रमा प्रणाम कर अपने धाम को प्रस्थान कर गये। रास्ते में सती को बताया कि जब वे स्वयं भगवान्‌की माया से मोहित हो गये थे तब साधारण प्राणियों की क्या स्थिति होगी !

यं माम्-अपृच्छः त्वम्उपेत्य योगात्समा-सहस्रान्त उपारतं वै।

स एष साक्षात्पुरुषः पुराणो न यत्र कालो विशते न वेदः। ।8।12।44। ।

एक हजार वर्ष की समाधि से उठने पर मैं किसकी उपासना करता हूँ यह आपने मुझसे पूछा था। काल यानी समय की सीमा से परे जिनका वेद भी वर्णन नहीं कर सकता मैं इसी सनातन पुरुष की उपासना करता हूँ। शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि क्षीरसागर मन्थन की कथा निरन्तर सुनने वाले जीवन में मनोवांछित फल पाते हैं। संसार के कष्ट से निवृत्ति का यही एकमात्र उपाय है।

असत्-विषयम्-अङ्घ्रिं भावगम्यं प्रपन्नान्-अमृतम्-अमर-वर्यान्-आशयत् सिन्धुमध्यम्।

कपट-युवतिवेषो मोहयन्यः सुर-अरीन्-तम्-अहम्-उपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि। ।8।12।47। ।

शुकदेव जी कहते हैं कि माया से सुन्दर मोहिनी नारी रूप से असुरों को मोहित कर देवों के बीच अमृत बाँटने वाले भगवान्‌का मैं नतमस्तक हूँ जो भक्तों के लिए अमृत-स्वरूप हैं तथा सदा उनकी इच्छा पूरी करते रहते हैं।

8।5। वर्तमान वैवस्वत मनु तथा भावी सात सावर्णि मनुओं का वर्णन ।

वर्तमान में सूर्यलोक के प्रधान देवता विवस्वान्‌के पुत्र श्राद्धदेव सातवें मनु हैं। क्षीराब्धिशायी नारायण को सृष्टि की इच्छा हुई। उनकी नाभि से एक कमल फूल निकला जिस पर उन्होंने स्वयंभू ब्रह्मा को प्रकट किया। ब्रह्मा के एक मानस पुत्र मरीचि थे। मरीचि का विवाह स्वायंभुव की पुत्री देवहूति की पुत्री से हुआ जो कर्दम मुनि तथा देवहूति से उत्पन्न थी। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। कश्यप को देवमाता अदिति से विवस्वान्‌नामक पुत्र प्राप्त हुआ। विवस्वान्‌को उनकी पत्नी संज्ञा से श्राद्धदेव नाम के पुत्र हुए। श्राद्धदेव को अपनी पत्नी श्रद्धा से दस पुत्र प्राप्त हुए जिसमें इक्ष्वाकु एवं नृग प्रमुख थे। श्राद्धदेव को ही वैवस्वत मनु भी कहते हैं।

अत्रापि भगवज्जन्म कश्यपात्-अदितेः अभूत्।

आदित्यानाम्-अवरजो विष्णः वामन-रूपधृक्। ।8।13।6। ।

दत्त्वा-इमाम्याचमानाय विष्णवे यः पदत्रयम्।

राद्धम्-इन्द्रपदं हित्वा ततः सिद्धिम्-अवाप्स्यति। ।8।13।13। ।

योऽसौ भगवता बद्धः प्रीतेन सुतले पुनः।

निवेशतोऽधिके स्वर्गात्-अधुना-आस्ते स्वराट्-इव। ।8।13।14। ।

वर्तमान सातवें मन्वन्तर में कश्यप-अदिति के पुत्र रूप में विष्णु भगवान्‌का वामन नामका अवतार हुआ जो आदित्यों में सबसे छोटे हैं। वामन भगवान्‌को तीन पग भूमि दान देने के कारण बलि तीनों लोक का राज्य खो बैठे। बलि को भगवान्‌ने प्रेम से पाश में बाँधा और स्वर्ग से भी ज्यादा ऐश्वर्यशाली सुतल का राज्य दिया।

सावर्णि आठवें मनु होंगे जो सूर्य की पत्नि छाया के पुत्र होंगे। नौवाँ मनु वरुण का पुत्र दक्षसावर्णि होगा। ब्रह्मसावर्णि दसवें मनु होंगे। धर्मसावर्णि ग्यारहवें मनु होंगे। रुद्रसावर्णि बारहवाँ मनु होंगे तथा देवसावर्णि तेरहवें मनु

होंगे। इन्द्रसावर्णि चौदहवें मनु होंगे। श्रीविष्णुपुराण (**3।2।36, 40**) के अनुसार तेरहवें मनु रुचि एवं चौदहवें मनु भौम होंगे। श्रीमद्भागवत एवं श्रीविष्णुपुराण में मनु के वर्णण में मात्र इतना ही अन्तर है। ये चौदह मनु का पूर्ण काल एक हजार चतुर्युग होता है जो ब्रह्मा का एक दिन होता है और इसे कल्प कहते हैं।

ततो धर्मं चतुष्पादं मनवो हरिणोदिताः।
युक्ताः सञ्चारयन्ति-अद्धा स्वे स्वे काले महीं नृप।।8।14।5।।
पालयन्ति प्रजापाला यावदन्तं विभागशः।
यज्ञभागभुजो देवा ये च तत्रान्विताश्च तैः।।8।14।6।।
ज्ञानं च-अनुयुगं ब्रूते हरिः सिद्धस्वरूपधृक्।
ऋषिरूपधरः कर्म योगं योगेशरूपधृक्।।8।14।8।।

हे राजा परीक्षित ! भगवान् के आदेशानुसार सभी मनु धर्म की स्थापना यज्ञादि के माध्यम से करने में सक्रिय रहते हैं। यज्ञों के भाग से देवगण लाभान्वित होकर तीनों लोक के समस्त जीवों को वर्षादि प्रदान कर पालन करते हैं। श्रीहरि हरेक युग में कपिल एवं व्यास आदि सिद्ध, ऋषि तथा योगी के स्वरूप में प्रकट होकर ज्ञान आदि का उपदेश करते हैं। उदाहरण के लिए सनकादि सिद्धों के स्वरूप में ज्ञान का उपदेश करते हैं। याज्ञवल्क्य महान्ऋषि के रूप में कर्मयोग की शिक्षा देते हैं। श्रीहरि ही योग की विधि का उपदेश दत्तात्रेय बनकर देते हैं।

8।6। अदिति के पयोव्रत से वामन भगवान्का अवतार।

राजा परीक्षित ने पूछा कि भगवान्सर्वसमर्थ होकर भी बलि से तीन डेग जमीन क्यों माँगे और जब मुँहमाँगा मिल गया तब बलि को बन्दी क्यों बनाया ? इस विरोधाभास को स्पष्ट करें। शुकदेव जी ने कहा कि समुद्र मन्थन के बाद देवगण अमृत पीकर पराक्रमी बन गये तथा असुरों से स्वर्ग का राज्य छीन लिया।

पराजित-श्रीः असुभिः च हापितो हि-इन्द्रेण राजन्-भृगुभिः स जीवितः।
सर्वात्मना तान् अभजद् भृगून् बलिः शिष्यो महात्मा-अर्थ-निवेदनेन।।8।15।3।।

देवों से युद्ध में बलि का सर्वस्व लुट गया। उनके प्राण भी चले गये थे परन्तु भृगुवंशी शुक्राचार्य की सञ्जीवनि से वे जीवित हो उठे थे। बलि भृगुवंशी शुक्राचार्य को अपना सबकुछ समर्पित करके उनकी सेवा में लगे। बलि अपने गुरु शुक्राचार्य की सहायता से विश्वजित यज्ञ सम्पन्न कर पुनः ओजस्वी बने। यज्ञ से अनेकानेक आयुधों से युक्त एक दिव्य रथ मिला। दैविक बल प्राप्त कर बलि ने असुरों की सेना जुटायी तथा स्वर्ग पर धावा बोल दिया। देवगण अपने देवगुरु बृहस्पति के कहने पर समय को प्रतिकूल समझ स्वर्ग छोड़कर लुप्त हो गये। बलि देवताओं पर विजयी हो गये एवं स्वर्ग के अधिपति बन गये। देवमाता अदिति अपने पुत्रों को स्वर्ग के राज्य से वञ्चित देखकर बहुत दुःखी हो गयी। कश्यप मुनि समाधि से उठे और घर आये। अदिति ने अपने मन की व्यथा उन्हें सुनायीं। कश्यप जी ने कहा कि भगवान् विष्णु की माया बहुत प्रबल है। सारा संसार अपनी सन्तान के स्नेह में बन्धा रहता है।

उपतिष्ठस्व पुरुषं भगवन्तं जनार्दनम्।
सर्वभूत-गुहावासं वासुदेवं जगद्गुरुम्।।8।16।20।।

स विधास्यति ते कामान्हरिः दीनानुकम्पनः।

अमोघा भगवद्भक्तिः न-इतरा-इति मतिर्मम। ।8।16।21। ।

कश्यप जी ने अदिति को भगवान्की भक्ति में लगने को कहा। भगवान्की भक्ति के समान कोई भी विधि व्यर्थ है। वे भक्तों पर कृपा करके सबकुछ देते हैं। ऐसा सुन अदिति ने भगवान्की भक्तिपूर्वक पूजा की विधि बताने का अनुरोध किया। कश्यप जी ने ब्रह्मा जी की बतायी हुई विधि को बताया। फागुन महीने के शुक्लपक्ष की द्वादशी तक के बारह दिन की अवधि में दूध के ही आहार पर रहते हुए कमलनयन भगवान्की पूजा की विधि बतायी। हरिपूजा, स्तुति, साष्टांग-प्रणाम, अग्निहोत्र तथा ब्राह्मण भोज आदि इसके अंग हैं। इस व्रत की अवधि फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा के पूर्व की अमावस्या से लेकर शुक्ल त्रयोदशी तक की है।

निर्वर्तित-आत्मनियमो देवम्अर्चेत् समाहितः।

अर्चायां स्थण्डिले सूर्ये जले वह्नौ गुरौ-अपि। ।8।16।28। ।

नित्य-नैमत्तिक नियमों को पूरा करके अर्चा-विग्रह, सूर्य, जल, अग्नि तथा गुरु में श्रीहरि का दर्शन करते हुए पूजा करे तथा स्तुति करे।

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे।

सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे। ।8।16।29। ।

नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधान-पुरुषाय च।

चतुर्विंशद्-गुणज्ञाय गुणसंख्यान-हेतवे। ।8।16।30। ।

सभी प्राणियों में वास करने वाले वासुदेव भगवान्को नमस्कार है। चौबीस गुणों को जाननेवाले सांख्य शास्त्र के प्रवर्त क, पुरुष-प्रकृति में स्थित तथा सूक्ष्म एवं अव्यक्त स्वरूप प्रभु को नमस्कार है।

नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःश्रृङ्गाय तन्तवे।

सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः। ।8।16।31। ।

प्रभु को नमस्कार है जिनके यज्ञ के दो कर्म - प्रायणीय एवं उदयनीय शिर हैं। प्रातः, मध्याह्न तथा सवन तीन पाद हैं, चारों वेद चार सींग हैं तथा गायत्री आदि सात छन्द ही सात हाथ हैं। ज्ञान-कर्म-उपासना की तीन वैदिक विधियाँ जिनकी आत्मा हैं।

नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च।

सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः। ।8।16।32। ।

कल्याण तथा संहार करने की शक्ति वाले को नमस्कार है। सर्व शक्तिमान को नमस्कार है। सभी विद्याओं के अधिपति एवं सभी प्राणियों के नाथ को नमस्कार है।

नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने।

योग-ऐश्वर्य-शरीराय नमस्ते योगहेतवे। ।8।16।33। ।

हिरण्यगर्भ प्रभु को नमस्कार है जो समस्त जगत के प्राण हैं। योग एवं उसके वैभव के कारण को नमस्कार है।

नमस्त आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः।

नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः। ।8।16।34। ।

नार-नारायण ऋषि के रूप में अवतरित सबके अर्न्तयामी आदिदेव को नमस्कार है।

नमो मरकत-श्याम-वपुषे -अधिगत-श्रिये।

केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे। ।8।16।35। ।

मरकत मणि की तरह श्यामले शरीरवाले प्रभु को नमस्कार है जिनकी सम्पति एवं सौन्दर्य की देवी लक्ष्मी सेविका हैं। पीताम्बरधारी केशव को बार-बार नमस्कार है।

त्वं सर्ववरद: पुंसां वरेण्य वरदर्षभ।

अतस्ते श्रेयसे धीरा: पादरेणुम्-उपासते। ।8।16।36। ।

अन्ववर्तन्त यं देवा: श्रीश्च तत्-पाद-पद्मयो:।

स्पृहयन्त इव-आमोदं भगवान् मे प्रसीदताम्। ।8।16।37। ।

सबको सब वर देनेवालों में सर्वश्रेष्ठ प्रभु के चरण रज की विवेकी जन पूजा करते हैं। सभी देवगण एवं लक्ष्मी जी जिनके श्रीचरणकमलों के दिव्यसुगन्ध प्राप्त करने की लालसा से पूजा करते हैं वही प्रभु मुझपर प्रसन्न हों। द्वादशाक्षर मन्त्र का उच्चारण करते हुए भगवान्को दूध से स्नान कराये। दूध एवं गुड़ की खीर भोग लगाकर द्वादशाक्षर मन्त्र से खीर का ही हवन करे। भक्तों में प्रसाद बाँटकर स्वयं भी प्रसाद ग्रहण करे। एक सौ आठ बार द्वादशाक्षर मन्त्र - ॐ नमो भगवतो वासुदेवाय - से स्तुति कर प्रदक्षिणा करके साष्टांग प्रणाम करे। दूध पीकर ही बारह दिन रहते हुए आचार्य के तत्त्वाधान में भगवान्की विधिवत पूजा करे।

अयं वै सर्वयज्ञाख्य: सर्वव्रतमिति स्मृतम्।

तप:सारमिदं भद्रे दानं च-ईश्वर-तर्पणम्। ।8।16।60। ।

तस्मादेतद्-व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धया चर।

भगवान् परितुष्टस्ते वरानाशु विधास्यति। ।8।16।62। ।

कश्यप जी ने अदिति से कहा - हे देवि ! यह भगवान्को प्रसन्न करनेवाला व्रत है। इसे "सर्वयज्ञ" एवं "सर्वव्रत" भी कहते हैं। सभी तपस्याओं का सार है तथा सर्वश्रेष्ठ दान है। संयम एवं श्रद्धा से इस व्रत को करो और भगवान् शीघ्र प्रसन्न होकर सारी अभिलाषा पूरी करेंगे। देवमाता अदिति ने एकाग्रचित्त होकर पयोव्रत का अनुष्ठान पूरा किया। भगवान् प्रकट हुए।

तस्या: प्रादुरभूत्-तात भगवान् आदिपूरुष:।

पीतवासा: चतुर्बाहु: शङ्ख-चक्र-गदाधर:। ।8।17।4। ।

शुकदेव जी ने राजा से कहा - हे तात! पीताम्बरधारी आदिपुरुष भगवान् को चारों भुजाओं में अपने दिव्य आयुधों के साथ अपने सामने देख देवमाता ने उनके चरणों में लेटकर प्रणाम किया। अनोखे सौंदर्य के दर्शन से भाव विभोर होकर रुँधे हुए गले से अदिति ने प्रार्थना की।

यज्ञेश यज्ञपुरुष-अच्युत तीर्थपाद तीर्थश्रव: श्रवण-मङ्गल-नामधेय।

आपन्न-लोक-वृजिन-उपशम-उदय-आद्य शं न: कृधीश भगवन्-असि दीननाथ:। ।8।17।8। ।

आप ही यज्ञ एवं यज्ञ के स्वामी हैं। हे अच्युत ! आपका नाम एवं लीला-गान भवसागर से उद्धार करता है।आप तीर्थों एवं समस्त दीनजनों के आश्रय हैं। मेरा कल्याण करें। देवमाता अदिति की प्रार्थना सुन भगवान् ने कहा कि मैं आपकी अभिलाषा से अवगत हूँ। भगवान्‌ने स्वयं उनका पुत्र बनकर देवों की विषम परिस्थिति के समाधान का आश्वासन दिया। कश्यप मुनि को समाधि में ही सबकुछ ज्ञात हो गया। समयानुसार भगवान् अदिति के गर्भ में आये। ब्रह्मा को जब यह ज्ञात हुआ तब वे भगवान्‌की प्रार्थना करने लगे।

त्वं वै प्रजानां स्थिर-जङ्गमानां प्रजापतीनामसि सम्भविष्णु:।

दिवौकसां देव दिव: च्युतानां परायणं नौ: इव मज्जतो-अप्सु।।8।17।28।।

आप समस्त चराचर के जनक हैं। जल में डूबते के लिए नाव की तरह आप ही स्वर्ग से बाहर किये गये देवताओं के लिए आश्रयदाता हैं। ब्रह्मा की स्तुति चल रही थी कि देवमाता अदिति के गर्भ से भादो माह के शुक्ल द्वादशी तिथि को श्रवण नक्षत्र के अभिजित मुहूर्त के पाद में अविनाशी भगवान्‌प्रकट हुए। श्रवण के पूर्व के नक्षत्र उत्तराषाढ़ का अंतिम पाद एवं श्रवण के प्रथम पाद की संयुक्त अवधि अभिजित मुहूर्त है।

श्रोणायां श्रवण-द्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभु:।

सर्वे नक्षत्र-तारा-आद्या: -चक्रु: तत्-जन्म दक्षिणम्।।8।18।5।।

इत्थं विरिञ्च-स्तुत-कर्म-वीर्य: प्रादुर्बभूव-अमृत-भू: आदित्याम्।

चतुर्भुज: शङ्ख-गदा-अब्ज-चक्र: पिशङ्गवासा नलिन-आयत-ईक्षण:।।8।18।1।।

श्याम-अवदातो झषराज-कुण्डल-त्विषा-उल्लसत्-श्रीवदन-अम्बुज: पुमान्।

श्रीवत्सवक्षा बलय-अङ्गद-उल्लसत्-किरीट-काञ्ची-गुण-चारु-नूपुर:।।8।18।2।।

मधुव्रत-व्रात-विघुष्टया स्वया विराजित: श्रीवनमालया हरि: ।

प्रजापते: वेश्म-तम: स्व-रोचिषा विनाशयन्‌कण्ठ-निविष्ट-कौस्तुभ:।।8।18।3।।

चन्द्रमा जब श्रवण नक्षत्र पर थे एवं सभी शुभ तारा एवं योग में भगवान्‌का भादो शुक्लद्वादशी को अभिजित मुहूर्त में अवतार हुआ। खिले हुए कमल के समान आँखों वाले भगवान्‌चारों हाथ में दिव्यायुध धारण किये हुए थे। तेजपूर्ण श्यामले शरीर के मुखारविन्द की शोभा मकराकृत कुण्डल से निखर रही थी। वक्षस्थल पर श्रीवत्स, कलाइयों में कंगन, भुजाओं में बाजूबन्द, माथे पर मुकुट, कमर में करधनी, छाती पर जनेउ एवं चरणकमलों में घुँघुरु सुशोभित हो रहे थे। श्रीहरि के गले की मनोहारी वनमाला की सुगन्ध से झुंड के झुंड भौंरे गुंजार कर रहे थे। कण्ठ में कौस्तुभ मणि सुशोभित हो रही थी। भगवान् की तेज से कश्यप प्रजापति के घर का अन्धकार दूर हो गया। तब सूर्य मध्य आकाश में था। इस द्वादशी को विजया द्वादशी कहते हैं।अप्सराओं के नृत्य, गन्धर्वों के गान एवं ढ़ोल, नगाड़े आदि बाजों से गगन में कोलाहल मच गया। पुष्पवृष्टि से अदिति का घर ढक गया।

यत् तद् वपुर्भाति विभूषण-आयुधै: अव्यक्त-चिद् व्यक्तम्-आधारयत्‌हरि:।

बभूव तेनैव स वामनो वटु: संपश्यतो: दिव्यगति: यथा नट:।।8।18।12।।

भगवान्‌श्रीहरि आदिस्वरूप में अपने दिव्य आभूषणों एवं आयुधों से शोभायमान रहते हैं जो भौतिक जगत्‌में दृष्ट नही है परन्तु उसी आदिस्वरूप से वे प्रकट हुए थे। देखते-देखते उनका आदिस्वरूप वामन वटु (बौने कद के ब्रह्मचारी ब्राह्मण) के रूप में बदल गया जैसे नाटक में कोई नट स्वेच्छा से अपना स्वरूप बदलते रहता है।

तं वटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षय:।
कर्माणि कारयामासु: पुरस्कृत्य प्रजापतिम्।।8।18।13।।
तस्योपनीयमानस्य सावित्रीं सविताब्रवीत्।
बृहस्पतिर्ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपोऽददात्।।8।18।14।।
ददौ कृष्णाजिनं भूमिर्दण्डं सोमो वनस्पति:।
कौपीनाच्छादनं माता द्यौश्छत्रं जगत: पते:।।8।18।15।।
कमण्डलुं वेदगर्भ: कुशान् सप्तर्षयो ददु:।
अक्षमालां महाराज सरस्वती-अव्यय-आत्मन:।।8।18।16।।
तस्मा इति-उपनीताय यक्षराट्पात्रिकाम्-अदात्।
भिक्षां भगवती साक्षात् उमा-अदाद-अम्बिका सती।।8।18।17।।
स ब्रह्मवर्चसेन-एवं सभां संभावितो वटु:।
ब्रह्मर्षिगण-सञ्जुष्टाम्-अति-अरोचत मारिष:।।8।18।18।।

आनन्दित महर्षियों ने कश्यप जी से भगवान्के जातकर्म करवाये। यज्ञोपवीत संस्कार में गायत्री के अधिष्ठातृ देवता सविता यानी सूर्यदेव ने गायत्री मन्त्र का उपदेश दिया। देवगुरु बृहस्पति ने जनेऊऔर पिता कश्यप जी ने मेखला यानी कमर का डाँड़ा दिया। पृथ्वी ने मृगचर्म, चन्द्रमा ने ब्रह्मदण्ड, माता अदिति ने कौपीन, देवताओं ने छत्र, ब्रह्मा ने कमण्डल, सप्तऋषियों ने कुश, सरस्वती ने कमलाक्ष की माला, कुबेर ने भिक्षापात्र, पार्वती ने पहली भिक्षा दी।सबों ने सर्वश्रेष्ठ वटु का जब इस तरह संस्कार किया तब वे बह्मर्षियों की सभा में वटु रूपधारी वामन भगवान्अपने तेज से सुशोभित होने लगे। भगवान्ने हवन किया। जब उन्होंने सुना कि राजा बलि भृगुकच्छ क्षेत्र में नर्मदा नदी के उत्तरी तट पर यज्ञ कर रहे हैं तब वे बलि की यज्ञशाला के लिए पैदल प्रस्थान किये। उनकी देह इतनी भारी थी कि उनके एक-एक पग से धरती डगमगाती थी। जब वे यज्ञशाला के पास आये तब उनकी तेज के सामने ऋत्विज तथा स्वयं यजमान बलि भी तेजहीन हो गये। सब अनुमान करने लगे कि यज्ञ देखने साक्षात्सूर्य , सनत्कुमार या अग्निदेव ही तो नहीं आ गये।

छत्रं सदण्डं सजलं कमण्डलुं विवेश बिभ्रत्-हयमेध-वाटम्।।8।18।23।।
मौञ्ज्या मेखलया वीतम्उपवीत-अजिन-उत्तरम्।
जटिलं वामनं विप्रं माया-माणवकं हरिम्।।8।18।24।।

वामनदेव हाथ में छाता, दण्ड तथा जल से भरा कमण्डल लिए अश्वमेध की यज्ञशाला में प्रवेश किये। भगवान्कमर में मूञ्ज की मेखला, गले में जनेऊ, मृगचर्म का उत्तरीय वस्त्र पहने तथा सिर पर जटा से सुशोभित थे। उनके यज्ञमण्डप में प्रवेश करते ही पुरोहितों ने खड़ा होकर उनका स्वागत किया। उनके तेज से सभी भृगुवंशियों की आँखें चौंधिया गयी।राजा बलि भगवान्के बौने स्वरूप के अद्‌भुत सौंदर्य से आनन्दित हो उठे।

यजमान: प्रमुदितो दर्शनीयं मनोरमम्।
रूपानुरूप-अवयवं तस्मा आसनम्-आहरत्।।8।18।26।।

स्वागतेन-अभिनन्द्य-अथ पादौ भगवतो बलिः।
अवनिज्य-अर्चयाम्-आस मुक्त-सङ्ग-मनोरमम्। ।8।18।27। ।
तत्-पाद-शौचं जन-कल्मषापहं स धर्म-वित्-मूर्ध्नि-अदधात् सुमङ्गलम्।
यद् देवदेवो गिरिशः चन्द्रमौलिः दधार मूर्ध्ना परया च भक्त्या। ।8।18।28। ।

भगवान्के मनोरम बौने शरीर के अनुरूप ही उनके सभी अंगों की शोभा से मुग्ध हो राजा बलि ने उन्हें बैठने का एक सुन्दर आसन दिया। मुक्तात्माओं को आकर्षित करनेवाले मनोहारी भगवान्के श्रीचरण जल से धोकर बलि ने उनकी पूजा की। भगवान् के चरणोदक को भक्तिभाव से चन्द्रमौलि शंकर अपने सिर पर धारण करते हैं। जीवों के सारे पाप धुलने वाले भगवान्के चरणोदक को धर्मज्ञ बलि ने अपने सिर पर धारण किया। बलि ने कहा लगता है कि आप समस्त ब्रह्मर्षियों के तपस्वरूप हैं। आपके पधारने से हमारे पितर तृप्त हो गये, मेरा वंश पवित्र हो गया तथा आज मेरा यज्ञ सफल हो गया। आपके पद पखारने से मेरे सभी पाप धुल गये। आपके नन्हे - नन्हे चरणों से तथा आपके चरणोदक से आज पृथ्वी पवित्र हो गयी। यज्ञाग्नि की आहुति का सारा फल मिल गया। बताइये आज मैं आपको क्या दूँ - हाथी, घोड़ा, धन-दौलत, विवाह योग्य ब्राह्मण-कन्या, घर-द्वार, अन्न, जल, समृद्ध गाँव तथा राज्यादि जो भी आप चाहते हों आपको दे कर मैं आज धन्य-धन्य हो जाऊँगा ।

बलि के मधुर वचन सुनकर वामन भगवान्प्रसन्न हुए एवं उनके पूर्वजों की प्रशंसा करने लगे। आप प्रह्लाद जी के पौत्र हैं और उनकी कीर्ति के समरूप ही आपका व्यवहार है। आपके कुल में कृपणता का अभाव है एवं श्रेष्ठजनों ने अपने वचन तथा दानशीलता को निभाया है। हिरण्याक्ष की वीरता की प्रशंसा भगवान्विष्णु ने स्वयं की है। हिरण्यकशिपु अपने भाई का बदला लेने वैकुण्ठ लोक पहुँच गया। भगवान्उसे देखकर भागने लगे और वह उनका पीछा कर रहा था। भगवान्ने सोचा कि इसे अन्तर्दृष्टि है नहीं इसलिए मैं इसके हृदय में जा बैठूँ।

एवं स निश्चित्य शरीरम्-अधावतो निर्विवेशे-असुर-इन्द्र।
श्वास-अनिल-अन्तर्हित-सूक्ष्मदेहः तत्-प्राण-रन्ध्रेण विविग्नचेताः। ।8।19।10। ।

भगवान्ऐसा सोच उसकी नासिका से श्वास के सहारे सूक्ष्मरूप में जाकर उसके हृदय में विराज गये। हिरण्यकशिपु ने उन्हें सर्वत्र खोजा परन्तु वे नहीं मिले तब उन्हें मरा हुआ समझ अपने को विश्वविजयी मान लिया। भगवान्ने कहा कि हे बलि! आपके पिता प्रह्लादनन्दन विरोचन दानी स्वभाव के थे। ब्राह्मणों का सत्कार करते थे। देवतागण ब्राह्मण के कपट रूप में उनके पास गये। विरोचन समझ गये थे परन्तु अपनी वचनवद्धता को पूरा करने हेतु उन्होंने अपनी आयु ब्राह्मणों को दान कर दी।आप भी शूरवीर हैं एवं महान्पुरुषों के अनुगामी हैं।

तस्मात् त्वत्तो महीम्-ईषद् वृणेऽहं वरदर्षभात्।
पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र संमितानि पदा मम। ।8।19।16। ।

आप भी श्रेष्ठ दानी हैं। आप मुझे मेरे पैर की माप से तीन डेग जमीन दान में दें। आप अत्यन्त उदार हैं और मैं जितनी जमीन मागूँ आप दे सकते हैं परन्तु मुझे आवश्यकता से ज्यादा नहीं चाहिए। राजा बलि ने अनेकों प्रलोभन दिया। भगवान् अपने पूर्व की माँग से ही सन्तुष्ट रहे। बलि को अपने धन तथा ऐश्वर्य का अभिमान हो गया था। वे अपने को सर्वेश्वर समझ भगवान्से सबकुछ माँगने को कहा। भगवान्ने पहले उनके ऐश्वर्याभिमान का अन्त

करना चाहा क्योंकि प्रह्लाद जी के कुल के अनुरूप उनका व्यवहार नहीं था। भगवान् के चरणोदक को अपने सिर पर रख बलि बहुत प्रसन्न हुए थे। इसीलिए मात्र तीन पग जमीन माँग कर भगवान्ने उनका सर्वस्व ले लिया था। पहले भगवान् ने बलि को अपना भक्त समझ उनके ऐश्वर्याभिमान को नष्ट किया। बलि अनकों पुण्य वाले यज्ञ सम्पन्न कर चुके थे तथा भृगुवंशी ब्राह्मण गुरु शुक्राचार्य के अनन्य सेवक बन गये थे। इनके इस चरित्र से भगवान् उनपर प्रसन्न थे। अन्त में राजा बलि ने दान का संकल्प करने के लिए जल पात्र उठाया। उसके गुरु शुक्राचार्य ने बीच में उसे रोकते हुए कहा -

एष वैरोचने साक्षाद् भगवान्-विष्णु: अव्यय:।

कश्यपात्-अदिते: जातो देवानां कार्यसाधक:।।8।19।30।।

यह माया के स्वरूप में कश्यप-अदिति का पुत्र साक्षात्विष्णु स्वयं हैं। तुम्हारा सबकुछ लेकर यह देवों को दे देंगे। तीन पग जमीन के नाम पर यह तीनों लोक ले लेंगे। पहले पग में पृथ्वी, दूसरे में सारा स्वर्ग लेकर सर्वव्याप्त हो जायेंगे एवं तीसरे पग के लिए कुछ रहेगा ही नहीं। तुम प्रतिज्ञा नहीं पूरी करने के अपराध में नरकगामी बनोगे। राजा बलि ने कहा कि मैं प्रह्लाद जी का पौत्र होकर एक ब्राह्मण को दिये गये वचन से पीछे नहीं हट सकता। दधीचि तथा शिवि आदि ने जनहित में अपने धर्म पर चलते हुए अपने प्राण तक दे चुके हैं। बलि के दृढ़ संकल्प को सुनकर शुक्राचार्य क्रोध में आ गये और बलि को उन्होंने गुरु की आज्ञा न मानने के कारण श्रीहीन होने का शाप दे दिया। राजा बलि ने दृढ़-संकल्प होकर वामन भगवान्को शास्त्रीय प्रथा के अनुसार हाथ में जल लेकर तीन पग भूमि संकल्प कर दिया। पुन: भगवान्का चरण पखारा । उनकी पत्नी विन्ध्यावली ने सोने की झारी से चरण पखारने के लिए जल दिया। राजा बलि ने चरणोदक सिर पर लिया। ऐसा देख आकाश में स्थित देवगण पुष्पवृष्टि करने लगे। दुन्दुभी तथा नगाड़े बजने लगे।

तद्वामनं रूपम्-अवर्धत-अद्भुतं हरे: अनन्तस्य गुणत्रयात्मकम्।

भू: खं दिशो द्यौ: विवरा: पयोधय: तिर्यक्-नृ-देवा: ऋषयो यत्-आसत।।8।20।21।।

उस समय देखते-देखते एक अद्भुतघटना घटी। त्रिगुणात्मक अनन्त भगवान्का स्वरूप बढ़ने लगा। पृथ्वी, आकाश, सभी दिशायें, स्वर्ग, पाताल, समुद्र, पशु-पक्षी, मनुष्य, देवगण एवं ऋषिगण अर्थात् समस्त चराचर जगत्उनके शरीर में स्थित दिखने लगे।

रसाम्-अचष्ट-अङ्घ्रितले-अथ पादयो: महीं महीध्रान्-पुरुषस्य जङ्घयो:।

पतत्रिणो जानुनि विश्वमूर्ते: उर्वो: गणं मारुतम्-इन्द्र-सेन:।।8।20।23।।

इन्द्रासन के राजा बलि ने भगवान्के अद्भुत्रूप को देखा। भगवान्के चरण-तल में रसातल, चरणों में पृथ्वी, पिंडलियों में पर्वत, घुटनों में पक्षी और जाँघों में मरुद्गण को देखा।

सन्ध्यां विभो: वाससि गुह्य ऐक्षत् प्रजापतीन् जघने आत्ममुख्यान्।

नाभ्यां नभ: कुक्षिषु सप्तसिन्धून् उरुक्रमस्य-उरसि च-ऋक्षमालाम्।।8।20।24।।

वस्त्रों में सन्ध्या, गुप्तांगों में प्रजापतिगण, कमर में राजा बलि ने स्वयं को तथा अपने विश्वस्त असुरगणों को देखा। नाभि में आकाश, कोख में सातों समुद्र तथा वक्षस्थल में तारों के समूह देखे।

हृदि-अङ्ग धर्मं स्तनयोः मुरारेः ऋतं च सत्यं च मनसि-अथ-इन्दुम्।

श्रियं च वक्षसि-अरविन्द-हस्तां कण्ठे च सामानि समस्त-रेफान्।।**8।20।25**।।

भगवान्‌के हृदय में धर्म, स्तनों में मीठे सत्य वचन, मन में चन्द्रमा, वक्षस्थल पर हाथों में कमल लिये लक्ष्मी जी, सभी शव्दसमूह के साथ कण्ठ में सामवेद दिखे।

इन्द्र-प्रधानान्-अमरान्-भुजेषु तत्कर्णयोः ककुभो द्यौश्च मूर्ध्नि।

केशुषु मेघान् श्वसनं नासिकायाम्-अक्षणोः च सूर्यं वदने च वह्निम्।।**8।20।26**।।

वाण्यां च छन्दांसि रसे जलेशं भुवोः निषेधं च विधिं च पक्ष्मसु।

अहः च रात्रिं च परस्य पुंसो मन्युं ललाटेऽधर एव लोभम्।।**8।20।27**।।

स्पर्शे च कामं नृप रेतसोऽमभः पृष्ठे तु-अधर्मं क्रमणेषु यज्ञम्।

छायासु मृत्युं हसिते च मायां तनू-रुहेषु-ओषधि-जातयः च।।**8।20।28**।।

नदीश्च नाडीषु शिला नखेषु बुद्धौ -अजं देवगणान् ऋषीन् च।

प्राणेषु गात्रे स्थिर-जङ्गमानि सर्वाणि भूतानि ददर्श वीरः।।**8।20।29**।।

भुजाओं में देवगण एवं इन्द्र, कान में दिशायें, सिर में स्वर्ग, केश में मेघमाला, नाक में वायु, नेत्र में सूर्य, मुँह में अग्नि, वाणी में वेद, जीभ में वरुण, भौंहों में विधि और निषेध, पलकों में दिन और रात, ललाट में क्रोध, नीचे के ओठ में लोभ, स्पर्श में काम, वीर्य में जल, पीठ में अधर्म, पदचालन में यज्ञ, छाया में मौत, हास्य में माया, शरीर के रोयें में औषधियाँ, नाड़ियों में नदियाँ, नख में पर्वत, बुद्धि में ब्रह्मा-देवगण-ऋषिगण, इन्द्रियों एवं शरीर में सभी चराचर प्राणियों के दर्शन हुए।

सर्वात्मनि-इदं भुवनं निरीक्ष्य सर्वेऽसुराः कश्मलम्-आपुः अङ्ग।

सुदर्शनं चक्रम्-असह्यतेजो धनुश्च शार्ङ्गम्स्तनयित्नु-घोषम्।।**8।20।30**।।

शुकदेव जी ने कहा कि हे राजा परीक्षित ! असुरगण इस विराट स्वरूप के साथ असह्य तेज वाला सुदर्शन चक्र तथा शार्ङ्ग धनुष के टंकार का दृश्य देखकर विषाद में पड़ गये।

पर्जन्यघोषो जलजः पाञ्चजन्यः कौमोदिकी विष्णुगदा तरस्विनी।

विद्याधरो-असिः शत-चन्द्र-युक्तः तूण-उत्तमौ-अक्षय-शायकौ च।।**8।20।31**।।

सुनन्द-मुख्या उपतस्थुरीशं पार्षदमुख्याः सहलोकपालाः।

स्फुरत्-किरीट-अङ्गद-मीनकुण्डल-श्रीवत्स-रत्नोत्तम-मेखला-अम्बरैः।।**8।20।32**।।

मधुव्रत-स्रक्-वनमालया वृतो रराज राजन् भगवान् उरुक्रमः।

क्षितिं पदैकेन बलेः विचक्रमे नभः शरीरेण दिशश्च बाहुभिः।।**8।20।33**।।

मेघ के समान गम्भीर आवाज करनेवाला पाञ्चजन्य शंख, विष्णु भगवान्‌की अत्यन्त तेज गति वाली कौमोदकी गदा, सौ चन्द्रकार चिह्नों वाली ढ़ाल एवं विद्याधर नामक तलवार, अक्षयवाणों से भरे दो तरकस सभी भगवान्‌की शोभा बढ़ा रहे थे। मस्तक पर मुकुट, बाहुओं में बाजूबन्द, कानों में मकराकृति कुण्डल, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न, गले में कौस्तुभ मणि, कमर में मेखला और कन्धे पर पीताम्बर शोभायमान हो रहा था। लोकपालों के साथ सुनन्द आदि पार्षदगण भगवान्‌की सेवा में उपस्थित थे। पुष्पों की सुगन्धित वनमाला से सुशोभित थे जिसपर भौंरे

गुंज रहे थे। एक पग से उरुक्रम भगवान्ने पृथ्वी को नाप लिया। उनकी देह से सम्पूर्ण आकाश एवं भुजाओं से दिशायें भर गयीं।

पदं द्वितीयं क्रमत: त्रि-विष्टिपं न वै तृतीयाय तदीयम् अणु-अपि।

उरुक्रमस्याङ्घ्रि: उपरि-उपरि अथो मह: जनाभ्यां तपस: परं गत:। ।8।20।34। ।

उरुक्रम त्रिविक्रम भगवान्ने दूसरे पग से स्वर्ग को नाप लिया। दूसरा ही पग ऊपर की ओर बढ़ते हुए महर्लोक, जनलोक और तपलोक होते सत्यलोक से भी ऊपर पहुँच गया। तीसरे पग के लिए अणुमात्र स्थान कहीं भी नहीं बचा। भगवान्के नखों की ज्योति से ब्रह्मलोक का प्रकाश फीका देख ब्रह्मा ने अन्य ऋषियों के साथ भगवान्के चरण कमल की पूजा की। भगवान्के पादकमल को ब्रह्मा ने अपने कमण्डल के जल से धोकर स्तुति की। भगवान्की विमल कीर्ति के रूप में उरुक्रम भगवान्के श्रीचरण का पादोदक गंगा नदी बनकर तीनों लोकों को पवित्र करती हुई पृथ्वी पर आयी है। जब भगवान् वामन स्वरूप में आ गये तब ब्रह्मादि देवों ने उनकी पूजा की। पुष्पवृष्टि हुई, जयघोष हुआ, नृत्य तथा दुन्दुभियों से भगवान्का सम्मान हुआ।

जाम्बवान् ऋक्षराजस्तु भेरी-शब्दै: मनोजव:।

विजयं दिक्षु सर्वासु महोत्सवम् अघोषयत्। ।8।21।8। ।

ऋक्षराज जाम्बवान्ने मन के वेग से दौड़कर सभी दिशाओं में भेरी बजाई और भगवान्की विजय का मंगल घोष किया।कहा जाता है कि जाम्बवान्चिरञ्जीवि हैं तथा उनकी उत्पत्ति ब्रह्मा की जम्भाई से हुई है। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि वे ब्रह्मा के पसीने से उत्पन्न हुए थे। भगवान्के त्रेतायुगीन रामावतार में भी जाम्बवान्सक्रिय थे तथा द्वापर में भगवान्कृष्ण के कृपापात्र थे।

बलि का सर्वस्व लुटते देख असुरों ने बलि के मना करने पर भी वामन भगवान्पर धावा बोल दिया।

नन्द: सुनन्दोऽथ जयो विजय: प्रबलो बल:।

कुमुद: कुमुदाक्षश्च विष्वकसेन: पतत्रि-राट्। ।8।21।16। ।

जयन्त: श्रुतदेवश्च पुष्पदन्तोऽथ सात्वत:।

सर्वे नाग-अयुत-प्राणा: चमूं ते जघ्नु: आसुरीम्। ।8।21।17। ।

भगवान्के पार्षदों नन्द, सुनन्द, जय, विजय, प्रबल, बल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विष्वकसेन, गरुड, जयन्त, श्रुतदेव, पुष्पदन्त और सात्वत जो सभी दस हजार हाथी के समान बलवान थे असुरों को मार भगाये। बलि ने असुरों को समय की प्रतिकूलता का ज्ञान कराया। उनकी आज्ञा से असुरगण रसातल में भाग गये।

अथ तार्क्ष्यसुतो ज्ञात्वा विराट् प्रभु-चिकीर्षितम्।

बबन्ध वारुणै: पाशै: बलिं सौत्ये-अहनि क्रतौ। ।8।21।26। ।

यज्ञ की समाप्ति पर गरुड़ ने भगवान्वामन के मन की बात समझकर वरुण की जंजीर से राजा बलि को बान्ध कर बन्दी बना लिया।भगवान्ने बलि से कहा कि तीन पग भूमि दान देने का तुम्हारा संकल्प पूरा नहीं हुआ क्योंकि दो ही पग में हमने पृथ्वी तथा स्वर्गादि सर्वस्व नाप लिया तब यह बताओ कि तीसरा पग कहाँ रखूँ। तू अपने वचन-भंग के कारण नरकगामी बनोगे। वामन भगवान्ने पहले राजा बलि के ऐश्वर्याभिमान को दूर किया। तदुपरान्त वरुण की जंजीर से उन्हें बन्दी बनाकर उनके देहाभिमान का भी अन्त कर दिया।

यदि-उत्तमश्लोक भवान् मम-ईरितं वचो व्यलीकं सुरवर्य मन्यते।

करोमि-ऋतम् तत् न भवेत् प्रलम्भनं पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम्। ।8।22।2। ।

बलि ने पवित्र-कीर्ति भगवान्से कहा कि मेरा संकल्प सच्चा है। कृपा करके अपना तीसरा पग हमारे सिर पर रखें। आपके दण्ड से हमें तनिक लज्जा या कष्ट नहीं हो रहा है। असुरकुल से आपके विरोध को जानते हुए भी हमारे पितामह प्रह्लाद जी आपके चरणाश्रित हुए। इसी बीच प्रह्लाद जी वहाँ पहुँच गये।

तम्-इन्द्र-सेन: स्वपितामहं श्रिया विराजमानं नलिन-आयत-ईक्षणम्।

प्रांशुं पिशङ्गाम्बर-अञ्जन-त्विषम् प्रलम्बबाहुं सुभग-ऋषभम्-ऐक्षत। ।8।22।13। ।

इन्द्रासनापति राजा बलि ने अपने पितामह प्रह्लाद जी को देखा। उनकी आँखें कमल जैसी सुन्दर थीं। लम्बी भुजाओं वाले प्रह्लाद जी के श्यामले शरीर पर पीताम्बर शोभ रहा था। राजा बलि जंजीर में बन्धे-बन्धे अपना सिर झुकाकर उनको प्रणाम किया। सुनन्द आदि पार्षदों से घिर वामन भगवान्को देखकर प्रह्लाद जी भाव-विह्वल हो उठे। अश्रुपूरित नयनों से वे जमीन पर लेटकर भगवान् के चरणों में प्रणाम किया और कहा कि बलि को श्रीयुक्त करना तथा श्रीहीन करना आपकी अद्भुत्लीला है।आपने इसे धनान्धता के मोह से मुक्त कर इस पर बड़ी कृपा की है। उसी समय बलि की पत्नी विन्ध्यावलि ने भगवान् के अनुग्रह की दुहाई देते हुए कहा कि सांसारिक ऐश्वर्य के कारण जीव मूर्खतावश अपने को कर्ता मान लेता है। ब्रह्मा ने भगवान्से बलि को अब बन्धन से मुक्त करने की प्रार्थ ना करते हुए कहा कि -

यत्पादयो:-अशठ-धी: सलिलं प्रदाय दूर्वा-अङ्कुरै: अपि विधाय सतीं सपर्याम्।

अपि-उत्तमां गतिम्-असौ भजते त्रिलोकीं दाश्वान् अविक्लव-मना: कथम्-आर्तिम्-ऋक्षेत्। ।**8।22।23**। ।

श्रद्धा से आपके चरणों में जल तथा पत्रम्-पुष्पम् आदि समर्पित करनेवाले को सद्गति मिलती है। बलि ने धैर्य एवं प्रसन्नता से तीनों लोक आपको समर्पित कर दिया है। किसी भी तरह से यह दण्ड का भागी नहीं है।

ब्रह्न्यम्-अनुगृह्णामि तत्-विशो विधुनोमि-अहम्।

यन्मद: पुरुष: स्तब्धो लोकं मां च-अवमन्यते। ।8।22।24। ।

यदा कदाचित्-जीवात्मा संसरन् निजकर्मभि:।

नाना-योनिषु-अनीश: अयं पौरुषीं गतिम्-आव्रजेत्। ।8।22।25। ।

भगवान्ने ब्रह्मा से कहा कि मैं जब कृपा करता हूँ तब उसका धन छीन लेता हूँ क्योंकि धन से मतवाला होकर वह मेरा तथा अन्य लोगों का तिरस्कार करने लगता है।कर्मानुसार अनेकों योनियों में भटकने वाले जीव को कभी-कभार मैं बड़ी कृपा से मनुष्य का शरीर देता हूँ।बलि मेरे सच्चे भक्त के रूप में असुर-कुल की कीर्ति बढ़ानेवाले हैं।गुरु के शाप की उपेक्षा करते हुए ये अपने वचन पर अचल रहे। इन्होंने दिये गये वचन का निर्वाह किया। अगला आठवाँ मन्वन्तर सावर्णि मनु का होगा। उसमें तुम ही इन्द्र के पद को सुशोभित करोगे। वर्तमान में तुमको मैं स्वर्ग से भी श्रेष्ठ सुतल लोक देता हूँ। मेरा चक्र तुम्हें वहाँ सुरक्षित रखेगा।

रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वां सानुगं स-परिच्छदम्।

सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान्। ।8।22।35। ।

हे बलि ! मैं सुतल में विराजमान रहूँगा। वहाँ सबके साथ सुरक्षित रहोगे। उसने भगवान्‌की अहैतुकी कृपा की महिमा का बन्दन किया। वरुण-पाश से मुक्त हो बलि सुतल लोक चले गये। बलि को बन्धन से छुटकार मिलने पर प्रह्लाद जी ने असुरों पर भगवान्‌की अहैतुकी कृपा की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए भावपूर्ण स्तुति की।

चित्रं तव-ईहितम्-अहो-अमित-योगमाया-लीला-विसृष्ट-भुवनस्य विशारदस्य।
सर्वात्मन: समदृशो विषम: स्वभावो भक्तप्रियो यदसि कल्पतरु-स्वभाव:।।8।23।8।।

आप खेल-खेल में योगमाया से सृष्टि करते हैं। आप सर्वज्ञ, सर्वात्मा तथा समदर्शी हैं। भक्त आपको सर्वदा प्रिय है। आपका स्वभाव यद्यपि कल्पतरु जैसा है परन्तु कभी-कभी विमुखों के साथ कठोरता से व्यवहार करते हैं।

नित्यं द्रष्टासि मां तत्र गदापाणिम्-अवस्थितम्।
मत्-दर्शन-महा-आह्लाद-ध्वस्त-कर्म-निबन्धन:।।8।23।10।।

भगवान्‌ने प्रह्लाद जी को भी सुतल लोक में जाकर बलि के साथ सुखपूर्वक रहने की आज्ञा दी। वहाँ तुम्हें सभी कर्म -बन्धन से छुटकार मिलेगा तथा सर्वदा मेरे गदापाणि स्वरूप का दर्शन मिलता रहेगा। भगवान्‌की प्रदक्षिणा कर प्रह्लाद जी सुतल लोक चले गये। भगवान्‌ने शुक्राचार्य को यज्ञ पूरा करने का निर्देश दिया।

कुत: तत्-कर्म-वैषम्यं यस्य कर्मेश्वरो भवान्।
यज्ञेशो यज्ञपुरुष: सर्वभावेन पूजित:।।8।23।15।।
मन्त्रत: तन्त्रत: छिद्रं देश-काल-अर्ह-वस्तुत:।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव।।8।23।16।।

शुक्राचार्य ने कहा कि आप ही समस्त यज्ञ के भोक्ता एवं विधि-विधान प्रदाता हैं। आपके आने से और आपकी पूजा से सबकुछ पूरा हो गया है। समस्त त्रुटियों का निदान आपका नाम संकीर्तन है। फिर भी उन्होंने भगवान् के आदेशानुसार यज्ञ को पूरा किया। इन्द्र को खोया हुआ इन्द्रासन मिल गया। इन्द्र ने वामन भगवान्‌को अपने विमान में सबसे आगे बैठाया तथा समस्त देवों के साथ स्वर्गलोक आ गये।

राजा परीक्षित को शुकदेव जी ने त्रिविक्रम भगवान्‌के अवतार की कथा सुनने की महिमा बतायी।

पारं महिम्न उरु विक्रमतो गृणानो य: पार्थिवानि विममे स रजांसि मर्त्य:।
किं जायमान उत जात उपैति मर्त्य इत्याह मन्त्र-दृक्-ऋषि: पुरुषस्य यस्य।।8।23।29।।
यं इदं देवदेवस्य हरे: अद्‌भुत-कर्मण:।
अवतार-अनुचरितं श्रृण्वन् याति परां गतिम्।।8।23।30।।
क्रियमाने कर्मणि-इदं दैवे पित्र्ये-अथ मानुषे।
यत्र यत्र-अनुकीर्त्येत तत् तेषां सुकृतं विदु:।।8।23।31।।

भगवान्‌की महिमा का पार पाना धरती के समस्त धूलकणों को गिनना जैसा दुस्तर है। मन्त्रद्रष्टा वसिष्ठ जी ने वेदों में कहा है कि "भगवान्‌की समस्त महिमा का गान करने वाला न तो कोई पुरुष हुआ है, न है तथा न कभी होगा।" लीलाधारी वामन भगवान् की महिमा को सुनने वाले को परम गति मिलती है। बड़े-बड़े ऋषियों का अनुभव है कि देवयज्ञ, पितृयज्ञ तथा मनुष्य यज्ञ, या अन्य किसी तरह का अनुष्ठान हो, वामन भगवान्‌की लीला का कीर्तन करने से वह सफलता पूर्वक सम्पन्न होता है।

8।7। छठे मन्वन्तर में श्रीहरि का मत्स्य अवतार।

राजा परीक्षित ने शुकदेव मुनि से अद्भुत कर्म करने वाले भगवान्‌के मछली के रूप में हुआ आदिअवतार की कथा सुनाने की प्रार्थना की।

भगवन् श्रोतुमिच्छामि हरेः अद्भुत-कर्मणः।
अवतार-कथाम्-आद्यां माया-मत्स्य-विडम्बनम्।।8।24।1।।

पिछले कल्प के अन्त में जब ब्रह्मा की रात थी समस्त पृथ्वी नैमित्तक प्रलय के जल में डूब गयी। मत्स्य पुराण के अनुसार पहली वार स्वायंभुव मनु के समय मे मत्स्यावतार लिया था जब हयग्रीव नामक एक दैत्य ने ब्रह्मा से वेद चुरा लिया था। भगवान् ने वेद के उद्धार हेतु ही मछली के रूप में अवतार ग्रहण किया था। विष्णु-धर्मोत्तर पुराण के अनुसार दूसरी वार वे चाक्षुष मन्वन्तर में द्रविड़ देश के राजा सत्यव्रत पर कृपा करने हेतु मत्स्यावतार लिये। यही राजा बाद में सूर्यलोक के राजा विवस्वान्‌का पुत्र बना। उसका नाम श्राद्धदेव हुआ। वही भगवान्‌की कृपा से वर्त मान्‌वैवस्वत मन्वन्तर का मनु है। राजा सत्यव्रत ने एक बार जल पीकर तपस्या की थी। वे कृतमाला नदी में जल से तर्पण कर रहे थे। अञ्जलि के जल में एक छोटी मछली आ गयी। राजा ने उसे नदी के जल में ही डाल दिया। मछली ने विनीत भाव से राजा से प्रार्थना की कि नदी के जल में उसे अन्य जलचरों से खतरे का भय है। अतः आप मेरी रक्षा कीजिये। राजा उसे अपने कमण्डल में आश्रम में ले आये। रात में वह बड़ी हो गयी। तब उसे घड़े में रखा। वहाँ भी वह बढ़ने लगी। उसके उत्तरोत्तर बढते रूप के कारण घड़े से सरोवर में, फिर बड़े-बड़े सरोवरों में तथा अन्ततः समुद्र में डाला। समुद्र में डालते समय मत्स्य भगवान् ने पुनः अपनी रक्षा की गुहार लगाई। राजा ने मोहित होकर उनसे पूछा कि आप हैं कौन? ऐसा जलचर तो मैंने आज तक देखा ही नहीं जो एक ही दिन में इस तरह बड़ा हो जाय।

नूनं त्वं भगवान् साक्षात्-हरिनारायणो-अव्ययः।
अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जलौकसाम्।।8।24।27।।

आप निश्चित रूप से अविनाशी नारायण श्रीहरि हैं। प्राणियों पर कृपा करने के लिए आपने जलचर का यह रूप धारण किया है। ऐसा सुन मत्स्य भगवान्‌ने कहा कि आज से सातवें दिन भूर्भुवादिक तीनों लोक बाढ़ के जल में डूब जायेंगे। उस समय मेरे द्वारा भेजी गयी एक विशाल नाव तुम्हारे समक्ष आयेगी। उस समय सभी औषधियों एवं अन्नादि के बीज लेकर तथा समस्त जीवों के सूक्ष्मस्वरूप के साथ सप्तऋषियों से घिरे हुए तुम नाव पर सवार हो जाना। उस समय ऋषियों के तेज ही प्रकाश का काम करेंगे।

दोधूयमानं तां नावं समीरेण बलीयसा।
उपस्थितस्य मे श्रृङ्गे निबध्नीह महा-अहिना।।8।24।36।।

प्रलय जल में विचरण करते हुए तेज हवा के कारण नाव जब डगमगाने लगेगी तब मैं इसी स्वरूप में तुम्हारे सामने आऊँगा। तुमलोग वासुकी नाग को रस्सी बनाकर नाव को मेरे सींग से बाँध देना। जब तक ब्रह्मा की रात रहेगी तबतक मैं उस नाव को प्रलय जल में घुमाता रहूँगा। उस अवधि में तुम्हारे सभी प्रश्नों का मैं उचित उत्तर देता रहूँगा

जिससे तुम्हें मेरे स्वरूप का वास्तविक ज्ञान हो जायेगा। इतना कह भगवान् लुप्त हो गये। सात दिन के पश्चात्‌जैसा भगवान्‌ने कहा था वैसा ही हुआ।

सोऽनुध्यात: ततो राज्ञा प्रादुरासीत्-महार्णवे।

एकश्रृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजन:। ।8।24।44। ।

राजा के अनवरत ध्यान करने से एक सींग वाली एक लाख योजन लम्बी सुनहरी मछली प्रकट हुई। भगवान्‌के पूर्वनिर्देश का पालन करते हुए राजा ने मत्स्य भगवान्‌की भावभीनि स्तुति की।

तं त्वामहं देववरं वरेण्यं प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय।

छिन्धि-अर्थ-दीपै: भगवन् वचोभि: ग्रन्थीन् हृदय्यान् विवृणु स्वम्-ओक:। ।8।24।53। ।

आप परमपूज्य तथा देवों के आराध्य हैं। मुझ शरणागत को अपने स्वरूप का ज्ञान देकर हृदय की गाँठ को काट डालिये। राजा की प्रार्थना पर भगवान्‌ने आत्मतत्त्व का ज्ञान दिया।

पुराणसंहितां दिव्यां सांख्य-योग-क्रियावतीम्।

सत्यव्रतस्य राजर्षे: आत्मगुह्यम्-अशेषत:। ।8।24।55। ।

भगवान्‌ने राजा सत्यव्रत को अपने रहस्यपूर्ण स्वरूप को बतानेवाला मत्स्यपुराण का उपदेश किया जिसमें प्रकृति के साथ विलक्षण सम्बन्ध का ज्ञान, भक्तियोग तथा नित्य-नैमित्तक क्रियायोग प्रतिपादित है।

। । स्कन्ध आठ पूरा हुआ। ।

श्रीमते रामानुजाय नमः ।
श्रीमत्पराङ्कुश मुनये नमः।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध 9

वन्दउँ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

9।1। सूर्यवंश एवं चन्द्रवंश का परिचय।

सातवें मनु वैवस्वत मनु हैं जो सूर्यलोक के एक प्रमुख देव विवस्वान् के पुत्र हैं। इनका नाम श्राद्धदेव भी है जो विवस्वान्की पत्नी संज्ञा से उत्पन्न हुए हैं। श्राद्धदेव ही सोमवंश तथा सूर्यवंश दोनों के जनक हैं। सोमवंश ही चन्द्रवंश भी कहा जाता है। क्षीराब्धिशायी नारायण को सृष्टि की इच्छा हुई। उनकी नाभि से एक कमल फूल निकला जिस पर उन्होंने स्वयंभू ब्रह्मा को प्रकट किया। ब्रह्मा के एक मानस पुत्र मरीचि थे। मरीचि का विवाह स्वायंभुव की पुत्री देवहूति की पुत्री से हुआ जो कर्दम मुनि तथा देवहूति से उत्पन्न थी। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। कश्यप को प्राचेतस दक्ष की कन्या अदिति से विवस्वान् नामक पुत्र प्राप्त हुआ। प्राचेतस दक्ष की साठ कन्यायें थी जिसमें से सतरह का विवाह उन्होंने कश्यप से कर दिया था। इसकी कथा छठे स्कन्ध में है। विवस्वान् को उनकी पत्नी संज्ञा से श्राद्धदेव नाम के पुत्र हुए। श्राद्धदेव ही वर्तमान समय के मनु हैं जिनको वैवस्वत मनु भी कहते हैं। श्राद्धदेव को अपनी पत्नी श्रद्धा से दस पुत्र प्राप्त हुए जो सूर्यवंश के प्रवर्तक हुए। ये थे इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करुषक, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग तथा कवि।इक्ष्वाकु एवं नृग सूर्यवंश के प्रमुख थे।

श्राद्धदेव से ही चन्द्रवंश के उद्भव की कथा बहुत रोचक है। प्रारम्भ में श्राद्धदेव को सन्तान नहीं थी। सन्तान प्राप्ति हेतु वसिष्ठ जी ने मित्र एवं वरुण को प्रसन्न करने के लिए एक यज्ञ किया। श्राद्धदेव को पुत्र की कामना थी पन्तु उनकी पत्नी श्रद्धा की इच्छा कन्या की थी। श्रद्धा ने यज्ञ के पुरोहित से कन्या प्राप्ति की कामना की। पुरोहित की आहुति के फलस्वरूप कन्या उत्पन्न हुई जिसका नाम इला रखा गया। श्राद्धदेव को सन्तुष्ट न देखकर वसिष्ठ जी ध्यान से यज्ञ के पुरोहित द्वारा सम्पन्न हवन के मन्त्र से अवगत हो गये। उन्होंने भगवान्विष्णु से श्राद्धदेव के लिए पुत्र देने की प्रार्थना की। भगवान्की कृपा से इला कन्या से एक सुन्दर पुरुष में परिवर्तित हो गयी जो सुद्युम्न नाम से जाने गये।

एक बार वे शिकार करते मेरु पर्वत की तलहटी के वन में प्रवेश किये जो शिव-उमा के आनन्द-विहार का क्षेत्र था। शिव के शाप वश जो पुरुष उस क्षेत्र में प्रवेश करता है वह नारी बन जाता है। सुद्युम्न अपने घोड़े तथा सभी परिकरों के साथ नारी स्वरूप में बदल गये। सुद्यम्न एक अत्यन्त सुन्दर नारी में परिणत हो गये थे। चन्द्रमा के पुत्र बुध इनको अपने आश्रम के पास विचरण करते देख इनके रूप से मुग्ध हो गये। दोनों का समागम हुआ और उनसे पुरुरवा नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुरुरवा ही चन्द्रवंश के प्रवर्तक हैं। ब्रह्मा के एक मानस पुत्र अत्रि थे। उनके पुत्र चन्द्रमा थे जिन्हें सोम भी कहा जाता है। सोम बहुत पराक्रमी थे। उन्हें अपने पराक्रम का गर्व हो गया और उन्होंने देवों के गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण कर लिया। इसके कारण देवों से इनका घोर युद्ध ठन गया।

ब्रह्मा के हस्तक्षेप से तारा को उसने वापस कर दिया परन्तु तारा गर्भवती थी और उसके गर्भ से सोम का पुत्र बुध पैदा हुआ। इस तरह से वैवस्वत मनु अर्थात्श्राद्धदेव की पुत्री इला एवं बुध के संयोग से पुरुरवा हुआ। पुरुरवा को ऐल भी कहते हैं। पुरुरवा को उर्वशी के बड़े पुत्र आयु के वंश में ही ययाति हुए जिनके पुत्र यदु तथा पुरु थे। यदु के कुल में वसुदेव तथा देवकी से भगवान् वासुदेव हुए हैं।
अपने को इला नामक नारी के रूप में परिवर्तित हो जाने की स्थिति से उद्विग्न सुद्युम्न ने वसिष्ठ जी का स्मरण किया। वे इनकी स्थिति देख दु:खी हुए। शिव को प्रसन्न कर वसिष्ठ जी ने सुद्युम्न को एक माह नारी तथा दूसरे माह में पुरुष बनने का वर प्राप्त किया। बुढ़ापे में राज्य पुरुरवा को सौंप स्वयं वन में चले गये।

ततो-अयजत्-मनु: देवम्-अपत्य-अर्थम् हरिं प्रभुम्।

इक्ष्वाकु-पूर्व-जान् पुत्रान् लेभे स्वसदृशान् दश।9।2।2।।

सुद्युम्न को वन में जाने के बाद वैवस्वत मनु अर्थात्श्राद्धदेव ने कठोर तपस्या से श्रीहरि को प्रसन्न कर दस पुत्र प्राप्त किये जिसमें इक्ष्वाकु सबसे बड़े थे। इक्ष्वाकु सूर्यवंश के प्रवर्तक हुए। वैवस्वत मनु के दस पुत्रों में से कुछ अपने कर्म के कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य हुए। इसका सातवें स्कन्ध **7-11-35** में भी नारद जी ने उल्लेख किया है कि मनुष्य के कर्म से वर्ण व्यवस्था बनी -

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।

यदन्यत्रापि दृश्येत तत् तेनैव विनिर्दिशेत्।।7।11।35।। किसी वर्ण के एक व्यक्ति का लक्षण अगर दूसरे वर्ण के किसी व्यक्ति में दिखता है तब दोनों एक वर्ण के होते हैं।

9।2।च्यवनऋषि की कथा।

इक्ष्वाकु के एक भाई शर्याति थे। वे वेदों के निष्ठावान विद्वान थे। एक बार उन्होंने अंगिरावंशी मुनियों को यज्ञ की सम्यक विधि बतायी थी। संयोग से वे एक बार अपनी पुत्री सुकन्या के साथ च्यवनऋषि के आश्रम देखने गये। च्यवनऋषि तपस्या में रत थे और उनका शरीर दीमक की मिट्टी से ढक गया था परन्तु दोनों आँखें चमक रही थीं। सुकन्या ने अनजान में कुतुहल वश दोनों चमकती विन्दुओं में कुश डालकर छेद कर दिया। मुनि के कोप से शर्याति तथा सभी साथियों के मल-मूत्र रुक गये। राजा के पूछने पर उनकी बेटी सुकन्या ने अपनी गलती बतायी। मुनि के भाव को समझ कर वे अपनी बेटी को च्यवनऋषि के पास छोड़ घर लौट गये। सुकन्या उनकी सेवा में लगी रही। कालान्तर में एक दिन देवों के वैद्य दोनों अश्विनीकुमार वहाँ आये। मुनि ने अश्विनीकुमार से यौवन प्राप्त कराने का अनुरोध किया। अन्य देवताओं की तरह उन दोनों अश्विनीकुमार को यज्ञ के सोमरस का भाग दिलाने के आश्वासन पर देव-वैद्य ने सिद्धदायक झील के जल में वृद्धावस्था से ग्रस्त च्यवन ऋषि के साथ प्रवेश किया।उस झील के जल में स्नान करने के बाद तीन दिव्य स्वरूप वाले युवक बाहर आये। अपने पति को अश्विनीकुमारों की सहायता से सुकन्या पहचान पायी और उन्हें सुन्दर युवक देख बहुत प्रसन्न हुई। कुछ समय बीतने पर एक यज्ञ करने के उद्देश्य से राजा शर्याति च्यवनऋषि से आशीर्वाद लेने गये। सुकन्या को एक युवा पुरुष के साथ देख पहले तो दु:खी हुए परन्तु बेटी से सबकुछ जानकर प्रसन्न हुए। राजा के यज्ञ में ऋषि ने दोनों अश्विनकुमार को सोमरस का हिस्सा प्राप्त कराया। इन्द्र ने कोपवश अश्विनीकुमार पर वज्र से प्रहार करना चाहा परन्तु च्यवनऋषि ने उनके

हाथ को स्तम्भित कर दिया। उस दिन से अश्विनीकुमार को भी यज्ञों में देवों के समान सोमरस का हिस्सा प्राप्त होने लगा। राजा शर्याति के कुल में ही रेवती नाम की एक कन्या हुई थी जिसका विवाह भगवान्‌कृष्ण के बड़े भाई बलभद्र जी के साथ हुआ था।

9।3। सूर्य वंश के भक्तशिरोमणि राजा अम्बरीष की कथा।

वैवस्वत मनु के दस पुत्रों में इक्ष्वाकु सबसे बड़े थे। इक्ष्वाकु के एक भाई नभग थे। नभग के एक पुत्र नाभाग थे। दीर्घकाल तक तपस्या से नहीं लौटने पर नाभाग के भाईयों ने सब सम्पत्ति आपस में बाँट ली। जब वे तपस्या से लौटे तब भाईयों से पूछने पर पता चला कि उनकी सम्पत्ति के भाग में वृद्ध पिता जी को दिया है। नाभाग पिता की सेवा में लग गये। पिता ने इनको प्रसन्न होकर दो मन्त्र बताया। पिता ने नाभाग को कहा कि अंगिरा के वंशज एक महान यज्ञ कर रहे हैं परन्तु वे छठे दिन भ्रमवश यज्ञ में त्रुटि करेंगे। तुम वहाँ जाओ और मेरे बताये हुए विश्वदेव मन्त्र सुनकर वे प्रसन्न होंगे तथा स्वर्ग जाते समय यज्ञ से प्राप्त सब धन तुम्हें दे देंगे। नाभाग वहाँ गया और जैसा पिता ने बताया था वैसा ही किया। स्वर्ग जाते समय अंगिरा के वंशजो ने यज्ञ का शेष धन नाभाग को दे दिया। जब नाभाग सब धन लेने लगा तब एक काला कलूटा नर प्रकट हुआ और उसने नाभाग को यज्ञ का बचा धन लेने से मना कर दिया। उसने कहा कि यज्ञ का बचा भाग रुद्र का होता है। इसके निर्णय के लिए दोनों नाभाग के पिता के पास गये। पिता ने रुद्र के पक्ष में ही निर्णय दिया। नाभाग ने सब धन रुद्र को दे दिया। नाभाग की नम्रता एवं सत्यवादिता से प्रसन्न रुद्र ने सारा धन उसे ही देकर वहाँ से अन्तर्धान हो गये। नाभाग के दिन अच्छे बीतने लग।सत्यवादी होने से उसके पास अपार सम्पत्ति हो गयी।

इस प्रसंग के प्रात: एवं सायं पाठ से प्रतिभा तथा वेद का ज्ञान मिलता है। साथ ही स्वरूप सिद्धि मिलती है।

नाभागात्-अम्बरीषो-अभूत्-महाभागवत: कृती।
न-अस्पृशद् ब्रह्मशापोऽपि यं न प्रतिहत: क्वचित्।।9।4।13।।

नाभाग के पुत्र अम्बरीष भगवान्‌के बड़े प्रेमी तथा उदार धर्मात्मा थे। ब्राह्मण का शाप उनको छू तक नहीं सका। सातों द्वीपों के राजा होते हुए भी अम्बरीष समस्त सम्पदा को स्वप्नतुल्य क्षणभंगुर समझते थे।

वासुदेवे भगवति तत्-भक्तेषु च साधुषु।
प्राप्तो भावं परं विश्वं येनेदं लोष्टवत् स्मृतम्।।9।4।17।।
स वै मन: कृष्ण-पदारविन्दयो: वचांसि वैकुण्ठ-गुण-अनुवर्णने।
करौ हरे: मन्दिर-मार्जन-आदिषु श्रुतिं चकार-अच्युत-सत्-कथा-उदये।।9।4।18।।
मुकुन्द-लिङ्ग-आलय-दर्शने दृशौ तत्-भृत्य-गात्र-स्पर्शे-अङ्ग-सङ्गमम्।
घ्राणं च तत्-पाद-सरोज-सौरभे श्रीमत्-तुलस्या रसनां तत्-अर्पिते।।9।4।19।।
पादौ हरे: क्षेत्र-पद-अनुसर्पणे शिरो हृषीकेश-पद-अभिवन्दने।
कामं च दास्ये न तु काम-काम्यया यथा-उत्तमश्लोक-जन-आश्रया रति:।।9।4।20।।

भगवान्‌वासुदेव तथा उनके भक्तों में परमप्रेम होने के कारण वे समस्त सम्पत्ति को मिट्टी के ढ़ेले के समान समझते थे। उनका मन भगवान् के चरणारविन्द में, वाणी लीला-कीर्तन में, हाथ भगवान्‌के मन्दिर की सफाई में तथा कान कथा-श्रवण में लगे रहते थे। आँखें मन्दिर एवं भगवान्‌की मूर्ति के दर्शन में, शरीर भगवान् के भक्तों के स्पर्श तथा

उनकी सेवा में, नाक भगवान्पर चढ़ी तुलसी के सुगन्ध में तथा जीभ भगवान्को अर्पित प्रसाद के सेवन में आनन्द लेती थी। उनके पैर तीर्थ भ्रमण में तथा सिर भगवान्की चरण-वन्दना में लगे थे। चन्दन तथा माला आदि अपने लिए नहीं अपितु भगवान्को समर्पण हेतु तथा भगवान्के भक्तों को अर्पित करते थे। अम्बरीष ने प्रजा पालन के हित में यज्ञादि भी किये। धन-सम्पति से आसक्त न होकर निरन्तर भगवत् चिन्तन में मग्न रहते।

तस्मा अदात्-हरिः चक्रं प्रत्यनीक-भयावहम्।
एकान्त-भक्तिभावेन प्रीतो भृत्य-अभिरक्षणम्।।9।4।28।।

राजा अम्बरीष की अनन्य भक्ति से प्रसन्न होकर श्रीहरि ने अपने सुदर्शन चक्र को इनकी पहरेदारी में लगा रखी थी। सुदर्शन चक्र भगवद्भक्तों के विरोधियों के लिए अत्यन्त भयावह है।

आरिराधयिषुः कृष्णं महिष्या तुल्यशीलया।
युक्तः सांवत्सरं वीरो दधार द्वादशीव्रतम्।।9।4।29।।
व्रतान्ते कार्तिके मासि त्रिरात्रं समुपोषितः।
स्नातः कदाचित् कालिन्द्यां हरिं मधुवने-अर्चयत्।।9।4।30।।
महाभिषेक-विधिना सर्व-उपस्कर-सम्पदा।
अभिषिच्य-अम्बर-आकल्पैः गन्ध-माल्य-अर्हण-आदिभिः।।9।4।31।।

अपनी धर्मपरायणा पत्नी के साथ राजा अम्बरीष ने भगवान् कृष्ण की आराधना हेतु एक वर्ष की अवधि का एकादशी व्रत के उपवास के पूर्णान्त पर द्वादशी में ही पारण करने का व्रत किया। व्रत की समाप्ति पर कार्तिक महीनें में तीन रात के उपवास के बाद मधुवन में यमुना के जल में स्नान करने के पश्चात्श्रीहरि के विग्रह का महाभिषेक किया। वस्त्र, आभूषण, चन्दन, माला तथा अर्घ्यादि समर्पित कर विधि-विधान से पूजा सम्पन्न की। कार्तिक में एक वर्ष की अवधि पूर्ण करने के लिए राजा ने अगहन अर्थात्मार्गशीर्ष माह के शुक्ल एकादशी से व्रत का आरम्भ किया। मार्गशीर्ष माह को केशव मास कहते हैं। केशवादि बारह नामों से वर्ष के महीने मार्गशीर्ष से प्रारम्भ कर गिने जाते हैं। यथा - केशव मार्गशीर्ष मास, पौष नारायण मास, माघ माधव मास, फाल्गुन गोविन्द मास, चैत्र विष्णु मास, वैशाख मधुसूदन मास, ज्येष्ठ त्रिविक्रम मास, आषाढ़ वामन मास, श्रावण श्रीधर मास, भाद्रपद हृषीकेश मास, आश्विन पद्मनाभ मास तथा कार्तिक दामोदर मास कहे जाते हैं। एकादशी का पारण द्वादशी में करते हैं। कार्तिक शुक्ल द्वादशी को राजा अम्बरीष ने ब्राह्मणों को भोजन तथा दक्षिणा से तृप्त करने के बाद स्वयं पारण करने को तैयार थे। ठीक उसी समय अनायास दुर्वासा मुनि का पदार्पण हुआ। राजा ने उन्हें भोजन करने का अनुरोध किया। राजा अम्बरीष का निमन्त्रण स्वीकार कर दुर्वासा मुनि यमुना स्नान करने गये। द्वादशी मात्र आधे मुहूर्त अर्थात बारह मिनट शेष थी। पुरोहितों के परामर्श पर राजा अम्बरीष ने तीर्थ से ही व्रत का पारण कर लिया। दुर्वासा मुनि जब लौटे तब वे योगबल से यह जान गये कि राजा ने पारण कर लिया है। क्रोध के आवेश में दुर्वा सा ने अपनी एक जटा से कृत्या नामक प्रलय की अग्नि जैसी विकराल मूर्ति उत्पन्न की। राजा अम्बरीष पर प्रहार करने के लिए हाथ में त्रिशूल लिए अपने पैरों से पृथ्वी को कँपाती हुई कृत्या उनके पास आयी परन्तु निर्भय होकर राजा अम्बरीष अपने स्थान पर खड़े रहे।

प्राक्-दिष्टं भृत्यरक्षायां पुरुषेण महात्मना।

ददाह कृत्यां तां चक्रं क्रुद्ध-अहिम्-इव पावकः। ।9।4।48।।

परमपुरुष परमात्मा का सुदर्शन चक्र पहले से भक्त अम्बरीष की रक्षा में वहाँ उपस्थित था। जैसे आग सर्प को जला देती है उसी तरह भगवान्के चक्र ने कृत्या को जला कर क्षार कर दिया। दुर्वासा चक्र को अपनी ओर आते देख भाग खड़ा हुए। जहाँ जाते थे चक्र उनका पीछा कर रहा था। शरण माँगते ब्रह्मा के पास गये। वहाँ से निराश शंकर के पास गये। अपनी लाचारी बताकर उन्होंने दुर्वासा को श्रीहरि के पास भेज दिया।

ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ।

वैकुण्ठ-आख्यम्यत्-अध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह। ।9।4।60।।

निराश दुर्वासा लक्ष्मीपति जहाँ लक्ष्मी के साथ नित्य निवास करते हैं उसी वैकुण्ठलोक में गये। हताश उनके चरणों में गिर पड़े तथा भगवान् के एक परमप्रिय भक्त के प्रति किये गये अपराध के लिए क्षमा याचना की।

अजानता ते परमानुभावं कृतं मयाघं भवतः प्रियाणाम्।

विधेहि तस्य-अपचितिं विधातः मुच्येत यत्-नाम्नि-उदिते नरकोऽपि। ।9।4।62।।

आपके नाम के उच्चारण मात्र से ही नरक से उद्धार होता है। हमने आपके परम प्रभाव को भूलकर आपके प्रिय भक्त के साथ जो अपराध किया है उससे मेरी रक्षा कीजिये, प्रभु ! ऐसा सुनकर भगवान्ने कहा -

अहं भक्त-पराधीनो हि-अस्वतन्त्रः इव द्विज।

साधुभिः ग्रस्त-हृदयो भक्तैः भक्त-जनप्रियः। ।9।4।63।।

न अहम्-आत्मानम्-आशासे मद्भक्तैः साधुभिः विना।

श्रियं च-आत्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिः अहं परा। ।9।4।64।।

मैं अपने सरलचित्त भक्तों के वश में हूँ। उससे स्वतन्त्र नहीं हूँ। यही नहीं, मैं तो अपने भक्तों के भक्त के अधीन रहता हूँ। मुझपर आश्रित भक्त को छोड़कर न अपने-आप को और न अपनी पत्नी लक्ष्मी जी को चाहता हूँ।

ये दार-आगार-पुत्र-आप्तान् प्राणान् वित्तम्-इमं परम्।

हित्वा मां शरणं याताः कथं तान्त्यक्तुम्-उत्सहे। ।9।4।65।।

मयि निर्बद्ध-हृदयाः साधवः समदर्शनाः।

वशे कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्-स्त्रियः सत्-पतिं यथा। ।9।4।66।।

जो अपनी पत्नी, घर, पुत्र, सम्बन्धियों, प्राण तथा धन का तिरस्कार करके मेरी शरण में आ जाता है उसको छोड़कर मैं कैसे प्रसन्न रह सकता हूँ ? जैसे सति-साध्वी नारी अपनी सेवा से सदाचारी पति को वश में कर लेती है उसीतरह अपने हृदय के प्रेम से बाँध कर समदर्शी भक्त मुझे अपने वश में कर लेता है।

मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्य-आदि चतुष्टयम्।

नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविद्रुतम्। ।9।4।67।।

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं तु-अहम्।

मत्-अन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनाक्-अपि। ।9।4।68।।

मेरी सेवा में आसक्त मेरे भक्त सालोक्य-सारूप्य-सामीप्य-सायुज्य जैसे अविनाशी चारों मुक्ति की भी उपेक्षा कर देते हैं। समय से नष्ट हो जाने वाले भौतिक सुख को कौन पूछे! मेरे प्रेमी भक्त मेरे हृदय हैं तथा मैं उनका हृदय हूँ। मेरे अतिरिक्त वे और किसी को नहीं जानते और मैं भी उनको छोड़कर किसी अन्य को नहीं जानता।

ब्रह्मन् तत् गच्छ भद्रं ते नाभाग-तनयं नृपम्।
क्षमापय महाभागं ततः शान्तिः भविष्यति।।9।4।71।।

हे दुर्वासा जी ! आपका कल्याण हो। आप नाभागनन्दन परमभाग्यशाली राजा अम्बरीष से जाकर क्षमा माँगिये। आपको वहीं शान्ति मिल सकेगी। भगवान् का आदेश सुन दुर्वासा मुनि लौटकर राजा अम्बरीष के पास आये और उनके पैरों पर गिर पड़े। दुर्वासा जी की दुर्दशा देख राजा ने सुदर्शन चक्र की स्तुति शुरु कर दी।

त्वम् अग्निः भगवान् सूर्यः त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः।
त्वम्आपः त्वं क्षितिः व्योम वायुः मात्र-इन्द्रियाणि च।।9।5।3।।
सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्र-आर-अच्युत-प्रिय।
सर्व-अस्त्र-घातिन् विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते।।9।5।4।।

हे भगवान् सुदर्शन ! आप ही अग्नि, सूर्य, नक्षत्राधिपति चन्द्र, जल, धरती, आकाश, वायु तथा पञ्चतन्मात्रा के साथ समस्त इन्द्रियाँ हैं। अच्युत भगवान्के प्यारे, हजार दाँत वाले, सभी शस्त्रास्त्रों को नाश करने वाले तथा पृथ्वी के रक्षक सुदर्शन प्रभु ! आपको नमस्कार करता हूँ। आप दुर्वासा जी की रक्षा करें।

त्वं धर्मः त्वम्-ऋतं सत्यं त्वं यज्ञो-अखिल-यज्ञ-भुक्।
त्वं लोकपालः सर्वात्मा त्वं तेजः पौरुषं परम्।।9।5।5।।
नमः सुनाभ-अखिल-धर्म-सेतवे हि-अधर्म-शील-असुर-धूम-केतवे।
त्रैलोक्य-गोपाय विशुद्ध-वर्चसे मनो-जवाय-अद्भुत-कर्मणे गृणे।।9।5।6।।

आप धर्म, मधुर तथा सत्यवाणी, यज्ञ एवं यज्ञ के अधिपति, लोकस्वरूप एवं लोकरक्षक तथा परमपुरुष भगवान्के तेज हैं। सुन्दर नाभि वाले, धर्म के रक्षक, पापी असुरों को भस्म करने वाले अग्नि, तेजोमय, तीनों लोक के रक्षक, मन के वेगवाले तथा अद्भुत कर्म करने वाले, आपको नमस्कार है।

त्वत्-तेजसा धर्ममयेन संहृतं तमः प्रकाशः च धृतो महात्मनाम्।
दुरत्ययः ते महिमा गिरां पते त्वत्-रूपम्-एतत् सत्-असतपरावरम्।।9।5।7।।
यदा विसृष्टः त्वम्-अनञ्जनेन वै बलं प्रविष्टोऽजित दैत्यदानवम्।
बाहू-उदर-ऊरु-अङ्घ्रि-शिरोधराणि वृक्णन् अजस्रं प्रधने विराजसे।।9।5।8।।

वेदवाणी के स्वामी ! आपके धर्ममय तेज से अन्धकार दूर होता है।आप ही सूर्य तथा अन्य महापुरुषों के प्रकाश को संरक्षण देते हैं। ऊँच-नीच तथा छोटे-बड़े के भाव से ग्रस्त यह संसार आपका ही स्वरूप है। आपकी महिमा अपरमपार है। आप अजेय हैं। जिस समय निरंजन भगवान् युद्धक्षेत्र में आपका सन्धान करते हैं उस समय आप दैत्य तथा दानव की भुजा, उदर, जंघा, चरण एवं गर्दन आदि काटकर अत्यन्त शोभायमान होते हैं।

स त्वं जगत्-त्राण खलप्रहाणये निरूपितः सर्वसहो गदाभृता।
विप्रस्य च अस्मत्-कुलदैव-हेतवे विधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः।।9।5।9।।

आप विश्व के रक्षक हैं। रणक्षेत्र में आप सबका प्रहार सहते हैं परन्तु आपका कुछ नहीं बिगड़ता। गदाधारी भगवान् ने दुष्टों के नाश के लिए ही आपको नियुक्त किया है। हमारे कुल के भाग्योदय के लिए आप दुर्वासा जी की रक्षा करें। आपका हम पर महान्अनुग्रह होगा।

यदि-अस्ति दत्तम्-इष्टं वा स्वधर्मो वा सु-अनुष्ठितः।
कुलं नो विप्रदैवं चेद्द्विजो भवतु विज्वरः। ।**9।5।10**। ।
यदि नो भगवान्प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः।
सर्वभूतात्म-भावेन द्विजो भवतु विज्वरः। ।**9।5।11**। ।

मेरे यज्ञ, तप, धर्म, दान तथा ब्राह्मणों को सम्मान देने के पुण्य को स्मरण कर दुर्वासा जी के ताप को दूर करें। समस्त गुणों के एकमात्र आश्रय भगवान्मुझ पर प्रसन्न हों। अगर श्रीहरि को सभी प्राणियों की आत्मा के रूप में देखी हो तब दुर्वासा जी के जलन की पीड़ा आप दूर करें। राजा की स्तुति से सुदर्शन जी शान्त हो गये तथा दुर्वा सा मुनि को राहत मिली। वे राजा अम्बरीष का गुणगान करने लगे।

अहो अनन्तदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे।
कृतागसोऽपि यद् राजन् मङ्गलानि समीहसे। ।9।5।14। ।
यन्नाम-श्रुति-मात्रेण पुमान् भवति निर्मलः।
तस्य तीर्थपदः किं वा दासानाम्-अवशिष्यते। ।9।5।16। ।

दुर्वासा मुनि ने कहा कि भगवान्के भक्त की कितनी महानता है यह आज हमने देखी। मेरे अपराध करने के बाद भी आपने मेरी मंगल-कामना ही की। जिनका नाम सुनकर ही चित्त निर्मल हो जाता है वही तीर्थपाद श्रीहरि के चरणकमल के जो दास हैं उनको कौन सी वस्तु अप्राप्य रह जाती है? जब से दुर्वासा मुनि को चक्र ने खदेरा था तब से राजा अम्बरीष के पास लौटकर आने तक में एक वर्ष बति गया। राजा मात्र तीर्थ जल पर ही थे। लौटने पर दुर्वासा मुनि को भोजन से तृप्त कराने के बाद ही राजा ने स्वयं प्रसाद ग्रहण किया।इस कथा के कीर्तन से श्रीहरि की भक्ति मिलती है।

9।4। सूर्य वंश में अवतरित भगवान् राम की कथा।

वैवस्वत मनु के बड़े पुत्र इक्ष्वाकु थे। इक्ष्वाकु के सौ पुत्र थे जिसमें विकुक्षि, निमि तथा दण्डक सबसे बड़े थे। विकुक्षि का पुत्र देवों की ओर से असुरों के युद्ध में विख्यात हो गये थे। वे पुरञ्जय, इन्द्रवाह तथा ककुत्स्थ नाम से भी जाने गये। युद्ध में इन्द्र को उन्होंने अपना वाहन बनाया था इसीकारण इन्द्रवाह हुए। इन्द्र वृषभ के रूप में उनके वाहन हुए थे इसलिए उनका नाम ककुत्स्थ पड़ा था। ककुथ वृषभ के गर्दन के पास सबसे ऊँचा भाग को कहते हैं। ककुथ पर बैठकर युद्ध करने के कारण ककुत्स्थ हुए। इसी कुल में मान्धाता चक्रवर्ती राजा हुए थे जिनकी उत्पत्ति पिता के दाहिनी कोख से हुई थी। प्यास से त्रस्त उनके पिता ने पुत्र की कामना से इन्द्र- यज्ञ का जल पी लिया था जो उनके पत्नी के लिए अभिमन्त्रित था। इसीलिए उनकी कोख से मान्धाता जन्मे थे। वे दूध के लिए रो रहे थे। इन्द्र ने इन्हें रोने से मना किया तथा इनका पालन अपनी तर्जनी अँगुली चुसा कर किया था।

मान्धाता के प्रतापी पुत्र मुचुकुन्द थे। मान्धाता ने अपनी पचास पुत्रियों का विवाह सौभरि मुनि से किया था। मान्धाता के कुल में ही त्रिशंकु हुए थे जिनको विश्वामित्र सदेह स्वर्ग भेज रहे थे।
इसी कुल में राज सगर हुए। सगर के साठ हजार पुत्र अश्वमेध यज्ञ के घोड़ा के कारण कपिल मुनि के क्रोध से भस्मीभूत हो गये थे। दूसरी पत्नी से राजा सगर के पुत्र असमंजस थे और उनके पुत्र अंशुमान राजा सगर की सेवा में लगा रहता था। **तत्रासीनं मुनिं वीक्ष्य कपिल-आख्यम्-अधोक्षजम्।9।8।21।।**
अपने साठ हजार भाईयों को खोजते अंशुमान भगवान्विष्णु के अंश से अवतरित कपिल मुनि के आश्रम पर अपने भाईयों के राख की ढ़ेर देखी। मुनि को प्रसन्न कर वे यज्ञ का घोड़ा वापस लाये। कपिल मुनि के आदेश से गंगा को पृथ्वी पर लाने के लिए अंशुमान घोर तपस्या करते-करते परमपद चले गये। बाद में अंशुमान के पुत्र दिलीप ने अपने पूर्वजों के कल्याण के लिए गंगा जी को पृथ्वी पर लाने हेतु घोर तपस्या की परन्तु अंशुमान की तरह वे भी परमपद हो गये। दिलीप के पुत्र भगीरथ की तपस्या से गंगा प्रसन्न होकर प्रकट हुई। भगीरथ का लक्ष्य सुनकर गंगा जी ने दो शंका व्यक्त की। मेरे प्रवाह में इतना बल है कि पृथ्वी प्रवाह के वेग का सहन नहीं कर पायेगाी और मैं पृथ्वी को छेदकर रसातल चली जाऊँगी। दूसरा कि पापियों के स्नान से मेरा स्वरूप पाप संग्रह के कारण धूमिल हो जायेगा और संग्रहित पाप समूह से मैं कैसे मुक्त हो सकूँगी। दूसरी शंका के निराकरण में राजा भगीरथ ने कहा कि -

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः।
हरन्ति-अघं ते-अङ्ग-सङ्गात्तेष्वास्ते हि-अघ-भित्-हरिः।।9।9।6।।

ऐसे सन्त जिन्होंने सांसारिक कामनाओं से संन्यास ले लिया है और भगवान्में लीन रहते हुए जगत का कल्याण करते हैं। उनके हृदय में अघासुर का नाश करने वाले श्रीहरि रहते हैं, अतः उनके स्नान करने से आपके सभी पाप नष्ट हो जायेंगे। गंगा जी की पहली शंका में राजा भगीरथ ने कहा कि शंकर जी आपके प्रवाह के वेग को सहने में सर्व दा समर्थ हैं। तदुपरान्त राजा भगीरथ ने तपस्या करके शंकर जी को प्रसन्न किया।

तथेति राज्ञाभिहितं सर्वलोकहितः शिवः।
दधार-अवहितः गङ्गां पादपूत जलां हरेः।।9।9।9।।

गंगा जी का जल भगवान्के चरण के स्पर्श से अति पवित्र हो गया है। शिव ने लोकहित में भगवान्के चरणोदक स्वरूपी गंगा को अपने सिर पर धारण करने की सहमति राजा भगीरथ को दे दी। शिव के सिर पर गंगा अवतरित होकर पृथ्वी पर प्रकट हुई। राजा के रथ का अनुसरण करते हुए गंगा जी ने उनके पूर्वजों के भस्म की ढ़ेर तक जाकर उनलोगों का उद्धार कर दिया।

न हि-एतत् परमाश्चर्यं स्वर्धुन्याः यत्-इह-उदितम्।
अनन्त-चरणाम्भोज-प्रसूताया भवच्छिदः।।9।9।14।।
सन्निवेश्य मनो यस्मिन् श्रद्धया मुनयोऽमलाः।
त्रैगुण्यं दुस्त्यजं हित्वा सद्यो याताः तत्-आत्मताम्।।9।9।15।।

शुकदेव जी ने कहा कि इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि भगवान्के उन चरणों से निकलने वाली गंगा में उद्धार की शक्ति समाहित हो गयी है। उन्हीं श्रीचरणों का श्रद्धा से ध्यान कर ऋषिगण निर्मल-चित्त होकर संसार के त्रिगुणात्मक

बन्धन को नष्ट करते हुए परम गति को प्राप्त कर लेते हैं। भगीरथ के कुल में खट्वांग हुए जिनका जीवन देवताओं के तरफ से असुरों से युद्ध में बीत गया था।

इति व्यवसितो बुद्धया नारायण-गृहीतया।
हित्वा-अन्यभावम्-अज्ञानं ततः स्वं भावमाश्रितः। ।9।9।48। ।
यत् तद् ब्रह्म परं सूक्ष्मम्-अशून्यम्शून्य-कल्पितम्।
भगवान् वासुदेव-इति यं गृणन्ति हि सात्वताः। ।9।9।49। ।

जीवन के अन्तिम क्षण में भगवान्‌की सेवा से प्राप्त बुद्धि के कारण अज्ञानमय शरीर से समवन्ध त्यागने में राजा खट्वांग सफल हुए तथा भगवान्‌में चित्त को लगाकर परमगति को प्राप्त किये। जो सूक्ष्म से सूक्ष्म हैं उस भगवान्‌को अज्ञानी शून्य कहते हैं। शुद्ध भक्तगण वासुदेव भगवान्‌के स्वरूप को ही धारण करते हैं। राजा खट्वांग के पुत्र दीघबाहु, उनके पुत्र रघु, रघु के अज, अज के दशरथ तथा राजा दशरथ के भगवान्‌राम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न चार पुत्र हुए।

तस्यानुचरितं राजन् ऋषिभिः तत्त्वदर्शिभिः।
श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेः मुहुः। ।9।10।3। ।
गुरु-अर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्म-पद्भ्यां प्रियायाः।
पाणि-स्पर्श-अक्षमाभ्यां मृजित-पथरुजो यो हरीन्द्र-अनुजाभ्याम्। ।
वैरुप्यात्-शूर्पणख्याः प्रियविरह-रुषा-आरोपित-भ्रू-विजृम्भ-त्रस्त-अब्धिः
बद्धसेतुः खल-दव-दहनः कोसलेन्द्रो-अवतात्नः। ।9।10।4। ।

शुकदेव जी ने कहा कि पहले आपने सन्तों से सीतापति भगवान्‌राम की कथा कई बार सुनी है, अतः इसका वर्ण न संक्षेप में करूँगा। प्रारम्भ में शुकदेव जी ने रामायण के मुख्य लीलओं के सार के साथ कोशलेन्द्र भगवान् से उपस्थित सभी श्रोता एवं कथाकार की रक्षा करने की विनती की। पिता के वचन को सत्य करने के लिए रामजी वन-वन में सीता जी के साथ घूमते रहे। उनके कोमल चरण को सीता जी के हाथ का स्पर्श भी कठोर लगता था। जब वे थकते तब हनुमान जी तथा लक्ष्मण जी उनकी चरण-सेवा करते। शूर्पणखा के नाक-कान काटकर विरूप करने के कारण प्रियतमा सीता जी से वियोग सहना पड़ा। वियोग के दु:ख में जब क्रोध से इनकी भौंहें तन गयी तब समुद्र भयभीत हो गया। सेतु निर्माण करके लंका गये एवं राक्षसों को दावाग्नि की तरह क्षार करने वाले भगवान्‌कोसलेन्द्र हम सबों की रक्षा करें। विश्वामित्र के यज्ञ में लक्ष्मण के साथ मारीच आदि घोर निशाचरों के आतंक का अन्त किया। जैसे गजराज खेल-खेल में ईख को तोड़ देता है उसी तरह से तीन सौ व्यक्तियों से ढो कर लाये गये महान धनुष को बीच से इन्होंने तोड़ दिया।

जित्वानुरूप-गुणशील-वयोऽङ्ग-रूपां सीताभिधां श्रियम्-उरसि-अभिलब्धमानाम्।
मार्गे व्रजन् भृगुपतेः व्यनयत्प्ररूढ़ं दर्पं महीम्-अकृत यः त्रिः अराज-बीजाम्। ।9।10।7। ।

गुण, शील, अवस्था, शरीर के सौन्दर्य में सर्वथा भगवान् राम के समरूप उनके वक्षस्थल पर सुशोभित होने वाली लक्ष्मी स्वरूपिनी सीता जी को प्राप्त किया। अयोध्या लौटने के रास्ते में राम जी ने इक्कीस बार धरती से क्षत्रियों

को सबीज नष्ट करने वाले परशुराम जी के अहंकार का नाश किया।

जघ्ने चतुर्दश-सहस्रम्-अपारणीय-कोदण्डपाणिः अटमान उवास कृच्छ्रम्।।9।10।9।।

दग्धवा-आत्म-कृत्य-हत-कृत्यम्-अहन् कबन्धं सख्यं विधाय कपिभिः दयिता-गतिं तैः।9।10।12।।

पिता के वचन से वन में गये हुए कोदण्डपाणि भगवान्राम ने खर, त्रिसिरा, दूषण तथा असुरों की चौदह हजार सेना के साथ अन्त किया। रावण से भेजे गये अद्भुत मृग के रूप के मारीच का पीछा करते हुए भगवान्ने उसका वध किया। आश्रम से दोनों भाईयों की अनुपस्थिति में सीता जी को रावण चुराकर ले गया। रावण से मारे गये अपने प्रिय जटायु का दाह संस्कार करके रामजी ने कबन्ध को मारा।बानरों से मिलकर सीता जी की खोज की व्यवस्था की। इनके चरण की पूजा ब्रह्मा तथा शंकर करते हैं। बालि वध के पश्चात्सीता जी का पता लगने पर बानरी सेना के साथ समुद्र तट गये। इनके क्रोध से भयभीत समुद्र ने नरवेष में आकर भगवान्की पूजा एवं स्तुति की।

न त्वां वयं जडधियो नु विदाम भूमन् कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम्।

यत्-सत्वतः सुरगणा रजसः प्रजेशा मन्योश्च भूत-पतयः स भवान् गुणेशः।।9।10।14।।

समुद्र ने कहा - जड़ बुद्धि होने के कारण जगत्के स्वामी को हम पहचान नहीं सके। आप सत्त्व गुण से देवताओं की, रजोगुण से प्रजापतियों की तथा तमोगुण से भूतपति शंकर की रचना करते हैं। आपकी जैसी इच्छा हो उस तरह समुद्र को पारकर लंका जायें परन्तु इस पर एक सेतु निर्माण कर देने से आपकी कीर्ति का सदा गुणगान होता रहेगा। सेतु निर्माण कर भगवान्ने सुग्रीव, नील, हनुमान तथा विभीषण के साथ पहले ही हनुमान जी से जलायी गयी लंका में प्रवेश किया। लंका को छिन्न भिन्न कर असुरों का नाश किया तथा सीता जी को स्पर्श करने के दोष से श्रीहीन रावण का वध किया। उसकी पत्नियाँ युद्धक्षेत्र में विलाप करने लगी। भगवान्के आदेश से विभीषण ने रावण की अन्त्येष्टि की।

ततो ददर्श भगवान् अशोक-वनिकाश्रमे।
क्षामां स्वविरह-व्याधिं शिंशपा-मूलमास्थिताम्।।9।10।30।।
रामः प्रियतमां भार्यां दीनां वीक्ष्य-अन्वकम्पत।
आत्म-सन्दर्शन-आह्लाद-विकसत्-मुख-पङ्कजाम्।।9।10।31।।

भगवान्ने वियोग से दुबली-पतली हो गयी सीता जी को अशोकवन की एक कुटिया में बैठा पाया। भगवान्को सामने देख सीता जी का मुखकमल आह्लादित हो उठा।विभीषण को एक कल्प की आयु देकर लंका का राजा बना दिया। विमान पर सवार होकर भगवान्सीता जी के साथ हनुमान, सुग्रीव तथा अपने भाई लक्ष्मण के साथ वनवास की अवधि समाप्त होते ही अयोध्या आ गये।

उपगीयमान-चरितः शतधृति-आदिभिः मुदा।
गोमूत्र-यावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलाम्बरम्।।9।10।34।।
महाकारुणिको-अतप्यत्-जटिलं स्थण्डिलेशयम्।
भरतः प्राप्तम्-आकर्ण्य पौर-अमात्य-पुरोहितैः।।9।10।35।।
पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रत्युद्यतो-अग्रजम्।

नन्दिग्रामात् स्वशिबिराद्गीत-वादित्र-निःस्वनैः।।9।10।36।।

रास्ते भर ब्रह्मा तथा देवताओं ने भगवान्के विमान के ऊपर फूल बरसाये तथा उनकी लीला की गीत सुनाते रहे। अयोध्या आकर भाई भरत को बल्कल वस्त्र में तथा गोमूत्र में पके जौ खाकर तपस्वी की भाँति सिर पर जटा बढ़ाकर जमीन पर शयन करते हुए देखकर दुःखी हुए। भगवान्का ह्दय भर आया। जब भरत जी को राम जी के आगमन की सूचना मिली तब भगवान्की पादुका सिर पर रखकर नागरिकों, मन्त्रियों तथा पुरोहितों एवं बाजे-गाजे के साथ नन्दिग्राम से अयोध्या के लिए प्रस्थान किये।

पारमेष्ठ्यानि-उपादाय पण्यानि-उच्च्व-अवचानि च।

पादयोः न्यपतत् प्रेम्णा प्रक्लिन्न-ह्दय-ईक्षणः।।9।10।39।।

पादुके न्यस्य पुरतः प्राञ्जलिः वाष्पलोचनः।

तमाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन् नेत्रजैः जलैः।।9।10।40।।

भगवान्के स्वागत में बहुमूल्य रत्नादि लिए परिकरों से घिरे भरत जी भगवान्के पास पहुँचते ही आँखों से अविरल आँसू बहाते उनके चरणों पर गिर पड़े। भगवान्के सामने पादुका रख भगवान् ने रोते हुए भरत जी को अपनी दोंनो भुजाओं से बाँध कर अपनी आँसू से नहा दिया।माताओं, पुरोहितों तथा नागरिकों से मिलने के बाद कुलगुरु वसिष्ठ जी ने भगवान्का विधिवत राज्याभिषेक किया।

त्रेतायां वर्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत्।

रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूत-सुखावहे।। 9।10।52।।

न-आधि-व्याधि-जरा-ग्लानि-दुःख-शोक-भय-क्लमाः।

मृत्युः च अनिच्छतां नासीद् रामे राजन् अधोक्षजे।।9।10।54।।

परमधर्मज्ञ समस्त प्राणियों के कल्याण करनेवाले राम जी जब राजा हुए तब था तो त्रेता युग परन्तु ऐसा लगता था कि मानों सत्युग हो।सभी धर्मरत तथा सुखी थे। इन्द्रियातीत भगवान्राम के राज्य में किसी को शारीरिक-मानसिक तथा प्रकृति प्रदत्त कष्ट, रोग, बुढ़ापा, दुर्वलता, शोक, भय, थकावट आदि के दुःख नहीं थे।

प्रेम्णा-अनुवृत्त्या शीलेन प्रश्रय-अवनता सती।

धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीता-अहरत्मनः।।9।10।56।।

सतीशिरोमणि सीता जी अपने पति के ह्रदय का भाव जानकर प्रेम से, सेवा से, शील से, विनम्रता से, बुद्धि तथा लज्जा आदि गुणों से भगवान् राम का चित्त चुराती रहती थीं।

वसिष्ठ जी को आचार्य बनाकर भगवान्राम ने यज्ञ किये तथा समस्त भूमि एवं सम्पत्ति पुरोहितों को दान कर दी। शरीर पर वस्त्र तथा कुछ आभूषण ही रामजी एवं सीता जी के पास बचे। बाकी सभी दान हो चुके थे। बाद में पुरोहितों ने प्रसन्न होकर समस्त दान भगवान्राम जी ही को समर्पित कर दिया। एक बार रामजी रात में चुपके से वेष बदल कर प्रजा की स्थिति समझने हेतु घूम रहे थे। एक व्यक्ति को अपनी पत्नी सीता जी के बारे में कहते सुना कि मैं तुम्हारे जैसा कुलटा को घर में कैसे रख सकता, भले ही रामजी दूसरे के घर में रहने वाली सीता जी को रख लें। भगवान्ने लोकापवाद के भय से सीता जी का परित्याग कर दिया।गर्भवती सीता जी वाल्मीकि मुनि के आश्रम में चली गयीं। वहाँ कुश एवं लव दो जुँड़वा पुत्र हुए। दोनों का जातकर्म तथा शिक्षा-दीक्षा वाल्मीकि मुनि ने स्वयं

किया। भगवान्‌के अन्य तीन भाईयों को भी दो-दो पुत्र प्राप्त हुए। भरत जी ने कपटी गन्धर्वो का अन्त कर उससे प्राप्त सभी धन भगवान् राम को समर्पित कर दिये। शत्रुघ्न जी ने लवणासुर का अन्तकर मथुरा का राजकाज सम्भाला।

मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता।

ध्यायन्ती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह।9।11।15।।

कालान्तर में सीता जी दोनों पुत्रों को वाल्मीकि मुनि के संरक्षण में छोड़कर स्वयं भगवान्‌राम के श्रीचरणों का ध्यान करते हुए धरती के भीतर समा गयीं।सीता जी के महाप्रयाण से भगवान्‌राम दु:खी हुए। तेरह हजार वर्षो तक अग्निहोत्र यज्ञ करते हुए धराधाम पर निवास किये।

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकै:।

स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योति: अगात् तत:।।9।11।19।।

दण्डकारण्य के काँटे चुभने वाले श्रीचरणकमल को अपने भक्तों के हृदय में बैठा कर तेजपुंज प्रभु ज्योति की सीमा से परे अपने धाम वैकुण्ठ लोक को सिधार गये।

नेदं यशो रघुपते: सुर-याचज्या-आत्त-लीला-तनो: अधिक-साम्य-विमुक्त-धाम्न:।

रक्षो-वधो जलधि-बन्धनम्-अस्त्रपूगै: किं तस्य शत्रुहनने कपय: सहाया:।।9।11।20।।

शुकदेव जी राजा परीक्षित को भगवान्‌राम की महिमा बताते हुए कहते हैं कि उनके समान तो कोई है ही नहीं और बढ़कर कहाँ से होगा ! यह सब उनकी लीला थी कि उन्होंने देवताओं की प्रार्थना पर मनुष्य का देह धारण किया और बानरों की सहायता से समुद्र पर सेतु बाँध कर राक्षसों का अन्त किया।

यस्य-अमलं नृप-सद:सु यशो-अधुना-अपि गायन्ति-अघ-घ्नम्-ऋषयो दिक्-इभ-इन्द्र-पट्टम्।

तं नाकपाल-वसुपाल-किरीट-जुष्ट-पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये।।9।11।21।।

दसवें अध्याय में शुकदेव जी ने भगवान् राम की लीला का सार सुनाते हुए उनसे रक्षा करने की प्रार्थना करते हैं। इस ग्यारहवें अध्याय में शुकदेव जी भगवन्‌राम की शरणागति लेते हुए कहते हैं कि इनका नाम ही समस्त पापों को दूर करता है। आज भी ऋषिगण राजसभाओं में इनकी लीला का गान करते हैं। स्वर्ग के देवगण तथा पृथ्वी के समस्त राजागण भगवान्‌राम के चरणों में अपने मुकुट रख देते हैं। कोसलदेश के समस्त निवासी जिन्होंने उनके दर्श न किये, उनकी सेवा की, उनका स्पर्श या अनुगमन किया वे सब-के-सब भगवान्‌की सेवा करने उनके साथ वैकुण्ठ लोक गये। भगवान् राम की लीला कथा को सुननेवाले के समस्त कर्म-बन्धन नष्ट हो जाते हैं।

9।5। राजा इक्ष्वाकु के पुत्र निमि एवं निमि से मिथिला-वंश का उद्भव।

वैवस्वत मनु के बड़े पुत्र इक्ष्वाकु थे। इक्ष्वाकु के सौ पुत्र थे जिसमें विकुक्षि, निमि तथा दण्डक सबसे बड़े थे। निमि एक स्वरूपसिद्ध जीव थे। एक बार इन्होंने एक यज्ञ करना चाहा और कुलगुरु वसिष्ठ को यज्ञ कराने के लिए आमन्त्रित किया। वसिष्ठ जी को इन्द्र के यज्ञ में जाना था। इसलिए इन्होंने राजा निमि को वहाँ से लौटकर आने तक की प्रतीक्षा करने को कहा। जीवन की क्षणभंगुरता से अवगत राजा निमि ने दूसरे पुरोहित से यज्ञ प्रारम्भ करा दिया। वसिष्ठ जी जब लौटकर आये तब निमि को दूसरे पुरोहित से यज्ञ कराते देख क्रोध में निमि की मृत्यु हो जाने का शाप दे दिया। निमि ने भी वसिष्ठ जी को मर जाने का प्रतिशाप दिया। दोनों शरीर विहीन हो गये। ब्रह्मा ने

उर्वशी पर मोहित होने वाले मित्र एवं वरुण के वीर्य से वसिष्ठ को पुन: नया शरीर दे दिया। निमि के पुरोहितों ने उनके शरीर को सुरक्षित रखा तथा यज्ञ पूरा होने पर देवों से निमि को जीवित होने का वरदान माँगा। देवों ने प्रसन्न होकर राजा निमि को जीवित करना चाहा परन्तु निमि ने शरीर धारण करना नहीं चाहा।

यस्य योगं न वाञ्छन्ति वियोग-भय-कातरा:।

भजन्ति चरणाम्भोजं मुनयो हरिमेधस:।।9।13।9।।

राजा निमि ने क्षणभंगुर शरीर लेने से मना कर दिया। मुनि लोग जैसे श्रीहरि के चरणाम्बुज में मन लगाकर रहते हैं वैसे ही मैं भी अब रहना चाहता हूँ। शरीरधारी शरीर छूटने के ही भय से सदा ग्रस्त रहते हैं।

विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणाम्।

उन्मेषण-निमेषाभ्यां लक्षितो-अध्यात्म-संस्थित:।।9।13।11।।

देवों ने उन्हें सूक्ष्मरूप से प्राणियों की आँख की पलकों पर ही विराजते रहने का वरदान दिया। शरीर विहीन रहकर ही वे भगवान्का चिन्तन करते रहेंगे। पलकों के झपकने से ही उनकी स्थिति का आभास होता रहेगा।

जन्मना जनक: सोऽभूद् वैदेहस्तु विदेहज:।

मिथिलो मथनात् जातो मिथिला येन निर्मिता।।9।13।13।।

तदुपरान्त मुनियों ने राज-काज को अराजकता से बचाने हेतु राजा निमि के शरीर का मंथन किया। उससे एक पुत्र जन्मा जिसका नाम जनक रखा गया। विदेह अर्थात्विना देह के निमि के शरीर से निकलने के कारण "वैदेह" कहे गये तथा मंथन से उत्पत्ति के कारण "मिथिल" भी कहे गये। जनक के बसाये नगर को मिथला कहा गया।

तत: सीरध्वजो जज्ञे यज्ञार्थं कर्षतो महीम्।

सीता सीराग्रतो जाता तस्मात् सीरध्वज: स्मृत:।।9।13।18।।

इसी कुल में एक राजा हुए जो यज्ञ के लिए जब भूमि जोत रहे थे उस समय हल के अग्रभाग से भूमि से एक कन्या निकली। हल के फाल से निकलने के कारण कन्या को सीता कहा गया तथा राजा का नाम सीरध्वज पड़ा।

एते वै मैथिला राजन् आत्मविद्या-विशारदा:।

योगेश्वर-प्रसादेन द्वन्द्वै: मुक्ता गृहेष्वपि।।9।13।27।।

शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को कहा कि मिथिल वंश के सभी राजा मैथिल कहलाते हैं। ये सभी गृहस्थ जीवन में रहते हुए आत्मज्ञान में पटु होने के कारण सुख-दु:ख के द्वन्द से मुक्त रहते हैं। ऐसा योगेश्वर याज्ञवल्क्य आदि की कृपा का ही फल है।

9।6। <u>पुरुरवा से सोमवंश अर्थात् चन्द्रवंश का विस्तार।</u>

सोमवंश का विस्तार वैवस्वत मनु की पुत्री इला से है। चन्द्रमा ने देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण कर लिया था। असुरों के गुरु शुक्राचार्य को देवगुरु बृहस्पति से स्वाभाविक शत्रुता है। उनके कहने पर असुरों ने चन्द्रमा का पक्ष लिया। देवों एवं असुरों के बीच चन्द्रमा-तारा घटना के कारण घोर युद्ध छिड़ गया। ब्रह्मा के हस्तक्षेप से युद्ध बन्द हुआ और चन्द्रमा ने तारा को वापस किया। परन्तु तारा चन्द्रमा के घर गर्भवती हो गयी थी और उसके गर्भ से चन्द्रमा का पुत्र बुध हुआ। बुध से ही इला का पुत्र पुरुरवा हुआ जिसे ऐल भी कहते हैं। ऐल ही चन्द्रवंश

के प्रारम्भिक जनक हुए। मित्र एवं वरुण के शाप से उर्वशी पृथ्वी लोक पर आयी थी। पुरुरवा से संयोग से भेट होने पर दोनों में स्वाभाविक प्रेम हो गया। कुछ शर्त के साथ दोनों पति-पत्नी की तरह साथ रहते थे। एक समय पुरुरवा से शर्त में त्रुटि हो जाने के कारण उर्वशी पृथ्वीलोक छोड़ कर स्वर्ग वापस चली गयी थी। उर्वशी से पुरुरवा को छ: पुत्र प्राप्त हुए थे - आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय तथा जय। पुरुरवा उर्वशी के वियोग में उन्मत्त होकर घूम रहा था। तब उर्वशी ने पुरुरवा को गन्धर्वो को प्रसन्न करने को कहा जिससे कि उवर्शी उसे पुन: प्राप्त हो सके। पुरुरवा ने वैसा ही किया। गन्धर्वो ने प्रसन्न होकर उसे यज्ञ करने का एक पात्र अग्निस्थाली दिया। भ्रमवश उसे उर्वशी समझ पुरुरवा उसको हृदय से लगाये वन में घूमता रहा। बाद में भ्रम दूर होने पर स्थाली को एक जगह वन में ही छोड़ महल लौट आया। अब त्रेता का प्रारम्भ हो गया था। पुरुरवा के हृदय में सहसा तीनों वेद प्रकट हो गये जिससे उन्हें यज्ञ करने की समस्त विधियों का ज्ञान हो गया। वह पुन: वन के उसी स्थान पर गया जहाँ उसने स्थाली छोड़ी थी। देखा कि शमी के पेड़ से ही एक पीपल का पेड़ उग आया है। उसकी एक लकड़ी को दो भाग में करके उसने अरणी बनायी जिसे मन्थन-काष्ठ कहते हैं। उसने यह भावना की कि उपर की लकड़ी स्वयं पुरुरवा है तथा नीचे की लकड़ी उर्वशी है। बीच में उसने पुत्र की कल्पना की। अग्नि उत्पन्न करने वाले मन्त्रों का प्रयोग किया। दोनों लकड़ियों के मंथन यानी घर्षण से "जातवेदा" नाम की अग्नि प्रकट हुई। उस अग्नि को त्रयी विद्या से पुरुरवा ने तीन भाग में बाँटा - आहवनीय, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि। तीनों को उसने अपने पुत्र के रूप में ग्रहण किया।

तेन-अयजत यज्ञेशं भगवन्तम्- अधोक्षजम्।
उर्वशीलोकम्-अन्विच्छन् सर्वदेवमयं हरिम्।।9।14।47।।
एक एव पुरा वेद: प्रणव: सर्ववाङ्गमय:।
देवो नारायणो नान्य एकोऽग्नि: वर्ण एव च।।9।14।48।।

उर्वशी को पुन: प्राप्त करने के लिए उसने एक यज्ञ किया। जिसका उद्देश्य उर्वशी के लोक में जाने का था। उसने देवाधिदेव यज्ञेश श्रीहरि की पूजा की। त्रेता के पूर्व सत्युग में एक 'ॐ' ही तीनों वेद को समाहित किये हुए था। नारायण ही एकमात्र देवता थे। एक ही अग्नि थी। एक ही वर्ण था। पुरुरवा ने त्रेतायुग के प्रारम्भ में तीनों अग्नि को अपना पुत्र स्वीकार करके यज्ञ सम्पन्न किया तथा गन्धर्वलोक को गया।

9।7। सोमवंशीय गाधि की कन्या एवं भृगुवंशी पिता ऋचीक से जमदग्नि तथा उनके पुत्र परशुराम। उर्वशी से पुरुरवा को छ: पुत्र प्राप्त हुए थे - आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय तथा जय। विजय के कुल में जह्नु हुए थे जो एक घूँट में गंगा जी को पी गये थे। जह्नु के कुल में गाधि हुए।गाधि के पुत्र ही विश्वामित्र हुए। गाधि की एक कन्या सत्यवती थी जिसका विवाह भृगु मुनि के पुत्र ऋचीक से गाधि की माँग पूरा करने पर हुआ। ऋचीक मुनि ने वरुण देव से माँग कर गाधि को एक हजार श्वेत घोड़े दिये जिनके एक कान श्यामले थे। सत्यवती से विवाह की यही शर्त थी। गाधि की मनसा थी कि ऋचीक से उत्पन्न होने वाली सन्तान क्षत्रिय हो इसी कारण से ऐसी कठोर शर्त उन्होंने रखी थी जबकि ऋचीक ब्राह्मण थे और भृगु के पुत्र थे। एक बार सत्यवती स्वयं तथा उसकी माँ ने ऋचीक मुनि से पुत्र प्राप्ति की कामना प्रकट की। मुनि ने दो चरु तैयार किये जिसमें एक ब्राह्मण मन्त्र से दूसरा

क्षत्रिय मन्त्र से अभिमन्त्रित था। अपनी पत्नी सत्यवती के लिए ब्राह्मण पुत्र तथा सास के लिए क्षत्रिय सन्तान का अभिप्राय था। जब ऋचीक मुनि स्नान करने गये तब सत्यवती की माँ ने उससे माँग कर उसका चरु खा लिया और सत्यवती स्वयं अपनी माँ वाला चरु खायी। स्नान से लौटने पर मुनि को जब यह जानकारी मिली तब अपनी पत्नी को उन्होंने सावधान किया कि उसका पुत्र घोर क्षत्रिय होगा। सत्यवती ब्राह्मण पुत्र चाहती थी इसलिए उसकी प्रार्थ ना पर मुनि मान गये और उन्होंने कहा कि तब तुम्हारा पौत्र क्षत्रिय गुण वाला होगा। सत्यवती के पुत्र जमदग्नि मुनि हुए और उनकी पत्नी रेणुका के सबसे छोटे पुत्र परशुराम हुए जो वासुदेव के अंशावतार थे।

यम्-आहु: वासुदेवांशं हैहयानां कुलान्तकम्।
त्रि-सप्त-कृत्वो य इमां चक्रे नि:क्षत्रियां महीम्।।9।15।14।।
हैहयानाम-अधिपति: अर्जुन: क्षत्रियर्षभ: ।
दत्तं नारायणस्य-अंशम्-आराध्य परिकर्मभि:।।9।15।17।।

वासुदेव के अंश से अवतरित परशुराम जी ने हैहयकुल के कीर्तवीर्य अर्जुन का वध किया तथा इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से विहीन किया। कीर्तवीर्य अर्जुन ने नारायण के अंश से अवतरित दत्तात्रेय को प्रसन्न कर एक हजार भुजायें प्राप्त की थीं। भागवत के पहले स्कन्ध के तीसरे अध्याय में दत्तात्रेय अवतार का सन्दर्भ है।

षष्ठे अत्रे: अपत्यत्वं वृत: प्राप्तो-अनसूयया।
आन्वीक्षिकीम्-अलर्काय प्रह्लाद-आदिभ्य ऊचिवान्।।1।3।11।।

अत्रि मुनि की पत्नी अनसूया के वर माँगने पर भगवान्दत्तात्रेय के रूप में अवतार लिये थे। इस अवतार में इन्होंने अलर्क, प्रह्लाद, यदु तथा हैहय-अर्जुन आदि को उपदेश दिया था। योगबल से समन्वित होकर सहस्रार्जुन अहंकारी हो गया। एक बार वह नर्मदा के जल को अपनी भुजाओं से रोककर पत्नियों के साथ जलविहार कर रहा था। जल के उपरि-प्रवाह में बाढ़ आ गयी। उसी क्षेत्र में रावण संयोग से खेमा लगाये हुआ था। उसे डूबते देख वह सहस्रार्जु न के पास जाकर उसे अपमानित करने लगा। सहस्रार्जुन ने उसे बन्दर की तरह पकड़ कर अपने कैदखाने में डाल दिया। सहस्रार्जुन घूमते हुए एक बार जमदग्नि मुनि के आश्रम पहुँचा। मुनि के आश्रम में एक कामधेनु गाय थी। उसी के प्रभाव से सेना के साथ सहस्रार्जुन का राजोचित सत्कार हुआ। सहस्रार्जुन को कामधेनु का लोभ हो गया। वह उसे जबरन लेकर अपनी राजधानी चला गया। आश्रम लौटने पर परशुराम को सारी घटना की जानकारी मिली।

तमापतन्तं भृगुवर्यमोजसा धनुर्धरं बाण-परश्वध-आयुधम्।
ऐणेय-चर्म-अम्बरम्-अर्क-धामभि: युतं जटाभि: ददृशे पुरीं विशन्।।9।15।29।।

सहस्रार्जुन का पीछा करते हुए परशुराम वायु की गति से उसकी राजधानी की ओर चले। वह अभी नगर में प्रवेश कर रहा था कि भार्गव कुल के ओजस्वी परशुराम जी के स्वरूप की उसे विलक्षण झाँकी मिली। उनके हाथ में धनुष-वाण तथा फरसा विराज रहे थे। शरीर पर काला मृगचर्म था। जटायें सूर्य के समान चमक रही थीं। परशुराम जी ने उसकी सेना को तितर वितर कर सहस्रार्जुन का वध कर दिया। कामधेनु उन्होंने पिता को समर्पित कर दिया। पिता को जब सहस्रार्जुन के वध का ज्ञान हुआ तब उन्होंने परशुराम को ब्राह्मण के लिए क्षमाशील होने का उपदेश दिया।

राज्ञो मूर्ध-अभिषिक्तस्य वधो ब्रह्म-वधाद्गुरुः।
तीर्थ-संसेवया च-अंहः जहि-अङ्ग-अच्युत-चेतनः।।9।15।41।।

राजाओं में शीर्ष सार्वभौम सम्राट होता है।उसकी हत्या ब्रह्महत्या से भी अधिक पाप देने वाला है। परशुराम जी को तीर्थ क्षेत्र में जाकर भगवान्अच्युत का स्मरण करते हुए अपने पाप धोने को कहा। पिता जी के आदेशानुसार एक वर्ष तक तीर्थों का भ्रमण करके वे पिता के आश्रम में लौट आये। एक बार उनकी माँ रेणुका पिता जी के अग्निहोत्र हेतु गंगा जल लाने गयीं। वहाँ चित्ररथ गन्धर्व को प्रेमिकाओं के साथ जल विहार देख रेणुका का मन भी विचलित हो गया। जल लाने में देर हुई क्योंकि वे जलविहार के दृश्य को देखने में लग गयीं। आश्रम लौटने पर मुनि ने योगबल से सारी घटना जान गये। कुपित होकर उन्होंने अपने पुत्रों को रेणुका की हत्या कर देने को कहा। किसी के बात न मानने पर उन्होंने परशुराम जी से कहा और इन्होंने माता की हत्या करके पिता के मनोनुकूल भाईयों का भी वध कर दिया। प्रसन्न होकर पिता जमदग्नि मुनि ने परशुराम जी को वर माँगने को कहा। परशुराम जी ने वर माँगा कि मेरी माँ एवं भाई सब जीवित हो जायें और उनको इस घटना का कुछ भी स्मरण न रहे। पिता ने सबको जीवित कर दिया।

बाद में सहस्रार्जुन के पुत्रगणों ने अपने पिता के वध का बदला लेने के लिए परशुराम जी की अनुपस्थिति में जमदग्नि मुनि का वध कर दिया। परशुराम जी जब आश्रम आये तब अपने पिता की हत्या का बदला लेने हेतु पृथ्वी भर से क्षत्रियों के नाश का उन्होंने संकल्प ले लिया। सहस्रार्जुन के पुत्रों के वध के साथ परशुराम जी ने पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियों से विहीन किया। इन्होंने समन्तपञ्चक नामक स्थान पर क्षत्रियों के रक्त से नौ झील भर दिये। तदुपरान्त परशुराम जी ने पिता को जीवित करने के उद्देश्य से भगवान्वासुदेव की विशेष पूजा हेतु यज्ञ का अनुष्ठान किया। यज्ञ पूरा होने पर समस्त पृथ्वी के पूर्व दिशा का भाग यज्ञ के होता को, दक्षिण दिशा का भाग ब्रह्मा को, पश्चिमी दिशा अध्वर्यु को, उत्तर दिशा उद्गाता को, चारों कोने के भाग को अन्य पुरोहितों को तथा मध्य भाग कश्यप मुनि को दान कर दिया। पिता जमदग्नि मुनि जीवित हो गये तथा नक्षत्र मण्डल में सप्तऋषियों के समूह में सम्मिलित हो गये।

जामदग्न्योऽपि भगवान् रामः कमललोचनः।
आगामिनी-अन्तरे राजन्वर्तयिष्यति वै बृहत्।।9।16।25।।
एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः।
अवतीर्य परं भारं भुवोऽहन् बहुशो नृपान्।।9।16।27।।

शुकदेव जी ने कहा कि आगामी मन्वन्तर में जमदग्निनन्दन कमलनयन परशुराम जी सप्तऋषियों के समूह में सम्मिलित होकर वैदिक ज्ञान के संस्थापक होंगे। इस तरह विश्वात्मा सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि ने भृगुवंशी परशुराम जी के स्वरूप में अवतार लेकर आततायी राजाओं के भार से पृथ्वी को मुक्त किया। आज भी परशुराम जी महेन्द्र नामक पहाड़ी पर रहते हैं तथा सिद्ध, चारण तथा गन्धर्वादि उनकी पूजा करते हैं।

9।8। सोमवंशीय गाधिनन्दन विश्वामित्र जी।

गाधेः अभूत्-महातेजाः समिद्ध इव पावकः।

तपसा क्षात्रम् उत्सृज्य यो लेभे ब्रह्मवर्चसम्।।9।16।28।।

प्रज्वलित अग्नि के समान परम तेजस्वी गाधिनन्दन विश्वामित्र जी क्षत्रिय होते हुए भी तपस्या के बल से ब्राह्मण बन गये थे। इनकी बहन सत्यवती जिसका विवाह भृगुवंशी ऋचीक मुनि से हुआ था, कौशिकी नदी में परिणत हो गयीं थीं। विश्वामित्र के **101** पुत्र थे। इनके बीच के पुत्र का नाम मधुछन्दा था इसीलिए इनके सारे पुत्र मधुछन्दा ही कहे जाते थे। इन्होंने अपने भृगुवंशी भानजे शुन:शेप को अपने पुत्रों में सम्मिलित कर लिया था जिसका एक नाम देवरात भी था। विश्वामित्र ने पुत्रों से कहा था कि वे शुन:शेप को ही बड़ा भाई मानें। इसतरह से देवरात गाधि के वंशज के रूप में विख्यात हो गया था। विश्वामित्र के बड़े पचास मधुछन्दाओं ने देवरात को बड़ा भाई मानने से मना कर दिया था। विश्वामित्र ने उन सबों को मलेच्छ बनने का शाप दे दिया था। छोटे पचास मधुछन्दा विश्वामित्र की आज्ञानुसार देवरात को बड़े भाई की तरह मानकर उसकी आज्ञा का पालन करते थे।

9।9। सोमवंशीय पुरुरवा के वंशज शौनक मुनि, धन्वन्तरि तथा राजा ययाति ।

पुरुरवा के छ पुत्रों में सबसे बड़े आयु के वंश में नहुष, क्षत्रवृद्ध आदि प्रसिद्ध थे। क्षत्रवृद्ध कुल के शौनक ऋग्वेद के ज्ञाता थे। आयुर्वेद के प्रवर्तक भगवान् के अंश से धन्वन्तरि का उद्भव क्षत्रवृद्ध के ही कुल में हुआ था।

धन्वन्तरि: दैर्घतम आयुर्वेदप्रवर्तक:।।9।17।4।।

यज्ञभुग् वासुदेवांश: स्मृतमात्र-आर्तिनाशन:।।9।17।5।।

दीर्घतमा के पुत्र धन्वन्तरि आयुर्वेद के प्रवर्तक हुए जो यज्ञभोक्ता भगवान् वासुदेव के अंश से अवतरित हैं। इनके नाम लेने से ही सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। पुरुरवा के बड़े पुत्र आयु के पराक्रमी पुत्र नहुष हुए जिनके वंश में राजा ययाति का उद्भव हुआ। नहुष को इन्द्र बनाया गया परन्तु अपने दुर्व्यवहार से मुनियों के शाप के कारण अजगर बन गये। इनका बड़ा पुत्र यति राज-काज में आसक्ति नहीं रखता था। नहुष के छ: पुत्र थे जिसमें से बड़े यति ने जब राजपाट छोड़ दिया तब उनका दूसरा भाई ययाति राजा बना। इन्होंने अपने चार भाईयों को चारों दिशाओं में शासन चलाने की अनुमति दी। ययाति का विवाह शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी से हुआ था। राजा वृषपर्वा की बेटी शर्मिष्ठा एवं शुक्राचार्य की बेटी देवयानी की मित्रता थी। एक सरोवर में स्नान के बाद शर्मिष्ठा ने भूलवश देवयानी के कपड़े पहन लिए। देवयानी कुपित हो गयी। शर्मिष्ठा ने उसके कपड़े छीन लिए एवं नग्नावस्था में उसे पास के कुँए में ठेल दिया। राजा ययाति शिकार में गये थे। प्यासे ययाति उस कुँए के पास गये। देवयानी को हाथ पकड़कर उन्होंने कुँए से बाहर निकाला तथा अपने दुशाला उसके नग्न शरीर पर डाल दिया। दोनों में प्रेमवश विवाह की बात तय हुई। देवयानी ने घर आकर शुक्राचार्य को वस्तुस्थिति की जानकारी दी। शर्मिष्ठा के दुर्व्यवहार से कुपित होकर शुक्राचार वृषपर्वा का राज छोड़कर अन्यत्र जाने लगे। राजा वृषपर्वा की विनती से वे उनके राज्य में रहने को तभी तैयार हुए जब शर्मिष्ठा दासी के रूप में देवयानी के साथ उसके ससुराल में जाये। ऐसा ही हुआ। देवयानी एवं ययाति का जब विवाह हुआ तब शुक्राचार्य ने राजा ययाति को शर्मिष्ठा से कोई सम्बन्ध नहीं रखने की चेतावनी दी। काल-क्रम में ययाति को देवयानी से यदु एवं तुर्वसु दो पुत्र प्राप्त हुए। शर्मिष्ठा से ययाति को द्रुह्यु, अनु एवं पूरु तीन पुत्र प्राप्त हुए। जब शुक्राचार्य को यह ज्ञात हुआ तब उन्होंने ययाति को एक कुरूप बूढ़ा हो जाने का शाप दे दिया। ययाति के बहुत अनुनय-विनय पर शुक्राचार्य ने कहा कि अगर कोई अपनी जवानी तुम्हें

देकर तुम्हारा बुढ़ापा ले ले तब तुम युवा होकर विषय-विलास का उपभोग कर सकते हो। ययाति ने यदु समेत अपने अन्य पुत्रों से जवानी माँगी परन्तु कोई नहीं तैयार हुआ। अन्त में शर्मिष्ठा का छोटा पुत्र पूरु ने अपनी जवानी उन्हें देकर उनका बुढ़ापा ले लिया।

अयजद् यज्ञपुरुषं क्रतुभि: भूरिदक्षिणै:।
सर्वदेवमयं देवं सर्ववेदमयं हरिम्।।9।18।48।।
तमेव हृदि विन्यस्य वासुदेवं गुहाशयम्।
नारायणम् अणीयांसं निराशी: अयजत् प्रभुम्।।9।18।50।।

राजा भोग-विलास का आनन्द लेते हुए राजकाज में लगे रहे और साथ में समस्त देवों के देव तथा वैदिक ज्ञान के एकमात्र लक्ष्य श्रीहरि की पूजा हेतु कई यज्ञ भी किये। सबके हृदय में नारायण के रूप में स्थित जो सर्वत्र व्याप्त होकर भी दिखाई नहीं देते वही श्रीहरि राजा ययाति के उपास्य देव थे। एक हजार वर्षों तक ययाति विलासिता के जीवन से तृप्त नहीं हुए। ययाति अब ऐसा अनुभव करने लगे कि विलासिता के जीवन में कभी तृप्ति नहीं मिलती।

न जातु काम: कामानाम्-उपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्ण-वर्त्मा-इव भूय एव-अभिवर्धते।।9।19।14।।
या दुस्त्यजा दुर्मतिभि: जीर्यतो या न जीर्यते।
तां तृष्णां दु:ख-निवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत्।।9।19।16।।

जैसे प्रज्वलित अग्नि में घी डालने से अग्नि की ज्वाला बढ़ती ही जाती है वैसे ही यह विलासी जीवन का हाल है।तृष्णा से ही विषय-भोग बढ़ता है। शरीर जीर्ण होता है परन्तु तृष्णा जवान होती जाती है। कल्याण इसी में है कि विषय-भोग की तृष्णा का शीघ्र परित्याग करे। ऐसा सोच राजा ययाति ने पूरु को उसकी जवानी वापस कर दी।उसने पूरु को सार्वभौम सम्राट बनाकर अन्य पुत्रों को उसके अधीनस्थ राजा बनाया। वन में जाकर ययाति ने स्वयं वासुदेव में अनन्यरूप से लीन होकर सद्गति को प्राप्त किया।

नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे।
सर्वभूताधिवासाय शान्ताय बृहते नम:।।9।19।29।।

ययाति का अनुसरण करते हुए देवयानी ने भी सर्वेश्वर श्रीहरि में मन लगाकर शरीर छोड़ सद्गति प्राप्त की।

9।10। सोमवंशीय राजा ययाति के पुत्र पूरु के वंश में कौरव-पाण्डव, व्यास जी एवं शुकदेव जी। ययाति के छोटे पुत्र पूरु के वंश में दुष्यन्त राजा हुए। एक बार वन में घूमते ऋषि कण्व के आश्रम पर एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या को देखकर मोहित हो गये। कन्या ने बतायी कि मैं विश्वामित्र के संयोग से मेनका की पुत्री हूँ। कण्व ऋषि ही ने पालन पोषण किया है। मेरा नाम शकुन्तला है। राजा दुष्यन्त एवं शकुन्तला का गन्धर्व रीति से विवाह हुआ। शकुन्तला को वहीं कण्व ऋषि के आश्रम पर छोड़ राजा दुष्यन्त अपनी राजधानी लौट गये। शकुन्तला गर्भवती थी एवं उसने भरत नामके एक पुत्र को जन्म दिया। यह बालक बचपन से सिंह को पकड़ कर उससे खेलता था।

तं दुरत्यय-विक्रान्तम्-आदाय प्रमदोत्तमा।
हरे:अंश-अंश-सम्भूतं भर्तु: अन्तिकम्-आगमत्।।9।20।19।।

श्रीहरि के अंशांश अवतार पुत्र भरत को लेकर शुन्तला अपने पति दुष्यन्त की राजधानी पहुँची। दुष्यन्त ने दोनों को स्वीकार करने से मना कर दिया। एक आकाशवाणी हुई जिसे सबों ने सुना कि दुष्यन्त! तुम पुत्र को स्वीकार करो। शकुन्तला सत्य कह रही है। यही पुत्र भरत चक्रवर्ती राजा बना।

चक्रं दक्षिणहस्तेऽस्य पद्मकोशोऽस्य पादयोः।

ईजे महाभिषेकेण सोऽभिष्क्तो-अधिराड् विभुः। ।9।20।24। ।

भरत के दाहिने हाथ में कमल का चिह्न तथा चरणों कमल के चिह्न विद्यमान थे। महाभिषेक की विधि से भरत को राजाधिराज बनाया गया।भरत का भरद्वाज नामक एक दत्तक पुत्र था जो बृहस्पति एवं बृहस्पति के भाई के वीर्य से बृहस्पति के भाई की पत्नि के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। दो व्यक्तियों के वीर्य से जन्म लेने के कारण इसे मुनियौं ने "द्वाज" यानी दो के वीर्य से उत्पन्न होने वाला कहा। इस बालक का लालन-पालन मरुद्गणों ने स्वयं किया। इसी रन्तिदेव का चरित भरत के कुल में भरद्वाज के पुत्रों से रन्तिदेव तथा अजमीढ़ हुए थे। रन्तिदेव भगवान्के महान्भक्त थे। संग्रह-परिग्रह से दूर रहते थे। दैववश प्राप्त वस्तु का ही उपयोग करते थे। प्राप्त वस्तु को सबों को बाँटते रहते थे। अतिथि को भगवान्का रूप समझ सबकुछ उसे देते रहते। इनके इस स्वभाव से परिवार के लोग कष्ट में रहते। एक बार अड़तालीस दिन तक उपवास रहने के बाद एक दिन दूध आदि से बना कुछ भोजन मिला।उसे परिवार में बाँटना ही चाह रहे थे कि एक ब्राह्मण अतिथि आ गये।

तस्मै संव्यभजत्सोऽन्नम्-आदृत्य श्रद्धयान्वितः।

हरिं सर्वत्र संपश्यन् स भुक्त्वा प्रययौ द्विजः। ।9।21।6। ।

रन्तिदेव को सर्वत्र भगवान्की उपस्थिति का अनुभव होते रहता। श्रद्धा से रन्तिदेव ने ब्राह्मण को भोजन कराया। सन्तुष्ट हो ब्राह्मण चला गया। परिवारवाले भोजन करना ही चाहते थे कि एक शूद्र अतिथि आया। रन्तिदेव ने उसे भी तृप्त कर भेज दिया। बचे जल को ही राजा पीना चाह रहे थे कि एक प्यासा चाण्डाल आया। उसे भी तृप्त कर भेज दिया। इस तरह की स्थिति पर राजा रन्तिदेव ने कहा -

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् पराम्-अष्ट-ऋद्धि-युक्ताम्-अपुनः भवं वा।

आर्ति प्रपद्ये-अखिल-देहभाजाम्-अन्तःस्थितो येन भवन्ति-अदुःखाः। ।9।21।12। ।

मुझे ऋद्धि-सिद्धि-मोक्ष आदि नहीं चाहिए।सबके हृदय में स्थित होकर उसके सभी कष्टों को भोगना चाहता हूँ। प्यास से मरते राजा ने जल चाण्डाल को दे दिया। भगवान्की माया थी। ब्राह्मण तथा शूद्रादि के रूप में ब्रह्मा तथा रुद्र आये थे। वासुदेव चाण्डाल के वेष में आये थे।

स वै तेभ्यो नमस्कृत्य निःसङ्गो विगतस्पृहः।

वासुदेवे भगवति भक्त्या चक्रे मनः परम्। ।9।21।16। ।

सबों के चरणों में राजा ने प्रणाम किया। भगवान्वासुदेव में मन को स्थिर रखकर शान्तभाव से चुपचाप रहे। भगवान् की कृपा से राजा रन्तिदेव उनके शुद्ध भक्त बन गये तथा योगी हो गये।

<u>अजमीढ़ का वंश</u> इसी कुल में हस्ती हुए जिनके पुत्र अजमीढ़ आदि तीन भाई हुए। इसी कुल में शतानन्द आये। शतानन्द के वंशज में कृपाचार्य हुए जिनकी वहन कृपि का विवाह द्रोणाचार्य से हुआ। जरासन्ध, पाञ्चाल तथा द्रुपद इसी कुल के वंशज थे। आगे के वंशजों में शान्तनु हुए। इनकी पत्नी गंगा ने भीष्म को जन्म दिया।

यस्यां पराशरात् साक्षादवतीर्णो हरेः कला।9।22।21।।

वेदगुप्तो मुनिः कृष्णो यतोऽहम्-इदम्-अध्यगाम्।

हित्वा स्वशिष्यान् पैलादीन् भगवान् बादरायणः।।9।22।22।।

मह्यं पुत्राय शान्ताय परं गुह्यमिदं जगौ।9।22।23।।

इसके अतिरिक्त पराशर से व्यासदेव जी का जन्म हुआ जिन्हिोंने भागवत की रचना की। व्यास जी के पुत्र शुकदेव जी थे। व्यास जी ने अपने पैल आदि अन्य शिष्यों को छोड़कर भागवत शुकदेव जी को सिखाया।

9।11। सोमवंशीय राजा ययाति के पुत्र यदु के वंश में भगवान् कृष्ण का अवतार। इसी कुल में राजा रोमपाद हुए जो नि:सन्तान थे। राजा दशरथ ने अपनी पुत्री शान्ता को अपने मित्र रोमपाद को दत्तक सन्तान के रूप में दे दिया। रोमपाद ने शान्ता का विवाह श्रृंगी ऋषि से किया जिन्होंने राजा दशरथ के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ सम्पन्न किया था। कुन्ती द्वारा त्यक्त कर्ण का लालन- पालन यदुवंश के अधिरथ ने किया था। इसी वंश में कृतवीर्य का पुत्र सहस्रार्जुन भी हुआ था जिसका वध भगवान् परशुराम जी ने किया था।

इसी वंश में वसुदेव जी का जन्म हुआ।इनके जन्म के समय स्वर्ग में दुन्दुभियाँ बज उठीं। इसीलिए इनका एक नाम अनक-दुन्दिभी भी पड़ा। इसी वंश के राजा शूर की एक पुत्री पृथा थी जो कुन्ती भी कही जाती थी जो वसुदेव जी की बहन थी। एक बार पृथा के घर दुर्वासा ऋषि आये। पृथा की सेवा से प्रसन्न ऋषि ने उसे देवताओं के आह्वान का मन्त्र सिखा दिया। पृथा ने सूर्य देव पर इसका प्रयोग किया। सूर्य प्रकट हो गये और कुमारी पृथा के गर्भ में एक बालक दे दिया जो कर्ण कहा गया। पाण्डु ने कुन्ती से विवाह किया। वसुदेव की पत्नियों में देवकी तथा रोहिणी प्रधान थीं। रोहिणी के गर्भ से बलराम जी का उद्भव हुआ। देवकी के गर्भ से आठ पुत्र तथा एक कन्या सुभद्रा का जन्म हुआ था। भगवान् कृष्ण देवकी के आठवें पुत्र थे।

अष्टमस्तु तयोः आसीत् स्वयमेव हरिः किल।

सुभद्रा च महाभागा तव राजन् पितामही।।9।24।55।।

शुकदेव जी राजा परीक्षित को कहते हैं कि तुम्हारी दादी परम सौभाग्यवती सुभद्रा भी देवकी की एक मात्र कन्या थी। सुभद्रा भगवान्कृष्ण की अपनी सहोदरा बहन थी इस प्रकरण को दसम स्कन्ध के **10।1।56।** तथा **10।85।51** से मिला कर देखें।

यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः।

तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः।।9।24।56।।

यत्-माया-चेष्टितं पुंसः स्थिति-उत्पत्ति-अप्ययाय हि।

अनुग्रहः तत्-निवृत्तेः आत्मलाभाय चेष्यते।।9।24।58।।

जब-जब पृथ्वी पर पाप बढ़ता है तथा धर्म का क्षय होता है तब-तब सर्वशक्तिमान स्वयं श्रीहरि अवतार लेते हैं। शाश्वत प्रकृति के रूप में भगवान्का माया-विलास ही जन्म-जीवन-मृत्यु का कारण है और यह जीव के उद्धार के लिए है। भगवान्वासुदेव के अनुग्रह से ही आत्म स्वरूप का ज्ञान होता है।

कर्माणि-अपरिमेयाणि मनसापि सुरैश्वरैः।
सह-सङ्कर्षणः चक्रे भगवान् मधुसूदनः। ।9।24।60। ।
कलौ जनिष्यमाणां दुःख-शोक-तमोनुदम्।
अनुग्रहाय भक्तानां सुपुण्यं व्यतनोद् यशः। ।9।24।61। ।
यस्मिन् सत्कर्णपीयूषे यशस्तीर्थवरे सकृत्।
श्रोत्राञ्जलिः उपस्पृश्य धुनुते कर्मवासनाम्। ।9।24।62। ।

वासुदेव भगवान्ने बलराम जी के साथ जो लीला की है वे सभी कार्य-कलाप ब्रह्मा-शिव-इन्द्र आदि की समझ के बाहर है। कलि के जीवों पर कृपा करने हेतु ही भगवान्ने ऐसी लीलायें की हैं जिनके सुनने तथा गााने से अज्ञान मिटता है तथा उनकी भक्ति मिलती है। भगवान्की लीला-कथा तीर्थ के समान पवित्र करने वाली है। सन्तों के कान के लिए अमृत है तथा एक बार भी कान की अञ्जलियों से इसे ग्रहण करने से जीव की कर्म-वासनायें नष्ट हो जाती हैं।

स्निग्ध-स्मित-ईक्षित-उदारैः वाक्यैः विक्रम-लीलया।
नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वाङ्ग-रम्यया। ।9।24।64। ।

सर्वाङ्ग सुन्दर श्यामले शरीर वाले भगवान्कृष्ण की प्रेमभरी मुस्कान, मधुर चितवन, आशीषमयी वाणी तथा अद्भुत लीलाओं से इस मनुष्य लोक के सभी प्राणी आनन्द विभोर होते रहे।

यस्याननं मकरकुण्डल-चारुकर्ण-भ्राजत्-कपोल-सुभगं सविलास-हासम्।
नित्योत्सवं न ततृपुः दृशिभिः पिबन्त्यो नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च। ।9।24।65। ।

कमनीय कान के मकराकृत कुण्डल के तेज से सुशोभित कपोल भगवान्कृष्ण के सुन्दर मुखमण्डल को अति आकर्षक बनाते रहते। उनकी विलासमय हँसी से खिलता मुखारविन्द आनन्द की बाढ़ उड़ेलते रहता। इस रमनीय सौंदर्य की झाँकी के रसपान करते सभी नर-नारियों की आँखें कभी तृप्त नहीं होती। झपकते पलकों के व्यवधान के लिए सभी पलकासीन निमि को कोसते रहते। मथुरा में प्रकट होने वाले लीलापुरुषोत्तम भगवान्कृष्ण ग्वालों, गौओं तथा गोपियों को आनन्दित करने व्रज में गये। पुनः मथुरा लौट कंस का नाश कर द्वारका गये। अनेकों विवाह किये। यज्ञादि कार्य सम्पन्न किये। कौरव-पाण्डव के कलह से धरती का भार हल्का करके उन्होंने अर्जुन को विजय दिलायी। उद्धव को भक्तितत्त्व का ज्ञान देकर स्वयं परमधाम को सिधार गये।

। ।स्कन्ध नौ पूरा हुआ। ।

श्रीमते रामानुजाय नम: ।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध 10

वन्दउँ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

नवम स्कन्ध के अन्त में शुकदेव जी ने सोमवंश में उत्पन्न वसुदेव जी के पुत्र भगवान्श्रीकृष्ण तथा बलराम जी की लीला का संक्षेप में उल्लेख किया है। यह सुनकर राजा परीक्षित के मन में विस्तार से भगवान्श्रीकृष्ण की कथा सुनने की ईच्छा हुई। तदनुसार उनकी जिज्ञासा की शान्ति हेतु शुकदेव जी ने दसम स्कन्ध में विस्तार से उनकी कथा सुनाई । इस स्कन्ध में कुल **90** अध्याय हैं जिसका पहला **49** अध्याय दशम पूर्वाध कहा जाता है तथा अन्तिम **41** अध्याय उत्तरार्ध कहा जाता है। पूर्वार्ध में भगवान्श्रीकृष्ण के ग्यारह वर्ष की अवस्था तक की लीला कथा है। इसके बाद उतरार्ध में द्वारकाधीश के रूप में उनकी लीला का विस्तार से वर्णन है जिसमें उनके सभी विवाह तथा अन्य आसुरी प्रवृति वाले राजाओं के आतंक के नाश की कथा है। इसके अतिरिक्त मित्र सुदामा की बहुत अद्भुत कथा तथा बलराम जी के तीर्थाटन का विस्तार से वर्णन है। भगवान्की महिमा को उद्भासित करते हुए अध्याय **87** की श्रुतियों की स्तुति बहुत ही महत्वपूर्ण है। कुछ हरिकथाकार दशम पूर्वाध को माधुर्य-लीला प्रधान कहते हैं तथा उत्तरार्ध को ऐश्वर्य प्रधान बताते हैं। परन्तु भगवान् की सम्पूर्ण लीला कथायें अनन्त हैं और माधुर्य रस - **"रसो वै स:"** ही सबमें प्रधान है। व्रजक्षेत्र की बाल्यावस्था में गोपियों के साथ महारास तथा उद्धव जी का गोपियों के पास दूत के रूप में जाने की कथा पूर्वार्ध का अत्यन्त अनुपम भाग है। महारास का वर्णन अध्याय **29** से **33** तक है जिसे हरिकथाकार रासपञ्चाध्यायी भी कहते हैं। रासपञ्चाध्यायी के पाठ के पूर्व मन एवं चित्त को शान्त रखने हेतु अध्याय **22, 23** तथा **40** के अक्रूर जी की स्तुति का पाठ करने का परामर्श हरिकथाकार देते हैं।

10।1। भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार

राजा परीक्षित ने भगवान्श्रीकृष्ण की कथा सुनने की उत्कट जिज्ञासा प्रकट करते हुए शुकदेव जी से कहा -

निवृत्त-तर्षै: उपगीयमानात् भव-औषधात्-श्रोत्र-मनोऽभिरामात्।
क उत्तमश्लोक-गुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्।।10।1।4।।
न-एषा-अति-दु:सहा क्षुत्-मां त्यक्त-उदम्-अपि बाधते।
पिबन्तं त्वत्-मुख-अम्भोज-च्युतं हरिकथामृतम्।।10।1।13।।

भवरोग की एक मात्र औषध रूपी कथामृत कान एवं मन को आनन्दित करती है। कामनारहित श्रेष्ठ पुरुषों से गायी जानी वाली भगवान् की कथा कौन आत्मघाती होगा जो नहीं सुनना चाहेगा! स्वभाविक रूप से भूख एवं प्यास सहन नहीं की जा सकती है परन्तु आपके मुखारविन्द से निकली हुई कथामृत का पान करने से मेरी प्यास भी जाती रही है। राजा की जिज्ञासा सुन शुकदेव जी ने भगवान्श्रीकृष्ण की कथा विस्तार से सुनाई।

समस्त विश्व को आसुरी प्रवृति के लोगों से आतंकित हो जाने के कारण पृथ्वी गाय के रूप में ब्रह्मा के पास जाकर प्रार्थना करने लगी। ब्रह्मा अन्य देवताओं के साथ क्षीरसागर के तट पर जाकर भगवान्विष्णु की पुरुष सूक्त से स्तुति करने लगे। भगवान्ने ब्रह्मा को बताया कि हम यदुवंश में शीघ्र अवतार लेंगे। हमसे पहले देवतागण अपनी पत्नियों के साथ पृथ्वी पर यदुवंश में जन्म लेकर लीला सम्पादन का हिस्सा बनें। वासुदेवगृहे साक्षाद्भगवान्पुरुष: पर:।

जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः।।10।1।23।।

वासुदेव-कला-अनन्तः सहस्रवदनः स्वराट्।

अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया।।10।1।24।।

विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत्।

आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे सम्भविष्यति।।10।1।25।।

ब्रह्मा ने कहा कि भगवान्वसुदेव जी के घर में अवतार लेंगे। भगवान्की प्रिया लक्ष्मी जी अर्थात्राधा जी के सहायतार्थ देवपत्नियाँ यदुवंश में जन्म लें। वलदेव के रूप में अनन्त इनके बड़े भाई के रूप में आयेंगे। भगवान्विष्णु की जगन्मोहिनी आदिशक्ति भगवती माया भी उनके सहायातार्थ यथासमय जन्म लेंगी। सब देवगण उसी तरह से कार्य करने लगे। जब वसुदेव देवकी का विवाह हुआ तब कंस उनका रथ चला रहा था। रास्ते में कंस ने एक आकाशवाणी सुनी कि देवकी की आठवीं सन्तान कंस का वध करेगा। कंस ने देवकी का वध करने के लिए तलवार खींच ली। वसुदेव के समझाने पर कि वे कंस को देवकी की हर सन्तान को सुपुर्त कर देंगे वह मान गया। वसुदेव ने पहली सन्तान का जन्म होने पर जब उसे कंस को सुपुर्त किया तब वह उसे वसुदेव को लौटा दिया कि मुझे आठवीं सन्तान से ही भय है। इसी बीच कंस के पास नारद जी आये और उनके समझाने पर कंस ने देवकी एवं वसुदेव को कैद में डाल दिया।नारद जी ने कंस को कहा कि पिछले जन्म में तुम कालनेमि थे और भगवान्विष्णु ने तुम्हारा वध किया था। यह सुनकर कि यदुवंस में भगवान् अवतार लेने वाले हैं कंस समस्त यदुवंशियों से वैरभाव करने लगा। कंस ने अपने पिता उग्रसेन को भी कैद में डाल स्वयं राजा बन गया। देवकी की छः सन्तान को उसने मार डाला। साथ ही यदुवंश के नवजात सभी शिशुओं का वध कराने लगा।

अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता।

पुत्रान्प्रसुषुवे चाष्टौ कन्यां चैवानुवत्सरम्।।**10।1।56**।।

देवकी के शरीर पर सभी देवता वास करते थे। देवकी से प्रत्येक वर्ष एक-एक करके आठ पुत्र उत्पन्न हुए तथा सुभद्रा नामकी कन्या भी उत्पन्न हुई। भगवान्श्रीकृष्ण की सगी बहन सुभद्रा के लिए **9।24।55** द्रष्टव्य है।

सप्तमो वैष्णवं धाम यम्-अनन्तं प्रचक्षते।

गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोक-विवर्धनः।।10।2।5।।

देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम्।

तत् संनिकृष्य रोहिण्या उदरे संनिवेशय।।10।2।8।।

गर्भ-संकर्षणात् तं वै प्राहुः संकर्षणं भुवि।

रामेति लोकरमणाद् बलं बलवत्सु-उच्छ्रयात्।।10।2।13।।

देवकी के सातवें गर्भ में बलराम जी आये जो विष्णु भगवान्के द्वितीय चतुर्व्यूह हैं।देवकी हर्षित हुई परन्तु पुनः कंस से उसकी हत्या के डर से दुःखी हुई। भगवान्ने योगमाया को आदेश दिया कि देवकी के गर्भ को ले जाकर वसुदेव जी की दूसरी पत्नी रोहिणी के गर्भ में स्थापित करो जो नन्द जी के घर में रहती हैं। योगमाया ने वैसा ही किया। गर्भ से खींचे जाने के कारण ये सङ्कर्षण भी कहे जाते हैं। अपने सौन्दर्य से लोक को आनन्द देने के कारण राम कहे जाते हैं। अतिबलवान होने के कारण बलभद्र कहे जाते हैं।

अथ-अहं-अंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे।

प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि।।10।2।9।।

योगमााया को भगवान्ने कहा कि मैं अपने सभी ऐश्वर्यो से युक्त होकर देवकी के आठवें पुत्र के रूप में प्रकट होने वाला हूँ और तुम नन्द जी की पत्नी यशोदा के गर्भ से प्रकट होगी। तू जगत के लोगों की कामनाओं की पूर्ति करने वाली दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी,शारदा तथा अम्बिका के रूप में पूजी जाओगी।

भगवानपि विश्वात्मा भक्तानाम्-अभयम्-कर:।

आविवेश-अंशभागेन मन आनकदुन्दुभे:।।10।2।16।।

समस्त जगत के प्राण तथा भक्तों के भय को दूर करने वाले भगवान्वसुदेव जी के मन में प्रवेश कर गये। तत्पश्चात्भगवान्वसुदेव जी के मन से देवकी के मन में प्रवेश कर गये। भगवान्के तेज से देवकी अत्यन्त सुन्दर दिखने लगी। कंस ने देवकी के अद्भुत्स्वरूप को देखकर डर का अनुभव किया कि उसका वध करने वाला देवकी के गर्भ में आ गया है। पहले उसने देवकी का वध करने को सोचा परन्तु संयोगवश बुद्धि बदल गयी और सर्वत्र श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण देखने लगा। ब्रह्मा, शिव, नारद, देवल तथा व्यास आदि मुनि गण अदृश्य रूप से देवकी के कारागार में आकर भगवान्श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे।

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।

सत्यस्य सत्यम्-ऋत-सत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्ना:।।10।2।26।।

आप सत्यसंकल्प तथा सत्यस्वरूप, प्रकृति, पुरुष तथा काल के त्रिसत्य हैं। हमलोग आपके शरणगत हैं।

बिभर्षि रूपाणि-अवबोध आत्मा क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य।

सत्त्व-उपपन्नानि सुखावहानि सताम्-अभद्राणि मुहु: खलानाम्।।10।2।29।।

त्वयि-अम्बुज-अक्ष-अखिलसत्त्व-धाम्नि समाधिना-आवेशित चेतसा-एके।

त्वत्पाद-पोतेन महत्कृतेन कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम्।।10।2।30।।

जीवों के कल्याणार्थ मत्स्य तथा कच्छपादि के विविध स्वरूप में आप अवतार लेते हैं। भक्तों के लिए प्रियकर हैं तथा दुष्टों के संहारक हैं। कमलनयन प्रभु, आपके श्रीचरणारविन्द का ध्यान संसारसागर को पार करनेवाली नाव है। सन्तों के चरणचिन्हों का अनुसरण करने से लोग संसार को बछड़े के खुर की तरह पार करते हैं।

न नामरूपे गुणजन्मकर्मभि: निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिण:।

मनोवचोभ्याम् अनुमेय-वर्त्मनो देव क्रियायां प्रतियन्ति-अथापि हि।।10।2।36।।

दिष्ट्या हरेऽस्या भवत: पदो भुवो भारोऽपनीत: तव जन्मना-ईशितु:।

दिष्ट्याङ्कितां त्वत्पदकै: सुशोभनै: द्रक्ष्याम गां द्यां च तवानुकम्पिताम्।।10।2।38।।

कल्पना करने वाले को आपके दिव्य गुण, गुण तथा रूप का ज्ञान नहीं होता। यह केवल भक्ति से प्राप्त किया जाता है। आपके चरण चिह्नों - वज्र, चक्र तथा कमल आदि से पृथ्वी सुशोभित होगी। स्वर्गादिक आपकी लीला से धन्य होंगे। **"त्वत्पदकै:"** वामनावतार में आपके चरणकमल के दर्शन का आनन्द ठीक से नहीं मिला था परन्तु इसबार श्रीचरणों के दर्शन का हमारा सौभाग्य होगा।

मत्स्य-अश्व-कच्छप-नृसिंह-वराह-हंस-राजन्य-विप्र-विबुधेषु कृतावतार:।

त्वं पासि न: त्रिभुवनं च यथा-अधुना-ईश भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते।।10।2।40।।

सबकी रक्षा हेतु आपने मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंहदेव, वराह, हंस, राजा रामचन्द्र जी, परशुराम तथा देवों में वामन रूप में अवतरित हुए। अपनी कृपा से हमारी रक्षा करें। हे यदुश्रेष्ठ! आपको सादर नमस्कार है । माता देवकी को निर्भय करके समस्त देव तथा ऋषिगण गर्भगृह में भगवान्‌की प्रार्थना कर वापस लौट गये।

अथ सर्वगुणोपेत: काल: परमशोभन:।

यर्हि-एव-अजन-जन्म-ऋक्षं शान्त-ऋक्ष-ग्रहतारकम्। ।10।3।1। ।

शुभ मंगलमय समय में रोहिणी नक्षत्र तथा उसके सहवर्ती नक्षत्र उपस्थित हुए। दिशायें प्रसन्न हो गयीं, नदी, पहाड़ पशु-पक्षी आनन्द में मंगल संकेत देने लगे। हवन की अग्नि स्वत: प्रदीप्त हो उठी।

निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनार्दने।

देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णु: सर्वगुहाशय:।

आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कल:। ।10।3।8। ।

रात्रि के गहन अन्धकार का अन्त होने पर आया। देवस्वरूपिणी देवकी जी के शरीर से पूर्व के पूर्ण चन्द्रमा के समान तेजोमय भगवान् प्रकट हुए।

तमद्भुतं बालकम्-अम्बुज-ईक्षणं चतुर्भुजं शङ्ख-गदा: उदायुधम्।

श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभि-कौस्तुभं पीताम्बरं सान्द-पयोद-सौभगम्। ।10।3।9। ।

महार्ह-वैदूर्य-किरीट-कुण्डल-त्विषा परिष्वक्त-सहस्रकुन्तलम्।

उद्याम-काञ्ची-अङ्गद-कङ्कणादिभि: विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत। ।10।3।10। ।

सुन्दर कमल जैसी आँखें, शङ्ख, गदा आदि आयुधों के साथ चतुर्भुज स्वरूप, वक्षस्थल पर श्रीवत्स, गले में कौस्तुभ, नीले मेघ के समान शरीर पर पीताम्बर, वैदूर्य मणि का मुकुट, कुण्डल के तेज से प्रकाशित नीले लहराते बड़े-बड़े बाल, करधनी, बाजूबन्द, कंकण आदि से आभूषित अद्भुत् सौंदर्ययुक्त बालक ने वसुदेव जी को दर्शन दिया। पहले वसुदेव जी विस्मित हो गये कि क्या मुनियों को भी दर्शन नहीं देने वाले भगवान् स्वयं प्रकट हुए हैं, परब्रह्म क्या मनुष्य के गर्भ से आयेंगे, बालक स्वरूप में नंगा न होकर पूर्णतया अलंकृत हैं, क्या सचमुच कालों के काल भगवान् हमारे पुत्र बनकर आये हैं। वसुदेव जी भगवान्‌श्रीकृष्ण के अवतार को देख अतिप्रसन्न हुए तथा दस हजार गायें दान में देने का मन में संकल्प किया। हाथ जोड़कर नतमस्तक हो वे भगवान् की स्तुति करने लगे।वसुदेव जी ने भगवान्‌से कहा कि कंस ने आपके भाईयों का वध किया है। वह अब दौड़ा आयेगा।

अथैनमात्मजं वीक्ष्य महापुरुषलक्षणम्।

देवकी तमुपाधावत् कंसाद् भीता शुचिस्मिता:। ।10।3।23। ।

अपने पुत्र में भगवान्‌के सभी लक्षणों को देख माता देवकी कंस से डर गयी एवं मुस्कराते भगवान्‌की स्तुति करने लगी। विश्व के महाप्रलय के समय समस्त व्यक्त आप में सूक्ष्म अव्यक्त होकर समा जाते हैं। अन्त में आप ही रहते हैं और अनन्त-शेषनाग कहे जाते हैं। आप मुझे कंस के भय से मुक्त कीजिये। आप अपना स्वरूप ऐसा बदलिये जिससे पापी कंस यह न समझे कि आप मेरे गर्भ से उत्पन्न हुए हैं।

मर्त्यो मृत्यु-व्याल-भीत: पलायन् लोकान् सर्वान् निर्भयं न-अध्यगच्छत्।

त्वत्-पाद-अब्जं प्राप्य यदृच्छया-अद्य स्वस्थ: शेते मृत्यु: अस्मात्-अपैति। ।10।3।27। ।

काल सर्प के समान है जिसके डसने से मृत्यु होती है। देवकी जी भगवान्की शरणागति को चरम उपाय बताती हैं। भगवान्के भय से मृत्यु दूर भागती है। आपके अनुग्रह के कारण जब आपके चरणारविन्द की शरणागति मिलती है तब वह शान्ति एवं निर्भयता मिलती है। हे भगवन्! **"सतसंग एवं श्रीमद्भागवत"** का सेवन ही आपके आधिभौतिक चरणयुगल की प्राप्ति कराते है। "ज्ञान एवं भक्ति" आपके आध्यात्मिक चरणयुगल प्राप्त कराते हैं। आपके आधिदैविक चरणयुगल जिनका मैं साक्षात्दर्शन कर रही हूँ एकमात्र मेरे आश्रय हैं।

उपसंहर विश्वात्मन् अदो रूपमलौकिकम्।

शङ्ख-चक्र-गदापद्म-श्रिया जुष्टं चतुर्भुजम्। ।10।3।30। ।

इस शंख, चक्र, गदा, पदम्से विभूषित तथा श्री की शोभा से सम्पन्न अपने स्वरूप को समेट लीजिये जिससे मैं आपको छिपाने का कोई प्रयास करूँ। भगवान्ने ऐसा सुन कहा कि हे माता! आप स्वायंभुव मनु के कल्प में पृश्नि तथा वसुदेव जी सुतपा नामक पवित्र प्रजापति थे। आप लोगों ने सृष्टि रचना के पूर्व शान्त मन से मेरी पूजा की। आपके सामने जब मैं प्रकट हुआ तब आपने पुत्र प्राप्ति की कामना की। तब मैंने पृश्नि-गर्भ के रूप में जन्म लिया। अगले युग में आप दोनों अदिति एवं कश्यप हुए। मैं उपेन्द्र रूप से आपका पुत्र बना। अब तीसरी बार देवकी एवं वसुदेव के रूप में आप आये और मैं आपका पुत्र बना हूँ। आपलोगों को पूर्वजन्म का स्मरण दिलाने के लिए हमने चतुर्भुज स्वरूप धारण किया है। आप लोग मुझे पुत्र भाव से देखते रहेंगे परन्तु आप यह भी स्मरण रखें कि मैं भगवान् हूँ।

इति-उक्त्वा-आसीत्- हरिः तूष्णीं भगवान् आत्ममायया।

पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः। ।10।3।46। ।

इतना कहकर भगवान्मौन हो गये तथा अपनी आत्ममाया से माता-पिता के देखते-देखते एक नवजात छोटे शिशु के रूप में बदल गये। भगवत्प्रेरणा से वसुदेव जी नवजात शिशु को लेकर प्रसूति घर से बाहर निकले। सभी द्वार स्वतः खुल गये। सब सन्तरी सो गये।

ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्यन्त यथा तमो रवेः।

ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः शेषो-अन्वगाद् वारि निवारयन् फणैः। ।10।3।49। ।

सूर्य से अन्धकार जैसे दूर होता है उसी तरह सभी दरवाजे खुल गये। मन्द-मन्द वर्षा से भगवान्की रक्षा करने हेतु अनन्त-शेष भगवान्के ऊपर फन फैलाकर छाता बनगये और वसुदेव जी के पीछे-पीछे चलने लगे।

मघोनि वर्षति-असकृद्यम-अनुजा गम्भीर-तोय-ओघ-जव-उर्मि-फेनिला।

भयानक-आवर्त-शत-आकुला नदी मार्गं ददौ सिन्धुः इव श्रियः पतेः। ।10।3।50। ।

यमुना नदी वर्षा के जल के फेन एवं भयानक भँवरों से भर गयी। पूर्व में जैसे रामचन्द्र जी को समुद्र ने रास्ता दिया था उसी तरह यमुना नदी ने वसुदेव जी को पार करने का रास्ता दिया। वसुदेव जी जब नन्द के घर पहुँचे तब सब सोये थे। यशोदा जी के पलंग पर नवजात कन्या के रूप में योगमाया को उठा भगवान्श्रीकृष्ण को उसके स्थान पर रख दिया। प्रसूति के परिश्रम से थकी यशोदा सो गयी थी। वे यह नहीं जान सकी थी कि पुत्र ने जनम लिया है या कन्या ने। वसुदेव जी लौट आये तथा कन्या को देवकी जी के पलँग पर रख कर स्वयं कैदी की बेड़ी धारण कर लिये। सन्तरी शिशु की आवाज सुनकर जागे और उसने कंस को सूचित किया।घबराया हुआ खुले बाल लिये

कंस शीघ्र ही आ गया। देवकी जी ने विनय पूर्वक कन्या को छोड़ देने को कहा। परन्तु कंस ने कन्या को बलपूर्वक झपट कर छीन लिया। कन्या के पाँव पकड़ उसे एक पत्थर पर दे मारा। परन्तु वह पत्थर पर न गिरी और बीच से ही उड़कर आकाश में चली गयी।

सा तत्-हस्तात् समुत्पत्य सद्यो देवी-अम्बरं गता।

अदृश्यत-अनुजा विष्णोः सायुधा-अष्टमहाभुजा।।10।4।9।।

दिव्य-स्रग-अम्बर-आलेप-रत्न-आभरण-भूषिता।

धनुः शूल-इषु-चर्म-असि-शङ्ख-चक्र-गदाधरा।।10।4।10।।

भगवान्श्रीकृष्ण की छोटी बहन आकाश में अष्टभुज रूप मे दिखने लगी। फूल माला, चन्दन लेप, रत्नाभूषण एवं सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित उसके हाथों में धनुष, त्रिशूल, बाण, ढ़ाल, तलवार, शंख, चक्र तथा गदा शोभ रहे थे। आकाश से देवी ने कंस से कहा कि मूर्ख तेरा जन्मजात शत्रु तेरे वध के लिए अन्यत्र जन्म ले चुका है। निरपराध को तू व्यर्थ मत मार। वहाँ से लुप्त होकर स्वयं योगमाया देवी धरती पर शक्ति के अनेकों नाम से प्रकट होकर पूजित होने लगी। कंस ने देवकी-वसुदेव को कैद से मुक्त कर दिया। उनके पैरों पर पड़कर क्षमा माँगी। कंस ने कहा कि भविष्य वाणी में देवों ने भी झूठ बोला और मैं निरपराध बच्चों को मारता रहा। रात में ही उसने अपने मन्त्रियों से राय विमर्श की। उसके राज्य में दस दिन से कम या ज्यादा के सभी बच्चों का वध का निर्णय हुआ। सनातन विष्णु भगवान्के शरीर यज्ञादि कार्यो के सम्पादन में भी विघ्न डालना प्रारम्भ हो गया।

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकान् आशीष एव च।

हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महत्-अतिक्रमः।।10।4।46।।

शुकदेव जी ने कहा कि सन्तों को सताने से आयु, ऐश्वर्य, कीर्ति तथा लोगों का स्नेह क्षीण होने लगता है।

<u>10।2। श्रीकृष्ण जन्मोत्सव एवं भगवान्की बाल लीलायें।</u>

नन्दः तु-आत्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः।

आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिः अलङ्कृतः।।10।5।1।।

उदारमूर्ति नन्द जी ने पुत्र जन्म से प्रसन्न होकर ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया और स्वयं पवित्र होकर सजधज कर कुलदेवताओं की विधिवत पूजा की। ब्राह्मणों को गाय आदि भरपूर दान दिये गये।

कालने स्नानशौचाभ्यां संस्कारैः तपसा-इज्यया ।

शुध्यन्ति दानैः सन्तुष्ट्या द्रव्याणि-आत्मा-आत्मविद्यया।।10।5।4।।

अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे।

कृष्णे विश्वेश्वरे-अनन्ते नन्दस्य व्रजमागते।।10।5।13।।

शुकदेव जी ने कहा कि समय बीतने पर धरती तथा सम्पत्ति शुद्ध होती है। स्नान से शरीर शुद्ध होता है। संस्कारकर्म से जन्म शुद्ध होता है। तपस्या से इन्द्रियाँ शुद्ध होती हैं। पूजा एवं दान से भौतिक सम्पत्ति शुद्ध होती है। सन्तोष से मन शुद्ध होता है। नाम कीर्तन से आत्मसाक्षात्कार होकर आत्मा शुद्ध होती है। गीत-संगीत एवं दुन्दुभियों की ध्वनि से उत्सव का माहौल बना। क्योंकि अखिल विश्व के स्वामी अनन्तगुण सम्पन्न भगवान्श्रीकृष्ण का व्रज में आगमन हुआ है। व्रजवासियों ने घर सजाये। गायों तथा बछड़े आदि को हल्दी-तेल लगाकर सजाये गये।

गोप-गोपी एक दूसरे के ऊपर दूध-दही-मक्खन फेंक रहे थे। वसुदेव जी की पत्नी एवं बलदेव जी की माँ रोहिणी सब के स्वागत में व्यस्त थीं।

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान्।

हरेः निवास-आत्मगुणै रमा-आक्रीडम्-अभूत्-नृप। ।10।5।18। ।

भगवान्श्रीकृष्ण के आगमन से नन्द जी का व्रज लक्ष्मी जी का क्रीड़ास्थल बन गया। नन्द जी गोपों के साथ कंस को वार्षिक कर देने मथुरा गये। वसुदेव जी उनसे मिलने आये। प्रेमविह्वल नन्द जी ने वसुदेव जी को दोनों बाहों से बाँधकर उन्हें गले से लगाया। वसुदेव जी ने कहा कि बड़े सौभाग्य की बात है कि आपको बुढ़ापे में पुत्र प्राप्त हुआ है। कुशल-क्षेम के बाद उन्होंने रोहिणी के पुत्र बलदेव जी का समाचार पूछा। नन्द जी ने वसुदेव जी के सभी पुत्रों के वध पर शोक प्रकट करते हुए कहा कि सब कुछ प्रारब्ध के अधीन है। वसुदेव जी ने नन्द जी को शीघ्र व्रज लौटने को कहा क्योंकि असुरों का आतंक बढ़ा हुआ है।

<u>पूतना उद्धार</u>

नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिन्तयन्।

हरिं जगाम शरणम्-उत्पात-आगम-शङ्कितः। ।10।6।1। ।

न यत्र श्रवण-आदीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु।

कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुः यातुधान्यः च तत्र हि। ।10।6।3। ।

रास्ते में लौटते समय वसुदेव जी की आशंका स्मरण कर नन्द जी ने भगवान् श्रीहरि की शरण ली। शुकदेव जी राजा परीक्षित से आगे कहते हैं कि जहाँ भक्तगण श्रीहरि की कथा के श्रवण तथा कीर्तन में लगे रहते हैं वहाँ दुष्ट जन कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकते।कंस ने व्रज के नवजात शिशुओं को मारने के लिए पूतना नामक एक राक्षसी को भेजा। नगर तथा गाँव में घूमकर वह शिशुओं का प्राण हर रही थी। एक सुन्दर स्त्री के रूप में वह नन्द जी के घर में घुसी। गोपियों ने सोचा कि लक्ष्मी जी स्वयं भगवान्श्रीकृष्ण से मिलने आयी हैं। उसने जब भगवान्को उठाकर अपनी गोद में लिया तो किसी ने रोका नहीं। भगवान् उसके कुकृत्य से अवगत हो चुके थे अतः उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर लीं। विष से चुपड़े अपने स्तन को जब पूतना ने भगवान्के मुँह में डाले तब भगवान्ने उसके कुकृत्यों पर रोष प्रकट करते हुए स्तन के दूध के साथ उसके प्राण भी चूसने लगे। मर्मान्तक कष्ट से पूतना जोर-जोर से चिल्लाने लगी।उसका असली रूप प्रकट हो गया। भगवान् उसके स्तन से लिपटे थे। पूतना गौशाला के बाहर प्राणहीन धरती पर गिर गयी। भगवान् स्तन पर खेल रहे थे। गोपियों ने शीघ्र ही भगवान्को उठा लिया।रोहिणी तथा अन्य गोपियों के साथ यशोदा जी ने उनकी की रक्षा के उपचार किया।

गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनः गोरजसा-अर्भकम्।

रक्षां चक्रुश्च शकृता द्वादश-अङ्गेषु नामभिः। ।10।6।20। ।

अव्यात्-अजः अङ्घ्रि मणिमान्-तव जानु-अथ-उरू यज्ञो-अच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः।

हृत् केशवः त्वत्-उरः ईश इनः-तु कण्ठं विष्णुर्भुजं मुखम्-उरुक्रम ईश्वरः कम्। ।10।6।22। ।

उनके शरीर में गोमूत्र-गोरज लगा शरीर के बारह अंगों पर गोबर से भगवान्के बारह नामों को अंकित किया। भगवान् अज आपके पाँवों की, मणिमान घुटनों की, यज्ञ जंघाओं की, अच्युत कमर की, हयग्रीव उदर की, केशव हृदय की, ईश छाती की, सूर्यनारायण कण्ठ की, विष्णु बाहु की, त्रिविक्रम मुख की, ईश्वर मस्तक की रक्षा करें।

चक्री-अग्रत: सहगदो हरि: अस्तु पश्चात्त्वत्-पार्श्वयो: धनु: असी मधुहा-अजनश्च।
कोणेषु शङ्ख उरुगाय उपरि-उपेन्द्र: तार्क्ष्य: क्षितौ हलधर: पुरुष: समन्तात्। ।10।6।23। ।

भगवान् चक्री आगे से, गदाधारी हरि पीछे से, धनुषधारी मधुसूदन एवं खड्गधारी अजन दोनों पार्श्वों से, शंखधारी दोनों कोणों से, उपेन्द्र ऊपर से, गरुड धरती पर, परमपुरुष हलधर चारो तरफ से आपकी रक्षा करें।

इन्द्रियाणि हृषीकेश: प्राणान् नारायणो-अवतु।
श्वेतद्वीप-पति: चित्तं मनो योगेश्वरो-अवतु। ।10।6।24। ।
पृश्निगर्भ: तु ते बुद्धिम्-आत्मानं भगवान् पर:।
क्रीडन्तं पातु गोविन्द: शयानं पातु माधव:। ।10।6।25। ।
व्रजन्तम्-अव्याद् वैकुण्ठ आसीनं त्वया श्रिय: पति:।
भुञ्जानं यज्ञभुक् पातु सर्वग्रह-भयङ्कर:। ।10।6।26। ।

हृषीकेश भगवान्इन्द्रियों की, नारायण प्राण की, श्वेतद्वीप के स्वामी चित्त की, योगेश्वर मन की, पृश्निगर्भ बुद्धि की, पुरुषोत्तम आत्मा की, खेलते समय गोविन्द, सोते समय माधव, चलते समय भगवान्वैकुण्ठ, बैठते समय लक्ष्मीपति नारायण तथा दुष्टग्रहों को भयभीत करने वाले यज्ञभुक्भगवान्भोजन के समय रक्षा करें। भगवान् विष्णु के नाम से भूत, प्रेत तथा डाकिनी आदि दूर भाग जाते हैं। यशोदा जी ने बालक श्रीकृष्ण की मन्त्रों से रक्षा के उपरान्त दूध पिलाकर बिस्तर पर लिटा दिया। रास्ते में लौटते समय नन्द जी ने पूतना के शरीर को देख वसुदेव जी की भविष्यवाणी को सही पाया। व्रजवासियों ने पूतना के शरीर को खण्ड-खण्ड कर जला दिये। भगवान् से स्पर्श होने से उसके शरीर की धुँआ से सुगन्ध आ रहा था। पूतना बालघातिनी थी परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण को स्तनपान कराने से परमपद को प्राप्त हो गयी। नन्द जी उनको गोद में ले आनन्द-मुग्ध हो गये।

शकट-भञ्जन, तृणावर्त का वध तथा यशोदा जी को ब्रह्माण्ड दर्शन

येन येन-अवतारेण भगवान् हरिरीश्वर:।
करोति कर्ण-रम्याणि मनोज्ञानि च न: प्रभो। ।10।7।1। ।
कदाचित्-औत्थानिक-कौतुक-आप्लवे जन्मर्क्षयोगे समवेत-योषिताम्।10।7।4। ।
औत्थानिक-औत्सुक्य-मना मनस्विनी समागतान् पूजयती व्रजौकस:। ।10।7।6। ।

राजा परीक्षित शुकदेव जी से कहते हैं कि भगवान्के विभिन्न अवतारों की लीला कथायें सुनने में कान को प्रिय लगते हैं तथा मन को आनन्द मिलता है। इससे भक्ति बढ़ती है तथा भक्तों से स्नेह बढ़ता है। शुकदेव जी भगवान्श्रीकृष्ण की अन्य बाललीला को सुनाते हैं। जब भगवान्श्रीकृष्ण तीन माह के हुए तथा करवट बदलने लगे तब घर से बाहर आँगन में उनके जन्म नक्षत्र रोहिणी के दिन यशोदा जी ने वैदिक रीति से वाद्य गीतादि के साथ पड़ोसियों की उपस्थिति में धूम -धाम से इस उत्सव को मनाया। यशोदा जी आगन्तुकों के सम्मान में व्यस्त थीं। भगवान्श्रीकृष्ण

को एक छकड़े के नीचे सुला रखी थी। (भूख से दूध के लिए - द्रष्टव्य विष्णु पुराण **5।6।1 "...स्तन्यार्थी प्ररुरोद ह**। भागवत में दूध के लिए भगवान् राने लगे ऐसा उल्लेख नहीं है)। भगवान्रोने लगे। माता सुन नहीं पायीं। तब भगवान्श्रीकृष्ण ने नन्हें कोमल पैरों को खूब उछाला तथा छकड़े को जिसके नीचे वे सो रहे थे चकनाचूर कर दिया। छकड़े पर रखे सामान भी बिखर गये तथा क्षतिग्रस्त हो गये। छकड़े पर एक शकट असुर छिपा था जिसका अन्त भगवान्ने किया था। माता ने पुरोहितों से बच्चे की ग्रह-शान्ति करायी। भागवत में शकटासुर का नाम नहीं है परन्तु ब्रह्माण्ड पुराण में इसका उल्लेख है। भागवत में मात्र ग्रह-शंका की बात है।

भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता।

महापुरुषम्-आदध्यौ जगताम्-आस कर्मसु।।10।7।19।।

एक वर्ष बीत जाने पर एक दिन यशोदा जी बच्चे को गोद में लिये बैठी थी। भगवान् गोद में इतने भारी लगने लगे कि यशोदा जी ने उनको जमीन पर बैठा दिया। अनहोनी के निवारण के लिए भगवान्श्रीहरि का चिन्तन करने लगी और घर के काम में लग गयी। उस समय कंस का सेवक तृणावर्त तूफान के साथ वहाँ आया तथा भगवान्श्रीकृष्ण को उड़ाकर आकाश में ले गया। सर्वत्र धूल से अंधकार छा गया। माता यशोदा बालक श्रीकृष्ण को खोजने लगी परन्तु वे नहीं मिले। सभी रोने लगे। वह असुर भगवान्श्रीकृष्ण के भार को सम्भाल नहीं पा रहा था। भगवान्श्रीकृष्ण ने आकाश में असुर को गले दबा कर मार दिया और उस असुर का शरीर व्रजक्षेत्र में गिरा तथा बालक श्रीकृष्ण उसकी छाती पर खेल रहे थे। तूफान शान्त हो चुका था। सबों ने बालक श्रीकृष्ण को असुर के मृत शरीर पर बैठा खेलते हुए देखा। गोपियों ने बच्चे का लाकर माता-पिता को दे दिया।

अहो बत-अति-अद्भुतम्-एष रक्षसा बालो निवृत्तिं गमितो-अभ्यगात् पुनः।

हिंस्रः स्वपापेन विहिंसतः खलः साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते।।10।7।31।।

कितना अद्भुत आश्चर्य था कि बालक राक्षस से सुरक्षित विना चोट खाये लौट आया। निर्दोष भक्त की रक्षा भगवान् स्वयं करते हैं और पापी को उचित दण्ड देते हैं।

<u>यशोदा जी को भगवान् श्रीकृष्ण के मुँह में ब्रह्माण्ड का दर्शन</u>

एकदा-अर्भकम्-आदाय स्वाङ्कमारोप्य भामिनी।

प्रस्नुतं पाययाम्-आस स्तनं स्नेहपरिप्लुता।।10।7।34।।

खं रोदसी ज्योतिः अनीकम्-आशाः सूर्य-इन्दु-वह्नि-श्वसन-अम्बुधीन्च।

द्वीपान् नगान्-तत्-दुहितॄः वनानि भूतानि यानि स्थिर-जङ्गमानि।।10।7।36।।

एक बार यशोदा जी बच्चे को गोद में लेकर स्तन से चूते दूध प्रेम से उन्हें पिलाने लगीं। इसी बीच बालक श्रीकृष्ण ने जम्भाई ली तथा उनके मुँह को चूमते हुए यशोदा जी ने उसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को देखा। वे भय से काँपते हुए आँखें बन्द कर लीं। उसमें आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योतिमण्डल, दिशायें, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्व त, नदियाँ, वन और समस्त चराचर प्राणी विराजमान दिखे। इसके उपरान्त एक बार गोप बालकों ने बालक

श्रीकृष्ण की मिट्टी खाने की शिकायत यशोदा जी से की। उस समय भी मुँह में माँ मिट्टी देखने लगी तब समस्त ब्रह्माण्ड दिखा। द्रष्टव्य **10।8।37 से 39।।**

<u>गर्गमुनि द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण का नामकरण संस्कार</u>

गर्गः पुरोहितो राजन् यदूनां सुमहातपाः।

व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेव-प्रचोदितः। ।10।8।1।।

वसुदेव जी ने अपने कुल पुरोहित महातपस्वी गर्ग मुनि को नन्द जी के घर भेजा। उनका स्वागत-सत्कार करने के बाद नन्द जी ने दोनों बालकों का नामकरण संस्कार सम्पन्न करने की विनती की। मनु के अनुसार बारह संस्कार हैं - गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन्, जातकर्म, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, उपनयन, केशान्त, समावर्तन और विवाह। अन्य चार संस्कार भी हैं - कर्णवेध, विद्यारम्भ, वेदारम्भ तथा अन्त्येष्टि। गर्गमुनि ने नन्द जी को समझाया कि क्योंकि मैं यदुवंश का पुरोहित हूँ और जब मैं इनका नाम संस्कार करूँगा तब कंस इन्हें देवकी का पुत्र समझ लेगा। नन्द जी ने उन्हें गोशाला में छिपकर एकान्त स्थान में नाम संस्कार करने का अनुरोध किया। गर्गमुनि ने वैसा ही किया।

अयं हि रोहिणीपुत्रो रमयन् सुहृदो गुणै:।

आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद् बलं विदु:।

यदूनाम्-अपृथक्-भावात्सङ्कर्षणम्-उशन्ति-उत। ।10।8।12।।

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतो-अनुयुगं तनू:।

शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गत:। ।10।8।13।।

प्रागयं वसुदेवस्य क्वचित्-जात: तवात्मज:।

वासुदेव इति श्रीमान्अभिज्ञा: सम्प्रचक्षते। ।10।8।14।।

ये रोहिणी के पुत्र सबको आराम देंगे इसलिए राम कहे जायेंगे तथा अत्यन्त बलवान होने के कारण बल कहे जायेंगे। बलराम नाम से ये प्रसिद्ध होंगे। वसुदेव जी एवं नन्द जी के परिवार को जोड़ने वाले होने से संकर्षण भी कहे जायेंगे। ये दूसरे छोटे बालक प्रत्येक युग में अवतार लेते हैं। कभी श्वेत, कभी लाल तथा कभी पीले वर्ण के होते हैं। अभी इनका वर्ण श्याम है अत: इनका नाम श्रीकृष्ण हुआ। पहले ये वसुदेव जी के पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुए थे। इन्हें श्रीमान्-श्रीपति तथा वासुदेव नाम से भी पुकारा जायेगा।

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते।

गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जना:। ।10।8।15।।

आपके पुत्र के अनेकों नाम तथा रूप हैं। इनके नाम के अनुरूप गुण तथा लीला गिनती के परे हैं। इनमें से कुछ को मैं जानता हूँ परन्तु सामान्य जन नहीं जानते। ये आपलोगों को सभी आपदाओं से बचाते रहेंगे।

य एतस्मिन् महाभागा: प्रीतिं कुर्वन्ति मानवा:।

न-अरयो-अभिभवन्ति-एतान् विष्णु-पक्षान्इव-असुरा:। ।10।8।18।।

तस्मात्-नन्दात्मजो-अयं ते नारायण-समो गुणै:।

श्रिया कीर्त्या-अनुभावेन गोपायस्व समाहित:। ।10।8।19। ।

जो इन्हें भगवान्जानकर इनकी भक्ति करेंगे वे शत्रुओं से निर्भय रहेंगे। जैसा कि भगवान्विष्णु को भजने वाले को असुर गण कुछ नहीं बिगाड़ पाते। हे नन्द जी ! आपके ये लाल श्री, कीर्ति तथा गुण में स्वयं नारायण हैं। आप इनका लालन-पालन तथा इनकी रक्षा सावधानी से करेंगे। पश्चात् गर्गमुनि अपने आश्रम लौट गये।

नटखट नन्दकिशोर

कालेन व्रजताल्पेन गोकुले रामकेशवौ।
जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजह्तु:। ।10।8।21। ।

कुछ समय बीतने पर दोनों भाई राम तथा श्रीकृष्ण जी हर्षित होकर घुटने एवं हाथ के बल आँगन में रेंगने लगे।कीचड़ में पैर घसीटते कमरधनी का घुँघरु बजाते बाहर अनजान के पीछे भी जाते और पुन: यशोदा जी के पास लौट आते। कुछ अवस्था बढ़ने पर बछड़ों की पूँछ को घसीटते हुए सबको आनन्दित करने लगे।

कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम्।
श्रृण्वत्या: किल तत्-मातु: इति होचु: समागता। ।10।8।28। ।
वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोश-सञ्जात-हास:
स्तेयं स्वादु-अत्ति-अथ दधि पय: कल्पितै: स्तेय-योगै:।
मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेत्-न-अत्ति भाण्डं भिनत्ति
द्रव्यालभे स गृहकुपितो याति-उपक्रोश्य तोकान्। ।10।8।29। ।
हस्त-अग्राह्ये रचयति विधिं पीठक-उलूखल-आद्यै:
छिद्रं हि अन्त: निहित-वयुन: शिक्य-भाण्डेषु तद्वित्।
ध्वान्त-आगारे धृतमणिगणं स्वाङ्गम्-अर्थ-प्रदीपं
काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्र-चित्ता:। ।10।8।30। ।

बालक श्रीकृष्ण की आकर्षक बाल-चपलता को गोपियाँ यशोदा जी को सुनातीं। गाय दुहने का समय नहीं होने पर भी बछड़ों को खोल देता है। जब कुपित हो उसे डाँटना चाहती हूँ तब ऐसा मुस्कराता कि हम भी हँसने लगते हैं। चोरी की नयी-नयी युक्ति निकाल दूध तथा दही खाता है और खाने के पहले बन्दरों को बाँटता है। पेट भर जाने पर दूध-दही का पात्र फोड़ देता है। जिस घर में मक्खन आदि नहीं मिलते वहाँ सोते बच्चे को रुलाकर चल देता है। ऊँचे छीके से लटकते वर्तन को पीढ़ा एवं ऊखल लगाकर प्राप्त कर लेता है। नहीं पहुँचने पर उसमें नीचे से छेद कर देता है। सब जानता है कि किस वर्तन में क्या है। अन्धेरे घरों को अपने अंगों के प्रकश से प्रकाशित कर देता है। जब हमलोग घर के काम में व्यस्त रहती हैं तब यह सब काम चुपके से करता है। हमारे साफ सुथरे घरों में मल-मूत्रादि विसर्जन कर भाग आता है। गोपियाँ हँसती हुई जब यशोदा जी को यह सब सुनाती तब यशोदा जी को हँसी आ जाती और बालक श्रीकृष्ण पर क्रोध भी नहीं कर पातीं।

यशोदा जी को पुन: ब्रह्माण्ड दर्शन

मुँह में मिट्टी के बहाने बालक श्रीकृष्ण ने माँ यशोदा को फिर से ब्रह्माण्ड का दर्शन कराया। इसके पूर्व दूध पीते समय जम्हाई लेते हुए ब्रह्माण्ड की झाँकी दिखायी थी - द्रष्टव्य **10।7।34-36।।**

एकदा क्रीडमानास्ते रामाद्या गोपदारकाः।

कृष्णो मृदं भक्षितवान्इति मात्रे न्यवेदयन्।।10।8।32।।

एक बार पड़ोस के गोप बालकों एवं बलराम जी ने श्रीकृष्ण द्वारा मिट्टी खाने की शिकायत यशोदा माता से की। बालक श्रीकृष्ण सब को झूठा कहते रहे परन्तु माता ने उन्हें मुँह खोलकर दिखाने को कहा।

सा तत्र ददृशे विश्वं जगत् स्थास्नु च खं दिशः।

स-अद्रि-द्वीप-अब्धि-भूगोलं स-वायु-अग्नि-इन्दु-तारकम्।।10।8।37।।

ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान् वियत्-एव च।

वैकारिकाणि-इन्द्रियाणि मनो मात्रा गुणास्त्रयः।।10।8।38।।

एतद्विचित्रं सह जीवकाल-स्वभाव-कर्माशय-लिङ्गभेदम्।

सूनोः तनौ वीक्ष्य विदारित-आस्ये व्रजं सहात्मनम्-अवाप शङ्काम्।।10।8।39।।

बालक श्रीकृष्ण के मुँह में चराचर विश्व दिखा। अन्तरिक्ष, दिशायें, द्वीप, पर्वत, सागर, प्रवाहित वायु, विद्युत, चन्द्र, तारागण, जल, अग्नि, वायु, आकाश, शब्दादि विषयों के साथ सर्वेन्द्रियाँ, सत्व, रज, तम, मन, जीव, स्वभाव, काल, कर्म तथा वासना आदि का लिंग-शरीरों का सारा विचित्र विश्व एक ही साथ दिख पड़ा। विराट जगत में स्वयं को भी समस्त व्रज धाम के साथ उस दृश्य में देखकर यशोदा जी अपने पुत्र के स्वभाव पर शंकालु होकर भयभीत हो गयीं। सोचने लगीं कि यह स्वप्न है या मेरे पुत्र की योगशक्ति ? कुछ नहीं समझ यशोदा जी उनकी स्तुति करने लगीं।

अहं मम-असौ पतिः एष मे सुतो व्रजेश्वरस्य-अखिल-वित्तपा सती।

गोप्यश्च गोपाः सहगोधनाश्च मे यत्-मायया-इत्थं कुमतिः स मे गतिः।।10।8।42।।

मैं नन्दरानी व्रजेश्वर नन्द जी के सारे ऐश्वर्य की स्वामिनी हूँ। ये मेरे पुत्र हैं। समस्त गोधन एवं गोप-गोपियाँ मेरे अधीन हैं। मेरी यह कुमति भगवान्श्रीकृष्ण की माया के कारण है। मैं इनकी शरण ग्रहण करती हूँ। यशोदा जी को सच्चाई का ज्ञान हो आया परन्तु पुनः भगवान्की माया से वे पुत्र-वात्सल्य में लीन हो गयीं।

<u>नन्द - यशोदा के पूर्व जन्म का वृतान्त</u>

राजा परीक्षित पूछते हैं कि नन्दराय का कौन सा पुण्य था कि भगवान्की बाललीला का पूर्ण आनन्द मिला जबकि देवकी-वसुदेव इस आनन्द से वञ्चित रहे। शुकदेव जी ने कहा कि पहले नन्द जी द्रोण नामक एक वसु थे। इनकी पत्नी यशोदा का तत्कालीन नाम धरा था। दोनों दम्पति ने ब्रह्मा से निवेदन किया था कि धरती पर जब हमलोगों का जन्म हो उस समय भगवान्श्रीकृष्ण की लीला के आनन्द का लाभ मिले। ब्रह्मा ने “ऐसा ही होगा” का वरदान दिया।

ततो भक्तिः भगवति पुत्रीभूते जनार्दने।

दम्पत्यो-नितराम्-आसीद् गोप-गोपीषु भारत।।10।8।51।।

कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः।

सहरामो वसन्-चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया। ।10।8।52। ।

इस जन्म में जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण इनके पुत्र हुए। समस्त गोपों की अपेक्षा श्रीकृष्ण को पुत्र रूप में प्राप्त नन्द-यशोदा का उनमें अत्यन्त अनुराग हुआ। ब्रह्मा के वचन को सत्य करने के लिए भगवान् विभु बलदाऊके साथ श्रीकृष्ण के रूप में आकर व्रज में बस गये।

ऊखल बन्धन

एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी।
कर्मान्तर-नियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि। ।10।9।1। ।
यानि यानि-इह गीतानि तत्-बाल-चरितानि च।
दधि-निर्मन्थने काले स्मरन्ति तानि-अगायत। ।10।9।2। ।
तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नन्तीं जननीं हरिः।
गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत्-प्रीतिम्-आवहन्। ।10।9।4। ।

घर की सेविकाओं को अन्य काम में लगाकर यशोदा जी एकबार स्वयं दही मथने लगीं। बालक श्रीकृष्ण के कृत्यों को स्मरण कर उसे गीत में निबद्ध कर आनन्द से गा रही थीं। दूध पीने की इच्छा से बालक श्रीकृष्ण आये और माता की मथानी को प्रेम से पकड़कर दही मथने से रोक दिया। यशोदा जी उन्हें स्तन से टपकते दूध पिलाने लगी। इसी बीच दूध को उफनते देख उन्हें गोद से नीचे धरती पर बैठाकर स्वयं दूध के पास चली गयीं।

सञ्जातकोपः स्फुरित-अरुण-अधरं संदश्य दद्भिः दधिमन्थ-भाजनम्।
भित्त्वा मृषा-अश्रुः दृषत्-अश्मना रहो जघास हैयङ्गवम्-अन्तरं गतः। ।10।9।6। ।

नकली आँसू बहाते क्रोध से अपने लाल अधरों को दाँतों से काटते हुए बालक श्रीकृष्ण ने दही के पात्र को एक कंकड़ मारकर फोड़ दिया। तत्पश्चात्वे ताजा मक्खन के घर में घुस गये। दही की हाँड़ी को फूटी देख यशोदा जी ने देखा कि बालक श्रीकृष्ण वहाँ से गायब हैं। इतने में देखती हैं कि ऊखल पर बैठ छीके से मक्खन लेकर वे बन्दरों को बाँट रहे हैं। हाथ में छड़ी लिये आती यशोदा जी को देख वे ऊखल से उतर कर भागने लगे।

गोपी-अन्वधावत्-न यम्-आप योगिनां क्षमं प्रवेष्टुं तपसा-ईरितं मनः। ।10।9।9। ।
कृत-आगसं तं प्ररुन्दतम्-अक्षिणी कर्षन्तम्-अञ्जत्-मषिणी स्वपाणिना।
उद्वीक्षमाणं भयविह्वल-ईक्षणं हस्ते गृहीत्वा भिषयन्ती-अवागुरत्। ।10।9।11। ।

पकड़ने के लिए माँ उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगी जिनको तपस्या में लीन योगीजन अपने मन में भी नहीं पकड़ पाते। अन्त में वे पकड़ लिये गये। अपना अपराध मानते हुए वे भय से रोते हुए हाथों से मलकर आँख के अंजन को समूचे मुँह पर स्याही की तरह फैला लिए। माँ उनका हाथ पकड़ धीरे-धीरे डाँटने लगी। हाथ की छड़ी फेंक यशोदा जी उन्हें बाँधने का मन बनाने लगीं।

न च-अन्तः न बहिः यस्य न पूर्वं नापि चापरम्।
पूर्वापरं बहिः च अन्तः जगतो यो जगत्-च यः। ।10।9।13। ।
तं मत्वा-आत्मजम्-अव्यक्तं मर्त्य-लिङ्गम्-अधोक्षजम्।
गोपिका-उलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा। ।10।9।14। ।

व्यापक ब्रह्म को जिनका न तो आदि-अन्त है, जो भीतर बाहर नहीं दिखते, जिनकी पूर्व की कोई कल्पना नहीं की जा सकती, जो पहले भी थे और बाद में भी रहेंगे उस इन्द्रियातीत को यशोदा जी मनुष्य बालक के रूप में अपना पुत्र मानते हुए ऊखल में रस्सी से बाँधने लगीं। परन्तु रस्सी दो अंगुल छोट पड़ गयी। दूसरी रस्सी ले आई परन्तु वह भी दो अंगुल छोटी पड़ी। उसमें अन्य रस्सी भी जोड़ी परन्तु सब दो अंगुल छोटी होती गयीं।

एवं स्वगेह-दामानि यशोदा सन्धति-अपि।
गोपीनां सु-स्मयन्तीनाम्स्मयन्ती विस्मिता-अभवत्।।10।9।17।।
स्वमातु: स्विन्न-गात्राया विस्रस्त-कबर-स्रज: ।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्ण: कृपया-आसीत्-स्वबन्धने।।10।9।18।।
एवं संदर्शिता हि-अङ्ग हरिणा भृत्य-वश्यता।
स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे।।10।9।19।।

अन्य गोपियाँ भी देख कर आनन्द में विस्मित हो रही थी कि यशोदा जी ने घर की सारी रस्सियों को जोड़ दिया परन्तु वह छोटी ही पड़ी। माता को अन्यथा परिश्रम के पसीने से तर-बतर तथा जूड़े से गिरते फूल को देख बालक श्रीकृष्ण ने उनपर कृपा की एवं अपने आप बँध गये। राजा परीक्षित को शुकदेव जी कहते हैं कि सर्वथा स्वतन्त्र हरि, जिनके वश में शिव-ब्रह्मादि समस्त देवगण हैं, वे भक्त के वश में होकर स्वयं बँध गये।

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्री: अपि-अङ्ग-संश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्-तत्प्राप विमुक्तिदात्।।10।9।20।।

ब्रह्मा, शंकर तथा वक्षस्थल पर विराजने वाली श्रीहरि की अर्द्धांगिनी लक्ष्मी जी ने भी भगवान्‌की उस प्रसन्नता को न प्राप्त कर सकीं जो दृढ़ भक्ति के सहारे यशोदा जी ने भगवान्‌श्रीकृष्ण से प्राप्त कर ली।

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुत:।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमताम्-इह।।10।9।21।।

जितनी सुगमता से भगवान् यहाँ भक्तों को प्राप्त हो जाते हैं उतनी सुगमता से देहाभिमानी, तपस्वी तथा आत्मज्ञानियों को भी नहीं मिलते।भगवान् ऊखल में बँधे थे और माता यशोदा अन्य घरेलू काम में व्यस्त हो गयीं।

यमलार्जुन वृक्षों का उद्धार

कुबेर के दो पुत्रों नलकूवर तथा मणिग्रीव को धन एवं ऐश्वर्य का अभिमान था। सुन्दर नारियों के साथ नग्नावस्था में जलक्रीड़ा करते समय दोनों ने देवर्षि नारद की उपेक्षा की थी।

साधूनां समचित्तानां मुकुन्द-चरण-एषिणाम्।
उपेक्ष्यै: किं धन-स्तम्भै: असद्भि: असत्-आश्रयै:।।10।10।18।।

जो भगवान्मुकुन्द के चरणारविन्द का सेवाभिलाषी, सबके हितकारी तथा समभाव से देखने वाले सन्तगण हैं, उनके लिए धन से मतवाले दुराचारी सदा उपेक्षा के पात्र रहते हैं। फलत: उनके शाप से ये दोनों जोड़ा रूप में जड़वत अर्जुन के वृक्ष होकर यशोदा जी के आँगन के बाहरी छोर पर विराज गये थे। नारद जी ने अनुग्रह से यह बताया था कि एक सौ देववर्ष बाद उनदोनों का भगवान् के दर्शन से उद्धार हो जायेगा। नारद जी की बात को सत्य करने

के लिए भगवान्श्रीकृष्ण ऊखल में बँधे-बँधे उसे घसीटते हुए दोनों अर्जुन वृक्ष के पास गये। ऊखल दोनों वृक्ष के बीच में जा फँसा।

बालेन निष्कर्षयता-अन्वक्-उलूखलं तद्दाम-उदरेण तरसा-उत्कलित-अङ्घ्रि-बन्धौ।
निष्पेततुः परमविक्रमित-अतिवेप-स्कन्ध-प्रवाल-विटपौ कृत-चण्ड-शब्दौ।।10।10।27।।

पेट के ऊपर बन्धी रस्सी वाले दामोदर भगवान्ने ऊखल को खींच कर दोनों वृक्षों को जड़ से उखाड़ दिया। टहनी तथा पत्ते समेत भयंकर रूप से हिलते हुए कर्कश आवाज के साथ दोनों वृक्ष भूमि पर गिर गये। दोनों वृक्षों से अग्नि के समान दिशाओं को प्रकाशित करते हुए दो तेजस्वी पुरुष प्रकट हुए।

तत्र श्रिय परमया ककुभः स्फुरन्तौ सिद्धौ-उपेत्य कुजयोः इव जातवेदाः।
कृष्णं प्रणम्य शिरसा-अखिल-लोकनाथं बद्धाञ्ज्ली विरजसौ-इदम्-ऊचतुः स्म।।10।10।28।।
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् त्वम्-आद्यः पुरुषः परः।
व्यक्त-अव्यक्तम्-इदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः।।10।10।29।।
नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल।
वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः।।10।10।36।।

दोनों रजोगुण के अहंकार से मुक्त थे। अखिल लोक के स्वामी भगवान्श्रीकृष्ण को दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए स्तुति करने लगे। हे सर्वोच्च आदि-पुरुष श्रीकृष्ण प्रभु ! विद्वान सन्तगण जानते हैं कि विराट विश्व स्थूल-सूक्ष्म रूप से आपका ही स्वरूप है। परमकल्याण एवं विश्व मंगलकारी यदुकुल नायक को नमस्कार है।

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोः नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवास-जगत्-प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्-तनूनाम्।।10।10।38।।

हमारी वाणी आपके गुणानुवाद में, कान कथा सुनने में, हमारे हाथ एवं कर्मेन्द्रियाँ आपकी सेवा में, मन आपके चरणाविन्द के स्मरण में, मस्तक आपको तथा आपके निवास स्थान गोकुल-व्रज को प्रणाम करने में तथा आँखें आपके श्रीविग्रह स्वरूप सन्तों के दर्शन में आनन्द लें।

इत्थं संकीर्तितः ताभ्यां भगवान् गोकुलेश्वरः।
दाम्ना च-उलूखले बद्धः प्रहसन्-आह गुह्यकौ।। 10।10।39।।
साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्-कृत-आत्मनाम्।
दर्शनात्-नो भवेद्बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुः यथा।।10।10।41।।

दोनों यक्षों की प्रार्थना सुनकर ऊखल से बँधे दामोदर भगवान्ने हँसते हुए कहा। नारद जी की कृपा है कि तुम्हारा कल्याण हुआ। जैसे सूर्य से अन्धकार दूर हो जाता है वैसे ही मुझमें समाहित रहने वाले सन्तों के दर्शन से भव-बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाता है। अब आपलोग अपने लोक जायें। ऊखल में बँधे दामोदर भगवान्की परिक्रमा कर नलकूवर एवं मणिग्रीव भगवान्की अनुमति से अपने धाम चले गये। गोपगण पेड़ गिरने की आवाज से वहाँ पहुँचे तथा कुछेक ने आँखों देखी घटना सुनायी। गर्ग मुनि की बातों का स्मरण कर नन्द जी आश्वस्त हो गये कि यह करतूत नारायण स्वरूप बालक श्रीकृष्ण की ही है।

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजम्।
विलोक्य नन्दः प्रहसत्-वदनो विमुमोच ह।।10।11।6।।

अपने पुत्र को रस्सी से बन्धे ऊखल को खींचते देखकर आनन्दित नन्द जी ने उनका बन्धन खोल दिया।

गोप-गोपियों का मनोरंजन तथा फल बेचने वाली पर अनुग्रह

गोपिभिः स्तोभितः अनृत्यद् भगवान् बालवत् क्वचित्।
उद्गायति क्वचित्-मुग्धः तत्-वशो दारु-यन्त्रवत्।।10।11।7।।
बिभर्ति क्वचित्-आज्ञप्तः पीठक-उन्मान-पादुकम्।
बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिम्-आवहन्।।10।11।8।।
दर्शयन् तत्-विदां लोक आत्मनो भृत्यवश्यताम्।
व्रजस्य-उवाह वै हर्षं भगवान् बाल-चेष्टितैः।।10।11।9।।

गोपियों से उत्प्रेरित होकर भगवान्श्रीकृष्ण कठपुतली की तरह नाचते तथा गा कर सब को मुग्ध करते। कभी कोई पीढ़ा, नपना या खड़ाउँ लाने को कहता तो ऐसे लाते जैसे बहुत श्रम पड़ रहा हो। कोई कुश्ती करने कहता तो ताल ठोककर तैयार हो जाते। व्रजवासियों को मुग्ध करते भगवान्ने भक्तों के वश में रहना स्वीकार किया।

क्रीणीहि भोः फलानीति श्रुत्वा सत्वरम्-अच्युतः।
फलार्थी धान्यम्-आदाय ययौ सर्वफलप्रदः।।10।11।10।।
फल-विक्रयिणी तस्य च्युत-धान्यं करद्वयम्।
फलैः अपूरयद् रत्नैः फल-भाण्डम्-अपूरि च।।10।11।11।।

एक बार फल बेचने की आवाज सुन समस्त यज्ञ-तप आदि के फल देने वाले अच्युत भगवान्बालक श्रीकृष्ण कुछ अनाज ले अन्न को गिराते उसके पास पहुँचे। फलवाली ने उनकी अंजली को फल से भर दिया। भगवान् ने उसकी टोकरी को रत्नों से भर दिया। खेल में मग्न दोनों भाईयों को मातायें बहुत मुश्किल से लाकर दूध पिलातीं तथा भोजन करातीं। जन्म नक्षत्र के दिन उनका साज-श्रृँगार करतीं तथा पूजा करतीं।

गोकुल छोड़ वृन्दावन जा बसना

गोकुल में अनेकों उपद्रव हो रहे थे। पूतना से लेकर यमलार्जुन वृक्ष के गिरने की घटनाओं का स्मरण कर सब गोपजनों ने मिल बैठकर यह निर्णय लिया कि गोकुल छोड़ कर अन्यत्र वन वाले क्षेत्र में चलकर बसें।

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम्।
गोप-गोपी-गवां सेव्यं पुण्याद्रि-तृण-वीरुधम्।।10।11।28।।
वृन्दावनं संप्रविश्य सर्वकाल-सुखावहम्।
तत्र चक्रुः व्रज-आवासं शकटैः अर्धचन्द्रवत्।।10।11।35।।
वृन्दावनं गोवर्धनं यमुना-पुलिनानि च।
वीक्ष्य-आसीत्-उत्तमा प्रीती राम-माधवयोः नृप।।10।11।36।।

वृन्दावन को सब तरह से पशुधन के पालन हेतु घास तथा सुन्दर पर्वत को उपलब्ध देख उपयोगी समझा गया। सभी लोग सहर्ष सामान बैलगाड़ी पर लादकर सभी ऋतुओं में सुखदायी वृन्दावन पहुँचे तथा गाड़ियों को अर्धचन्द्राकार व्यूह में लगाकर अस्थायी निवास बनाया। बलराम तथा श्रीकृष्ण दोनों भाईयों ने वृन्दावन, गोवर्धन तथा यमुना नदी के तट को जब देखा तब बहुत प्रसन्न हुए।

क्वचिद् वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित्।

क्वचित् पादैः किङ्किणीभिः क्वचित् कृत्रिम-गो-वृषैः। ।10।11।39। ।

दोनों भाई कभी बाँसुरी बजाते, कभी गुलेल चला ढ़ेला फेंकते, कभी पैरों में घुँघरु बाँध नाचते। बछड़े आदि चराने जाते तथा गाय-बैल बनकर बनावटी खेल में मग्न रहते। पशु-पक्षियों की बोली का नकल करते।

<u>बत्सासुर, बकासुर तथा अघासुर का वध</u>

एक बार बालक श्रीकृष्ण की हत्या के मन से एक असुर उनके बछड़ो की जमात में बछड़ा बनकर घुस गया। भगवान्जान गये तथा बलदेव जी को इसका संकेत दिया। स्वयं भगवान्ने पूँछ सहित उसके पिछले पैरों को पकड़ उठाकर तेजी से घुमाया तथा एक वृक्ष पर दे मारा। वह असुर के असली स्वरूप में गिरकर मर गया। देवताओं ने भगवान्पर पुष्पवृष्टि की तथा गोपसखाओं ने उनकी जयकार की।

तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैक-पालकौ।

स प्रातः आशौ गो-वत्सान्-चारयन्तौ विचेरतुः। ।10।11।45। ।

समस्त लोकों के एक मात्र पालक भगवान्श्रीकृष्ण अपने भाई बलराम जी के साथ बछड़ो के पालन की जिम्मेवारी उठा ली। नित्य प्रातः का कलेवा खा कर दोनों भाई बछड़ों को चराते एक वन से दूसरे वन में घूमते। एक दिन पानी के सरोवर पर बछड़ों को पानी पिला स्वयं भी ग्वाल-बालके साथ जल पिये। विशाल बगुले के स्वरूप में एक असुर तेजी से आया और भगवान्श्रीकृष्ण को निगल गया। भगवान्अग्नि के समान बनकर उसका कण्ठ जलाने लगे। उसने उन्हें उगल दिया परन्तु फिर चोंच से उनपर आक्रमण किया। बालक श्रीकृष्ण ने तेजी से उसके चोंच पकड़ उसे चीर दिया जैसे कोई घास के तना को चीरता है। कंस के मित्र बकासुर का इस तरह अन्त हुआ। व्रजभूमि लौटने पर बालकों ने इस घटना का पूरा बखान किया। नन्द जी ने सोचा कितनी बार असुरों ने इनपर आक्रमण किया परन्तु पतंगे जैसे आग में कूदकर मर जाते हैं वैसे ही सब के सब मारे गये।

अहो ब्रह्मविदां वाचो न-असत्याः सन्ति कर्हिचित्।

गर्गो यदाह भगवान् अन्वभावि तथैव तत्। ।10।11।57। ।

नन्द जी ने कहा - ब्रह्मवादी सन्त के वचन कभी झूठे नहीं होते। गर्ग मुनि का कहा वह सच हो रहा है।

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुः व्रजे।

निलायनैः सेतुबन्धैः मर्कट-उत्प्लवन-आदिभिः। ।10।11।59। ।

बच्चों के साथ आँख-मिचौनी करते, पुल बनाने का खेल खेलते, बन्दरों की तरह उछल कूद करते दोनों भाईयों ने अन्य बाल्योचित खेल-खेलते व्रज में कुमारावस्था बहुत आनन्द से बितायी।

क्वचिद् वनाशाय मनो दधद् व्रजात् प्रातः समुत्थाय वयस्य-वत्स-पान्।

प्रबोधयत्-श्रृङ्गरवेण चारुणा विनिर्गतो वत्सपुर:सरो हरि:। ।10।12।1। ।

एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण ने वन में ही सबेरे का कलेवा करने का सोंचा। सबेरा होते ही उन्होंने सिंगा बजाकर सभी गोप-बालकों तथा बछड़ों को जगाया। हजारों की संख्या में सब के सब बाहर आकर वन की ओर चले। सब बालक अपने हाथों में कलेवा, बेंत, सींग एवं वंशी लिये हुए बछड़ो को आगे करके चल रहे थे।

फल-प्रवाल-स्तबक-सुमन: पिच्छ-धातुभि:।

काच-गुञ्जा-मणि-स्वर्ण-भूषिता अपि-अभूषयन्। ।10।12।4। ।

यद्यपि गोपबालकों की माताओं ने उन्हें रत्नादि से अलंकृत कर दिया था तथापि वे सभी वन में फल, पुष्प के गुच्छे तथा मोर-पंख से अपने को सजाया। सब वन में उछल कूद मचाने लगे। कोई सींगा बजाता, कोई वंशी बजाता, कोई पक्षियों तथा भौरों की बोली का अनुकरण करता।

यदि दूरं गत: कृष्णो वनशोभ-ईक्षणाय तम्।

अहं पूर्वमहं पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे। ।10।12।6। ।

भगवान्श्रीकृष्ण जब वन में दूर चले जाते तब दौड़कर उनको पहले छूने की होड़ लग जाती।

इत्थं सतां ब्रह्मसुख-अनुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन।

मायाश्रितानां नर-दारकेण साकं विजह्रु: कृतपुण्य-पुञ्जा:। ।10।12।11। ।

यत्-पाद-पांसु: बहुजन्म-कृच्छ्रतो धृतात्मभि: योगिभि: अपि-अलभ्य:।

स एव यत्-दृक-विषय: स्वयं स्थित: किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम्। ।10।12।12। ।

ज्ञानियों के लिए जो ब्रह्मस्वरूप थे तथा भक्तों के लिए इष्ट-स्वरूप थे वही अत्यन्त पुण्यवान ग्वालबालों को एक मनुष्य रूप में आनन्दित कर रहे थे। योगियों को कठिन तपस्या के बाद भी भगवान्के चरण-रज सुलभ नहीं होता वही भगवान्श्रीकृष्ण ग्वालबालों के साथ स्वयं खेलते। ऐसे व्रजवासियों के भाग्य का क्या कहना!

दृष्ट्वा-अर्भकान् कृष्ण-मुखान् अघासुर: कंसानुशिष्ट: स बकी बकानुज:।10।12।14। ।

पूतना एवं बकासुर का छोटा भाई अघासुर कंस के आदेश से बालक श्रीकृष्ण के साथ समस्त ग्वालबाल को मारने आया। जहाँ सभी बच्चों के साथ भगवान् खेल रहे थे वहाँ एक विशाल अजगर के रूप में वह प्रकट हुआ।आठ मील लम्बा उसका शरीर था। एक पर्वत गुफा की तरह मुँह खोलकर वह पड़ा हुआ था। ग्वालबाल ने उसे एक वास्तविक गुफा समझ उसमें प्रवेश किया। भगवान्रोकना चाह रहे थे परन्तु सब उसके मुँह में जा चुके थे। अघासुर भगवान्श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा में इनलोगों को निगल नहीं रहा था। भगवान्भी उसमें घुसे।आकाश में देवगण हाहाकार मचाने लगे। परन्तु भगवान्श्रीकृष्ण ने अपना स्वरूप बढ़ाया और अघासुर ने भी अपना स्वरूप बढ़ाया। एक स्थिति ऐसी आई कि उसका श्वास अवरुद्ध हो गया तथा उसके प्राण निकल गये। ग्वालबाल उसके उदर में मृतवत हो गये थे। भगवान्की दृष्टि पड़ी और वे सब जीवित होकर बाहर आ गये। अघासुर के शरीर से एक ज्योति निकली जो भगवान्श्रीकृष्ण को उसके मुँह से बाहर आते ही उनमें मिल गयी। आकाश से पुष्प-वृष्टि हुई।देवगण अघासुर के अन्त पर आनन्द मनाने लगे। ब्रह्मा को जब यह ज्ञात हुआ तब वे भी वहाँ आये परन्तु विस्मित होकर मोह-ग्रस्त हो गये।

एतत् कौमारजं कर्म हरे: आत्म-अहि-मोक्षणम्।

मृत्यो: पौगण्डके बाला दृष्ट्वा-ऊचु: विस्मिता व्रजे। ।10।12।37। ।

उस समय बालक श्रीकृष्ण की कुमारा-अवस्था पाँच वर्ष की थी परन्तु ग्वाल-बाल जब इस घटना का बखान अपने घर में सुनाये तब उनकी पौगण्ड अवस्था थी जो कुमारावस्था के एक वर्ष बाद होती है। यह वृन्दावन वासियों को छठे वर्ष में ज्ञात हुआ। ऐसा सुन राजा परीक्षित ने पूछा कि एक वर्ष की अवधि कैसे बीत गयी।

सकृद्‌यत्-अङ्ग-प्रतिमा-अन्त: आहिता मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम्।
स एव नित्य-आत्मसुख-अनुभूति-अभिव्युदस्त-माय-अर्न्तगतो हि किं पुन:। ।10।12।39। ।

एक बार भी भगवान्‌श्रीकृष्ण का स्वरूप मन में आने से चारो मोक्ष मिल जाते हैं। जो निरन्तर भगवान्‌के चरणारविन्द का चिन्तन करते हैं उनका क्या कहना ! सभी मोह को हटाने वाले, दिव्य आनन्द के स्रोत भगवान्‌स्वयं है। परीक्षित जी शुकदेव जी से कहते हैं -

वयं धन्यतमा लोके गुरोऽपि क्षत्रबन्धव:।
यत् पिबामो मुहु: त्वत्त: पुण्यं कृष्ण-कथामृतम्। ।10।12।43। ।

हम ऋषि के साथ अपराध करके नाम मात्र के क्षत्रिय कहे जाने योग्य हैं। फिर भी हमारा सौभाग्य है कि आपके मुखारविन्द से भगवान्‌श्रीकृष्ण के कथामृत-पान का बार-बार आनन्द ले रहे हैं। सूत जी शौनक से कहते हैं -

इत्थं स्म पृष्ट: स तु बादरायणि: तत्-स्मारित-अनन्तहृत-अखिलेन्द्रिय:।
कृच्छ्रात् पुनर्लब्ध-बहिर्दृशि: शनै: प्रत्याह तं भागवत-उत्तम-उत्तम। ।10।12।44। ।

हे समस्त भक्तों में श्रेष्ठ तथा महान्‌सन्त-पुरुष शौनक जी ! परीक्षित की जिज्ञासा सुनकर शुकदेव जी ने भगवान्‌श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का स्मरण किया। वे समस्त इन्द्रियों की गतिविधि से मुक्त होकर समाधि में चले गये। तत्पश्चात्‌बहुत कठिनाई से उनकी अन्तर्चेतना बाहर आयी और धीरे-धीरे कथा-वस्तु सुनाने लगे।

<u>भगवान्‌ने ब्रह्मा को रुचिकर लीला दिखायी</u>

साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम।
यत्-नूतनयसि-ईशस्य श्रृण्वन्-अपि कथां मुहु:। ।10।13।1। ।

शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को श्रेष्ठ भक्त बताते हुए कहा कि भगवान्‌की कथा का नित्य श्रवण करते हुए आप सदा उसमें नूतनता का अनुभव कर रहे हैं। यद्यपि भगवान्‌की गूढ़ लीला को समझना कठिन है तब भी मैं आपको इसे समझाउँगा। अघासुर के अन्त के बाद भगवान् सबको नदी किनारे लाये और बछड़ों को पानी पिलाकर कर वे एक साथ भोजन करने वैठे। घर से लाये भिन्न-भिन्न तरह के भोजन का सब आनन्द लेने लगे।

बिभ्रद् वेणुं जठरपटयो: श्रृङ्गवेत्रे च कक्षे वामे पाणौ मसृण-कवलं तत्-फलानि-अङ्गुलीषु।
तिष्ठन् मध्ये स्व-परिसुहृदो हासयन् नर्मभि: स्वै: स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग् बालकेलि:। ।**10।13।11**। ।

भगवान्‌को साधारण बालक की तरह भोजन करते देख देवगण विस्मित थे। भगवान् यज्ञ के एक मात्र भोक्ता होते हुए सबको हँसा रहे थे। उनके बीच में बैठकर जब भोजन कर रहे थे तब अपनी मुरली को कमर की फेंट में खोंसकर चरवाहे की छड़ी और सींग-बाजा बगल में दबाये हुए थे। बायीं हथेली पर दही तथा घी मिश्रित भात का

कौर रखकर अंगुलियों में नीबू आदि के अचार-व्यंजन दवाये थे। इसी बीच बछड़े घास चरते दूर निकल गये। भगवान्‌ने मित्रों को भोजन करते रहने का परामर्श दिया और स्वयं बछड़ों का वापस लाने गये।

इति -उक्त्वा-अद्रि-दरी-कुञ्ज-गह्वरेषु-आत्म-वत्सकान्।

विचिन्वन् भगवान् कृष्णः सपाणि-कवलो ययौ।।10।13।14।।

अम्भोजन्म-जनिः तदन्तरगतो माया-अर्भकस्य-ईशितुः द्रष्टुं मञ्जु महित्वम्-अन्यदपि तत्-वत्सान्-इतो वत्सपान्। नीत्वा-अन्यत्र कुरूद्वह-अन्तरदधात्खेऽवस्थितो यः पुरा दृष्ट्वा-अघासुर-मोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम्।।10।13।15।।

हाथ में भोजन का कौर लिए भगवान् बछड़ों को पर्वतों, गुफाओं, झाड़ियों तथा सँकरे मार्गों में खोजने लगे। बछड़ों को न मिलने पर यमुना किनारे सखाओं की ओर आये तब उनलोगों को भी नहीं देखा। जड़ कमल से उत्पन्न ब्रह्मा की बुद्धि जड़ हो गयी और भगवान् की परीक्षा लेने हेतु बछ़ड़ों को तथा ग्वालबालों को गायब कर दिया। इसके पूर्व ये अघासुर का मोक्ष देखकर भौचक्क थे। अपनी माया के कार्यकलाप से इन्हें भगवान्‌ने अन्य रुचिकर लीला देखने का अवसर प्रदान किया। ब्रह्मा की मनसा समझकर ही भगवान् बछ़ड़ों को खोजने के बहाने ब्रह्मा को ग्वालबालों को भी गायब करने का मौका दिया।

क्व-अपि-अदृष्ट्वा-अन्तर्विपिने वत्सान् पालान् च विश्ववित्।

सर्व विधिकृतं कृष्णः सहसा-अवजगाम ह।।10।13।17।।

ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तत्-मातृणां च कस्य च।

उभयायितम्-आत्मानं चक्रे विश्व-कृत्-ईश्वरः।।10।13।18।।

सम्पूर्ण विश्व की गतिविधि को जानने वाले श्रीकृष्ण को ज्ञात ही था कि ब्रह्मा अन्य आनन्ददायी लीला देखना चाह रहे हैं। ब्रह्मा के साथ बछड़ों की माँ तथा ग्वालबाल की माताओं को आनन्द देने के लिए भगवान्‌ने स्वयं को बछड़ों तथा ग्वालबालों के रूप में भी प्रकट किया।

यावद् वत्सप-वत्सक-अल्पक-वपुः यावत् कर-अङ्घ्रि-आदिकं

यावद् यष्टि-विषाण-वेणु-दल-शिक्यावद् विभूषाम्बरम्।

यावत्-शील-गुण-अभिधा-आकृति-वयो यावद् विहारादिकं

सर्व विष्णुमयं गिरो-अङ्गवत्-अजः सर्वस्वरूप बभौ।।10।13।19।।

छोटे-बड़े जितने बछड़े और बालक थे, उनके हाथ-पाँव आदि प्रत्येक अंग जैसे थे, उनकी छड़ी, सींग-बाजा, मुरली, कलेवा का पात्र, वस्त्र अलंकार आदि जैसे के तैसे सब के सब भगवान् स्वयं बन गये। उनका स्वभाव, गुण, शील, संज्ञा, आकार, अवस्था और आहार-विहार जैसा था हू-बहू वैसा ही अजन्मा भगवान्‌श्रीकृष्ण ने अपने आप को बना लिया। **"समस्त जगत् विष्णुमय है"** श्रुति के इस वचन को सार्थक कर दिया।

स्वयम्-आत्मा-आत्म-गोवत्सान् प्रतिवार्य-आत्म-वत्सपैः।

क्रीडन् आत्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद् व्रजम्।।10।13।20।।

तन्मातरो वेणुरव-त्वर-उत्थिता उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरम्।

स्नेह-स्नुत-स्तन्य-पयः सुधासवं मत्वा परं ब्रह्म सुतान्-अपाययन्।।10।13।22।।

जबकि आज बछड़े तथा ग्वालबाल सब भगवान् स्वयं थे परन्तु रोज की तरह सन्ध्या में आनन्द मनाते व्रज में प्रवेश किये। पूर्ववत्सब अपने-अपने घरों में प्रवेश किये। चूँकि आज बछड़े तथा ग्वालबाल सब भगवान् स्वयं ही थे इसलिए आज उनकी माताओं का अधिक स्नेह उमड़ा। उनके वेणु की ध्वनि सुन मातायें अन्य गृह कार्य छोड़ तेजी से आकर अपने बच्चों को गोदी में लिया और दोनों बाहों से आलिंगन करने लगीं। गोपियाँ अपने बच्चों को गोद में ले स्तन से टपकते दूध पिलाने लगीं। माताओं को आज परब्रह्म भगवान्श्रीकृष्ण को साक्षात्पुत्र के रूप में दूध पिलाने का आनन्द मिलने लगा। भगवान्ने भी सभी माताओं के स्तन के अमृतमय दूध को आनन्द से पिया। गायें जब वन से लौटकर आती तब अपने बछड़ों के लिए जोर से रँभाने लगतीं।अपने बछड़ों की देह चाटती थन से टपकते दूध पिलाती।

गो-गोपीनां मातृता-अस्मिन् सर्वा स्नेह-ऋधिकाम् विना।
पुरोवत्-आसु-अपि हरेः तोकता मायया विना। 10।13।25।।

गौओं एवं गोपियों में मातृस्नेह पहले जैसा ही था परन्तु भगवान्को पुत्र रूप में आने पर उनके प्रति स्नेह में असाधारण वृद्धि हुई। भगवान्श्रीकृष्ण का पुत्रभाव वास्तविक था। पूर्व के पुत्रों की तरह अब सांसारिक माया-मोह का कोई असर नहीं था। गाय एवं बछड़ों के चराने की व्यवस्था अलग थी। छोटे ग्वालबाल बछड़े चराते थे जबकि प्रौढ़ गोप जन गायें चराते थे। भगवान्का बालकों एवं वछड़े बने एक वर्ष पूरा हुआ।

एकदा चारयन् वत्सान् सरामो वनम्-आविशत्।
पञ्च-षासु त्रियामासु हायन-अपूरणीषु-अजः।।10।13।28।।

साल पूरा होने में मात्र पाँच-छः रातें शेष रह गयी थी। एक दिन बलराम जी ने देखा कि दूर गोवधर्न पर चरने वाली गायों ने दूर में अपने बछड़ो को चरते देखकर दुर्गम मार्ग का परवाह किये विना पूँछ उठाकर बड़ी तेजी से अपने बछड़ों के पास आ गयीं। गायों को रोकने में प्रौढ़ गोपजन असमर्थ हो गये। इसलिए वे लोग भी कुपितावस्था में गायों तक आये परन्तु अपने ग्वालबाल को देखकर उनके हृदय में असाधारण स्नेह उमड़ पड़ा। वे दोनों बाहों से अपने-अपने बच्चों का आलिंगन करते हुए पुलकित हो उठे। ग्वालबाल सब भगवान्श्रीकृष्ण ही थे इसलिए इस तरह की स्थिति स्वाभाविक थी। गोपजन का गायों पर रोष दूर हो गया। सब अपने-अपने बच्चों के प्रेम में अभिभूत हो गये। बलराम जी को असाधारण स्थिति का आभास हुआ।

इति सञ्चिन्त्य दाशार्हो वत्सान्स्-वयसान्अपि।
सर्वान् आचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः।।10।13।38।।
नैते सुरेशा ऋषयो न चैते त्वमेव भासि-ईश भित्-आश्रये-अपि।
सर्व पृथक्त्वं निगमात कथं वद-इति-उक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलो-अवैत्।।10।13।39।।

दिव्य दृष्टि से वे शीघ्र समझ गये कि भगवान्श्रीकृष्ण का ही यह सब खेल है। बलदेव जी ने भगवान्श्रीकृष्ण से कहा कि बछड़े तथा ग्वालबाल के रूप में देवगण एवं ऋषिगण हैं परन्तु आज देव तथा ऋषि नहीं दिखते। श्रीकृष्ण ही सभी बछड़े एवं ग्वालबाल हैं। सबको मैं आपसे व्याप्त देख रहा हूँ। आप एक होने पर भी सबों में उनके

अलंकरणों में भिन्न दिख रहे हैं। श्रुति वाक्य से समर्थन भी इसी तरह का मिलता है। ऐसे पूछने पर भगवान्श्रीकृष्ण ने उन्हें वास्तविक घटना की जानकारी दे दी।

तावत्-एत्य-आत्मभूः आत्ममानेन त्रुटि-अनेहसा।

पुरोवद्-अब्दं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिम्।।10।13।40।।

ब्रह्मा की आयु काल का, देववर्ष के पैमाना पर, एक त्रुटि यानी एक क्षण ही बीता। मनुष्यलोक के काल पैमाना पर एक वर्ष बीतने को आया। ब्रह्मा धरती पर लौटकर देखते हैं कि सब ग्वालबाल तथा बछड़े बहुत आनन्द से हैं। ब्रह्मा बछड़ों तथा गोपबालकों को अलग जैसे सुलाकर गये थे वैसे ही सोते देखा। उन्हें आश्चर्य हुआ कि वही सब यहाँ खेल कैसे रहे हैं? ब्रह्मा दो पृथक समुदाय के बालकों एवं बछड़ों को समझने में असमर्थ पाये।

तावत् सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात्।

व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीत-कौशेय-वाससः।।10।13।46।।

चतुर्भुजाः शङ्ख-चक्र-गदा-राजीव-पाणयः।

किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः।।10।13।47।।

श्रीवत्स-अङ्गद-दो-रत्न-कम्बु-कङ्कण-पाणयः।

नूपुरैः कटकैः भाताः कटिसूत्र-अङ्गुली-यकैः।।10।13।48।।

आ-अङ्घ्रि-मस्तकम्-आपूर्णाः तुलसी-नव-दामभिः।

कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरि-पुण्यवत्-अर्पितैः।।10।13।49।।

चन्द्रिका-विशद-स्मेरैः स-अरुण-अपाङ्ग-वीक्षितैः।

स्वक-अर्थानाम्-इव रजः सत्त्वाभ्यां स्रष्टृ-पालकाः।।10।13।50।।

इतने में ब्रह्मा ने सभी गोपबालकों को श्याम शरीर में पीताम्बर धारण किये देखा। वे चतुर्भुज स्वरूप में थे और शंख, चक्र, गदा तथा कमल धारण किये हुए हैं। माथे पर मुकुट, कानों में कर्णफूल, वक्षस्थल पर मनोहर हार तथा गले में वनमाला से सुशोभित थे। वक्षस्थल पर श्रीवत्स के चिह्न, बाहुओं में अंगद तथा बाजूवन्द, शंख के आकार का कण्ठ, गला में कौस्तुभमणि, कलाई पर कंगन, पैरों में नूपुर, कमर में करधनी तथा अंगुलियों में अँगूठी शोभायमान हो रहे हैं। पुण्यशाली परमभागवतों से अर्पित कोमल तुलसी की माला से आपाद-मस्तक अलंकृत हैं। शीतल-शुभ्र-चाँदनी जैसी मुस्कान तथा रतनारे आँखो की बाँकी चितवन से भक्तों के रजोगुणी मनोरथों को जगाकर सतोगुण से उसको विशुद्ध बना रहे हैं। ब्रह्मा ने यह भी देखा कि अनेकों चतुर्मुख ब्रह्मा से लेकर क्षुद्र से क्षुद्र जीव नाचते-गाते हुए उनकी पूजा-सेवा कर रहे हैं। समस्त विग्रह अणिमादिक सिद्धियों से समावृत हैं। काल के प्रभाव से परे विग्रहों की महिमा को उपनिषदों के ज्ञाता भी बखान नहीं कर पा रहे हैं। इस तरह से ब्रह्मा ने सारे बछड़ों तथा बालकों में परब्रह्म का दर्शन किया। कठपुतली की तरह ब्रह्मा भगवान्की लीला देखकर अवाक्थे। भगवान्ने अपनी लीला समेट ली। ब्रह्मा अब देखते हैं कि वे वृन्दावन में हैं और वहाँ की मनोहारी प्राकृतिक सौंदर्य मनोहारी है।

तत्र-उद्वहत् पशुप-वंश-शिशुत्व-नाट्यं ब्रह्म-अद्वयं परम्-अनन्तम्-अगाधबोधम्।

वत्सान् सखीन्-इव पुरा परितो विचिन्वत्-एकं सपाणि-कवलं परमेष्ठी-अचष्ट। ।10।13।61। ।
ब्रह्मा ने पूर्व की तरह हाथ में कौर लिए नन्दनन्दन के रूप में अजन्मा-अद्वितीय-अनन्त-बोध से परे भगवान्को बछड़ों तथा सखाओं को खोजते बालक श्रीकृष्ण के नाटकीय स्वरूप का दर्शन किया। अपने चारो सिर से दण्ड की भाँति जमीन पर लेटकर ब्रह्मा ने भगवान्के श्रीचरणों को प्रेमाश्रु से अभिषिक्त कर दिया।

उत्थाय-उत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन्।
आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः। ।10।13।63। ।

भगवान्की महिमा का बार-बार स्मरण कर ब्रह्मा बार-बार उनके श्रीपाद पर गिरते, बार-बार उठते और बार-बार उनपर गिर पड़ते। अब वे धीरे से मुकुन्द के श्रीचरणों से उठकर आँसू पोछते हुए हाथ जोड़कर पुलकित शरीर से काँपते हुए लड़खड़ाती बोली से स्तुति करने लगे।

नौमी-ईड्य ते-अभ्र-वपुषे तडित्-अम्बराय गुञ्जा-अवतंस-परिपिच्छ-लसत्-मुखाय।
वन्यस्रजे कवल-वेत्र-विषाण-वेणु-लक्ष्म-श्रिये मृदुपदे पशुप-अङ्गजाय। ।10।14।1। ।

नन्दराय के पुत्र तथा परमपूज्य भगवान्को नमन है।नूतन मेघ की तरह श्यामले शरीर पर बिजली जैसा चमकता वस्त्र, वनफूल, गुञ्जा के कुण्डल, गुञ्जा की माला, गुञ्जा का मुकुट, मुकुट में मोरपंख, कमल के समान मुखारविन्द, श्रीचरणों तक लटकती विभिन्न सुगंधित पुष्पों की वनमाला, बायें हाथ में भोजन का कौर सम्भाले चरवाहे की छड़ी, वंशी तथा सींग बाजा धारण किये कोमल चरणों से मनोहारी मुद्रा में खड़े दर्शन दे रहे हैं।

ज्ञाने प्रयासम्-उदपास्य नमन्त एव जीवन्ति सत्-मुखरितां भवदीय-वार्ताम्।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनु-वाक्-मनोभिः ये प्रायशोऽजित जितो-अपि-असि तैः त्रिलोक्याम्। ।**10।14।3**। ।
ज्ञान-प्राप्ति का परिश्रम छोड़कर जो आपके भक्त के मुखारविन्द से निकली कथा का श्रवण एवं गान करते हैं वे आपको तीनों लोक में अजेय होने पर भी अपने वश में कर लेते हैं।

श्रेय:स्रुतिं भक्तिम्-उदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवल-बोध-लब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूल-तुष-अवधातिनाम्। ।10।14।4। ।
पुरेह भूमन् बहवोऽपि योगिनः त्वत्-अर्पित-ईहा निजकर्मलब्धया।
विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया प्रपेदिरे-अञ्जो-अच्युत ते गतिं पराम्। ।10।14।5। ।

आपकी भक्ति-सुधा का पान न करके केवल ज्ञान-प्राप्ति के लिए जो श्रम करते हैं उनका श्रम भूसी कूटने वाले की तरह निष्फल होता है। हे अच्युत ! पूर्व में अनेको योगी जनों ने अपने कर्मो को आपके श्रीचरणों में अपिर्त करके भक्तिपूर्वक आपकी कथा सुनकर परम गति प्राप्त की है।

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृत्-वाक्-वपुर्भिः विदधन्-नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्। ।10।14।8। ।

किये हुए कर्मो के फल को भोगते हुए जो भक्त भगवान्का गुणगान करते हुए आपकी अहैतुकी कृपा प्राप्त करने की प्रतीक्षा करता है वह मुक्त हो जाता है। ब्रह्मा ने कहा कि नारायण के नाभिकमल से मेरी उत्पत्ति है।

नारायणः त्वं न हि सर्वदेहिनाम्-आत्मा-असि-अधीश-अखिल-लोक-साक्षी।

नारायणोऽङ्गं नर-भू-जल-अयनात्-तत्-च-अपि सत्यं न तवैव माया। ।10।14।14। ।

समस्त चिद्-अचिद् जगत रूपी शरीर में आप ही शरीरी स्वरूप नारायण हैं। सभी लोकों की समस्त क्रियाओं के साक्षी हैं। जल में बसने वाले, सबके स्वामी नारायण ! जो अभी बछड़ों तथा ग्वालबालों में आपके मनोहारी स्वरूप का दर्शन हुआ वह माया से परे है।

अथापि ते देव पदाम्बुज-द्वय-प्रसाद-लेशानुगृहीत एव हि।
जानाति तत्त्वं भगवन् महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्। ।10।14।29। ।
तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम्।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्। ।10।14।30। ।
अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोप-व्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्। ।10।14।32। ।

आपके दोनों चरणाविन्दों की जिसके ऊपर लेशमात्र भी कृपा होती है वह आपकी महिमा को समझने लगता है परन्तु लम्बी अवधि तक मात्र वेदादि के अध्ययन से यह समझना कठिन है। मुझे इतना भाग्यशाली बनाइये कि जहाँ कहीं भी मेरा जन्म हो आपके भक्तों की संगति में रहूँ। चाहे पशु योनि ही क्यों न हो परन्तु आपके चरणकमल की भक्ति से सेवा करता रहूँ। नन्दराय तथा अन्य गोपजनों के भाग्य का क्या कहना है जिनके सुहृत् स्वयं आप सनातन परब्रह्म हैं।

तद् भूरिभाग्यम्-इह जन्म किमपि-अटव्यां यद् गोकुलेऽपि कतम-अङ्घ्रि-रजो-अभिषेकम्।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्दः तु-अद्य-अपि यत्पदरजः श्रुति-मृग्यम्-एव। ।10।14।34। ।

मेरा परमसौभाग्य होगा कि मैं गोकुल में जन्म लूँ और गोपियों के चरणरज से नहाता रहूँ।भगवान्मुकुन्द के चरणाविन्द की धूल ही व्रजवासियों का धन है। वैदिक मन्त्रों से आपके चरणकमल की धूल अप्राप्त है।

तावद् रागादयः स्तेनाः तावत् कारागृहं गृहम्।
तावत्-मोहो-अङ्घ्रि-निगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः। ।10।14।36। ।

जब तक हे भगवान् श्रीकृष्ण ! हम आपके भक्त नहीं बनते तबतक हम चोर की तरह आसक्तियों के बन्दी बने रहते हैं और अपने परिवार के प्रति स्नेह मेरे पैरों की बेड़ियाँ बनी रहती हैं। ब्रह्मा ने भावभीनि स्तुति की और तीन बार भगवान्श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा करते हुए उनके चरणों पर नमन करते हुए अपने लोक में लौट गये। जाते समय सभी बालकों एवं बछड़ो को लौटा गये। इस तरह से एक वर्ष बीत गया था। बालकों ने भगवान्श्रीकृष्ण को हाथ में दही भात का कौर लिए लौटते देख उनका सहर्ष स्वागत किया। बालकों को यह आभास ही नहीं हुआ कि एकवर्ष का समय निकल गया है।उन्हें लगा कि आधा क्षण ही बीता है। भगवान्ने बालकों के साथ भोजन किया। भगवान् ने गोपबालकों को अघासुर का शव दिखाते हुए व्रज में प्रवेश किया।

बर्ह-प्रसून-नवधातु-विचित्रित-अङ्गः प्रोद्दाम-वेणु-दल-शृङ्ग-रव-उत्सव-आढ्यः।
वत्सान् गृणन्-अनुग-गीत-पवित्रकीर्तिः गोपी-दृक्-उत्सव-दृशिः प्रविवेश गोष्ठम्। ।10।14।47। ।

भगवान्‌के सिर पर मोरपंख तथा पुष्पादि सुशोभित हो रहे थे। जंगल की नयी धातुओं के रंग से अपने श्रीअंगो पर चित्रकारी किये हुए भगवान्‌ने उच्च-ध्वनि में मुरली तथा सींग-बाजा बजाते अपने साथियों के साथ व्रज में प्रवेश किया। गोपसखा उनकी पवित्र-कीर्ति का गान कर रहे थे। उस समय भगवान्‌ने अपने स्वरूप के अद्‌भुद् दर्शन से गोपियों को आनन्दविभोर कर दिया।

अद्यानेन महाव्यालो यशोदा-नन्द-सूनुना।

हतो-अविता वयं च-अस्मात्-इति बाला व्रजे जगु:।।10।14।48।।

व्रज पहुँच कर गोपबालकों ने आज नन्द तथा यशोदा जी के पुत्र भगवान्‌श्रीकृष्ण द्वारा विशाल अजगर के अन्त की कथा सुनायी। गोपबालकों एवं उनके बछड़ों को ब्रह्मा ने अपने जादू से एक वर्ष तक एक गुफा में भगवान्‌श्रीकृष्ण से छिपाकर अचेत रखा था। इस घटना की जानकारी उन्हें नहीं थी। इसी कारण से आज जब ब्रह्मा से वे मुक्त हुए तब उन्हें लगा अघासुर का अन्त आज ही हुआ है। अपनी माताओं को वे अघासुर की घटना सुनाने लगे। बीते हुए एक वर्ष की अवधि में भगवान्‌श्रीकृष्ण ही बालक तथा बछड़े बन कर नित्य सन्ध्या काल में व्रज लौटते थे परन्तु वे सब भगवान्‌श्रीकृष्ण ही थे यह माताओं को भी कुछ ज्ञात नहीं हुआ था। आज सन्ध्या में भगवान्‌श्रीकृष्ण के साथ उनके बच्चे वन से लौटे हैं परन्तु अपने बच्चों से भी अधिक स्नेह उनलोगों ने बालक श्रीकृष्ण पर ही दिखाया। राजा परीक्षित पूछते हैं कि हे मुनि! यह बतायें कि गोपियों को अपने बच्चों से भी अधिक स्नेह भगवान्‌श्रीकृष्ण में कैसे हुआ ? शुकदेव जी कहते हैं -

तद् राजेन्द्र यथा स्नेह: स्व-स्वक-आत्मनि देहिनाम्।

न तथा ममता-आलम्बि-पुत्र-वित्त-गृहादिषु।।10।14।51।।

हे राजा ! देहधारियों के लिए यह स्वाभाविक है कि जब अपनी देह पर बीतती है तब अपनी देह के सामने उनको धन पुत्रादि पर भी ममता उतनी नहीं होती जितनी अपनी देह पर होती है। जो देह को ही आत्मा समझते हैं उनके लिए देह से जुड़े पुत्रादिक उतने प्रिय नहीं होते जितना अपनी देह प्रिय लगती है। जब प्राणी को विवेक होता है तब वह अपनी आत्मा को देह से भिन्न पाता है।

देहोऽपि ममताभाक् चेत्-तर्हि-असौ नात्मवत् प्रिय:।

यत्-जीर्यति-अपि देहेऽस्मिन् जीवित-आशा बलीयसी।।10।14।53।।

परन्तु आत्मा के हित के भ्रम में उसको अपनी देह के प्रति कुछ आसक्ति बनी रहती है और वृद्धावस्था या रोगादि से ग्रस्त होने पर जीर्ण-शीर्ण शरीर को वह बनाये रखना चाहता है। यह निश्चित है कि जीव को अपनी आत्मा अत्यन्त प्रिय है और आत्मा के हितार्थ जो देह तथा पुत्रादि हैं उन सबों में स्नेह आत्मा से कम ही रहता है।

वस्तुतो जानताम्-अत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च।

भगवत्-रूपम्-अखिलं नान्यद् वस्तु-इह किञ्चन।।10।14।56।।

भगवान्‌श्रीकृष्ण इस जगत्‌के चिद्-अचिद् वस्तुयें के शरीरी हैं अर्थात्‌यह जगत्‌उन्हीं का व्यक्त रूप है। वे ही आत्मा के भी आत्मा हैं, इसलिए विवेकशील गोपियों को आत्मा की आत्मा के लिए अधिक स्नेह रखना स्वाभाविक ही है।

समाश्रिता ये पदपल्लव-प्लवम्महत्पदं पुण्य-यशो-मुरारे:।

भव-अम्बुधि: वत्स-पदं परं पदं पदं पदं यद्विपदा न तेषाम्।।10।14।58।।

मुर राक्षस के शत्रु भगवान्श्रीकृष्ण के यशस्वी पुण्यमय पदारविन्द को जिसने आश्रय रूपी नाव मानी है उनके लिए यह भवसागर पार करना बछड़े के खुर को पार करने के समान सुगम हो जाता है। उनका लक्ष्य भगवान्का परम-पद अर्थात वैकुण्ठ ही रहता है जहाँ न तो कोई सांसारिक विपत्ति सताती है और न संसार की तरह पग-पर किसी सांसारिक संकट का ही सामना करना होता है।

एतत् सुहृद्भि: चरितं मुरारे: अघ-अर्दनम् शाद्वल-जेमनं च।
व्यक्त-इतरद् रूपम्-अज-उरु-अभिष्टवं श्रृण्वन् गृणन्-एति नरो-अखिल-अर्थान्।।10।14।60।।

जो भक्ति-पूर्वक भगवान्श्रीकृष्ण के सुहृत्गोपबालकों के साथ खेलने, अघासुर का वध, वन में घास पर बैठकर भोजन करने, स्वयं ही बछड़े तथा गोपबालक बन जाने तथा ब्रह्मा जी की विस्तृत स्तुति का कीर्तन, श्रवण तथा स्मरण करते हैं उन्हें समस्त पुरुषार्थों की प्राप्ति हो जाती है।

10।3।<u>बलराम जी द्वारा धेनकासुर का वध</u>

ततश्च पौगण्ड-वय: श्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपाल-सम्मतौ।
गाश्चारयन्तौ सखिभि: समं पदै: वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतु:।।10।15।1।।

जब भगवान् पौगण्ड अवस्था अर्थात् छठे वर्ष में प्रवेश किये तब दोनों भाइयों को गोपजनों ने गाय चराने की अनुमति दे दी। सखाओं के साथ वृन्दावन में घूमते हुए अपने चरणों के स्पर्श से भगवान्ने वहाँ की धरती को पवित्र बना दिया। भगवान्ने देखा कि फल तथा फूल से लदे वृक्ष दोनों भाईयों के चरणों तक झुक रहे हैं।

नमन्ति-उपादाय शिखाभि: आत्मन: तमोऽपहत्यै तरु-जन्म यत्कृतम्।।10।15।5।।
नद्यो-अद्रय: खगमृगा: सदयावलोकै गोप्यो-अन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्री:।।10।15।8।।

भगवान्ने बलदेव जी से कहा कि ये वृक्ष अपना कल्याण हेतु आपके चरणों में झुक रहे हैं। भौंरे, मोर, हिरण, नदी तथा पर्वत आदि सब आपके चरणों से पवित्र हो रहे हैं। आपने गोपियों को प्रेम से अपने बाहुओं में बान्धा है जिसके लिए लक्ष्मी भी तरसती रहती हैं। भगवान् अपने सखाओं के साथ वृन्दावन के वनों में घूमते हुए भौंरे तथा कोयल की ध्वनि का अनुकरण करते। बलदेव जी को थक जाने पर उनका पाँव भी दवाते। उस समय गोपबालक प्रेम से भगवान् को पंखा झलते। एक बार सखाओं के कहने पर दोनों भाई तालवन में गये जहाँ दुष्ट असुर धेनुक का साम्राज्य था। बलशाली असुर वहाँ गधे के छद्म वेष में रहता था। उस वन में प्रवेश करने पर बलराम जी ने ताल वृक्षों को जोर से हिलाया जिससे उनके फल जमीन पर गिरने लगे। ऐसा देख उस गधा ने रोष में रेंकते हुए बलराम जी पर आक्रमण कर दिया। बलराम जी ने उसका पीछे से पैर पकड़ कर घुमाया और एक तालवृक्ष की चोटी पर फेंक दिया। वह गदहा के स्वरूप वाला असुर मारा गया। उस गदहे के जो अन्य मित्र गदहे थे उनलोगों ने दोनों भाईयों पर आक्रमण कर दिया। वे सब गदहे भी मारे गये। ऐसा अद्भुत्लीला देख देवों ने दोनों भाईयों पर पुष्पवृष्टि की।

कृष्ण: कमलपत्राक्ष: पुण्य-श्रवण-कीर्तन:।
स्तूयमानो-अनुगै: गोपै: साग्रजो व्रजम्-आव्रजत्।।10।15।41।।

बड़े भाई बलराम के साथ कमलनयन भगवान्श्रीकृष्ण व्रज में लौट आये। रास्ते में सखा सब उनकी पुण्य कीर्ति का गान करते आये। उनकी लीला का श्रवण अत्यन्त पुण्यदायक है।

तं गो-रज: छुरित-कुन्तल-बद्ध-बर्ह-वन्यप्रसून-रुचिर-ईक्षण-चारु-हासम्।
वेणुं क्वणतम्-अनुगै: उपगीत-कीर्तिं गोप्यो दिदृक्षित-दृशो-अभ्यगमन् समेता:। ।10।15।42। ।

गायों की धूल से भगवान्श्रीकृष्ण के बाल, फूल तथा मोरपंख धूसरित होकर उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। वंशी बजाते हुए भगवान्मोहक दृष्टि से सबको देखते हुए हँस रहे थे तथा सखा सब उनकी कीर्ति का गान कर रहे थे। उनके दर्शन के लिए लालायित गोपियों ने आगे आकर उनके साथ ही व्रज में प्रवेश किया।

पीत्वा मुकुन्द-मुख-सारघम्-अक्षि-भृङ्गै: तापं जहु: विरहजं व्रजयोषितो-अह्नि।
तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीड-हास-विनयं यत्-अपाङ्ग-मोक्षम्। ।10।15।43। ।

दिन भर के वियोग के ताप से विह्वल गोपियाँ भौंरे रूपी अपनी आँखों से भगवान्के मुखारविन्द के सौन्दर्य का रसपान करतीं गोप-गाँव में प्रवेश कर रही थीं। गोपियों की चितवन लाज, हँसी तथा नम्रता से पूर्ण थीं। वहाँ यशोदा जी तथा रोहिणी जी ने दोनों भाइयों को स्नान कराके अलंकृत कर भोजन कराया तथा उन्हें सुला दिया।

<u>10।4 कालिय नाग पर कृपा</u>

एक बार भगवान् अपने सखाओं के साथ प्यासे यमुना के तट पर गये।बलराम जी उनके साथ नहीं थे। कालिय नाग के विष-दूषित यमुना जल को पीकर समस्त गौयें तथा गोपबालक मृतवत हो गये। भगवान् ने अपनी कृपा चितवन से सबको स्वस्थ कर दिया।

वीक्ष्य तान् वै तथा भूतान् कृष्णो योगेश्वरेश्वर:।
ईक्षया-अमृत-वर्षिण्या स्वनाथान् समजीवयत्। ।10।15।50। ।
अन्वमंसत तत्-राजन्-गोविन्द-अनुग्रह-ईक्षितम्।
पीत्वा विषं परेतस्य पुन: उत्थानम्-आत्मन:। ।10।15।52। ।

भगवान् समस्त योगेश्वरों के भी ईश्वर हैं। गोपबालकों एवं गौवें के अन्य स्वामी थे नहीं। ऐसा सोचकर भगवान्ने अपनी अमृतरूपी कृपा-चितवन से सबको जीवित कर दिया क्योंकि भगवान्की कृपा-चितवन में संजीवनी शक्ति समाहित है। गोपसखाओं ने एक दूसरे को विस्मित होकर देखा तथा सोचा कि विषैला जल पीकर हम मर चुके थे परन्तु भगवाान् गोविन्द की कृपा-दृष्टि से हम सभी जीवित होकर उठ खड़े हुए हैं।

विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्ण: कृष्ण-अहिना विभु:।
तस्या विशुद्धिम्-अन्विच्छन्सर्प तम्-उदवासयत्। ।10।16।1। ।

भगवान्श्रीकृष्ण ने सोचा कि कृष्ण-सर्प (काले नाग) के विष से कृष्णा (यमुना) नदी का जल दूषित हो गया है। उसे शुद्ध करने की इच्छा से भगवान्ने कालिय को वहाँ से निकाल भगाने का मन बनाया। कालिय नाग यमुना नदी के एक ह्रद अर्थात्कुण्ड में रहता था। उसके मुँह की हवा इतनी विषैली थी कि आस पास के पौधों को जला डालता था और जीव-जन्तु भी मर जाते थे। उस कुण्ड के पास एक कदम्ब का पेड़ था। भगवान्उसके ऊपर से कुण्ड में ताल ठोकते हुए कूद पड़े। उनके कूदने की आवाज से कालिय जल की सतह पर आया।

तं प्रेक्षणीय-सुकुमार-घन-अवदातं श्रीवत्स-पीतवसनं स्मित-सुन्दर-आस्यम्।

क्रीडन्तम्-अप्रति-भयं कमल-उदर-अङ्घ्रिं सन्दश्य मर्मसु रुषा भुजया चछाद। ।10।16।9। ।
कालिय ने निडर मेघ के समान साँवले-सलोने बालक श्रीकृष्ण के हृदय पर श्रीवत्स, शरीर पर पीताम्बर, मुस्कराता मुखारविन्द तथा कमल के समान कोमल चरणारविन्द देखा। उनकी छाती पर डसते हुए उसने भगवान्को अपनी देह की कुण्डली में जकड़ लिया। ऐसा देखकर ग्वालबाल सब अचेत होकर गिर गये। गाय तथा बछड़े भयातुर होकर भगवान्की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखते रहे। वृन्दावन में अपशकुन होने लगे। नन्द जी अन्य ग्वाल यह जानकर घबरा गये कि श्रीकृष्ण आज अकेले गाय चराने गये हैं। बलराम जी को अपशकुन से तनिक भी भय नहीं हुआ क्योंकि वे भगवान्श्रीकृष्ण की अपरिमित शक्ति से परिचित थे।

ते तत्र तत्र-अब्ज-यव-अङ्कुश-अशनि-ध्वज-उपपन्नानि पदानि विश्पते:।
मार्गे गवाम्-अन्य-पद-अन्तर-अन्तरे निरीक्षमाणा ययु: अङ्ग सत्वरा:। ।10।16।18। ।
गौओं के खुर के चिह्नों के बीच-बीच में भगवान्के चरणचिह्नों को कमल, जौ, हाथी का अंकुश, वज्र तथा पताका से युक्त देखते हुए गोपजन पदचिह्नों की दिशा में दौड़ चले। वहाँ पहुँच कर भगवान्श्रीकृष्ण को कालिय नाग की कुण्डली से जकड़े देखा। गायें भगवान् की ओर देखकर रम्भा रहीं थीं। ग्वालबाल सब अचेत धरती पर गिरे हुए थे। नन्द जी के साथ यशोदा जी तथा अन्य गोपजनों को कुण्ड में कूदने की तैयारी करते देख बलराम जी ने सब को रोका। वृन्दावन वासियों को विकल देख भगवान्श्रीकृष्ण ने अपने शरीर को बढ़ाया जिससे कालिय ने उन्हें अपने बन्धन से छोड़ दिया। कालिय अपने फनों को उठाकर भगवान्के चारों ओर तेजी से चक्कर लगाने लगा। भगवान्भी उतनी ही तेजी से चक्कर लगा रहे थे।

एवं परिभ्रम-हत-ओजसम्-उन्नत-अंसम्-आनम्य तत्-पृथु-शिर: सु-अधिरूढ आद्य:।
तत्-मूर्ध-रत्न-निकर-स्पर्श-अति-ताम्र-पादाम्बुजो-अखिल-कला-आदिगुरु: ननर्त।10।16।26। ।
तेजी से चक्कर लगाने से कालिय को थकते देख सभी कौशल के आदिगुरु भगवान्तेजी से उसके चौड़े तथा ऊँचे फनों को झुकाये तथा उसपर चढ़कर नृत्य करने लगे। कालिय के फनों पर स्थित अनगिनत मणियों के प्रकाश में भगवान्के चरणारविन्द गहरे लाल रंग के दिख रहे थे। भगवान्के अनोखे नृत्य को देखकर आकाश से देवताओं ने पुष्प-वृष्टि की तथा स्वर्ग में दुन्दुभियाँ आदि बज उठीं। भगवान्ने उसके एक सौ एक फनों पर नृत्य कर सबको बलहीन कर दिया। कालिय नाग अपने फन के नथुनों से खून वमन करने लगा।

तत्-चित्र-ताण्डव-विरुग्न-फणातपत्रो रक्तं मुखैरुरु वमन्-नृप भग्नगात्र:।
स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं नारायणं तम्-अरणम्मनसा जगाम। ।10।16।30। ।
भगवान्के विचित्र नृत्य से कालिय के सभी फण क्षतिग्रस्त हो गये। उसको यह आभास हुआ कि बालक श्रीकृष्ण निश्चित रूप से साक्षात नारायण हैं और मन से इनकी शरणागत हो गया। कालिय की पत्नियों ने अपने पति की दयनीय स्थिति देख अपने बाल तथा वस्त्रादि बिखराते हुए बच्चों को आगे करके समस्त जगत को उदरस्थ करने वाले प्रभु के निकट आकर साष्टांग-प्रणाम किया। सभी अंगो समेत लेटकर प्रणाम करना ही साष्टांग प्रणाम है। साष्टांग में जानु-पाद-पाणि-छाती-बुद्धि-सिर-वाणी-आँख सम्मिलित हैं। उनलोगों ने कहा कि किसी भी जीव को

दन्ड उसकी भलाई के लिए ही देते हैं। कालिय के साथ जो कुछ भी आपने किया है वह इसपर आपका अनुग्रह ही है। आपके चरणरज जो इसके माथे पर लगे हैं उसके लिए लक्ष्मी जी निरन्तर प्रयत्नशील रहती हैं।

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम्।

न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्ना।।10।16।37।।

जिसको आपके श्रीचरणों की धूल मिल गयी उसे न तो स्वर्ग का राज्य, न असीम शक्ति, न ब्रह्मा का पद, न पृथ्वी का राज्य, न योग की सिद्धियाँ और न मोक्ष ही चाहिए। भक्ति को महिमा-मण्डित करते हुए मिलता-जुलता श्लोक **6।11।25।।** वृत्रासुर के प्रकरण में तथा **11।14।14 ।।** उद्धव जी तथा भगवान् श्रीकृष्ण की वार्ता में भी है। भावभीनि स्तुति करते हुए नागपत्नियाँ कहती हैं -

नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च।

प्रद्युम्नाय-अनिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः।।10।16।45।।

भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलराम की प्रार्थना करते हुए चतुर्व्यूह स्वरूप वासुदेव-संकर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध को नमन है। अपने मूढ़ पति को क्षमा प्रदान करने की प्रार्थना करती हैं। स्त्रियों एवं बच्चों पर दया करने की विनती करने पर भगवान्ने कालिय नाग को छोड़ दिया। उसे अब कुछ-कुछ चेतना आने लगी। कालिय ने भगवान्की प्रार्थना करते हुए कहा कि सर्प स्वाभाविक रूप से क्रोधी एवं ईष्यालु होते हैं।आप जैसा उचित समझें मुझे दण्ड दें या कृपा करें। भगवान्श्रीकृष्ण ने यमुना छोड़कर अपने बच्चों तथा पत्नियों के साथ उसे समुद्र में जाने को कहा।

द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदम्-एतम्-उपाश्रितः।

यद्-भयात्स सुपर्णः त्वां न-अद्यात्-मत्-पाद-लाञ्छितम्।।10।16।63।।

गरुड के भय से तुम रमणक द्वीप छोड़कर यहाँ बसने आये थे परन्तु अब तुम्हारें मस्तक पर मेरा चरण-चिह्न अंकित होने से तुम्हें गरुड़ का भय समाप्त हो गया।

पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजम्।

ततः प्रीतो-अभ्यनुज्ञातः परिक्रम्य-अभिवन्द्य तम्।।10।16।66।।

तदैव सामृतजला यमुना निर्विषा-अभवत्।

अनुग्रहाद् भगवतः क्रीडा-मानुष-रूपिणः।।10।16।67।।

कालिय ने सपरिवार सर्वलोक नियन्ता गरुड-ध्वज भगवान्की पूजा कर पुष्प तथा रत्नादि उपहार दिया एवं परिक्रमा करके समुद्र में चला गया। लीला-बिहारी मनुष्य-रूपधारी भगवान्के अनुग्रह से यमुना का जल विषरहित होकर अमृत-तुल्य हो गया। एक बार यमुना नदी के इस कुण्ड में गरुड़ ने मछलियों की हत्या की थी। जल के भीतर वर्त मान सौभरि मुनि ने गरुड़ को शाप दे दिया कि दोबारा यहाँ मछली मारने पर गरुड़ की मृत्यु हो जायेगी। कालिय ने अपने विष के अहंकार में गरुड़ के रमणीय द्वीप में दिये जाने वाले भोजन के भाग को स्वयं ग्रहण कर लिया था। गरुड ने कुपित होकर उस पर अपने पंखों से प्रहार किया था। वह गरुड़ से भयभीत रहने लगा था। सौभरि मुनि के शाप से कालिय अवगत था। गरुड़ के त्रास से उसने समुद्र छोड़ यमुना के इस कुण्ड में आश्रय-ग्रहण किया था।

इस कथा के प्रात: तथा सन्ध्या समय पाठ से सर्प का भय नहीं रहता। कालिय दह में स्नान करने वाले को सभी तरह के पाप से मुक्ति मिल जाती है।

कृष्णं हृदाद् विनिष्क्रान्तं दिव्य-स्रग-गन्ध-वाससम्।
महामणि-गण-आकीर्णं जाम्बूनद-परिष्कृतम्।।10।17।13।।
यशोदा रोहिणी नन्दो गोप्यो गोपाश्च कौरव।
कृष्णं समेत्य लब्धेहा आसँल्लब्ध-मनोरथा:।।10।17।15।।

भगवान्श्रीकृष्ण कालिय के उपहार दिव्य मालायें, चन्दादि, सुन्दर वस्त्र पहने मणियों से अलंकृत होकर कालिय दह से बाहर निकले। यशोदा जी, रोहिणी जी, नन्द जी तथा अन्य गोपों ने भगवान्का प्रेम से आलिंगन किया।

10।5। भयानक दावाग्नि से दो बार वृन्दावन वासियों की रक्षा

कालिय नाग के उद्धार की रात वृन्दावनवासियों ने गौवों के साथ कालिन्दी के तट पर ही रात बिताई। रात में सूखे पत्तों में आग लग जानेसे सोते हुए वे सब आग से झुलसने लगे। भगवान् श्रीकृष्ण को पुकारा।

कृष्ण कृष्ण महाभाग हे राम-अमितविक्रम।
एष घोरतमो वह्नि-तावकान्ग्रसते हि न:।।10।17।23।।
इत्थं स्वजन-वैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वर:।
तम्-अग्निम्-अपिबत्-तीव्रम्-अनन्तो-अनन्त-शक्तिधृक्।।10।17।25।।

हे श्रीकृष्ण तथा बलराम! आपके अपने लोगों को यह भयानक आग जलानी चाह रही है। जगदीश्वर अनन्त शक्ति सम्पन्न भगवान्श्रीकृष्ण ने अपने लोगों को विकल देख उस अग्नि को निगल लिया। एक दूसरी घटना में मुञ्जवन में ग्वालबाल गौओं को चराते चले गये। वहाँ भयानक दावाग्नि प्रकट हो गयी। सब जलने लगे।

कृष्ण कृष्ण महावीर हे रामामित-विक्रम।
दावाग्निना दह्यमानान् प्रपन्नान्- त्रातुम्- अर्हथ:।।10।19।9।।

त्राहि-माम् करते हुए सबों ने भगवान्श्रीकृष्ण एवं बलराम जी की शरण ली। भगवान् ने उन सबों को अपनी आँखें बन्द करने को कहा। भगवान्ने उस दावाग्नि को निगल लिया। पुरुषसूक्त में कहा है कि "मुखादग्निरजायत" भगवान् के मुख से ही अग्नि की उत्पत्ति हुई है इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि भगवान्ने मुँह से अग्नि को पी लिया।दिन ढ़लने पर भगवान् मुरली बजाते हुए बालकों से अपना यशगान सुनते वृन्दावन आ गये।

गोपीनां परमानन्द आसीद् गोविन्द-दर्शने।
क्षणं युग-शतम्-इव यासां येन विना-अभवत्।।10।19।16।।

गोविन्द को देख गोपियाँ प्रसन्न हुई। उनसे एक क्षण का वियोग उनलोगों को सौ युगों के समान दुस्तर था।

10।6 बलराम जी द्वारा प्रलम्बासुर का वध

स च वृन्दावन-गुणै: वसन्त इव लक्षित:।
यत्रास्ते भगवान् साक्षाद् रामेण सह केशव:।।10।18।3।।

वृन्दावन में गर्मी का मौसम था परन्तु बलराम जी तथा भगवान्श्रीकृष्ण के कारण गर्मी भी वसन्त जैसा था। वंशी बजाते भगवान् एकबार बलराम जी तथा ग्वालबालों के साथ वन में गाय चराने गये।

प्रवाल-बर्ह-स्तबक-स्रक्-धातु-कृतभूषणाः।

रामकृष्णादयो गोपा ननृतुः युयुधुः जगुः।।10।18।9।।

गोपजाति-प्रतिच्छन्नौ देवा गोपालरूपिणः।

ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप।।10।18।11।।

नये पल्लवों, मोरपंख, सुन्दर पुष्पों के हारों तथा गेरू आदि के रंग से बलराम जी एवं श्रीकृष्ण जी अन्य गोपसखाओं के साथ सज-धजकर नाचते हुए कुश्ती आदि लडने का खेल में लीन हो गये। देवता लोग भी ग्वालबाल के रूप में सजधजकर उनके साथ सम्मिलित हुए। देवों ने बीच-बीच में बलराम जी तथा श्रीकृष्ण जी की प्रशंसा करते हुए उनकी स्तुति की। एक बार प्रलम्ब असुर ग्वालबाल के वेष में उनकी जमात में मिल गया।

तं विद्वानपि दाशार्हो भगवान् सर्वदर्शनः।

अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिन्तयन्।।10।18।18।।

भगवान्श्रीकृष्ण सर्वज्ञ थे। उन्होंने उस असुर को पहचान लिया परन्तु उससे मित्रता का भाव दिखाते हुए उसके वध का उपाय सोचने लगे। भगवान्जिससे मित्रता का भाव रखते हैं उसका वध स्वयं नहीं करते।खेल में हारने वाले बच्चे जीतने वाले को अपनी पीठ पर चढ़ाकर कुछ दूर एक भाण्डीरक नामक वरगद के पेड़ तक ले जाते थे। खेलने के अन्तराल प्रलम्ब ने बलराम जी को अपनी पीठ पर चढ़ाकर वरगद के पेड़ से दूर भागने लगा। बलराम जी मेरु के समान भारी हो गये। असुर भी अपने असली विकराल स्वरूप में आ गया।

अथ-आगत-स्मृतिः अभयो रिपुं बलो विहाय-सार्थम्- इव हन्तम्-आत्मनः।

रुषा-अहनत्-शिरसि दृढेन मुष्टिना सुराधिपो गिरिम्-इव वज्र-रहंसा।।10।18।28।।

यद्यपि बलराम जी को उस असुर को देखकर कुछ भय हुआ परन्तु देवों के देव भगवान्श्रीकृष्ण का स्मरण करके उन्होंने उसके माथे पर कुपित होकर पर्वत पर इन्द्र के वज्र जैसा ऐसा मुक्का मारा कि वह खून वमन करते हुए फटे हुए सिर के साथ मरा हुआ जमीन पर गिरा। बालकों ने बलराम जी की जय-जयकार की।

10।7।। वर्षा ऋतु एवं शरदृतु

ग्रीष्म ऋतु के बाद वर्षा ऋतु का आगमन हुआ। आकाश बादलों से ढ़क गया जैसे आत्मा प्रकृति के तीन गुणों से ढ़क जाती है। आठ माह सूर्य ने धरती से जल सोखा परन्तु वर्षा में वह संचित जल को मुक्त करता है। बादलों से तारे ढ़क गये थे परन्तु जुगनू की चमक दिखती थी जैसे पाषण्ड से वैदिक ज्ञान ढ़का रहता है। मेढ़क की बोली गुरु के आदेश के विना विद्यार्थी को गुरु के समक्ष पाठ सुनाने जैसा है।

जलस्थलौकसः सर्वे-नव-वारि-निषेवया।

अविभ्रद्रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया।।**10।20।13**।।

वर्षा के पानी से जल तथा थल के जीव उसी तरह सुन्दर दिखते हैं जैसे भगवान्की सेवारत भक्त सुहावना दिखता है। भक्तगण सभी प्रतिकूल स्थितियों में शान्त रहते हैं जैसे पर्वत जल के प्रहार से विचलित नहीं होता।

मेघ-आगमो-उत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दन्-शिखण्डिनः।

गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथा-अच्युत-जनागमे। ।10।20।20। ।

बादलों के आगमन से मोर वैसे ही प्रसन्न हुए जैसे घर के प्रपञ्च से विकल गृहस्थ भगवान्‌अच्युत के भक्त के घर आगमन पर होता है।जब वृन्दावन के जंगल पके जामुन तथा खर्जूर के फल से शोभायमान हो रहे थे तब भगवान्‌श्रीकृष्ण अपने बड़े भाई बलराम जी एवं ग्वाल सखाओं से घिरे आनन्द मनाने जंगल में आये। वर्षा होने पर भगवान्‌फल खाते गुफा में या पेड़ के खोड़र में छिप गये।

दध्योदनं समानीतं शिलायां सलिलान्तिके।

सम्भोजनीयैः बुभुजे गोपैः सङ्कर्षण-अन्वितः। ।10।20।29। ।

घर से लाये हुए दही-भात गोप सखाओं एवं बलराम जी के साथ जल के समीप स्थित शिलाखण्ड पर बैठ भगवान्‌ने खाया। इस तरह से आनन्द मनाते वर्षा के बाद शरद्‌ऋतु का आगमन हुआ। सरोवर विमल जल तथा कमलपुष्प से शोभायमान हो गया।

व्योम्नोऽब्दं भूतशाबल्यं भुवः पङ्कमपां मलम्।

शरद्-जहार-आश्रमिणां कृष्णे भक्तिः यथा-शुभम्। ।10।20।34। ।

शरद्‌में आकाश बादल विहीन हो गये। पशुओं की भीड़ सर्वत्र वितरित होने लगी। धरती कीचड़ से मुक्त हो गयी। यह सब ऐसे ही हुआ जैसे भगवान्‌श्रीकृष्ण की भक्ति से सभी आश्रमवासी व्याधि-मुक्त हो जाते हैं।छिछले जल की मछलियों को जल का घटना उसी तरह पता नहीं चलता जैसे मूर्ख यह नहीं समझ पाते कि नित्य उनकी आयु क्षीण हो रही है।

शरद अर्क-अंशु-जान्-तापान्भूतानाम्-उडुपो-अहरत्।

देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम्। ।10।20।42। ।

शरद्‌में रात्रि काल का चन्द्रमा लोगों को दिन के सूर्य के आतप से शान्ति देता है जैसे देह का कष्ट ज्ञान से लुप्त होता है तथा भगवान्‌श्रीकृष्ण व्रज-नारियों को अपने वियोग से होने वाली विकलता से मुक्त कर देते हैं।

10।8। ।भगवान् श्रीकृष्ण का वेणुगान

भगवान्‌नित्य वृन्दावन गाय चराने जाते।जाते समय मार्ग में, वन में तथा वन से लौटते समय मुरली बजाते थे। गोपियाँ सर्वदा भगवान् के सौंदर्य को निहारते रहना चाहती थीं परन्तु दिन भर के वियोग में आपस में बैठकर भगवान्‌की लीला का वर्णन, श्रवण एवं अनुकरण बड़े ही मनोभाव से करते रहती थीं। इस प्रकरण में गोपयों के द्वारा भगवान् के वेणुवादन की महिमा तथा उसका जड़ एवं चेतन पदार्थो पर प्रभाव का एक विहंगम दृश्य की प्रस्तुति है। भगवान्‌श्रीकृष्ण वन में सखाओं के साथ प्रवेश कर वंशी बजा रहे हैं। गोपियाँ एकान्त में व्रज में ही बैठकर वेणुगीत की सराहना के साथ वन में उनके श्रृँगार का वर्णन करती हैं।

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद्वासः कनक-कपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।

रन्ध्रान् वेणोः अधर-सुधया पूरयन् गोपवृन्दैः वृन्दारण्यं स्वपद-रमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः। ।**10।21।5**। ।

भगवान्‌के शिर पर मोरपंख, कान में कनेर फूल का कुण्डल, देह पर सुनहरा पीताम्बर तथा गले में वैजयन्ती माला शोभायमान थे। वे सर्वश्रेष्ठ नर्तक के रूप में शोभ रहे थे। वृन्दावन उनके पदचिह्नों से रमणीय बन गया। उन्होंने

अपने होठों के अमृत से वंशी के छेदों को भर दिया। गोपसखा उनकी कीर्तिगान करते उनके साथ रहते हैं। जिसने भगवान् के इस अनोखे सौंदर्य को देख लिया उसकी आँखें धन्य हो गयीं।

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदाम: सख्य: पशून्-अनु विवेशयतो: वयस्यै:।
वक्त्रं व्रजेशसुतयो: अनु-वेणु-जुष्टं यै: वा निपीतम्-अनुरक्त-कटाक्ष-मोक्षम्।।10।21।7।।

चूल-प्रवाल-बर्ह-स्तबक-उत्पल-अब्ज-माला-अनुपृक्त-परिधान-विचित्र-वेषौ।
मध्ये विरेजतु: अलम्पशुपाल-गोष्ठ्यां रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ।।10।21।8।।

गोपियाँ कहती हैं कि नन्द जी के दोनों पुत्र जब अपनी मुरली लेकर गौ चराने वन जाते हैं तथा लौटकर घर आते हैं तब दोनों समय में उनके छटापूर्ण मुखारविन्द के अधरों पर मुस्कातन का सौंदर्य तथा उनकी तिरछी चितवन को जिसकी आँखें देख लीं वे सब निहाल हो गयी। इनके सौंदर्य के अतिरिक्त यहाँ कोई अन्य वस्तु देखने लायक है भी नहीं। व्रज में आँख वालों के मात्र यही एक फल है। कुछ हरिकथाकार "व्रजेशसुतयो" के अर्थ व्रजेश-वृषभानु-सुता राधा जी तथा व्रजेश-नन्द-सुत श्रीकृष्ण करते हैं। राधा-कृष्ण के वेणुयुक्त मुखारविन्द के मुस्कान तथा तिरछी चितवन को निहारना ही आँखों का एकमात्र फल है। आँखें धन्य-धन्य हो जाती हैं।

भगवान्श्रीकृष्ण के श्याम शरीर का पीताम्बर तथा बलराम जी के गोरे शरीर का नीलाम्बर, केश के साथ आम के नये पल्लवों, मोरपंख, फूलों के गुच्छे तथा कुमुद एवं कमल की मालाओं से बहुत ही विचित्र स्वरूप की छटा विखेरती है। गोपसखाओं की टोली में दोनों भाई रंग-मंच पर प्रकट होने वाले श्रेष्ठ नर्तकों की तरह गाते हुए दिखते हैं। वंशी का बाँस भगवान्के अधरों का अमृत पान कर अपने को धन्य तथा अत्यन्त पुण्यवान मानता है। भगवान्की अनोखी लीलाओं से ऐसा प्रमाणित होता है कि वृन्दावन समस्त पृथ्वी का कीर्ति-ध्वज है। मुरली के धुन पर मोर मस्त होकर नृत्य करते हैं। मृगायें अपनी आकर्षक आँखों से भगवान् को अपलक निहारते हैं।

गावश्च कृष्ण-मुख-निर्गत-वेणुगीत-पीयूषम्-उत्तभित-कर्णपुटै: पिबन्त्य:।
शावा: स्नुत-स्तन-पय: कवला: स्म तस्थु: गोविन्दम्-आत्मनि दृशाश्रुकला: स्पृशन्त्य:।।**10।21।13**।।

गौयें अति शान्त भाव से मुरली धुन को अपने दोनों कानों को दोना बना अमृत पान करती हैं। बछड़े गायों के दूध से गीले स्तन में लगे रहते परन्तु दूध से भरे स्तब्ध मुँह के साथ मुरली धुन के रसपान की समाधि में मग्न हो भगवान्गोविन्द के स्वरूप को हृदय में बैठा आँखों से प्रेमाश्रु बहाते उनके आलिंगन के आनन्द में रहते। देवों की पत्नियाँ गगन में इस धुन को सुनकर कामभावना से ग्रस्त हो उठतीं। पक्षीगण वृक्षों पर बैठकर मुनियों की तरह आँखें बन्दकर मुरली धुन का आनन्द लेती। नदी का प्रवाह मुरली-धुन से स्तब्ध हो जाता तथा भँवर बन कर आनन्दित होता। नदी अपनी लहरों की भुजाओं से मुरारी के चरणारविन्दों का आलिंगन करते हुए कमलपुष्पों का उपहार चढ़ाती। वनवासी नारियाँ घास पर लगे भगवान्श्रीकृष्ण के श्रीचरणों के कुंकुम को अपने स्तनों तथा शरीर पर मलकर सांसारिक चिन्ता से मुक्त हो जातीं।

हन्त-अयम्-अद्रि:-अबला हरिदास-वर्यो यद् राम-कृष्ण-चरण-स्पर्श-प्रमोद:।
मानं तनोति सह-गो-गणयो: तयो: यत् पानीय-सूयवस-कन्दर-कन्दमूलै:।।10।21।18।।

गोपियाँ अबला के संकोच में डूब जाती हैं। आगे कहती हैं कि श्रीगिरिराज गोवर्धन जी सब भक्तों में अति श्रेष्ठ हैं। इनको दोनों भाईयों के श्रीचरणों के स्पर्श से सदा आनन्द मिलता रहता है। गौयें, बछड़ों तथा गोपसखाओं का श्रीगिरिराज जी बहुत ही सम्मान करते हैं। घास, शीतल पेय जल, छाँह के लिए कन्दरायें तथा खाने के लिए कन्द-मूल हमेशा ही उपलब्ध कराते रहते हैं।

गा गोपकै: अनुवनं नयतो: उदार वेणु-स्वनै: कल-पदै: तनुभृत्सु सख्य:।

अस्पन्दनं गतिमतां पुलक: तरूणां निर्योग-पाश-कृत-लक्षणयो: विचित्रम्।।21।21।19।।

दोनों भाई सखाओं के साथ एक वन से दूसरे वन में घूमते हुए गाय दूहने वाली रस्सी कन्धे पर लिए रहते हैं। जब भगवान् श्रीकृष्ण अपनी वंशी बजाते हैं तब उसकी आश्चर्यजनक विशेषता है कि चर प्राणी स्तब्ध तथा स्थिर हो जाते हैं जबकि अचर वस्तु वृक्षादि वेणुगान को सुनकर आनन्द में झूमने लगते हैं।

10।9। कात्यायनी व्रत करने वाली कुमारियों का भगवान् द्वारा वस्त्रावरण

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिका:।

चेरुर्हविष्यं भुञ्जाना: कात्यायनी-अर्चन-व्रतम्।।10।22।1।।

कात्यायनि महामाये महायोगिन-अधीश्वरि।

नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नम:।

इति मन्त्रं जपन्त्य: ता: पूजां चक्रु: कुमारिका:।।10।22।4।।

हेमन्त के पहले माह अर्थात्अगहन में व्रज की कुमारी गोपियों ने हविष्य खाकर पूरे माह का कात्यायनी देवी की पूजा करने का व्रत रखा। कात्यायनी देवी से नन्द के पुत्र भगवान्श्रीकृष्ण को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए मन्त्र जपती। प्रतिदिन सवेरे जाग कर कुमारियाँ एक दूसरे का हाथ पकड़ भगवाान्श्रीकृष्ण का गीत गाते हुए यमुना नदी जाती। एक दिन यमुना किनारे कुमारियाँ अपने वस्त्र उतार जल में स्नान कर रही थी।भगवान्श्रीकृष्ण गोपसखाओं से घिरे वहाँ पहुँचे।

तासां वासांसि-उपादाय नीपम्-आरुह्य सत्वर:।

हसद्भि: प्रहसन् बालै: परिहासम्-उवाच ह।।10।22।9।।

कुमारियों के वस्त्र लेकर भगवान्श्रीकृष्ण कदम्ब के वृक्ष पर तेजी से चढ़ गये। अपने सखाओं को हँसाने के लिए भगवान्श्रीकृष्ण ने कुमारियों से मजाक करते हुए कहा कि तुमलोग मेरे पास आकर अपने वस्त्र ग्रहण कर सकती हो। ठंढ़े जल में निर्वस्त्र कन्यायें काँप रही थीं। उनलोगों ने कहा -

श्यामसुन्दर ते दास्य: करवाम तवोदितम्।

देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद् राज्ञे ब्रुवामहे।।10।22।15।।

हे श्यामसुन्दर ! हम सब आपकी दासी हैं। आप धर्मज्ञ हैं। आप जैसा कहेंगे वैसा ही करुँगी परन्तु मेरे वस्त्र लौटा दे नहीं तो राजा नन्द से शिकायत करुँगी।भगवान्ने कहा कि अगर सचमुच मेरी दासी हो तब मुस्कराते हुए यहाँ आकर वस्त्र ले जाओ। कन्यायें अपने हाथों से गुप्तांगों को ढककर बाहर निकलीं। भगवान्ने कहा कि निर्वस्त्र जल में स्नान करना देवों के प्रति अपराध है।अपने सिर के ऊपर हाथों को प्रणाम मुद्रा में रख़कर देवों से अपराध की

क्षमा माँगते हुए मेरे पास आकर वस्त्र ले लो। कन्याओं ने वैसा ही किया। द्रवित होकर भगवान्‌ने उनके वस्त्र लौटा दिया। भगवान् के प्रति किसी भी अन्यथा भाव के विना वस्त्र पहन वे वहीं खड़ी रहीं तथा अपलक उनके सौंदर्य को निहारती रहीं। भगवान्‌दामोदर ने उनलोगों से कहा कि तुम्हारा मनोभाव मेरी पूजा करने का है और मैं तुमलोगों की अभिलाषाओं को पूरा करना चाहता हूँ।

न मयि-आवेशित-धियां काम: कामाय कल्पते।

भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते।।10।22।26।।

भगवान्‌ने कहा कि जो इन्द्रियों की तृप्ति की कामाना से मुक्त होकर मुझमें मन लगाये रहते हैं वे धूप में सूखे तथा आग में पकाये उस अन्न की तरह हैं जिनके अँकुर नहीं निकलते।

यात-अबला व्रजं सिद्धा मया-इमा रंस्यथ क्षपा:।

यत्-उद्दिश्य व्रतमिदं चेरु: आर्या-अर्चनं सती:।।10।22।27।।

भगवान्‌ने यह आश्वासन दिया कि आने वाली रातें वे उनके साथ बितायेंगी।उनका व्रत सफल हुआ है।भगवान् ने उनलोगों को व्रज वापस लौटा दिया। वे भगवान्‌के चरणों का ध्यान करतीं व्रज वापस आईं।

<u>10।10। ब्राह्मण-पत्नियों पर भगवान्‌की कृपा ।</u>

भगवान्‌श्रीकृष्ण एक बार गर्मी के मौसम में गायों को चराते अपने सखाओं के साथ दूर वन में निकल गये।

पश्यत्-एतान् महाभागान् परार्थ-एकान्त-जीवितान्।

वात-वर्ष-आतप-हिमान् सहन्तो वारयन्ति न:।।10।22।32।।

एतावत्-जन्म-साफल्यं देहिनामिह देहिषु।

प्राणै: अर्थै: धिया वाचा श्रेय एवाचरेत् सदा।।10।22।35।।

वृक्षों की प्रशंसा करते हुए भगवान्‌ने कहा कि इनका जीवन दूसरों की भलाई के लिए ही है। ये महाभाग हैं जो सर्दी , गर्मी तथा वर्षा झेलते हुए दूसरे की भलाई करते रहते हैं। प्राणियों का जीवन तब ही सफल होता है जब वे अपना प्राण, धन, बुद्धि तथा वाणी दूसरों की भलाई में लगा दें।

राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण।

एषा वै बाधते क्षुत्-न: तत्-शान्तिं कर्तुम्-अर्हथ:।।10।23।1।।

इति विज्ञापितो गोपै: भगवान् देवकीसुत:।

भक्ताया विप्रभार्याया: प्रसीदन्-इदम्-अब्रवीत्।।10।23।2।।

गोपसखाओं ने शीघ्र ही गायों को चरने में लगाकर कहा कि हे पराक्रमी बलराम जी तथा दुष्टों का नाश करने वाले भगवान्‌श्रीकृष्ण ! हमलोगों को बहुत भूख लगी है। क्षुधा-शान्ति का कुछ उपाय करें। भगवान्‌की परमभक्त पास ही में ब्राह्ण-पत्नियाँ रहतीं थीं। उनलोगों को प्रसन्न करने के उद्देश्य से भगवान्‌ने गोपसखाओं से कहा कि पास ही में ब्राह्मण लोग स्वर्ग प्राप्ति के लिए अंगिरस यज्ञ कर रहे हैं। जाकर हम दोनों भाईयों के बारे में बताकर उनसे कुछ भात माँग कर ले आओ। वृन्दावन के दक्षिण-पूर्व दिशा में आज भी **"भतरौढ़ बिहारी"** जी का मन्दिर दर्श नीय है जो एक छोटी पहाड़ी पर स्थित है। सखागण ने जाकर ब्राह्मणों से निवेदन किया कि भगवान्‌श्रीकृष्ण तथा

बलराम जी भूखे हैं और उनलोगों ने ही भूख शांति हेतु आपलोगों के पास भात माँगने के लिए भेजा है। ब्राह्मणों ने गोपसखाओं की बात को अनसुनी कर दी तथा कर्मकाण्ड में लगे रहे। सखाओं ने भगवान्के पास लौटकर सबकुछ सुना दिया। भगवान्ने हँसकर कहा कि जाकर उनकी पत्नियों से हमलोगों के लिए भोजन माँगो। गोपबालकों ने वैसा ही किया। ब्राह्मणियों ने जब सुना कि लीलाविहारी भगवान् भूखे हैं तब उनके दर्शन की अभिलाषा से उतावली हो उठीं।

चतुर्विधं बहुगुणम्-अन्नम्-आदाय भाजनै:।
अभिसस्रु: प्रियं सर्वा: समुद्रमिव निम्नगा:।।10।23।19।।

बड़े-बड़े पात्रों में चारों प्रकार (भोज्य - चबाने योग्य, खाद्य -दाँत से काटने योग्य, पेय- पीने योग्य, तथा लेह्य - चाटने लायक) के सुस्वादु भोजन लेकर वे सब अपने प्रियतम भगवान् से मिलने उसी प्रकार चलीं जैसे नदियाँ समुद्र से मिलने के लिए लालायित रहती हैं। उनके सम्बन्धियों ने भगवान् के पास जाने से उन्हें मना किया परन्तु उनकी बातों की अवहेलना कर वहाँ पहुँच कर भगवान्को देखी।

श्यामं हिरण्य-परिधिं वनमाल्य-बर्ह-धातु-प्रवाल-नट-वेषम्-अनुव्रतांसे।
विन्यस्त-हस्तम्-इतरेण धुनानम्-अब्जं कर्ण-उत्पल-अलक-कपोल-मुख-अब्ज-हासम् ।।10।23।22।।
प्राय: श्रुतप्रियतम-उदय-कर्णपूरै: यस्मिन्निमग्न-मनस: तम्-अथ-अक्षि-रन्ध्रै:।
अन्त: प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य तापं प्राज्ञं यथाभिमतयो विजहु: नरेन्द्र।।10।23।23।।

भगवान्के श्यामले वदन पर पीताम्बर चमक रहा था। वनमाला तथा मोरपंख के मुकुट के साथ वे गेरूक से शरीर पर रंगीन चित्र से सुसज्जित एक श्रेष्ठ नटवर की तरह मनोरम दिख रहे थे। सखा के कन्धे पर एक हाथ रखे दूसरे हाथ से कमल का फूल नचा रहे थे। कानों में कमलपुष्प का कुण्डल तथा कपोल पर लटकती केश की लटें तथा मुस्कराते मुखारविन्द से उनकी छटा मनोहारी बन रही थी। ब्राह्मणियों के कान का स्थायी आभूषण भगवान्के लीलागान का श्रवण ही था। अपने खुले नेत्र से भगवान्के स्वरूप को अपने अन्त:स्थल में बैठाकर उनका आलिंगन करने लगीं। जिस तरह से मुनिगण अपने हृदयस्थ अर्न्तयामी में लीन होकर अहंकार से मुक्त हो जाते हैं उसीतरह अबतक भगवान् को नही देखने से ब्राह्मणियों की वियोग-पीड़ा का ताप दूर हो गया। भगवान्ने उनलोगों का स्वागत करते हुए उनसे मिलने के लिए आने की प्रशंसा की। भगवान्ने उन्हें जाकर अपने पति के यज्ञ को सफल बनाने के लिए कहा।

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं सत्यं कुरुष्व निगमं तव पादमूलम्।
प्राप्ता वयं तुलसीदाम पदावसृष्टं केशै: निवोढुम्-अतिलङ्घ्य समस्त-बन्धून्।।10।23।29।।

ब्राह्मणियों ने कहा कि पति-बन्धु-पुत्र सबको छोड़कर आपकी शरण में आये हुए को आप इस तरह के निष्ठुर वचन कहकर लौटायें नहीं। हम अब आपके श्रीचरणों को छोड़कर कहाँ जायें। निगम के निर्देश **"यमेष वृणुते" "यदगत्वा न निवर्तन्ते" "मामेकं शरणं व्रज"** को पूरा करें। अब यही अभिलाषा है कि आपके चरणारविन्द पर चढ़ी हुई तुलसी की माला से हम अपने केशपाश को सजायें।

शुकदेव जी कहते हैं कि एक ब्राह्मणी को उसके पति ने आने से रोक दिया था। उसने भगवान्में चित्त लगाकर अपने कर्म-बन्धन के शरीर का परित्याग कर दिया। भगवान्के कहने से ब्राह्मणियाँ वापस चली गयीं। अपने सखाओं के साथ भगवान्ने सुस्वादु भोजन का आनन्द लिया।

एवं लीला-नरवपुः नृलोकम्-अनुशीलयन्।
रेमे गो-गोप-गोपिनां रमयन्रूप-वाक्-कृतैः।।10।23।36।।

मनुष्य के रूप में लीला स्वरूप धारण कर भगवान्ने मनुष्यलोक की रीतियों का पालन करते हुए अपने सौंदर्य, वाणी तथा कर्मो से सबको आनन्दित किया। जब ब्राह्मणों को वस्तुस्थिति की जानकारी हुई तब वे बहुत पछताने लगे। उन्होंने अपनी पत्नियों के भाग्य की सराहना कर अपने कर्मो तथा झूठे ज्ञान को धिक्कारने लगे।

स एष भगवान् साक्षाद् विष्णुः योगेश्वरेश्वरः।
जातो यदुषु-इति-आश्रृण्म ह्यपि मूढा न विद्महे।।10।23।48।।
अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः।
भक्त्या यासां मतिर्जाता अस्माकं निश्चला हरौ।।10।23।49।।

यद्यपि हम सुन रखे हैं कि योगश्वरों के ईश्वर भगवान्विष्णु का यदुकुल में आविर्भाव हुआ है परन्तु हम अपनी मूर्ख ता वश भगवान्श्रीकृष्ण को पहचान नहीं सके। हम बड़भागी हैं कि भगवान्श्रीकृष्ण के प्रति हमारी पत्नियों की अनन्य भक्ति के कारण हमारी भी भगवान्श्रीकृष्ण में निश्चल मति हुई है। यद्यपि ब्राह्मणों को भगवान्श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए लालसा हुई परन्तु कंस के डर से वे भगवान्के पास नहीं जा सके।

10।11। गोवर्धन पूजा, भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन उठाना तथा उनका अभिषेक

भगवान्ने ग्वालों को एक बार इन्द्र-पूजा की तैयारी करते देख नन्द जी से इसके बारे में पूछा। नन्द जी ने कहा कि इन्द्र द्वारा प्रदत्त वर्षा से हम अन्न तथा घास-पौधे आदि प्राप्त कर जीवन धारण करते हैं। हमलोग उसी वर्षा के स्वामी इन्द्र की पूजा की तैयारी कर रहे हैं। ऐसा सुनकर भगवान्ने कहा कि -

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणा-एव अभिपद्यते।।10।24।13।।
अस्ति चेत्-ईश्वरः कश्चिद्फलरूपी-अन्यकर्मणाम्।
कर्तारं भजते सोऽपि न हि-अकर्तुः प्रभुर्हि सः।।10।24।14।।

मनुष्य कर्म से ही जन्म लेते तथा मरते हैं। प्राणी को सुख-दुःख-भय-कल्याणादि उसके कर्मानुसार ही मिलते हैं। जो भी सकाम कर्म के फलदाता देवता है उसका अस्तित्व भी सकाम कर्म के सम्पन्न होने पर निर्भर करता है।

सत्त्वं रजस्तम इति स्थिति-उत्पत्ति-अन्त-हेतवः।
रजसा-उत्पद्यते विश्वम्-अन्योन्यं विविधं जगत्।।10।24।22।।
रजसा चोदिता मेघा वर्षन्ति-अम्बूनि सर्वतः।
प्रजाः तैः एव सिद्ध्यन्ति महेन्द्रः किं करिष्यति।।10।24।23।।

माया के तीन गुण सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण का ही विश्व में सारा खेल है। विश्व का पालन सतोगुण से, उत्पति रजोगुण से तथा संहार तमोगुण से होता है। रजोगुण के कारण ही मेघ जल वर्षाते हैं तथा अन्नादि उत्पन्न होता है। इसमें इन्द्र का कहाँ कोई हाथ है।

तस्माद् गवां ब्राह्मणानाम्-अद्रेः च आरभ्यतां मखः।

य इन्द्र-याग-सम्भाराः तैः अयम् साध्यतां मखः। ।10।24।25। ।

भगवान्‌ने कहा कि इसलिए हे पिता जी ! गाय, ब्राह्मण तथा गोवर्धन पर्वत के आनन्द हेतु ही इन्द्र-यज्ञ के लिए एकत्रित सामग्रियों का सदुपयोग हो। वेद मन्त्र में निपुण ब्राह्मणों को निमन्त्रित कर गाय तथा गोवर्धन की पूजा करें। पकवान आदि बनाकर गोवर्धन पर चढ़ायें। अन्य जीवों को भी यथोचित भोजन दें। भगवान्श्रीकृष्ण की बात सभी व्रजवासियों ने उचित माना।

कृष्णः तु-अन्यतमं रूपं गोप-विश्रम्भणं गतः।

शैलोऽस्मीति ब्रुवन्भूरि बलिमादद् बृहत्-वपुः। ।10।24।35। ।

तस्मै नमो व्रजजनैः सह चक्रे-आत्मना-आत्मने।

अहो पश्यत शैलोऽसौ रूपी नोऽनुग्रहं व्यधात्। ।10।24।36। ।

गोपजनों में विश्वास दिलाने के लिए भगवान्श्रीकृष्ण स्वयं ही एक विशाल स्वरूप धारण कर गोवर्धन के शिखर पर विराज गये। उस स्वरूप से आवाज आने लगी कि **"मैं ही गिरिराज हूँ।"** सभी पकवान आदि जो गिरिराज पर चढ़ाये सब खाने लगे। अन्य व्रजव्रासियों के साथ भगवान्श्रीकृष्ण ने गिरिराज को प्रणाम किया और कहा "क्या आश्चर्य है कि गिरिराज स्वयं प्रकट होकर हमलोगों की भेंट को स्वीकार कर रहे हैं।" इस तरह से यज्ञ सम्पन्न कर सभी भगवान्श्रीकृष्ण के साथ व्रज वापस आ गये।

इन्द्रः तदा-आत्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप।

गोपेभ्यः कृष्ण-नाथेभ्यो नन्द-आदिभ्यः चुकोप सः। ।10।25।1। ।

गणं सांवर्तकं नाम मेघानां चान्तकारिणाम्।

इन्द्रः प्रचोदयत् क्रुद्धो वाक्यं च-आह-ईशमानी-उत। ।10।25।2। ।

अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां कानन-ओकसाम्।

कृष्णं मर्त्यम्-उपाश्रित्य ये चक्रुः देव-हेलनम्। ।10।25।3। ।

नन्द आदि पर अपना यज्ञ न होने के कारण इन्द्र कुपित हो गया जो रजोगुणी जीव का लक्षण हैं। द्रष्टव्य गीता **14।12 लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा। रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ।"** उसने विनाशकारी सांवर्तक मेघ को व्रज पर वर्षा करने के लिए भेजा। अपने को सर्वेसर्वा मानते हुए इन्द्र ने भगवान्श्रीकृष्ण को एक मरणशील मनुष्य बताते हुए बोला कि जंगल के निवासियों ने अपने वैभव में उन्मत्त होकर देवों की अवहेलना की है। इन्द्र की आज्ञा से व्रज में प्रलंकारी जल वृष्टि शुरु हो गयी। इन्द्र ने वायुदेव के साथ विनाशकारी दृश्य उपस्थित कर दिया।

अति-आसार-अति-वातेन पशवो जात-वेपना:।

गोपा गोप्याश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययु:।।10।25।11।।

शिर: सुतांश्च कायेन प्रच्छाद्य-आसार-पीडिता:।

वेपमाना भगवत: पादमूलम्-उपाययु:।।10।25।12।।

मूसलाधार वर्षा तथा ठंढ़ी हवा से काँपते गोप नर-नारी तथा पशुगण भगवान्श्रीकृष्ण की शरण में गये। भगवान्श्रीकृष्ण समझ गये कि यह इन्द्र की करतूत है।

तस्मात्-शरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्-परिग्रहम्।

गोपाये स्वात्म-योगेन सोऽयं व्रत आहित:।।10।25।18।।

इति-उक्त्वा-एकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम्।

दधार लीलया कृष्ण: छत्राकम्-इव बालक:।।10।25।19।।

भगवान्ने व्रज को अपना शरणार्थी समझ अपने व्रत अर्थात्प्रतिज्ञा के अनुसार उनलोगों की रक्षा के लिए अपनी योगमाया का प्रयोग किया। भगवान्श्रीकृष्ण ने अपने एक ही हाथ से गोवर्धन पर्वत को बालकों की छाता की तरह उठा लिया। अपने प्रियजनों को गौओं के साथ बुलाकर उसके नीचे सुरक्षित स्थान दे दिया।

क्षुत्-तृट्-व्यथां सुख-अपेक्षां हित्वा तै: व्रज-वासिभि:।

वीक्ष्यमाणो दधावद्रिं सप्ताहं न अचलत् पदात्।।10।25।23।।

भगवान्ने सात दिन तक एक ही स्थान पर स्थिर रहते हुए विना खाये पिये गोवर्धन को अपने एक हाथ पर धारण किया। व्रजवासी उन्हें निहारते रहे। इन्द्र का अहंकार टूट गया। उसने वर्षा बन्द करा दी। सभी व्रजवासी भगवान् की राय से गोवर्धन से बाहर आ गये। भगवान्ने गोवर्धन को अपने मूल स्थान पर यथावत रख दिया। भगवान्ने वराहावतार में समस्त पृथ्वी को गेन्द की तरह अपने दाढ़ो पर धारण किया है तब उनके लिए गोवर्धन को उठाना कोई आश्चर्यजनक है नहीं। भगवान्को सभी व्रजवासियों ने बधाई दी तथा उनके ऊपर दही-अक्षत आदि से आशीर्वाद की वर्षा कर दी। स्वर्ग से सिद्धों तथा गन्धर्वो ने भगवान्पर फूल बरसाये तथा देवगण दुन्दुभि बजाने लगे। गोपियाँ गीत गाते व्रज को लौटीं। गोपजन नन्द जी के पास जाकर भगवान्श्रीकृष्ण को अवतार बताते हुए कहने लगे।

य: सप्त-हायनो बाल: करेण-एकेन लीलया।

कथं बिभ्रद्गिरिवरं पुष्करं गज-राट्-इव।।10।26।3।।

सात वर्ष का यह बालक एक ही हाथ पर गोवर्धन को वैसे ही धारण किये रहा जैसे बलशाली हाथी कमल फूल को उठा लेता है। शिशु के रूप में पूतना का वध किया। तीन माह की आयु में पैर से गाड़ी को चकनाचूर कर दिया। एक वर्ष की अवस्था में तृणावर्त का अन्त किया।

क्वचित्-हैयङ्गव-स्तैन्ये मात्रा बद्ध उलूखले।

गच्छन् अर्जुनयो: मध्ये बाहुभ्यां तौ-अपातयत्।।10।26।7।।

एक बार मक्खन चुराने के कारण माता ने इन्हें ऊखल से बाँध दिया। हाथों के बल ऊखल घसीटते हुए दो अजुर्न वृक्षों को इन्होंने जड़ से उखाड़कर गिरा दिया।बकासुर तथा वत्सासुर का अन्त किया एवं बलराम जी द्वारा

प्रलम्बासुर तथा धेनुकासुर का अन्त करवाया। विषैले कालिय का मानभंग कर उसे यमुना जी से बाहर किया। दो-दो बार दावाग्नि से हमलोगों की रक्षा की। सात वर्ष की अवस्था में विशाल गोवर्धन को एक हाथ से उठाकर इसने हमलोगों के मन को भ्रमित कर दिया है। नन्द जी ने गर्गमुनि से कही गयी सब बात बता दी।

तस्मात् नन्दकुमारोऽयं नारायणसमो गुणैः।
श्रिया कीर्त्या-अनुभावेन तत्कर्मसु न विस्मयः।।10।26।22।।
इति नन्दवचः श्रुत्वा गर्गगीतं व्रजौकसः।
दृष्ट-श्रुत-अनुभावाः ते कृष्णस्य-अमित-तेजसः।
मुदिता नन्दम्-आनर्चुः कृष्णं च गत-विस्मयाः।।10।26।24।।

गर्गमुनि ने कहा था कि नन्द जी आपका यह पुत्र नारायण की तरह गुणवान है। इसके कृत्यों से विस्मित नहीं होंगे। गर्गमुनि की बात जानकर व्रजवासियों ने अमित तेजस्वी भगवान्श्रीकृष्ण का देखा तथा सुना अद्भुत कृत्यों का स्मरण कर नन्द जी तथा भगवान्श्रीकृष्ण की पूजा की। इन्द्र के गर्व विनाशक भगवान् गोविन्द को सब व्रजवासियों के ऊपर प्रसन्न रहने की प्रार्थना की।

गोवर्धने धृते शैल असाराद् रक्षिते व्रजे।
गोलोकात्-आव्रजत् कृष्णं सुरभिः शक्र एव च।।10।27।1।
विविक्त उपसङ्गम्य व्रीडितः कृतहेलनः।
पस्पर्श पादयोरेनं किरीटेन-अर्क-वर्चसा।।10।27।2।।

भगवान्श्रीकृष्ण के गोवर्धन धारण की अद्भुत लीला सुनकर स्वर्ग से सुरभि गाय इन्द्र को साथ लेकर भगवान्का दर्शन करने आई। इन्द्र भगवान्को अपमानित करने के प्रयास से लज्जित था। एकान्त में भगवान्के चरणों पर अपने चमकते मुकुट के साथ सिर को रखकर उसने क्षमा माँगी तथा स्तुति की।

पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो दुरत्ययः काल उपात्तदण्डः।
हिताय स्वेच्छा-तनुभिः समीहसे मानं विधुन्वन् जगदीश-मानिनाम्।।10।27।6।।

आपही सम्पूर्ण जगत के पिता, गुरु तथा सबके स्वामी हैं। काल के स्वरूप से आप पापियों को दण्ड देते हैं। अपनी इच्छा से शरीर धारण करके हमारे जैसे अभिमानियों को ज्ञान देते हैं। मैंने आपको अपमानित करना चाहा।

तवावतारो-अयम्-अधोक्षज-इह स्वयम्-भराणाम्-उरु-भार-जन्मनाम्।
चमूपतीनाम्-अभवाय देव भवाय युष्मत्-चरण-अनुवर्तिनाम्।।10।27।9।।
नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने।
वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः।।10।27।10।।
त्वया-ईश-अनुगृहीतो-अस्मि ध्वस्त-स्तम्भो वृथा-उद्यमः।
ईश्वरं गुरुम्-आत्मानं त्वामहं शरणं गतः।।10।27।13।।

आपका अवतार इन्द्रियों के समझ के परे है। आप आततायियों के विनाश करने आये हैं। जो आपके श्रीचरणों के अनुरागी हैं उनका आप सदा कल्याण करते हैं। यदुकुलश्रेष्ठ पुरुषोत्तम वासुदेव को नमस्कार है। मेरे प्रयास को

निरर्थक करते हुए मेरे अहंकार को चकनाचूर करके आपने मुझ पर दया दिखायी है। मैं आपकी शरण में हूँ। भगवान्ने इन्द्र की स्तुति सुन कहा कि मैंने दयावश ही तुम्हारे अहंकार का नाश किया है। भगवान् ने इन्द्र को स्वर्ग लौटने को कहा। इन्द्र के बाद सुरभि अपनी सन्तान अर्थात् व्रज की गाय एवं बछड़ों के साथ भगवान्की स्तुति करने लगी।हमलोगों को आप जैसा स्वामी मिलना आपकी महती कृपा है।

त्वं न: परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते।
भवाय भव गो-विप्र-देवानां ये च साधव:। ।10।27।20। ।
एवं कृष्णम्-उपामन्त्र्य सुरभि: पयसात्मन:।
जलै: आकाश-गङ्गाया ऐरावत-कर-उद्धृतै:। ।10।27।22। ।
इन्द्र: सुरर्षिभि: साकं नोदितो देवमातृभि:।
अभ्यषिञ्चत दाशार्ह गोविन्द इति चाभ्यधात्। ।10।27।23। ।

गौवों, देवताओं तथा विप्रों के हित के लिए आप हमारे इन्द्र बनें। ब्रह्मा के आदेश से मैं आपको इन्द्र के रूप में अभिषेक करना चाहती हूँ। भगवान् से याचना करके सुरभि ने अपने दूध से तथा इन्द्र ने ऐरावत की सूँढ़ द्वारा लाये गये आकाशगंगा के जल से भगवान्का अभिषेक किया। देवमाता अदिति तथा ऋषियों की सहमति तथा गीत-संगीतमय परिवेश में इन्द्र ने भगवान्को **"गोविन्द"** कह कर पुकारा। स्वर्ग में अपसरायें नृत्य करने लगीं। सर्वत्र आनन्द छा गया। इस पावन अवसर पर गौवों ने अपने दूध से समस्त धरती को अपने दूध से गीला कर दिया। भगवान्गोविन्द का अभिषेक करने के बाद उनसे अनुमति लेकर इन्द्र स्वर्ग धाम को लौट गये।

10।12। । वरुण लोक से नन्द जी का उद्धार तथा गोपजनों को परमधाम दर्शन

एकादश्यां निराहार: समभ्यर्च्य जनार्दनम्।
स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत्। ।10।28।1। ।

एकबार एकादशी व्रत में उपवास रहते हुए भगवान् जनार्दन की पूजा कर व्रत के पारण हेतु थोड़ी द्वादशी मुहूर्त के कारण अरुणोदय के पूर्व रात्रि में ही नन्द जी यमुना स्नान करने लगे। रात्रि में अशुभ समय में स्नान करते देख वरुण के आसुरी सेवकों ने नन्द जी को पकड़ लिया और वरुण लोक ले गये। नन्द जी को न देखकर गोपजन चिल्लाने लगे। भगवान्श्रीकृष्ण समझ गये कि यह सब वरुण का करतूत है। वे वरुणलोक पहुँच गये।

प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपाल: सपर्यया।
महत्या पूजयित्वा-आह तद्दर्शन-महोत्सव:। ।10।28।4। ।
अद्य मे निभृतो देहो-अद्य-एव-अर्थो-अधिगत: प्रभो।
त्वत्पादभाजो भगवन् अवापु: पारम्-अध्वन:। ।10।28।5। ।

भगवान् हृषीकेश को आया देख वरुण ने बड़े धूम-धाम से उनकी पूजा की। वरुण ने कहा कि आज मेरे इस शरीर का चरम उद्देश्य पूरा हुआ। आपके श्रीचरणों के सहारे संसार के मार्ग को पार करना आसान हो जाता है।मेरा मूढ अनुचर आपके पिता जी को यहाँ ले आया है। हमें क्षमा करें। आप अपने पिता जी को घर ले जायें। मुझ पर कृपा बनाये रखें। भगवान्नन्द जी को लेकर व्रज आ गये। समुद्र के देवता वरुण ने भगवान्श्रीकृष्ण का कैसे हार्दिक

अभिनन्दन किया इसकी कथा नन्द जी ने अपने साथी गोपजनों को बतायी। व्रजवासी मुग्ध होकर सोचने लगे कि भगवान् श्रीकृष्ण हमलोगों को अपना दिव्यधाम कब दिखायेंगे। भगवान् इनलोगों के हृदय के भाव को समझ गये।

इति सञ्चिन्त्य भगवान् महाकारुणिको हरिः।
दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम्।।10।28।14।।
सत्यं ज्ञानमनन्तं यद् ब्रह्म ज्योतिः सनातनम्।
यत्-हि पश्यन्ति मुनयो गुण-अपायो समाहिताः।।10।28।15।।
ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन च-उद्धृताः।
ददृशुः ब्रह्मणो लोकं यत्र-अक्रूरो-अध्यगात्पुरा।।10।28।16।।
नन्द-आदयः तु तं दृष्टवा परमानन्द-निर्वृताः।
कृष्णं च तत्रच्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः।।10।28।17।।

महाकृपालु भगवान् श्रीहरि ने ऐसा सोचकर माया से परे अपने दिव्यधाम का दर्शन गोपजनों को कराया। भगवान्का वह लोक के मूल गुण हैं - सत्य, ज्ञान, अनन्त, स्वयं प्रकाश, नित्य तथा सनातन।भौतिक गुणों से ऊपर उठकर मुनिगण ध्यान से इस लोक का दर्शन कर पाते हैं। भगवान्ने गोपजनों को यमुना के ब्रह्मकुण्ड में ले जाकर डुबकी लगवायी और फिर बाहर निकाल लिया। इसी कुण्ड से अक्रूर जी ने भी भगवत्स्वरूप का दर्शन किया था। हरिकथाकार कहते हैं कि शुकदेव जी ने पुराकाल का प्रयोग राजा परीक्षित के सन्दर्भ में किया है न कि घटनाओं के लिए। अभिप्राय है कि ये सब घटनायें परीक्षित के जन्म के पहले ही घट चुकी हैं। नन्द जी तथा अन्य गोपजनों ने भगवान्के दिव्यलोक के दर्शन से परमानन्द की अनुभूति की। इस कुण्ड में गोपजनों ने देखा कि भगवान्श्रीकृष्ण की स्तुति स्वयं वेद कर रहे हैं। इन्हें साक्षात् परब्रह्म देख गोपजन बड़े चकित हुए।

10।13। रासपञ्चाध्यायी - श्रीकृष्ण तथा गोपियों का रास के लिए मिलन

स्कन्ध **10** के अध्याय **29** से **33** को हरिकथाकार रासपञ्चाध्यायी कहते हैं। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को सुन्दर विधि समझाया गया है। सूत्र **15** में कहा है कि विभिन्न मतों के अनुसार भक्ति के अलग-अलग लक्षण हैं। उदाहारण स्वरूप सूत्र **16** में पराशर मुनि का सन्दर्भ है **"पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः"** अर्थात्भगवान्की पूजा में अनुराग भक्ति है। सूत्र **17** में गर्ग मुनि का मत है कि **"कथादिष्विति गर्गः।"** भगवान् की कथा में अनुराग भक्ति है। सूत्र **18** मेंशाण्डिल्य मुनि के कथन का सार है कि सांसारिक भोग-विलास से विरत होना भक्ति है। सूत्र **19** में नारद जी ने स्वयं कहा है कि समस्त कर्मो को भगवान्को समर्पित करना तथा क्षण भर के लिए भी विस्मरण होने पर उनके लिए परमव्याकुल हो जाना ही भक्ति है। नारद जी ने सूत्र **21** में इसका उदाहरण दिया है - **"यथा व्रजगोपिकानाम्।"** गोपियों की भक्ति के इसी उदात्त लक्षण को भागवत के रासपञ्चाध्यायी में चित्रित किया गया है।

भगवानपि ता रात्रीः शरद-उत्फुल्ल-मल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायाम्-उपाश्रितः।।10।29।1।

शरद की रात्रियों में चमेली के फूल की महक से भगवान्‌ने आनन्द लेते हुए अपनी योगमाया (असंभव को संभव करने वाली भगवान्‌की दिव्य शक्ति) के सहारे गोपियों के हृदय में दिव्य प्रेम जागृत करने का मन बनाया। लीलाविहारी भगवान्‌श्रीकृष्ण ने अपने आधिदैविक सम्मोहक रसपूर्ण रूप को प्रकट किया। शरद्‌ऋतु को आधिदैविक बना दिया। भगवान्‌का मन ही आधिदैविक पूर्ण चन्द्रमा हो गया।

दृष्ट्वा कुमुद-वन्तम्-अखण्ड-मण्डलं रमा-आनन-आभं नव-कुङ्कुम्-अरुणम्।

वनं च तत्-कोमल-गोभि-रञ्जितं जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्। ।10।29।3। ।

लक्ष्मी जी के मुखमण्डल के समान तेजपूर्ण केसर की लाली से युक्त पूर्ण चन्द्रमा की चन्द्रिका से खिलते हुए कुमुद के फूलों तथा वन को भगवान्‌श्रीकृष्ण ने शीतल रूप से प्रकाशित देखा। उस समय भगवान्‌ने सुन्दरियों के मन को खींचने वाला वेणुवादन प्रारम्भ किया। इस सन्दर्भ में **10।22।27। ।** द्रष्टव्य है।

यात-अबला व्रजं सिद्धा मया-इमा रंस्यथ क्षपा:।

यत्-उद्दिश्य व्रतमिदं चेरु: आर्या-अर्चनं सती:। ।10।22।27। ।

भगवान् ने कात्यायिनी व्रत करने वाली गोपियों को यह आश्वासन दिया था कि आने वाली रातें वे उनके साथ बितायेंगी। उनका व्रत सफल हुआ है। ऐसा कहकर भगवान्‌ने उनलोगों को व्रज वापस लौटा दिया था। कन्यायें भगवान् के चरणों का ध्यान करतीं व्रज वापस आई थीं। कुछ हरिकथाकारों के भाव हैं कि ये कन्यायें श्रुतियाँ थीं और रामावतार के दण्डकवन के ऋषिगण थे। भगवान् ने पूर्व के अवतारों में इन अनन्य भक्तों को रसमय बनाने का वचन दिया था। इन कन्यायों के अतिरिक्त व्रजनारियाँ भी पधारीं। इस सृष्टि के संचालन में **"मूलं त्रयाणां जगतां अनन्तम्"** सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण का मुख्य दायित्व है।विशुद्ध रूप से कोई भी एक गुण से प्रभावित नहीं रहता। सभी में तीनों गुणों का अलग-अलग सम्मिश्रण होता है।भगवान्‌का वेणुनाद सुन जो नारियाँ वहाँ आयीं वे गुण-सम्मिश्रण वाली थीं। भगवान्‌को छोड़कर केवल सतोगुणी कोई नहीं हो सकता।

निशम्य गीतं तत्-अनङ्ग-वर्धनं व्रज-स्त्रिय: कृष्ण-गृहीत-मानसा:।

आजग्मु: अन्योन्यम्-अलक्षित-उद्यमा: स यत्र कान्तो जव-लोल-कुण्डला:। ।10।29।4। ।

कामदेव को मोहित करने वाले वेणुवादन सुनकर व्रजनारियाँ भगवान्‌के वशीभूत हो गयीं।एक दूसरे की परवाह किये विना गोपियाँ वेणुवादन की दिशा में गिरते-परते व्याकुल हो आयीं।उनके कान के कुण्डल नाच रहे थे।

दुहित्यो-अभियु: कश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सका:।

पयो-अधिश्रित्य संयावम्-अनुद्वास्य-अपरा ययु:। ।10।29।5। ।

कुछ गोपियाँ दूध दुह रही थीं उसे छोड़कर, कुछ उबलते दूध को छोड़कर तथा कुछ चूल्हे पर पकते भोजन को छोड़कर भगवान्‌श्रीकृष्ण की वेणुवादन की दिशा में दौड़ीं।

परिवेषयन्त्य: तत्-हित्वा पाययन्त्य: शिशून् पय:।

शुश्रूषन्त्य: पतीन् काश्चित्-अश्नन्त्यो-अपास्य भोजनम्। ।10।29।6। ।

कुछ कपड़े बदल रही थीं, कुछ अपने बच्चे को स्तन पिला रही थीं, कुछ अपने पति की सेवा में लगी हुई थीं तथा कुछ भोजन कर रही थीं। सबों ने बीच में ही अपने काम छोड़ भगवान् के पास आयीं।

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्यो-अन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने।

व्यत्यस्त-वस्त्र-आभरणाः काश्चित्कृष्णान्तिकं ययुः।।10।29।7।।

कुछ अंगराग लगाना छोड़, कुछ अंजन लगाना छोड़ अपने अस्त-व्यस्त कपड़ों तथा गहनों में भगवान्के पास दौड़ीं। पति, पिता, भाई तथा अन्य सम्बन्धियों के मना करने पर भी नहीं रुकीं।

अन्तः गृहगताः काश्चिद्गोप्यो-अलब्ध-विनिर्गमाः।

कृष्णं तत्-भावनायुक्ता दध्युः मीलित-लोचनाः।।10।29।9।।

तमेव परमात्मानं जार-बुद्ध्यापि सङ्गताः।

जहुः गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीण-बन्धनाः।।10।29।11।।

जो घर से बाहर न निकलने दी गयीं, वे अपने नेत्रों को बन्दकर भगवान्श्रीकृष्ण में लीन हो गयीं। यद्यपि वे भौतिक कामना से जार भाव से ग्रस्त थीं परन्तु भगवान्को अपने हृदय में आलिंगन करने के कारण गुणात्मक बन्धन का नाश हो गया। परिणाम स्वरूप शरीर त्यागकर शीघ्र ही मुक्त हो गयीं।

कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने।

गुण-प्रवाह-उपरमः तासां गुणधियां कथम्।।10।29।12।।

राजा परीक्षित ने पूछा कि गोपियाँ भगवान्श्रीकृष्ण के ब्रह्मस्वरूप से अवगत नहीं थीं। उन्हें मात्र प्रियतम मानती थीं। फिर उनके कामग्रस्त तथा रजोगुणात्मक भावनाओं का अन्त कैसे हुआ ? शुकदेव जी ने चार श्लोकों से राजा परीक्षित की शंका का निवारण किया।

उक्तं पुरस्तात्-एतत्चैद्यः सिद्धिं यथा गतः।

द्विषन्-अपि हृषीकेशं किम्-उत-अधोक्षज-प्रियाः।।10।29।13।।

1) पूर्व के सातवें स्कन्ध में **7।1।15।।**

अहो अत्यद्भुतं हि-एतत्-दुर्लभ-एकान्तिनाम्-अपि।

वासुदेवे परे तत्त्वे प्राप्तिः चैद्यस्य विद्विषः।।7।1।15।।

चेदिराज का भगवान्से शत्रुता के दृष्टान्त से यह स्पष्ट है कि शत्रुता के कारण भगवान्को सदा मन में बैठाये रखने से उसको परमगति मिली। तब अधोक्षज भगवान्से प्रीति रखने वाले के बारे में क्या कहना है !

नृणां निःश्रेयस-अर्थाय व्यक्तिः भगवतो नृप।

अव्ययस्य-अप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः।।10।29।14।।

2) भगवान् प्रकृति के गुणों के स्वामी होने पर भी उससे अछूते हैं तथा शाश्वत एवं समझ से परे हैं। उनका मनुष्य के शरीर में आकर इस तरह की लीला करना जीव को परम कल्याण प्रदान करने हेतु ही है।

कामं क्रोधं भयं स्नेहम्-ऐक्यं सौहृदमेव च।

नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते।।10।29।15।।

3) भगवान्से सम्बन्ध कैसा भी हो, चाहे वह विलासिता के सुख का हो, क्रोध का हो, भय का हो, स्नेह का हो, नातेदारी या सौहार्द का हो, वे सारी वृत्तियाँ नित्य-निरन्तर होने पर भगवन्मय हो जाती हैं। अन्ततः उसी वृत्ति से भगवान्प्राप्त हो जाते हैं।

न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवति-अजे।

योगश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद् विमुच्यते।।10।29।16।।

4) भगवान्श्रीकृष्ण के बारे में ऐसा भ्रम न करना चाहिए। हे राजा परीक्षित! आप तो परमभागवत हैं। योगेश्वरों के भी ईश्वर भगवान् के संकल्प से ही समस्त जगत्का कल्याण हो सकता है।

व्रज-वनिताओं के आने पर भगवान्ने मीठे शब्दों से उनसबों का स्वागत किया। व्रज का कुशल-क्षेम पूछते हुए उनके वहाँ आने का कारण पूछा। भगवान्निम्नांकित स्थितियों के आलोक में गोपियों से बात करते हैं। 1) व्रज में सब कुशल-क्षेम तो है न ? 2) भयावनी रात में भयावने जन्तुओं का भय रहता है।आप सब व्रज वापस जायें। 3) घर में तुमलोगों को न देखकर परिवार वाले चिन्तित हो जायेंगे। 4) वृन्दावन की सुहावनी शरद-रात्रि तथा यमुना जी के परिवेश का आनन्द ले लिये। अब लौट कर पति की सेवा करें तथा रोते बच्चों को दूध पिलायें। ये सब घर में नारियों का कर्त्तव्य बनता है।

अथवा मदभिस्नेहाद्भवत्यो यन्त्रित-अशयाः।

आगता हि-उपपन्नं वः प्रीयन्ते मयि जन्तवः।।10।29।23।।

5) कदाचित्मेरे प्रति अगाध प्रेम ने आपलोगों को यहाँ खींच कर लाया है जो सराहनीय हैं परन्तु समस्त जीव सहज भाव से मुझसे प्रेम करते हैं।

भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो हि-अमायया।

तत्-बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम्।।10।29।24।।

दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोगी-अधनोऽपि वा।

पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोक-ईप्सुभिःअपातकी।।10।29।25।।

अस्वर्ग्यम्-अयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम्।

जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुल-स्त्रियाः।।10।29।26।।

6) पति की सेवा नारी का प्रथम कर्तव्य है। परिवार तथा बच्चों का ठीक से देखभाल करे। अच्छे लोक की प्राप्ति हेतु पातकी पति को चरित्रहीन,गरीब, वृद्ध, अज्ञानी या रोगी ही क्यों न हो उसका परित्याग न करे। कुलीन स्त्री के लिए जार पति की सेवा निन्दनीय है तथा अपयश देने वाला होता है। यह कुकर्म क्षणिक सुख भले ही दे परन्तु नरक देने वाला भयकारक है।

श्रवणाद् दर्शनाद् ध्यानात्-मयि भावो-अनुकीर्तनात्।

न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान्।।10।29।27।।जो मेरी लीला के सुनने, रूप दर्शन और उसका ध्यान तथा कीर्तन करने से आनन्द मिलता है वे मेरे पास रहने से नहीं मिलता। अतः आप लोग अपने-अपने

घर लौट जायें। भगवान्भी उनके मन की बात जानना चाहते थे।ऐसा सुनकर गोपियाँ उदास गयीं। रो-रो कर अपने काजल बहा डालीं। फिर धैर्य से बोलीं।

मा-एवं विभो-अर्हति भवान् गदितुं नृशंसं सन्त्यज्य सर्व-विषयान्-तव पादमूलम्।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यज-अस्मान्देवो यथा-आदिपुरुषो भजते मुमुक्षून्।।10।29।31।।
प्रेष्ठो भवान्-तनु-भृतां किल बन्धुरात्मा।।10।29।32।।

आप स्वतंत्र हैं।हमारे प्रति ऐसा निष्ठुर वाणी न बोलें। सब कुछ छोड़कर हमलोगों को आपके श्रीचरणों से प्रेम है। जैसे नारायण अपने भक्तों को नहीं छोड़ते हैं वैसे ही आप हमें अपनायें।हमारा परित्याग न करें।आप देहधारियों के परमप्रिय घनिष्ठतम सुहृद तथा आत्मा हैं।पति तथा परिवारवालों से अधिक प्रिय हैं।

चित्तं सुखेन भवता-अपहृतं गृहेषु यत्-निर्विशति-उत करौ-अपि गृह्यकृत्ये।
पादौ पदं न चलत: तव पादमूलाद् याम: कथं व्रजमथो करवाम किं वा।।10।29।34।।

हम अपने घरेलू कार्यो में लगे रहते हैं परन्तु आपने हमारा चित्त चुरा लिया है। हमारे पैर आपके श्रीचरणों के पास से एक पग भी चलने को तैयार नहीं। हम कैसे व्रज जायें और वहाँ जायें तो क्या करें ? आपके इन चरणारविन्द को कभी नहीं छोड़ सकतीं जिन्हें लक्ष्मी जी भी कभी-कभी ही प्राप्त कर पाती हैं।

श्री: यत्-पदाम्बुज-रज: चकमे तुलस्या लब्ध्वापि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम्।
यस्या: स्ववीक्षणकृते-अन्य-सुर-प्रयास: तद्वत्वयं च तव पादरज: प्रपन्ना:।।10।29।37।।

लक्ष्मी जी को प्राप्त करने के लिए देवगण तरसते हैं। वही लक्ष्मी जी आपके वक्षस्थल पर विराजने के बाद भी तुलसी की तरह आपके चरणरज के लिए लालायित रहती हैं। हम भी आपके चरणरज के अभिलाषी हैं। घर में सेवा-भक्ति का समय कहाँ मिलता है। आप अपनी चरण-सेविका बना लें।

वीक्ष्य-अलकावृत-मुखं तव कुण्डल-श्री-गण्डस्थल-अधरसुधं हसितावलोकम्।
दत्त-अभयं च भुज-दण्ड-युगं विलोक्य वक्ष: श्रियैक-रमणं च भवाम दास्य:।।10।29।39।।

आपके मुखारविन्द पर लहराते बाल की शोभा, कमनीय कपोल पर लटकते कुण्डल, होठों का सुधामृत तथा मुस्कराते चितवन से हम मुग्ध हैं। आपकी भुजायें सब शरणागतों के रक्षक हैं। आपका वक्षस्थल, सौंदर्य की देवी लक्ष्मी जी का शाश्वत क्रीडास्थल है। इस मनोरम स्वरूप से मोहित हो हम आपकी दासी बन गयी हैं।

का स्त्री-अङ्ग ते कल-पद-आयत-मूर्च्छितेन सम्मोहिता-आर्य-चरितात्-न चलेत्-त्रिलोक्याम्।
त्रैलोक्य-सौभगम्-इदं च निरीक्ष्य रूपं यद्गो-द्विज-द्रुम-मृगा: पुलकानि-अबिभ्रमन्।।**10।29।40।।**

हे प्यारे श्रीकृष्ण! आपके वेणुगीत तथा आपके सौंदर्य से गौ, पक्षी,वृक्ष तथा मृग आदि भी मुग्ध हो उठते हैं। तीनों लोक में कौन सी ऐसी स्त्री होगी जो आपके वेणुवादन तथा रूप से सम्मोहित होकर अपने आचरण एवं कुल-मर्या दा से विचलित न हो जाये।

व्यक्तं भवान्व्रज-भयार्तिहरो-अभिजातो देवो यथा-आदिपुरुष: सुरलोकगोप्ता।
तत्-न: निधेहि करपङ्कजम्-आर्तबन्धो तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किङ्करीणाम्।।**10।29।41।।**
इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वर:।

प्रहस्य सदयं गोपी: आत्मारामो-अपि-अरीरमत्। ।10।29।42। ।

जैसे नारायण देवलोक की रक्षा करते हैं वैसे ही आप व्रज की आपदओं को मिटाते हैं। हम आपकी दासी हैं। आपके मिलन की चाह में हमारी छाती जल रही है। कृपा करके अपने करकमल हमारी छाती तथा शिर पर रखकर हमें अपना लें। गोपियों की आर्तवाणी सुनकर अपने आप में रमण करने वाले भगवान्दया से द्रवित होकर हँसे तथा रासक्रीड़ा से गोपियों को सन्तुष्ट कर दिया।

ताभि: समेताभि: उदार-चेष्टित: प्रिय-ईक्षण-उत्फुल्ल-मुखीभि: अच्युत:।

उदार-हास-द्विज-कुन्द-दीधति: व्यरोचत-एण-अङ्क इवोडुभि: वृत:। ।10।29।43। ।

गोपियों के बीच तारों से घिरे काले हिरण के धब्बेवाला चन्द्रमा की तरह भगवान्श्रीकृष्ण जब हँसते थे तब उनके दाँत चमेली की कलि की तरह चमक उठते। उनकी चितवन से सभी गोपियों के मुख आनन्दित हो उठे।

उपगीयमान उद्गायन् वनिता-शत-यूथप:।

मालां बिभ्रद् वैजयन्तीं व्यचरन्मण्डयन् वनम्। ।10।29।44। ।

गोपियों के सैकड़ों झुण्ड के साथ भगवान्वैजयन्ती माला पहले वृन्दावन के वन को शोभायमान करने लगे। कभी गोपियाँ उनके लीलाचरित का गान करतीं तो कभी भगवान्श्रीकृष्ण जोर-जोर से गोपियों के सौंदर्य के गीत गाते। भगवान् उनके साथ यमुना के बालू पर जल तरंग के साथ आये कमल की मीठी महक में विनादपूर्ण खेल करने लगे। किसी की चोटी खींचते, किसी को चुट्टी काटते तथा उनकी नाभि, जंघा आदि का स्पर्श करते हुए उनलोगों को अपनी बाहों में भरकर आलिंगन करने लगे।

एवं भगवत: कृष्णात्-लब्धमाना महात्मन:।

आत्मानं मेनिरे स्त्रीनां मानिन्यो-अभ्यधिकं भुवि। ।10।29।47। ।

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशव:।

प्रशमाय प्रसादाय तत्र-एव-अन्तरधीयत। ।10।29।48। ।

भगवान्से इस तरह सम्मानित होने पर प्रत्येक गोपी को अपने भुवन मात्र के सबसे सुन्दर होने का गर्व हो उठा। गोपियों को अपने सौभाग्य पर गर्व करते देख उनपर अनुग्रह हेतु भगवान्वहाँ से अन्तर्धान हो गये।

गोपियों द्वारा भगवान्श्रीकृष्ण का अभिनय-अनुकरण तथा उनकी खोज में राधा जी से भेंट

पूर्व के अध्याय 29 में भगवान्ने गोपियों के साथ रासलीला कर उनके हृदय में आनन्द का संचार किया। उसी आनन्द को पुष्ट करने हेतु भगवान्अन्तर्धान हो गये। भगवान्ने उनलोगों पर अनुग्रह किया और उनके हृदय में प्रवेश कर छिप गये। हृदयस्थ भगवान्को खोजते गोपियाँ एक वन से दूसरे वन में घूमने लगीं।

अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गना:।

अतप्यन्-तम्-अचक्षाणा: करिण्य इव यूथपम्। ।10।30।1। ।

भगवान्को न देखकर गजराज को अनुपस्थित देख हथनियों की तरह गोपियाँ विकल हो गयीं।

गत्या-अनुराग-स्मित-विभ्रम-ईक्षितै: मनोरम-आलाप-विहार-विभ्रमै:।

आक्षिप्त-चित्ता: प्रमदा रमापते: ता: ता: विचेष्टा जगृहु: तत्-आत्मिका:। ।**10**।**30**।**2**। ।

भगवन्मय दशा में गोपियाँ रमापति भगवान्के साथ की गयी दिव्य रासक्रीड़ा का अनुकरण करने लगीं। भगवान्की चाल, हँसी, चितवन, दौड़ना तथा गलवाहीं का अभिनय करने लगीं। ऊँची आवाज में रासगान को गाती हुई वनों में भगवान्को खोजने लगीं। सर्वव्याप्त प्रभु के बारे में वृक्षों, लताओं तथा पुष्प-लतिकाओं से पूछने लगीं कि इस रास्ते से बलराम जी के छोटे भाई श्रीकृष्ण पधारे हैं क्या ?

कच्चित्-तुलसी कल्याणि गोविन्द-चरणप्रिये।

सह त्वा-अलि-कुलैः बिभ्रद्दृष्टः ते-अतिप्रियो-अच्युतः।।10।30।7।।

गोपियाँ भगवान्के अत्यंत प्रिय तुलसी जी से पूछती हैं कि क्या आपकी माला पहने गोविन्द इस रास्ते गये हैं?

किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशव-अङ्घ्रि-स्पर्श-उत्सव-उत्पुलकित-अङ्ग-रुहैः विभासि।

अपि-अङ्घ्रि-सम्भव उरुक्रम-विक्रमाद् वा आहो वराह-वपुषः परिरम्भणेन।।10।30।10।।

गोपियाँ धरती माता से पूछती हैं कि आपके किस पुण्य का प्रभाव है कि आपको भगवान् के चरणकमल का स्पर्श प्राप्त हो रहा है। चरणस्पर्श के आनन्द से ही घास तथा लतादिक से आप शोभायमान हैं। लगता है आप पर त्रिविक्रम भगवान्के चरण-मंडित होने तथा वराह भगवान्के शरीर-स्पर्श के पुण्य फलीभूत हो रहे हैं।

बाहुं प्रिया-अंस उपधाय गृहीत-पद्मो राम-अनुजः तुलसिका-अलि-कुलैः मदान्धैः।

अन्वीयमान इह वः तरवः प्रणामं किं वाभिनन्दति चरन् प्रणय-अवलोकैः।।10।30।12।।

एक झुके हुए वृक्ष को देखकर गोपियाँ पूछती हैं कि जब बलदाऊ के छोटे भाई के गले की तुलसी माला के सुगन्ध से मोहित भौंरे उनका पीछे करते हुए जा रहे थे और वे अपनी एक प्रेयसी के एक कन्धे पर हाथ रखे तथा दूसरे हाथ में कमल फूल लिये जा रहे थे तब आपके प्रेमपूर्ण अभिवादन को क्या उन्होंने स्वीकर किया!

इति-उन्मत्त-वचो गोप्यः कृष्णान्वेषण-कातराः।

लीला भगवतः ताः ताः हि-अनुचक्रुः तदात्मिकाः।।10।30।14।।

उन्मत्त गोपियाँ भगवान्श्रीकृष्ण की खोज में ऐसी श्रीकृष्णमयी हो गयी कि उनकी लीलाओं का अभिनय करने लगी। जैसे - पूतना के दूध पीने के अभिनय में एक गोपी श्रीकृष्ण बनकर दूसरी गोपी का स्तनपान करने लगी। शकट-भञ्जन, तृणावर्त वध, गोवर्धन धारण, वेणुवादन, कालिय-दमन, ऊखल-बन्ध दामोदर आदि।

एवं कृष्ण पृच्छमाना वृन्दावन-लताः तरून्।

व्यचक्षत वन-उद्देशे पदानि परमात्मनः।।10।30।24।।

पदानि व्यक्तम्-एतानि नन्द-सूनोः महात्मनः।

लक्ष्यन्ते हि ध्वज-अम्भोज-वज्र-अङ्कुश-यव-आदिभिः।।10।30।25।।

लता-वृक्षादि से पूछते-पूछते गोपियों ने एक स्थान पर भगवान्के चरण-चिह्न् देखा। नन्द जी के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण के पद चिह्नों में ध्वज, कमल, वज्र, अंकुश, जौ की बाली आदि दिख रहे थे।

तैस्तैः पदैः तत्-पदवीम्-अन्विच्छन्त्यो-अग्रतो-अबलाः।

वध्वा पदैः सुपृक्तानि विलोक्य-आर्ताः समब्रुवन्।।10।30।26।।

सहसा भगवान्के चरण-चिह्न के साथ एक गोपी के चरण-चिह्न को देखकर गोपियाँ उद्विग्न होकर बोलने लगीं।

अनया-आराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।

यन्नो विहाय गोविन्द: प्रीतो याम्-अनयत्-रह:। ।10।30।28। ।

धन्यो अहो अमी आल्यो गोविन्द-अङ्घ्रि-अब्ज-रेणव:।

यान्ब्रह्मेशो रमा देवी दधु: मूर्ध्नि-अघ-नुत्तये। ।10।30।29। ।

गोपियाँ कहती हैं कि इस व्रजसुन्दरी की विशेष आराधना-पूजा से गोविन्द-श्रीहरि प्रसन्न होकर इसको एकान्त में ले आये हैं। गोपियाँ सौभाग्य मानती हैं। अहो! भगवान्‌के चरणारविन्द की धूल ब्रह्मा, शंकर तथा लक्ष्मी जी अपने सिर पर धारण कर अपने पाप से निवृत्त होते हैं। कुछ हरिकथाकार कहते हैं कि श्लोक **28** का **"आराधित:"** शब्द राधा जी के लिए प्रयुक्त हुआ है। **"राधया आराधित: कृष्ण: " "अनया अनयेन कृष्णेन आराधिता असौ राधा।"**

इसी तरह से **2।4।14** का भी भाव है। शुकदेव जी ने स्कन्ध **2** के अध्याय **4** में मंगलाचरण करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण तथा वृन्दावन की महिमा बताते हुए कहा है कि जहाँ साक्षात्परब्रह्म ने स्वयं राधा जी के साथ रमण किया। वे भक्तवत्सल भगवान् भक्तिहीनों से बहुत दूर रहते हैं।

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां विदूरकाष्ठाय मुहु: कुयोगिनाम्।

निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नम:। ।2।4।14। ।

इसके अतिरिक्त **10।21।7। ।** में कुछ हरिकथाकार **"व्रजेशसुतयो"** के अर्थ व्रजेश-वृषभानु-सुता राधा जी तथा व्रजेश -नन्द-सुत श्रीकृष्ण करते हैं। राधा-कृष्ण के वेणुयुक्त मुखारविन्द के मुस्कान तथा तिरछी चितवन को निहारना ही आँखों के एकमात्र फल है। हमारी आँखें धन्य-धन्य हो जाती हैं।

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदाम: सख्य: पशुन्-अनुविवेशयतो-वयस्यै:।

वक्त्रं व्रजेशसुतयो:-अनु-वेणु-जुष्टं यै:-वा निपीतम्-अनुरक्त-कटाक्ष-मोक्षम्। ।10।21।7। ।

कुछ दूर जाने पर ब्रजसुन्दरी के पग के निशान नहीं दिखने लगे। गोपियों ने सोचा कि शायद वह सुन्दरी थक गयी होगी या तृणों की नोक से उसके कोमल पद दु:ख रहे होगें तब श्रीकृष्ण-कन्हैया ने उसे अपने कन्धे पर उठा लिया होगा। कुछ हरिकथाकार ने इस गोपी को राधा मानते हुए उनके पद-चिह्नों का भी वर्णन किया है।

इमानि-अधिक-मग्नानि पदानि वहतो वधूम्।

गोप्य: पश्यत कृष्णस्य भार-आक्रान्तस्य कामिन:। ।10।30।32। ।

अत्र प्रसून-अवचय: प्रियार्थे प्रेयसा कृत:।

प्रपदा-आक्रमणे एते पश्यत-असकले पदे। ।10।30।33। ।

आगे मात्र भगवान्‌के चरण-चिह्न् जमीन में धँसे हुए दिख रहे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि सुन्दरी के बोझ से उनके चरण जमीन में धँसने लगे हों। थोड़ा आगे भगवान्‌ने प्रेयसी को जमीन पर रख उसकी वेणी गूँथने हेतु फूल तोड़े होगें क्योंकि उनके चरण का अगला हिस्सा ही जमीन पर अँकित है क्योंकि वे एड़ी उठाकर पेड़ से फूल तोड़े रहे होगें। भगवान्‌तो आत्माराम हैं परन्तु व्रजसुन्दरी के साथ उन्होंने रमण किया होगा क्योंकि यहाँ उनकी लीला के विविध प्रकार के चरण-चिह्नों का संकेत मिलता है। उस गोपी के मन में भगवान्‌को अपने वश में करने का गर्व हुआ होगा। उसने भगवान्‌को कन्धे पर उठाकर ले चलने को कहा होगा।

एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्धे आरुह्यताम्-इति।

ततः च-अन्तर्दधे कृष्णः सा वधूः अन्वतप्यत। ।10।30।39। ।

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज।

दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधम्। ।10।30।40। ।

भगवान्ने बैठकर उसे कन्धे पर चढ़ाने का अभिनय किया और जब वह कन्धे पर चढ़ने के लिए पैर बढ़ायी तब लीलाविहारी सहसा लुप्त हो गये। सुन्दरी बहुत विकल हो उठी। चिल्लाते हुए प्रियतम नाथ को दर्शन तथा सन्निधि प्रदान करने के लिए बुलाने लगी।

अन्विच्छन्त्यो भगवतो मार्गं गोप्योऽविदूरतः।

ददृशुः प्रिय-विश्लेष-मोहितां दुःखितां सखीम्। ।10।30।41। ।

व्रजसुन्दरी भगवान्को अचेत होकर पुकार ही रही थी कि पास ही में गोपियों का वृन्द भगवान्को खोजती वहाँ आ गयी और उस सुन्दर सखी के वियोग की कहानी से अवगत होकर बहुत विस्मित हुई। विस्मय का कारण था कि इस सुन्दर सखी को भगवान् ने अकेले में उसके साथ रमण कर सम्मानित किया परन्तु फिर लुप्त होकर अवमानित किया।

ततोऽविशन् वनं चन्द्रज्योत्सना यावद् विभाव्यते।

तमः प्रविष्टम्-आलक्ष्य ततो निववृतुः स्त्रियः। ।10।30।43। ।

तत्-मनस्काः तत्-आलापाः तत्-विचेष्टाः तत्-आत्मिकाः।

तद् गुणानेव गायन्त्यो न-आत्म-आगराणि सस्मरुः। ।10।30।44। ।

सब मिलकर भगवान्को खोजते आगे गयी परन्तु घनघोर जंगल में चन्द्रमा का प्रकाश न मिलने के कारण सबों ने लौट आने का निश्चय किया। भगवान्श्रीकृष्ण के विचारों में लीन होकर, उन्हीं के विषय में बातें करती हुई उनकी लीला का अनुकरण कर अपने घरों को भूल गयी और जोर-जोर से उनके दिव्य गुणों को गाने लगी।

पुनः पुलिनम्-आगत्य कालिन्द्याः कृष्णभावनाः।

समवेता जगुः कृष्णं तत्-आगमन-काङ्क्षिताः। ।10।30।45। ।

जहाँ यमुना के बालू पर भगवान्ने उनके साथ रास किया था वहीं सब-के-सब आकर उनके लौट आने की अभिलाषा में जोर-जोर से भगवान् के गुणों को गाने लगी।

<u>गोपी - गीत</u>

रासपञ्चाध्यायी का अध्याय 31 भगवान्के प्रति गोपियों के अनुराग की अभिव्यक्ति है जिसे गोपी-गीत कहते हैं। श्लोक 5 से आगे के श्लोकों में गोपियों ने अपने आप को भौतिक कामना से मुक्त करने की प्रार्थना की है।

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वत्-अत्र हि ।

दयित दृश्यतां दिक्षु तावकाः त्वयि धृत-असवः त्वां विचिन्वते। ।10।31।1। ।

गोपियाँ कहती हैं कि आपके जन्म से ही इस व्रजभूमि की महिमा बढ़ी है। यहाँ सदा लक्ष्मी विराजती हैं जिससे राधा जी संकेत मिलता है।हमलोगों ने आपकी सर्वत्र खोज की। हमलोग आपके दर्शन के लिए ही जीवित हैं।

शरत्-उद-आशये साधु-जात-सत्-सरसिज-उदर-श्रीमुषा दृशा।

शुरतनाथ ते-अशुल्क-दासिका वरद निघ्नतो न-इह किं वधः। ।10।31।2। ।

जलाशय के शरत्कालीन पूर्ण रूप से खिले कमल-कोश से भी अधिक मनोहर एवं अद्वितीय आकर्षक आपकी चितवन से हम घायल हुई हैं। यह हमलोगों का वध नहीं है क्या ? हम आपकी नि:शुल्क दासियाँ हैं। हे वरदाता और प्रेम के स्वामी ! दर्शन देकर हमारी रक्षा करें।

विष-जल-अप्ययाद् व्याल-राक्षसाद् वर्ष-मारुताद्वैद्युत-अनलात्।

वृष-मय-आत्मजाद्विश्वतो-भयात्-ऋषभ ते वयं रक्षिता मुहुः। ।10।31।3। ।

आपने बार-बार अनेकों संकट से हमलोगों की रक्षा की है। कालीय के विष से दूषित जल, अघासुर अजगर, गोवर्ध न धारण कर इन्द्र की वर्षा-तूफान-ठनका, तृणावर्त की आँधी, वृषभासुर तथा मयासुर के पुत्र व्योमासुर एवं केशि आदि से हमलोग आपके ही कारण जीवित रह सके हैं। ऐसी ही गर्ग मुनि की भविष्य वाणी भी है।

न खलु गोपिकानन्दनो भवान् अखिल-देहिनाम्-अन्तरात्म-दृक्।

विखानस-अर्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले। ।10।31।4। ।

आप मात्र यशोदानन्दन ही नहीं है अपितु सबके हृदयस्थ अन्तर्यामी हैं। हे प्रिय सखा ! जिनकी नाक से वराह भगवान् प्रकट हुए उसी व्रह्मा की प्रार्थना पर आप जगत्के रक्षार्थ यदुकुल में अवतरित हुए हैं।

विरचित-अभयं वृष्णि-धुर्य ते चरणम्-ईयुषां संसृतेः भयात्।

कर-सरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्। ।10।31।5। ।

हम जन्म-मृत्यु के चक्रवाले संसार से भयातुर आपके चरणागत शरणार्थी हैं। हे वृष्णिकुल नायक! जिस कर-सरोज से आपने लक्ष्मी जी का पाणि-ग्रहण किया है वही अभय-दाता हाथ हमारे माथे पर रख दें जो विषय-कामनाओं का विनाशक एवं शुभ-कामनाओं का दायक है।

व्रजजन-आर्तिहन् वीर योषितां निज-जन-स्मय-ध्वंसन-स्मित।

भज सखे भवत्-किङ्करीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय। ।10।31।6। ।

व्रजवासियों के कष्ट निवारक वीर ! नारियों के हृदय से विषय कामना को उखाड़ने वाले प्यारे सखा ! आपका मुस्कान भक्तों के गर्व का विनाशक है। कृपया अपने मुखारविन्द के दर्शन से हमें शान्ति प्रदान करें।

प्रणत-देहिनां पाप-कर्शनं तृण-चर-अनुगं श्रीनिकेतनम्।

फणि-फणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृत्-शयम्। ।10।31।7। ।

अपने चरणारविन्द पर प्रणिपात करने वाले प्राणी के पाप का आप नाश करते हैं। घास चरती गायों के पीछे -पीछे चलने वाले आपके चरणकमल लक्ष्मी जी के निवास स्थान हैं। कालिय के फणों पर नृत्य करने वाले चरणारविन्द को हमारी छाती पर रखकर हमारे हृदयस्थ विषय-कामनाओं का आप नाश करें।

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण।

विधि-करीः इमा वीर मुह्यतीः अधर-सीधुना-अप्याययस्व नः। ।10।31।8। ।

हे कमलनयन ! आपकी मीठी वाणी एवं मनमोहक शब्द बुद्धिमानों के चित्त को आह्लादित करते हैं। इससे हम दासियाँ भी मोहग्रस्त हैं। अपने होठों से हमें अमृत-पान कराके हम दासियों को जीवन-दान करें।

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभि: ईडितं कल्मष-अपहम्।

श्रवणमङ्गलं श्रीमत्-आततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जना:। ।10।31।9। ।

संसार के त्रिविध ताप से संतप्त व्यक्तियों के लिए आपकी कथा संजीवनी है। व्यास जी तथा शुकदेव जी आदि विद्वान मुनियों द्वारा प्रसारित आपकी कथा समस्त पाप को मिटाने वाली है। श्रवण करने वालों के लिए यह मंगल कारक है। श्रोता एवं वक्ता को श्रीसम्पन्न पराभक्ति प्रदान करती है। इस धरती पर आपकी कथा का प्रसार करने वाले व्यास जी, शुकदेव जी तथा नारद जी आदि परम उदार तथा महान व्यक्ति हैं।

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम्।

रहसि संविदो या हृदिस्पृश: कुहक नो मन: क्षोभयन्ति हि। ।10।31।10। ।

आपकी मोदकरी हँसी, प्रेमभरी चितवन तथा आपके साथ विहरने के संस्मरण मंगलकारक हैं। हे छलिया ! आपका वेणुवादन तथा एकान्त का संवाद हृदयस्पर्शी है।आपकी अनुपस्थिति में मन को क्षुब्ध हो रहा है।

चलसि यद् व्रजात्-चारयन् पशून् नलिन-सुन्दरं नाथ ते पदम्।

शिल-तृण-अङ्कुरै: सीदति-इति न: कलिलतां मन: कान्त गच्छति। ।10।31।11। ।

व्रज से वन में आप गौवें चराने जाते हैं। आपके कोमल चरण कंकड़, नुकीली घासों आदि से छिदते होंगे। हे नाथ ! यह सोचकर हमारा मन विकल हो उठता है।

दिन-परिक्षये नील-कुन्तलै: वनरुह-आननं बिभ्रदावृतम्।

घन-रज: वलं दर्शयन् मुहु: मनसि न: स्मरं वीर यच्छसि। ।10।31।12। ।

दिन बीतने पर वन से लौटने पर आपके लहराते नीले-चिकने बाल, धूल-धूसरित मुखारविन्द को बादल की तरह घेरे रहते हैं। तब हे वीर ! आप हमारे हृदय को अनुराग से भर देते हैं।

प्रणतकामदं पद्मज-अर्चितं धरणिमण्डनं ध्येयम्-आपदि ।

चरणपङ्कजं शन्तमं च ते रमण न: स्तनेषु-अर्पय-अधिहन्। ।10।31।13। ।

शरण में आये हुए के विषय-कामना को नष्टकर उसको वरदेने वाले चिन्तानिवारक चिन्तामणि ! आप कमलयोनि ब्रह्मा जी तथा कमल-निवासिनी लक्ष्मी जी के आराध्य हैं। अपने चरणरज से धरती-माता को गौरवान्वित करने वाले हैं। आपत्काल में स्मरणीय, सर्वदा मंगलकारक ! आपके पदसरोरुह हमारे हृदय-प्रदेश में विराज जायें।

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।

इतर-राग-विस्मारणं नृणां वितर वीर न: ते-अधरामृतम्। ।10।31।14। ।

आपके होठ के अमृत से वेणुनाद मनोहर बन जाता है। यह शोक विनाशक है तथा माधुर्य को बढ़ाने वाला है। होठों के अमृत को हमलोगों को भी बाँटकर पिलाइये जिससे संसार की अन्य आसक्ति का नाश हो जाय।

अटति यद् भवान्-अह्नि काननं त्रुटि: युगायते त्वाम्-अपश्यताम्।

कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्म-कृद्दृशाम्। ।10।31।15। ।

आपके दिन भर जंगल में रहने का एक-एक क्षण हमारे लिए युगों के बराबर बीतता है। सन्ध्या में आने पर आपके सलोने मुखारविन्द पर लहराते घुँघराले केश की छटा से जब आँखें आनन्दित होती हैं तब पलकों की झपकन से व्यवधान होता है। लगता है कि सचमुच ब्रह्मा जड़वत-स्थावर हैं जिन्होंने पलको का निर्माण किया।

पति-सुत-अन्वय-भ्रातृ-बान्धवान्-अतिविलङ्घ्य ते-अन्ति-अच्युत-आगताः।

गति-विदः तव-उद्गीत-मोहिताः कितव योषितः कः त्यजेत्-निशि।।10।31।16।।

हे अच्युत ! आपके बंशीधुन से सम्मोहित होकर अपने पति, पुत्र, वयो-वृद्ध, भाई आदि की आज्ञा की अवहेलना करके यहाँ पहुँचीं। हे छलिया ! रात्रि में नारियों को जंगल में अकेले असहाय छोड़ना उचित है क्या ?

रहसि संविदं हृत्-शयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम्।

बृहत्-उरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुः अति-स्पृहा मुह्यते मनः।।10।31।17।।

रहस्यपूर्ण रूप से हमारे हृदयस्थ आपके हँसते मुखारविन्द तथा प्रेमभरी चितवन तथा लक्ष्मी जी के निवास-स्थान आपके विशाल वक्षस्थल का स्मरण हमसब को आपके प्रति अधिक सम्मोहित करने लगा है।

व्रजवन-ओकसाम्व्यक्तिः अङ्ग ते वृजिन-हन्त्री-अलं विश्वमङ्गलम्।

त्यज मनाक्च नः त्वत्-स्पृहा-आत्मनां स्वजन-हृदरुजाम् यन्निषूदनम्।।10।31।18।।

हे प्रियतम ! आपका लावण्यपूर्ण स्वरूप विश्व का मंगलकारक है जो व्रजवासियों के तथा अन्य वनवासियों के सभी कष्ट को नष्ट करते रहता है। आपका स्वरूप हृदय की कामभावनाओं के शमन के लिए एक औषधि है।

यत्ते सुजात-चरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।

तेन-अटवीम्-अटसि तद् व्यथते न किंस्वित् कूर्पादिभिः भ्रमति धीः भवत्-आयुषां नः।।**10।31।19**।।

आपका चरणकमल इतना कोमल है कि हमसब अपने कठोर वक्षस्थल पर इसे धीरे से रखना चाहती हूँ जिससे कि उसे कोई पीड़ा न हो। हमलोगों को इस बात की चिन्ता है कि हमलोग से छिपकर जंगली रास्ते में घूमते हुए नुकीला कंकड़ एवं काँटे आदि आपके चरणकमल को घायल न कर दे।

<u>गोपियों के बीच भगवान्का प्रकट होना</u>

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा।

रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शन-लालसाः।।10।32।1।।

गोपियाँ भगवान्श्रीकृष्ण के मनमोहक स्वरूप को हृदय में धारण करते हुए उनके गुण एवं लीला का गान करती रहीं। परन्तु उनको प्रत्यक्ष न देखकर अनेक प्रकार की बातें कहती हुई जोर-जोर से रोने लगीं।

तासाम्-आविरभूत्-शौरिः स्मयमान-मुखाम्बुजः।

पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षात्-मन्-मथ-मन्मथः।।10।32।2।।

कृष्णस्य मुखलावण्यसुधां नयनभाजनैः।

अपीयाऽऽपीय नाऽतृप्यन्सन्तस्तच्चरणं यथा।।10।32।4।क।

शूरसेन के पौत्र भगवान् श्रीकृष्ण कामदेव के मन को भी विचलित करनेवाले, माला तथा पीताम्बर धारण किये स्वरूप से हँसते हुए गोपियों के बीच दृश्यमान हुए। **10।32।4।क**। श्लोक टीटीडी क्रिटीकल संस्करण में है

जिसपर मात्र **श्रीवीराघवाचार्य की व्याख्या** उपलब्ध है। मुखारविन्द के सौंदर्य-अमृत का पान करने से गोपियाँ वैसे ही तृप्त नहीं हो रहीं थी जैसे सन्त-भक्त भगवान्‌के चरणारविन्द से तृप्त नहीं होते।

उद्दाम-भाव-पिशुन-अमल-वल्गुहास-व्रीडावलोक-निहतो मदनोऽपि यासाम्।

सम्मुह्य चापम्-अजहात्-प्रमदोत्तम्-ता यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैः न शेकुः। ।1।11।36। ।

भागवत **1।11।36**। । से स्पष्ट है कि जब हस्तिनापुर से लौटकर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका आये तब रानियों के विभिन्न भाव-भंगिमाओं का सहारा लेकर कामदेव उनको मोहग्रस्त करने के बाण चलाते रहे परन्तु वे तनिक भी विचलित न हुए। तब कामदेव अपना काम-धनुष फेंक भाग खड़े हुए। भगवान् मदनमोहन को प्रत्यक्ष देखकर गोपियों में प्राण-संचार हो गया। प्रसन्न होकर उठ खड़ी हुई एवं भाव-विह्वल होकर भगवान्‌का स्वागत करने लगीं। हरिकथाकार कहते हैं कि हजारों गोपियों में चन्द्रावली, श्यामला, शैव्या, पद्मा, श्रीराधा, ललिता, विशाखा एवं भद्रा आठ मुख्य गोपियाँ थीं। **पद्म पुराण** के पाताल खंड-**अध्याय 69 तथा 70** में उल्लेख है कि राधा सब गोपियों में प्रधान थीं। राधा के समान ही चन्द्रावली भी थीं। ये दो प्रधान गोपियाँ थीं। हरिकथाकार ने गोपियों के भगवान्‌के प्रति पेम को दो श्रेणी में रखा है - "तदीयता-मय" एवं "मदीयता-मय।" मैं भगवान्‌का हूँ और उनके अधीन हूँ, यह तदीयता-मय है।भगवान् मेरे हैं और मेरे अधीन हैं, यह मदीयता-मय है।

काचित् कराम्बुजं शौरेः जगृहे-अञ्जलिना मुदा।

काचिद् दधार तत्-बाहुम्-अंसे चन्दनरूषितम्। ।10।32।4। ।

एक गोपी - चन्द्रावली ने तदीय ममता भाव से - विनम्रतापूर्वक भगवान्‌का हाथ पकड़ा। दूसरी गोपी -श्यामला ने - तदीय तथा मदीय दोनों का परिचय देते हुए भगवान्‌के चन्दन लिपटे बाँह को अपने कन्धे पर धारण किया।

काचित्-अञ्जलिना-अगृह्णात्-तन्वी ताम्बूल-चर्वितम्।

एका तदङ्घ्रि-कमलं सन्तप्ता स्तनयोः अधात्। ।10।32।5। ।

एक लम्बी गोपी - शैव्या ने मदीय भाव से - उनके चवाते पान को अपने अंजलियों में लिया। दूसरी गोपी - पद्मा जमीन पर कामज्वर सन्तप्त पड़ी थी, मदीय भाव से - उनके चरणसरोज को अपने वक्षस्थल पर रख ली।

एका भ्रुकुटिम्-आबध्य प्रेम-संरम्भ-विह्वला।

घ्नती- वैक्षत् कटाक्षेपैः संदष्ट-दशनच्छदा। ।10।32।6। ।

एक गोपी - मदीयभाव से श्रीराधा - भौंहों को चढ़ाती हुई क्रोध से अपने होंठ काटती तिरछी नजर से भगवान्‌को देख रही थीं। मानों कह रही हैं कि चन्द्रावली इनका हाथ पकड़ने वाली कौन होती है ?

अपरा-अनिमिषत्-दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखाम्बुजम्।

आपीतमपि नातृप्यत्सन्तः तत्-चरणं यथा। ।10।32।7। ।

एक अन्य गोपी - तदीयभाव से ललिता - भगवान्‌के सौंदर्य को अपलक नेत्रों से निहारती ही रहीं। वैसे ही तृप्त नहीं हो रही थीं जैसे सन्तगण भगवान्‌के चरणसरोज से तृप्त नहीं होते।

तं काचित्-नेत्र-रन्ध्रेण हृदिकृत्य निमील्य च।

पुलकाङ्गी-उपगुह्य-आस्ते योगी-इव-आनन्द-सम्पलुता। ।10।32।8। ।

एक गोपी - तदीयभाव से विशाखा - ध्यानस्थ योगी की तरह अपनी आँखों के सहारे भगवान्को अपने हृदय में धारण कर उनका बार-बार आलिंगन करती पुलकित हो रही थी।

सर्वा: ता: केशव-आलोक-परमोत्सव-निर्वृता:।

जहु: विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जना:। ।10।32।9। ।

भगवान् केशव को देखकर भक्तों एवं मुमुक्षुओं की भाँति गोपियों हर्षित हो उठीं। विरह-दु:ख मिट गये।

शरत्-चन्द्र-अंशु-सन्दोह-ध्वस्त-दोषा-तम: शिवम्।

कृष्णाया हस्त-तरल-आचित-कोमल-वालुकम्। ।10।32।12। ।

शरद चन्द्रमा की शीतल किरणों से रात्रि का अन्धकार दूर हो गया था। कष्णा नदी अपनी तरंग रूपी हाथों से कोमल बालू भगवान्को आनन्द देने के लिए विखेर रही थी। भगवान्सबके साथ यमुना किनारे बालू पर आये।

तत्-दर्शन-आह्लाद-विधूत-हृत्-रुजो मनोरथ-अन्तं श्रुतयो यथा ययु:।

स्वै: उत्तरीयै: कुच-कुङ्कुम-अङ्कितै: अचीक्लृपन्-आसनम्-आत्मबन्धवे। ।10।32।13। ।

भगवान्को देखकर गोपियाँ अपनी इच्छा-आकांक्षा भूल गयीं। उनके मनोरथ की पूर्ति हो गयी एवं श्रुतियों की तरह आप्तकाम भाव से भगवान् के लिए बालू पर कुंकुम-लिपटी अपनी ओढ़नी बिछा दी। द्रष्टव्य **10।87।23। ।** श्रुतियाँ कहती हैं कि योगीजन को भी वही गति मिलती है जो भगवान् से वैर रखने वालों को। कामाभिभूत नारियों को वही गति मिलती है जो आप्तकाम श्रुतियों को।

तत्रोपविष्टो भगवान् स ईश्वरो योगेश्वर-अन्तर्हृदि कल्पितासन:।

चकास गोपी-परिषद्-गतो-अर्चित: त्रैलोक्य-लक्ष्मी-एकपदं वपु: दधत्। ।10।32।14। ।

जैसे भगवान् बड़े-बड़े योगेश्वरों के हृदय में आसीन होते हैं वैसे वे गोपियों के बीच विराज गये। गोपियों के सम्मान से उनका विग्रह वैसे ही चमक उठा जैसे समस्त सौंदर्य का आधार लक्ष्मी जी का। गोपियाँ अपनी प्रेमासिक्त चितवन से भगवान्को निहारतीं। अपनी भौंहों से प्रेमसंवाद करतीं। किसी ने उनके चरण अपनी गोद में लिये तो किसी ने उनके हाथ। उनके एकाएक लुप्त होने से अपना रोष प्रकट करते हुए गोपियाँ भगवान्से बोलीं।

भजतो-अनुभजन्ति-एक एक एतत्-विपर्ययम्।

न-उभयान्-च भजन्ति-एक एतन्नो ब्रूहि साधु भो:। ।10।32।16। ।

गोपियों ने कहा कि संसार में तीन तरह के लोग होते हैं। एक स्नेह करनेवाले से स्नेह करता है। दूसरा स्नेह न करनेवाले से भी स्नेह करता है। तीसरा जो स्नेह करने तथा न करनेवाले में से किसी से स्नेह नहीं करता। आप किस श्रेणी में हैं। भगवान् ने कहा कि प्रेम करने वाले से प्रेम करना तो स्वार्थ है। प्रेम न करने वाले से प्रेम करना सौहार्द से भरा होता है। जैसे कि पिता पुत्र से। प्रेम करे या न करे जो किसी से प्रेम नहीं करते वे चार तरह के लोग होते हैं - **1**।बाह्य दृष्टि को नियन्त्रित रखने वाले आत्माराम। **2**। पूर्ण मनोरथवाले आप्तकाम । **3**।अकृतज्ञ। **4**।श्रेष्ठजनों से ईर्ष्या करने वाले गुरुद्रोही। भगवान्ने कहा कि प्रेम करने वाले से मैं तत्क्षण प्रेम नहीं करता क्योंकि मैं उनके प्रेम को प्रगाढ़ करना चाहता हूँ। आपका प्रेम बढ़ाने के लिए ही मैं लुप्त हो गया था। मैं चिरकाल तक आप सबों का ऋणी रहूँगा।

<u>महारास</u>

इत्थं भगवतो गोप्य: श्रुत्वा वाच: सुपेशला:।
जहुर्विरहजं तापं तदङ्ग-उपचित-आशीष:।।10।33।1।।
तत्र-आरभत गोविन्दो रासक्रीडाम्-अनुव्रतै:।
स्त्रीरत्नै: अन्वित: प्रीतै: अन्योन्य-आबद्ध-बाहुभि:।।10।33।2।।

भगवान्‌की मनोहारी बातों से तथा उनके अंगों को स्पर्श करने से गोपियों की विरहजन्य विकलता का ताप दूर हो गया।और गोपियों को यह अनुभव हुआ कि उनकी सारी मनोरथें पूरी हो गयीं। लीलाविहारी गोविन्द के सामने समस्त जगत्‌की नारियों में सिरमौर व्रज की श्रद्धालु गोपियाँ खड़ी-खड़ी एक दूसरे की बाहों को जोड़ते हुए गोविन्द रसराज की रासक्रीड़ा में सम्मिलित हुईं।

रासोत्सव: सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डल-मण्डित:।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयो: द्वयो:।
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रिय:।।10।33।3।।

मण्डलाकार खड़ी दो गोपियों के बीच में अपनी योगशक्ति से भगवान्‌भी अपने हाथ को एक-एक गोपी के कण्ठ को लपेटते हुए विराज गये। सपत्नी देवगण आकाश से महारास को देख कर पुलकित होने लगे। पुष्पवृष्टि के साथ गगन में दुन्दिभियाँ बजीं तथा गन्धर्व रसराज भगवान् के निर्मल यश का गान करने लगे। प्रियतम भगवान्‌के साथ मण्डलाकार रासनृत्य में गोपियों के कंगन, नूपुर तथा करधनी से मनमोहक ध्वनि निकलने लगीं।

तत्र-अतिशुशुभे ताभि: भगवान् देवकीसुत:।
मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा।। 10।33।7।।

नृत्यरत प्रत्येक गोपी के पार्श्व में योगेश्वर लीलाविहारी सुवर्णमणि रूपी गोपी के बीच-बीच में महामरकत नीलमणि की तरह शोभायमान हो रहे थे।

पादन्यासै: भुज-विधुतिभि: सस्मितै: भ्रूविलासै: भज्यन्-मध्यै: चल-कुचपटै: कुण्डलै: गण्डलोलै:।
स्विद्यन् मुख्य: कबर-रशना-आग्रन्थय: कृष्णवध्वो गायन्त्य: तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजु:। **।10।33।8।।**

भगवान्‌श्रीकृष्ण का यशगान करतीं उनकी प्रिय गोपियाँ अपने थिरकते चरण, हस्त-विन्यास, मुस्कान, भ्रू-चालन, गतिशील कटि-भाग, सरकती ओढ़नी, गालों पर थिरकते कुण्डल, स्वेदकणों से शोभायमान मुखमण्डल, गतिमान सुगठित केशवेणी तथा कमरधनी के साथ जैसे श्यामघन के बीच-बीच में बिजली की तरह चमक रही थीं। गोपियों के गान से ब्रह्माण्ड निनादित हो उठा। भगवान्‌श्रीकृष्ण के गान से पृथक परन्तु रोचक एवं ऊँचे स्वर में एक गोपी (विशाखा) की गानशैली की भगवान्‌ने प्रशंसा की। एक दूसरी गोपी (ललिता) ध्रुपद में गा कर भगवान्‌से सम्मानित हुई।

काचिद् रासपरिश्रान्ता पार्श्व-स्थस्य गदाभृत:।
जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथत्-वलय-मल्लिका।।10।33।11।।
तत्रैकांसगतं बाहुं कृष्णस्य-उत्पल-सौरभम्।

चन्दनालिप्तम्-आघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह। ।10।33।12। ।

एक गोपी (श्रीराधा) रासनृत्य से थककर गदाधर भगवान्‌के कन्धे पकड़ ली। उसके कंगन तथा बालों के फूल ढ़ीले पड़ गये थे। एक अन्य गोपी (श्यामला) अपने कन्धे पर टिके हुए भगवान् की बाहों में लिपटे चन्दन एवं कमल फूल के सुगंध से पुलकित होकर उनकी बाहों को चूमने लगी।

कस्याश्चित्-नाट्य-विक्षिप्त-कुण्डल-त्विष-मण्डितम्।

गण्डं गण्डे सन्दधत्या: अदात्-ताम्बूल-चर्वितम्। ।10।33।13। ।

एक गोपी (शैव्या) जिसके कुण्डल से उसके गाल चमचमा रहे थे नाचते हुए अपने गाल को भगवान्‌के गाल से स्पर्श करायी। भगवान्‌ने अपने मुँह से चबाते पान को गोपी के मुँह में डाल दिया।

नृत्यन्ति गायती काचित् कूजन्-नूपुर-मेखला।

पार्श्वस्थ-अच्युत-हस्ताब्जं श्रान्ताधात् स्तनयो: शिवम्। ।10।33।14। ।

गाने के साथ नाचने से एक गोपी (चन्द्रावली) के नूपुर एवं कमरध्वनि से मंजुल ध्वनि निकल रही थी। परन्तु वह थक गयी थी। पार्श्व में खड़े अच्युत भगवान्‌के कल्याणकारी करकमल को अपने वक्षस्थल पर रख ली। पद्मा गोपी भी चन्द्रावली की तरह ही भगवान् के करकमल अपनी छाती पर रख कर आनन्दित हुई।

गोप्यो लब्ध्वा-अच्युतं कान्तं श्रिय एकान्तवल्लभम्।

गृहीत-कण्ठ्य: दोर्भ्यां गायन्त्य: तं विजह्रिरे। ।10।33।15। ।

लक्ष्मी जी के अनन्यप्रिय भगवान्‌अच्युत को गोपियों ने अपने प्रियकान्त के रूप में पाकर आनन्द लूटा। भगवान् ने अपनी भुजाओं में उनलोगों के गले को लपेट रखा था और गोपियाँ उनका यशगान कर रही थीं।

एवं परिष्वङ्ग-कर-अभिमर्श-स्निग्ध-ईक्षण-उद्दाम-विलास-हासै:।

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभि: यथा-अर्भक: स्वप्रतिबिम्ब-विभ्रम:। ।10।33।17। ।

श्री रमारमण जी भगवान्‌अपने करकमल से व्रजसुन्दरियों के अंग-प्रत्यंग का स्पर्श करते हुए स्नेहावलोकन, मनमोहक हास्य तथा रसोद्दीपक विलास भंगिमाओं के साथ रासनृत्य में वैसे ही रमण कर रहे थे जैसे कोई बालक अपनी परछाई से खेलता है। सांसारिकों को रास से भ्रमित न होना चाहिए। भगवान्‌की परछाई से खेलने का अभिप्राय अपनी आह्लादिनी शक्ति से खेलना है। इस अलौकिक रास को देखकर देवांगनायें कामातुर हो रही थीं और गगनांगन में तारों के साथ चन्द्रमा आश्चर्यचकित होकर स्थिर से हो गये।

कृत्वा तावन्तम्-आत्मानं यावती: गोप-योषित:।

रेमे स भगवान्ताभि: आत्मारामोऽपि लीलया। ।10।33।20। ।

तासाम्-इति-विहारेण श्रान्तानां वदनानि स:।

प्रामृजत् करुण: प्रेम्णा शन्तमेन-अङ्ग-पाणिना। ।10।33।21। ।

एक ही साथ प्रत्येक गोपी के संग रमण करते हुए लीलाविहारी भगवान् आत्माराम ही बने रहे। हे राजा परीक्षित! थकी हुई गोपियों के मुख से स्वेदविन्दुओं को भगवान्‌ने अपने हाथ से पोछकर उनकी थकान मिटाई। गोपियों ने

भगवान्को हास्यपूर्ण चितवन से सम्मानित किया और उनकी दिव्य लीलाकथा का गान करने लगीं। व्रजसुन्दरियों की थकान दूर करने हेतु सबों को लेकर हथनियों से घिरे गजराज की भाँति उन्होंने यमुना जल में प्रवेश किया। गन्धर्व की तरह गाते हुए गुंजायमान भौंरे भगवान्की माला के पीछे तेजी से चल रहे थे। भगवान्को जलक्रीड़ा करते देख देवगण पुष्प-वृष्टि करने लगे। भगवान् गोपियों के साथ तब यमुना किनारे फूलों की मादक सुगन्ध वाले एक उपवन में गये।

एवं शशाङ्क-अंशु-विराजिता निशा: स सत्यकामो - अनुरत- अबलागण:।
सिषेव आत्मनि-अवरुद्ध-सौरत: सर्वा: शरत्काव्य-कथा-रसाश्रया:।।10।33।26।।

चन्द्रमा की चाँदनी से सुशोभित शरद कालीन रात्रियों की रात्रि में सत्यकाम भगवान् ने व्रजवनिताओं के साथ महारास सम्पन्न किया जो रसकाव्य का विषय वस्तु है। मानों अनेक शरद पूर्णिमा की रात्रियाँ महारास की रात्रि में घनीभूत हो गयीं। समस्त काम भावनायें रासविहारी में आकर अवरुद्ध रहती हैं। रासेश्वर ने यमुना-पुलिन, यमुना-जल तथा यमुना-उपवन में व्रजसुन्दरियों के साथ रास-क्रीड़ा करके उनसबों को आप्तकाम बना दिया।

भगवान्ने जब शरदकालीन सुहावनी रात्रि में यमुना किनारे के उपवन में वेणुवादन प्रारम्भ किया था तब गोपियाँ सब काम-काज छोड़कर गिरते-परते भगवान्की ओर आई थीं। राजा परीक्षित ने श्लोक **10।29।12।** से ब्रह्मस्वरूप भगवान्के इस कार्यकलाप पर शंका प्रकट की थी। शुकदेव जी ने शंका का समाधान **10।29।13 से 16** तक के श्लोकों में किया है। महारास की समाप्ति पर पुन: राजा परीक्षित ने अपनी शंका को तीन श्लोकों में **10।33।27** से **29** तक में प्रकट किया। हरिकथाकारों के ऐसे मत हैं कि राजा परीक्षित धर्मनिष्ठ तथा आत्मनिष्ठ थे परन्तु सामान्य जन-कल्याण हेतु ही उनके ये प्रश्न हुए हैं। इससे सामान्य जन के मन में शंका नहीं होनी चाहिए अगर वे भगवान्के दिव्य-कर्म को अपनी साधना का एक अंग मानें। मानवी इन्द्रियाँ भगवान्अधोक्षज के दिव्य-कर्म को समझने में पूर्णतया असमर्थ हैं। इसके लिए अपने गुरु का मार्गदर्शन आवश्यक है। जिस उदात्त श्रोता-भक्त राजा परीक्षित एवं आत्माराम-कथाकार शुकदेव जी का यह प्रसंग है उस तरह के चरित्रवान श्रोता-वक्ता के मानस-धरातल पर अपने को ले जाने के बाद ही महारास से भगवान्श्रीकृष्ण के भक्ति-मार्ग पर अग्रसर हो सकेंगे।

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमाय-इतरस्य च।
अवतीर्णो हि भगवान्-अंशेन जगदीश्वर:।।10।33।27।।
स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ता-अभिरक्षिता।
प्रतीपम्-आचरत्ब्रह्न्परदार-अभिमर्शनम्।।10।33।28।।
आप्तकामो यदुपति: कृतवान्वै जुगुप्सितम्।
किम्-अभिप्राय एतं न: संशयं छिन्धि सुव्रत।।10।33।29।।

राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से अपनी शंका निवारण हेतु प्रार्थना की और कहा कि भगवान्श्रीकृष्ण अपने भाई बलदेव जी के साथ इस धरती पर धर्म की स्थापना तथा अधर्म के उन्मूलन के लिए अवतार लिये हैं। वे सकल शास्त्रोक्त धर्ममार्ग के नियामक, वक्ता तथा रक्षक हैं। परन्तु परदाराओं के संग इन्होंने इस तरह का आचरण किस अभिप्राय से किया?

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम्।

तेजीयसां न दोषाय वह्ने: सर्वभुजो यथा। ।10।33।30। ।

शुकदेव जी ने कहा कि अग्नि जैसे सबकुछ खाकर पवित्र बनी रहती है उसीतरह ईश्वर में कोई दोष नहीं लगता। असंयमी को कभी भी महान्‌व्यक्तियों का आचरण नहीं करना चाहिए। शंकर के विषपान का अनुकरण करनेवाले का विनाश निश्चित है। *समरथ के नहीं दोष गुसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं। ।*

यत्पादपङ्कज-पराग-निषेव-तृप्ता योगप्रभाव-विधुत-अखिल-कर्मबन्धा:।
स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमाना: तस्य-इच्छया-आत्त-वपुष: कुत एव बन्ध:। ।10।33।35। ।

गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम्।
योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्ष: क्रीडनेनेह देहभाक्। ।10।33।36। ।

भगवान्‌के चरणकमल की धूलि के सेवन करने वाले योगी को कोई कर्मबन्धन नहीं होता तब भगवान्‌जो अपनी ई च्छा से अवतार लेते हैं कर्मो के बन्धन से कैसे प्रभावित होंगे ? गोपी, उनके पति तथा समस्त प्राणियों में अर्न्तयामी रूप से विराजने वाले भगवान्‌ही लीला से श्रीकृष्ण के रूप में शरीर ग्रहण किये हैं।

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थित:।
भजते तादृशी: क्रीडा या: श्रुत्वा तत्परो भवेत्। ।10।33।37। ।

नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया।
मन्यमाना: स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकस:। ।10।33।38। ।

भक्तों पर कृपा करके ही भगवान् मानव देह धारण करते हैं जिससे कि उनकी क्रीडाओं से आकृष्ट होकर वे भगवान्‌में तन्मय हो जायें। भगवान्‌की योगमाया से व्रजवासी ग्वालों ने अपनी पत्नियों को अपने पास ही देखा था। अत: उनलोगों के मन में कोई क्षोभ उत्पन्न हुआ ही नहीं।

ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेव-अनुमोदिता:।
अनिच्छन्त्यो ययु: गोप्य: स्वगृहान् भगवत्-प्रिया:। ।10।33।39। ।

नहीं भी चाहने पर रात के अन्त में ब्रह्मवेला काल में भगवान्‌के आदेश से गोपियाँ अपने-अपने घर गयीं।

विक्रीडितं व्रजवधूभि: इदं च विष्णो: श्रद्धान्वितो-अनुश्रृणुयात्-अथ वर्णयेद्य:।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगम्-अशु-अपहिनोति-अचिरेण धीर:। ।10।33।40। ।

लीलाविहारी भगवान् श्रीकृष्ण भगवान् विष्णु के सर्वात्मा हैं। व्रजवधूयों के साथ इनकी इस रास-क्रीडा को जो सुनेगा और कीर्तन करेगा वह शीघ्र ही कामवसना जैसी हृदय की व्याधि से मुक्त हो जायेगा।

। ।स्कन्ध 10 का अध्याय 1 से 33 तक पूरा हुआ। ।

10।14।सर्परूपी सुदर्शन नामके विद्याधर से नन्द जी रक्षा तथा कुवेर के अनुचर शंखचूड़ से गापियों की रक्षा

एक दिन व्रजवासी अम्बिका वन गये। सरस्वती नदी में स्नान करके शिव तथा अम्बिका की पूजा की। उपवास करते हुए वहीं नदी के तट पर सबों ने रात बितायी। रात में एक सर्प नन्द जी को निगलने लगा।

स चुक्रोश-अहिना ग्रस्त: कृष्ण कृष्ण महानयम्।

सर्पो मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचया।।10।34।6।।

नन्द जी ने सर्प से रक्षा के लिए भगवान् कृष्ण को पुकारा। गोपजनों ने आग की लुकाठी जलाकर नन्द जी को बचाने का निष्फल प्रयास किया। भगवान् कृष्ण आये और अपने चरण से जैसे ही सर्प को स्पर्श किया कि वह सर्प एक सुन्दर गन्धर्व बन गया। पूछने पर बताया कि सुदर्शन नामका वह विद्याधर है। अंगिरा ऋषि की सन्त-टोली से व्यंग करने के कारण उसे शाप वश सर्प होना पड़ा। अपने को सौभाग्यवान बताया कि भगवान् के चरणारविन्द के स्पर्श से उसका उद्धार हुआ।

प्रपन्नोऽस्मि महायोगिन् महापुरुष सत्पते।

अनुजानीहि मां देव सर्वलोकेश्वर-ईश्वर।।10।34।16।।

समस्त योगेश्वरों में प्रधान भगवान् श्रीकृष्ण की शरणागति कर परिक्रमा करके वह अपने लोक चला गया।

कदाचित्-अथ गोविन्दो राम: च अद्भुत-विक्रम:।

विजह्तु: वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम्।।10।34।20।।

उपगीयमानौ ललितं स्त्रीजनै: बद्ध-सौहृदै:।

सु-अलङ्कृत-अनुलिप्त-अङ्गौ स्रक्-विनौ विरजोऽम्बरौ।।10।34।21।।

एक बार बलदेव जी के साथ भगवान् कृष्ण जंगल में रात्रि काल में व्रजवनिताओं के साथ से क्रीड़ारत थे। दोनों भाई फूलों की माला, निर्मल वस्त्र तथा चन्दनादि से अलंकृत थे। गोपियों ने उनकी महिमा का गान किया।

जगतु: सर्वभूतानां मन: श्रवणमङ्गलम्।

तौ कल्पयन्तौ युगपत् स्वरमण्डल-मूर्च्छितम्।।10।34।23।।

दोनों भाईयों ने संसार के प्राणियों के मन तथा कान को आनन्दित करने हेतु मूर्च्छना अर्थात् आरोह-अवरोह स्वर युक्त वेणुवादन किया। उससे सम्मोहित गोपियों के वस्त्र-माला आदि ढ़ीले पड़ गये।

एवं विक्रीडतो: स्वैरं गायतो: सम्प्रमत्तवत्।

शङ्खचूड इति ख्यातो धनद-अनुचरो-अभ्यगात्।।10।34।25।।

जब दोनों भाई उन्मत्त मधुर कलगान करते विचरण कर रहे थे तब कुवेर का शंखचूड़ नामक अनुचर आया। वह गोपियों को चुराने के अभिप्राय से जब उन्हें भगाने लगा तब उनकी चिल्लाहट सुनकर दोनों भाईयों ने तेजी से उसका पीछा किया। वह गोपियों को छोड़कर भागा। बलराम जी गोपियों की रक्षा में रुक गये तथा भगवान् श्रीकृष्ण ने उसका पीछा करते हुए उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया। उसके सिर के चूड़ामणि को भगवान् ने बलराम जी को उपहार में समर्पित कर दिया।

10।15। दिन में वन गये हुए भगवान् श्रीकृष्ण की लीला-गीत गातीं गोपियाँ

गोप्य: कृष्णे वनं याते तम्-अनुद्रुत-चेतस:।

कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युः-दुःखेन वासरान्। ।10।35।1। ।

जब भगवान् श्रीकृष्ण वन में गौ चराने जाते तब उनके श्रीचरणों में मन लगाये हुए गोपियाँ उनकी लीलागान करतीं हुई विकलता के साथ घर पर समय बितातीं। सन्ध्या में वापस लौटने तक दर्शन के लिए व्याकुल रहती हैं। दिन में भगवान् वन में गौ चराते हैं और रात्रि काल में गोपियों के साथ वन में क्रीड़ा करते।

वामबाहु-कृत-वामकपोलो वल्गित-भ्रुः अधर-अर्पित-वेणुम्।

कोमल-अङ्गुलिभिः आश्रित-मार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः। ।10।35।2। ।

गोपियाँ कहती हैं कि बायीं भुजा पर बायें कपोल को टिका कर जब वे वेणुवादन करते हैं तब उनकी भौंहें चंचल हो उठती हैं। होठों पर रखी बाँसुरी के छिद्रों पर कोमल अंगुलियों को दौड़ा कर मधुर वेणुगीत सुनाते हैं।

हन्त चित्रम्-अबलाः श्रृणुत-इदं हारहास उरसि स्थिरविद्युत्।

नन्द-सूनुः अयम्-आर्त-जनानां नर्म-दः यर्हि कूजितवेणुः। ।10।35।4। ।

हे व्रजसुन्दिरयों सुनो ! इनके गले के हार की चमक उनका हास्य ही है। आश्चर्य है कि विजली जैसी चंचल और तेजोपूर्ण लक्ष्मी जी इनके वक्षस्थल पर स्थिर हो जाती हैं। इनके वेणुवादन से मानवेतर अन्य प्राणियाँ तथा वृक्ष-लतादि भी आनन्द से अपने आप में लीनकर समाधिवत शान्त हो जाते हैं।

बर्हिण-स्तबक-धातु-पलाशैः बद्ध-मल्ल-परिबर्ह-विडम्बः।

कर्हिचित् सबल आलि स गोपैः गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः। ।10।35।6। ।

हे सखियों ! कभी-कभी भगवान् मुकुन्द मोरपंख के गुच्छों, गेरुआ मिट्टी तथा कोमल पत्तों से पहलवान के समान सजते हैं। वे गोप सखाओं के साथ बलराम जी तथा गायों को अपने पास बुलाने के लिए वेणुवादन करते हैं।

दर्शनीय-तिलको वनमाला-दिव्यगन्ध-तुलसी-मधुमत्तैः।

अलिकुलैः अलघु-गीतम्-अभीष्टम्-आद्रियन् यर्हि सन्धित-वेणुः। ।10।35।10। ।

उर्ध्वपुण्ड्र तिलक से सुशोभित ललाट वाले भगवान् श्रीकृष्ण सभी सुन्दर-दर्शनीय पुरुषों के शिरमौर हैं। उनकी वनमाला की तुलसी के दिव्यगंध से भौंरे बहुत ऊँचे स्वर से लीलागान की गुंज करते हैं। भगवान् वंशी बजाकर भौरों के गीत की प्रशंसा करते हैं।

सहबलः स्रक्-अवतंस-विलासः सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः।

हर्षयन् यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरम्भति विश्वम्। ।10।35।12। ।

महत्-अतिक्रमण-शङ्कित-चेता मन्द-मन्दम्-अनुगर्जति मेघः।

सुहृदम्-अभ्यवर्षत् सुमनोभिः छायया च विदधत् प्रतपत्रम्। ।10।35।13। ।

हे व्रजदेवियों ! फूलों से अलंकृत भगवान् अपने बड़ेभाई के साथ पर्वत-शिखर पर वेणुवादन से समस्त विश्व को प्रसन्न करने वाला राग छेड़ते हैं। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण के वेणु-स्वर का सम्मान करते हुए श्यामघन मन्द-मन्द गर्जते हैं तथा भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलदेव जी पर जल-कण फुहारों की वृष्टि करते हैं। अपनी छाया रूपी छाता से उन्हें ताप से बचाते हैं।भगवान् अपने वेणुवादन में नित्य नवीन स्वर को उत्पन्न करते हैं जिसे नाद-विशेषज्ञ इन्द्र-शंकर-ब्रह्मा भी नहीं समझ पाते तथा श्रद्धा से सिर झुकाकर सुनते रहते हैं।

निज-पदाब्ज-दलैः ध्वज-वज्र-नीरज-अङ्कुश-विचित्र ललामैः।

व्रजभुवः शमयन् खुरतोदं वर्ष्म-धुर्य-गतिः ईडित-वेणुः। ।10।35।16। ।

भगवान् के चरणारविन्द में विराजते ध्वज-वज्र-कमल-अंकुश तथा भाँति-भाँति के आकर्षक चिह्नों से अंकित धरती प्रसन्न भाव से हाथी की तरह झूमते भगवान् के वेणुनाद को सुनती है।

मणिधर: क्वचित्-अगाणयन् गा मालया दयित-गन्ध-तुलस्या:।
प्रणयिनो-अनुचरस्य कदा-अंसे प्रक्षिपन् भुजम्-अगायत यत्र। ।**10**।**35**।**18**। ।
क्वणित-वेणुरव-वञ्चित-चित्ता: कृष्णम्-अन्वसत कृष्ण-गृहिण्य:।
गुणगण-अर्णम्-अनुगत्य हरिण्यो गोपिका इव विमुक्त-गृह-आशा:। ।**10**।**35**।**19**। ।

भगवान् अनेकों प्रकार के मणियों की माला पहने हैं। कभी-कभी गायों की संख्या सुनिश्चित करने के लिए वे अपने मणिमाल के दानों का उपयोग करते हैं। गले में अपनी प्रिया लक्ष्मी की सुगन्ध से युक्त तुलसी की माला धारण किये हुए वे अपने प्रिय सखा के कन्धे पर हाथ रखकर वेणुवादन करते हैं। उस समय काले हिरण की पत्नि-हिरणियाँ गुण के सागर भगवान् के पास आकर शान्त भाव से वेणुनाद का आनन्द वैसे ही लेती हैं जैसे समस्त गृहसुख को त्याग कर गोपियाँ भगवान् के पास रहती हैं।

कुन्द-दाम-कृत-कौतुक-वेषो गोप-गोधन-वृतो यमुनायाम्।
नन्दसूनु: अनघे तव वत्सो नर्म-द: प्रणयिनां विजहार। ।**10**।**35**।**20**। ।

गोपियाँ यशोदा जी से कहती हैं कि आप निर्मल चित्तवाली हैं। नन्दनन्दन सुगन्धयक्त कुन्द-फूल की माला पहने यमुना तट पर गौवों तथा गोपसखाओं के साथ मनोरंजन में लीन रहते हैं। इनके स्वरूप से आकर्षित होकर गन्धर्वा दि आकाश से गीत-संगीत सुनाते रहते हैं।

उत्सवं श्रम-रुचा-अपि दृशीनाम्-उन्नयन् खुर-रज:-छुरित-स्रक्।
दित्सया-एति सुहृत्-आशिष एष देवकी-जठर-भू:-उडुराज:। ।**10**।**35**।**23**। ।

सन्ध्या काल में थके हुए घर लौटते अपने प्रियजनों को प्रसन्न करते हुए देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र की माला गौवों के खुर की धूल से लिपटी हुई अत्यन्त मनोहारी दिख रही है।

मद-विघूर्णित-लोचन ईषत्-मानद: स्वसुहृदां वनमाली।
बदर-पाण्डु-वदनो मृदु-गण्डं मण्डयन् कनक-कुण्डल-लक्ष्म्या। ।**10**।**35**।**24**। ।
एवं व्रजस्त्रियो राजन् कृष्णलीला नु गायती:।
रेमिरे अह:सु तत्-चित्ता: तत्-मनस्का महोदया:। ।**10**।**35**।**26**। ।

मतवाले नेत्र घुमाते अपने सखाओं से घिरे घर लौटते भगवान् श्रीकृष्ण का पके बेर की तरह सुनहला मुखारविन्द तथा स्वर्ण कुण्डल से सुशोभित कोमल गाल का सौंदर्य अत्यन्त मनमोहक है। व्रजवनिताओं का ज्ञान-प्रधान चित्त तथा कर्म-प्रधान मन भगवान् श्रीकृष्ण की लीला-गान में ही दिन भर लगा रहता। इस तरह से नित्य बड़भागिनी गोपियाँ आनन्द लूटते हुए लीलाविहारी में रमण करती हैं।

10।**16**। अरिष्टासुर का अन्त तथा नारद जी का कंस के पास जाना

पशवो दुद्रुवु: -भीता राजन् संत्यज्य गोकुलम्।
कृष्ण कृष्णेति ते सर्वे गोविन्दं शरणं ययु:। ।**10**।**36**।**6**। ।

अरिष्टासुर तीक्ष्ण सींगवाला बैल बनकर दोनों भाईयों को मारने के उद्देश्य से व्रज में पहुँचा।उसकी हँकड़न सुन सभी पशु तथा गोपगण भय से भागते हुए भगवान् गोविन्द की शरण में गये। वह भगवान् पर जैसे ही आक्रमण करना चाहा कि भगवान् ने उसके सींग को पकड़ उसे दूर फेंककर उसका अन्त कर दिया।

अरिष्टे निहते दैत्ये कृष्णेन-अद्भुत-कर्मणा।
कंसाय-अथ-आह भगवान् नारदो देवदर्शनः।।10।36।16।।
यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णमेव च।
रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता ।।10।36।17।।
न्यस्तौ स्वमित्रे नन्दे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः।
निशम्य तद् भोजपतिः कोपात् प्रचलितेन्द्रियः।।10।36।18।।

अरिष्टासुर के मारे जाने पर सदा भगवान् का साक्षात्कर करनेवाले देवर्षि नारद जी ने भगवान् का संकेत समझ कंस को जाकर बताया। जिसका तुम हत्या नहीं कर सके थे वह कन्या यशोदा की पुत्री थी। कृष्ण देवकी के तथा बलराम रोहिणी के पुत्र हैं। वसुदेव ने भयातुर होकर इन दोनों को अपने मित्र नन्द को सौंप दिया था। दोनों भाईयों ने ही तुम्हारे अनुचरों का अन्त किया है। ऐसा सुनकर कंस क्रोध से काँपते हुए वसुदेव को तलवार से मारने चला। नारद जी ने यह समझाया कि इनके पुत्र तुम्हारी हत्या करेगा।अतः इन्हें न मार। कंस ने देवकी-वसुदेव को कैद में डाल दिया। नारद जी के जाने पर केशी असुर को भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलराम जी की हत्या करने को भेजा। मुष्टि, चाणूर, शल तथा तोशल आदि पहलवानों से दोनों भाईयों को मारने की मन्त्रणा कर एक धनुष यज्ञ का आयोजन करने को सोचा। कुवलयापीड को प्रवेश द्वार पर नियुक्त करने की योजना बनायी। उसने चतुर्दशी को भूतों के राजा रुद्र की पूजा करके धनुषयज्ञ करने का निश्चय किया। तदुपरान्त कंस ने यदुकुल के सम्मानीय अक्रूर जी को बुलवाकर उनका हाथ पकड़ भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलराम जी को मथुरा लाने के लिए निवेदन किया। पिता श्री श्वफल्क तथा माता गांदिनी की भगवान् की विशेष आराधना से अक्रूर जी का जन्म हुआ था।

गच्छ नन्दव्रजं तत्र सुतौ-आनकदुन्दुभेः।
आसाते तौ-इह-अनेन रथेन-आनय मा चिरम्।।10।36।30।।

व्रज से वसुदेव के दोनों पुत्रों को रथ पर धनुष यज्ञ के लिए शीघ्र यहाँ ले आयें। नन्द आदि गोपजनों को भी उपहार के साथ बुलायें। दोनों भाईयों को कुवलयापीड से कुचलवा कर मार दूँगा। अगर बच गया तव हमारे पहलवान सब उन दोनों का वध करेंगे। तदनन्तर वसुदेव तथा उसके सम्बन्धियों का अन्त करना है। अपने बूढ़े पिता उग्रसेन का भी वध करूँगा।

10।17।। केशी तथा व्योमासुर का वध, नारद जी का भगवान् श्रीकृष्ण से मिलना

केशी वध

कंस से भेजा गया केशी असुर ने व्रज में एक विशाल घोड़े के रूप में प्रवेश किया। जैसे ही वह भगवान् पर प्रहार करना चाहा कि उसके दोनों पीछे के पैरों को पकड़ भगवान् ने उसे दूर फेंक दिया। होश आने पर अपना मुँह खोले वह भगवान् को निगलने के लिए दौड़ा। भगवान् ने अपना एक हाथ उसके मुख में डाल दिया जो केशी को अत्यधिक जलाने लगा। भगवान् का हाथ बढ़ने लगा और केशी की साँस रुद्ध हो जाने से उसकी मृत्यु हो

गयी। कुछ हरिकथाकार कहते हैं कि असुर सिंधुज घोड़े अर्थात् समुद्र से निकला उच्चै:श्रवा के रूप में आकर भगवान् को धोखे में रखना चाह रहा था। सिंधुज घोड़ा लक्ष्मी जी का भाई भी माना जाता है क्योंकि समुद्र मन्थन से दोनों प्राप्त हुए हैं। केशी के वध के कारण ही भगवान् का नाम केशव हुआ

यस्मात् त्वयैष दुष्टात्मा हतः केशी जनार्दन।

तस्मात् केशवनामा त्वं ख्यातो लोके भविष्यति।।वि पु 5।16।23।।

ऐसा उद्धरण श्रीविष्णुपुराण **5।16।23।** में है जब नारद जी ने केशी के वध के बाद भगवान् को केशव कहकर स्तुति की थी।नारद जी भगवान् श्रीकृष्ण से मिलने वृन्दावन आये।

देवर्षिः उपसङ्गम्य भागवत-प्रवरो नृपा।

कृष्णम्-अक्लिष्ट-कर्माणं रहसि-एतत्-अभासत।।10।37।10।।

शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाभागवत देवर्षि नारद जी सुगमता से सभी दुस्तर कार्य करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के पास एकान्त स्थान में आकर उनकी स्तुति करते हुए आनेवाली घटनाओं का उल्लेख किया।

स त्वं भूधरभूतानां दैत्य-प्रमथ-रक्षसाम्।

अवतीर्णो विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च।।10।37।14।।

सन्त जनों की रक्षा तथा दैत्य-राक्षस आदि के विनाश हेतु आपका अवतार हुआ है। सारी आनेवाली घटनाओं का उल्लेख करते हुए नारद जी ने बताया कि परसों मथुरा में चाणूर-मुष्टिक-कुलयापीड का अन्त करके आप कंस का अन्त करेंगे। बाद में आपको शंखासुर, कालयवन, मुर एवं नरकासुर का वध करते देखेंगे। स्वर्ग से इन्द्र को परास्त करके कल्पवृक्ष उखाड़ लायेंगे। द्वारका में नरकासुर के कैद से मुक्त कन्याओं से आप विवाह करेंगे। अन्य दुष्टों का अन्त करते हुए युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ में शिशुपाल का वध करेंगे।

अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोः अमुष्य वै।

अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्यामि-अर्जुन-सारथेः।।10।37।22।।

एवं यदुपति कृष्णं भागवतप्रवरो मुनिः।

प्रणिपत्य-अभ्यनुज्ञातो ययौ तत्-दर्शन-उत्सवः।।10।37।25।।

अर्जुन का सारथी बनकर साक्षात काल के रूप में धरती का भार उतारने के लिए समस्त सेनाओं का संहार करते आपको देखूँगा। भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन से आनन्दित होते हुए उनको झुककर प्रणाम कर महाभागवत नारद जी वहाँ से प्रस्थान कर गये।

व्योमासुर वध

केशी का वध करने के बाद भगवान् ग्वालबालों के साथ वन में लुकाछिपी का खेल में लग गये। मायावी मय का पुत्र व्योमासुर कपट रूप से एक ग्वालसखा बनकर उस खेल में सम्मिलित हुआ। गोपबालकों को उसने पास की एक गुफा में बन्द करना शुरु किया। भगवान् उसकी करामात समझ गये। उसको भगवान् ने धर दबोचा और उसका अन्त कर दिया। गुफा के द्वार का पत्थर तोड़कर भगवान् ने गोप सखाओं को मुक्त किया।

10।18।। अक्रूर जी का व्रज से दोनों भाईयों को लेकर मथुरा आना

अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपर्या महामतिः।

उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम्।।10।38।1।।

गच्छन् पथि महाभागो भगवति-अम्बुज-ईक्षणे।

भक्तिं पराम्-उपगत एवम्-एतत्-अचिन्तयत्।।10।38।2।।

कंस की आज्ञा से अक्रूर जी दूसरे दिन प्रात: रथ से व्रज के लिए प्रस्थान कर गये। मार्ग में वे कमलनयन भगवान् की भक्ति में विभोर हो गये तथा उनके दर्शन प्राप्त करने की लालसा के कारण अपने को बहुत ही भाग्यशाली समझने लगे। अवश्य ही कोई पूर्व के पुण्य का प्रभाव है कि आज भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन होंगे।

<u>अक्रूर जी व्रज के रास्ते में</u>

मैवं मम-अधमस्यापि स्यात्-एव-अच्युत-दर्शनम्।

ह्रियमाण: कालनद्या क्वचित्-तरति कश्चन।।10।38।5।।

सोचते हैं कि समय के प्रवाह में एक तिनका भी नदी के एक किनारे से दूसरे किनारे पर पहुँच जाता है। **निमज्जतोऽनन्त भवार्णवान्त: चिराय मे कूलमिवासि लब्ध:।आलवन्दार स्तोत्र 24।।** वैसे ही मुझ अधम को भी आज भगवान् अच्युत के दर्शन का अवसर मिलेगा ही।

मम-अद्य-अमङ्गलं नष्टं फलवान्-च-एव मे भव:।

यत्-नमस्ये भगवतो योगिध्येय-अङ्घ्रि-पङ्कजम्।।10।38।6।।

कृतावतारस्य दुरत्ययं तम: पूर्वे-अतरन् यत्-नखमण्डल-त्विषा।।10।38।7।।

आज मेरे सभी पाप निर्मूल हो गये हैं। जिस भगवान् के चरणकमल का ध्यान योगीलोग करते हैं उन श्रीचरणों को नमस्कार समर्पित करने का आज मुझे अवसर मिलेगा। पूर्व में योगीजन आपके चरणारविन्द के नखों की कान्ति से अज्ञानरूपी अन्धकार को पार कर चुके हैं उसी भगवान् ने अब अवतार लिया है।

यदर्चितं ब्रह्म-भव-आदिभि: सुरै: श्रिया च देव्या मुनिभि: स-सात्वतै:।

गो-चारणाय-अनुचरै: चरत्-वने यद् गोपिकानां कुच-कुङ्कुम्-अङ्कितम्।।10।38।8।।

द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोल-नासिकं स्मितावलोक-अरुण-कञ्जलोचनम्।

मुखं मुकुन्दस्य गुड-अलकावृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगा:।।10।38।9।।

जिन श्रीचरणों की पूजा ब्रह्मा-शंकर-अन्य देवगण, लक्ष्मी जी तथा भक्तों के साथ मुनिगण करते हैं वही श्रीचरण वन में गौवों के पीछे चलते हैं और गोपियों के वक्ष:स्थल पर लगे केसर-कुंकुम से लिपटे रहते हैं। अक्रूर जी मृगों को अपनी दायीं ओर से जाते देखकर शुभ शकुन मानते हुए सोचते हैं कि अवश्य ही लटकते घुँघराले बाल से सुशोभित कान्तिमान् कोमल गाल, मनमोहक नाक, मन्द-मन्द मुस्कराते होठ, रतनारी आँखों की प्रेमभरी चितवन वाले भगवान् के लावण्यमय मुखारविन्द का दर्शन होगा।

तं तु-अद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकान्तं दृशि-मत् महोत्सवम्।

रूपं दधानं श्रिय ईप्सित-आस्पदं द्रक्ष्ये मम-आसन्-उषस: सुदर्शना:।।10।38।14।।

तीनों लोकों के मन को मोहने वाले स्वरूप का जिसके दर्शन के लिए सर्वोत्तम सुन्दरी लक्ष्मी जी भी लालायित रहती हैं और आँख वालों के लिए यह दर्शन अत्यन्त आनन्द दायक है आज के शुभ-प्रभात की वेला में सभी शुभ शकुन बता रहे हैं कि त्रैलोक्यकान्त का आज मुझे अवश्य दर्शन होगा। दोनों भाईयों को देखते ही मैं रथ से नीचे उतरकर उनके चरणकमल पर लेट जाऊँगा। उनके साथियों एवं वृन्दावन वासियों को भी प्रणाम करूँगा। वे अवश्य सभी पाप के नाश करने वाले अपने करकमल से मेरा माथा स्पर्श कर आशीर्वाद देंगे।

समर्हणं यत्र निधाय कौशिक: तथा बलि: च-आप जगत्-त्रय-इन्द्रताम्।

यद् वा विहारे व्रजयोषितां श्रमं स्पर्शेन सौगन्धिक-गन्धि-अपानुदत्। ।10।38।17। ।

उस करकमल में दान देकर असुर राजा बलि ने अगले मन्वन्तर में कौशिक गोत्रिय इन्द्र का पद प्राप्त किया है। रासलीला का उद्धरण देते हुए अक्रूर जी कहते हैं कि थकी हुई गोपियों के मुँह से पसीना पोछ कर आपने अपने करकमल के सुगन्ध से गोपियों के मुख को स्वर्ग के अप्राप्य सौगन्धिक फूल के समान सदा सुगन्धित रहने का वरदान दे दिया। इस फूल का प्रकरण महाभारत में है जब कुबेर के उद्यान से भीम ने उसे लाकर द्रौपदी को दिया था। यद्यपि हम कंस के दूत बनकर आये हैं परन्तु भगवान् हमें अपना शत्रु नहीं समझेंगे। भगवान् अपना प्रिय सुहृत समझ अपनी भुजाओं से हमें बाँध लेंगे जिससे मेरे सारे सांसारिक बन्धन कट जायेंगे।

इति सञ्चिन्तयन् कृष्णं श्वफल्कतनयो-अध्वनि।

रथेन गोकुलं प्राप्त: सूर्य: च-अस्तगिरिं नृप। ।10।38।24। ।

इस प्रकार विचारों में निमग्न अक्रूर जी सूर्यास्त के समय गोकुल पहुँच गये।

<u>व्रज आगमन</u>

पदानि तस्य-अखिललोकपाल-किरीट-जुष्ट-अमल-पादरेणो:।

ददर्श गोष्ठे क्षिति-कौतुकानि विलक्षितानि-अब्ज-यव-अङ्कुश-आद्यै:। ।10।38।25। ।

तत्-दर्शन-आह्लाद-विवृद्ध-सम्भ्रम: प्रेम्णा-ऊर्ध्व-रोम-अश्रुकला-आकुल-ईक्षण:।

रथात्-अवस्कन्द्य स तेषु-अवचेष्टत प्रभो: अमूनि- अङ्घ्रि- रजांसि- अहो इति ।।10।38।26।।

सब लोकपाल अपने मुकुट भगवान् के चरणकमल की धूल से पवित्र करते हैं। अक्रूर जी वृन्दावन के गौशाले की धूल पर भगवान् के चरणारविन्द के कमल, यव, अंकुश आदि अदभुत चिह्न का दर्शन प्राप्त कर बड़े आह्लादित हुए। उनके रोम-रोम खिल उठे। आँखें प्रेमाश्रु से भर गयीं। रथ से कूदकर जमीन पर लोटते हुए कहने लगे कि "यह हमारे प्रभु के चरण की धूल है।"

ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ।

पीत-नीलाम्बर-धरौ शरदम्बुरुह-ईक्षणौ। ।10।38।28। ।

किशारौ श्यामल-श्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहद्भुजौ।

सुमुखौ सुन्दरवरौ बाल-द्विरद-विक्रमौ। ।10।38।29। ।

गाय दूहने के स्थान में शरदकालीन कमल के समान नेत्रवाले पीताम्बरधारी भगवान् श्यामसुन्दर तथा नीलाम्बरधारी बलराम जी को उन्होंने देखा। विशाल भुजाओं वाले दोनो भाई एक श्याम वदन तथा दूसरे गौर वर्ण के थे। लक्ष्मी जी के आश्रयस्थल भगवान् गजशावक की तरह चल रहे थे।

ध्वज-वज्र-अङ्कुश-अम्भोजै: चिह्नितै: अङ्घ्रिभि: वजम्।

शोभयन्तौ महात्मानौ सानुक्रोश-स्मितेक्षणौ। ।10।38।30। ।

उदार-रुचिर-क्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ।

पुण्यगन्ध-अनुलिप्ताङ्गौ स्नातौ विरजवाससौ। ।10।38।31। ।

इनके श्रीचरण-चिह्न ध्वज, वज्र, अंकुश तथा कमल से व्रजक्षेत्र शोभायमान था। मन्द- मन्द मुस्कान के साथ इनकी चितवन अनुग्रह की वर्षा कर रही थी।

अभी-अभी स्नान करके सुन्दर निर्मल वस्त्र पहने ये दोनों भाई जगमगाते मणियों एवं फूलों की माला पहने हुए थे। अपने अनुग्रह से ये सुन्दर लीलायें करते थे।

दिशो वितिमिरा राजन् कुर्वाणौ प्रभया स्वया।

यथा मारकत: शैलो रौप्यश्च कनक-अचितौ।।10।38।33।।

भगवान्-तम्-अभिप्रेत्य रथाङ्ग-अङ्कित-पाणिना।

परिरेभे-अभ्युपाकृष्य प्रीत: प्रणतवत्सल:।।10।38।36।।

भगवान् श्यामसुन्दर मरकतमणि एवं बलराम जी चाँदी के पर्वत जैसे शोभायमान होकर अपने वदन की कान्ति से सभी दिशाओं को आलोकित कर रहे थे। स्नेह से विह्वल अक्रूर जी ने रथ से कूदकर दोनों भाई के श्रीचरणों में दण्डवत समर्पित किया। आनन्दातिरेक में उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। शरण में आये अक्रूर जी के हृदयस्थ भाव को जानकर भगवान् ने अपने रथचक्रांकित हाथ से उनको प्रेमपूर्वक उठाकर अपनी छाती से लगा लिया। दोनों भाईयों ने अक्रूर जी के हाथ पकड़ उन्हें घर लाया। सम्मान सत्कार से उनके पैर धोकर उन्हें मधुपर्क अर्था त् मीठा दूध पान कराया। भगवान् ने पैर दवाकर उनकी थकान दूर की। सुस्वादु भोजन करने के बाद अक्रूर जी से नन्द जी ने उनके कुशल क्षेम पूछते हुए कहा कि जैसे कसाई के संरक्षण में कोई भेंड़ रहता है कंस के साथ आपकी वैसी ही स्थिति है। नन्द जी से समादृत होकर अक्रूर जी आनन्दित हुए तथा यात्रा की थकान भूल गये। भगवान् के दर्शन के लिए लालायित मार्ग की उनकी सभी मनोरथें पूरी हो गयी थीं। भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलराम जी के स्नेह से वे पुलकित थे। शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को कहा कि -

किम्-अलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने।

तथापि तत्परा राजन्-न हि वाञ्छन्ति किञ्चन।।10।39।2।।

जो भगवान् लक्ष्मी जी के निवास स्थान हैं उनके यहाँ कोई कामना अधूरी नहीं रहती। लेकिन अनन्य भक्त भगवान् से कुछ नहीं चाहते। भगवान् श्रीकृष्ण ने अक्रूर जी से मथुरा के अपने सुहृतों का कुशल क्षेम पूछा और कहा कि कंस के राज्य में कौन कुशलपूर्वक रह सकता है! कंस ने मेरे माता-पिता को कष्ट दिया है और उनके छ: निरपराध पुत्रों की उसने हत्या कर दी। भगवान् ने जब अक्रूर जी के व्रज आगमन का उद्देश्य पूछा तब अक्रूर जी ने कंस की सारी योजना बता दी और यह भी बताया कि नारद जी से वह जान गया है कि आप वसुदेव के पुत्र हैं। ऐसा सुन दोनों भाई हँसे। नन्द जी को भगवान् ने कंस का संवाद बताया। नन्द जी ने व्रज वासियों को राजा कंस के यहाँ दूध-दही का उपहार लेकर प्रात: मथुरा चलने की तैयारी करने को कहा।

गोपियों की विकलता

गोप्य: ता: तत् -उपश्रुत्य बभूवु: व्यथिता भृशम्।

रामकृष्णौ पुरीं नेतुम्-अक्रूरं व्रजमागतम्।।10।39।13।।

गोपियाँ यह जानकर व्याकुल हो उठीं कि अक्रूर दोनों भाई को मथुरा ले जाने के लिए आये हैं। सब जमा होकर विधाता को कोसनें लगीं। भगवान् श्रीकृष्ण से वियोग को वे सह नहीं पा रहीं थीं।

यस्त्वं प्रदशर्य-असित-कुन्तल-आवृतं मुकुन्द-वक्त्रं सुकपोलम्-उत-नसम्।

शोक-अपनोद-स्मित-लेश-सुन्दरं करोषि पारोक्ष्यम्-असाधु ते कृतम्।।10।39।20।।

गोपियों ने कहा कि पहले हमलोगों को भगवान् के काले घुँघराले बाल से सुशोभित गाल-ललाट तथा मुखारविन्द, तोता सी उठी हुई नाक एवं सभी शोक को हरनेवाली मुस्कान के दर्शन का लाभ मिला परन्तु अब विधाता हमें उससे वंचित करने जा रहे हैं। अक्रूर को गोपियों ने क्रूर कहा।

महोत्सव: श्रीरमणं गुणास्पदं द्रक्ष्यन्ति ये च-अध्वनि देवकीसुतम्।।10।39।25।।

रासमंडल तथा अन्य दिनों को याद करके वे कहती हैं कि अब तो मथुरा की नारियों का भाग्योदय होगा। वहाँ महोत्सव होगा। दिव्य गुणों के आगार, श्यामसुन्दर-नटवरलाल, लक्ष्मी के साथ रमण करने वाले देवकीनन्दन को मार्ग के लोग तथा मथुरा के नागरिक देखकर धन्य-धन्य हो जायेंगे।

यो-अह्न: क्षये व्रजम्-अनन्त-सख: परीतो गोपै:-विशन् खुर-रज: छुरित-अलक-स्रक्।
वेणुं क्वणन् स्मित-कटाक्ष-निरीक्षणेन चित्तं क्षिणोति-अमुम्-ऋते नु कथं भवेम।।10।39।30।।

प्रतिदिन सन्ध्या में सखाओं से घिरे बलराम जी के साथ वन से लौटते समय गौओं के खुर की धूल से ढके उनके घुँघराले बाल तथा गले की माला की शोभा, बाँसुरीवादन की मृदु ध्वनि, मन्द-मन्द मुस्कान तथा उनकी मनोहारी चितवन का आनन्द अब कहाँ मिलेगा !

एवं बुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रिय: कृष्ण-विषक्त-मानसा:।
विसृज्य लज्जां रुरुदु: स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधवेति।।10।39।31।।

विरहातुर गोपियों के भगवान् से अनुरक्त मन उनके अंग-स्पर्शादि के भाव में विभोर थे। परन्तु आसन्न वियोग का स्मरण कर परिवार से लज्जा का त्याग करते हुए जोर-जोर से "हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !" कहकर रोने लगीं। गोपायों की रात इसी तरह से बीती।

मथुरा के लिए प्रस्थान एवं यमुना के अनन्त-कुण्ड में अक्रूर जी को दिव्य-स्वरूप का दर्शन

प्रात: सन्ध्यादि करके अक्रूर ने दोनों भाईयों के साथ रथ हाँक दिया। उनके पीछे-पीछे नन्द जी छकड़ों पर राजा के लिए उपहार लेकर चल दिये।

गोप्यश्च दयितं कृष्णम्-अनुव्रज्य-अनुरञ्जिता:।
प्रत्यादेशं भगवत: काङ्क्षन्त्य: च-अवतस्थिरे ।।10।39।34।।
ता: तथा तप्यती: वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदुत्तम:।
सान्त्वयामास सप्रेमै: आयास्य इति दौत्यकै:।।10।39।35।।
यावत्-आलक्ष्यते केतु: यावत्-रेणू रथस्य च।
अनुप्रस्थापित-आत्मानो लेख्यानि-इव-उपलक्षिता:।।10।39।36।।

भगवान् के पीछे-पीछे जाती गोपियाँ उनकी मुस्कान तथा चितवन से प्रसन्न हो गयीं।उनकी आदेश की आशा में स्थिर खड़ी हो गयीं। गोपियों को विरहातुर देख यदुकुल शिरोमणि भगवान् ने दूत से अपना प्रेम-सन्देश भेज उन्हें बताया कि " मैं वापास आऊँगा।" जब तक रथ का पताका तथा चक्कों से उड़ती धूल दिखती रहीं तब

तक वे चित्रवत खड़ी देखती रहीं परन्तु अपना चित्त प्राणवल्लभ भगवान् के साथ भेज दिया। अपनी विरह-व्यथा को कम करने के लिए गोपियाँ दिन-रात भगवान् के लीला-गान में समय बितातीं।

यमुना के अनन्त कुण्ड में अक्रूर जी को भगवत् स्वरूप की दिव्य झाँकी

अक्रूर जी वायुवेग से रथ चलाकर यमुना के पास आये। भगवान् दोनों भाईयों ने कालिन्दी में मार्जन तथा आचमन करके इसके मीठा जल को पिया और वृक्ष की छाया में लगे रथ में आकर सवार हो गये। इनकी आज्ञा से अक्रूर जी यमुना के अनन्त-तीर्थ कुण्ड में स्नान के लिए गये। इस कुण्ड को ब्रह्महृद भी कहते हैं। अक्रूर जी को अनन्तशायी भगवान् के स्वरूप का दर्शन होने के कारण इसे अनन्त-तीर्थ भी कहते हैं।

निमज्ज तस्मिन् सलिले जपन् ब्रह्म सनातनम्।
तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ।।10।39।41

भगवान् के स्मरण-युक्त गायत्री मन्त्रादि के जप करते जब अक्रूर जी ने डुब्बी लगायी तो भगवान् श्रीकृष्ण के साथ बलराम जी को सामने जल में देखा। लगा कि कहीं दोनों भाई स्नान करने तो नहीं आ गये। ऐसा देखकर वे जल से बाहर सिर निकालकर देखे परन्तु दोनों भाइयों को रथ में ही बैठे देखा। उन्होंने पुनः डुबकी लगायी।

भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत् स्तूयमानम्-अहि-ईश्वरम् ।
सिद्ध-चारण-गन्धर्वैः असुरैः नत-कन्धरैः।।10।39।44।।
सहस्रशिरसं देवं सहस्रफण-मौलिनम्।
नीलाम्बरं बिस-श्वेतं श्रृङ्गैः श्वेतमिव स्थितम्।।10।39।45।।
तस्य-उतसङ्गे घनश्यामं पीतकौशेय-वाससम्।
पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मपत्र-अरुणेक्षणम्।।10।39।46।।
चारु-प्रसन्नवदनं चारुहास-निरीक्षणम्।
सु-भ्रू-उन्नसं चारुकर्ण सुकपोल-अरुणाधरम्।।10।39।47।।
प्रलम्ब-पीवर-भुजं तुङ्ग-अंस-उरः-स्थल-श्रियम्।
कम्बुकण्ठं निम्ननाभिं वलि-मत्-पल्लव-उदरम्।।10।39।48।।
बृहत्-कटितट-श्रोणि-करभ-ऊरु-द्वय-अन्वितम्।
चारु-जानु-युगं चारु-जङ्घा-युगल-संयुतम्।।10।39।49।।
तुङ्ग-गुल्फ-अरुण-नख-व्रात-दीधितिभिः वृतम्।
नव-अङ्गुलि-अङ्गुष्ठ-दलैः विलसत्-पादपङ्कजम्।।10।39।50।।

अक्रूर जी ने जल में आदिशेष अनन्त को देखा जिनकी वन्दना देवता तथा असुर आदि कर रहे थे। बलराम जी अनन्त के अवतार हैं। अक्रूर जी को पहले बड़े भाई के मूल स्वरूप का दर्शन हुआ। आदि शेष हजार फन वाले थे तथा हजार मुकुट से अलंकृत थे। इनके शरीर का वर्ण कोमल श्वेतकमल के नाल जैसा था तथा नीला रेशमी वस्त्र पहने हुए थे। अब अक्रूर जी को आदिशेष पर विराजते रतनारे-कमलनयन श्यामसुन्दर के शान्त एवं चतुर्भुज पीताम्बरधारी स्वरूप का दर्शन मिला। मनमोहक हँसी के साथ श्यामसुन्दर भगवान् के लावण्यपूर्ण

मुखारविन्द, चितचोर-मुस्कान, सुन्दर भौंहे तथा उठी हुई सुडौल नाक, आकर्षक कान, चमकते गाल, लाल होठ, चौड़े कन्धे, लक्ष्मी का आश्रय विशाल वक्ष:स्थल, घुटनों तक लम्बी बलिष्ठ भुजायें, शंख सा उतार-चढ़ाव वाला सुन्दर गला, गहरी नाभि एवं पीपल पत्ते की रेखाओं के समान उभरती सटी-सटी पेट की सिकुड़न की रेखाओं का दर्शन हुआ। उनके कटिभाग तथा स्थूल नितम्ब, हाथी की सूँढ़ जैसी जाँघें, सुन्दर पिण्डलियों वाले घुटने, सुडौल गाँठ वाली एँड़ी, फूल की पंखडुयों जैसी अँगुलियों पर लाल नखों के तेज से श्यामसुन्दर भगवान् के चरणारविन्द मन को मोह ले रहे थे। सुन्दर अंगो के दर्शन के बाद अक्रूर जी उनके आभूषणों से मोहित हैं।

सुमहा-अर्ह-मणिव्रात-किरीट-कटक-अङ्गदै:।
कटिसूत्र-ब्रह्मसूत्र-हार-नूपुर-कुण्डलै:।।10।39।51।।
भ्राजमानं पद्मकरं शङ्ख-चक्र-गदाधरम्।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम्।।10।39।52।।

श्यामसुन्दर भगवान् का दिव्यस्वरूप मूल्यमान मणियों से जड़े मुकुट, कंगन, बाजूवन्द, करधनी, जेनऊ, गले का हार, पैरों के नूपुर तथा कान के कुण्डल से अलंकृत है। भगवान् के एक हाथ में कमल तथा अन्य में शंख-चक्र-गदा सुशोभित हो रहे हैं। वक्ष:स्थल पर श्रीवत्स, कौस्तुभ मणि तथा गले में वनमाला विराज रही है। अक्रूर जी को भगवान् के दिव्य पार्षदों के साथ परमभागवत ऋषि-मुनि तथा देवगणादि के दर्शन हुए।

सुनन्द-नन्द-प्रमुखै: पार्षदै: सनकादिभि:।
सुरेशै: ब्रह्म-रुद्र-आद्यै: नवभि: च द्विजोत्तमै:।।10।39।53।।
प्रह्लाद-नारद-वसु-प्रमुखै: भागवतोत्तमै:।
स्तूयमानं पृथग्भावै: वचोभि: अमल-आत्मभि:।।10।39।54।।
श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्या-इलया-ऊर्जया।
विद्यया-अविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम्।।10।39।55।।

नन्द तथा सुनन्द आदि भगवान् के दिव्यपार्षद, सनकादि ऋषिगण, ब्रह्मा तथा रुद्रा आदि देवगण, मरीचि आदि नौ ब्राह्मण, प्रह्लाद तथा नारद आदि परमप्रेमी भक्त एवं आठो वसु भगवान् की वेदवाणी से भाव-स्तुति कर रहे हैं। लक्ष्मी, पुष्टि, सरस्वती, कान्ति, कीर्ति और तुष्टी भगवान् की अंतरंगा शक्तियाँ (ऐश्वर्य, बल, ज्ञान, श्री, यश और वैराग्य ये छ: वैभव), इला (सन्धिनीरूपा पृथ्वी-शक्ति), ऊर्जा (लीला शक्ति), मोक्ष एवं वन्धन के कारणरूपा अन्तरंगा शक्ति विद्या-अविद्या, ह्लादिनी, संवित् तथा माया मूर्त रूप में भगवान् श्यामसुन्दर की सेवा में विराजमान थीं। इस दिव्यदर्शन की झाँकी से अक्रूर जी ने अश्रुपूरित नयनों से पुलकित होकर भगवान् के चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया तथा हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे।

<u>अक्रूर - स्तुति</u>

भावविभोर अक्रूर जी जल में ही डुबकी लगाये भगवान् की स्तुति करने लगे। कुछ हरिकथाकार कहते हैं कि अक्रूर जी राजसी भक्त हैं। सम्पूर्ण अध्याय **40** अक्रूर जी द्वारा भगवान् की स्तुति है। भागवत का यह अद्भुत

अध्याय है क्योंकि भागवत में अन्यत्र ऐसा नहीं मिलता है जहाँ सम्पूर्ण अध्याय श्रीहरि की स्तुति ही हो। इनकी स्तुति को स्तुति-रसायन भी कहते हैं। पहले दो श्लोक में भगवान् के दो सार्वभौम मुख्य व्यक्त-स्वरूप का उल्लेख है। पहला स्वरूप है नारायणरूप अविनाशी शरीरी का जिनके नाभिकमल से ब्रह्मा निकले और भगवान् के आदेश से सृष्टि रचना में प्रवृत हुए। दूसरे श्लोक में शरीरी-शरीर का उल्लेख है जिससे यह स्पष्ट होता है दृश्य जगत भगवान् का शाश्वत विराट शरीर है और इसका कभी नाश नहीं होता। बाद के नौ श्लोक अर्थात् **3** से **11** तक भगवत्-सत्ता का सप्रमाण निरूपण है। श्लोक **12** से **15** चार श्लोकों में भगवान् की सर्वोपरि सत्ता की स्थापना तथा उनको नमस्कार समर्पित है। श्लोक **13** एवं **14** में भगवान् के विराट स्वरूप का सुन्दर सार प्रस्तुत है। श्लोक **16** से **22** तक में विभिन्न अवतारों से भगवत्-सत्ता की अलौकिकता का प्रदर्शन है तथा श्लोक **23** से **30** तक में देह-गेह की आसक्ति से मुक्त होकर श्रीहरि की शरणागति को श्रेष्ठ कहा है। कुछेक हरिकथाकार के भाव हैं कि श्रुति जब शब्दों से सर्वश्रेष्ठ भगवान् के स्वरूप का वर्णन नहीं कर पाती (न तत्र वाक् गच्छति, यतो वाचो निवर्तन्ते आदि) तब कोई शरीरधारी कैसे यह कर सकता है !

नतो-अस्मि-अहं त्वा-अखिल-हेतु-हेतुं नारायणं पूरुषम्-आद्यम्-अव्ययम्।
यत्-नाभि-जातात-अरविन्द-कोशाद् ब्रह्मा-अविरासीद् यत एष लोकः।।10।40।1।।

नारायण के उस स्वरूप को नमस्कार है जिसके नाभिकमल से ब्रह्मा जन्मे हैं।

भूः तोयम्-अग्निः पवनः खम्-आदि-महान्-अजा-आदिः मन इन्द्रियाणि।
सर्वेन्द्रिय-अर्था विबुधाश्च सर्वे ये हेतवस्ते जगतो-अङ्ग-भूताः।।10।40।2।।

मिट्टी आदि पांच तत्त्व, अहंकार आदि महतत्त्व, इन्द्रियाँ एवं उनके स्वभाव, तथा इनसे सम्बन्धित देवगण तथा विराट जगत आपके दिव्य शरीर के विभिन्न अवयव हैं। तीनों गुणों से परे आपका यह शरीर ब्रह्मा को भी ज्ञात नहीं है। सागर में सभी नदियों के मिलने की तरह पूजा-उपासना के सभी मार्ग आप में ही समाहित हैं।

अग्निः मुखं ते-अवनिः अङ्घ्रिः इक्षणं सूर्यो नभो नाभिः अथो दिशः श्रुतिः।
द्यौ कं सुरेन्द्राः तव बाहवः अर्णवाः कुक्षिः मरुत् प्राणबलं प्रकल्पितम्।।10।40।13।।
रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा मेघाः परस्य-अस्थि-नखानि तेऽद्रयः।
निमेषणं रात्रि-अह्नि प्रजापतिः मेढ्रः-तु वृष्टिः तव वीर्यम्-इष्यते।।10।40।14।।

अक्रूर जी नमस्कार करते हुए विराट स्वरूप का सारभाव बताते हैं। अग्नि आपका मुख, पृथ्वी चरण, सूर्य नेत्र, आकाश नाभि, दिसायें कान, स्वर्ग मस्तक, इन्द्र आदि भुजा, सागर पेट, वायु प्राण तथा शारीरिक बल है। वृक्ष तथा औषधि आदि आपके रोयें, मेघ सिर का बाल, पर्वत हड्डियाँ तथा नख, रात-दिन पलकों का झपकना, प्रजापति गुप्तांग तथा वर्षा वीर्य है।

यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि।
तैः आमृष्ट-शुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः।।10।40।16।।

आपके अवतार के विभिन्न रूप लोक-कल्याण के लिए आपकी ही लीला है। इनका यशगान आनन्द दायक है।

नमः कारण-मत्स्याय प्रलय-अब्धि-चराय च।
हय-शीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभ-मृत्यवे।।10।40।17।।

अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे।

क्षिति-उद्धार-विहाराय नमः सूकरमूर्तये। ।10।40।18। ।

सत्यव्रत राजा के रक्षार्थ प्रलय जल में तैरते रहने वाले मत्स्य रूप, मधुकैटभ के हन्ता वेद रक्षार्थ हयग्रीव (शरीर मनुष्य का और सिर घोड़े का) स्वरूप को नमस्कार है। समुद्र मन्थन में मन्दराचल धारण करने वाले विशाल कच्छप रूप तथा समुद्र में निमग्न पृथ्वी के उद्धारक वराह स्वरूप को नमस्कार है।

नमस्ते-अद्भुत-सिंहाय साधुलोक-भय-आपह।

वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च। ।10।40।19। ।

नमो भृगूणां पतये दृप्त-क्षत्र-वनच्छिदे।

नमस्ते रघुवर्याय रावण-अन्तकराय च। ।10।40।20। ।

भक्तों के भयनाशक नरसिंह तथा ब्रह्माण्ड तक तीन पग में नापने वाले वामन रूप को नमस्कार है। अहंकारी राजाओं के नाशक परशुराम तथा राक्षसराज रावण के हन्ता भगवान् रघुवर को नमस्कार है।

नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च।

प्रद्युम्नाय-अनिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः। ।10।40।21। ।

नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्य-दानव-मोहिने।

म्लेच्छ-प्राय-क्षत्र-हन्त्रे नमस्ते कल्किरूपिणे। ।10।40।22। ।

भक्तों के रक्षक तथा वासुदेव स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण तथा संकर्षण स्वरूप बलदाऊ जी के साथ चतुर्व्यूह के अन्य स्वरूप प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध को नमस्कार है। दैत्य एवं दानव को वेद-विरोधी पाषण्ड मत के मोह-भ्रम में रखने वाले बुद्ध तथा मांस-भक्षी म्लेच्छों को नाश करने वाले भविष्य के अवतार कल्कि स्वरूप को नमस्कार है।

नम्स्ते वासुदेवाय सर्वभूत-क्षयाय च।

हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो। ।10।40।30। ।

इस तरह से अपनी आज तक की मूर्खता तथा देह-गेह की आसक्ति से मुक्त होने के लिए अक्रूर जी सभी प्राणियों के निवास-आश्रयस्थल भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण के शरणागत होते हैं।

10।19। । विस्मित अक्रूर जी का यमुना-कुण्ड से बाहर आना तथा मथुरा-गमन

स्तुवतः तस्य-भगवान् दर्शयित्वा जले वपुः।

भूयः समाहरत् कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः। ।10।41।1। ।

अक्रूर जी स्तुति कर ही रहे थे कि नटवरलाल भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने नाटक को अन्तर्धान कर दिया। अक्रूर जी शीघ्र ही जल से बाहर निकले और रथ पर आये। भगवान् श्रीकृष्ण ने उनके विस्मित चेहरा को देखकर पूछा कि आप ने यहाँ जल में कुछ अद्भुत् वस्तु देखी है क्या?

यत्र-अद्भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले।

तं त्वा-अनुपश्यतो ब्रह्मन् किं मे दृष्टम्-इह-अद्भुतम्। ।10।41।5। ।

अक्रूर जी ने कहा कि जब सामने ही प्रत्यक्ष रूप से समस्त जगत के अद्भुत आश्रय-स्थल का स्वरूप देख रहा हूँ तब अन्यत्र की बात क्या कहूँ! इतना कह अक्रूर जी ने रथ चला दिया।

मार्गे ग्रामजना राजंस्तत्र तत्रोपसंगताः।

वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न चाददुः।।10।40।7।।

रास्ते के गाँववाले दोनों भाईयों के मनमोहक स्वरूप को दृष्टि से ओझल होने तक देखते ही रह जाते। अपराह्न काल में रथ से वे मथुरा आ गये। नन्द जी पहले पहुँच कर मथुरा के बाहर ही एक बगीचा में टिक गये थे। भगवान् पहले नन्द जी से मिले तथा अक्रूर जी को अपने घर जाने को कहा। अक्रूर जी ने विनयपूर्वक भगवान् को अपने घर चलने की विनती की जिससे कि उनके चरण से गृहस्थ का घर पवित्र हो जाये।

पुनीहि पादरजसा गृहान् नो गृहमेधिनाम्।

यत्-शौचेन्-अनुतृप्यन्ति पितरः साग्नयः सुराः।।10।41।13।।

अवनिज्य-अङ्घ्रि-युगलम्-आसीत्-श्लोक्यो बलिः महान्।

ऐश्वर्यम्-अतुलं लेभे गतिं चैकान्तिनां तु या।।10।41।14।।

आपस्ते-अङ्घ्रि-अवनेजन्यः त्रीन्-लोकान्-शुचयो अपुनन्।

शिरसा-आधत्त याः शर्वः स्वः याताः सगर-आत्मजाः।।10।41।15।।

देवदेव जगन्नाथ पुण्य-श्रवण-कीर्तन।

यदु-उत्तम-उत्तमश्लोक नारायण नमोऽस्तु ते।।10।41।16।।

आपके पादरज से मेरा घर पवित्र तो होगा ही हमारे पितर, घर की होमाग्नि तथा गृहदेवता भी पवित्र हो जायेंगे। राजा बलि ने श्रीचरणों को पखारकर यश तथा ऐश्वर्य आदि के साथ परम भागवतों की परमगति भी प्राप्त की। आपके चरणोदक से तीनों लोकों को पवित्र करने वाली गंगा निकली। शिव जी ने इस पादोदक को अपने शिर पर धारण किया तथा राजा सगर के पुत्रों के कल्याण में सहायक बने। हे यदुकुल श्रेष्ठ नारायण आप जगत के नाथ हैं।आपके यशगान के श्रवण एवं गान से हृदय पवित्र होता है। आपको नमस्कार है।

अक्रूर जी ने जब इस प्रकार स्तुति की तब भगवान् ने कहा कि यदुकुल के शत्रु का अन्त करने के बाद आपके घर आयेंगे। अक्रूरजी ने भारी मन से विदा ली तथा राजा कंस को दोनों भाईयों के आगमन की सूचना देकर अपने घर गये। सन्ध्याकाल में भगवान् श्रीकृष्ण बलदाऊ जी एवं अन्य गोपसखाओं को लेकर मथुरा घूमने चले। मथुरा के महलों की शोभा, राजमार्ग की सजावट तथा उद्यान आदि की प्राकृतिक सुषमा के साथ नगर सुरक्षा हेतु चतुर्दिक खाई आदि देखते हुए भगवान् राजमार्ग पर चलने लगे। नगर की नारियाँ अपने काम अधूरे छोड़ उलटे-पुलटे वस्त्र तथा आभूषणादियों में उनके सौंदर्य निहारने राजमार्ग, झरोखों एवं छतों पर भर गयीं।

मनांसि तासाम्-अरविन्दलोचनः प्रगल्भ-लीला-हसित-अवलोकनैः।

जहार मत्त-द्विरद-इन्द्र-विक्रमो दृशां ददत्-श्रीरमण-आत्मना-उत्सवम्।।10।41।27।।

लक्ष्मी जी को आत्मविभोर रखनेवाले लक्ष्मीरमण राजीवलोचन भगवान् मतवाले हाथी की चाल से चलते हुए अपनी लीला-विलास-हास-चितवन से पुरी की नारियों के दिल में बैठ गये।

दृष्ट्वा मुहुः श्रुतम्-अनुद्रुत-चेतसः तं तत्प्रेक्षण-उत-स्मित-सुधा-उक्षण-लब्धमानाः।

आनन्दमूर्तिम्-उपगुह्यदृशा-आत्मलब्धं हृष्यत्-त्वचो जहुः अनन्तम्-अरिन्दम-आधिम्।। **10।41।28।।**

नारियों ने उनकी लीला सुनी थी परन्तु दर्शन से आज निहाल हो गयीं। भगवान् ने अपनी चितवन तथा मन्द-मधुर मुस्कान से उनके हृदय को सम्मोहित कर रोमांचित-पुलकित कर दिया। नटवरलाल के प्रेममय सौंदर्य-मूर्ति को नारियों ने हृदयस्थ कर समालिंगन के असीम आनन्द में डूब गयीं। नारियों ने अटारियों से पुष्पवृष्टि की तथा ब्राह्मणों ने राजमार्ग में दही-हल्दी-अक्षत-पुष्प-गन्धादि से विधिवत उनकी पूजा की।

ऊचु: पौरा अहो गोप्य: तप: किम्-अचरन् महत् ।

या हि-एतौ-अनुपश्यन्ति नरलोक-महोत्सवौ।।10।41।31।।

पुरी की लोगों ने जोर-जोर से कहा कि सम्पूर्ण मानव समाज को आनन्दित करने वाले दोनों भाइयों के सौंदर्य-दर्श न से लाभान्वित होने वाले वृन्दावन के गोप-गोपियों ने न जाने कौन सी तपस्या की होगी!

उदण्ड रंगकार धोबी को प्राणदण्ड

रजकं कञ्चित्-आयान्तं रङ्गकारं गदाग्रज:।

दृष्ट्वा-अयाचत वासांसि धौतानि-अति-उत्तमानि च।।10।41।32।।

भगवान् गदाग्रज जैसे ही राजमार्ग पर आगे बढ़े तब एक धोबी तथा रंगकार को वस्त्रों का गठ्ठर लिये आते देखा। भगवान् ने उससे अच्छे रेशमी कपड़े माँगे। कुछ हरिकथाकार कहते हैं कि उस रजक का नाम ही रंगकार था। कुछ अन्य हरिकथाकार का मत है कि वह धोवी कपड़ा रंगने का भी काम करता था। यहाँ भगवान् को गदाग्रज कहा गया है। हरिकथाकार का मत है कि रोहिणी के गर्भ में एक बालक था जिसका जन्म नहीं हो रहा था क्योंकि कंस नवजात की हत्या करा रहा था। भगवान् का कंस को मारने की प्राथमिकता इसके कारण भी हो गयी थी। कंस के मरने के बाद रोहिणी को गद नामक पुत्र प्राप्त हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण को इसीलिए गद का अग्रज कहा जाता है। भगवान् ने धोबी को कहा -

भविष्यति परं श्रेयो दातुस्ते नात्र संशय:।।10।41।33।।

हमें सुन्दर वस्त्र देने से तुम्हारा परम कल्याण सुनिश्चित है।शुकदेव जी कहते हैं कि -

स याचितो भगवता परिपूर्णेन सर्वत:।

साक्षेपं रुषित: प्राह भृत्यो राज्ञ: सुदुर्मद:।।10।41।34।।

जो सर्वेश्वर देश-काल-वस्तु से परिपूर्ण हैं वे रंगकार से उसके ही कल्याण हेतु ही याचना कर रहे थे। परन्तु अभागा रंगराज राजसेवक होने के मद में अत्यन्त क्रोध से भगवान् को जंगली आदि कहकर उनकी हँसी उड़ाई । उसके दुर्व्यवहार के कारण भगवान् ने उसको एक तमाचा मारा और वह मर गया। उसके सब साथी कपड़े वहीं छोड़कर भाग गये। भगवान् गदाग्रज तथा बलराम जी ने अपने अनुरूप सुन्दर वस्त्र धारण कर लिया।साथ के गोप सखाओं ने भी उत्तम वस्त्र धारण कर लिया।

भगवद् पेमी दर्जी एवं माली पर कृपा

ततस्तु वायक: प्रीत: तयो: वेषम्-अकल्पयत्।

विचित्रवर्णै: चैलेयै: आकल्पै: अनुरूपत:।।10।41।40।।

एक प्रेमी दरजी भगवान् के समीप आया और सबके अनुरूप नाना-रंगो के वस्त्रों से सबको सजा दिया।

नाना-लक्षण-वेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः।

स्वलङ्कृतौ बालगजौ पर्वणि-इव सित-इतरौ।।10।41।41।।

श्याम एवं गौर वर्ण के अनुरूप वस्त्रों से दोनों भाई उत्सव में सजे-धजे गजशावक की तरह शोभायमान होने लगे।

तस्य प्रसन्नो भगवान् प्रादात् सारूप्यम्-आत्मनः।

श्रियं च परमां लोके बल-ऐश्वर्य-स्मृति-इन्द्रियम्।।10।41।42।।

उस प्रेमी दर्जी-भक्त पर भगवान् प्रसन्न हो गये।उसे इस लोक में धन-ऐश्वर्य-विलक्षण स्मरण तथा संयमित इन्द्रियों से समन्वित करते हुए परमलोक गमन पर अपने समान् स्वरूप प्रदान किया।

इसके बाद भगवान् सुदामा माली के घर गये। उसने भगवान् के चरणों में प्रणाम किया तथा विधिवत उनकी पूजा की। उसने भगवान् की भावभीनी स्तुति करते हुए कहा कि हम तथा हमारे पितर आज तर गये।

इति-अभिप्रेत्य राजेन्द्र सुदामा प्रीतमानसः।

शस्तैः सुगन्धैः कुसुमैः माला विरचिता ददौ।।10।41।49।।

ताभिः स्वलङ्कृतौ प्रीतौ कृष्णरामौ सहानुगौ।

प्रणताय प्रपन्नाय ददतुर्वरदौ वरान्।।10।41।50।।

सोऽपि वव्रेऽचलां भक्तिं तस्मिन्-एव-अखिलात्मनि।

तद् भक्तेषु च सौहार्द भूतेषु च दयां पराम्।।10।41।51।।

मन का भाव समझ उसने दोनों भाईयों को सुन्दर ताजा-सुगन्धित पुष्पों तथा माला से अलंकृत कर दिया। भगवान् ने प्रसन्न होकर उसे मनोवांछित वर प्रदान किया। सुदामा माली ने अखिल-लोक के नियन्ता एवं समस्त प्राणियों पर दयाकरने वाले भगवान् से उनकी अविचल भक्ति के साथ भगवद् भक्तों की सौहार्दपूर्ण संगति माँगी।

<u>त्रिवक्रा-कुब्जा पर कृपा, धनुष-भंग एवं कंस की घवराहट</u>

जव भगवान् माधव राजमार्ग पर जा रहे थे तब सुगन्धित चन्दन-लेप की थाल लिये सुन्दर मुखवाली टेढ़े-मेढ़े शरीर वाली एक नारी को देखा। भगवान् ने उससे पूछा -

का त्वं वर-ऊरु-एतत्-उ ह-अनुलेपनं कस्य-अङ्गने कथयस्व साधु नः।

देहि-आवयोः अङ्गविलेपम्-उत्तमं श्रेयः ततः ते नचिराद् भविष्यति।।10।42।2।।

सुन्दर जांघों वाली नारी तुम कौन हो और अंगराग चन्दन कहाँ लिये जा रही हो। थोड़ा हम दोनों को भी दो। इससे तुम्हारा परम कल्याण होगा। उसने अपने को त्रिवक्रा नामकी भोजराज कंस की दासी बताई।

रूप-पेशल-माधुर्य-हसित-आलाप-वीक्षितैः।

धर्षितात्मा ददौ सान्द्रम-उभयोः अनुलेपनम्।।10।42।4।।

ततः तौ-अङ्गरागेण स्ववर्ण-इतर-शोभिता।

सम्प्राप्त-पर-भागेन शुशुभाते-अनुरञ्जितौ।।10।42।5।।

भगवान् के सौन्दर्य, आकर्षण, मधुर हँसी, वाणी तथा चितवन से मोहित होकर त्रिवक्रा ने चन्दन से दोनों भाइयों को उनके शरीर के रंग के अनुसार गोरे बलराम जी को लाल एवं श्यामले भाई को पीला चन्दन से सजा दिया। भगवान् ने अंगराग के बदले में उसे अपना अनुराग दिया तथा उसके शरीर को सीधा करने का सोचा। उन्होंने अपने दोनों श्रीचरणों से उसके पैरों के अग्रभाग को दबाया तथा एक हाथ उसकी पीठ पर दूसरे हाथ को ठोढ़ी के नीचे लगाकर ऊपर खींच दिया। भगवान् मकुन्द के स्पर्श मात्र से ही वह एक सीधे अंगोवाली सुडौल सुन्दरी युवती बन गयी। त्रिवक्रा ने भगवान् के अंगवस्त्र पकड़ कर बड़े ही अनुराग से उन्हें अपने घर चलने का आग्रह की। भगवान् ने उसके यहाँ बाद में आने का वादा किया।

भगवान् के राजमार्ग पर आगे बढ़ने पर नागरिकों ने उनका सम्मान किया।भगवान् ने लोगों से धनुष-यज्ञ के स्थल की जानकारी ली। वहाँ पहुँच कर रक्षकों के मना करने पर भी उन्होंने विशाल धनुष को उठा लिया। डोरी चढ़ाई और डोरी खींच कर उसे तोड़ दिया। धनुष टूटने की घोर आवाज सुन कंस घवरा गया तथा दोनों भाईयों के मार डालने हेतु सैनिकों को भेजा। दोनों भाइयों ने टूटे हुए धनुष के दोनों टुकड़ों से ही कंस के अनुचरों का काम तमाम कर दिया। इसके बाद निडर होकर राजमार्ग पर घूमने लगे। इनके कृत्य को देखकर नागरिकों ने दोनों को मुख्य देव समझा। लक्ष्मी जी के परमप्रिय भगवान् के पराक्रम के बारे में व्रज-वनिताओं ने भगवान् को मथुरा के लिए प्रस्थान के समय कहा था कि मथुरावासियों का अब भाग्योदय हो गया।

राजमार्ग पर घूमते सूर्यास्त का समय देख भगवान् सबके साथ नन्द जी के बाग में लौट आये। कंस की योजना की जानकारी लेकर रात्रि में खीर खाकर सो गये। कंस भयभीत हो उठा। उसने रात में अनेकों अपशकुन देखे। प्रात: काल आने पर अखाड़े में पहलवानों को बुलवाया। नगाड़े बजने लगे। कंस ऊँचे आसन पर आकर विराजमान हुआ। आमन्त्रित नागरिक अपने-अपने स्थान पर बैठने लगे। अन्य आमन्त्रित गोपों के साथ नन्द जी वहाँ पधारे।भोजराज को उपहार समर्पित कर वे गोपों के साथ एक दीर्घा में जाकर बैठ गये।

कुवलयापीड हाथी, मुष्टिक-चाणूर पहलवानों तथा कंस का वध।

अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परन्तप।
मल्ल-दुन्दुभि-निर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुम् -उपेयतु:। ।10।43।1। ।

कुश्ती प्रदर्शन हेतु नगाड़े की आवाज सुन दोनों भाई अखाड़े पहुँचे। भगवान् को यहाँ परन्तप कहा है जो शत्रुओं को दण्ड देने वाले हैं। कुछ हरिकथाकार "कृतशौचौ" का अर्थ दो तरह से करते हैं। दोनों भाई प्रात: सन्ध्या-गायत्री से निवृत होकर अखाड़े को चले। विशेषार्थ में "कृतशौचौ" को अपराधी का अन्त कर पवित्र होने का भाव निहित है। क्योंकि मुख्य अपराधी कंस जो भगवान् के माता-पिता को अत्यन्त दु:ख दे रहा था उसका अन्त अभी बाकी था। जब भगवान् अखाड़े के पास आये तब प्रवेश द्वार पर कुवलयापीड हाथी ने उनका रास्ता रोका। कुवलयापीड हाथी को दस हजार हाथी का बल प्राप्त था।

बद्ध्वा परिकरं शौरि: समुह्य कुटिल-अलकान्।
उवाच हस्तिपं वाचा मेघनाद-गभीरया। ।10।43।3। ।

अवरोध देख भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने घुँघराले बालों को समेटा एवं कमर कसकर महावत को गम्भीर आवाज में बोला। शीघ्र हाथी हटा नहीं तो हाथी सहित तुम्हें यमलोक भेज दूँगा। ऐसा सुनकर महावत ने हाथी से भगवान् पर प्रहार कराया। भगवान् उससे खेलते रहे और उसकी पूँछ पकड़ कर गरुड़ जैसे साँप को घसीटते हैं वैसे ही सौ हाथ घसीट कर ले गये। इस तरह से हाथी से खेलते भगवान् ने उसका सूँड़ पकड़ उसे जमीन पर पटक दिया। उसके ऊपर चढ़कर उसका एक दाँत उखाड़ उसी से हाथी तथा महावत का वध कर दिया।

मृतकं द्विपम्-उत्सृज्य दन्तपाणिः समाविशत्।
अंस-न्यस्त-विषाणो-असृक्-मद-बिन्दुभिः अङ्कितः।
विरुढ-स्वेद-कणिका वदनाम्बुरुहो बभौ।।**10।43।15**।।

भगवान् श्रीकृष्ण ने हाथी का दाँत हाथ में लिए रंगशाला में प्रवेश किया। हाथी के रक्त तथा उसके मद के छींटे से उनका शरीर अति शोभायमान हो रहा था। उनके मुखारविन्द पर पसीने की फुहार जैसी बूँदें देखते ही बन रही थी। बलराम जी भी हाथी का एक दाँत लिये हुए अन्य गोपसखायों के साथ रंगभूमि में आये।

मल्लानाम्-अशनिः नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युः भोजपतेः विराट्-अविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः।।**10।43।17**।।

जो जिस भावना के थे भगवान् का स्वरूप उन्हें वैसा ही दिखा। पहलवानों को वज्रशरीर वाला, सामान्यजनों को नर-रत्न, नारियों को कामदेव, गोपजनों को स्वजन, दुष्ट राजाओं को दण्ड देनेवाले स्वामी, वयोवृद्ध को शिशु, कंस को मृत्यु, अज्ञानियों को समझ से परे विराट्, योगियों को परमतत्त्व तथा वृष्णियों को इष्टदेव जैसा दिखे।

तौ रेजतू रङ्गगतौ महाभुजौ विचित्र-वेष-आभरण-स्रक्-अम्बरौ।
यथा नटौ-उत्तम-वेष-धारिणौ मनः क्षिपन्तौ प्रभया निरीक्षताम्।।**10।43।19**।।

रंगशाला में आजानबाहु दोनों भाई आभूषण, माला तथा पोशाक से सजे विचित्र नट की तरह दर्शकों का मन मोह रहे थे। सब के सब की आँखें खुली की खुली रह गयीं। अतृप्त होकर उनके मुखारविन्द के सौंदर्य- अमृत का पान कर रहे थे। सब के सब बोल उठे -

एतौ भगवतः साक्षात्-हरेः नारायणस्य हि।
अवतीर्णौ-इह-अंशेन वसुदेवस्य वेश्मनि।।**10।43।23**।।
एष वै किल देवक्यां जातो नीतश्च गोकुलम्।
कालमेतं वसन् गूढो ववृधे नन्दवेश्मनि।।**10।43।24**।।

ये दोनों भाई साक्षात् श्रीहरि के अंश से वसुदेव के घर में आविर्भूत हुए हैं। देवकी के श्यामले सलोने पुत्र श्रीकृष्ण जी को वसुदेव जी ने जन्म लेते ही नन्द जी के घर पहुँचा दिया। वहीं ये पाले पोसे गये। इनके वचपन की लीलायें

बहुत ही अनोखी हैं। पूतना आदि अनेकों दैत्यों का वध किया। एक सप्ताह तक गोवर्धन धारण कर इन्द्र का मद चूर किया। अनेकों संकटों से व्रजवासियों की रक्षा की।

गोप्योऽस्य नित्य-मुदित-हसित-प्रेक्षणं मुखम्।
पश्यन्त्यो विविधान्-तापान्-तरन्ति स्म-आश्रमं मुदा। ।10।43।28। ।

सर्वदा हँसते इनके प्रसन्न मुखारविन्द के मनमोहक चितवन को निहारकर गोपियाँ सभी कष्टों से मुक्त रहती हैं। साथ में गोरे बलराम जी इनके बड़े भाई हैं जो वसुदेव-रोहिणी के पुत्र हैं। उस समय चाणूर पहलवान ने दोनों भाईयों को कुश्ती के लिए यह कहते हुए आमन्त्रित किया कि वनवासी लोग मल्ल-क्रीड़ा के विशेषज्ञ होते हैं। कुश्ती में आपकी कला-कौशल देख राजा बहुत ही प्रसन्न होंगे। भगवान् ने कहा कि भोजराज की प्रजा होने के नाते यह हमारा परम कर्त्तव्य है कि हम राजा को प्रसन्न रखें। हमारी कुश्ती समान बलवालों से होनी चाहिए। हम बालकों को बालकों के साथ भिड़ना मनोरंजक होगा। चाणूर ने कहा कि हजार हाथी के बल वाले कुवलयापीढ को मारने वाले बालक थोड़े ही हो। आओ हमारे साथ भिड़ो। इस तरह से चाणूर का भगवान् श्रीकृष्ण से भिड़ने का तथा बलराम जी का मुष्टिक से भिड़ने का तय हुआ। इस बेमेल मल्ल-क्रीड़ा को देखकर मथुरा की नारियों ने व्याकुल होकर इस कुश्ती को अनैतिक कहा।

धर्मव्यतिक्रमो हि-अस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत्।
यत्र-अधर्मः समुत्तिष्ठेत्-न स्थेयं तत्र कर्हिचित्। ।10।44।9। ।
न सभां प्रविशेत् प्राज्ञः सभ्य-दोषान्-अनुस्मरन्।
अब्रुवन् विब्रुवन्-अज्ञो नरः किल्बिषम्-अश्नुते। ।10।44।10। ।

जहाँ अधर्म हो रहा हो वहाँ कभी नहीं ठहरना चाहिए। अगर इस तरह के कार्य के बारे में जानकारी पहले ही मिल जाये तब उस स्थान पर जाना ही नहीं चाहिए। अगर वैसे स्थान में चला गया तब (1) अनीतिपूर्ण कृत्य की चर्चा करना, (2) या चुप रह जाना, (3) अथवा मैं नहीं जानता ऐसा कहने से पाप लगता है।

वल्गतः शत्रुम्-अभितः कृष्णस्य वदनाम्बुजम्।
वीक्ष्यतां श्रम-वारि-उप्तं पद्मकोशम्-इव-अम्बुभिः। ।10।44।11। ।
पुण्या बत व्रजभुवो यदयं नृ-लिङ्ग-गूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः।
गाः पालयन् सहबलः क्वणयन्-च वेणुं विक्रीडया-अञ्चति गिरित्र-रमा-अर्चित-अङ्घ्रिः। ।10।44।13। ।

कुश्ती की पैंतरेबाजी में भगवान् श्रीकृष्ण के पसीनों की बूँदों से मुखारविन्द की सुन्दरता देखने में मथुरा की नारियाँ लीन हो गयी। मुग्ध होकर वृन्दावन के सौभाग्य का स्मरण करती हुई मथुरा की नारियाँ कहती हैं कि मनुष्य के वेष में छिपे ये दोनों भाई से व्रजभूमि कितनी पवित्र हो गयी है जहाँ जंगली फूलों की रंग-विरंगी माला पहने तथा वेणुवादन करते गायों के पीछे ये घूमते हैं जिनकी पूजा शंकर तथा लक्ष्मी जी करती हैं।

गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य रूपं लावण्य-सारम्-असम-ऊर्ध्वम्-अनन्य-सिद्धम्।
दृग्भिः पिबन्ति-अनुसव-अभिनवं दुरापम्-एकान्त-धाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य। ।10।44।14। ।

भगवान् सौन्दर्य के सार हैं। इनके समान तो किसी का सौंदर्य है नहीं तब इनसे बढकर कहाँ से होगा। सभी तरह के यश, सम्पदा तथा ऐश्वर्य इनमें ही आश्रित हैं। इनका सौंदर्य हर क्षण नूतन होते रहता है। गोपियों ने अवश्य कोई बड़ी तपस्या की होगी जो निरन्तर इनके सौंदर्य-अमृत को अपनी नेत्रों में समेटकर पीती रहती हैं।

या दोहने-अवहनने मथन-उपलेप-प्रेङ्ख-इङ्खन-अर्भ-रुदित-उक्षण-मार्जन-आदौ।
गायन्ति च-एनम् अनुरक्त-धियो-अश्रुकण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रम-चित्त-याना: ।। 10।44।15।।

गोपियाँ धन्य हैं जो भगवान् श्रीकृष्ण में ही निरन्तर चित्त लगे रहने के कारण प्रेमाश्रु से गदगद कण्ठ होकर दूध दुहते, दही मथते, धान कूटते, घर लीपते, बच्चों को झूला झुलाते, रोते को चुप करते, उन्हें नहलाते तथा अन्य काम करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण का गुणगान करती हुई मनोवांछित फल पाती हैं।

प्रात: व्रजात् व्रजत आविशत: च सायं
गोभि: समं क्वणयतो-अस्य निशम्य वेणुम्।
निर्गम्य तूर्णम्-अबला: पथि भूरिपुण्या:
पश्यन्ति सस्मित-मुखं सदय-अवलोकम्।।10।44।16।।

सचमुच गोपियाँ ही परम पुण्यवती हैं जो सबेरे गाय चराने के लिए व्रज से जाते तथा शाम को व्रज में लौटते हुए भगवान् के वेणुवादन की टेर सुन उनके मधुर मुस्कान एवं कृपाभरी चितवन देखने हेतु अपने सब काम छोड़ दौड़ पड़ती हैं और निहाल हो जाती हैं।

भगवान् ने चाणूर का अन्त करने को सोचा। उनके प्रत्येक अंग के वज्रवत स्पर्श से चाणूर के अंग-प्रत्यंग चूर होकर शिथिल हो रहे थे। भगवान् ने उसे उठाकर नचाया और जमीन पर पटक दिया जिससे उसके **प्राण-पखेरु** उड़ गये। इसी तरह बलराम जी के थप्पड़ की मार से मुष्टिक रक्त-वमन करता मर गया। इन दोनों के धराशायी होने पर अन्य पहलवान भी कुश्ती में भिड़े तथा सबकी वही स्थिति हुई।जो बचे वे भाग गये।

गोपान् वयस्यान्-आकृष्य तै: संसृज्य विजह्रतु:।
वाद्यमानेषु तूर्येषु वल्गन्तौ रुत-नूपुरौ।।10।44।29।।

दोनों भाईयों ने अपने गोपसखाओं को बुलाया। उनके साथ कुश्ती का खेल करते हुए अपने नूपुरों को अखाड़े के बाजे की ध्वनि से मिलाकर नाचने लगे। दर्शकगण जय जयकार करने लगे। कंस ने रोष में आकर बाजे बन्द करा दिया। वह बड़बडाने लगा कि दोनों भाई को नगर से निकाल दो। नन्द को बन्दी बना लो। वसुदेव तथा उग्रसेन को मार दो। देवकी जी के पिता देवक के उग्रसेन छोटे भाई थे। उग्रसेन का पुत्र कंस रिश्ते में देवकी जी का भाई लगा तथा भगवान् श्रीकृष्ण का मामा लगा। इसी बीच भगवान् कंस की बात सुन उछल कर उसके मंच पर चले गये। कंस तलवार लेकर इनके साथ पैंतरेवाजी करने लगा। भगवान् ने उसे बलपूर्वक पकड़ लिया जैसे गरुड सर्प को पकड़ते हैं। कंस के बाल पकड़ भगवान् ने उसे मंच से नीचे जमीन पर पटककर ऊपर से उसपर कूद पड़े। कंस मर गया। उसे घसीटते हुए भगवान् ने सबको दिखा दिया कि कंस मारा गया।

स नित्यदा-उद्विग्न-धिया तमीश्वरं पिबन्-वदन्-वा विचरन्-स्वप्न्-श्वसन्।
दर्दर्श चक्रायुधम्-अग्रतो यस्तदेव रूपं दुरवापम्-आप।।**10।44।39**।।

कंस निरन्तर विकल मन से खाते-पीते, बात करते, घूमते, सपना तथा हर साँस में चक्रधारी भगवान् को सामने देखता था। सतत भगवान् के स्वरूप के चिन्तन से अपने आप उसे सारूप्य मुक्ति मिली।
इसके बाद भगवान् पर कंस के आठ भाइयों ने धावा बोल दिया। बलराम जी ने सबका वध कर दिया। देवताओं ने पुष्पवृष्टि कर उत्सव मनाये। दुन्दिभियाँ बजीं। अपसरायें नाचने लगी। कंस की पत्नियाँ उसके शव से लिपट कर विलाप करने लगी और बोली कि -

सर्वेषामिह भूतानाम्-एष हि प्रभव-अप्ययः ।
गोप्ता च तत्-अवध्यायी न क्वचित् सुखमेधते।।10।44।48।।

भगवान् कृष्ण ही सभी जीवों का जन्म-पालन-संहार करने वाले तथा संसार के नियन्ता हैं। इनसे वैर लेकर कोई सुख से कैसे रह सकेगा। भगवान् ने उन सबों को सान्त्वना दे कंस के दाह-संस्कार की व्यवस्था कराई।
इसके उपरान्त दोनों भाईयों ने माता-पिता को कैद-मुक्त कर उनके चरण स्पर्श किये। वसुदेव-देवकी ने दोनों भाईयों को ब्रह्माण्ड नियन्ता की तरह देखा तथा उनके सामने मात्र हाथ जोड़कर खड़े रहे। दोनों भाईयों को साक्षात् ईश्वर के रूप में देखने से दोनों पुत्रों पर वात्सल्य भाव दिखाने का भाव उनके मन में आया ही नहीं।

पितरौ-उपलब्ध-अर्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः।
मा भूत-इति निजां मायां ततान जन-मोहिनीम्।।10।45।1।।

भगवान् समझ गये कि हमारे माता-पिता हमें जगत-नियन्ता मानने लगे हैं जिसके कारण इनके वात्सल्य प्रेम से हम वञ्चित हो रहे हैं। ऐसा सोचकर भगवान् ने अपनी योगमाया फैलायी जो भक्तो के मन को मोहने वाली होती है। कुछ हरिकथाकार "जन" का अर्थ संस्कृत के 'जन्' धातु अर्थात् जन्म देनेवाले माता-पिता लगाते हैं। जनमोहिनी ने माता-पिता के मन पर मायाजाल डाली और उनदोनों में वात्सल्य भाव उमड़ आया। भगवान् ने कहा कि आपलोगों के स्नेह से हम दोनों वञ्चित रहे हैं। सन्तान पर माता-पिता का बहुत बड़ा ऋण रहता है। कोई सौ वर्ष पर्यन्त की सेवा से भी माता-पिता से उऋण नहीं हो सकता। जो समर्थ होकर भी माता-पिता की सेवा नहीं करता उसे मरने के बाद अपना मांस नोच-नोचकर खाने की सजा मिलती है। कंस की क्रूरता के भय से हम आपकी सेवा नहीं कर पाये थे। क्षमा करें। ऐसा सुनकर दोनों वसुदेव-देवकी ने दोनों भाइयों को उठाकर प्रेमाश्रु से भिंगोतो हुए अवरुद्ध कण्ठ से गोद में लिया। इसके बाद भगवान् ने अपने नाना उग्रसेन को राजा बनाया। अन्य परिवार-कुटुम्ब जो कंस के भय से मथुरा से भाग गये थे सबको भगवान् ने पुनः मथुरा में बसाया।

कृष्ण-सङ्कर्षण-भुजैः गुप्ता लब्धमनोरथाः।
गृहेषु रेमिरे सिद्धाः कृष्णराम-गत-ज्वराः।।10।45।17।।
वीक्षन्तो-अहः अहः प्रीता मुकुन्द-वदनाम्बुजम्।
नित्यं प्रमुदितं श्रीमत् सदय-स्मित-वीक्षणम्।।10।45।18।।

विधि-व्यवस्था सम्बन्धित जितने कार्य थे सब भगवान् कृष्ण तथा बलराम जी सम्भालते थे। नागरिक अपने को सुरक्षित समझ सभी चिन्ताओं से मुक्त हो गये। भगवान् मुकुन्द के मुस्कराते प्रेमपूर्ण चितवन युक्त मुखारविन्द को देखकर सब प्रतिदिन आनन्दित रहने लगे। दोनों भाई भगवान् ने नन्द जी के पास आकर उनको प्रणाम

किया। माता यशोदा एवं आपने हमलोगों का पुत्रवत लालन-पालन किया है। आप हमारे सच्चे माता-पिता हैं। भगवान् ने बहुत सारे उपहार देकर नन्द जी को व्रज लौटने के लिए निवेदन किया। भगवान् ने कहा कि हमारी अनुपस्थिति आपको असह्य होगी। परन्तु यहाँ मथुरा की व्यवस्था ठीककर हम शीघ्र व्रज लौटेंगे। नन्द जी ने जाते समय दोनों भाइयों का आलिंगन कर अपने आँसू से उन्हें नहला दिया।

10।20। भगवान् का गुरुकुल में शिक्षा

वसुदेव जी ने यदुकुल के गुरु गर्गाचार्य से दोनों भाईयों का उपनयन संस्कार कराया। उनके जन्म-नक्षत्र के दिन ब्राह्मणों को गायें दान में दीं।

अथो गुरुकुले वासम्-इच्छन्तौ-उपजग्मतुः।
काश्यं सान्दीपनिं नाम हि-अवन्तिपुर-वासिनम् ।।10।45।31।।

दोनों भाईयों ने गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा से काशी के सन्दीपन मुनि के पुत्र उज्जैन स्थित सान्दीपनि मुनि के यहाँ गये। "काश्यं" का अर्थ कुछ हरिकथाकार काशी करते हैं और कुछ अन्य इसे काश्यप गोत्र बताते हैं। यानि सान्दीपनि मुनि काश्यप गोत्र के थे और उज्जैन में रहते थे। दोनों भाईयों ने सान्दीपनि मुनि की सेवा भगवान् की तरह की। इससे प्रसन्न होकर मुनि ने सारे वेद-वेदांग-उपनिषद् आदि उन्हें प्रेमपूर्वक पढ़ाया। भगवान् ने चौसठ दिनों में चौसठों कलाओं से युक्त विद्या प्राप्त कर ली। मुनि ने दक्षिणा में प्रभास क्षेत्र में समुद्र से लुप्त अपने पुत्र को लाने की याचना की। भगवान् समुद्र के पास गये।समुद्रराज ने उनकी पूजा की।

न-एव-अहार्षम्-अहं देव दैत्यः पञ्चजनो महान्।
अन्तर्जलचरः कृष्ण शङ्ख-रूपधरो-असुरः।।10।45।40।।

मुनि-पुत्र को लुप्त करने के लिए समुद्रराज ने समुद्र में शंख के रूप में छिपे पञ्चजन दैत्य को दोषी बताया। भगवान् ने समुद्र में घुस शंखासुर की हत्या की परन्तु उसके पेट में कोई बालक नहीं मिला।

तत्-अङ्ग-प्रभवं शङ्खमादाय रथमागमत्।
ततः संयमनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम्।।10।45।42।।

उसके शरीर से उत्पन्न शंख लेकर भगवान् जल से बाहर आये और रथ से यमराज के लोक संयमनी पुरी गये। पञ्चजन असुर से ही मिले शंख को पाञ्चजन्य कहते हैं।शंख की आवाज सुन यमराज ने उनकी पूजा की।

उवाच-अवनतः कृष्णं सर्वभूत-आशय-आलयम्।
लीला-मनुष्य हे विष्णो युवयोः करवाम किम्।।10।45।44।।

यमराज ने झुककर निवेदन किया कि आप विष्णु हैं एवं मनुष्य के शरीर में लीला कर रहे हैं। आप दोनों भाई यों का मेर लिए क्या आदेश है। इससे स्पष्ट है कि भगवान् के अधीन ही यमराज आदि सब कार्यरत हैं।

गुरुपुत्रम्-इहानीतं निज-कर्म-निबन्धनम्।
आनयस्व महाराज मत्-शासन-पुरः कृतः।।10।45।45।।

मेरे गुरु सान्दीपनी मुनि के पुत्र को उसके पूर्व के किये कर्म के कारण यमलोक में लाया गया है। मेरा आदेश है कि उस बालक को मुझे शीघ्रातिशीघ्र वापस करें। भगवान् की शासन-व्यवस्था में सभी प्राणी कर्म के फल

भोगते हैं। परन्तु भगवान् की कृपा से कर्म-बन्धन छूटता भी है। परम नियन्ता भगवान् के ही आदेश के कारण यमराज की भी मर्यादा रह गयी। यमराज ने सादर मुनि-पुत्र को भगवान् को वापस कर दिया। भगवान् ने उस बालक को लाकर सान्दीपनि मुनि को समर्पित कर दिया।मुनि ने प्रसन्न होकर उन्हें मथुरा लौटने की आज्ञा दी। भगवान् रथ से अपने नगर को वापस आ गये।लौटने पर नगरवासियों ने उनका स्वागत किया।

10।21। भगवान् ने उद्धव जी को अपना दूत बनाकर वृन्दावन भेजा

भगवान् मथुरा की विधि-व्यवस्था सम्भालने में व्यस्त हो गये। कंस समर्थक कुछ-न-कुछ अड़चन करते थे। कंस का ससुर जरासन्ध सतरह बार मथुरा पर चढ़ाई कर चुका था। भगवान् के लिए मथुरा छोड़ना सम्भव नहीं था। नन्द जी को मथुरा से विदा करते समय भगवान् ने कहा था कि व्रज आऊँगा। अक्रूर जी के साथ मथुरा प्रस्थाान के समय गोपियों को आश्वासन दिया था कि लौट कर आऊँगा। माता यशोदा का वात्सल्य भगवान् के लिए अविस्मरणीय था। अन्य व्रजवासियों के भी प्रेम भगवान् को याद आ रहे थे। कोई विकल्प नही देख अपने प्रिय भक्त एवं विश्वासपात्र उद्धव जी को अपना प्रेम-दूत बनाकर व्रज में भेजा।

वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा।
शिष्यो बृहस्पतेः साक्षात्-उद्धवो बुद्धिसत्तमः।।**10।46।1**।।

शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को बताया कि वृष्णियों के कुलीन उद्धव जी भगवान् के मित्र एवं सर्वश्रेष्ठ सलाहकार थे। वे देवगुरु बृस्पति के शिष्य थे। हरिवंश पुराण में ऐसा उल्लेख है कि उद्धव जी वसुदेव जी के भाई के पुत्र थे इसलिए भगवान् के चचेरा भाई भी हुए। श्लोक **3** से **6** तक भगवान् ने वृन्दावन के लिए उद्धव जी से सन्देश भेजा। चारों श्लोक भगवान् के प्रेममय उद्गार से भरपूर हैं।

गच्छ-उद्धव व्रजं सौम्य पित्रोः नौ प्रीतिम्-आवह।
गोपीनां मत्-वियोग-आधिं मत्-सन्देशैः विमोचय।।**10।46।3**।।

भगवान् ने एक बार उद्धव जी को कहा कि व्रज में जाकर मेरे माता-पिता जी को प्रसन्न करो। मेरे वियोग से सन्तप्त गोपियों को मेरा सन्देश सुनाकर सान्त्वना दो।

ता मत्-मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्त-दैहिकाः।
मामेव दयितं प्रेष्ठम्-आत्मानं मनसा गताः।
ये त्यक्त-लोक-धर्माः च मत्-अर्थे तान् बिभर्मि-अहम् ।**10।46।4**।।

गोपियों के मन, प्राण तथा देह सबकुछ हम हीं हैं। सारे वैदिक रीति के कर्म को त्यागकर वे मुझमें समर्पित हैं। मैं ही उनकी आत्मा हूँ। अतः उनके भरण-पोषण तथा रक्षा का दायित्व मेरा है। कुछ हरिकथाकार कहते हैं कि उद्धव जी शास्त्रीय विधि-विधान के भक्ति-मार्गी थे। भगवान् ने उद्धव जी में प्रेममयी भक्ति का बीजारोपण करना चाहा जो एकादश स्कन्ध में स्पष्ट होगा। इसलिए श्लोक **4** का सन्देश उद्धव जी के लिए भी है।

मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुल-स्त्रियः।
स्मरन्त्यो-अङ्ग विमुह्यन्ति विरह-औत्कण्ठ्य-विह्वलाः।।**10।46।5**।।

प्रिय उद्धव ! गोपियों के लिए हम ही प्रियतम हैं। दूर मथुरा में मुझे होने से वे विरह से विकल हो जाती हैं।

धारयन्ति-अति-कृच्छ्रेण प्राय: प्राणान् कथञ्चन्।
प्रति-आगमन-सन्देशै: बल्लव्यो मे मदात्मिका:। ।**10**।**46**।**6**। ।

मथुरा के लिए चलते समय मेरे आश्वासन "मैं आऊँगा" को याद कर वे बहुत ही कठिनाई से देह धारण किये हुए हैं। हरिकथाकार कहते हैं कि "मे मदात्मिका" का अभिप्राय है कि गोपियाँ हीं मेरी आत्मा हैं - ऐसा भगवान् ने उद्धव जी को सन्देश देने के लिए कहा । रथ पर सवार हो उद्धव जी नन्द-गाँव में सूर्यास्त के समय पहुँचे जब चारागाह से लौट रही गायों तथा बछड़ो के खुर से धूल उड़ रही थीं। धूल के कारण उद्धव जी के रथ को कोई देख नहीं सका। वे नन्द जी के दरवाजे पर पहुँचे।

तमागतं समागम्य कृष्णस्य-अनुचरं प्रियम्।
नन्द: प्रीत: परिष्वज्य वासुदेव-धिया अर्चयत्। ।**10**।**46**।**14**। ।

नन्द जी ने उनका भगवान् श्रीकृष्ण जैसा ही आलिंगन कर उनकी पूजा तथा सम्मान किया। उन्हें खीरान्न भोजन कराया तथा कुछ विश्राम के बाद नन्द जी ने सबके कुशल क्षेम पूछे। सबसे पहले शूरसेन के पुत्र वसुदेव जी का कुशल-क्षेम पूछा। पापी कंस का अपने ही पाप से नाश होने का उन्हें स्मरण हो आया।

अपि स्मरति न: कृष्णो मातरं सुहृद: सखीन्।
गोपान् व्रजं च आत्मनाथं गावो वृन्दावनं गिरिम्। ।**10**।**46**।**18**। ।
अपि-आयास्यति गोविन्द: स्वजनान् सकृत्-ईक्षितुम्।
तर्हि द्रक्ष्याम तत्-वक्त्रं सुनसं सुस्मित-ईक्षणम्। ।**10**।**46**।**19**। ।
स्मरतां कृष्णवीर्याणि लीला-अपाङ्ग-निरीक्षितम्।
हसितं भाषितं च अङ्ग सर्वा न: शिथिला: क्रिया:। ।**10**।**46**।**21**। ।

क्या श्रीकृष्ण हमलोगों के साथ यशोदा माता, गोपसखाओं, स्नेहियों, गौवों तथा गोवर्धन को याद करते हैं? अगर वे एक बार भी हमलोगों से मिलने आ जाते तब उनके मुस्काराते मुखारविन्द, सुन्दर नाक तथा चितवन को देख कर हम निहाल हो जाते। उनकी लीला, पराक्रम, मन्द-मन्द मुस्कान के साथ चितवन, हँसना, बोलने की मधुर वाणी का स्मरण कर हम सारी दैहिक, मानसिक तथा वाचसिक क्रियाओं को भूल जाते हैं।

सरित्-शैल-वन-उद्देशान् मुकुन्द-पद-भूषितान्।
आक्रीडान्-ईक्ष्यमाणानां मनो याति तत्-आत्मताम्। ।**10**।**46**।**22**। ।

यमुना, गोवर्धन, वृन्दावन की वन-भूमि तथा खेलने के स्थान को उनके पादारविन्द के मंगल चिह्नों से युक्त देखने पर हमारा मन मुकुन्द में ही लीन हो जाता है। वचपन में पूतना तथा अन्य दैत्यों के वध, गोवर्धन धारण आदि सभी मंगलकृत्यों को कहते हुए कंस वध तक भगवान् की सभी अद्भुद लीलाओं को नन्द जी ने उद्धव जी को सुनाया। इस तरह से भगवान् के प्रेम में डूबे हुए नन्द जी पुलकित होकर मौन हो गये।

यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च।
श्रृण्वन्ती-अश्रूणि-अवास्राक्षीत् स्नेह-स्नुत-पयोधरा। ।**10**।**46**।**28**। ।

माता यशोदा नन्द जी तथा उद्धव जी की वार्ता बड़े प्रेम से सुन रही थी। सुनते-सुनते उनकी अश्रुधारा बह चली तथा स्तन से दूध टपकने लगा। उद्धव जी ने इस तरह के अनन्य प्रेम देखकर भगवान् के तात्त्विक स्वरूप का बखान प्रारम्भ किया। वे स्वयं आदिनारायण हैं। उद्धव जी की ज्ञान की बातों का कोई असर नहीं हुआ। यहाँ तो अनन्य प्रेम था भगवान् के दैनिक कृत्यों से तथा उनकी लीलाओं से। अन्त में असफल उद्धव जी को कहना पड़ा कि भगवान् अवश्य आपसे मिलने आयेंगे।

तस्मिन् भवन्तौ-अखिलात्म-हेतौ नारायणे कारण-मर्त्य-मूर्तौ।

भावं विधत्तां नितरां महात्मन् किं वा-अवशिष्टं युवयोः सुकृत्यम्।।10।46।33।।

आपके यहाँ समस्त जगत् के कारण, सबके हृदय में बसने वाले तथा सबका उद्धार करने वाले नारायण स्वयं मनुष्य रूप में अवतार लिये हैं। आप दोनों ने उनसे उत्कृष्ट कोटि की प्रेमा-भक्ति का नाता जोड़ा है। अब आपलोगों के लिए कोई भी सत्कर्म करने को शेष नहीं रहा है।

मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णम्-अन्तिके।

अन्तर्हृदि स भूतानाम्-आस्ते ज्योतिः इव-एधसि।।10।46।36।।

भगवान् सबके हृदय में बसते हैं जैसे लकड़ी में अग्नि रहती है। हे महाभाग्यवान् ! आप लोग शोक न करें, शीघ्र ही उनका दर्शन मिलेगा। इस तरह से बात करते रात बीत गयी।

गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान् वास्तून् समभ्यर्च्य दधीनि-अमन्थन्।।10।46।44।।

उद्गायतीनाम्-अरविन्दलोचनं व्रजाङ्गनानां दिवम्-अस्पृशयत् ध्वनिः।

दध्नश्च निर्मन्थन-शब्द-मिश्रितो निरस्यते येन दिशाम्-अमङ्गलम्।।10।46।46।।

गोपियाँ भोर में जागकर दीपक जला अपने गृहदेव का देहली में पूजा कर दही मथने लगी। दही मथने के साथ-साथ व्रजाङ्गनायें तन्मय होकर भगवान् के दिव्य लीला का गान कर रही थी। इनके गीत दही मथने की ध्वनि से मिलकर स्वर्ग को छूने लगे जो सभी दिशाओं के अमंगल को दूर कर रहे थे। भगवान् सूर्य के उदय होने पर व्रजवासियों ने नन्द जी के दरवाजे पर एक सुन्दर रथ लगा देखा। नारियाँ बोलने लगी कि लगता है अक्रूर पुनः आ गया है। अब क्या कंस के मरने के बाद उसकी अन्त्येष्टि कार्य के लिए हमलोगों को ले जाकर हमारे शरीर से ही पिण्ड-दान करेगा! इस प्रकार से बातचीत करती गोपियाँ एकत्रित हो रही थी कि उनलोगों ने नित्यक्रिया से निवृत होकर उद्धव जी को आते देखा।

तां वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनम्।

पीताम्बरं पुष्करमालिनं लसत्-मुखारविन्दं मणिमृष्ट-कुण्डलम्।।10।47।1।।

शुचिस्मिताः कोऽयम्-अपीच्य-दर्शनः कुतश्च कस्य-अच्युत-वेषभूषणः।

इति स्म सर्वाः परिवव्रुः उत्सुकाः तम्-उत्तमश्लोक-पदाम्बुज-आश्रयम्।।10।47।2।।

भगवान् कृष्ण के दास उद्धव जी का सुन्दर स्वरूप भगवान् से मिलता जुलता है। लम्बी भुजा, नूतन कमल जैसी आँखें, पीताम्बर, कमल की माला, तेजोमय मुखारविन्द तथा मणि-जड़ित चकमक कुण्डल से युक्त स्वरूप को देखकर गोपियाँ बात करने लगी कि मन्द-मन्द मुस्कान वाले भगवान् कृष्ण के जैसे अलंकृत परिधान वाले यह

मनमोहक सौंदर्य वाले कौन हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमल पर आश्रित उद्धव जी को गोपियों ने आकर घेर लिया। जब गोपियों को यह ज्ञात हुआ कि यह सुन्दर पुरुष रमापति भगवान् श्रीकृष्ण के सन्देशवाहक और भक्तप्रवर उद्धव जी हैं तब इनको एकान्त स्थान में ले जाकर आसन पर बैठा इनसे बातें करने लगीं। गोपियों ने पूछा कि आप तो यहाँ भगवान् के माता-पिता के क्षेम-कुशल जानने आये हैं। इनलोगों के अतिरिक्त उनका यहाँ कोई अपना है नहीं। अपने परिवार के स्नेह तो मुनि लोग भी नहीं छोड़ पाते। अन्यों के साथ सम्बन्ध स्वार्थ पर आधारित है जैसे भौंरा एक फूल से दूसरे फूल पर घूमते चलता है। वेश्या निर्धन का, विद्या प्राप्त कर शिष्य आचार्य का, दक्षिणा के बाद पुरोहित यजमान का, फल न रहने पर पक्षी वृक्ष का, भोजनार्थी दाता का, जार प्रेयसी का तथा मृगादि आग से जलते जंगल का जैसे त्याग करते हैं वैसे ही आपके स्वामी ने हमलोगों के साथ छल किया है।

गायन्त्यः प्रियकर्माणि रुदत्यश्च गतह्रियः।
तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोर-बाल्ययोः।।10।47।10।।

अनजान व्यक्ति की लाज छोड़कर गोपियाँ भगवान् की व्रज-लीला का गान करते-करते फूट-फूट कर रोने लगी। इतने में एक भौंरा एक गोपी के पास आकर मँड़राने लगा। हरिकथाकार अग्नि पुराण का उद्धरण देकर यह कहते हैं कि यह गोपी श्रीराधा हैं।

भ्रमर-गीत

उस भौंरे को अपने प्रियतम का दूत समझ श्रीराधा उलाहना देने लगीं। श्लोक **11** से **21** तक के प्रकरण को भ्रमर-गीत कहा जाता है। दूतवत पास मँड़राते एक भौंरे के साथ उनके सम्भाषण का अनोखा प्रकरण है। कुछ हरिकथाकार कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं भौंरा बनकर आये और श्रीराधा जी के पास मँड़राये। श्रीराधा जी की उलाहनायें अगाध प्रेमाभक्ति पूर्ण है। उद्धव जी की ज्ञानाश्रित भक्ति गोपियों के सामने तमस्तक हो गयी। भगवान् का उद्देश्य उद्धव जी को भी अगाध गोपी-प्रेम का दिग्दर्शन कराना है।

मधुप कितव-बन्धो मा स्पृश-अङ्घ्रिं सपत्न्याः
कुच-विलुलित-माला-कुङ्कुम-श्मश्रुभिः नः।
वहतु मधुपतिः तत्-मानिनीनां प्रसादं
यदु-सदसि विडम्ब्यं यस्य दूतः त्वम्-ईदृक्।।10।47।12।।

गोपी कहती हैं कि भौंरा तू छलिया-कपटी के मित्र हो। हमारे छलिया की वनमाला जो हमरी सौतिन है उसके फूल के पराग से अपनी मूँछों को रंगकर आये हो। हमारे चरण कभी भी मत छूना। जा भाग, यदुराज की सभा वाले के पास मथुरा चला जा। तू फूलों को छोड़ते रहते हो और हमारे प्रियतम ने एकबार अपना अधरामृत पान करा हमलोगों को छोड़ दिया। तुम दोनों समान हो। उनके चरणाश्रित लक्ष्मी जी को भी वे ठगते रहते हैं।

विजयसख-सखीनां गीयतां तत्प्रसङ्गः
क्षपित-कुच-रुजः ते कल्पयन्ति-इष्टम्-इष्टाः।।10।47।14।।
दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियः तत्-दुरापाः
कपट-रुचिर-हास-भ्रू-विजृम्भस्य याः स्युः।

चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का
अपि च कृपण-पक्षे हि-उत्तम-श्लोक-शब्द:। ।10।47।15। ।

अच्छा होगा कि अर्जुन के मित्र की कीर्ति मथुरा की नारियों को जाकर सुनाओ।उनसे ही तुम्हें पुरुष्कार मिलेगा। हमारे प्रियतम के मोहक हास तथा हृदयहारी चितवन से इस संसार, स्वर्ग तथा रसातल की कौन सी स्त्री होगी जो ठगी न जायेगी। जब सुन्दरतम लक्ष्मी जी छलिया के चरणरज की सेवा से ठगी रहती हैं तब हमारी कौन पूछे! परन्तु वे उत्तमश्लोक हैं अर्थात् अकिञ्चनों को गति प्रदान करने वाले हैं। हम पर भी उनकी दया अवश्य होगी। श्री राधा जी आगे कहती हैं कि तू भी अपने मालिक की तरह चतुर हो। हमारे चरण पर अपना सिर मत रख। सब परिवार का त्याग करने वाली गोपियों के साथ छलिया का व्यवहार कृतघ्नता है। उनसे सन्धि कैसी ? भगवान् के विभिन्न अवतारों के कृत्यों का उलाहने देते हुए श्री राधा जी कहती हैं -

मृगयु: इव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा
स्त्रियम्-अकृत विरूपां स्त्री-जित: कामायानाम्।
बलिम्-अपि बलिम्-अत्त्वा-अवेष्टयद् ध्वाङ्क्षवत्-
य: तत्-अलम्-असित-सख्यै: दुस्त्यज: तत्-कथार्थ:। ।10।47।17। ।

रामावतार में व्याध-शिकारी न होते हुए भी शिकारी की तरह कपिराज बाली का वध किया। सीता जी को जीत कर पाणिग्रहण किया और जितेन्द्रिय होते हुए कामभाव से ग्रस्त दूसरी नारी शूर्पणखा को लक्ष्मण जी से कुरूप करवा दिया। वामनावतार में सर्वसमर्पित राजा बलि का वलि खाकर भी वरुणपाश में बाँध लिया। ऐसे श्यामकिशोर की मित्रता पर कौन विश्वास करेगा? हम भी ठगी हुई हैं परन्तु करुणाकर के कथामृत के दिव्य अर्थ में विभोर रहने से हम अपने को रोक नहीं पाती।

यत्-अनुचरित-लीला-कर्णपीयूष-विप्रुट-
सकृत्-अदन-विधूत-द्वन्दधर्मा विनष्टा:।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनम्-उत्सृज्य दीना
बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्या चरन्ति। ।10।47।18। ।

श्रीराधा जी कहती हैं कि भगवान् की कथामृत का एक बून्द भी **"हृत्-कर्ण-पीयूष रसायन द्वन्दधर्मा विनष्टा:"** हृदय एवं कान के लिए ऐसा रसायन है जो घर-संसार के प्रति आसक्ति के द्वन्द को नष्ट करता है। ऐसे लोग पक्षी की तरह स्वतन्त्र घूमते हुए भगवान में लीन होकर मधुकरी वृत्ति से ही जीवन-निर्वाह करते हैं। श्रीराधा जी शिकारी के गान-धुन से मोहित हिरनी की तरह अपने को ठगी हुई बताती हैं। भगवान् के नखादि से पीड़ित कामदेव का भी शिकार होना पड़ रहा है। हे भौंरा ! अब छलिया की बात छोड़ कोई अन्य बात कर। स्वभाववश भौंरा कहीं अन्यत्र जाकर पुन: आकर श्रीराधा जी के पास मँड़राने लगा। उलाहना का त्याग कर वे कह उठती हैं कि क्या हमें अब मथुरा चलने का निमन्त्रण देने आया है ? भगवान के वक्षस्थल पर उनकी परमप्रेयसी लक्ष्मी जी बसती हैं। सदा वे नित्य युगलस्वरूप में विराजती हैं। लक्ष्मी जी के रहते हमारी कोई आवश्यकता मथुरा में है नहीं।

अपि बत मधु-पुर्याम्-आर्यपुत्रो-अधुना-आस्ते

स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धून्-च गोपान् ।
क्वचिदपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते
भुजम्-अगरु-सुगन्धं मूर्ध्नि-अधास्यत् कदा नु।।10।47।21।।

अब वे उद्धव जी से कहती हैं कि क्या मथुरा में विराजते हुए वे पितृ-गृह, गोप-मित्रों एवं हम-दासियों को भी कभी याद करते हैं? न जाने अगरु से भी ज्यादा सुगन्धित उनके हाथ कब हमारे सिर को स्पर्श करेंगे ! शुकदेव जी कहते हैं कि गोपियों का सच्चा एवं अनन्य प्रेम देखकर उद्धव जी ने उनलोगों को आश्वासन देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण का सन्देश सुनाया जो श्लोक **29** से **37** तक वर्णित है।

अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः।
वासुदेवे भगवति यासाम्-इति-अर्पितं मनः।।10।47।23।।
दान-व्रत-तपो-होम जप-स्वध्याय-संयमैः।
श्रेयोभिः विविधैः च अन्यैः कृष्णे भक्तिः हि साध्यते।।10।47।24।।

उद्धव जी ने गोपियों से कहा कि भगवान् वासुदेव को सदा के लिए मन में स्थित करके आपलोग समस्त लोक से पूज्य हो। भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति प्राप्त करने के संयम पूर्वक दान, व्रत, तपस्या, हवन, जप, शास्त्रों का अध्ययन आदि भी साधन है। परन्तु आपलोगों ने घर-परिवार से आसक्ति छोड़ अपना एक अलौकिक मार्ग प्रशस्त किया है जिसे मुनि लोग भी कठिनाई से प्राप्त कर सकते हैं।

सर्वात्मभावो-अधिकृतो भवतीनाम्-अधोक्षजे।
विरहेण महाभागा महान् मेऽनुग्रहः कृतः।।10।47।27।।

सरल चित्त से यह स्वीकार करते हुए उद्धव जी गोपियों से कहते हैं कि जो भगवान् अधोक्षज इन्द्रियों की सीमा से बाहर हैं उनसे आपलोगों ने विरह से ही सर्वात्मभाव अर्थात् सदैव मन के सभी भावों को उनके साथ ही लगा दिया है। आप सचमुच बड़भागिनी हैं और आपकी कृपा से ही भगवान् के लिए विरहपूर्ण अगाध प्रेम की अनोखी अनुभूति हमें यहाँ मिली।

श्रूयतां प्रियसन्देशो भवतीनां सुखावहः।
यम्-आदाय-आगतो भद्रा अहं भर्तू रहस्करः।।10।47।28।।

हे भद्रे ! भगवान् का अन्तरंग सेवक होने के नाते वे मुझसे अपने गोपनीय काम मुझसे कराते हैं। आपके प्रेमी का सुखदायक सन्देश अब आप लोगों को सुनाता हूँ। अध्याय **46** का श्लोक **3** से **6** तक के भगवान् की उक्ति का यह सम्पूरक है जो यहाँ अध्याय **47** के श्लोक **29** से **37** तक के सन्देश में निहित है। उद्धव जी ने गोपियों से भगवान् का सन्देश सुनने के लिए निवेदन किया।

भवतीनां वियोगे मे न हि सर्वात्मना क्वचित्।
यथा भूतानि भूतेषु खं वायु-अग्निः जलं मही।
तथाहं च मनःप्राण-भूतेन्द्रिय-गुणाश्रयः।।10।47।29।।

भगवान् कहते हैं कि हे गोपियों ! मैं आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा मिट्टी में सर्वव्याप्त हूँ। सभी प्राणियों के प्राण में सर्वदा वसता हूँ। अत: हमसे आपका वियोग कैसे सम्भव है! सर्वदा आपलोगों के साथ रहता हूँ। जब प्रेमी दूर रहता है तब प्रेमिका उसके विषय में अधिक सोचती है।

मय्यावेश्य मन: कृत्स्नं विमुक्त-अशेष-वृत्ति यत्।
अनुस्मरन्त्यो मां नित्यम्-अचिरात्-माम्-उपैष्यथ।।**10**।**47**।**36**।।
या मया क्रीडता रात्र्यां वनेऽस्मिन् व्रज आस्थिता:।
अलब्धरासा: कल्याण्यो मा-आपु: मत्-वीर्य-चिन्तया।।**10**।**47**।**37**।।

आपलोगों ने अपने आपको मुझमें ही लीन कर दिया है और सदैव स्मरण करती हो। अत: आपको शीघ्र ही मेरा दर्शन प्राप्त होगा। रास की रात्रि में कुछ गोपियाँ घर से बाहर न आ सकी थी। घर से ही मुझमें निमग्न रहकर मुझे प्राप्त कर गयीं। भगवान् का सन्देश सुनकर गोपियाँ प्रसन्न हो गयीं एवं उद्धव जी से बोलीं। भगवान् ने कंस का नाश किया। माता-पिता को सुखी किया और मथुरा में सुखपूर्वक रहते हैं। उनके सुख में ही हमलोगों का सुख है।

ता: किं निशा स्मरति यासु तदा प्रियाभि: वृन्दावने कुमुद-कुन्द-शशाङ्क-रम्ये।
रेमे क्वणत्-चरणनूपुर-रासगोष्ठ्याम्-अस्माभि: ईडित-मनोज्ञ-कथ: कदाचित्।। **10**।**47**।**43**।।

कमल तथा चमेली से सुगन्धित वृन्दावन की चाँदनी रात की रासगोष्ठी में लीला-गान परायण गोपियों के गान पर नूपुर की ध्वनि से अनुगूंजित अवसर को कभी भगवान् याद करते हैं क्या? कहा है कि सुख तो सभी इच्छाओं के त्याग से प्राप्त होता है। परन्तु हमसब उनको पाने की आशा नहीं छोड़ सकती।

क उत्सहेत सन्त्यक्तुम्-उत्तमश्लोक-संविदम्।
अनिच्छतोऽपि यस्य श्री: अङ्गात् न च्यवते क्वचित्।।**10**।**47**।**48**।।

देवधिदेव उत्तमश्लोक भगवान् से घुलमिलकर बातें करने को हम कैसे भूल सकती हैं! श्रीदेवी के लिए भगवान् अपनी इच्छा नहीं प्रदर्शित करते परन्तु वे तो उनके वक्षस्थल पर सर्वदा विराजती हैं। वृन्दावन के यमुना किनारे तथा गोवर्धन पर गौवों तथा बलराम जी के साथ वेणुवादन में रमण करने वाले भगवान् को हम कैसे भूलें!

पुन: पुन: स्मारयन्ति नन्दगोपसुतं बत।
श्रीनिकेतै:-तत्-पदकै:-विस्मर्तुं नैव शक्नुम:।।**10**।**47**।**50**।।

नन्द जी का नाम सुनने पर नन्दकुमार स्मरण हो आते हैं। व्रजभूमि पर उनके मंगलदायक चरण-चिह्नों का दर्श न करते ही श्रीनिकेतन भगवान् याद आते हैं। इनको कैसे भूल जाऊँ !

गत्या ललितया-उदार-हास-लीला-अवलोकनै:।
माध्व्या गिरा हृत-धिय: कथं तं विस्मरामहे।।**10**।**47**।**51**।।

मनोहारी गति से चलना, आकर्षक लीलामय रूप से हँसना, अनुग्रह-उदार चितवन, मधु-सिक्त सुधासम वाणी से हमारे चित्त को चुराने वाले छलिया-लीलाविहारी को कैसे भूलें!

हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथ-आर्तिनाशन।
मग्नम्-उद्धर गोविन्द गोकुलं वृजिन-अर्णवात्।।**10**।**47**।**52**।।

हे नाथ ! हे रमानाथ ! हे व्रजनाथ ! हे आर्ति-विनाशक ! हे गोविन्द ! विरह-वारिधि में डूबते व्रज का कृपया उद्धार करें। हरिकथाकार कहते हैं कि गोपियाँ मथुरा की ओर देखते हुए इस तरह से भगवान् कृष्ण को पुकार रही थीं। गोपियों को सान्त्वना देने का कुछ उपााय नहीं सूझने पर उद्धव जी भगवान् श्रीकृष्ण के सन्देश **"भवतीनां वियोगो मे न हि सर्वात्मना क्वचित्"** को बार-बार जोर से बोलने लगे।

ततस्ता: कृष्णसन्देशै: व्यपेत-विरह-ज्वरा:।
उद्धवं पूजयाञ्चक्रु: ज्ञात्वा-आत्मानम्-अधोक्षजम्।।10।47।53।।

शुकदेव जी कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण के सन्देश से गोपियों की विरह-व्यथा दूर हो गयी। नित्य-लीला भाव में निमग्न गोपियों ने भगवान् अधोक्षज के समान समझकर उद्धव जी की पूजा कीं। उद्धव जी ने भगवान् की लीला का गान करते हुए व्रजवासियों को कई महीने तक आनन्दित किया। उद्धव जी की व्रजवास की पूरी अवधि क्षणमात्र की तरह बीत गयी।

सरित्-वन-गिरि-द्रोणी: वीक्षन् कुसुमितान् द्रुमान्।
कृष्णं संस्मारयन् रेमे हरिदासो व्रजौकसाम्।।10।47।56।।
दृष्ट्वा-एवम्-आदि गोपीनां कृष्ण-आवेश-आत्म-विक्लवम्।
उद्धव: परमप्रीत: ता नमस्यन्-इदं जगौ।।10।47।57।।

यमुना नदी का रास-स्थल, गाय चराने के वन-क्षेत्र, गोवर्धन तथा वेणु-वादन की घाटियों एवं फूल-वृक्षादि के उद्यानों में भगवान् के लीला-स्थलों का नित्य दर्शन तथा उनकी लीला का गान करते हरिदास उद्धव जी ने व्रजवासियों को आनन्दित किया। भागवत **10।21।18**। में हरिदासों में श्रेष्ठ गोवर्धन पर्वत को कहा गया है। यहाँ उद्धव जी के लिए हरिदास कहा है। भक्तों के लिए हरिदास का प्रयोग भागवत में अन्यत्र शायद ही कहीं मिलता है। मात्र भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेम से ही आवेशित गोपियों की विह्वलता को देखकर उद्धव जी ने इनलोगों को नमस्कार कर इनकी महिमा का गान किया।

एता: परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावा:।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्म-जन्मभि: अनन्त-कथा-रसस्य।।10।47।58।।

गोपियों का मानव शरीर पाना सफल हो गया। संसार के प्रपंच से भयभीत मुनिगण भगवद् भक्ति के जिस भाव को प्राप्त करने की कामना करते रहते हैं वह गोपियों को मिल चुका है। जो जीव भगवान् अनन्त के कथामृत का आनन्द ले चुके हैं उनको ब्रह्मभावापन्न यज्ञादि कृत्यों से क्या प्रयोजन ? कुछ हरिकथाकार **"ब्रह्मजन्मभि:"** को तीन बार ब्राह्मण बनने के संस्कार को भी बताते हैं **- 1**।जन्म, **2**।यज्ञोपवीत, **3**।यज्ञ दीक्षा।

क्व-इमा: स्त्रियो वनचरी: व्यभिचार-दुष्टा:
कृष्णे क्व च-एष परमात्मनि रूढभाव:।
ननु-ईश्वरो-अनुभजतो-अविदुषो-अपि

साक्षात्-श्रेयः तनोति-अगद-राज इवोपयुक्तः।।10।47।59।।

वन में विचरनेवाली नारियाँ अनुशासनहीन कठोर स्वभाववाली होती हैं। परन्तु वृन्दावन-व्रज की नारियाँ अपने प्रगाढ़ प्रेम से भगवान् में ही निमग्न रहती हैं। भक्ति-भाव से ओत-प्रोत अज्ञानियों को भी भगवान् भाव से वैसे ही अपना लेते हैं जैसे अनजाने में सेवन की गयी अच्छी औषधि भी हितकारी ही होती है।

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः

स्वः योषितां नलिन-गन्ध-रुचां कुतोऽन्याः।

रासोत्सवेऽस्य भुजदण्ड-गृहीत-कण्ठ-

लब्ध-आशिषां य उदगाद् व्रज-वल्लवीनाम्।।10।47।60।।

रास में भगवान् ने अनेकानेक स्वरूप धारणकर प्रत्येक गोपी के गले को अपनी भुजाओं से बाँधने का दिव्य अनुग्रह दिखाया। इस तरह का लाभ जब निरन्तर सेवारत लक्ष्मी जी को भी नहीं मिलता तब स्वर्गलोक के देवांगनाओं को कहाँ यह अवसर मिलने वाला है !

आसाम्-अहो चरणरेणु-जुषाम्-अहं स्यां

वृन्दावने किमपि गुल्म-लता-औषधीनाम्।

या दुष्त्यजं स्वजनम्-आर्यपथं च हित्वा

भेजुः मुकुन्द-पदवीं श्रुतिभिः विमृग्याम्।।10।47।61।।

यह प्रसंग गोपियों के पादरेणु के प्रति उद्धव जी का आत्मसमर्पण प्रदर्शित करता है। वे गोपियों को अपना गुरु मानने लगे और उनके चरण-रज के आकांक्षी होकर व्रज में ही लता-झाड़ी-औषधि बनकर रहने को उत्कण्ठित हो गये जिससे गोपियों के चरण-रज से वे निरन्तर अभिषिक्त होते रहें। पारिवारिक जीवन के सभी मर्यादाओं को लाँघ कर गोपियों ने भगवान् मुकुन्द के श्रीचरण को प्राप्त किया जिसे श्रुतियाँ निरन्तर खोजती ही रह जाती हैं।

वन्दे नन्दव्रज-स्त्रीणां पादरेणुम्-अभीक्ष्णशः।

यासां हरिकथा-उद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्।।10।47।63।।

हरिकथा के गान से तीनों लोकों को पावन बना देनेवाली व्रज-गोपियों की चरण धूल का निरन्तर अभिवन्दन करता हूँ । बहुत दिनों तक व्रज में रहने के बाद माता यशोदा एवं नन्द जी की आज्ञा प्राप्त कर उद्धव जी रथ पर सवार हुए। जाते समय नन्द जी ने विविध उपहार दिया तथा पुलकित हो प्रेमाश्रु बहाते बोले।

मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्ण पादाम्बुज-आश्रयाः।

वाचो-अभिधायिनीः नाम्नां कायः तत्-प्रह्वण-आदिषु।।10।47।66।।

हमारा मन भगवान् के चरणकमल में, वाणी उनके यशगान में तथा शरीर उनको साष्टांग प्रणाम करने में लगा रहे। कर्मानुसार आने वाले सभी जन्मों में भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में प्रेम बना रहे। इस तरह से उद्धव जी व्रज से विदा हो मथुरा आ गये। भगवान् के श्रीचरणों में प्रणिपात करके व्रजवासियों तथा व्रजांगनायें की अगाध भक्ति का बखान किया तथा नन्द जी से प्राप्त सबके उपहार यथोचित समर्पित कर दिये।

10।22। भगवान् श्रीकृष्ण का उद्धव जी के साथ त्रिवक्रा-कुब्जा के घर जाना

भगवान् जब मथुरा आये थे तब तीन अंगो से टेढ़ी-मेढ़ी कुब्जा जो कंस के राजमहल की सैरन्ध्री-दासी थी राजमहल के लिए अंगराग चन्दन लिये जा रही थी। भगवान् ने जब उससे अंगराग मांगा तब उसने प्रेम से भगवान् तथा बलराम जी के शरीर को अंगराग से अलंकृत कर दिया। भगवान् ने प्रसन्न होकर उसके टेढ़े अंगो को सीधा कर सर्वांगसुन्दरी बना दिया। कुब्जा के बहुत आग्रह करने पर भी भगवान् उस समय उसके घर नहीं गये परन्तु उसके घर आने का आश्वासन दिया। उद्धव जी का व्रज से लौटने पर भगवान् एक दिन उनको साथ ले कुब्जा के घर गये। सहसा पधारे भगवान् का उसने अपने सखियों के साथ बड़े हर्ष से स्वागत किया।

तथा-उद्धवः साधु तया-अभिपूजितो न्यषीदत्-उर्व्याम्-अभिमृश्य च-आसनम्।
कृष्णोऽपि तूर्णं शयनं महाधनं विवेश लोक-आचरितानि-अनुव्रतः। ।10।48।4। ।

महात्मा उद्धव जी को बैठने का पृथक आसन दी परन्तु वे भगवान् के सामने मर्यादावश आसन पर न बैठे। आसन को मात्र स्पर्श किया और भूमि पर ही विराज गये। भगवान् ने लोकाचार का अनुपालन करते हुए एक सुसज्जित शय्या पर आसन ग्रहण किया। कुब्जा नहा-धोकर सुगंधित श्रृंगार कर भगवान् के पास आयी। भगवान् ने उसे व्रज की गोपियों जैसा सम्मान दिया। भगवान् ने हाथ पकड़ उसे शय्या पर साथ खींच लिया।

स-अनङ्ग-तप्त कुचयोः उरुसः तथा-अक्ष्णोः जिघ्रन्ती-अनन्त-चरणेन रुजो मृजन्ती।
दोर्भ्यां स्तन-अन्तर-गतं परिरभ्य कान्तम्-आनन्दमूर्तिम्-अजहात्-अति-दीर्घ-तापम्। ।**10।48।7**। ।

कुब्जा द्वारा भगवान् के चरणारविन्द की सुगन्ध को सूँघने से ही उसके उरोज, छाती तथा आँखों में तपती कामभावना शान्त हो गयी। उसने अपने दोनों बाहुओं से भगवान् को स्तनों पर खींच उनका आलिंगन किया। चिर अभिलषित आनन्दमूर्ति भगवान् का आलिंगन कर उसने अपने काम ताप-सन्ताप को दूर किया।

स-एवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्रापम्-ईश्वरम्।
अङ्गराग-अर्पणेन-अहो दुर्भगा-इदम्-याचत। ।10।48।8। ।
आह-उष्यताम्-इह प्रेष्ठ दिनानि कतिचित्-मया।
रमस्व न-उत्सहे त्यक्तुं सङ्गं ते-अम्बुरुहेक्षण। ।10।48।9। ।
दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वर-ईश्वरम्।
यो वृणीते मनो-ग्राह्यम्-असत्त्वात् कुमनीषी-असौ। ।10।48।11। ।

कैवल्यनाथ को अपने पास प्राप्त कर भी अंगराग अर्पित करने वाली अभागिनी कुब्जा ने कमलनयन भगवान् को कुछ दिन और ठहर कर उसके साथ सहवास करने की याचना की। सभी देवों के देव भगवान् विष्णु को प्राप्त करना कठिन है परन्तु उनको प्राप्त करने पर भी दुर्बुद्धे ने क्षुद्र- इन्द्रियतृप्ति की ही कामना की। कुब्जा को अपने सहवास से प्रसन्न कर भगवान् वहाँ से उद्धव जी के साथ प्रस्थान कर गये। कुछ हरिकथाकार कहते हैं कि सैरन्ध्री कुब्जा को इस सहवास से उपश्लोक नामक पुत्र प्राप्त हुआ। उपश्लोक ने नारद जी से सात्वत-तन्त्र का गूढ़ ज्ञान प्राप्त किया। सात्वत-तन्त्र को पाञ्चरात्र भी कहते हैं जिसे शाण्डिल्य मुनि ने भगवान् विष्णु से पाँच रातों में पढ़ा था। पाञ्चरात्र के पाँच मुख्य अंग हैं - **1**।अभिगमन अर्थात् भगवान् की ओर गमन। **2**।उपासन अर्थात् पास बैठना। **3**।इज्या-उपहार पुष्प, नैवेद्य आदि समर्पण। **4**।स्वाध्याय - मन्त्र, स्तोत्र आदि का पाठ।

5।योग-ध्यान। यदुवंश के एक राजा का नाम सात्वत थो जिसके कारण यादव लोग भी सात्वत कहे जाते हैं एवं सात्वत भगवान् विष्णु, श्रीकृष्ण तथा बलराम जी का एक पर्यायवाची हो गया है। इसी कारण श्रीमद्भागवत को सात्वत-संहिता भी कहते हैं।

10।23। ।भगवान् की आज्ञा से अक्रूर जी का हस्तिनापुर जाना।

भगवान् एक दिन बलराम जी तथा उद्धव जी के साथ अक्रूर जी के घर गये। उन्होंने बलराम जी तथा भगवान् की विधिवत चरण पखार कर पूजा की और उनकी स्तुति करने लगे।

क: पण्डित: त्वत्-अपरं शरणं समीयाद् भक्त-प्रियात्-ऋत-गिर: सुहृद: कृतज्ञात्।
सर्वान् ददाति सुहृदो भजतो-अभिकामान्-आत्मानम्-अपि-उपचय-अपचयौ न यस्य। ।10।48।26। ।

अक्रूर जी कहते हैं कि संसार में कोई ऐसा विवेकशील नहीं है जो आपके श्रीचरणों को छोड़कर अन्यत्र जाये। आप सत्यवादी, हितकारी, कृतज्ञ एवं भक्तों को प्रिय हैं। आपको भक्तगण प्रिय हैं और आप उनके मनोरथों को पूरा करते हैं। अपने भक्तों को अपनी आत्मा दे डालने प्रभु ! सबकुछ दे देने पर भी आपकी भक्त-वत्सलता में न कोई वृद्धि होती है और न ह्रास ही होता है। भगवान् ने अक्रूर जी को अपना चाचा, गुरु तथा मित्र कहकर उनकी प्रशंसा की। भगवान् ने उन्हें पूज्य महात्मा तथा भक्त कहा।

न हि-अप्-मयानि तीर्थानि न देवा मृत्-शिला-मया:।
ते पुनन्ति-उरु-कालेन दर्शनादेव साधव:। ।10।48।31। ।

भगवान् ने कहा कि तीर्थ के जल तथा वहाँ की मिट्टी या पत्थर की अर्चामूर्ति बहुत समय की सेवा से जो लाभ देते हैं वह आप जैसे साधु के मात्र दर्शन से ही प्राप्त हो जाता है।भगवान् ने उन्हें हस्तिनापुर जाकर पाण्डवों का कुशल क्षेम पता लगाने को कहा। मुझे ज्ञात हुआ है कि अम्बिकापुत्र अन्धे राजा धृतराष्ट्र अपने बेटों के मोह में पाण्डवों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं कर रहे हैं। अक्रूर जी हस्तिनापुर पहुँच कर धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, पाण्डवों के साथ कुन्ती देवी, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन आदि से मिले।अन्धे विवेकहीन राजा धृतराष्ट्र की मनोभावना को समझने के लिए वे कई महीने हस्तिनापुर में ही रुके। पाण्डवों के पराक्रम, बल, विनयशीलता तथा प्रजाजन का उनके प्रति अनुराग से धृतराष्ट्र के पुत्रगण उनसे ईर्ष्या करते थे। विदुर जी तथा कुन्ती देवी ने पाण्डवों को विषपान कराने की घटना सुनाई। कुन्ती देवी ने भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण किया तथा उनका कुशल-क्षेम पूछा। पाण्डवों के बारे में चिन्तित होकर वह बोलीं।

भ्रात्रेयो भगवान् कृष्ण: शरण्यो भक्तवत्सल:।
पैतृष्वसेयान् स्मरति राम: च-अम्बुरुहेक्षण:। ।10।49।9। ।

भक्तों के शरण-स्थल भगवान् श्रीकृष्ण तथा कमलनयन बलराम अभागिन बुआ को स्मरण अवश्य करते होंगे।

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द शिशुभि: च-अवसीदतीम्। ।10।49।11। ।

आर्त भाव से अपने पुत्रों के दु:ख निवारण हेतु कुन्ती देवी ने भगवान् की शरणागति की स्तुति की।
एक बार धृतराष्ट्र अपने समर्थको के साथ बैठे थे तब अक्रूर जी ने उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण का सन्देश सुनाया।

भो भो वैचित्रवीर्य त्वं कुरूणां कीर्तिवर्धन।
भ्रातरि-उपरते पाण्डौ-अधुना-आसनम्-आस्थित:। ।10।49।17। ।

हे विचित्रवीर्य के पुत्र ! अपने भाई पाण्डु के निधनोपरांत राजा बनकर आप कुरुवंश का मान बढ़ायेंगे। सबों के साथ समभाव नहीं करने पर राजा को नरकगामी होना पड़ता है। जब हम अपनी देह के साथ सदा जीवित नहीं रहते अर्थात् यह देह भी अपनी नहीं है। ऐसी स्थिति में पत्नी तथा पुत्रादि कहाँ तक अपने होंगे।

एकः प्रसूयते जन्तुः एक एव प्रलीयते।

एको-अनुभुङ्क्ते सुकृतम्-एक एव च दुष्कृतम्।।10।49।21।।

जीव अकेला जन्मता तथा अकेला मरता है। उसके सुकर्म तथा दुष्कर्म उसके साथ रहते हैं और अकेला ही वह उसका फल भोगता है। यह संसार माया-मनोरथ है। शान्त एवं समभाव पूर्ण व्यवहार आप से अपेक्षित है। धृतराष्ट्र ने भगवान् का सन्देश सुनकर कहा -

तथापि सूनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले।

पुत्रानुराग-विषमे विद्युत् सौदामनी यथा।। 10।49।27।।

हे सौम्य अक्रूर ! जैसे बिजली बादल में स्थिर नहीं रहती वैसे ही आपकी बात हमारे अशांत हृदय में टिक नहीं पाती। यदुवंश में भगवान् श्रीकृष्ण ने पृथ्वी का भार मिटाने के लिए ही यदुवंश में अवतार लिया है। वस्तुस्थिति से अवगत होकर अक्रूर मथुरा लौट आये तथा भगवान् को वहाँ की सब जानकारी दे दी।

। दशम स्कन्ध का पूर्वार्ध पूरा हुआ। इसमें कुल 49 अध्याय हैं।

। उत्तरार्ध में भगवान् की राजस-लीला का शुभारम्भ ।

10।24। जरासन्ध का मथुरा पर आक्रमण तथा भगवान् द्वारा द्वारकापुरी की स्थापना ।

मगध देश का राजा जरासन्ध कंस का ससुर था। उसकी दो बेटियों से कंस का विवाह हुआ था। कंस के वध के बाद आग-बबूला होकर तेईस अक्षौहिणी सेना के साथ उसने मथुरा पर चढ़ाई कर दी। भगवान् ने सोचा कि जरासन्ध का वध अभी नहीं करना है। इसकी सेना का ही नाश करना है। इस तरह से वह पुनः पुनः सेना बटोरकर आयेगा। इसकी सेना के नाश से ही आसुरी-प्रकृति के लोगों का अन्त होगा।

चिन्तयामास भगवान् हरिः कारणमानुषः।

तत्-देश-काल-अनुगुणं स्व-अवतार-प्रयोजनम्।।10।50।6।।

हमारे अवतार का उद्देश्य भी यही है। भगवान् ऐसा सोच ही रहे थे कि सूर्य के समान दो दिव्य रथ सारथी तथा सभी आयुधों से सुसज्जित धरती पर उतरा। बलराम जी तथा भगवान् दोनों भाई रथ पर सवार होकर मथुरा से बाहर आये। साथ यदुवंशी सेना की एक छोटी टुकड़ी भी थी।

सुपर्ण-तालध्वज-चिह्नितौ रथौ-अलक्षयन्त्यो हरि-रामयोः मृधे। 10।50।22।।

भगवान् के रथ पर गरुड-ध्वज तथा बलराम जी के रथ पर ताल-ध्वज विराज मान था। युद्ध क्षेत्र में अपार सेना से मुठभेड़ लेते हुए दोनों भाईयों ने सबका नाश कर दिया। बलराम जी ने जरासन्ध को रथ तथा आयुध विहीन कर उसे जीवित पकड़ लिया। वे उसका वध करना चाह रहे थे परन्तु भगवान् ने उसे छुड़ा दिया जिससे कि वह और असुरों की सेना लेकर आये। जरासन्ध अपमानित होकर लौट गया। युद्ध क्षेत्र से मूल्यवान सामग्रियों को संग्रह कर भगवान् ने राजा उग्रसेन को उपहार दिया। जरासन्ध ने कर्म का फल समझ तपस्या करने गया।

उसने मथुरा पर सत्रह बार चढ़ाई की। सेना का नाश होने पर वह लौट जाता था। अठारहवीं बार जब उसने मथुरा को घेरा तब नारद जी के कहने पर कालयवन ने भी विशाल सेना लेकर मथुरा को घेर लिया।भगवान् ने यदुवंशियों के सुरक्षार्थ समुद्र में एक नगर की स्थापना का सोचा जहाँ अन्य मनुष्यों की पहुँच न हो सके।

इति सम्मन्त्र्य भगवान् दुर्ग द्वादशयोजनम्।
अन्त:समुद्रे नगरं कृत्स्न-अद्भुतम्-अचीकरत्।।10।50।50।।

बलराम जी से मंत्रणा करके भगवान् ने समुद्र में बारह योजन परिधि वाला दुर्गम तथा दिव्य नगर का विश्वकर्मा से निर्माण कराया। इसमें गगनचुम्बी अटारियाँ थी। अनेको उद्यानों से भरा पूरा था। इन्द्र ने स्वर्ग से सुधर्मा सभागार तथा कल्पवृक्ष का उपहार दिया। वरुण ने वायुगतिगामी श्याम तथा श्वेत रंग के घोड़े दिये। कुवेर ने आठों निधियाँ दी। अन्य लोकपालों ने अपने-अपने ऐश्वर्य भगवान् की सेवा में लगा दिये।

तत्र योगप्रभावेण नीत्वा सर्वजनं हरि:।
प्रजापालेन रामेण कृष्ण: समनुमन्त्रित:।
निर्जगाम पुरद्वारात् पद्ममाली निरायुध:।।10।50।58।।

भगवान् श्रीकृष्ण ने बलराम जी से परामर्श कर अपनी अचिन्त्य योगमाया का उपयोग किया और सभी मथुरा की प्रजा को द्वारिकापुरी में ले जाकर बसा दिया। मथुरा की बची हुई सेना आदि की रक्षा के लिए बलराम जी वहीं रुक गये। कमल की माला पहने बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के भगवान् स्वयं पैदल ही मथुरा से बाहर निकल गये।

10।25।। मलेच्छराज कालयवन का नाश एवं मुचुकुन्द का उद्धार

तं विलोक्य विनिष्क्रान्तम्-उज्जिहानम्-इव-उडुपम्।
दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेय-वाससम्।।10।51।1।।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्-कौस्तुभ-आमुक्त-कन्धरम्।
पृथु-दीर्घ-चतुर्बाहुं नवकञ्ज-अरुणेक्षणम्।।10।51।2।।
नित्य-प्रमुदितम् श्रीमत्-सुकपोलं शुचिस्मितम्।
मुखारविन्दं बिभ्राणं स्फुरन्मकरकुण्डलम्।।10।51।3।।
वासुदेवो हि-अयम्-इति पुमान्-श्रीवत्स-लाञ्छन:।
चतुर्भुजो-अरविन्दाक्षो वनमाली-अतिसुन्दर:।।10।51।4।।

कालयवन ने जब मथुरा से बाहर आते भगवान् को देखा तब उसे लगा कि पूर्वदिशा में दर्शनीय चन्द्रोदय हुआ है। सुन्दर श्यामवदन पर पीताम्बर, वक्ष:स्थल पर श्रीवत्स, गले में तेजोमय कौस्तुभ मणि, पुष्ट लम्बी भुजायें, नूतन कमल जैसी रतनारी आँखें, सर्वदा प्रसन्न मुखारविन्द पर मुस्कान, आकर्षक गाल, कानो से लटकते चकमक मकराकृत कुण्डल से भगवान् अलंकृत थे। चर्तुभुजी कमलनयन को देखकर यवनराज समझ गया कि नारद जी ने जैसा बताया था वैसा ही यह पुरुष वनमाला से अलंकृत वासुदेव ही हैं। इनके हाथों में कोई आयुध नहीं देख यवनराज ने भी निरायुध ही इनसे युद्ध करने का संकल्प किया और पकडने के लिए इनका पीछा करने लगा। जिसे बड़े-बड़े योगी नहीं पकड़ पाते उनको पकड़ने की चेष्टा करने लगा। भगवान् के पीछे-पीछे वह दूर तक

आया परन्तु उन्हें पकड़ नहीं सका। भगवान् एक पर्वत की गुफा में घुस गये। कालयवन ने गुफा में एक व्यक्ति को सोया देखा। कालयवन ने उसे भगवान् श्रीकृष्ण का कपट समझ उसपर अपने पैरों से प्रहार किया। सोये व्यक्ति ने आँखें खोली और क्रुद्ध होकर कालयवन को देखा। क्षण भर में कालयवन जल कर राख हो गया। राजा परीक्षित की जिज्ञासा पर शुकदेव जी ने बताया कि इक्ष्वाकु कुल के मान्धाता का पुत्र मुचुकुन्द देवासुर संग्राम से अवकाश मिलने पर विश्राम हेतु सोया हुआ था। देवों के वरदान से सोये हुए में उसे जगाने के कारण कालयवन जल गया। शुकदेव जी ने आगे कहा कि कालयवन के जलते ही सात्वत-प्रमुख भगवान् श्रीकृष्ण ने मुचुकुन्द को दर्शन दिया। मुचुकुन्द भगवान् के सौंदर्यपूर्ण श्रीविग्रह को निहारने लगे।

तमालोक्य घनश्यामं पीतकौशेयवाससम्।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजात्कौस्तुभेन विराजितम्।।10।51।24।।
चतुर्भुजं रोचमानं वैजयन्त्या च मालया।
चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकर-कुण्डलम्।।10।51।25।।
प्रेक्षणीयं नृलोकस्य सानुराग-स्मित-ईक्षणम्।
अपीच्य-वयसं मत्त-मृगेन्द्र-उदार-विक्रमम्।।10।51।26।।

वर्षाकालीन मेघवर्ण वाले शरीर पर कान्तिमान पीताम्बर, वक्ष:स्थल पर श्रीवत्स, गले में तेजोमय कौस्तुभ मणि, चतुर्भुजी स्वरूप पर मनमोहक वैजयन्ती माला, मन्द मुस्कान से युक्त सुन्दर-शान्त मुखारविन्द, कानों में आभापूर्ण मकराकृत कुण्डल, प्रेमभरी चितवन, मनोहारी किशोरावस्था वाले भगवान् को सिंह की चाल में देखकर मुचुकुन्द मुग्ध हो गये। उन्होंने भगवान् से पूछा -

को भवानिह सम्प्राप्तो विपिने गिरिगह्वरे।
पदभ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरसि-उरु-कण्टके।।10।51।28।।
किं स्वित्-तेजस्वीनां तेजो भगवान् वा विभावसु:।
सूर्य: सोमो महेन्द्रो वा लोकपालो-अपरो-अपि वा।।10।51।29।।
मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुर्षभम्।
यद् बाधसे गुहाध्वान्तं प्रदीप: प्रभया यथा।।10।51।30।।

आप कमल के समान सुकुमार श्रीचरणों वाले इस कंकर-काँटे वाले जंगली क्षेत्र में कैसे विचर रहे हैं। समस्त तेजस्वियों के तेज! शायद आप सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, लोकपाल या अग्नि हैं। जैसे दीपक से अन्धकार दूर हो जाता है वैसे ही आपके श्रीअंगो की तेज से यह गुफा आलोकित है। आप अवश्य ही साक्षात् नारायण प्रतीत होते हैं। अगर आपको उचित लगे तो कृपा कर मुझे बतायें कि आप कौन हैं। मैं तो इक्ष्वाकु कुल का मुचुकुन्द हूँ। देवासुर संग्राम से थककर मैं यहाँ सो रहा था। ऐसा सुन मुचुकुन्द से भगवान् बोले -

जन्म-कर्म-अभिधानानि सन्ति मे-अङ्ग सहस्रश:।
न शक्यन्ते-अनुसंख्यातुम्-अनन्तत्वात्-मया-अपि हि।।10।51।37।।

मेरे अनन्त जन्म, कर्म तथा नाम हैं। मैं भी इनकी संख्या नहीं बता सकता। वर्तमान में ब्रह्मा के निवेदन पर मैं धर्म की रक्षा हेतु यदुवंश में वासुदेव नाम से पधारा हूँ। कंस के बध के पश्चात् इस दुष्ट का मैंने ही तुमसे अन्त

कराया। पूर्व में तुम्हारी अनेक प्रार्थना के कारण आज स्नेह वश मैंने तुम्हें दर्शन दिया है। चाहो तो कोई वर माँग लो। मुचुकुन्द ने भगवान् को प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगे।

लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं कथञ्चित्-अव्यङ्गम्-अयत्नतो-अनघ।

पादारविन्दं न भजति-असत्-मति: गृहान्धकूपे पतितो यथा पशु:।।10।51।47।।

मानव जन्म दुर्लभ होने पर भी यह आपकी अहैतुकी कृपा से मिलता है। आपके सुगम श्रीचरणों का भजन छोड़ विषय सुख में लगा प्राणी घास के चक्कर में सूखे कुएँ में गिरे हुए पशु के समान रहता है। हमने राजमद में सारा समय व्यर्थ गँवा दिया। राज सुख से पूर्ण यह शरीर काल के द्वारा ग्रस्त होकर एक दिन कीड़ा का भोजन तथा मिट्टी में बदल जाता है। नारी के पीछे पालतु पशु की तरह घूमता फिरता है।

भव-अपवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्हि-अच्युत सत्-समागम:।

सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मति:।।10।51।54।।

जन्म-मृत्यु के चक्कर में जीव संसार में घूमता रहता है। हे अच्युत ! आपकी कृपा से जब उसे सत्संगति मिलती है और वह आपके भक्तों की संगति में रहने लगता है तब वह आपका अनुरागी हो जाता है।

न कामये-अन्यं तव पाद-सेवनात् अकिञ्चन-प्रार्थ्य-तमाद् वरं विभो।

आराध्य क: त्वां हि-अपवर्गदं हरे वृणीत आर्यो वरम्-आत्म-बन्धनम्।।10।51।56।।

मुझे आपके पादारविन्द की सेवा के अतिरिक्त किसी वरदान की कामना नहीं है। हे मुक्तिदाता! आपकी भक्ति करके तथा आपके श्रीचरणों की सेवा के उपरान्त संसार के बन्धन में क्यों बन्धना चाहेगा।

चिरम्-इह वृजिन-आर्त: तप्यमानो-अनुतापै: अवितृष-षट्-अमित्रो-अलब्ध-शान्ति: कथञ्चित्।

शरणद समुपेत: त्वत्-पदाब्जं परात्मन्-न-भयम्-ऋतम्-अशोकं पाहि मा-आपन्नमीश।। 10।51।58।।

हमारे छ: शत्रु काम-क्रोध-लोभ-मद-मोह-मत्सर न तो शान्त होते हैं और न इनकी भोग की लालसा घटती है। न जाने कब से संसार के विविध तापों से सन्तप्त हूँ। हे शरणदाता ! अब आपके चरणकमल में आकर गिरा हूँ। आप ही हमारे एक मात्र रक्षक हैं। मुचुकुन्द की प्रार्थना सुन भगवान् ने उन्हें अचल भक्ति का वर दिया।

अस्तु-एव नित्यदा तुभ्यं भक्ति: मयि-अनपायिनी।।10।51।62।।

और बताया कि अगले जन्म में श्रेष्ठ ब्राह्मण बनकर मुझको प्राप्त कर पाओगे। मुचुकुन्द गुफा छोड़कर बाहर आये और देखा कि कलियुग के प्रभाव से सभी वस्तुएँ छोटी हो गयी हैं।

समाधाय मन: कृष्णे प्राविशद् गन्धमादनम्।।10।52।3।।

बदरी-आश्रमम्-आसाद्य नर-नारायण-आलयम्।

सर्वद्वन्दसह: शान्त: तपसा-आराधयत्-हरिम्।।10।52।4।।

मन को भगवान् श्रीकृष्ण में लीन करके मुचुकुन्द गन्धमादन पर्वत पर आ गये जहाँ बदरिकाश्रम में नर-नारायण भगवान् का नित्य धाम है। सभी तरह के वर्षा-गर्मी कौ सहते हुए भगवान् की आराधना करने लगे।

10।26। रणछोड़ जी भगवान् श्रीकृष्ण का मथुरा से द्वारका पलायन।

कालयवन के नाश तथा मुचुकुन्द के उद्धार के बाद भगवान् जब मथुरा लौट कर आये तब कालयवन की सेना का नाश कर रणक्षेत्र से सभी बहुमूल्य धन बटोरकर बलराम जी के साथ द्वारका के लिए प्रस्थान कर गये।

जरासन्ध को जब ज्ञात हुआ तब वह भगवान् का पीछा करने लगा। दोनों भाई साथ की सभी वस्तुओं को छोड़ भागते हुए प्रवर्षण पर्वत पर चढ़ गये जहाँ इन्द्र सर्वदा वर्षा करते रहते हैं। बहुत खोजने पर भी जब दोनों भाई को जरासन्ध नहीं देख सका तब पर्वत में उसने आग लगा दी। जरासन्ध की नजर से बचकर दोनों भाई पर्व त से कूदकर भाग गये। जरासन्ध भी दोनों को जलकर मर जाने की आशा से लौट गया।

10।27।।भगवान् श्रीकृष्ण का पहला विवाह - रुक्मिणी विवाह ।

ब्रह्मा जी की प्रेरणा से अनार्त देश के राजा रैवत-पुत्री रेवती से बलराम जी का विवाह हुआ। यह कथा स्कन्ध **9** के अध्याय **3** के श्लोक **27** से **36** तक द्रष्टव्य है। विदर्भ के राजा भीष्मक का बड़ा पुत्र रुक्मी भगवान् श्रीकृष्ण से वैरभाव रखता था। उसने अपनी बहन रुक्मिणी का विवाह चेदि नरेश शिशुपाल से तय कर दिया। रुक्मिणी भगवान् कृष्ण से ही विवाह करना चाहती थी। रुक्मिणी साक्षात् लक्ष्मी थीं।

वैदर्भी भीष्मकसुतां श्रियो मात्रां स्वयंवरे।।10।52।16।।

श्रीविष्णु पुराण में कहा है -

राघवत्वेऽभवत् सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।

अन्येषु चावतरेषु विष्णोरेवानपायिनी।। वि पु 1।9।144।।

अपने भाई की योजना से उदास रुक्मिणी ने एक विश्वासपात्र ब्राह्ण को दूत बनाकर द्वारका में भगवान् श्रीकृष्ण के पास भेजा। ब्राह्मण ने भगवान् को सारी बातें बता दी और रुक्मिणी का पत्र पढ़कर सुना दिया। पत्र में रुक्मिणी ने कहा कि मैं एक मात्र भगवान् श्रीकृष्ण रूपी सिंह की सम्पत्ति हूँ और आप मुझे शिशुपाल रूपी सियार से छूने से बचायें। विवाह के एक दिन पूर्व विशाल शोभायात्रा में दुलहन नगर के बाहर गिरिजा पूजन को जाती है। आप उसी समय मेरा अपहरण कर लें।

निर्मथ्य चैद्य-मगधेन्द्रबलं प्रसह्य

मां राक्षसेन विधिना-उद्वह वीर्यशुल्काम्।।10।52।41।।

आप चेदिराज तथा मगध के जरासन्ध की सेनाओं को कुचल कर अपने सामर्थ्य से मुझे जीतकर राक्षस विधि से विवाह करें।जब कन्या स्वयं अपने विवाह की व्यवस्था कर ले उसे राक्षस विधि कहते हैं।

यस्य-अङ्घ्रि-पङ्कज-रज:स्नपनं महान्तो

वाञ्छन्ति-उमापति: इव-आत्म-तमो-अपहत्यै।

यर्हि-अम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं

जह्याम्-असून् व्रत-कृशान्-शत-जन्मभि: स्यात्।।10।52।43।।

उमापति शंकर भी आपके श्रीचरणारविन्द की धूल से स्नान करना चाहते हैं। अगर आपके श्रीचरण इस जन्म में मुझे प्राप्त न हो सके तब मैं प्राण त्याग कर अनेकों जन्मों की तपस्या से आपको एक दिन अवश्य प्राप्त करूँगी। इसके बाद ब्राह्मण ने भगवान् श्रीकृष्ण से रुक्मिणी के सन्देश पर विचार कर शीघ्र ही उचित कदम उठाने का निवेदन किया। भगवान् ने ब्राह्ण को कहा कि -

तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां न च लभे निशि।

वेदाहं रुक्मिणा द्वेषात्-मम-उद्वाहो निवारित:।।10।53।2।।

रुक्मिणी का मन जिस तरह मुझमें लगा हुआ है उसी तरह मैं भी इस कारण से रात में सो नहीं पाता हूँ। उसके भाई ने द्वेषवश मेरे साथ उसके विवाह पर रोक लगा दिया है। भगवान् ने ब्राह्मण को साथ लिया और रथ से रातो-रात विदर्भ की राजधानी कुण्डिन पहुँच गये। राजा भीष्मक पुत्र मोह में शिशुपाल के साथ विवाह की तैयारी कर रहे थे। नगर सजा-धजा था। पुरोहितों से मंगल-कृत्य कराये जा रहे थे। उधर शिशुपाल के पिता दमघोष भी पुत्र के सब मांगलिक कृत्य सम्पादित करा कुण्डिन पहुँचे। ब्राह्मण दूत को लौटने में देर होने से रुक्मिणी चिन्तित हो रही थी। उसके बायें अंग फड़कने लगे जो शुभ शकुन का संकेत दे रहे थे। इतने में ब्राह्ण दूत भी लौटकर आ गये और राजमहल में रुक्मिणी से मिलकर उन्होंने भगवान् के आगमन की सूचना दे दी।

बलराम जी को जब ज्ञात हुआ कि भगवान् रथ से अकेले कुण्डिन गये हैं तब वे भी यादवों की सेना ले कुण्डिन पधार गये। जब राजा भीष्मक को भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलराम जी के आगमन की सूचना मिली तब उन्होंने बाजे-गाजे के साथ दोनों भाईयों का भव्य स्वागत किया और उनके ठहरने की समुचित व्यवस्था कर दी।

कृष्णम्-आगतम्-आकर्ण्य विदर्भपुर-वासिन:।

आगत्य नेत्र-अञ्जलिभि: पपु:-तत्-मुखपङ्कजम्।।10।53।36।।

भगवान् के आगमन को सुनकर नागरिकगण भगवान् के मुखारविन्द के लावण्य का अपलक दर्शन करते हुए आनन्दामृत का पान करने लगे। सब यही कह रह रहे थे कि रुक्मिणी के सौंदर्य के समनुरूप भगवान् श्रीकृष्ण को छोड़कर दूसरा कोई वर हो ही नहीं सकता है। रुक्मिणी अम्बिका दर्शन के लिए राजमहल से बाहर निकली।

पदभ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्या: पादपल्लवम्।

सा चानुध्यायती सम्यक्-मुकुन्द-चरणाम्बुजम्।।10।53।40।।

रुक्मिणी पाँव-पैदल चलते हुए अपने चित्त को एकमात्र भगवान् के चरणारविन्द में लगा रखी थी। मन्दिर पहुँच उसने भवानी से भगवान् कृष्ण को पति के रूप में प्राप्त करने का वर माँगा। मन्दिर से बाहर आने पर रुक्मिणी भगवान् के दर्शन के लिए लालायित थी। सहसा भगवान् दिख गये।

यात्रा-छलेन हरये-अर्पयतीं स्व-शोभाम्।।10।53।53।।

पैदल यात्रा के बहाने रुक्मिणी अपने दिव्य सौंदर्य को बार-बार भगवान् को समर्पित करने लगी।

तां राजकन्यां रथम्-आरुरुक्षतीं जहार कृष्णो द्विषतां समीक्षताम्।

रथं समारोप्य सुपर्ण-लक्षणं राजन्यचक्रं परिभूय माधव:।।10।53।55।।

ततौ ययौ रामपुरोगमै: शनै: सृगाल-मध्यात्-इव भाग-हृत्-हरि:।।10।53।56।।

वह जैसे ही रथ पर सवार होना चाह रही थी कि सभी राजाओं के घेरे को तोड़कर भगवान् ने रुक्मिणी को उठाया और अपने गरुड-ध्वज वाले रथ पर बैठा लिया। बलराम जी को आगे करके वहाँ से वैसे ही भगवान् निकल गये जैसे सिंह सियारों के बीच से अपना शिकार लेकर निकल जाता है।

विपक्षी राजाओं ने भगवान् के रथ का पीछा किया परन्तु यदुवंशी सेना से पराजित हो सब भाग खड़ा हुए। उदास शिशुपाल को जरासन्ध ने समझाया कि -

यथा दारुमयी योषित्-नृत्यते कुहक-इच्छया।
एवम्-ईश्वर-तन्त्रो-अयम्-ईहते सुख-दु:खयो:।।10।54।12।।

नचाने वाले के अनुसार जैसे काठ की गुड़िया नाचती है वैसे ही इस जगत् में सभी जीव भगवान् की ईच्छा के अनुसार ही सुख-दु:ख भोगते हैं। जरासन्ध ने कहा कि सत्रह बार भगवान् पर सेना से चढ़ाई करके मात्र एक ही बार उनको भगा सका। भाग्य द्वारा संचालित इस संसार में शोक और हर्ष करना व्यर्थ है। शिशुपाल अपनी राजधानी लौट गया।सभी राजागण भी लौट गये। परन्तु रुक्मी ने एक सेना की टुकड़ी ले भगवान् का पीछा किया। युद्ध में वह पराजित हुआ। भगवान् उसका वध ही करना चाह रहे थे कि रुक्मिणी ने भगवान् के पैरों पर गिरकर रुक्मी का वध होने से बचा दिया। परन्तु भगवान् ने उसके सिर के बाल काटकर उसको विरूपित कर दुपट्टे से बाँध दिया। बलराम जी के हस्तक्षेप से भगवान् ने उसे छोड़ दिया। अपमानित होकर वह कुण्डिन वापस नहीं गया। कुण्डिन से चलते समय रुक्मी ने प्रतिज्ञा की थी कि अगर वह अपनी वहन को भगवान् श्रीकृष्ण से मुक्त नहीं करा पाया तो वह कुण्डिन नहीं लौटेगा। इसीलिए वहीं भोजकट नगर बसाकर रहने लगा। भगवान् रुक्मिणी को लेकर द्वारका आ गये। यहाँ वैदिक रीति से उन्होंने रुक्मिणी के साथ विवाह किया। नागरिकों तथा आगन्तुकों ने भगवान् को बहुमूल्य उपहार अर्पित किये। द्वारका पूरी तरह सजा-धजा हुआ था। भगवान् के रुक्मिणी-हरण के वृत्तान्त को नागरिकगण गीत के रूप में गा रहे थे।

द्वारकायाम्-अभूत् राजन् महामोद: पुरौकसाम्।
रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रिय: पतिम्।।10।54।60।।

साक्षात् श्रीदेवी रुक्मिणी का श्रीपति भगवान् श्रीकृष्ण के साथ दर्शन कर नगरवासियों को परमानन्द मिला।

10।28।रुक्मिणी जी के पुत्र - प्रद्युम्न जी की कथा

हरिकथाकार कहते हैं कि भगवान् नारायण के चर्तुव्यूह स्वरूप वासुदेव-संकर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध में प्रद्युम्न तीसरे अंश से हैं। द्वारका में भगवान् वासुदेव अपने तीनो अन्य अंशों संकर्षण अर्थात् बलराम, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के साथ वास कर रहे थे। भागवत के **1।14।30** से यह स्पष्ट है।

प्रद्युम्न: सर्ववृष्णीनां सुखमास्ते महारथ:।
गम्भीरयो-अनिरुद्धो वर्धते भगवानुत।।1।14।30।।

चतुर्व्यूह स्वरूप शाश्वत हैं। चूँकि भगवान् वासुदेव स्वयं वसुदेव जी के पुत्र बनकर आये उसी तरह अन्य तीन अंश भी जन्म लेकर आये। भगवान् ने गीता में कहा है **"प्रजनकों में कन्दर्प अर्थात् कामदेव हूँ।" "प्रजनश्चास्मि कन्दर्प:।गी 10।28।।"** भगवान् की लीला साधारण मानवीय बुद्धि से समझना असंभव है। भगवान् ने स्वयं कहा है **"ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।गी 10।10।।"** नारायण अपने चतुर्व्यूह स्वरूप में सर्वदा विराजते हैं। भागवत **10।55** के प्रद्युम्न चतुर्व्यूह के तीसरे अंश स्वयं हैं।

कामस्तु वासुदेवांशो दग्ध: प्राग् रुद्र-मन्युना।
देह-उपपत्तये भूय: तम्-एव प्रत्यपद्यत्।।10।55।1।।

पूर्व में कामदेव रुद्र के कोपभाजन होकर भस्मीभूत हो गये थे। परन्तु विना शरीर के वे अनंग रूप से विराजते थे। अब अंशी भगवान् वासुदेव से रुक्मिणी के गर्भ से उन्होंने पुन: शरीर प्राप्त किया और प्रद्युम्न के रूप में जाने गये। दस दिन की अवस्था में ही सूतिका गृह से शम्बरासुर ने इन्हें चुराकर समुद्र में फेंक दिया था। एक बड़ी मछली इन्हें निगल गयी और मछुआरे से पकड़ी गयी वह मछली पुन: शम्बरासुर के रसोई घर में लायी गयी। मछली के पेट से ये जीवित निकले। कामदेव के पूर्व की पत्नी रति शम्बरासुर के रसोईघर में मायावती नामकी दासी के रूप में काम करती थी। नारद जी ने आकर उसे सबकुछ बता दिया। रति इनका लालन पालन बड़े स्नेह से करती रही। जब ये युवास्था के हुए तब रति के कामभाव से प्रेरित मायावती के हावभाव पर प्रद्युम्न ने आपत्ति की क्योंकि उसको अपनी माता की तरह पालन पोषण करते देखा था। नारद जी की सब बताकर मायावती ने स्थिति स्पष्ट कर दी कि आप भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र हैं और पूर्व में कामदेव के शरीर में मेरे पति थे। उसने इन्हें मायाशक्ति प्रदान की जो शम्बरासुर की सभी माया को नष्ट करने वाली थी और शम्बरासुर का वध करने को कहा। जब इन्होंने शम्बरासुर का वध किया तब मायावती आकाश मार्ग से इन्हें द्वारका ले गयी। इनका सौंदर्य भगवान् श्रीकृष्ण जैसा ही था। इनको देखकर रुक्मिणी चकित रह गयीं और इनसे पूछी।

कथं तु-अनेन सम्प्राप्तं सारूप्यं शाङर्गधन्वन:।

आकृत्या-अवयवै: गत्या स्वर-हास-अवलोकनै:।।10।55।33।।

आवाज, हँसने की शैली, देखने में आपकी आकृति एवं अंग-प्रत्यंगादि सभी शार्गधन्वा भगवान् वासुदेव जैसे हैं। आप हैं कौन ? और रुक्मिणी की बायीं भुजा फड़कने लगी। इसी बीच भगवान् वासुदेव अपने माता-पिता के साथ वहाँ पहुँचे। नारद जी भी आ गये और उन्होंने प्रद्युम्न का अपहरण से लेकर शम्बरासुर के वध तथा द्वारका में पधारने की बात विस्तार से सुना दी। रति के साथ प्रद्युम्न का सबों ने आनन्द से स्वागत किया।

यं वै मुहु: पितृ-सरूप-निज-ईश-भावा:

तन्मातरो यत्-अभजन्-रह-रूढ़-भावा:।

चित्रं न तत्खलु रमा-आस्पद-बिम्ब-बिम्बे

कामे स्मरे-अक्षविषये किम्-उत-अन्य-नार्य:।।10।55।40।।

शुकदेव जी कहते हैं कि प्रद्युम्न जी का स्वरूप भगवान् से इतना मिलता था कि इनको देखकर भगवान् की पत्नियाँ भी माधुर्य भाव में आ जाती थीं परन्तु शीघ्र ही वहाँ से हटकर एकान्त में चली जाती थीं। भगवान् श्रीकृष्ण के प्रतिबिम्ब स्वरूप कामावतार प्रद्युम्न के साथ यह कोई आश्चर्य की बात न थी कि दूसरी नारियाँ कैसे इनपर मोहित न हो उठती !

10।29।।स्यमन्तक मणि एवं भगवान् श्रीकृष्ण का जाम्बवती एवं सत्यभामा से विवाह

सत्राजित नामक एक यादव द्वारका के नागरिक थे। उन्होंने सूर्यनारायण की उपासना से स्यमन्तक मणि प्राप्त की जो नित्य आठ भार स्वर्ण देता था। इस मणि की विशेषता थी कि जहाँ यह रहता था वह स्थान आपद-विपद से मुक्त रहता था। सत्राजित मणि गले में लटकाये जब द्वारका आये तब नागरिकों की आँखें चौंधिया गयीं और उनलोगों ने समझा कि सूर्यनारायण भगवान् से स्वयं मिलने आ रहे हैं। भगवान् को सूचना दी।

नारायण नमस्तेऽस्तु शङ्ख-चक्र-गदाधर।
दामोदर-अरविन्दाक्ष गोविन्द यदुनन्दन।।10।56।6।।

हे कमलनयन यदुनन्दन ! गोविन्द! दामोदर! आप शंख-चक्र-गदाधारी को नमस्कार है। नागरिकों ने भगवान् को नमस्कार करते हुए कहा कि सूर्यदेव आपसे मिलने आ रहे हैं। भगवान् ने हँस कर कहा कि यह सत्राजित है इसने सूर्यनारायण की उपासना करके स्यमन्तक मणि प्राप्त किया है। एकबार भगवान् ने सत्राजित से स्यमन्तक मणि राजा उग्रसेन को उपहार में देने के लिए कहा परन्तु उसने भगवान् की याचना को ठुकरा दी। हरिकथाकार कहते हैं कि भगवान् को मणि से क्यों लोभ हो वे तो सत्राजित के कल्याण के लिए उसे पूर्व से सावधान करना चाह रहे थे। सत्राजित की बेटी सत्यभामा पर शतधन्वा की कुदृष्टि थी। बाद में इसी मणि के कारण शतधन्वा ने सत्राजित की हत्या कर दी। सत्यभामा को भगवान् श्रीकृष्ण में ही प्रीति थी जो भगवान् को ज्ञात था परन्तु सत्राजित इससे अनभिज्ञ था। सत्राजित का भाई प्रसेनजित एकदिन उस मणि को गले में लटका कर वन में घोड़े से आखेट करने गया। एक सिंह ने घोड़े सहित प्रसेनजित को मार दिया और मणि लेकर एक गुफा में गया। गुफा में रीक्षपति जाम्बवान ने उस सिंह को मारकर मणि हथिया ली। अपने भाई प्रसेनजित के वन से नहीं लौटने पर सत्राजित ने भगवान् श्रीकृष्ण पर दोषारोपण किया कि प्रसेनजित को मारकर मणि इन्होंने हथिया ली है। भगवान् अपने ऊपर लगे कलंक को मिटाने के लिए नागरिकों को साथ ले वन में गये। एक अन्धेरी गुफा के द्वारपर घोड़ा के साथ प्रसेनजित तथा एक सिंह को मरा देखकर भगवान् ने नागरिकों को गुफाद्वार पर ही रोककर स्वयं अकेले गुफा में गये। रीक्षराज जाम्बवान के बच्चों को मणि से खेलते देख भगवान् वहाँ रुक गये। अनजान व्यक्ति को देख बच्चे चिल्लाने लगे। जाम्बवान आये और भगवान् से भिड़ गये। अट्ठाईस दिन तक दोनों के मल्लयुद्ध के बाद जाम्बवान का बल घटने लगा।

जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहो बलम्।
विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुम्-अधीश्वरम्।।10।56।26।।
यस्य-ईषत्-उत्कलित-रोष-कटाक्ष-मोक्षैः-
वर्त्म-आदिशत् क्षुभित-नक्र-तिमिङ्गिलो-अब्धिः।
सेतुः कृतः स्व-यश उज्जवलिता च लङ्का
रक्षःशिरांसि भुवि पेतुः इषु-क्षतानि।।10।56।28।

जाम्बवान को आभास हुआ कि यह व्यक्ति अन्य कोई नहीं स्वयं भगवान् विष्णु हैं। जाम्बवान ने उनकी स्तुति करते हुए कहा कि आप ही ने अथाह जलवाले सागर पर पुल बनाकर राक्षसों के साथ लंकापति रावण के सिर अपने वाणों से धरती पर काटकर गिरा दिया।जाम्बवान को भक्त समझ भगवान् प्रसन्न हुए।भगवान् ने जाम्बवान के शिथिल अंगो को स्पर्श कर उसे स्वस्थ्य बना दिया। भगवान् ने कहा कि मैं इस मणि के लिए आया हूँ क्योंकि इसकी चोरी के कलंक से मैं मुक्त होना चाहता हूँ।

इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जाम्बवतीं मुदा।
अर्हणार्थं स मणिना कृष्णाय-उपजहार ह।।10।56।32।।

भगवान् के ऐसा कहने पर जाम्बवान ने मणि तथा अपनी बेटी जाम्बवती को भगवान् की सेवा में समर्पित कर दिया। भगवान् ने सत्राजित को राजसभा में बुलाकर उसे मणि वापस कर दिया।

दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च।
उपायोऽयं समीचीनः तस्य शान्तिः न च अन्यथा।।10।56।42।।
तां सत्यभामां भगवान्-उपयेमे यथाविधि।
बहुभिः याचितां शील-रूप-औदार्य-गुणान्विताम्।।10।56।44।।

बाद में सत्राजित को निष्कलंक भगवान् को कलंकित करने के लिए पश्चाताप हुआ और उसने अपनी बेटी नारी-रत्न सत्यभामा तथा मणि को भगवान् की सेवा में समर्पित कर देना ही उचित समझा। इस तरह से सोचकर उसने सत्यभामा के साथ मणि भगवान् को समर्पित कर दी। उत्तम गुणों, सौंदर्य, आचरण तथा उदारता से सम्पन्न सत्यभामा के साथ भगवान् ने धार्मिक विधि से विवाह कर लिया परन्तु मणि सत्राजित को वापस लौटा दिया। इस तरह से सत्यभामा भगवान् की तीसरी पत्नी थीं। आठ पटरानियों में रुक्मिणी, जाम्बवती तथा सत्यभामा प्रथम तीन पटरानियाँ थीं। आगे के अध्याय 58 में अन्य पाँच पटरानियों की कथा है।

10।30।। स्यमन्तक मणि की चोरी ।

द्वारका में सत्यभामा को प्राप्त करने के अन्य प्रतिद्वन्दी भी थे। उसमें शतधन्वा का नाम लिया जाता है। कृतवर्मा भोजवंशी होने के नाते कंस से सहानुभूति रखता था। कुसंगति से उसकी बुद्धि मारी गयी थी। अक्रूर शुद्ध भक्त थे परन्तु सत्राजित से इसलिए नाराज थे कि अपने भाई प्रसेनजित की हत्या का भगवान् पर दोषारोपण करने का वह अपराधी था। इसलिए इन दोनों ने कूटनीति से शतधन्वा को उकसाया कि उसकी उपेक्षा करके सत्राजित ने अपनी पुत्री का विवाह भगवान् श्रीकृष्ण से कर दिया। इसी बीच ऐसा हुआ कि कुन्ती देवी के साथ पाण्डवों का लाक्षागृह मे जलकर मरजाने की आशंका का समाचार सुन लोक शिष्टाचार में बलराम जी तथा भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गये। भगवान् की अनुपस्थिति का लाभ उठाते हुए शतधन्वा ने सत्राजित की हत्या कर स्यमन्तक मणि चुरा ली। सत्यभामा अपने पिता की हत्या से शोकाकुल हो भगवान् को बताने हस्तिनापुर चली गयी। बलराम जी तथा भगवान् उनके साथ द्वारिका आये। शतधन्वा को जब यह पता चला कि भगवान् उसका वध करना चाहते हैं तब उसने पहले कृतवर्मा से सहायता माँगी। उसने कंस के नाश तथा जरासन्ध की पराजय का दृष्टान्त देते हुए भगवान् के विरोध में सहायता करने से मना कर दिया। तब वह अक्रूर के पास गया। अक्रूर ने शतधन्वा से कहा कि श्रीकृष्ण इस विश्व का सृजन, पालन तथा संहार करने वाले साक्षात् भगवान् हैं।उनकी लीला अपरम्पार है।

यः सप्त-हायनः शैलम्-उत्पाट्य-एकेन पाणिना।
दधार लीलया बाल उच्छिलीन्ध्रम्-इव-अर्भकः।।10।57।16।।
नमस्तस्मै भगवते कृष्णाय-अद्भुत-कर्मणे।
अनन्ताय-आदि-भूताय-कूटस्थाय-आत्मने नमः।।10।57।17।।

सात वर्ष की आयु में वर्षाती छत्ता की तरह एक हाथ पर पर्वत उठाने वाले भगवान् अद्भुत कर्म करने वाले हैं। असीम शक्ति वाले आत्मवत भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ। इस तरह से अक्रूर से कोई सहायता की आशा न कर शतधन्वा स्यमन्तक मणि उनके पास ही छोड़ वायुगति वाले एक घोड़े से भाग चला। गरुडध्वज भगवान् अपने भाई बलराम जी के साथ रथ से उसका पीछे करने लगे। मिथिला के पास जाकर उसका घोड़ा थककर गिरा और मर गया। भगवान् ने अपने चक्र से पैदल भागते शतधन्वा का सिर काट डाला। परन्तु उसके पास मणि नहीं मिली। तब भगवान् द्वारिका लौटे और बलराम जी मिथला ही ठहर गये। वहाँ के राजा उनके प्रिय थे। कुछ वर्षो तक मिथला में रहे। इसी अवधि में उन्होंने दुर्योधन को गदा संचालन की शिक्षा दी। इधर भगवान् द्वारिका लौट कर आये। कृतवर्मा तथा अक्रूर ने जब शतधन्वा की हत्या की खबर सुनी तब वे दोनों डर के मारे द्वारिका से भाग गये। तत्पश्चात् द्वारिका में अपशकुन होने लगे।

मुनिवास-निवासे किं घटेत-अरिष्ट-दर्शनम्। ।10।57।31। ।

समस्त सन्तो के आश्रयस्थल भगवान् के रहते अपशकुन कैसे होगा ! भगवान् को ज्ञात था कि इस तरह के अपशकुन इस बात का संकेत है कि स्यमन्तक मणि द्वारका में नहीं है। भगवान् ने वयोवृद्धों से ऐसा सुना कि एकबार काशी में अनावृष्टि होने से वहाँ के राजा ने अपनी पुत्री गन्दिनी का विवाह श्वफल्क से कर दिया जिससे अक्रूर की उत्पत्ति हुई। इस विवाह से काशी में वृष्टि होने लगी। अत: द्वारिका के अपशकुन अक्रूर की अनुपस्थिति का कारण है। ऐसा सुन भगवान् ने अक्रूर को काशी से द्वारिका बुला भेजा। भगवान् ने अपने भक्त अक्रूर को महिमामण्डित करने के लिए ऐसा किया। उस समय अक्रूर काशी में सोने की बनी वेदी से नित्य यज्ञ कर रहे थे। इससे यह आभास हुआ कि मणि अक्रूर के पास ही है। भगवान् ने उनसे कहा कि मणि आपके पास है और आप उस मणि को मुझे दें जिससे मेरे बड़े भाई बलराम जी तथा नगरवासी को विश्वास हो सके कि मणि मेरे पास नहीं है। अक्रूर ने भगवान् को मणि दे दी। भगवान् ने सबको मणि दिखाई तथा उसे पुन: अक्रूर को ही लौटा दी। शुकदेव जी इस प्रकरण की फलश्रुति कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण को निष्कलंक प्रदर्शित करने वाले इस आख्यान के श्रवण तथा पाठ से जीवन में सभी तरह के कलंक एवं अयश से मुक्ति मिलती है।

10।31। । भगवान् की अन्य पाँच पटरानियाँ।

भगवान् की रुक्मिणी, जाम्बवती, तथा सत्यभामा प्रथम तीन पटरानियाँ हैं। इनकी आठ पटरानियाँ हैं जिनमें से तीन के साथ विवाह की कथा पहले आचुकी। अब पाँच अन्य पटरानियों के विवाह की कथा यहाँ है। लाक्षागृह-दाह के बाद पाण्डव छिपे रहे परन्तु द्रौपदी-स्वयंवर के बाद सार्वजनिक रूप से प्रकट हो गये। वे इन्द्रप्रस्थ में वास कर रहे थे। एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण उनलोगों से मिलने इन्द्रप्रस्थ गये।

दृष्ट्वा तमागतं पार्था मुकुन्दम्-अखिलेश्वरम्।
उत्तस्थु: युगपत् वीरा: प्राणा मुख्यम्-इवागतम्। ।**10।58।2**। ।

भगवान् मुकुन्द को आते देख जैसे प्राण के आने पर इन्द्रियाँ सक्रिय हो उठती हैं वैसे ही पाण्डव उनके सम्मान में एक साथ उठ खड़े हो गये। भगवान् ने युधिष्ठर एवं भीम के चरणों में प्रणाम किया और अर्जुन का गाढ़ा आलिंगन करते हुए सहदेव तथा नकुल के नमन को स्वीकार किया। जब भगवान् ने कुन्ती देवी का नमन किया तब कुन्ती देवी भावविभोर होकर उनकी प्रार्थना करने लगीं।

तदैव कुशलं नः अभूत् सनाथाः ते कृता वयम्।

ज्ञातीन्-नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितः त्वया।।10।58।9।।

हमलोग उसी समय सनाथ हो गये जब भाई अक्रूर को भेजकर आपने हमलोगों के कुशल-क्षेम की कामना की।

योगेश्वराणां दुर्दर्शो यन्नो दृष्टः कुमेधसाम्।।10।58।11।।

युधिष्ठर ने कहा कि बड़े-बड़े योगेश्वरों को जिनका दर्शन मिलना कठिन है वही हमारे बीच दर्शन दे रहे हैं। पाण्डवों से सम्मानित होकर भगवान् वर्षा ऋुत की अवधि पर्यन्त इन्द्रप्रस्थ में ही ठहर गये।

<u>सूर्य-पुत्री कालिन्दी से विवाह (1)</u>

एकदा रथमारुह्य विजयो वानरध्वजम्।

गाण्डीवं धनुरादाय तूणौ च-अक्षय-सायकौ।।10।58।13।।

एक दिन अर्जुन हनुमान-ध्वज वाले रथ पर अपने गाण्डीव एवं अक्षय-तरकस ले भगवान् के साथ जंगल गये। खाण्डव वनदाह का काम इसके पूर्व ही हो चुका था। शुकदेव जी ने एक पुरानी घटना का उल्लेख किया।

अग्नये खाण्डवं दातुम् अर्जुनस्य-आस सारथिः।10।58।25।।

सो अग्निस्तुष्टो धनु अदात् हयान् श्वेतान् रथं नृप।

अर्जुनाय-अक्षयौ तूणौ वर्म च-अभेद्यम्-अस्त्रिभिः।।10।58।26।।

एक बार भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी बनकर खाण्डववन अग्नि को दान कर दिया था। अग्नि ने प्रसन्न होकर अर्जुन को रथ, दो श्वेत घोड़े, कभी न खाली होने वाले वाणों से भरे दो तरकस के साथ गाण्डीव धनुष तथा अभेद्य कवच आदि दिया था। मयदानव को खाण्डव वन में जलने से बचाने पर मयदानव ने इन्द्रपस्थ में पाण्डवों के लिए एक सुन्दर सभागार का निर्माण किया था।भगवान् तथा अर्जुन ने यमुना किनारे एक सुन्दर नारी को घूमते देखा। भगवान् के अनुरोध पर अर्जुन ने जाकर उनसे पूछा कि आप कौन हैं और लगता है कि आप एक सुयोग्य पति चाह रही हो।

अहं देवस्य सवितुः-दुहिता पतिम्-इच्छती।

विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परमम्-आस्थितः।।10।58।20।।

नान्यं पतिं वृणे वीर तम्-ऋते श्रीनिकेतनम्।

तुष्यतां मे स भगवान् मुकुन्दो-अनाथ-संश्रयः।।10।58।21।।

कालिन्दी-इति समाख्याता वसामि यमुनाजले।

निर्मिते भवने पित्रा यावत्-अच्युत-दर्शनम्।।10।58।22।।

नारी ने कहा कि मैं सूर्य नारायण की पुत्री हूँ। भगवान् विष्णु को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए तपस्या रत हूँ। अनाथों के नाथ श्रीनिकेतन भगवान् मुकुन्द को छोड़ किसी का वरण नहीं करूँगी। कालिन्दी मेरा नाम है। जब तक वे मिल नहीं जाते तवतक यमुना जल में अपने पिता के निर्मित घर में रहूँगी। भगवान् वासुदेव ने कालिन्दी को रथ से इन्द्रप्रस्थ ले आया। उसके बाद द्वारका जाकर विधिवत विवाह किया।

मित्रविन्दा या शैब्या के साथ विवाह (2)

राजाधिदेव्याः तनयां मित्रविन्दां पितृष्वसुः।
प्रसह्य हृतवान् कृष्णो राजन्-राज्ञां प्रपश्यताम्।।**10।58।31**।।

विन्द तथा अनुविन्द उज्जैन के राजा थे। वे दुर्योधन के पक्षधर थे। अपनी बहन मित्रविन्दा के विवाह के लिए एक स्वयंवर बुलाया परन्तु अपनी बहन मित्रविन्दा को भगवान् श्रीकृष्ण को वरण करने से रोक दिया। वह भगवान् को ही चाहती थी। इसलिए भगवान् ने उस स्वयंवर से सब राजाओं की उपेक्षा कर जबर्दस्ती उसे उठाकर लाया और विधिवत विवाह किया।

सत्या या नाग्नजिती के साथ विवाह (3)

नग्नजित्-नाम कौसल्य आसीद् राजा-अति-धार्मिक :।
तस्य सत्या-अभवत् कन्या देवी नाग्नजिती नृप।।**10।58।32**।।

कोसल देश के राजा नग्नजित बड़े धार्मिक थे। उनकी बेटी का नाम सत्या था जिसे नाग्नजिती भी कहा जाता था। उसके विवाह की शर्त में राजा ने सात अत्यन्त दुर्दान्त बैलों को एक साथ बाँधने की घोषणा की थी। सब राजा असफल रहे। भगवान् कृष्ण भी इसी उद्देश्य से वहाँ पहुँचे। राजा ने भगवान् की पूजा की। सत्या भी भगवान् श्रीकृष्ण को पति बनाना चाहती थी। घर में से ही उन्हें पाने के लिए सत्या प्रार्थना करने लगी।

यत्-पादपङ्कज-रजः शिरसा बिभर्ति श्रीःअब्जः सगिरिशः सहलोकपालैः।
लीलातनूः स्वकृत-सेतु-परीप्सया-ईशः काले दधत् भगवान् मम केन तुष्यते।।**10।58।37**।।

जिनके चरणरज लक्ष्मी जी, ब्रह्मा तथा शिव आदि धारण करते हैं। लीला से मनुष्य बनने वाले धर्मसेतु भगवान् मेरे पतिदेव बने। जब राजा से भगवान् ने सत्या की माँग की तब राजा ने सात बैलों को नाथने वाली शर्त बतायी।

एवं समयम्-आकर्ण्य बद्ध्वा परिकरं प्रभुः।
आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णात्-लीलया-एव तान्।।**10।58।45**।।

ऐसा सुन भगवान् ने कमर कसी और सात-स्वरूप में बँटकर सातो बैलों को एक ही समयनाथ दिया। राजा तथा रानी सब बहुत प्रसन्न हुए। सत्या का बड़े धूमधाम के साथ भगवान् से विवाह करके राजा ने बहुत सारे दहेज के साथ नवदम्पति की विदाई की। रास्ते में अन्य राजाओं ने भगवान् पर आक्रमण किया परन्तु परास्त हो गये।

भद्रा के साथ विवाह (4)

श्रुतकीर्तेः सुतां भद्राम्-उपयेमे पितृ-स्वसुः।
कैकेयीं भ्रातृभिः दत्तां कृष्णः सन्तर्दन-आदिभिः।।**10।58।56**।।

कैकेय देश के राजा की बेटी भद्रा को उसके भाई सन्तर्दन ने भगवान् श्रीकृष्ण से व्याह दिया।

लक्ष्मणा के साथ विवाह (5)

सुतां च मद्राधिपते: लक्ष्मणां लक्षणै: युताम्।
स्वयंवरे जहार-एक: स सुपर्ण: सुधामिव।।10।58।57।।

सब लक्षणों से युक्त मद्र देश की राजपुत्री लक्ष्मणा का भगवान् ने स्वयंवर से वैसे ही हरण कर लिया जैसे गरुड ने एकबार देवों के बीच से अमृतकलश उठा लिया था। कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण के अवसर पर द्रौपदी एवं भगवान् की आठ पटरानियों की वार्ता में लक्ष्मणा ने स्कन्ध **10** के अध्याय **83** में विस्तार से अपने विवाह की कथा सुनायी है। वहाँ इस का उल्लेख है कि भगवान् ने लक्ष्मणा के स्वयंवर की शर्त एक खम्भे के ऊपर जल-पात्र में तैरती मछली की आँख का खम्भे के नीचे के जल-पात्र में प्रतिविम्ब देख लक्ष्यवेध करके पूरी की थी। इन आठ पटरानियों के अतिरिक्त भगवान् की सोलह हजार और पत्नियाँ हैं जिन्हें भौमासुर के कैद से भगवान् ने मुक्त किया और उनसबों की प्रार्थना पर भगवान् ने उन सबों के साथ अलग-अलग पाणि-ग्रहण किया। सभी सोलह हजार रानियाँ तथा आठ पटरानियाँ भगवान् के साथ द्वारका में ही अपने स्वतन्त्र महलों में रहती थीं।

10।32।। भौमासुर का उद्धार एवं सोलह हजार कन्याओं को कैदमुक्त कर उनके साथ भगवान् का विवाह। वर्तमान काल के असम की राजधानी गौहाटी को पूर्व में प्राग्ज्योतषिपुर कहा गया है। चारों तरफ से पहाड़ो से घिरी भौमासुर की राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर में अवस्थित थी। भौमासुर को ही नरकासुर भी कहते हैं। उसके आतंक से त्रस्त इन्द्र द्वारका गये तथा भगवान् को बताया कि भौमासुर ने देवमाता अदिति के कान के कुण्डल, वरुण का छत्र तथा देवों के मेरु पर्वत स्थित निवास छीन लिया है। इन्द्र से ऐसा सुन भगवान् सत्यभामा को साथ लेकर गरुड़ पर सवार होकर प्राग्ज्योतिषपुर के लिए प्रस्थान कर गये। सत्यभामा को युद्धक्षेत्र में साथ ले जाने के अभिप्राय को स्पष्ट करने हेतु कुछ हरिकथाकार कहते हैं कि श्रीवैष्णव आगम-शास्त्रों में ऐसा उल्लेख है कि वैकुण्ठ में भगवान् विष्णु की तीन पत्नियाँ साथ रहती हैं जो श्रीदेवी, भूदेवी तथा नीला देवी कही जाती हैं। श्रीदेवी ऐश्वर्य-यश देने वाली हैं। भूदेवी अचल सम्पत्ति देती हैं। नीला देवी जीवन में आनन्द-रस के रूप में सुख-शान्ति देती हैं।

इस धराधाम पर भगवान् श्रीकृष्ण की रुक्मिणी ही श्रीदेवी हैं। सत्यभामा भूदेवी हैं तथा कालिन्दी नीला देवी हैं। इसी तरह का उल्लेख पद्मपुराण के उत्तर खण्ड में मिलता हैं। हरिकथाकार कहते हैं कि सत्यभामा को साथ लेकर जाने का भगवान् का उद्देश्य भौमासुर का अन्त करना है। परन्तु भौमासुर तवही मर सकता है जब उसकी माँ धरती देवी चाहेगीं। भौमासुर वराह भगवान् का धरती देवी से उत्पन्न पुत्र है। इसका उल्लेख श्रीविष्णुपुराण में है। सत्यभामा देवी भूदेवी हैं। अत: भौमासुर के साथ युद्ध में नरकासुर के अन्त करने का भूदेवी अर्थात् धरती देवी स्वरूपणी सत्यभामा की सहमति भगवान् को मिल ही जायेगी।

यदाहमुद्धृता नाथ त्वया सूकरमूर्तिना।
त्वत्स्पर्शसम्भव: पुत्रस्तदायं मय्यजायत।।वि. पु. 5।29।23।।

धरती देवी भगवान् से प्रार्थना में कहती हैं कि जव वराह स्वरूप में आपने मुझे समुद्र के जल से वाहर निकाला था तव आपके स्पर्श से यह भौमासुर मुझे पुत्र के रूप में प्राप्त हुआ था। हरिकथाकार सत्यभामा को साथ लाने

का एक और अभिप्राय बताते हैं। एक बार नारद जी ने स्वर्ग से पारिजात का फूल रुक्मिणी को दिया और सत्यभामा को पारिजात-फूल नहीं मिला। अपनी उपेक्षा से सत्यभामा क्रोध में थीं। भगवान् इसीलिए साथ लाये थे कि भौमासुर के अन्त के बाद सत्यभामा को स्वर्ग ले जायेंगे और वहाँ से पारिजात का वृक्ष ही उखाड़ गरुड़ पर साथ लायेंगे। भगवान् जब भौमासुर की राजधानी आये तब उसे चारो तरफ से दुर्गम पहाड़ो से घिरा देखा तथा अन्य सुरक्षा-व्यवस्थाओं को भी देखा।

गदया निर्बिभेद-अद्रीन् शस्त्रदुर्गाणि सायकै:।
चक्रेणाग्निं जलं वायुं मुर-पाशान्-तथा-असिना।।10।59।4।।

भगवान् ने गदा से पहाड़ो की किलाबन्दी, बाण से अन्य अस्त्र-शस्त्रों की किलाबन्दी, चक्र से वायु-अग्नि-जल की सुरक्षा एवं पाँचशिरा मुर असुर के दुर्गों का नाश कर दिया। भगवान् ने अपने आगमन की सूचना पाञ्चजन्य की शंखनाद से दी। मुर के साथ अन्य असुरों का भगवान् ने शीघ्र ही अन्त कर दिया। गरुड़ अपनी पंखों के आघात से भौम की सेना का अन्त कर रहे थे। भगवान् ने अकेले पड़े भौमासुर का शिर अपने चक्र से काट डाला। पृथ्वी देवी ने प्रकट होकर भगवान् का स्वागत किया तथा अदिति के कुण्डल एवं वरुण का छत्र उन्हें लौटा दिया। पृथ्वी देवी भगवान् की स्तुति करने लगी।

नभ: पङ्कजनाभाय नम: पङ्कजमालिने।
नम: पङ्कजनेत्राय नमस्ते-पङ्कज-अङ्घ्रये।।10।59।26।।

(विलकुल इसी श्लोक से कुन्ती देवी ने 1।8।22।। में भगवान् की स्तुति की थी।)

तत्पश्चात् पृथ्वी देवी ने भौमासुर के पुत्र को भगवान् की शरणागति करायी। भगवान् ने भौमासुर के महल में प्रवेश कर वहाँ सोलह हजार से अधिक कन्याओं को कैद देखा। श्रीविष्णुपुराण **5।29।31**। में कन्याओं की संख्या सोलह हजार एक सौ बतायी है। सभी कन्याओं को भगवान् ने कैद-मुक्त कराया। भगवान् के सौन्दर्य से मोहित हो सभी कन्यायें उन्हें पति के रूप में प्राप्त करने के विचार में लीन हो गयीं। भगवान् ने सभी कन्याओं को अलंकृत करवा के पालकी से द्वारका भेजवा दिया। भगवान् स्वयं सत्यभामा के साथ स्वर्ग जाकर इन्द्र को अदिति के कुण्डल लौटाये। स्वर्ग से चलते समय पारिजात के वृक्ष को उखाड़कर भगवान् द्वारका लाये तथा सत्यभामा के उद्यान में उसे स्थापित कर दिया। पारिजात लाने में इन्द्र के समर्थकों ने भगवान् का विरोध किया परन्तु सभी पराजित हो गये। ।

ययाच आनम्य किरीट-कोटिभि: पादौ स्पृशन्-अच्युतम्-अर्थसाधनम्।
सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महानहो सुराणां च तमो धिक्-आढ्यताम्।।10।59।41।।

कैसे स्वार्थी देवगण हैं जो काम साधने के लिए भगवान् अच्युत के चरणों पर अपने मुकुट रखते हैं परन्तु साधारण स्वार्थ में उन्हें भगवान् से टकराते लज्जा भी नहीं आती।

अथो मुहूर्त एकस्मिन् नानागारेषु ता: स्त्रिय:।
यथा-उपयेमे भगवान्-तावत्-रूपधरो-अव्यय:।।10।59।42।।

द्वारका पहुँच कर भगवान् ने सभी कन्याओं के पृथक-पृथक भवनों में एक ही साथ एक ही मुहूर्त में उतने स्वरूप धारण कर पाणि-ग्रहण संस्कार सम्पन्न किया। एक आदर्श गृहस्थ की तरह सभी रानियों के साथ भगवान् एक

ही साथ विराजते थे। अनेकों दासियों के सेवारत रहते रानियाँ भी स्वयं अपने हाथों भगवान् की सेवा करतीं।

उद्दाम-भाव-पिशुन-अमल-वल्गुहास-व्रीडावलोक-निहतो मदनोऽपि यासाम्।
सम्मुह्य चापम्-अजहात्-प्रमदोत्तम्-ता यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैः न शेकुः।।1।11।36।।

भागवत 1।11।36।। से स्पष्ट है कि जब हस्तिनापुर से लौटकर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका आये तब रानियों के विभिन्न भाव-भंगिमाओं का सहारा लेकर कामदेव उनको मोहग्रस्त करने हेतु काम-बाण चलाते रहे परन्तु भगवान् तनिक भी विचलित न हुए। तब कामदेव अपना धनुष फेंक भाग खड़े हुए। भगवान् इस तरह से निष्काम होकर रानियों को प्रसन्न करते थे। द्वारका में प्रत्येक रानियों के साथ भगवान् की दिनचर्या देखकर नारद जी का मोहभंग हुआ था इसकी कथा अध्याय 69 में वर्णित है।

10।33। <u>रुक्मिणी एवं भगवान् के गृहस्थ जीवन में प्रणय-परिहास से अनन्य भक्ति की महिमा का निरूपण।</u> भागवत के अध्याय 60 को हरिकथाकार "कर्हिचित्" अध्याय कहते हैं। इस अध्याय में अनन्य भक्ति की अन्तःसलिला धारा बहती है। रुक्मिणी जी ने जिस अनन्य भक्ति का प्रदर्शन किया है वही भक्तों का एकमात्र लक्ष्य है। भगवान् का परिहास आदि तो ऊपरी मुखौटा है।मुख्य उद्देश्य भक्ति का अनोखा व्यवहारिक दृष्टान्त प्रस्तुत करना है। भगवान् ने रुक्मिणी जी के पति बनने योग्य योग्यताओं का अपने में अभाव बताया है। भगवान् ने जिन अयोग्यताओं का उल्लेख किया है रुक्मिणी जी ने उन्हें भगवान् के दिव्य गुण बताये हैं। यह है अनन्य भक्ति!

कर्हिचित् सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम्।
पतिं पर्यचरद् भैष्मी व्यजनेन सखी जनैः।।10।60।1।।

भगवान् एक दिन रुक्मिणी जी के शय्या पर विराजमान थे। रुक्मिणी जी अपनी सखियों की उपस्थिति में स्वयं उनकी पंखा-सेवा कर रही थीं।भगवान् ने उनके सौंदर्य एवं अलंकारों को निहारा।

सा-उप-अच्युतम् क्वणयती मणिनूपुराभ्यां रेजे-अङ्गुलीय-वलय-व्यजन-अग्रहस्ता।
वस्त्रान्त-गूढ़ -कुच-कुङ्कुम्-शोण-हार-भासा नितम्ब-धृतयाच परार्ध्य-काञ्चया।।10।60।8।।
तां रूपिणीं श्रियम्-अनन्यगतिं निरीक्ष्य या लीलया धृत-तनोः-अनुरूप-रूपा।
प्रीतःस्मयन्-अलक-कुण्डल-निष्क-कण्ठ- वक्त्र-उल्लसत्-स्मित-सुधां हरिः-आबभाषे। 10।60।9।।

रुक्मिणी जी का हाथ अँगूठी, कंगन एवं पंखे से सुशोभित था।चरणसरोज के नूपुर की मधुर रुनझुन अनोखी थी। वस्त्र से ढ़के रहने पर भी स्तन के कुंकुम की लालिमा गले के हार की आभा में दर्शनीय हो रही थी। बहुमूल्य लड़ियों के साथ कमर की करधनी से समलंकृत वे प्रियतम भगवान् की सेवा कर रही थीं। उनक घुँघराले बाल एवं कानों के कुण्डल से सुशोभित सुन्दर मुस्कुराता मुखमण्डल को सुन्दर सुवर्ण कण्ठाहार से युक्त सौदर्य को देखकर भगवान् को वैकुण्ठ की रमादेवी याद आ गयीं। श्रीविष्णु पुराण में कहा है -

राघवत्वेऽभवत् सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।
अन्येषु चावतरेषु विष्णोरेवानपायिनी।। वि पु 1।9।144।।
देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी।

विष्णोर्देहानुरूपं वै करोति-एष-आत्मनः तनुम्।।वि. पु. 1।9।145।।
रामाावतार में रमादेवी सीता जी के रूप में तथा कृष्णावतार में रुक्मिणी के रूप में अवरित होती हैं। लक्ष्मी जी दिव्य स्वरूप में रहती हैं जब भगवान् देव स्वरूप में रहते हैं। भगवान् जब मनुष्य शरीर में आते हैं तब ये भी मनुष्य शरीर में आ जाती हैं। ऐसा श्रीविष्णु पुराण में वर्णित है।भगवान् मन्द-मन्द मुस्कान के साथ परिहास के भाव में कहते हैं कि हे देवी! तुझे बहुत सारे सुन्दर एवं तेजस्वी राजा चाहते थे परन्तु तू मुझ जैसे अकिंचन के पास क्यों आ गयी।

निष्किञ्चना वयं शश्वत्-निष्किञ्चन-जनप्रियाः।
तस्मात् प्रायेण न ह्याद्या मां भजन्ति सुमध्यमे।।10।60।14।।

मैं गरीब हूँ और जो गरीब हैं वे ही मुझे चाहते हैं। प्रायः धनी हमसे स्नेह नहीं करते। विवाह एवं मैत्री समान जनों के बीच होती है। मैं तो कहूँगा कि तू किसी धनी राजा से विवाह कर ले क्योंकि तेरा बड़ा भाई रुक्मी, शिशुपाल तथा जरासन्ध मुझसे घृणा करते हैं। शुकदेव जी कहते हैं कि रुक्मिणी को इस बात का गर्व हो गया था कि भगवान् सबसे प्रिय मुझे ही समझते हैं। इसी गर्व को दूर करने के लिए भगवान् ने उनसे ऐसा कहा। भगवान् की कठोर वाणी सुन उन्हें लगा कि भगवान् कहीं मेरा त्याग तो नहीं कर देंगे। आँसू से शरीर नहा गया। पैरों से धरती कुरेदती उदास हो गयीं। उनका मुख लटक गया। पंखा तथा कंगन हाथ से गिर पड़ा। वे भी अचेत होकर केले के वृक्ष की तरह जमीन पर गिर गयीं। भगवान् ऐसा देख द्रवित हो गये और उन्होंने परिहास की मुद्रा का शीघ्र परित्याग कर दिया।

पर्यङ्कात्-अवरुह्य-आशु ताम्-उत्थाप्य चतुर्भुजः।
केशान् समुह्य तत्-वक्त्रं प्रामृजत् पद्मपाणिना।।10।60।26।।

भगवान् ने शीघ्र ही पलंग छोड़ दिया और चार भुजाओं के स्वरूप में होकर हो हाथों से उन्हें जमीन से उठाया तथा दो हाथों से पसीने से तर-ब-तर उनके मुखसरोज को पोंछा। भगवान् ने कहा कि मैंने तो विनोदपूर्ण परिहास में ऐसा वोला। चाहता था कि इसके प्रत्युत्तर में तेरी कोपयुक्त मुख की आकृति तथा तिरछी नजरों को निहारुँ।

अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम्।
यत्-नर्मैः नीयते यामः प्रियया भीरु भामिनी।।10।60।31।।

गृहस्थ जीवन का यही आनन्द है कि अपनी प्रिया के साथ कुछ समय हास-परिहास में व्यतीत करें। ऐसा सुन रुक्मिणी जी का पति से त्याग का भय दूर हो गया। वे लजाती हुई हँस कर बोलीं। आपके समान कोई कैसे हो सकता है जिसके आगे ब्रह्मा आदि नतमस्तक रहते हैं। भगवान् के समक्ष अपनी भक्तिपूर्ण-अकिञ्चनता को प्रकट करने लगीं। भगवान् की सभी उलाहनाओं को एक अनन्य दासी की तरह उनके दिव्यगुणों के रूप में अभिव्यक्त करने लगीं। हरिकथाकार कहते हैं कि भगवान् ने श्लोक 10 से 20 तक में अपनी कमियों का वर्ण न किया है जिसके कारण वे अपने को उनके पति होने के योग्य नहीं पाते हैं। 1। समानता का अभाव, 2।डरपोक, 3।भाग कर समुद्र में वसना, 4।बलवानों से शत्रुता, 5।राज्य त्यागी, 6।अनिश्चित व्यवहार, 7।लोक प्रचलित रीतियों की उपेक्षा, 8।सद्‌गुण का अभाव, 9।गरीबों की संगति, 10।एकान्तप्रियता,

11।गृहस्थी से अनासक्ति। रुक्मिणी जी ने भगवान् की उक्तियों का उदाहरण देकर उनके द्वारा वर्णित सभी कमियों को उनका सद्गुण बतायीं। जो श्लोक **34** से **48** तक में द्रष्टव्य है। भगवान् जो चाहते थे कि प्रतिक्रिया में रुक्मिणी देवी की मुखाकृति तथा उनकी अन्य कोपजन्य भंगिमाओं को देखें तो रुक्मिणी जी ने उसीतरह का अभिनय कर भगवान् को प्रसन्न कर दिया।

जाड्यं वचस्तव गदाग्रज यस्तु भूपान् विद्राव्य शार्ङ्ग-निनदेन जहर्थ मां त्वम्।
सिंहो यथा स्वबलिमीश पशून् स्वभागं तेभ्यो भयाद् यत्-उदधिं शरणं प्रपन्नः।।10।60।40।।

हरिकथाकार कहते हैं कि इस श्लोक में गदा एवं शार्ङ्ग धनुष की उपमा देकर रुक्मिणी जी ने इन आयुधों के संचालन में अपनी भुजाओं की भंगिमाओं को दर्शाया। उनकी भौंहें भी धनुष के टंकार के वर्णन में उसी तरह नाचने लगीं। कहती हैं कि जैसे सिंह वनैले जानवरों के बीच से अपना शिकार उठा ले जाता है वैसे ही हे गदाग्रज ! आपने अपने धनुष के टंकार से जरासंध तथा रुक्मी आदि को भयाक्रांत कर दिया। कोई मूर्ख ही ऐसा कह सकता है कि आप ने जरासन्ध के भय से समुद्र की शरण लेकर मथुरा को द्वारका में लाकर वसा दिया।

कान्यं श्रयेत तव पादसरोज गन्धम्-
आघ्राय सत्-मुखरितं जनता-अपवर्गम्।
लक्ष्मी-आलयं तु-अविगणय्य गुण-आलयस्य
मर्त्या सदा-उरु-भयम्-अर्थ-विविक्त-दृष्टिः।।10।60।42।।

आपने कहा कि **"वृता वयं गुणैः हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा।16।।" "अथात्मनो-अनुरूपं वै भजस्व।17।"** आप गुणहीन हैं, मात्र भिखारीगण आपका यशगान करते हैं। मुझे आपने कहा कि अभी भी सुयोग्य वर ग्रहण करो। हे प्रभु ! आपके श्रीचरणों की सुगन्ध का नित्य यशगान मुनिगण करते रहते हैं। आपके चरणसरोज ही लक्ष्मी जी का धाम है। आपके श्रीचरणों की सुगन्ध का एकबार मुझे आनन्द मिल गया तब मैं कोई मरणशील पुरुष की शरण क्यों जाऊँगी !

तस्याः स्युः अच्युत नृपा भवता-उपदिष्टाः स्त्रीणां गृहेषु खर-गो-श्व-बिडाल-भृत्याः।
यत्-कर्णमूलम्-अरि-कर्षण न-उपयायात् युष्मत्कथा मृड-विरञ्चि-सभासु गीता।।**10।60।44**।।

हरिकथाकार कहते हैं कि भगवान् के इस कथन कि "तुम्हें लोकपाल जैसे सम्पन्न राजा चाहते हैं" के उत्तर में रुक्मिणी जी भगवान् की ओर रोष में अपनी तर्जनी अंगुली दिखाकर बोलती हैं - ये सभी राजा ऐसे हैं जिनके कान में ब्रह्मा तथा शिव की गोष्ठी में गायी जाने वाली आपकी लीला-महिमा कभी नहीं गयी है। ये राजा गण अपनी पत्नियों के प्रभाव के वशीभूत होकर गधा, बैल, कुत्ता, बिल्ली तथा नौकरों की तरह व्यवहार करते हैं।

एवं सौरत-संलापैः भगवान्-जगदीश्वरः।
स्वरतो रमया रेमे नरलोकं विडम्बयन्।।10।60।58।।

शुकदेव जी कहते हैं कि जगत् के नाथ आत्माराम भगवान् मधुर वार्तालाप करते हुए एक मनुष्य की भाँति अपनी प्रिया के साथ रमन करते रहे। अन्य रानियों के साथ भी उन्होंने एक सफल गृहस्थ जैसा व्यवहार किया।

10 | 34 | रुक्मी-वध, उषा-अनिरुद्ध मिलन तथा बाणासुर से भगवान् श्रीकृष्ण का युद्ध |

रुक्मी-वध | भगवान् श्रीकृष्ण की कुल सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियाँ थीं। सब से भगवान् के दस-दस पुत्र प्राप्त हुए। रुक्मिणी के बड़े बेटे प्रद्युम्न ने रुक्मी की बेटी रुक्मावती को स्वयंवर में जीत कर उससे विवाह किया।उससे उन्हें अनिरुद्ध नामक पुत्र प्राप्त हुआ जो भगवान् का पौत्र हुआ। रुक्मी ने अपनी पौत्री रोचना का विवाह अनिरुद्ध से किया। उस विवाह में भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलराम जी रुक्मी की राजधानी भोजकट नगर में उपस्थित थे। यद्यपि रुक्मी भगवान् से शत्रुता रखता था परन्तु उसने यह रिस्ता अपनी बहन रुक्मिणी को प्रसन्न करने के लिए किया था। वह तो अपने पिता की राजधानी कुण्डिन में तब तक नहीं जाने की शपथ ली थी जब तक भगवान् श्रीकृष्ण का वध नही कर लेगा। उसने तब से भोजकट नगर बसाया और वहीं रहता था। इस उत्सव में बलराम जी ने रुक्मी के साथ चौसर खेला। बलराम जी कई बार हारे तथा कई बार जीते। रुक्मी हारने पर भी बलराम जी को यह कहकर अपमानित करता था कि चरवाहा क्या जाने चौसर खेलना।

तदा-अब्रवीत्-नभोवाणी बलेनैव जितो ग्लहः।
धर्मतो वचनेनैव रुक्मी वदति वै मृषा।।10|61|33।।

तब आकाशवाणी हुई कि बलराम जी जीते हुए हैं परन्तु रुक्मी ने उसकी अवहेलना की। क्रोधवश बलराम जी ने अपनी गदा से उस पर प्रहार किया और वह मर गया। तदुपरान्त बारात द्वारका लौट आई।

उषा-अनिरुद्ध मिलन

स्मरणीय है कि बली महाराज को वामन भगवान् तथा त्रिविक्रम भगवान् के आशीर्वाद से ही भगवान् की भक्ति मिल गयी थी। बली महाराज प्रह्लाद जी के पौत्र थे। बली महाराज के सौ पुत्रों में बाणासुर सबसे बड़ा था।बाणासुर की एक हजार भुजायें थीं। वह शोणिपुर में रहता था। धार्मिक तथा दानी स्वभाव का था। वह शिव का उपासक था। एक बार जब शिव ताण्डव नृत्य कर रहे थे तब बाण ने अपनी हजार भुजाओं से मृदंग बजाकर शिव जी को प्रसन्न कर लिया था। वरदान में शिव जी बाण की राजधानी के पहरेदार हो गये थे। एक दिन बाण अपने बल के अहंकार में शिव को ही लड़ने के लिए ललकारा। शिव ने उसे डाँटते हुए कहा कि जिस दिन तुम्हारे रथ का ध्वज टूट कर गिरेगा उसी दिन तुम्हारे अहंकार का नाश होगा।

बाणासुर की उषा नामकी एक बहुत सुन्दर बेटी थी। एक बार स्वप्न में ही पार्वती-शिव की रतिक्रिया देख उषा को भी रतिक्रया के आनन्द लेने का मन हुआ। पार्वती ने उसके मन का भाव समझ उसे स्वप्न में ही कहा कि वैशाख शुक्ल द्वादशी को जो तुम्हारे स्वप्न में आयेगा वही तुम्हारा पति होगा। ऐसा ही हुआ। स्वप्न में उषा का अनिरुद्ध के साथ समागम हुआ। स्वप्न के बाद जागने पर उषा घवरायी हुई थी। बाणासुर के सेनापति की बेटी चित्रलेखा उषा की प्रिय सखी थी। उषा ने स्वप्न की अपनी बात चित्रलेखाा को बतायी।

दृष्टः कश्चिन्नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः।
पीतवासा बृहत्-बाहुः योषितां हृदयङ्गमः।।10|62|16।।

स्वप्न में उसके हृदय को जीतने वाले पीताम्बरधारी कमलनयन श्याम छविवाले एक सुन्दर युवक थे। हरिकथाकार कहते हैं कि भगवान के अंश के चतुर्व्यूह में मात्र संकषर्ण ही गोरे वर्ण के थे बाकी तीन वासुदेव,

प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध श्याम छविवाले थे। चित्रलेखा एक योगिनी तथा चित्रकार थी। उसने देवों के अनेक चित्र खींच कर दिखाये परन्तु जब वृष्णिवंशियों का चित्र खीचने लगी तब प्रद्युम्न के स्वरूप देख उषा लज्जित हो गयी। जब अनिरुद्ध का चित्र आया तब विल्कुल ही सिर नीचा कर बोली कि यही वह युवक है।
योगशक्ति से सोते हुए अनिरुद्ध को चित्रलेखा ने द्वारका से शोणितपुर लाकर उषा के कक्ष में रख दी। उषा ने अनिरुद्ध की पूजा कर सम्मान किया। दोनों एक दूसरे को चाहने लगे। उषा प्रसन्न होकर अपने कक्ष में अनिरुद्ध के साथ रहने लगी। उषा के शरीर पर रतिक्रिया के उभरते चिह्न देख रक्षिकाओं ने बाणासुर को इस बात की खबर दे दी। बाणासुर अपने सैनिकों के साथ उषा के पास आया। अनिरुद्ध ने उसके सैनिकों को परास्त कर भगा दिया परन्तु बाणासुर ने उन्हें नागपाश में बाँध कर कैद कर लिया।

बाणासुर तथा भगवान् श्रीकृष्ण का युद्ध

अनिरुद्ध की अनुपस्थिति से द्वारका में सब चिन्तित थे। एक दिन नारद जी ने आकर सबकुछ बताया। भगवान् यदुसेना को लेकर बलराम जी तथा प्रद्युम्न आदि के साथ शोणितपुर आये। बाणासुर की सेना के तरफ से शिव तथा कार्तिकेय आदि आये। घोर युद्ध हुआ। शिव स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण से लड़ रहे थे परन्तु उनके सभी अस्त्र-शस्त्र निष्फल हो रहे थे। शिव का जम्भाई लेने वाला अस्त्र भगवान् द्वारा स्तम्भित हो गया। बाणासुर का सामना भगवान् स्वयं करने लगे। वह परास्त होकर भाग गया। शिव ने तीन सिर तथा तीन पैर वाला शिवज्वर भगवान् पर छोड़ा। भगवान् ने विष्णुज्वर से उसे विकल कर दिया। अन्त में शिवज्वर भगवान् की शरण में आकर क्षमादान माँगने लगा। भगवान् ने शिवज्वर को मुक्त कर दिया और साथ ही यह भी कहा कि जो कोई इस प्रकरण को सुनेगा उसपर शिवज्वर का कोई असर नहीं होगा। शिवज्वर युद्धक्षेत्र से बाहर चला गया।बाणासुर नगर से वापस आकर भगवान् से युद्ध करने लगा।भगवान् बाण की भुजाओं को काटने लगे। ऐसा देख शिव स्वयं भगवान् से विनती करने लगे कि मेरे भक्त बाण पर अनुग्रह करें।

नाभिः नभो-अग्नि-मुखम्-अम्बु रेतो द्यौः शीर्षम्-आशा श्रुतिः अङ्घ्रि-उर्वी।
चन्द्रो मनो यस्य दृक्-अर्क आत्मा अहं समुद्रो जठरं भुज-इन्द्रः।।10।63।35।।
रोमाणि यस्य-औषधयो-अम्बुवाहाः केशा विरिञ्चो धिषण विसर्गः।
प्रजापतिः हृदयं यस्य धर्मः स वै भवान् पुरुषो लोककल्पः।।10।63।36।।

शिव ने भगवान् की स्तुति करते हुए उनके विराट स्वरूप का वर्णन किया। आकाश नाभि, अग्नि मुख, जल वीर्य, स्वर्ग मस्तक, दिशायें कान, औषधियाँ रोम, बादल बाल, धरती चरण, चन्द्रमा मन, सूर्य नेत्र, मैं स्वयं अर्थात शिव अहंकार, सागर पेट, इन्द्र भुजा, ब्रह्मा बुद्धि, प्रजापति लिंग तथा धर्म आपका हृदय है। आप ही आदि पुरुष तथा जगत के सृष्टिकर्ता हैं।

देवदत्तम्-इमं लब्ध्वा नृलोकम्-अजितेन्द्रियः।
यो न-आद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो हि-आत्म-वञ्चकः।।10।63।41।।

जो आपके द्वारा प्राप्त मनुष्य देह से अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रख पाता तथा आपके श्रीचरणों में शरणागत नहीं होता वह अपने आप को धोखा देनेवाला है। असुरराज प्रह्लाद जी पर आपने जैसा अनुग्रह किया वैसा

ही मेरे इस भक्त तथा प्रह्लाद जी के वंशज पर करें। भगवान् ने कहा कि मैंने प्रह्लाद को वचन दिया है कि उसके कुल के किसी व्यक्ति का वध नहीं करूँगा। भगवान् ने उसकी चार भुजाओं को छोड़ बाकी को काटकर उसके अहंकार का नाश किया। जब भगवान् ने बाणासुर को अभयदान दिया तब वह उषा तथा अनिरुद्ध को रथ से लाकर भगवान् को समर्पित कर दिया। भगवान् सबको लेकर द्वारका लौट आये।

10।35। नृग उद्धार

एक बार यदुवंशी बालकों ने एक छोटे जंगल के सूखे कुएँ में बहुत बड़ा एक गिरगिट देखा। उसे बाहर निकालने में सफल न होकर वे लोग भगवान् श्रीकृष्ण के पास गये। भगवान् ने आसानी से अपने बायें हाथ से उसे बाहर निकाल दिया। भगवान् के करसरोरुह के स्पर्श से उस गिरगिट का स्वरूप बदल गया। वह एक दिव्य पुरुष के रूप में दिव्यालंकृत दिखने लगा। भगवान् ने जब पूछा कि आप कौन हैं तब उसने अपने मुकुट के साथ भगवान् के चरणों में प्रणाम कर बोला कि मैं इक्ष्वाकु का पुत्र नृग हूँ। मेरा नाम दानियों में विख्यात है। मैंने असंख्य गौयें ब्राह्मणों को दान किया है। एक बार एक ब्राह्मण को दान में दी गयी एक गाय भटक कर मेरी गायों के झुण्ड में आकर मिल गयी। मैंने उस गाय को किसी अन्य ब्राह्मण को दान कर दिया। पहले वाले ब्राह्मण ने जब उस गाय को दूसरे ब्राह्मण के साथ देखा तब दोनों झगड़ते हुए मेरे पास आये। मैंने दोनों को उस गाय को एक लाख गाय देने का वादा किया और उस गाय को वापस माँगा। दोनों ने गाय के बदले अनेकों दूसरी गायें लेने से भी इन्कार कर दिया। कुछ हरिकथाकार कहते हैं कि आगे दान नहीं लेने का संकल्प करने के कारण दोनों ने अन्य गाय लेन से अस्वीकार कर दिया। दोनों ब्राह्मणों के जाने पर यमराज के दूत मुझे यमराज के पास ले गये। यमराज ने पूछा कि आप पहले अपने पाप का फल भोगेंगे या पुण्य का। मैंने पहले पाप का फल भोगने के लिए कहा। तब यमराज ने कहा कि नीचे गिरो। गिरते समय मैं रास्ते में गिरगिट के रूप में बदल गया। आज आपके दर्शन से मेरा उद्धार हुआ। नृग ने भगवान् की अनेकों तरह से स्तुति की ।

देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम।
नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोक-अच्युत-अव्यय।।10।64।27।।
अनुजानीहि मां कृष्ण यान्तं देवगतिं प्रभो।
यत्र क्वापि सतश्चेतो भूयात् मे त्वत्-पद-आस्पदम्।।10।64।28।।

हे प्रभु ! आपके अनुग्रह से ही दिव्यलोक मिल रहा है। अब जाने की अनुमति दें। मैं जिस किसी भी स्थिति में जहाँ भी रहूँ आपके चरणारविन्द की शरणागति में मेरा मन लगा रहे। भगवान् की परिक्रमा कर मुकुट के साथ सिर उनके श्रीचरणों पर रख दिव्य विमान से नृग चला गया। उपस्थित नागरिकों को भगवान् ने ब्राह्मण की महिमा बतायी। बिना उचित अनुमति के ब्राह्मण की सम्पत्ति का भोग करने वाला तीन पीढ़ियों तक तथा जो बलता् हर लेता है उसे दस पीढ़ी तक सर्वनाश भोगना पड़ता है। तत्पश्चात् भगवान् सबों के साथ द्वारका लौट गये।

10।36। बलराम जी की व्रज-यात्रा, यमुना जी को हल से खींचना एवं द्विविद बानर का बध

एक बार बलराम जी नन्द-यशोदा तथा अन्य गोपजनों से मिलने व्रज आये। नन्द जी ने भावुक हो उन्हें गोद में उठा लिया। तत्पश्चात् गोपियों ने भगवान् श्रीकृष्ण का समाचार पूछी।

भावुक गोपियों ने कहा कि अगर भगवान् हमलोगों को भूल कर रह सकते हैं तब हमलोगों का समय भी उनके विरह-वियोग में बीत ही जायेगा।

सङ्कर्षण: ता: कृष्णस्य सन्देशै: हृदयंगमै:।
सान्त्वयामास भगवान् नाना-अनुनय-कोविद:।।10।65।16।।
द्वौ मासौ तत्र च-अवात्सीत्-मधुं माधवमेव च।
राम: क्षपासु भगवान् गोपीनां रतिम्-आवहन्।।10।65।17।।

बलराम जी ने भगवान् श्रीकृष्ण के हृदय-स्पर्शी गुप्त संदेश से उन सबों को अवगत कराया। मधु मास तथा माधव मास अर्थात् चैत्र तथा वैशाख मास गोपियों को रात्रि में मधुर आनन्द प्रदान करते हुए बलराम जी वहाँ ठहरे। इस सम्बन्ध में श्रीविष्णुपुराण का सन्दर्भ द्रष्टव्य है।

सन्देशै: साममधुरै प्रेमगर्भै: अगर्वितै:।
रामेण-आश्वासिता गोप्य: कृष्णस्य-अतिमनोहरै:।। वि. पु. 5।24।20।।

बलराम जी ने गोपियों को भगवान् का गर्वरहित प्रेम-सन्देश सुनाया। हरिकथाकार कहते हैं कि सङ्कर्षण नाम को चरितार्थ करते हुए बलराम जी ने भगवान् श्रीकृष्ण को अपने मन में प्रकट कराया तथा विरही गोपियों को उनका दर्शन करा उनसबों को शान्तचित्त किया। वरुण देव की वारुणी देवी वृक्ष के खोड़र से बहकर मधुरस के सुगन्ध से उद्यानों में व्याप्त हो गयी।बलराम जी ने गोपियों के साथ स्वयं भी मधुधारा का पान किया।

स्रक्-वी-एक-कुण्डलो मत्तो वैजयन्त्या च मालया।
बिभ्रत्-स्मित-मुखाम्भोजं स्वेद-प्रालेय-भूषितम्।।10।65।22।।

उनके स्वरूप की शोभा अनोखी थी। बलराम जी गले की वैजयन्ती माला तथा एक कान में कुण्डल से शोभायमान हो रहे थे। उनके मुस्कान युक्त मुखारविन्द पर पसीना की बूँदें मोतियों की तरह झलक रही थीं। एक दिन मधुधारा को पान कर उन्होंने यमुना नदी को अपने पास आकर बहने के लिए आदेश दिया जिससे कि वे गोपियों के साथ जलविहार कर सकें। ऐसा नहीं होते देख उन्हें क्रोध आ गया। अपने हल से यमुना को खींचने लगे। यमुना प्रकट हुई और बलराम जी के चरणों पर गिर क्षमा माँगने लगी। बलराम जी गोपियों के साथ जलविहार कर जब बाहर आये तब यमुना देवी ने उन्हें बहुमूल्य उपहार अर्पित किये।

वसित्वा वाससी नीले मालाम्-आमुच्य-काञ्चनीम्।
रेजे स्वलङ्कृतो लिप्तो माहेन्द्र इव वारण:।।10।65।30।।

बलराम जी उस उपहार से प्राप्त नीले वस्त्र तथा सोने की कण्ठिका से अपने को अलंकृत कर इन्द्र के ऐरावत की तरह शोभायमान हुए। इस सन्दर्भ में श्रीविष्णुपुराण भी द्रष्टव्य है।

वरुणप्रहितां चास्मै मालाम्-अम्लान-पङ्कजाम्।
समुद्राभे तथा वस्त्रे नीले लक्ष्मीरयच्छत।।वि. पु. 5।25।16।।

लक्ष्मी जी की अंशभूता यमुना जी ने बलराम जी को वरुण से प्राप्त कभी न कुम्हलाने वाले कमल की माला तथा नीले वस्त्र प्रदान किया। आज भी बलराम जी के हल द्वारा खींचे जाने के सम्मान में यमुना जी व्रजक्षेत्र में अनेकों धाराओं में प्रवाहित होती हैं।

द्विविद बानर का वध

द्विविद नरकासुर का मित्र था। त्रेता में रामावतार के समय वह सुग्रीव का सचिव तथा मैंद का बलवान भाई था। द्वापर में अपने मित्र नरकासुर के वध का बदला लेने के लिए वह ग्वालों की वस्तियों का नाश करने लगा। ऋषि-मुनियों के आश्रम को भी क्षतिग्रस्त तथा अपने मल-मूत्र से अपवित्र करने लगा। एक दिन बलराम जी व्रज में रैवत पर्वत पर टिके थे और उसने उत्पात मचाया। बलराम जी के साथ की गोपियों के साथ भी अभद्र व्यवहार करने लगा। बलराम जी ने उसका वध कर दिया।

10।37। कपटी वासुदेव के रूप में पौण्ड्रक का भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अन्त।

जब बलराम जी व्रज आये थे तब करुष के राजा पौण्ड्रक ने द्वारका में भगवान् कृष्ण के पास दूत भेज कर उन्हें चुनौती दी। उसने कपटी स्वरूप में नकली शंख-चक्र-शार्गधनुष आदि तथा कृत्रिम कौस्तुभ धारण कर अपने को वासुदेव घोषित कर रखा था। शुकदेव जी कहते हैं कि -

त्वं वासुदेवो भगवानवतीर्णो जगत्पतिः।
इति प्रस्तोभितो बालैः मेन आत्मानम्-अच्युतम्।।**10।66।2**।।

मूर्खों की संगति में पौण्ड्रक ने अपने आप को वासुदेव का अवतार मान लिया था। भगवान् शीघ्र ही काशी पहुँच गये। भगवान् ने चक्र से उसका सिर काट गिराया तथा उसकी सहायता में आये काशिराज के सिर को उसके परिवार वालों के बीच भेज दिया। भगवान् स्वयं द्वारका लौट आये। काशिराज का पुत्र सुदक्षिण भगवान् से बदला चुकाने के लिए शंकर की पूजा करने लगा। शंकर ने उसे दक्षिणाग्नि की आराधना करा के उससे एक असुर को उत्पन्न किया। विकराल स्वरूप का वह असुर द्वारका गया। जब भगवान् ने अपना चक्र चलाया तब वह असुर काशी भाग गया और उसके पुरोहितों का अन्त कर दिया। भगवान् का चक्र भी काशी पहुँचा और उस नगर को भस्मीभूत कर द्वारका लौट आया।

10।38। जाम्बवती से उत्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब का विवाह

दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा के विवाह स्वयंवर में जाम्बवती का पुत्र साम्ब हस्तिनापुर गया और लक्ष्मणा का उसने अपहरण कर लिया। कौरवों ने उसको रास्ते में घेर लिया। वीरतापूर्वक कौरव के महारथियों से लड़ते हुए साम्ब उनलोगों के हाथ पकड़ लिया गया। जब द्वारका में राजा उग्रसेन को नारद जी से यह ज्ञात हुआ तब वे बलराम जी को हस्तिनापुर भेजे। हस्तिनापुर के बाहर एक बगीचे में बलराम जी टिक गये और उद्धव जी को कौरवों के पास दूत बनाकर भेजा। कौरवों ने बलराम जी का सम्यक सत्कार किया और उन्हें अनेकों बहुमूल्य उपहार दिया। जब बलराम जी ने साम्ब को मुक्त करने को कहा तब कौरवों ने कटु वाणी का प्रयोग करते हुए बलराम जी के स्वाभिमान को ठेंस पहुँचाई।

यस्य पादयुगं साक्षात् श्रीः-उपास्ते-अखिलेश्वरी।
स नार्हति किल श्रीशो नरदेव-परिच्छदान्।।**10।68।36**।।
यस्य-अङ्घ्रि-पङ्कज-रजो-अखिल-लोकपालैः-मौलि-उत्तमै-धृतम्-उपासित-तीर्थ-तीर्थम्।
ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः श्रीः-च-उद्वहेम-चिरमस्य नृपासनं क्व।।**10।68।37**।।

बलराम जी ने मन ही मन विचार किया कि समस्त जगत् की अधिष्ठात्री लक्ष्मी देवी भगवान् श्रीकृष्ण के चरणरज को धारण करती हैं। ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा से कौरव अनभिज्ञ हैं। जिनके चरणरज से तीर्थ की पवित्रता होती है, जिस रज को लोकपाल अपने मुकुट पर धारण कर महान बनते हैं, ब्रह्मा-शिव एवं लक्ष्मी जी के साथ मैं भी सौभाग्यवान बनता हूँ उनकी सत्ता से कौरव कैसे अनभिज्ञ हैं ! भगवान् श्रीकृष्ण की सत्ता को सबलोग मानते हैं परन्तु मूढ़ कौरव को अहंकार हो गया है। ऐसा सोच बलराम जी अपने हल की नोक से हस्तिनापुर को गंगा की ओर खींचकर डुबाने की मनसा बनाने लगे। ऐसा करते ही हस्तिनापुर डगमगाने लगी। अपने अस्तित्व की सुरक्षा को खतरे में देख कौरव साम्ब के साथ लक्ष्मणा को आगे कर बलराम जी की शरणागत हो गये। कौरवों द्वारा बहुत सारे उपहारों के साथ लक्ष्मणा को समर्पित करते देख बलराम जी शान्त हो गये। नवविवाहिता साम्ब एवं लक्ष्मणा को साथ ले बलराम जी द्वारका पुरी आ गये।

10।39।। द्वारका पधारकर कर नारद जी ने भगवान् श्रीकृष्ण की दिनचर्या को देखा ।

नरकासुर के वध के बाद भगवान् ने द्वारका में नरकासुर के कैद से मुक्त सोलह हजार एक सौ कन्याओं के साथ एक ही बार अलग-अलग महलों में विवाह किया।

चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत् पृथक।
गृहेषु द्वयष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत्।।10।69।2।।

इस समाचार से विस्मित हो नारद जी भगवान् का दर्शन करने द्वारका पहुँचे। पहले वे रुक्मिणी जी के महल में प्रवेश कर गये। भगवान् ने नारद जी को पधारते देख उनका स्वागत किया तथा देवर्षि के चरण में अपने मुकुट रख उनको प्रणाम किया।

सम्पूज्य देवऋषि-वर्यम्-ऋषिः पुराणो नारायणो नरसखो विधिना-उदितेन।
वाण्या-अभिभाष्य मितया-अमृत-मिष्टया तं प्राह प्रभो भगवते करवाम हे किम्।।**10।69।16।।**

इस श्लोक में शुकदेव जी ने भगवान् श्रीकृष्ण को नर के मित्र नारायण ऋषि कहा है। उन्होंने देवर्षि नारद जी का विधिवत सत्कार करते हुए अमृत के समान मीठे वचनों से पूछा कि आपका कौनसा काम करूँ ?

दृष्टं तवाङ्घ्रियुगलं जनतापवर्ग ब्रह्मादिभिः-हृदि विचिन्त्यम्-अगाधबोधैः।
संसारकूप-पतित-उत्तरण-अवलम्बं ध्यायन्-चरामि-अनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात्।।10।69।18।।

नारद जी बोले - जिन श्रीचरणों का ब्रह्मा तथा शिव आदि ध्यान करते हैं और जो संसार कूप से उद्धार करने वाला एकमात्र आश्रय है उन श्रीचरणों को निरन्तर हृदयस्थ कर विचरन करने की कामना करता हूँ। इसके बाद नारद जी दूसरे महल में गये। भगवान् को अपनी प्राणप्रिया तथा उद्धव जी के साथ चौसर खेलते देखा। अन्य महल में बच्चों के साथ उन्हें खेलते देखा। किसी अन्य महल में स्नान की तैयारी में देखा। कहीं हवन करते देखा। कहीं मौन जप करते देखा। कहीं तलवार लेकर पैंतरेवाजी करते देखा। कहीं ब्राह्मणों को भोजन कराते देखा। कहीं उद्धव जी आदि मन्त्रियों से विमर्श करते देखा। कहीं हाथी तथा घोड़े-रथ आदि पर विचरण करते देखा। कहीं जलविहार करते देखा। कहीं कथा-श्रवण करते देखा। कहीं हास्य-विनोद में देखा। कहीं अपनी

सन्तानों का विवाह करते देखा। कहीं समाधि में देखा। कहीं वेष वदल प्रजा में घूमते देखा। भगवान् की योगमाया की लीला देख नारद जी उनकी महिमा का गान करने लगे। शुकदेव जी कहते हैं -

एवं मनुष्य-पदवीम्-अनुवर्तमानो नारायणो-अखिल-भवाय गृहीतशक्तिः।

रेमे-अङ्ग षोडशसहस्र-वराङ्गनानां सव्रीड-सौहृद-निरीक्षण-हास-जुष्टः।।10।69।44।।

हे राजा परीक्षित ! अपनी योगमाया के सहारे जगत हितार्थ भगवान् सोलह हजार से अधिक रानियों के मन्द-मन्द मुस्कान से युक्त प्रेमभरी चितवन का आनन्द लेते हुए सबों के साथ जन सामान्य की तरह विहार करते थे।

यानीह विश्व-विलय-उद्भव-वृत्तिहेतुः कर्माणि-अनन्य-विषयाणि हरिश्चकार।

यस्त्वङ्ग गायति श्रृणोति-अनुमोदते वा भक्तिः-भवेद् भगवति हि-अपवर्ग-मार्गे।।10।69।45।।

सृष्टि की रचना, पालन तथा संहार करने वाले भगवान् के सभी कर्म अलौकिक हैं। उनकी लीला का कीर्तन, गान तथा लीला-महिमा का आनन्द लेनेवाले को मोक्षप्रदाता भगवान् के श्रीचरणों की भक्ति प्राप्त हो जाती है।

।। स्कन्ध 10 के अध्याय 34 से 69 तक का भाग पूरा हुआ।।

10।40। भगवान्श्रीकृष्ण की द्वारका की दिनचर्या, जरासन्ध के जेल से कैद राजाओं के दूत का द्वारका आना तथा नारद जी द्वारा युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ का द्वारका में निमन्त्रण लाना।

उद्यानों से भरे द्वारका में प्रात: काल के आगमन की सूचना पक्षियों के कलरव तथा चहक से मिल जाती थी। भगवान् श्रीकृष्ण की दिनचर्या ब्रह्ममुहूर्त से प्रारम्भ हो जाती है।

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय वारि-उपस्पृश्य माधव:।

दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमस: परम्।।10।70।4।।

ब्रह्म मुहूर्त में हाथ-पैर धोकर जगत्के सभी जीवों के हित में अपने विराट स्वरूप का ध्यान करते। भगवान् शरीरी हैं तथा समस्त सृष्टि उनका शरीर है। आत्म-शरीर में ही सम्पूर्ण सृष्टि के सभी जड़ चेतन के संरक्षण हेतु ध्यान रत होते हैं। स्नानादि के पश्चात् सन्ध्या करते। हवन के साथ मौन हो वैदिक मन्त्र का जप करते। पितरों एवं ऋषियों के तर्पण, सुअलंकृत गौओं का दान, ब्राह्मण-गौ-देव-गुरु को नमस्कार, घी एवं दर्पण में मुखदर्शन, प्रजाजन को मनमाना उपहार तथा मन्त्रियों की इच्छा-पूर्ति के पश्चात् चन्दानि से अलंकृत होकर उद्धव जी एवं सात्यकि आदि के साथ रथ पर सवार होकर सुधर्मा की ओर प्रस्थान करते। हरिकथाकार कहते हैं कि रथ पर सवार पर होने के पूर्व भगवान् अपने पृथक-पृथक स्वरूप में विभिन्न महलों में दिनचर्या सम्पन्न करते। सभी महलों के स्वतन्त्र स्वरूप में बाहर आते परन्तु रथ की ओर चलते समय सभी स्वरूप एक स्वरूप में समा जाते।

ईक्षितो-अन्त:पुर-स्त्रीणां सव्रीड-प्रेम-वीक्षितै:।

कृच्छ्राद् विसृष्टो निरगात्-जात-हासो हरन् मन:।।10।70।16।।

महलों से निकलते समय रानियों की प्रेमभरी लज्जापूर्ण चितवन एवं हास के आनन्द का आदान-प्रदान करते हुए रानियों के नहीं भी चाहने पर बाहर आते। रथ से वे सुधर्मा सभा पहुँचते।

सुधर्माख्यां सभां सर्वै: वृष्णिभि: परिवारित:।

प्राविशद्यद् निविष्टानां न सन्ति-अङ्ग षट्-ऊर्मय:।।10।70।17।।

सभी वृष्णि परिवार के साथ सुधर्मा सभा में प्रवेश करते। देवों ने द्वारका में भगवान् के सम्मान में सुधर्मा का उपहार स्वर्ग से लाकर दिया था। इसमें प्रवेश करने के पश्चात् भूख-प्यास, शोक-मोह तथा जरा-मृत्यु नामक छ: सांसारिक विकार नहीं सताते। विदूषक के मनोरंजन, वन्दीजनों के यशगान तथा पौराणिक कथाओं की प्रस्तुति चलती। एक दिन एक दूत आया जो जरासन्ध के कैद में पड़े बीस हजार राजाओं का भगवान् श्रीकृष्ण के नाम सन्देश लेकर आया था। कैद में पड़े राजाओं ने भगवान् की शरणागति लेते हुए कैद से मुक्त करने का अनुरोध किया था। इतने में नारद जी का वहाँ आगमन हुआ।

राजदूते ब्रुवत्येवं देवर्षि: परमद्युति:।

बिभ्रत् पिङ्ग-जटाभारं प्रादुरासीद् यथा रवि:।।10।70।32।।

शुकदेव जी ने कहा कि सिर पर सुनहरी जटाओं के साथ परम तेजस्वी नारद जी सूर्य के समान तेजोमय थे। भगवान् के साथ अन्य सभासदों ने नारद जी का खड़े होकर सम्मान किया। उनकी पूजा कर उन्हें उचित आसन पर

विराजमान कराया गया। भगवान् ने तीनों लोक में भ्रमणशील नारद जी से पाण्डवों की कुशल क्षेम पूछी। मुनि ने युधिष्ठर द्वारा आयोजित राजसूय यज्ञ में भगवान् को पधारकर उनको आशीर्वाद देने का निमन्त्रण दिया।

श्रवणात् कीर्तनाद् ध्यानात् पूयन्ते-अन्ते-वसायिन:।

तव ब्रह्म-मयस्य-ईश किम्-उत-ईक्षा-अभिमर्शिन: ।।10।70।43।।

नारद जी ने कहा कि आपकी लीला के श्रवण, कीर्तन तथा आपके स्वरूप पर ध्यान से अन्त्यज्य भी पवित्र हो जाते हैं। उनके भाग्य का क्या कहा जाय जो आपका दर्शन तथा सेवा करते हैं।

यस्य-अमलं दिवि यश: प्रथितं रसायां

भूमौ च ते भुवनमङ्गल दिग्वितानम्।

मन्दाकिनी-इति दिवि भोगवती-इति च-अधो

गङ्गेति चेह चरणाम्बुज पुनाति विश्वम्।।10।70।44।।

हे भुवनमंगल! स्वर्ग, धरती तथा पाताल में व्याप्त आपकी कीर्ति सबको वैसे ही पवित्र कर रही है जैसे आपकी चरणामृत-धारा स्वर्ग को मन्दाकिनी, पाताल को भोगवती तथा धरती को गंगा नाम से पवित्र करती है। सुधर्मा सभा में जरासन्ध के क्षेत्र में जाकर राजाओं को मुक्त करने के प्रस्ताव का यादवों ने विरोध किया। ऐसा सुन भगवान् ने उद्धव जी की ओर मुस्कराते हुए देखकर उनसे कहा -

त्वं हि न: परमं चक्षु: सुहृत्-मन्त्रार्थ-तत्त्ववित्।

तथा-अत्र ब्रूहि-अनुष्ठेयं श्रद्दध्म: करवाम तत्।।10।70।46।।

आप ही हमारी आँख तथा परम मित्र हैं। जरासन्ध द्वारा कैद राजाओं के दूत का सन्देश तथा नारद जी का हस्तिनापुर के राजसूय यज्ञ का निमन्त्रण - इन दोनों कार्यो की गम्भीरता को आप पूर्णतया समझने वाले हैं। आप पर हमारी परम श्रद्धा है। आप जैसा बतायेंगे हम वैसा ही करेंगे। भगवान् का उद्धव जी से परामर्श करने का अभिप्राय है कि पहले किस कार्य को प्राथमिकता देनी है यह उद्धव जी बतायें। उद्धव जी सभासदों तथा नारद जी की बातें सुन चुके थे।

यष्टव्यं राजसूयेन दिक्चक्र-जयिना विभो।

अतो जरासुत-जय उभयार्थो मतो मम।।10।71।3।।

उद्धव जी ने कहा कि राजसूय यज्ञ के पूर्व दिग्विजय करनी होती है। इसी क्रम में जरासन्ध को जीतकर ही कैदी राजाओं को मुक्त किया जाय। इस से दोनों उद्देश्य पूरे हो जायेंग। जरासन्ध को दस हजार हाथियों का बल प्राप्त है जिसे केवल भीम ही जीत सकते हैं। जरासन्ध ब्राह्मणों को सम्मान करता है।इसलिए भीम ब्राह्मण के वेष में जाकर उससे मल्ल युद्ध की याचना करें। आपकी उपस्थिति में भीम उसे अवश्य ही मार डालेंगे। इसके बाद युधिष्ठर का राजसूय यज्ञ निर्विघ्न पूरा हो जायेगा।

गायन्ति ते विशदकर्म गृहेषु देव्यो राज्ञां स्वशत्रु-वधम्-आत्म-विमोक्षणं च।

गोप्यश्च कुञ्जरपते:-जनक-आत्मजाया: पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो वयं च।।10।71।9।।

उद्धव जी भगवान्‌की महिमा का गान करते हैं। हे प्रभु ! कैदी राजाओं की पत्नियाँ आपकी विमल कीर्ति का गान करते हुए कहती हैं कि आप गोपियों के एकमात्र आश्रय हैं। आपने गजेन्द्र, जानकी जी तथा अपने माता-पिता

के शत्रु को मारा है। आपके शरणागत मुनिगण आपके यशगान में निरन्तर लगे रहते हैं। नारद जी, सभासदों तथा भगवान् श्रीकृष्ण सबको उद्धव जी की राय अच्छी लगी। नारद जी प्रस्थान कर गये। कैदी राजाओं के दूत को भगवान्ने जरासन्ध के वध का आश्वासन देकर विदा कर दी।

सङ्कर्षणम्-अनुज्ञाप्य यदुराजं च शत्रुहन्।

सूतोपनीतं स्वरथम्-आरुहद् गरुडध्वजम्।।10।71।13।।

बलराम जी, राजा उग्रसेन तथा अन्य सबों की अनुमति ले भगवान् पाण्डवों के पास इन्द्रपस्थ जाने के लिए तैयार हो गये। भगवान् अपने गरुड-ध्वज रथ से चले तथा यादवों की सेना से पूर्णतया सुरक्षित उनकी रानियाँ पीछे-पीछे पालकी से चलीं। जब भगवान् इन्द्रप्रस्थ पहुँचे तब युधिष्ठर ने बैदिक ऋचाओं तथा अन्य मंगल वाद्यों की ध्वनि के साथ भगवान् का भव्य स्वागत करते हुए प्रेम से उनका बार-बार आलिंगन किया।

दोर्भ्यां परिष्वज्य रमा-अमल-आलयं मुकुन्दगात्रं नृपति:-हत-अशुभ:।

लेभे परां निर्वृतिम्-अश्रुलोचनो हृष्यत्-तनु:-विस्मृत-लोक-विभ्रम:।।10।71।26।।

भगवान्के वक्ष:स्थल पर स्थित निर्मल रमा-लक्ष्मी जी के स्पर्श से युधिष्ठर के सारे पाप धुल गये। अश्रुपूरित नेत्रों से वे परमानन्द में निमग्न हो लोक व्यवहार को भूल गये। भगवान् अन्य पाण्डवों से यथायोग्य सम्मान के साथ मिले। नगर निवासियों ने भी भगवान् की पूजा करते हुए अपने-अपने उपहार समर्पित किये।

स्वयं च कृष्णया राजन् भगिन्या चाभिवन्दित:।।41।।

भगवान् कुन्ती देवी को सम्मान दे द्रौपदी तथा अपनी बहन सुभद्रा से मिले। द्रौपदी ने भगवान्की सब पटरानियों तथा अन्य रानियों का सम्मान करते हुए रत्नादि उपहारों से उनका सत्कार किया।

सुखं निवासयामास धर्मराजो जनार्दनम्।

ससैन्यं सानुग-अमात्यं स-भार्यं च नवं नवम्।।10।71।44

उनकी सेना, सेवक, मन्त्रीगण तथा रानियों के साथ भगवान्का पाण्डवों ने नित्य-प्रति नये स्वागत-भाव के साथ उनके इन्द्रप्रस्थ के आवास काल को सुखमय बनाये रखा। भगवान्ने इन्द्रपस्थ के अपने निवास काल में अर्जुन के साथ खाण्डव वन अग्निदेव को समर्पित कर उन्हें तुष्ट किया। खाण्डव दहन में मय दानव को सुरक्षा प्रदान किया जिसने फलस्वरूप राजा युधिष्ठर के लिए इन्द्रप्रस्थ में एक अद्भुद सभागार का निर्माण किया।

एक दिन राजसभा में युधिष्ठर ने भगवान्से राजसूय यज्ञ करने की अनुमति लेते हुए कहा -

क्रतुराजेन गोविन्द राजसूयेन पावनी:।

यक्ष्ये विभूती: भवत: तत् सम्पादय न: प्रभो।।10।72।3।।

अतिपवित्र राजसूय यज्ञ को सभी यज्ञों का राजा कहा गया है। आपके ऐश्वर्यपूर्ण स्वरूप का मैं इस यज्ञ के द्वारा पूजा करना चाहता हूँ। आप आशीर्वाद दें। युधिष्ठर ने भगवान्का यशोगान करते हुए कहा -

त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरन्ति ध्यायन्ति-अभद्र-नशने शुचयो गृणन्ति।

विन्दन्ति ते कमलनाभ भव-अपवर्गम्-आशासते यदि त आशिष ईश नान्ये।।10।72।4।।

हे कमलनाभ ! आपके श्रीचरण की पादुका की सेवा एवं यशोगान करने वाले भक्तों के सभी अमंगल नष्ट हो जाते हैं।उन्हें मनोवांछित सांसारिक वस्तुयें भी मिल जाती हैं।आपके चरणारविन्द से विमुखों को शान्ति नहीं ।

न ब्रह्मणः स्व-पर-भेद-मतिः तव स्यात् सर्वात्मनः समदृशः स्वसुखानुभूतेः।

संसेवतां सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवा-अनुरूपम्-उदयो न विपर्ययो-अत्र। ।10।72।6। ।

आप साक्षात परब्रह्म हैं। आपकी सेवा करने वाले को भावना एवं क्रिया भेद के अनुरूप ही फल मिलता है जैसे कल्पवृक्ष की सेवा करने वाले को मिलता है। राजसूय यज्ञ के अनुष्ठान करने की योजना पर भगवान् ने राजा युधिष्ठर की प्रशंसा की। इस यज्ञ के शुभारम्भ के पूर्व सारे राजाओं को जीतना होगा।

न कश्चिन्-मत्परं लोके तेजसा यशसा श्रिया।

विभूतिभिः वा-अभिभवेद् देवोऽपि किमु पार्थिवः। ।10।72।11। ।

भगवान् कहते हैं कि मुझ पर आश्रित मेरे भक्त को देवता भी नहीं हरा सकते हैं, इन राजाओं की क्या विसात है। भगवान्‌की बात पर राजा युधिष्ठर प्रसन्न हुए तथा उन्होंने दिग्विजय हेतु अपने भाइयों को भिन्न-भिन्न दिशाओं में भेजा। भाईलोग राजाओं को हराकर प्रचुर धन लाये परन्तु जरासन्ध पर विजय नहीं प्राप्त कर सके। उद्धव जी की राय के अनुसार भगवान् ने भीम एवं अर्जुन को साथ ब्राह्ण के वेश में जरासन्ध की राजधानी गिरिव्रज पहुँचे।जरासन्ध से मिलकर कहा कि हमलोग आपके पास कुछ याचना हेतु आये हैं।

किं दुर्मर्षं तितिक्षूणां किम्-अकार्यम्-असाधुभिः।

किं न देयं वदान्यानां कः परः समदर्शिनाम्। ।10।72।19। ।

हरिश्चन्द्रो रन्तिदेव उञ्छवृत्तिः शिबिः बलिः।

व्याधः कपोतो बहवो हि-अध्रुवेण ध्रुवं गताः। ।10।72।21। ।

भगवान्‌ने जरासन्ध से कहा कि सहिष्णु सबकुछ सहते हैं, दुष्ट कुछ भी अमंगल कर सकता है, उदार दानी क्या नहीं दान दे देता एवं समदृष्टि वाले के लिए कोई पराया नहीं होता। हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, अन्न चुन कर खाने वाले मुद्‌गल, शिबि, बलि, व्याध एवं कपोत ने अपने अतिथि को संतुष्ट कर अविनाशी पद पाया। हरिश्चन्द्र पर विश्वामित्र का ऋण था। उससे मुक्त होने के लिए पत्नी तथा बच्चे को बेचकर चाण्डाल की वृत्ति करने पर भी उनको स्वर्ग मिला। अड़तालिस दिनों तक विना अन्न-जल के रहने वाले रन्तिदेव को जब कुछ भोजन तथा जल मिला तब कुछ अतिथि के आने पर उन्होंने सब अतिथियों को बाँट दिया। इस त्याग के कारण वे ब्रह्मलोक गये। मुद्‌गल खेत से गिरे हुए अन्न चुनकर जीवन यापन करते थे। परन्तु अतिथियों को कभी खाली नहीं लौटाते थे। शरण में आये कबूतर की रक्षा के लिए राजा शिबि ने बाज को अपने देह का मांस काटकर दिया। असुरों के राजा बलि ने वामन भगवान्‌को मुँहमाँगा दान दिया तथा अपना शरीर भी भगवान्‌को दान कर दिया। कबूतर दम्पति ने बहेलिये को आतिथ्य में अपने शरीर को समर्पित कर दिया। इससे कबूतर स्वर्गलोक गया। कबूतर के व्यवहार से बहेलिये को भी ज्ञान हुआ। व्याध ने शिकारी वृत्ति को छोड़कर जंगल में तपस्या करते हुए जंगली आग में जल कर कल्याण को प्राप्त किया। ये सभी महानुभावों ने नश्वर शरीर से ही श्रेयस प्राप्त किया।

शुकदेव जी ने कहा कि ऐसा सुन जरासन्ध को लगा कि पहले इनलोगों को कहीं देखा है। इनके हाथ पर धनुष की डोरी का चिह्न देख वह समझ गया कि ये सब ब्राह्मण नहीं क्षत्रिय हैं। जरासन्ध के मन में आया छद्म रूप वाले वामन भगवान् को बलि ने मुँहमाँगा दान दिया था। यहाँ तक कि भगवान् को उसने अपना शरीर भी दे दिया था। ऐसा सोच उसने कहा कि जो माँगना हो माँगो मैं दूँगा।

भगवान्ने जरासन्ध को कहा कि हमलोग राजकुमार हैं और आप से मल्ल युद्ध की भिक्षा माँगने आये हैं। यह है भीम, यह है अर्जुन और मैं इनका ममेरा भाई तथा तुम्हारा शत्रु कृष्ण हूँ। जरासन्ध ने कहा कि कृष्ण तुम कायर हो, अर्जुन बच्चा है परन्तु भीम मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध कर सकता है। दोनों में द्वन्द्व युद्ध हुआ। सत्ताईस दिन दोनों लड़ते रहे। भगवान् को पता था कि जन्म के समय जरासन्ध का शरीर दो भागों में था। जरा नामकी राक्षसी ने दोनों को एक साथ कर दिया था। भगवान्ने दूसरे दिन भीम को एक लकड़ी लेकर उसे चीरकर भीम को संकेत दिया कि जरासन्ध इसी तरह से मरेगा। भीम ने वैस ही किया। भीम ने जरासन्ध को भूमि पर पटक कर अपने पैर से जरासन्ध के एक पैर को दबाया तथा दूसरे पैर को ऊपर उठा गुदा से शिर तक चीरकर दो अलग दिशाओं में फेंक दिया। जरासन्ध मारा गया। भगवान् ने जरासन्ध के पुत्र सहदेव को राजा बनाकर उसके कैद में पड़े बीस हजार आठ सौ राजाओं को मुक्त कराया। उनलोंगों को भगवान्ने अपने दिव्य स्वरूप का दर्शन कराया।

ददृशु: ते घनश्यामं पीतकौशेय-वाससम्।10।73।2।।
श्रीवत्साङ्कं चतुर्बाहुं पद्मगर्भ-अरुणेक्षणम्।
चारु-प्रसन्नवदनं स्फुरत्-मकर-कुण्डलम्।।10।73।3।।
पद्महस्तं गदा-शङ्ख-रथाङ्गै: उपलक्षितम्।
किरीट-हार-कटक-कटिसूत्र-अङ्गदाचितम्।।10।73।4।।
भ्राजत्-वर-मणिग्रीवं निवीतं वनमालया।
पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया।।10।73।5।।
जिघ्रन्त इव नासाभ्यां रम्भन्त इव बाहुभि:।
प्रणेमु: हत-पाप्मानो मूर्धिभि: पादयो: हरे:।।10।73।6।।

श्याम वर्ण के भगवान् पीताम्बर, वक्षस्थल पर श्रीवत्स, लालकमल जैसी सुन्दर आँखें, लावण्यपूर्ण मुखारविन्द, मछली की आकृति वाला चमकता कुण्डल, चारो भुजाओं में कमल-गदा-शंख-चक्र, मस्तक पर रत्नजड़ित मुकुट, सुवर्ण हार, सुनहरी करधनी, सुवर्ण कड़ा, कण्ठ में कौस्तुभमणि तथा वनमाला से सुशोभित हो रहे थे। इस दिव्य-दर्शन से राजागण मानों उनके सौंदर्य को आँखों से पीने, जीभ से चाटने, नाक से सूँघने तथा भुजाओं से उनके आलिंगन के आनन्द में लीन हो गये। उनके समस्त पाप मिट गये। भगवान् के श्रीचरणों में राजाओं ने अपना मस्तक रख प्रणाम करते हुए उनका यशोगान किया।

नमस्ते देवदेवेश प्रपन्न-आर्तिहर-अव्यय।
प्रपन्नान् पाहि न: कृष्ण निर्विण्णान घोर-संसृते।।10।73।8।।
तं न: समादिश-उपायं येन ते चरणाब्जयो:।
स्मृति: यथा न विरमेत्-अपि संसरताम्-इह।।10।73।15।।
कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणत-क्लेश-नाशाय गोविन्दाय नमो नम:।।10।73।16।।

देवताओं के स्वामी, अविनाशी श्रीकृष्ण प्रभु को नमस्कार। हे शरणागतों के कष्ट को दूर करने वाले ! इस निराशापूर्ण भौतिक जीवन से हमें छुटकारा दिलाइये। जन्म-मृत्यु के चक्कर में इस संसार में आने जाने से छूटने हेतु आपके चरणारविन्द को निरन्तर स्मरण करना एक मात्र उपाय है। हे प्रभु ! आप उचित मार्ग बतायें जिससे हम

आपके श्रीचरणों का स्मरण करते रहें ! चरणाश्रितों के कष्ट दूर करने वाले, हे श्रीकृष्ण-वासुदेव -हरि-परमात्मा-गोविन्द ! आपको बार-बार प्रणाम। भगवान्ने अपनी अचल भक्ति का वरदान हेतु हुए उनलोगों को स्नान कराके सुन्दर वस्त्रों, चन्दनादि एवं आभूषणों से अलंकृत कर सुस्वादु भोजन कराया। सबों को अलग-अलग सुन्दर रथों पर सवार कर उनकी राजधानियों में भेज दिया। भगवान् भी इन्द्रप्रस्थ वापस आ गये। राजा युधिष्ठर ने स्नेहाश्रुभरे नेत्रों के साथ भगवान् का सादर सत्कार किया। राजसूय यज्ञ सम्पन्न कराने के लिए युधिष्ठर ने कृष्णद्वैपायन, भरद्वाज, पराशर तथा कश्यप आदि उच्च कोटि के पुरोहितों को आमन्त्रित किया। इसके अतिरिक्त द्रोण, भीष्म, अपने पुत्रों के साथ धृतराष्ट्र तथा विदुर आदि आमंत्रित किये गये। सबसे पहले युधिष्ठर ने यज्ञस्थल को हल से जोत कर भूमि शोधन किया।

अर्हति हि-अच्युत: श्रैष्ठ्यं भगवान् सात्वतां पति:।
एष वै देवता: सर्वा देशकाल-धन-आदय:।।10।74।19।।
श्रुत्वा द्विज-ईरितं राजा ज्ञात्वा हार्द सभासदम्।
समर्हयत्-हृषीकेशं प्रीत: प्रणयविह्वल:।।10।74।26।।

सहदेव ने यज्ञ में अग्रपूजा अर्थात् अतिविशिष्ट श्रेष्ठपुरुष की सबसे पहले पूजा करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण का नाम प्रस्तावित किया। उपस्थित सभी आमंत्रित सज्जनों ने सहदेव को साधुवाद दिया। युधिष्ठर ने अतिशय प्रेम विह्वल होकर श्रद्धा से भगवान् श्रीकृष्ण की विधिवत पूजा की।

तत्-पादौ-अवनिज्य-आप: शिरसा लोकपावनी:।
स-भार्य: सानुज-अमात्य: सकुटुम्बो-अवहत्-मुदा।।10।74।27।।
वासोभि: पीतकौशेयै: भूषणै: च महाधनै:।
अर्हयित्वा-अश्रुपूर्ण-अक्षो न-अशकत् समवेक्षितुम्।।10।74।28।।

भगवान्के चरण पखार उनके लोकपावनी चरणोदक को युधिष्ठर ने पहले अपने सिर पर छिड़का। तत्पश्चात मन्त्रियों एवं अपने परिवार जनों के सिर पर छिड़का।अपनी आँखों को प्रेमाश्रुपूरित होने के कारण यद्यपि वे भगवान्को ठीक से देख नहीं पा रहे थे तब भी उनको पीताम्बर एवं बहुमूल्य रत्नादि उपहार समर्पित किया। सर्व त्र भगवान् का जय जयकार होने लगा। इसी बीच सदैव शत्रुभाव से अभिप्रेरित शिशुपाल ने भगवान्के ऊपर अपमानजनक कटुशब्दों की बौछार लगा दी।कहा कि समुद्र में छिपने वाला कृष्ण सम्मान का पात्र नहीं है।

निन्दां भगवत: श्रृण्वन्-तत्-परस्य जनस्य वा।
ततो न-अपैति य: सोऽपि याति-अध: सुकृतात्-च्युत:।।10।74।40।।

भगवान्की निन्दा सुन वहाँ से दूर नहीं चले जाने पर अपने पुण्य की हानि होती है। ऐसा सोच बहुत से सभासद बाहर चले गये। पाण्डवों ने शिशुपाल पर आक्रमण हेतु अपने आयुध उठा लिया। इसीबीच भगवान्ने अपने चक्र का अनुसन्धान कर शिशुपाल का सिर काट लिया। देखते-देखते शिशुपाल की देह की दिव्य ज्योति भगवान् में आकर समा गयी। शिशुपाल वैकुण्ठ में भगवान् का दिव्य पार्षद था। उसे सनकादि के शाप से तीन जन्म की असुरयोनि मिली थी। यह उसका तीसरा जन्म था। इसीलिए भगवान्ने उसे सद्गति प्रदान की।

वैरानुबन्ध-तीव्रेण ध्यानेनाच्युत-सात्मताम्।
नीतौ पुनर्हरे: पार्श्वं जग्मतु:-विष्णु-पार्षदौ।।7।1।46।।

द्रष्टव्य भागवत **7**।**1**।**46**।। शत्रुभाव से भगवान्‌को निरन्तर अपने मन में रखने के कारण तीसरे जन्म में उसे भगवान् की शरणागति प्राप्त हो गयी। इसके बाद युधिष्ठर ने अपना यज्ञ पूरा कर सभी सभासदों तथा पुरोहितों को अनेकों बहुमूल्य उपहार दिया। भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से राजसूय यज्ञ विधिवत सम्पन्न हुआ। कुछ काल तक इन्द्रप्रस्थ में ठहरने के बाद भगवान् अपने परिवारजनों के साथ द्वारका लौट आये। शुकदेव जी ने इस प्रकरण की महिमा बताते हुए कहा कि जरासन्ध के कैद से राजाओं की मुक्ति, शिशुपाल का वध तथा राजसूय यज्ञ की कथा सुनने से समस्त पापों से छुटकारा मिल जाता है।

दुर्योधनम्-ऋते पापं कलिं कुरुकुलामयम्।
यो न सेहे श्रियं स्फीतां दृष्ट्वा पाण्डुसुतस्य ताम्।।10।74।53।।

कुरुवंश का रोग एवं कलह प्रेमी दुर्योधन पाण्डवों का ऐश्वर्य देख ईर्ष्या से भर गया। राजसूय यज्ञ में आमन्त्रित अन्य सभी प्रसन्न थे। सब अपने-अपने दायित्व के निर्वाह में लगे थे। भीम रसोई, दुर्योधन खजाना, सहदेव स्वागत, नकुल सामग्री-संग्रह, अर्जुन गुरु सेवा, भगवान् श्रीकृष्ण सबके पद-पखारने, द्रौपदी भोजन परोसने तथा कर्ण उपहार देने के दायित्व में लगे थे। अन्य लोग भी स्वेच्छा से सेवा में लगे थे। यज्ञ के अवभृथ स्नान के बाद आमन्त्रित सज्जनों की विदाई के बाद भगवान् कुछ काल तक ठहरे।

बन्धु-ज्ञाति-नृपान् मित्र-सुहृदो-अन्यान्-च सर्वशः।
अभीक्ष्णं पूजयामास नारायणपरो नृपः।।10।75।23।।

भगवान् नारायण को समर्पित राजा युधिष्ठर सभी कुटुम्बों आदि का निरन्तर सम्मान करते रहे।एकदिन राजा युधिष्ठर मय दानव से बनाये गये सभागार में राजसिंहासन पर विराजमान थे। सुहृद सब साथ में उपस्थित थे। दुर्यो धन अपने भाईयों के साथ द्वारपालों को अपमानित करते हुए युधिष्ठर के महल में आया।

स्थले-अभ्यगृह्णाद्वस्त्रान्तं जलं मत्वा स्थलेऽपतत्।
जले च स्थलवद् भ्रान्त्या मयमाया-विमोहितः।।10।75।37।।

भ्रम वश सूखे स्थल को जल समझ उसने अपने वस्त्र ऊपर कर लिये। जहाँ जल था उसे सूखा स्थल समझ उसमें गिर पड़ा। यह देख भीम तथा अन्य नारियाँ हँसने लगी। अपने को अपमानित समझ वह महल से बाहर आया और हस्तिनापुर चला गया।

10।41। शाल्व, विदूरथ तथा दन्तवक्र का वध

रुक्मिणी के स्वयंवर के समय शाल्व शिशुपाल का समर्थक था। शंकर को प्रसन्न कर उसने अंधकार से घिरे रहने वाला विमान प्राप्त किया था। द्वारका में जाकर वह नगर की प्रजाओं को भयभीत करने लगा। एक बार शाल्व ने द्वारका को अपनी सेना ले घेर लिया। प्रद्युम्न ने उस पर आक्रमण कर दिया। घोर युद्ध हुआ। अपशकुन देख भगवान् कृष्ण इन्द्रप्रस्थ से द्वारका लौटे। गरुड-ध्वज भगवान्‌के आगमन पर वृष्णी-सेना हर्षित हो उठी। शाल्व अपनी माया से वसुदेव तथा बलराम जी को कैद में दिखाते हुए उनके वध का अभिनय करने लगा। भगवान्‌ने उसकी माया जाल को काट दिया। अन्त में भगवान् ने अपने चक्र से शाल्व का वध कर दिया। शिशुपाल का मित्र दन्तवक्र गदा लिये हुए युद्ध भूमि में प्रकट हुआ।

श्रुतदेवां तु कारूषो वृद्धशर्मा समग्रहीत्।
यस्याम्-अभूत् दन्तवक्त्र ऋषिशप्तो दितेः सुतः।।9।24।37।।

कारूष के राजा वृद्धशर्मा की पत्नी श्रुतदेवा कुन्ती देवी की बहन थी। दन्तवक्त्र या दन्तवक्र इन्हीं का पुत्र था। सनकादि मुनियों के शाप के कारण पहले इसका जन्म असुर माता दिति के गर्भ से हिरण्याक्ष के रूप में हुआ था। दन्तवक्त्र वैकुण्ठ के जय-विजय पार्षद में से विजय का प्रतिनिधित्व कर रहा था। शिशुपाल भगवान् के पार्षद जय का स्वरूप था। सनकादि के शाप से तीन बार असुर योनि में जन्म लेने का यह अन्तिम तीसरा जन्म था। भगवान्ने अनेकों प्रहार किये। अन्त में भगवान्ने अपनी कौमोदकी गदा से दन्तवक्र का वध कर दिया। दन्तवक्र का भाई विदूरथ युद्ध करने लगा। भगवान्ने सुदर्शन चक्र से उसका वध कर दिया। पद्म पुराण के उत्तर खण्ड की कथा के अनुसार शिशुपाल के वध के बाद दन्तवक्र तथा विदूरथ ने मथुरा पर चढ़ाई कर दी। नारद जी से सूचना पाकर भगवान् मथुरा आ गये तथा दोनों का अन्त किया। मथुरा के पास दत्तिया नामक एक नगर है जो आज मध्यप्रदेश का हिस्सा है और प्रसिद्ध धर्मस्थल माना जाता है। दन्तवक्र वहीं का राजा था। पद्म पुराण के अनुसार भगवान् व्रज आये तथा कालिन्दी के तट पर उन्होंने गोपियों के साथ क्रीड़ा की। तत्पश्चात् नन्द जी तथा अन्य गोपों को अपने विमान पर बैठाकर गोलोक ले गये। व्रजवासी लोग गोलोकवासी हो गये। तदुपरान्त भगवान् द्वारका लौट आये। भागवत के **1।11।9** से यह संकेत मिलता है कि भगवान् द्वारका में रहते हुए व्रजमण्डल गये थे परन्तु इसका विवरण भागवत में नहीं है।

यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान् कुरून् मधून् वाथ सुहृद्दिदृक्षया।
तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद् रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत।।1।11।9।।

भागवत **1।11।9** के अनुसार द्वारका की प्रजा कहती हैं कि हे कमलनयन भगवान्अच्युत ! जब आप अपने सुहृदों से मिलने हस्तिनापुर या व्रजक्षेत्र चले जाते हैं तब द्वारका में आपकी अनुपस्थिति में एक-एक क्षण हमलोगों के लिए लाख वर्षों की तरह बीतता है। कुछ हरिकथाकार कहते हैं कि भगवान् ने व्रजवासियों को तो गोलोक धाम प्रदान कर दिया परन्तु द्वारका में यादवों का प्रभास क्षेत्र में आपस में लड़कर नाश करा दिया। शुकदेव जी ने इस तरह की कथा का वर्णन राजा परीक्षित को दुःखी होने से बचाने के लिए नहीं सुनाया कि आखिर भगवान्ने द्वारकावासियों को क्यों अमंगलपूर्ण स्थिति में डाल दिया जबकि व्रजवासियों को उन्होंने गोलोक दे दिया।

10।42। महाभारत युद्ध की अवधि में बलराम जी की तीर्थ यात्रा

कौरवों एवं पाण्डवों के बीच हुए युद्ध की अवधि में बलराम जी तीर्थ भ्रमण पर चले गये थे क्योंकि वे कौरवों तथा पाण्डवों के प्रति तटस्थ भाव रखते थे। बलराम जी बिन्दु सरोवर तथा गंगा-यमुना के तीर्थ स्थानों में घूमते हुए नैमिषारण्य आये। वहाँ दीर्घकाल से आयोजित यज्ञ सत्र के मुनियों ने बलराम जी के आगमन पर खड़े होकर उनका सत्कार किया परन्तु व्यासदेव के शिष्य पुराण वक्ता रोमहर्षण सूत अपने स्थान पर बैठे रहे। ऐसा देख बलराम जी को क्रोध हो गया। उन्होंने कुश का एक टुकड़ा फेंक रोमहर्षण सूत का वध कर दिया। मुनियों ने बलराम जी को इसका प्रायश्चित करने को कहा।

आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम्।
तस्मादस्य भवेद्वक्ता आयुः इन्द्रिय-सत्त्ववान्।।10।78।36।।

बलराम जी ने कहा कि व्यक्ति की अपनी ही आत्मा पुत्र के रूप में जन्म लेती है ऐसा वेद का वचन है। बलराम जी ने रोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा को पुराण वक्ता के रूप में स्थापित कर दिया। अपनी योगशक्ति से बलराम जी ने उन्हें दीर्घायु होने के लिए इन्द्रिय शक्ति प्रदान की। शतपथ ब्राह्मण **14।9।8।4** तथा बृहदारण्यक उपनिषद् **6।4।8 में कहा है - "आत्मा वै पुत्रनामासि।"**

ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहित:।

चरित्वा द्वादश मासान्-तीर्थ-स्नायी विशुद्ध्यसे।।10।78।40।।

मुनियों ने बलराम जी को भारत के तीर्थो में जाकर एक वर्ष तक स्नान करके रोमहर्षण के वध के पाप से शुद्ध होने की सलाह दी। नैमिषारण्य से तीर्थाटन पर निकलने के पहले मुनियों के अनुरोध पर बलराम जी ने बल्वल असुर का नाश किया जो शुक्लपक्ष प्रतिपदा को हवन कुण्ड में रक्तादि की वर्षा कर उसे अपवित्र कर देता था।

वैजयन्तीं ददुर्माला श्रीधाम-अम्लान-पङ्कजाम्।

रामाय वाससी दिव्ये दिव्यान्याभरणानि च।।10।79।8।।

मुनियों ने बलराम जी को उपहार में नहीं मुरझाने वाले, लक्ष्मी जी के वासस्थान, कमल की वैजयन्ती वनमाला तथा दिव्य वस्त्र-आभूषादि समर्पित किये।बलराम जी वहाँ से कौशिकी नदी गये। तत्पश्चात् सरयू के उद्गम सरोवर गये। सरयू का अनुसरण करते प्रयाग आये। गोमती, गण्डकी तथा शोण में स्नान करते महेन्द्र पर्वत जाकर परशुराम जी का दर्शन किया। उसके बाद गोदावरी की सातों शाखाओं में स्नान कर वे द्रविड़ देश गये।

द्रविडेषु महापुण्यं दृष्ट्वाद्रिं वेङ्कटं प्रभु:।10।79।13।।

कामकोष्णिं पुरीं काञ्चीं कावेरी च सरिद्वराम्।

श्रीरङ्गाख्यं महापुण्यं यत्र सन्निहितो हरि:।।10।79।14

वेकटाचल के दर्शन के बाद कांचीपुरम्के कामाक्षी, विष्णुकांची तथा शिव कांची होते हुए भगवान् श्रीरंगनाथ जी के नित्य वासस्थान श्रीरंगम् जाकर पुण्यदायिनी कावेरी नदी में स्नान किया। उसके बाद सेतुबन्ध तथा दक्षिण मथुरा अर्थात् मदुरै गये। कृतमाला तथा ताम्रपर्णी नदी में स्नान करते वे मलय पर्वत पर अगस्त्य मुनि से मिले। तत्पश्चात् दक्षिणी सागर कन्याकुमारी का दर्शन करके फाल्गुन तीर्थ के पञ्चाप्सर तालाव में स्नान किया जहाँ भगवान् विष्णु का नित्य वास है। लौटते हुए दण्डकारण्य होकर आये। रास्ते में खवर मिली कि कौरवों का नाश हो गया है। उस क्षेत्र में आने पर दुर्योधन तथा भीम को गदायुद्ध करते देखा। इनके मना करने पर भी दोनों ने इनकी वात नहीं मानी। तब वहाँ से द्वारका आये। बाद में फिर से नैमिषारण्य जाकर बलराम जी ने मुनियों को अपने दिव्य स्वरूप का ज्ञान कराया।

योऽनुस्मरेत रामस्य कर्माणि-अद्भुत-कर्मण:।

सायं प्रात: अनन्तस्य विष्णो: स दयितो भवेत्।।10।79।34।।

साम-सवेरे अनन्तदेव बलराम जी की लीला-कर्म का स्मरण करने वाले भगवान् विष्णु के प्रिय बन जाते हैं।

10।43।। मित्र सुदामा-कृष्ण

सुदामा जी भगवान् श्रीकृष्ण के सान्दीपनि मुनि के पाठशाला के सहपाठी थे। भागवत में इनका नाम कुचेल या कुचैल आया है जिसका अर्थ होता है फटे-चिटे वस्त्रवाला। इनका सुदामा नाम कैसे हुआ ठीक से ज्ञात नहीं है। स्कन्द पुराण के रेवाखण्ड के श्रीसत्यनारायण व्रत-कथा में सुदामा जी का नाम आया है।

शतानन्दो महाप्राज्ञः सुदामा-ब्राह्मणो हि-अभूत्।
तस्मिञ्जन्मनि श्रीकृष्णं ध्यात्वा मोक्षमवाप ह।। सत्यनारायण व्रत कथा।

भागवत में इन्हें एक ब्राह्मण मित्र कहकर भी सम्बोधित किया गया है। ये भगवान् के परम भक्त थे और घोर गरीबी होते हुए भी इनके मन में धन की कामना नहीं जगी। इनकी पत्नी सुशीला देवी को परिवार संचालन के में कठिनाई के कारण धन की कमी महसूस होती थी। स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी महाराज ने कहा है कि

सुन्दर दामन जाहि के या सुन्दर सो दाम।
बन्धा बान्धता अन्य को ताहि सुदामा नाम।।
दीनप्रिय भगवान हैं धर्मप्रिय द्विजदेव।
तथा सुशीला ब्राह्मणी सदा करे पतिसेव।।

भगवान् श्रीकृष्ण की अन्य लीला अर्थात् माधुर्य लीला एवं ऐश्वर्य लीला से पृथक अन्य तरह की लीला सुनने का राजा परीक्षित की जिज्ञासा हुई। माधुर्य लीला व्रजक्षेत्र की अवधि वाली लीला को कहते हैं। मथुरा में कंस वध के पश्चात् राजकाज के सुचारु संचालन में भगवान् व्यस्त रहते थे। बाद में जरासन्ध के कारण इन्होंने गुजरात के पश्चिमी तट वाले समुद्र में द्वारका नगर बसाया। इस अवधि की लीला को ऐश्वर्य लीला कहा जाता है। राजा परीक्षित ने कहा कि भगवान् की विभिन्न लीलाओं को सुनने से मन तृप्त नहीं होता। राजा ने भक्ति की अनन्यता के लक्षण बताते हुए कहा -

सा वाग् यया तस्य गुणान् गृणीते करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च।
स्मरेद् वसन्तं स्थिरजङ्गमेषु श्रृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः।।10।80।3।।
शिरस्तु तस्य-उभयलिङ्गम्-आनमेत्-तदेव यत् पश्यति तद्धि चक्षुः।
अङ्गानि विष्णोरथ तज्जनानां पादोदकं यानि भजन्ति नित्यम्।।10।80।4।।
विष्णुरातेन सम्पृष्टो भगवान् बादरायणिः।
वासुदेवे भगवति निमग्नहृदयेऽब्रवीत्।।10।80।5।।

भगवान् की लीला गानेवाली ही वाणी वाणी है। हाथ वही है जो भगवान् की सेवा करे। मन वही है जो निरन्तर जड़-चेतन में वसने वाले भगवान् का स्मरण करे। कान वही है जो भगवान् की कथा सुनने को तत्पर रहे। शिर वही है जो भगवान् के शरीररूपी सम्पूर्ण सृष्टि को नमन करे। आँख वही है जो सम्पूर्ण सृष्टि में भगवद् स्वरूप को देखे। शरीर के अंग वही असली अंग हैं जो भगवान् के भक्तों के चरणों के पादोदक से अपने को अभिषिक्त करने में आनन्द लें। जव शुकदेव जी राजा को कथा सुना रहे थे उस समय सूत जी भी उपस्थित थे। समाधि की स्थिति का ज्ञान सूत जी को हुआ थे। सूत जी ने ही इस बात का रहस्योद्घाटन किया। राजा परीक्षित की जिज्ञासा सुन

शुकदेव जी भगवान् के स्वरूप में ध्यानस्थ हो गये। तन्द्रा टूटने के उपरान्त शुकदेव जी ने राजा को सुदामा-चरित की कथा सुनायी। शुकदेव जी इसके पूर्व भागवत **10।12।44।** में भगवान् की बाललीला जो एक वर्ष तक भगवान् स्वयं गोप सखा तथा बछड़ा बने थे उसका स्मरण करके समाधि में चले गये थे। यह प्रकरण अघासुर के वध के बाद ब्रह्मा के मोह से जुड़ा हुआ है जब ब्रह्मा ने सभी गोप बालकों तथा बछड़ो को चुराकर छिपा कर भगवान् की परमशक्ति की परीक्षा लेना चाह रहे थे।

कृष्णस्यासीत् सखा कश्चिद् ब्राह्मण: ब्रह्मवित्तम:।
विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशान्तात्मा जितेन्द्रिय:।।10।80।6।।
यदृच्छया-उपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी।
तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुत्क्षात्मा च तथाविधा।। 7
पतिव्रता पतिं प्राह म्लायता वदनेन सा।
दरिद्रा सीदमाना स वेपमाना-अभिगम्य च।।8
ननु ब्रह्मन् भगवत: सखा साक्षात्-श्रिय: पति:।
ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च भगवान् सात्वतर्षभ:।।9
तमुपैहि महाभाग साधूनां च परायणम्।
दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुम्बिने ।।10
आस्तेऽधुना द्वारवत्यां भोज-वृष्णि-अन्धकेश्वर:।
स्मरत: पादकमलमात्मनमपि यच्छति।
किं नु अर्थकामान् भजतो न-अति-अभीष्टान्-जगद्गुरु:।।10।80। 11।।

सुशीला देवी अपने पति सुदामा जी से कहती हैं कि भगवान् अपने चरणकमल का स्मरण करने वाले भक्तों के अधीन अपने आप को अर्पित कर देते हैं। द्वारकाधीश आपके मित्र हैं। उनके पास अगर आप जायें तब आपको पर्याप्त धन मिलेगा जिससे हम अपने परिवार का भरण-पोषण कर सकें।

एक विप्र अति शान्त जितेन्द्रिय विषय विरागी।
यथा लाभ सन्तोष गृही भगवद् अनुरागी।।
नाम कुचैल सखा हरि के प्यारे बड़भागी।
ना तनु पोषक कृषित देह दम्पति सम आगी।।
सती सुशीला के मन में चिंता यह आई।
धनहीन नहीं बनत कछुक पति की सेवकाई।।
काँपति डोलति सो एक समय सुहावन पाई।
आई पतिधिग् कहति बाल मिस बात सुहाई।।

उपरोक्त पद में स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी महाराज ने "मित्र सुदामा-कृष्ण" पुस्तक में कहा है कि सुशीला देवी की बात सुन सुदामा जी के मन में भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन की लालसा जाग पड़ी।

स एवं भार्यया विप्रो बहुशः प्रार्थितो मृदु ।
अयं हि परमो लाभ उत्तमश्लोक-दर्शनम्।।10।80।12।।

द्वारका जाने से परम लाभ भगवान् का दर्शन है। पत्नी से उन्होंने भगवान् के लिए कुछ उपहार की व्यवस्था करने का अनुरोध किया। सुशीला देवी पड़ोस में गयीं।

याचित्वा चतुरो मुष्टीन् विप्रान् पृथुक-तण्डुलान्।
चैलखण्डेन तान् बद्धवा भर्त्रे प्रादात्-उपायनम्।।10।80।14।।

चार मुट्ठी चूड़ा माँग कर लायी और एक वस्त्र के टुकड़े में बान्धकर पतिदेव को भगवान् के लिए उपहार दे दी। कुछ हरिकथाकार तण्डुल को चावल भी कहते हैं। सुदामा जी द्वारका के लिए प्रस्थान कर गये।

गृहं द्वयष्टसहस्राणां महिषीणां हरेर्द्विजः।
विवेशैकतमं श्रीमद् ब्रह्मानन्दं गतो यथा।।10।80।17।।

द्वारका आकर बहुत से महलों को पार करते हुए भगवान्‌की रानियों के सोलह हजार से अधिक महलों में से एक में प्रवेश कर गये। उस महल में प्रवेश करते समय सुदामा जी ब्रह्मानन्द में लीन हो गये। हरिकथाकार कहते हैं कि यह महल रुक्मिणी जी का था जो पद्मपुराण में दिया गया है परन्तु भागवत में नहीं है।

स तु रुक्मिण्यन्तः पुरद्वारि क्षणं तूर्ष्णीं तस्थौः।प. पु. उत्तरखण्ड 252।32।।

सुदामा जी रुक्मिणी के राजमहल के द्वार पर चुपचाप एक क्षण के लिए खड़ा हुए। भगवान् ने राजमहल के भीतर से उन्हें देखा और तेजी से आकर उनका आलिंगन किया।

सख्युः प्रियस्य विप्र-ऋषेः-अङ्ग-सङ्ग-अति-निर्वृतः।
प्रीतो व्यमुञ्चत्-अप-बिन्दून् नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः।।10।80।19।।

सुदामा जी को स्पर्श करते समय भगवान् गहन आनन्द में डूब गये। उनके कमलनयनों से प्रेमाश्रु की वर्षा होने लगी। भगवान् ने सुदामा जी को अपने पलंग पर बैठाया और उनके चरण पखार पादोदक सिर पर लिया। सब तरह से उनका सत्कार किया। साक्षात् लक्ष्मी जी के स्वरूप वाली रुक्मिणी जी उनको चँवर से हवा करने लगी।

अन्तःपुरजनो दृष्ट्वा कृष्णेन-अमल-कीर्तिना।
विस्मितो-अभूत्-अति-प्रीत्या अवधूतं सभाजितम्।।10।80।24।।

फटे पुराने वस्त्रवाले ब्राह्मण से अमलकीर्ति भगवान्‌का अतिशय प्रेम देख राजमहलवासी चकित हो गये।

योऽसौ त्रिलोकगुरुणा श्रीनिवासेन सम्भृतः।
पर्यङ्कस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तोऽग्रजो यथा।।10।80।26।।

श्रीदेवी के धाम तथा तीनों लोक के गुरु भगवान्‌ने लक्ष्मी जी को पलंग पर ही छोड़ बड़े भाई की तरह इसका सम्मान करने लगे। भगवान् सुदाम जी का हाथ पकड़ गुरुकुल की बात करने लगे। भगवान्‌ने पूछा कि पाठशाला से घर लौटने के बाद आपने विवाह किया कि नहीं ? मुझे पता है कि आपका मन भौतिक सुख में नहीं लगता। गुरु से शिक्षा प्राप्त कर शिष्य आध्यात्मिक जीवन का आनन्द उठा सकता है।

स वै सत्कर्मणां साक्षाद् द्विजातेरिह सम्भवः।
आद्योऽङ्ग यत्र-आश्रमिणां यथाहं ज्ञानदो गुरुः।।10।80।32।।

भगवान् कहते हैं कि संसार में तीन गुरु होते हैं। जन्म देनेवाला पिता आदिगुरु, यज्ञोपवीतादि तथा सत्कर्म की दीक्षा वाला दूसरा गुरु तथा भगवान्‌के श्रीचरणों में प्रीति कराने वाला तीसरा गुरु मेरा ही स्वरूप है।

न-अहम्-इज्या-प्रजातिभ्यां तपसा-उपशमेन वा।
तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरु-शुश्रुषया यथा।।10।80।34।।

मैं पूजा, ब्राह्मण-दीक्षा तथा आत्मानुशान से उतना प्रसन्न नहीं होता जितना गुरु की सच्ची सेवा से खुश होता हूँ। भगवान्‌ने गुरुकुल की एक बार की घटना का स्मरण कराते हुए कहा कि कैसे हमलोग गुरुपत्नी की आज्ञा से जब जंगल में लकड़ी लाने गये थे तब अचानक घोर तूफानी वर्षा आ गयी थी। समस्त घोर अंधकार हो जाने पर रात्रि भर हमलोग जंगल में ही भटकते रहे। प्रात:काल गुरुदेव हमलोगों को खोजने आये। गुरु ने अत्यंत प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया कि उनके द्वारा सिखाये हुए वैदिक मन्त्र सर्वदा हमलोगों के ज्ञानपथ को आलोकित करते रहेंगे। इस तरह से भगवान्‌के मुखारविन्द से गुरुकुल की चर्चा सुन सुदामा जी ने कहा -

किम्-अस्माभि: अनिर्वृत्तं देवदेव जगद्गुरो।
भवता सत्यकामेन येषां वासो गुरौ-अभूत्।।10।80।44।।
यस्य-छन्दोमयं ब्रह्म देव आवपनं विभो।
श्रेयसां तस्य गुरुषु वासो-अत्यन्त-विडम्बनम्।।10।80।45।।

हे देवाधिदेव ! आप जगद्गुरु हैं। आपके साथ गुरुकुल में निवास कर सबकुछ प्राप्त हो गया है। आप के वेदोमय स्वरूप सभी पुरुषार्थों के मूल स्रोत हैं। गुरुकुल में आपका वास मात्र आपकी मानवी लीला ही है।

स इत्थं द्विजमुख्येन सह सङ्कथयन् हरि:।
सर्वभूत-मनो-अभिज्ञ: स्मयमान उवाच तम्।।10।81।1।।
किम्-उपायनम्-आनीतं ब्रह्मन् मे भवता गृहात्।
अणु-अपि-उपाहृतं भक्तै: प्रेम्णा भूरि-एव मे भवेत्।
भूरि-अपि-अभक्त-उपहृतं न मे तोषाय कल्पते।।10।81।3।।
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्ति-उपहृतम्-अश्नामि प्रयत-आत्मन:।।10।81।4।।

सुदामा जी से इस तरह बात करते हुए सबके हृदय की बात जानने वाले भगवान्‌ने मुस्कुराते हुए कहा कि आपने मेरे लिए घर से क्या उपहार लाया है। श्रद्धा से भक्तिपूर्वक छोटा से छोटा उपहार भी मुझे बहुत ही सन्तुष्ट करता है जबकि श्रद्धा-भक्ति से विहीन लाया गया बड़ा से बड़ा उपहार मुझे प्रसन्न नहीं कर पाता। प्रेमपूर्ण भक्ति से अर्पि त तुलसी-दल, फूल, फल या जल मैं प्रीतिपूर्वक ग्रहण करता हूँ। यह श्लोक गीता 9।26 से बिलकुल मिलता है। सुदामा जी चूड़ा का उपहार निकालने में संकोच कर रहे थे। सुदामा जी के द्वारका आगमन का कारण भगवान् समझ गये कि धन प्राप्ति हेतु पत्नी ने इन्हें यहाँ भेजा है। ऐसा सोचते हुए भगवान् ने उनके वस्त्र में बन्धे तण्डुल को छीन लिया। इस उपहार के कुछ दाने ही मुझे ही नहीं बल्कि समस्त ब्रह्माण्ड को सन्तुष्ट करने वाला है। इतना कहकर भगवान्‌ने उस चूड़े से एक मुट्ठी निकाल कर फाँक लिया। दूसरी मुट्ठी लेना ही चाह रहे थे कि लक्ष्मी जी अर्था त् रुक्मिणी ने उन्हें रोकते हुए कहा -

एतावता-अलं विश्वात्मन् सर्वसम्पत्-समृद्धये।

अस्मिन्-लोके-अथवा-मुष्मिन् पुंसः त्वत्-तोष-कारणम्।।10।81।11।।

आपकी सन्तुष्टि के लिए उतना ही पर्याप्त है जो मनुष्य को इस लोक तथा परलोक में समृद्ध बना देता है। कुछ हरिकथाकार कहते हैं कि रुक्मिणी जी को लगा कि अगर भगवान् दूसरी मुट्ठी भी खा गये तब मुझे सुदामा जी का आजीवन दासी बनना होगा। इसके अतिरिक्त ऐसा भी विचार हो सकता है कि अधिक ऐश्वर्य मिल जाने से भक्ति में बाधा पहुँचती है और सुदामा जी के हित हेतु ही रुक्मिणी जी ने भगवान्को दूसरी बार चूड़ा फाँकने से रोक दिया। कुछ हरिकथाकार का ऐसा मत है कि भगवान् के जूठन प्रसाद से सबको लाभान्वित कराने के उद्देश्य से ही लक्ष्मी जी ने ऐसा किया। सुदामा जी रात्रि में भोजन कर भगवान्के महल में ही सुखपूर्वक सोये जैसे कि वे जीवित वैकुण्ठलोक में पहुँच गये हैं। भगवान् के दर्शन से लाभान्वित हो सुदामा जी दूसरे दिन अपने घर के लिए प्रस्थान कर गये। रास्ते में भगवान्की महानता का गुणगान करते हुए मग्न हो रहे थे कि लक्ष्मी के नित्य निवास भगवान् ने मेरा आलिंगन किया और मुझे बड़े भाई जैसा सम्मान देकर अपने पलंग पर बैठाया।

शुश्रुषया परमया पाद-संवाहन-आदिभिः।

पूजितो देवदेवेन विप्रदेवेन देववत्।।10।81।18।।

सुदामा जी चकित हैं कि विश्रामकाल में भगवान्ने मेरे चरण दवाये तथा देवेश्वर की तरह मेरी पूजा की।

स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि सम्पदाम्।

सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तत्-चरण-अर्चनम्।।10।81।19।।

भगवान्के चरणकमल की भक्ति से स्वर्ग, वैकुण्ठ, रसातल तथा धरती पर मनुष्य को सबकुछ प्राप्त हो जाता है।निर्धन को सहसा धन मिलने से मतवाला होने की आशंका से ही भगवान्ने मुझे कुछ भी धन नहीं दिया।

बेटा बैरी बाप का स्त्री का पुरुष बलाय।

दोष पञ्चदश देख के धन न दिया यदुराय।।

धन में पन्द्रह दोष हैं जिसका वर्णन भागवत के एकादश स्कन्ध के अध्याय **23** के श्लोक **17** से **19** में है। इसे भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धव जी को भक्तियोग बताने के क्रम में बताया है।

एते पञ्चदश-अनर्था हि-अर्थमूला मता नृणाम्।

तस्मात्-अनर्थम्-अर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतः त्यजेत्।।11।23।19।।

जो प्रेयस को त्यागकर श्रेयस चाहता है वह धन से दूर रहे। ऐसा सोचते-सोचते सुदामा जी अपने पूर्व के आवास स्थल पर आ गये। परन्तु वहाँ ऊँचे-ऊँचे भव्य महल एवं सुन्दर उद्यान को देखकर वे विस्मित हो गये। कुछ समझ नहीं पा रहे थे कि इसी बीच उनके स्वागत में मंगल गीत गाती हुई दासियाँ आ गयीं। इतने में सुशीला जी भी प्रेमाश्रु बहाते पतिदेव के स्वागत में आ गयीं। उनके शरीर के वस्त्र तथा अलंकार देख सुदामा जी चकित थे। महल के अलंकार में रत्नादि लगे हुए थे। सुदामा जी समझ गये कि यह सब भगवान् श्रीकृष्ण की कृपादृष्टि से ही सम्भव हुआ है। उनके भक्तों की संगति से ही उनके प्रति हमारा अनुराग दृढ़ होगा।

इत्थं व्यवसितो बुद्धया भक्तोऽतीव जनार्दने।

विषयान्-जायया त्यक्ष्यन् बुभुजे न-अतिलम्पटः।।10।81।38।।

एवं स विप्रो भगवत्-सुहृत्-तदा दृष्ट्वा स्व-भृत्यैः अजितं पराजितम्।

तत्-ध्यान-वेग-उद्ग्रथित-आत्म-बन्धनः तत्-धामलेभे-अचिरतः सतां गतिम्।।10।81।40।।

अनासक्त दृढ़ संकल्प से पत्नी के साथ सुदामा जी का भगवान्में अनुराग बढ़ता गया। भगवान् यद्यपि अजेय हैं परन्तु अपने भक्तों के अधीन रहते हैं। भगवान् के निरन्तर ध्यान से सुदामा जी की भौतिक ग्रन्थियाँ नष्ट हो गयीं। उन्होंने शीघ्र ही महान सन्तों के आश्रय भगवान्के परम धाम को प्राप्त कर लिया। इस प्रकरण की कथा को सुनने से भौतिक कर्मबन्धन का नाश होता है तथा भगवान्के श्रीचरणों में अतिशय प्रेम उत्पन्न होता है।

10।44। सूर्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में भगवान् श्रीकृष्ण

एक बार पूर्ण सूर्यग्रहण लगा जैसा प्रलय काल में होता है। कुछ हरिकथाकार कहते हैं कि यह प्रकरण युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ के पूर्व का है जो दसम स्कन्ध के अध्याय 74 में है। इस ग्रहण में भीष्म, द्रोण, विदुर, सभी पुत्रों के साथ धृतराष्ट्र-गान्धारी, पाण्डव तथा कुन्ती देवी वर्तमान थी। अतः सूर्यग्रहण के समय सबका यहाँ एकत्रित होना महाभारत युद्ध के पहले की ही घटना प्रतीत होती है। कुरुक्षेत्र के अतिरिक्त इसे समन्तपञ्चक तथा ब्रह्मावर्त आदि भी कहते हैं। परशुराम जी ने क्षत्रियों के वध करके उनके खून से पाँच सरोवर का निर्माण कर उसमें पितृ तर्पण किया था और इस स्थल को पवित्र करने के उद्देश्य से यहाँ पर तपस्या एवं यज्ञ भी किये थे। इससे इसका नाम समन्तपञ्चक प्रसिद्ध हुआ। कुरूवंशियों ने पूर्व में यहाँ अनेक यज्ञ सम्पन्न किये थे जिसके कारण यह कुरुक्षेत्र कहा जाता है। मनुस्मृति में इसे ब्रह्मावर्त कहा गया है जिसके उत्तर में सरस्वती नदी है। सूर्यग्रहण के अवसर पर द्वारका से यादवों का यहाँ आगमन हुआ था। इस अवसर पर कुरूवंश के अतिरिक्त अन्य क्षेत्र के राजागण भी आये थे। व्रजक्षेत्र से नन्द जी सब गोप-गोपियों के साथ पधारे थे। सूर्यग्रहण के समय यहाँ स्नान-तर्पण-यज्ञ के कार्य पुण्य देने वाले माने जाते हैं।

कुन्ती देवी वृष्णीवंशियों के प्रधान भगवान् मुकुन्द तथा वसुदेव जी से मिलीं। वसुदेव जी से शिकायत भी की कि आपद की घड़ी में पुत्रों के साथ इनका जीवन कितना कठिन हो गया था। आप सुहृतों ने हम पाण्डवों की खबर नहीं ली। वसुदेव जी ने कंस के आतंक को मुख्य कारण बताया जिससे ही वे सब चुप रहने को बाध्य थे।ऐसा कहते हुए उन्होंने कुन्ती देवी के प्रति अपनी अतिशय सहानुभूति प्रकट की।

राजानो ये च राजेन्द्र युधिष्ठरम्-अनुव्रताः।

श्रीनिकेतं वपुः शौरेः सस्त्रीकं वीक्ष्य विस्मिताः।।10।82।27।।

सभी राजागण भगवान् श्रीकृष्ण के अद्भुत स्वरूप को निहारकर आनन्दित हो रहे थे। योगियों को भी दुर्लभ भगवान्के स्वरूप का निरन्तर दर्शन करने वाले वृष्णिवंशियों के भाग्य की सराहना राजाओं ने की।

यत्-विश्रुतिः श्रुति-नुता-इदम्-अलं पुनाति

पाद-अवनेजन-पयः च वचः च शास्त्रम्।

भूः काल-भर्जित-भगा-अपि यत्-अङ्घ्रि-पद्म-

स्पर्श-उत्थ-शक्तिः-अभिवर्षति नो-अखिल-अर्थान्।।10।82।30।।

श्रुतियाँ जिनकी लोकपावन कीर्ति निरन्तर गाती हैं उनके चरणोदक हमारे सभी मनारथों को मंगल बनाते हैं।

तत्-दर्शन-स्पर्शन-अनुपथ-प्रजल्प-शय्या-आसन-अशन-सयौन-सपिण्ड-बन्धः।
येषां गृहे निरय-वर्त्मनि वर्ततां वः स्वर्ग-अपवर्ग-विरमः स्वयम्-आस विष्णुः।।10।82।31।।

भगवान् विष्णु के प्राप्त हो जाने पर स्वर्ग तथा वैकुण्ठ तुच्छ प्रतीत होते हैं वही विष्णु भगवान् आपके कुल में श्रीकृष्ण हैं और इनके साथ आपसबों को नौ प्रकार (निरन्तर दर्शन-स्पर्श-सहगमन-सहवार्तालाप-सहशयन-साथ बैठना-सहभोजन-वैवाहिक सम्बन्ध-गोत्र सम्बन्ध) के दुर्लभ अवसर प्राप्त हैं।

जब नन्द जी को यह ज्ञात हुआ कि भगवान् श्रीकृष्ण भी यहाँ आये हैं तब वे सभी गोप-गोपियों के साथ उनके पास आ गये। नन्द जी ने वसुदेव जी का आलिंगन किया। बलराम जी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण ने नन्द जी तथा यशोदा जी का नमन कर उनका आलिंगन किया। भाव विह्वल हो नन्द-यशोदा कुछ बोल नहीं पा रहे थे। दोनों पुत्रों को गोद में बैठाकर उन्होंने अपने प्रेमाश्रु से दोनों भाईयों को अभिषिक्त कर दिया। रोहिणी जी तथा देवकी जी बड़े भावुक होकर व्रज की रानी यशोदा जी से मिलीं।

का विस्मरेत वां मैत्रीम्-अनिवृत्तां व्रजेश्वरि।
अवाप्य-अपि-ऐन्द्रम्-ऐश्वर्य यस्या न-इह प्रतिक्रिया।।10।82।38।।

अपने दोनों पुत्रों के लालन-पालन के यशोदा जी के उपकार का स्मरण करते हुए दोनों कहती हैं कि हे व्रज की रानी! आपने जो उपकार किया है उसे इन्द्र की सम्पदा से भी नहीं चुकाया जा सकता। गोपियों ने भगवान्को दूर से अपलक निहारते हुए उनके स्वरूप को हृदयस्थ कर आलिंगन के सुख में अपने आप को भुला दिया।

भगवान्-ताः तथा-भूता विवक्त उपसङ्गतः।
आश्लिष्य-अनामयम् पृष्ट्वा प्रहसन्-इदम्-अब्रवीत्।।10।82।41।।

एकान्त में गोपियों को भावविभोर देख भगवान् उनके पास गये। अपनी योगशक्ति से भगवान्ने हरएक का आलिंगन कर हँसते हुए कहा। मथुरा के शत्रुओं के शमन करने में दैववश हम आपसे लम्बी अवधि से दूर रहे।

वायुः यथा घनानीकं तृणं तूलं रजांसि च।
संयोज्य-आक्षिपते भूयस्तथा भूतानि भूतकृत्।।10।82।44।।
मयि भक्तिर्हि भूतानाम्-अमृतत्वाय कल्पते।
दिष्ट्या यत्-आसीत्-मत्-स्नेहो भवतीनां मत्-आपनः।।10।82।45।।

विधाता सबों का संयोग और वियोग उसी तरह करते रहते हैं जैसे हवा बादल, घास तथा धूलकण को पास लाकर अलग कर देती है। मेरी भक्ति से अमृत-स्वरूप परमपद प्राप्त हो जाता है। यह सौभाग्य की बात है कि आपलोगों को मेरी प्रेमा-भक्ति प्राप्त हो गयी है। आप सबों को यह आभास हो चुका है कि मैं भगवान् स्वयं हूँ। मैं सर्वत्र व्याप्त हूँ अतः आप हमसे अपने वियोग की स्थिति को भूल जायें। सर्वदा आपके साथ विराजमान रहता हूँ। भगवान्ने अध्यात्म विधि से सभी गोपियों को आत्मज्ञानी बना दिया। सभी गोपियों को कृष्णमय करके अपने से वियोग की स्थिति से सर्वदा के लिए मुक्त कर दिया।

आहुश्च ते नलिनाभ पदारविन्दं योगेश्वरैः हृदि विचिन्त्यम्-अगाधबोधैः।
संसारकूप-पतित-उत्तरण-अवलम्बं गेहं जुषाम्-अपि मनसि-उदियात् सदा नः।।10।82।49।।

गोपियों ने निवेदन किया कि हे कमलनाभ प्रभु! भवकूप में गिरेहुए जीवों के लिए योगीश्वरों तथा ऋषियों से पूजित आपके चरणारविन्द एकमात्र आश्रय हैं। ऐसी कृपा कीजिये कि हम अपने घरेलू कार्यों में लगे रहकर भी आपके चरणारविन्द को किसी क्षण भूलें नहीं।

गोपियों से विदा ले भगवान् ने युधिष्ठर के पास आकर उनलोगों का कुशल-क्षेम पूछा। युधिष्ठर ने कहा -

कुतोऽशिवं त्वच्चरणाम्बुज-आसवं महत्-मनस्तो मुखनि:सृतं क्वचित्।
पिबन्ति ये कर्णपुटै: अलं प्रभो देहम्भृतां देहकृत्-अस्मृति-छिदम्।।10।83।3।।

हे प्रभु ! आपके अनन्य भक्तों के मुखारविन्द से निकली हुई अमृत-कथा का अपने कान के कटोरे से छककर पीने वालों को अमंगल कैसे होगा ! यह कथामृत देहधारियों को भगवान्को सहज भूलने की स्वाभाविक प्रवृति को नष्ट करता है। एक ओर भगवान् युधिष्ठर से संवाद में रत थे तब दूसरी ओर द्रौपदी भगवान्की पत्नियों से वार्ता में निमग्न थीं। द्रौपदी ने भगवान् की आठ पटरानियों के एक-एक से उनके विवाह की जानकारी ली। भगवान्की आठ पटरानियों से विवाह का वर्णन स्कन्ध **10** अध्याय **52** से **54** (रुक्मिणी स्वयंवर), **57** (कालिन्दी एवं सत्यभामा का विवाह) एवं **58** (अन्य पाँच पटरानियों के विवाह) में द्रष्टव्य है।

हे वैदर्भि: अच्युतो भद्रे हे जाम्बवति कौसले।
हे सत्यभामे कालिन्दी शैब्ये रोहिणि लक्ष्मणे।।10।83।6।।

उसमें आठ भगवान्की पटरानियाँ हैं तथा नौवीं रानी रोहिणी नरकासुर के कैद से मुक्त की गयी सोलह हजार एक सौ रानियों के नेता के रूप में थीं। इस श्लोक में कौसल शब्द से नाग्नजिती या सत्या को सम्बोधित किया गया है। मित्रविन्दा का दूसरा नाम शैब्या है। रोहिणी अन्य सोलह हजार एक सौ रानियों की प्रवक्ता के रूप में हैं। द्रापदी की जिज्ञासा सुन सभी रानियों ने एक-एक करके अपने विवाह के प्रकरण को सुनाया।

1।**रुक्मिणी जी** ने कहा कि जब मैं शिशुपाल को अर्पित होने वाली थी तब भगवान्ने उनसबों के सिर पर पैर रखकर मेरा अपहरण किया। **"तत्-श्रीनिकेत-चरणोऽस्तु ममार्चनाय।10।83।8।"** मैं तो लक्ष्मीधाम भगवान्के श्रीचरणों की सतत पूजा ही करते रहना चाहती हूँ।

2।**सत्यभामा जी** ने कहा कि मेरे पिता ने अपने भाई की हत्या कर स्यमन्तक छीन लेने का आरोप भगवान्पर लगाया था जो झूठा साबित हुआ। जबकि मेरा वाग्दान दूसरे के साथ किया जा चुका था तबभी भगवान्के ऊपर झूठा आरोप से छुटकारा पाने हेतु मेरे पिता ने मुझे भगवान्को समर्पित कर दिया।

3।**जाम्बवती जी** ने कहा कि गुफा में स्यमन्तक मणि खोजने आये भगवान् श्रीकृष्ण से सत्ताईस दिनों तक युद्ध करने के बाद मेरे पिता जाम्बवान जी को यह आभास हुआ कि वे सीतापति भगवान् राम से ही लड़ रहे थे। उन्होंने स्यमन्तक मणि के साथ मुझे भगवान्को अर्पित कर दिया।मैं **"अमुष्य दासी"** भगवान्की दासी मात्र हूँ। **4**।**कालिन्दी जी ने** कहा कि भगवान्के चरणारविन्द स्पर्श करने हेतु मुझे घोर तपस्या करते जान अपने मित्र अर्जुन के साथ आकर उन्होंने मुझे ग्रहण किया। **"तद्गृहमार्जनी"** मैं उनके घर बुहारने वाली दासी हूँ।

5।मित्रविन्दा जी ने कहा कि मेरे भाई समेत अन्य राजाओं का मान मर्दन करते हुए भगवान्ने मुझे स्वयंवर से अपनाया। **"श्री-ओक: तस्य-अस्तु मे-अनु-भवम्-अङ्घ्रि-अवनेजत्वम्।83।12।।"** मेरी यही अभिलाषा है कि मुझे जन्म-जन्मान्तर उनके श्रीचरण प्रक्षालन का अवसर मिलता रहे।

6 | सत्या जी अर्थात् नाग्नजिती जी या कौसल जी ने कहा कि मेरे पिता जी के सात दुर्दान्त बैलों को नाथने की शर्त पूरी कर भगवान्ने अन्य राजाओं के विरोध का शमन करते हुए मुझसे विवाह किया। **"तत्दास्यम्अस्तु मे"** मैं प्रभु की सेवा में ही सदा रत रहूँ।

7 | भद्रा जी ने कहा कि मेरे पिता जी ने स्वयं मुझे भगवान् को अर्पित कर दिया। मेरी यही कामना है -

अस्य मे पादसंस्पर्शो भवेत्-जन्मनि जन्मनि।

कर्मभि: भ्राम्यमाणाया येन तत्-श्रेय आत्मन:। ।10 | 83 | 16 । ।

कर्मानुसार जिस किसी जन्म में जाऊँ मुझे भगवान्के चरणारविन्द की सेवा मिलती रहे।

8 | लक्ष्मणा जी ने कहा कि नारद जी से भगवान् अच्युत के अवतारों की लीला का गान सुनकर मेरा मन भगवान् श्रीकृष्ण में रम गया।

ममापि राज्ञि-अच्युत-जन्मकर्म श्रुत्वा मुहु: नारद-गीतम्-आस ह।

चित्तं मुकुन्दे किल पद्महस्तया वृत: सुसंमृश्य विहाय लोकपान्। ।10 | 83 | 17 । ।

हे रानी द्रौपदी ! लक्ष्मी जी भगवान् अच्युत के आश्रय में अन्य सभी देवों तथा लोकपालों की अवहेलना करके गयी। इसी अच्युत भगवान्के अवतारों की लीला-कथा का गान नारद जी से मैंने सुनी। हे द्रौपदी जी ! जैसे आपके पिता ने नीचे जल में देखकर स्तम्भ के ऊपरवाली मछली को लक्ष्यवेध करने की शर्त रखी थी वैसे ही मेरे पिता जी ने भी रखी। मेरे स्वयंवर में स्तम्भ के ऊपर मछली चारो ओर से ढकी हुई थी। नीचे जल में देखकर मछली की परछाई खोजते हुए लक्ष्यवेध करना था। सभी राजागण विफल रहे। कर्ण तथा शिशुपाल आदि तो जल में मछली की परछाई भी नहीं खोज सके। अर्जुन के द्वारा परछाई देखकर बाण चलाया गया परन्तु उसका स्पर्श करते हुए वह निकल गया। अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण लक्ष्यवेध के लिये आगे आये।

तस्मिन् सन्धाय विशिखं मत्स्यं वीक्ष्य सकृत्-जले।

छित्त्वा-इषुणा-अपातयत्-तं सूर्ये च-अभिजिते-स्थिते। ।10 | 83 | 26 । ।

जब सूर्य मध्याह्न में सर्वार्थसाधक अभिजित मुहूर्त पर थे भगवान्ने धुनष पर बाण संधान कर एक ही बार जल में मछली की परछाई देखकर उसे जमीन पर गिरा दिया।आकाश में दुन्दुभि बजाकर देवों ने फूल वर्षाये। जब मैंने भगवान्को जयमाला पहनायी तब उन्होंने मुझे अपने रथ पर बैठाकर वहाँ से द्वारका के लिए प्रस्थान कर गये। स्वयंवर में आये राजाओं ने जब विरोध किया तब भगवान्ने उन सबों का डँटकर सामना किया।

मां तावत्-रथम्-आरोप्य हयरत्न-चतुष्टयम्।

शार्ङ्गम्-उद्यम्य सन्नद्ध: तस्थौ-आजौ चतुर्भुज:। ।10 | 83 | 32 । ।

दारुक: चोदयाम्-आस काञ्चन-उपस्करं रथम्।

मिषतां भूभुजां राज्ञि मृगाणां मृगराडिव। ।10 | 83 | 33 । ।

हे रानी द्रापदी ! उत्तम घोड़ेवाले रथ में भगवान्ने चतुर्भुज स्वरूप धारण किया और अपने दिव्यास्त्र शार्ङ्ग धनुष से युद्ध किया। भगवान् के रथचालक दारुक ने भगवान्का रथ चला दिया तथा रथ उसी तरह राजाओं को परास्त करते हुए निकल गया जैसे जंगली पशुओं के बीच से सिंह अपना शिकार लेकर चला जाता है। हमारे पिता ने भगवान् के लिए अनेकों उपहार द्वारका भेज दिया।

आत्मारामस्य तस्येमा वयं वै गृहदासिका:।

सर्वसङ्ग-निवृत्त्या-अद्धा तपसा च बभूविम।।10।83।39।।

अंत में लक्ष्मणा कहती हैं कि हे रानी द्रौपदी ! हम सभी रानियों ने अवश्य ही पूर्व में विशेष तपस्या की होगी तब तो हमसबों को अब पूर्णकाम भगवान्की दासी बनने का सौभाग्य मिला है।

9। रोहिणी जी जब सब रानियों से द्रौपदी की भेंट हुई थी उसमें नौ रानियों के नाम का उल्लेख है।

हे वैदर्भि: अच्युतो भद्रे हि जाम्बवति कौसले।

हे सत्यभामे कालिन्दी शैब्यै रोहिणि लक्ष्मणे।।10।83।6।।

इनमें से आठ भगवान्की पटरानियाँ हैं तथा हरिकथाकार कहते हैं कि नौवीं रानी रोहिणी नरकासुर के कैद से मुक्त की गयी सोहलहजार एक सौ रानियों के प्रवक्ता-नेता हैं। रोहिणी जी कहती हैं कि हमलोगों के मन निरन्तर भगवान्के चरणाम्बुज पर लगे रहने के कारण ही भगवान्ने हमलोगों को स्वीकार कर अपने साथ विवाह किया।

न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वराज्यं भौज्यम्-अपि-उत।

वैराज्यं पारमेष्ठ्यं च आनन्त्यं वा हरे: पदम्।।10।83।41।।

कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरज: श्रिय:।

कुच-कुङ्कुम्-गन्धाढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृत:।।10।83।42।।

हमलोगों को भगवान्के पादारविन्द की तुलना में स्वर्गादि तथा पृथ्वी के ऐश्वर्य तुच्छ प्रतीत होते हैं। भगवान् की प्रियतमा के वक्षस्थल के कुंकुम की सुगन्ध से युक्त भगवान्के चरणाम्बुज की धूल को सर्वदा अपने सिर पर धारण करते रहने की ही एकमात्र कामना है। रोहिणी जी पुन: कहती हैं -

व्रजस्त्रियो यद्वाञ्छन्ति पुलिन्द्य:-तृण-वीरुध:।

गाव: चारयतो गोपा: पादस्पर्शं महात्मन:।।10।83।43।।

भगवान्के श्रीचरणों की धूल के स्पर्श करने की जैसी कामना वृन्दावन की गोपियाँ, गोप, जंगल में बसनेवाली भिलनी तथा वहाँ के घास तथा लता आदि करती रही हैं वैसी ही हमलोगों की भी चाह है। भगवान्की रानियों के भगवान्के प्रति अनन्य प्रेम देखकर अन्य राजाओं की पत्नियों की आँखें डबडबा गयी। इसी बीच भगवान्के दर्शनार्थ व्यास, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, भरद्वाज, गौतम, शिष्यों के साथ परशुराम, वसिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति, द्वित, त्रित, एकत, चारो सनकादि, अंगिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य तथा वामदेव आदि मुनिगण वहाँ पधारे। भगवान्ने सबका सत्कार-सम्मान करते हुए अपने सौभाग्य की सराहना की कि एक ही साथ सभी योगनिष्ठ मुनियों का हमें दुर्लभ-दर्शन मिला। भगवान कहते हैं -

अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कार्त्स्न्येन तत्फलम्।

देवानामपि दुष्प्रापं यद्योगेश्वर दर्शनम्।।10।84।9।।

किं स्वल्पतपसां नृणाम्-अर्चायां देवचक्षुषाम्।

दर्शन-स्पर्शन-प्रश्न-प्रह्व-पादार्चन-आदिकम्।।10।84।10।।

देवताओं को भी दुर्लभ योगेश्वरों के दर्शन से आज हमारा जीवन सफल हो गया। जिनलोगों ने अल्प समय की तपस्या की है और जो समस्त प्राणिमात्र के हृदय में भगवान्‌की अनुभूति न करके मात्र मन्दिरों के अर्चाविग्रह में ही भगवान्‌का दर्शन करते हैं वे लोग आपलोगों के दर्शन-चरण स्पर्श-जिज्ञासा शान्ति-नमस्कार तथा चरणों की पूजा के अधिकारी नहीं है।

न हि-अप्-मयानि तीर्थानि न देवा मृत्-शिला-मया:।
ते पुनन्ति-उरुकालेन दर्शनादेव साधव:।।10।84।11।।

भगवान्‌ने सन्तजनों की महिमा बताते हुए कहा कि तीर्थ के जल तथा अर्चाविग्रह बहुत समय के बाद फल देते हैं जबकि साधु अपने दर्शन से ही तत्काल पवित्र कर देते हैं।

न-अग्नि:-न सूर्यो न च चन्द्रतारका न भू:-जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मन:।
उपासिता भेदकृतो हरन्ति-अघं विपश्चितो ध्नन्ति मुहूर्तसेवया।।10।84।12।।
यस्य-आत्मबुद्धि: कुणपे त्रिधातुके स्वधी: कलत्रादिषु भौम इज्यधी:।
यत्-तीर्थ-बुद्धि: सलिले न कर्हिचित्-जनेषु-अभिज्ञेषु स एव गो-खर:।।10।84।13।।

अग्नि-सूर्य-चन्द्र-तारे-पृथ्वी-जल-आकाश-वायु-वाणी तथा मन के अधिष्ठाता देव सब भगवान्‌के शरीर के अंश हैं। इनका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। सब की अलग-अलग अधिष्ठाता देव मानकर भगवान्‌से स्वतन्त्र मानकर पूजा करने से पाप का क्षय नहीं होता। परन्तु क्षण भर के सन्तों की सेवा सभी पापों का विनाशक है। सन्तों की सेवा नहीं करने वाला व्यक्ति अगर अपने को अपनी आत्मा समझता है तथा परिवार को स्थायी रूप से अपना मान लेता है, तीर्थ के जल को सामान्य जल एवं मात्र अर्चाविग्रह ही को पूज्य मानता है वह पशुओं में गदहा है। एक सामान्य मानव की तरह भगवान्‌को व्यहार करते देख मुनिगण विस्मित होकर स्तुति करने लगे।

नमस्तस्मै भगवते कृष्णाय-अकुण्ठ-मेधसे।
स्व-योगमायया-आच्छन्न-महिम्ने परमात्मने।।10।84।22।।

असीम मेधा वाले भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है जिन्होंने योगमाया से अपनी महिमा को ढक रखा है। आपके श्रीचरणों के दर्शन से हमने श्रेयस प्राप्त कर लिया है। जब मुनिगण विदा होने लगे तब वसुदेव जी ने मुनियों के श्रीचरण में निवेदन किया कि मनुष्य कैसे कर्म-वासना के फल तथा आगे की कर्म-वासना का नाश कर सकता है। नारद जी ने कहा कि जैसे गंगा के किनारे रहने वाला अन्य तीर्थ को जाये उसीतरह आप साक्षात् भगवान् के पिता होकर अबभी हमलोगों से समाधान की जिज्ञासा करते हैं।

कर्मणा कर्मनिर्हार एष साधु निरूपित:।
यच्छ्रद्धया यजेद् विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरं मखै:।।10।84।35।।
चित्तस्य-उपशमोऽयं वै कविभि: शास्त्रचक्षुषा।
दर्शित: सुगमो योगो धर्म:-च-आत्म-मुत्-आवह:।।10।84।36।।
अयं स्वस्त्ययन: पन्था द्विजाते:-गृहमेधिन:।
यत्-श्रद्धया-आप्त-वित्तेन शुक्लेन-ईज्यते पूरुष:।।10।84।37।।

ऋणै:-त्रिभि:-द्विजो जातो देव-ऋषि-पितृणां प्रभो।

यज्ञ-अध्ययन-पुत्रै:-तानि-अनिस्तीर्य त्यजत् पतेत्।।10।84।39।।

मुनियों ने भगवान् विष्णु को ही सभी कर्म-वासनाओं का विनाशक कहा। ब्राह्मण या गृहस्थ अपनी इमानदारी से कमाये हुए प्राप्त शुद्ध धन से ही श्रद्धापूर्वक यज्ञ करे। शास्त्र के जानकार ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यज्ञ पवित्र धर्म है जिससे मनको आनन्द मिलता है। वर्णाश्रमधर्म वाले देव-ऋषि-पितृ ऋण के साथ जन्म लेते हैं। देव ऋण यज्ञ से, ऋषि ऋण शास्त्रों के अध्ययन एवं अनुसरण से, पितृ ऋण सन्तान की उत्पत्ति से चुकाया जा सकता है। ऋण चुकाये बिना मरने पर नरकगामी बनना पड़ता है। वसुदेव जी के निवेदन पर मुनियों ने कुरुक्षेत्र के पावन स्थल पर यज्ञ सम्पन्न कराया।

व्रजवासियों के साथ नन्द जी वहाँ तीन महीने तक ठहरे। वसुदेव जी ने नन्द जी की कृतज्ञता के प्रति आभार प्रकट करते हुए कहा कि पहले कंस के भय से हम आपसे जुड़ नहीं पाये। अब धन एवं ऐश्वर्य के जाल में आपकी कोई खबर नहीं ले पाते हैं। वसुदेव जी ने कहा कि -

मा राज्य-श्री:-अभूत् पुंस: श्रेय:-कामस्य मानद।

स्वजनान्-उत बन्धून् वा न पश्यति यया-अन्ध-दृक्।।10।84।64।।

जीवन में श्रेयस चाहने वाले को राजसी ऐश्वर्य न मिले। क्योंकि धन-ऐश्वर्य से अन्धे होकर अपने सुहृतों को भूल जाते हैं। वसुदेव जी ने अनन्य स्नेह दर्शाते हुए अनेकों कीमति उपहारों के साथ नन्दजी की विदाई की।

नन्दो गोपाश्च गोप्यश्च गोविन्द-चरणाम्बुजे।

मन: क्षिप्तं पुन:-हर्तुम्-अनीशा मथुरां ययु:।।10।84।69।।

भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमल में मन को समर्पित कर गोपगण मनविहीन शरीर के साथ मथुरा गये।

<u>10।45।</u> <u>वसुदेव जी को ब्रह्मज्ञान एवं देवकी जी के छ: पुत्र</u>

एक बार भगवान् श्रीकृष्ण बलराम जी के साथ वसुदेव जी को प्रणाम करने आये। वसुदेव जी ने कहा कि आप दोनों ही सृष्टि के कारण स्वरूप हैं। आप माया की रस्सी को स्नेहयुक्त बनाकर संसार को बान्धे रहते हैं। इसी कारण जीव शरीर तथा परिवार को अपना मान बैठता है। आप दोनों हमारे पुत्र नहीं जगत्के स्रष्टा हैं और पृथ्वी का भार उतारने के लिए ही अवतार लिये हैं। प्रसूति-गृह में ही आपने बतला दिया था कि आप अजन्मा हैं। आपकी माया को समझना दुस्तर है। वसुदेव जी की बात सुन भगवान्ने मुस्कराते हुआ कहा। सभी जीवों में सर्वात्मभाव रखने से ही मुझे प्राप्त किया जा सकता है। उसी समय देवकी जी ने इन दोनों से दीनतापूर्वक निवेदन किया। आप ने मरे हुए गुरु-पुत्र को वापस ला दिया था। कंस द्वारा मारे गये हमारे छ: पुत्रों को वापस ला दीजिये जिससे मैं उनलोगों को एक बार देख सकूँ। ऐसा सुन बलराम जी के साथ भगवान् सुतल लोक गये। सुतल लोक का स्वामी बलि ने इनके पाँव पखारते हुए बहुत सम्मान किया। भगवान्ने बलि से कहा कि ब्रह्मा के शाप से मरीचि के पुत्रगण राक्षस हो गये हैं। वे ही देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। कंस द्वारा मारे जाने के पश्चात् वे सभी आपके यहाँ आ कर रहते हैं। हमें उनसबों को ले जाना है जिससे कि देवकी जी शोकमुक्त हो सकें। उनके नाम हैं स्मर,उदगीथ, परिष्वंग, पतंग, क्षुद्रभृत तथा घृणी। स्मर सबसे बड़ा है जो वसुदेव जी के यहाँ कीर्तिमान (भागवत 10।1।57)

नाम से जन्म लिया था। सभी छ: पुत्रों को भगवान्‌ने देवकी जी को सौंप दिया। पुत्रों को देखकर देवकी जी के स्तन से दूध की धार बह चली। सबों को गोद में बैठाकर देवकी जी ने उन्हें स्तन पान कराया।

पीत्वा-अमृतं पय:-तस्या: पीत-शेषं गदाभृत:।
नारायण-अङ्ग-संस्पर्श-प्रतिलब्ध-आत्मदर्शना:। ।10।85।55। ।
ते नमस्कृत्य गोविन्दं देवकीं पितरं बलम्।
मिषतां सर्वभूतानां ययु:-धाम दिवौकसाम्। ।10।85।56। ।

पूर्व में भगवान् द्वारा माँ देवकी के स्तन से पीये गये दूध के बचे हुए अमृत सदृश दूध पीकर सबों को नारायण के दिव्य स्वरूप को स्पर्श करने का लाभ मिला। उन्हें ब्रह्मा के शाप के पूर्व के अपने दिव्य शरीर का आत्मज्ञान हो गया। वे माँ देवकी, पिता वसुदेव जी, बलराम जी तथा भगवान् कृष्ण से आज्ञा माँग कर देवलोक चले गये। शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण ने इस तरह की अनेक अद्‌भुत लीलायें की हैं।

10।46। सुभद्रा-अर्जुन विवाह

ब्रह्मन् वेदितुम्-इच्छाम: स्वसारं रामकृष्णयो:।
यथा-उपयेमे विजयो या मम-आसीत् पितामही। ।10।86।1। ।

राजा परीक्षित के अनुरोध पर शुकदेव जी ने उनकी दादी सुभद्रा जी, जो बलराम जी एवं भगवान् श्रीकृष्ण की बहन थी, अर्जुन का विवाह कैसे हुआ, यह वृत्तान्त सुनाया। महाभारत की कथा है कि पाण्डव-भाईयों में स्नेह बनाये रखने के उद्देश्य से नारद जी ने ऐसा नियम बनाया कि द्रौपदी प्रत्येक भाई के साथ एक-एक वर्ष रहे। उस समय कोई दूसरा भाई उस अन्त:पुर में प्रवेश न करे। एक ब्राह्मण की गौ की रक्षा के लिए अर्जुन को गाण्डीव लेने युधिष्ठर के अन्त:पुर में जाना पड़ा जहाँ द्रौपदी रह रही थी। द्रौपदी के प्रति वचनभंग के कारण प्रायश्चित्त के लिए अर्जुन तीर्थ पर निकल गये। वे तीर्थों का भ्रमण करते प्रभास क्षेत्र पहुँचे। अर्जुन को जानकारी मिली कि बलराम जी सुभद्रा का विवाह दुर्योधन से करना चाहते हैं जो सुभद्रा तथा परिवार के अन्य किसी सदस्य को पसन्द नहीं था। अर्जुन भी स्वयं सुभद्रा से विवाह करना चाहते थे। अर्जुन ने त्रिदण्डी के वेष में वहाँ चतुर्मास बिताया। बलराम जी इन्हें न पहचान सके और एक दिन घर पर भोजन हेतु निमन्त्रण दिया। सुभद्रा को देख अर्जुन मोहित हो गये और सुभद्रा भी अर्जुन को देख उनकी ओर आकर्षित हो गयी। एक दिन देव दर्शन हेतु सुभद्रा घर से बाहर आयी। वसुदेव-देवकी तथा भगवान् की सहमति से अर्जुन ने सुभद्रा का अपहरण कर लिया। महल के रक्षकों ने अर्जुन को रोकना चाहा परन्तु वे विफल हो गये। बलराम जी बहुत क्रोध में आ गये परन्तु भगवान्‌ने उन्हें मना लिया। बलराम जी ने वर-वधू को बहुत सारे दहेज देकर उनका सम्मान किया।

10।47। भक्तों पर कृपा करने भगवान् श्रीकृष्ण की मिथिला यात्रा

एक बार भगवान् अपने दो आप्तकाम भक्तों, श्रुतदेव ब्राह्मण तथा राजा बहुलाश्व, को अपना दर्शन देने मिथिला गये। भगवान् के साथ मुनियों की एक टोली भी थी।

नारदो वामदेवोऽत्रि: कृष्णो रामो-असितो-अरुणि:।
अहं बृहस्पति: कण्वो मैत्रेय:-च्यवन-आदय:। ।10।86।18। ।

शुकदेव जी कहते हैं कि मैं भी उस टोली में था। मेरे अतिरिक्त उस टोली में नारद, वामदेव, अत्रि, व्यास, परशुराम, असित, अरुणि, बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय तथा च्यवन आदि सम्मिलित थे। भगवान्‌के आगमन की सूचना मिलते ही विदेह नगर के निवासियों ने भगवान्‌का भेंट-उपहार के साथ स्वागत किया। विदेह राजा बहुलाश्व एवं श्रुतदेव ब्राह्मण भगवान् के श्रीचरणों का धरती पर लेटकर साष्टांग प्रणाम किया। दोनों ने मुनियों के साथ भगवान्‌को अपने घर पर पधारने की विनती की।

भगवान्-तत्-अभिप्रेत्य द्वयोः प्रिय-चिकीर्षया।
उभयोः-आविशद् गेहम्-उभाभ्यां तत्-अलक्षितः।।10।86।26।।

भगवान्‌ने दोनों भक्तों को प्रसन्न करने के लिए मुनियों के साथ उनके घर में एक ही समय प्रकट हुए। किसी ने भगवान्‌को दोनों के घरों में प्रवेश करते नहीं देखा। श्रुतदेव ब्राह्मण दरिद्र थे और बहुलाश्व राजा थे। भगवान्‌ने दोनों में कोई भेद-भाव नहीं किया और दोनों के घर में मुनियों की टोली के साथ प्रकट होकर एक ही समय में दोनों को दर्शन दिया। भगवान्‌की इस तरह की कई अन्य लीलायें स्मरणीय हैं। **1**।जब ब्रह्मा जी ने गोप सखओं तथा बछड़ों का अपहरण कर पहाड़ की खोह में छिपा दिया था तब भगवान् स्वयं सबके पृथक-पृथक अलंकरणों के साथ बछड़े तथा गोपसखा बन गये थे।किसी व्रजवासी को एक वर्ष तक इस रहस्यमयी लीला का ज्ञान नहीं हुआ था। **2**।नरकासुर के कैद से मुक्त सोलह हजार रानियों के साथ भगवान्‌ने एक ही साथ विवाह किया था। **3**।नारद जी को भगवान्‌ने द्वारका में एक ही समय में सभी रानियों तथा पटरानियों के अन्तःपुर में गृहस्थी के विभिन्न स्वरूपों में दर्शन दिया था।

राजा बहुलाश्व ने भगवान् तथा मुनियों के चरण पखार पादोदक सिर पर धारण किया। अपने तथा अपने समस्त परिवार को पवित्र कर दिया। शुकदेव जी ने सभी मुनियों को एवं भगवान्‌को **"ईश्वरान्"** कह कर सम्बोधित किया है। **"सकुटुम्बो वहन्मूर्ध्ना पूजयाम्-चक्र ईश्वरान्।86।29।"** तात्पर्य है कि भगवान् एवं भगवत्स्वरूप मुनिगण। मुनियों के साथ भगवान्‌को भोजन करा कर राजा बहुलाश्व ने भगवान्‌के श्रीचरण को अपनी गोद में लेकर भगवान्‌को स्तुति करते हुए कहा।

को नु त्वत्-चरणाम्भोजम्-एवंविद् विसृजेत्पुमान्।
निष्किञ्चनानां शान्तानां मुनीनां यः-त्वम्-आत्मदः।।10।86।33।।
नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णाय-अकुण्ठ-मेधसे।
नारायणाय ऋषये सुशान्तं तप ईयुषे।।10।86।35।।

सन्तों को तो आप अपने-आप को दे देते हैं। ऐसे उदार भगवान्‌के चरणारविन्द को कोई कैसे छोड़ेगा ? असीम प्रज्ञावाले भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है। तपस्यारत शान्त स्वरूप नर-नारायण ऋषि को नमस्कार है। राजा से निवेदन किये जाने पर भगवान्‌ने मुनिवृन्द के साथ कुछ काल तक बहुलाश्व के महल में निवास किया। जब भगवान् राजा के घर थे उसी समय श्रुतदेव ब्राह्मण ने मुनियों के साथ भगवान्‌को अपने घर पर पधारे देख नाचकर उनका स्वागत किया तथा सबको चटाई देकर सुखासीन कराया। सबके पद पखार चरणोदक लिया। तुलसी दल, फल तथा फल के साथ सबों का सत्कार करते हुए मुनिगण तथा भगवान्‌की महिमा का गान किया।

यः सर्वतीर्थ-आस्पद-पाद-रेणुभिः कृष्णेन च-अस्य-आत्मनिकेत-भूसुरैः।।10।86।42।।

मुनिगण सदैव आपके चरणारविन्द को अपने हृदय में रखते है। ऐसे मुनियों के श्रीचरणों की धूल समस्त तीर्थो का आश्रय है। जो निरन्तर श्रद्धा से आपकी लीला के गान, श्रवण तथा परस्पर चर्चा करते हैं आप उनलोगों के हृदय में बसते हैं। श्रुतदेव से गुणागान सुन भगवान्ने उनका हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा कि ये हमारे साथ के मुनिगण सारे जगत्में हमारे साथ घूमते हैं। ये आपको आशीर्वाद देने के लिए ही यहाँ आये हैं।

देवा: क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शन-स्पर्शन-अर्चनै:।

शनै: पुनन्ति कालेन तत्-अपि-अर्हत्-तम-ईक्षया। ।10।86।52। ।

अर्चाविग्रह तथा तीर्थ-क्षेत्र दीर्घकाल की सेवा के बाद फल देते हैं जबकि सन्त अपनी चितवन से ही पवित्र कर देते हैं। भगवान् ने मुनियों की आराधना को ही अपनी आराधना बतायी। राजा बहुलाश्व एवं श्रुतदेव ब्राह्मण को भगवान्की कृपापूर्ण दर्शन से सद्गति मिली।

एवं स्वभक्तयो राजन् भगवान् भक्तभक्तिमान्।

उषित्वाऽऽदिश्य सन्मार्गं पुन:-द्वारवतीम्-अगात्। ।10।86।59। ।

जैसे भक्त भगवान्की भक्ति करते हैं वैसे ही भगवान्भी भक्त की भक्ति करते हैं। मिथिला के दोनों भक्तों को प्रसन्न करने हेतु भगवान् कुछ काल मिथिला में ठहर गये। एक राजा थे और दूसरा दरिद्र परन्तु कामनाहीन ब्राह्मण। दोनों को भगवान ने अपना स्नेहभाजन बनाया तथा एक ही समय दोनों के घर विराज कर दर्शन देते हुए सन्तों-मुनियों की महिमा पर प्रकाश डालते रहे। भगवान् ने दोनों प्रिय भक्तों को मुनियों के आचरण से अनुकरणीय सन्मार्ग का उपदेश दिया। कुछ समय पश्चात् द्वारका वापस आ गये।

<u>**10।48।** श्रुतियों द्वारा भगवान की स्तुति</u>

हरिकथाकारों ने बहुत ही श्रद्धा से वेद द्वारा भगवान्की स्तुति को समझाया है। राजा परीक्षित ने वेद स्तुति के सार भाव को समझने की जिज्ञासा की। शुकदेव जी ने बदरिकाश्रम में नारद जी तथा नारायण ऋषि के संवाद का उद्धरण दिया। भागवत स्कन्ध **5** अध्याय **19** में नर-नारायण ऋषि को भारतवर्ष का अधिष्ठाता देव कहा गया है जिनकी उपासना नारद जी करते हैं। ऋषि स्वरूप में साक्षात् नारायण ने नारद जी को बताया कि एक बार वेद-स्तुति के सार भाव को सनकादिक मुनियों ने एक ब्रह्म-सत्र में समझाया था और नारद जी को नारायण ऋषि ने सत्र के विचार विमर्श को सुनाया। श्रुतियों की स्तुति भगवान्का महिमा-गान है। जब भगवान् प्रलयकालीन जल में सृष्टि समस्त जड़-चेतन को उदरस्थ कर योगनिद्रा में रहते है तब बहुत लम्बे अन्तराल के बाद जीवों के कल्याणार्थ दयार्द्र होकर सृष्टि करने का मन बनाते हैं। उनके श्वास से सबसे पहले श्रुतियाँ प्रकट होती हैं और भगवान्का यशोगान करने लगती हैं जो श्लोक **14** से **41** तक में कुल **28** श्लोकों में वर्णित है।

स्वसृष्टम्-इदम्-आपीय शयानं सह शक्तिभि:।

तदन्ते बोधयान्-चक्रु:-तत्-लिङ्गै: श्रुतय: परम्। ।10।87।12। ।

यथा शयानं सम्राजं वन्दिन:-तत्-पराक्रमै:।

प्रत्यूषे-अभ्येत्य सुश्लोकै:-बोधयन्ति-अनुजीविन:। ।10।87।13। ।

सृष्टि को समेट कर योगनिद्रा वाले भगवान्‌को जगाने के लिए श्रुतियों ने भगवान्‌का यशगान शुरु किया जैसे राजा को प्रात: काल जगाने के लिए वन्दीगण उनकी वीरता तथा कीर्ति का गान करते हैं।

ब्रह्न्-ब्रह्मणि-अनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तय:।
कथं चरन्ति श्रुतय: साक्षात् सदसत: परे।।10।87।1।।

इस श्लोक में श्रुति वेद का पर्यायवाची सम्बोधन है। परीक्षित ने पूछा कि वेद तो सांसारिक-भौतिक-प्रकृति के गुणों का वर्णन कर सकता है परन्तु परमसत्य परमात्मा के गुणों का वर्णन कैसे कर सकता है? शुकदेव जी ने नारद जी तथा नारायण ऋषि के सम्बाद को सुनाया।

एकदा नारदो लोकान् पर्यटन् भगवत्प्रिय:।
सनातनम्-ऋषिं द्रष्टुं ययौ नारायणाश्रयम्।।10।87।5।।
यो वै भारतवर्षेऽस्मिन्क्षेमाय स्वस्तये नृणाम्।
धर्म-ज्ञान-शम-उपेतम्-आकल्पात्-आस्थित:-तप:।।10।87।6।।

नारद जी एक बार आदि ऋषि नारायण का दर्शन करने बदरिकाश्रम आये। भारतवर्ष में धर्म-ज्ञान-इन्द्रिय संयम के अनुशीलन हेतु नारायण ऋपि कल्प के प्रारम्भ से तपस्या कर रहे हैं। जब नारद जी आये तब नारायण ऋषि बदरिकाश्रम के निकटवर्ती कलाप गाँव के मुनियों से घिरे हुए बैठे थे। शुकदेव जी ने कहा कि हे राजन्! नारद जी ने आपही जैसा प्रश्न नारायण ऋषि से पूछा। नारायण ऋषि ने बताया कि जनलोक के ऋषियों के बीच इसी तरह की चर्चा चल रही थी। सनक, सनन्दन, सनातन एवं सनत्कुमार नाम से विख्यात ब्रह्मा के चार मानस पुत्र सनकादिक कहे जाते हैं। उनलोगों ने अपने भाई सनन्दन को ही वक्ता बनाकर प्रेम से इस प्रश्न के समाधान की व्याख्या सुनी। सनन्दन ने कहा कि सृष्टि को समेटकर जब भगवान् शयन मुद्रा में रहते हैं तब समस्त सृष्टि के जड़ एवं चेतन को सूक्ष्म रूप प्रदान कर उनको अपने उदर में रख लेते हैं। जब भगवान्‌के पुन: सृष्टि का समय आता है तब श्रुतियाँ गुणगान करके भगवान्‌को जगाती हैं। श्रुतियाँ कहती हैं कि हमसब आपके गुण-लीला वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं परन्तु जब आप लीला करने के लिए सगुण स्वरूप से आते हैं तब उनका कुछ गान कर पाते हैं। आप माया नटी के नियन्ता हैं। आपकी लीला कथा में मुनिगण गोता लगाकर आनन्दित रहते हैं। कुछ मुनिगण स्थूल रूप से मणिपूरक चक्र में आपके अग्नि स्वरूप का ध्यान करते हैं। कुछ मुनिगण हृदय देश में आपका ध्यान करते हैं जहाँ से देह की सभी नाड़ियाँ निकलती हैं। सुषुम्ना नाड़ी हृदय से होते हुए ब्रह्मरन्ध्र तक जाती है। यही ज्योतिर्मय अर्चि रादि मार्ग है जो जीव को जन्म-मृत्यु से छुटकारा दिलाता है। जब मानवीय शरीर आपकी पूजा-सेवा में लगाया जाता है तब शरीरधारी की आत्मा मित्र की तरह काम करती है।

निभृत-मरुत्-मनो-अक्ष-दृढयोग-युजो हृदि यत्-मुनय
उपासते तत्-अरयो-अपि ययु: स्मरणात्।
स्त्रिय उरगेन्द्र-भोग-भुजदण्ड-विषक्त धियो
वयम्-अपि ते समा: समदृशो-अङ्घ्रि-सरोज-सुधा:।।10।87।23।।

जो गति बड़े-बड़े मुनियों को आपकी उपासना से मिलती है वही शत्रु-भाव तथा काम वासना से लिप्त आप में निरन्तर चित्त लगाये रहने से भी मिलती है। आपकी प्रियतमाओं की तरह हमें भी आपके चरणारविन्द के अमृतपान करने को मिलेगा क्योंकि हमसब श्रुतियों को भी आप प्रियतमाओं की तरह ही स्नेह देते हैं। भागवत **10।32।13।** में "**मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययु:**" का भी यही भाव है कि श्रुतियाँ ही गोपियाँ बनी हैं। गायत्री मन्त्र को गोपी बनने का उल्लेख पद्मपुराण सृष्टिखण्ड में है।

विजित-हृषीक-वायुभि:-अदान्त-मन:-तुरगं
य इह यतन्ति यन्तुम्-अति-लोलम्-उपाय-खिद:।
व्यसन-शत-अन्विता: समवहाय गुरो:-चरणं
वनिज इव-अज सन्ति-अकृत-कर्णधरा जलधौ।।10।87।33।।

श्रुतियाँ गुरु का महत्व बताती है।जब कोई मन तथा प्राण पर नियन्त्रण करने वाला योगी अपने गुरु की अवहेलना करता है तब कर्णधार के विना नाव पर यात्रा करते व्यापारी की तरह योगी का नाश होता है।

त्वत्-अवगामी न वेत्ति भवत्-उत्थ शुभ-अशुभयो:-
गुण-विगुण-अन्वयान्-तर्हि देहभृतां च गिर:।
अनुयुगम्-अनु-अहं सगुण गीत-परम्परया
श्रवण-भृतो यत:-त्वम्-अपवर्ग-गति:-मनुजै:।।10।87।40।।

जब कोई स्वरूप सिद्ध भक्त आपका साक्षात्कार कर लेता है तब शुभ-अशुभ कर्मो की चिन्ता छोड़ वह निरन्तर अपने कानों को आपकी कथामृत से भरते रहता है। भगवान्‌की कथा मनु के ऋषि-पुत्रों से युग-युग में सन्त-शिष्य परम्परा से प्राप्त होती रहती है। स्वायंभुव मनु का मन्वन्तरकालीन जीवन निरन्तर भगवान्‌की लीला-कथा को सुनने, मनन करने तथा गाने में लगा रहता था। द्रष्टव्य भागवत **3।22।35।।**

नारायण ऋषि ने नारद जी को सनकादिक के ब्रह्म-विद्या से प्राप्त रस से आनन्दित होकर निष्काम भाव से पृथ्वी पर विचरण करने को कहा। नारद जी ने नारायण ऋषि के चरणों में प्रणाम किया और व्यास जी के आश्रम पर आकर नारायण ऋषि से प्राप्त ज्ञानोपदेश को सुनाया।

शुकदेव जी ने राजा से कहा कि भौतिक शब्दों से वर्णन नहीं किये जाने वाले गुणातीत भगवान्‌को प्राप्त करने का मार्ग श्रुतियों की स्तुति से समझा जा सकता है। समस्त सृष्टि भगवान् से निकलकर प्रलयान्त में उन्हीं में समा जाती है। असंख्य जीवों में से कोई भी भगवान्‌के समान नहीं हो सकता।

यं संपद्य जहाति-अजाम्-अनुशयी सुप्त: कुलायं यथा
तं कैवल्य-निरस्त-योनिम्-अभयं ध्यायेत्-अजस्रं हरिम्।।10।87।50।।

शुकदेव जी ने कहा कि अजन्मा भगवान्‌की शरण ग्रहण करके जीव सब तरह के भय से मुक्त हो जाता है। उसे निरन्तर श्रीहरि का ही ध्यान करना चाहिए।

<u>**10।49। भगवान् जनार्दन ने अपने भक्त शिव को संकट से उबारा**</u>

राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से जिज्ञासा की कि श्रुतियों की स्तुति के उपसंहार में आपने कहा कि सांसारिक भय से मुक्त होने के लिए सदैव श्रीहरि का ध्यान करे। परन्तु ऐसा देखा गया है -

देवासुर-मनुष्येषु ये भजन्ति-अशिवं शिवम्।
प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्या: पतिं हरिम्।।10।88।1।।

अशुभ वेष वाले शिव की आराधना करके सभी भोग तथा ऐश्वर्य पूर्ण बन जाते हैं परन्तु आप्तकाम भगवान् लक्ष्मीपति हरि के भक्त दरिद्र ही देखे जाते हैं। शुकदेव जी ने कहा कि इसी तरह का प्रश्न युधिष्ठर ने अश्वमेध यज्ञ के अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण से किया था। भगवान्ने कहा कि -

यस्य-अहम्-अनुगृह्णमि हरिष्ये तत्-धनं शनै:।
ततोऽअधनं त्यजन्ति-अस्य स्वजना दु:ख-दु:खितम्।।10।88।8।।
स यदा वितथ-उद्योगो निर्विण्ण: स्याद्धन-ईहया।
मत्परै: कृत-मैत्रस्य करिष्ये मत्-अनुग्रहम्।।10।88।9।।

जिस पर अनुग्रह करता हूँ उसको धीरे-धीरे निर्धन बना देता हूँ। अपने परिवार वाले भी तब उसका परित्याग कर देते हैं। वह प्रयत्न भी करता है तबभी उसे धन नहीं मिलता। जब हमारे भक्तों से प्रेम करता है तब मैं उस पर अहैतुकी कृपा करता हूँ जिसके कारण उसका हृदय निर्मल होकर मेरे तथा अपने स्वरूप से अवगत होता है। इस तरह से मेरी आराधना श्रमसाध्य तथा कष्ट साध्य है। देखें **1।9।15-16।। 10।87।40।।** इसके ही कारण भौतिक सुख के लिए लोग दूसरे देवता की पूजा करने लगते हैं। ब्रह्मा एवं शंकर दोनों ही वर तथा शाप देने में जल्दी करते हैं। शुकदेव जी ने इससे सम्बन्धित एक पुराना पौराणिक उदाहरण दिया।

शीघ्र प्रसन्न होकर वरदान देने के कारण शिव एक बार घोर संकट में घिर गये। नारद जी से एकबार वृकासुर ने पूछा कि कौन देवता शीघ्र प्रसन्न होते हैं। तब नारद जी ने रावण का उदाहरण देते हुए शिव का नाम लिया। केदारनाथ जाकर वह शिव को प्रसन्न करने हेतु अपने शरीर का मांस काटकर हवन करने लगा। जब सिर काटकर हवन करना चाहा तब शिव प्रसन्न हो गये। वृकासुर ने शिव को प्रसन्न कर वर प्राप्त किया कि वह जिसके सिर पर हाथ रखे वह मर जाये। शिव जी का अन्त करके वह उनकी पत्नी गौरी को प्राप्त करना चाहता था। **"इत्युक्त: सोऽसुरो नूनं गौरी-हरण-लालस:।88।23।।"** अत: उस दुष्ट ने शिव के सिर पर ही हाथ रखना चाहा। शिव भाग चले। ब्रह्माण्ड भर में कहीं त्राण न मिलते देख वैकुण्ठ गये। भगवान् जनार्दन शिव की परेशानी जान गये। वे तत्क्षण एक मनमोहक विद्यार्थी के स्वरूप में वृकासुर के सामने प्रकट हुए।

मेखल-अजिन-दण्ड-अक्षै:-तेजसा-अग्नि:-इव ज्वलन्।
अभिवादयाम्-आस च तं कुश-पाणि:-विनीतवत्।।10।88।28।।

भगवान् मूंज की कमर में डाँड़ा, काला मृगचर्म, शमी का दण्ड, कमलाक्ष की जपमाला, से अलंकृत थे। वे अग्नि के समान आभायुक्त थे। हाथ में कुश पकड़े हुए भगवान्ने असुर का स्वागत कर उसे शान्त किया तथा सारा वृत्तान्त जानने पर बताया कि दक्ष के शाप के कारण शिव को वरदान देने की शक्ति समाप्त हो गयी है। वे मांसभक्षी तथा प्रेत प्रेमी हो गये हैं।उनके बातों में मत पड़ो। अच्छा होगा कि उनके वरदान की परीक्षा तुम अपने हाथ को अपने ही सिर पर रखकर देख लो कि उनका वरदान किस तरह निष्फल होता है। तब तू उनका वध कर देना जिससे वह आगे झूठ न बोले। भगवान् की बातों से मोहित हो वृकासुर ने वैसा ही किया और शीघ्र ही उसका अन्त हो गया। इस कथा की महिमा बताते हुए शुकदेव जी न कहा कि इस कथा को कहने एवं सुनने वाला शत्रु तथा जन्म-मृत्यु

के चक्कर से मुक्त हो जाता है। प्रसिद्ध भागवत व्याख्याकर श्रीधर स्वामी ने इस प्रकरण का उपसंहार भगवान् केशव का अपने भक्त शिव पर दिखाये गये अनोखे अनुग्रह की गाथा से किया।

भक्त-संकटम्-आलोक्य कृपापूर्ण-हृदम्बुज:।
गिरित्रं चित्रवाक्यात्-तु मोक्षयामास केशव:।।

10।50। भृगु मुनि द्वारा ब्रह्मा, शिव तथा वैकुण्ठपति विष्णु भगवान्‌की परीक्षा।

सरस्वती नदी के किनारे वैदिक यज्ञ में ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु में किसकी पूजा को प्राथमिकता दी जाय पर विवाद हो गया। मुनियों ने भृगु मुनि को परीक्षा लेने के लिए नियुक्त किया। पहले भृगु मुनि ब्रह्मा के पास गये। उनके धैर्य की परीक्षा हेतु उनको भृगु मुनि ने ब्रह्मा को प्रणाम नहीं किया। ब्रह्मा को अपने पुत्र भृगु की शिष्टाचार हीनता पर क्रोध हुआ परन्तु वे उन्हें पुत्र समझ मौन रहे। भृगु जी तब वहाँ से शिव के पास गये। शिव ने अपने भाई भृगु का आलिंगन करना चाहा परन्तु भृगु जी ने यह कहते हुए कि शिव लोक एवं वेदमार्ग का उल्लंघन करने वाले हैं और उनके आलिंगन को स्वीकार न किया। शिव अपने त्रिशूल से भृगु मुनि को मारना चाहे परन्तु पार्वती के हस्तक्षेप से भृगु बच गये। तब भृगु जी वहाँ से भगवान् जनार्दन के पास वैकुण्ठ गये।

शयानं श्रिय उत्सङ्गे पदा वक्षसि-अताडयत्।
तत उत्थाय भगवान्सह लक्ष्म्या सतां गति:।।10।89।8।।

लक्ष्मी जी की गोद में पैर रखकर लेटे हुए भगवान्‌की छाती पर मुनि ने एक लात लगा दी। लक्ष्मी जी के साथ खड़ा होकर भगवान् ने उनका स्वागत करते हुए उन्हें आसन पर विराजमान कराया।

पुनीहि सहलोकं मां लोकपालंश्च मद्‌गतान्।
पादोदकेन भवत:-तीर्थानां तीर्थकारिणा।।10।89।11।।
अद्य-अहं भगवन्-लक्ष्म्या आसम्-एकान्त-भाजनम्।
वत्स्यति-उरसि मे भूति:-भवत्-पाद-हत-अहंस:।।10।89।12।।

भगवान्‌ने मुनि का चरण पखारा एवं चरणोदक को तीर्थों को भी पवित्र करने वाला तीर्थ जल कहा। आपके चरण स्पर्श से मेरा वक्षस्थल पापरहित होकर मैं लक्ष्मी जी का निवासस्थान - श्रीनिवास बन गया। भगवान् की बात सुन भृगु जी आनन्द-विह्वल हो गये। भृगु जी यज्ञशाला लौट आये और मुनियों को सारा वृत्तान्त कह सुनाया। मुनियों ने भगवान् विष्णु को शान्ति एवं निर्भयता का उद्‌गम बताते हुए उन्हें ही सभी देवों में श्रेष्ठ माना। हरिकथाकार कहते हैं कि क्रोधी स्वभाव को देखकर किसी के सात्विक, राजसिक तथा तामसिक व्यक्तित्व को समझा जा सकता है। ब्रह्मा को भृगु मुनि के व्यवहार पर क्रोध हुआ परन्तु मौन रह गये।राजसिक प्रधान होने का यह संकेत है। भृगु मुनि के व्यवहार से शिव को क्रोध हुआ तब वे त्रिशूल लेकर मारने दौड़े। यह उनके तामसिक स्वभाव को बतलाता है। भृगु मुनि के लात मारने पर विष्णु भगवान्‌को लेश-मात्र भी क्रोध नहीं हुआ। मुनि के वैकुण्ठ आगमन पर वे उनका समादर नहीं कर सके थे इसलिए वे मुनि से क्षमा माँगते हैं। विष्णु भगवान् सत्व के साक्षात् स्वरूप हैं। यह सब जानकर मुनियों ने भगवान् विष्णु को ही सर्वश्रेष्ठ माना।

धर्म: साक्षाद् यतो ज्ञानं वैराग्यं च तदन्वितम्।
ऐश्वर्य च-अष्टधा यस्माद् यश:-च-आत्म-मल-अपहम्।।10।89।16।।

सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्ति:-ब्राह्मणा:-तु-इष्टदेवता:।

भजन्ति-अनाशीष: शान्ता यं वा निपुण-बुद्धय:।।10।89।18।।

भगवान् विष्णु की पूजा से ही धर्म-ज्ञान-वैराग्य तथा आठो योग शक्तियाँ प्राप्त होती है जो चित्त के कल्मष को दूर करती है। भगवान् का स्वरूप शुद्ध सत्त्वमय है। ब्राह्मण इनके पूज्य देव हैं। आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त बुद्धि सम्पन्न व्यक्ति ही निष्काम भाव से भगवान् विष्णु की पूजा करते हैं। सूत जी ने कहा -

इति-एतत्-मुनि-तनय-आस्य-पद्म-गन्ध-पीयूषं भव-भय-भित्परस्य पुंस:।

सुश्लोकं श्रवणपुटै: पिबति-अभीक्ष्णं पान्थो-अध्व-भ्रमण-परिश्रमं जहाति।।10।89।21।।

इस कथा की महिमा बताते हुए सूत जी शौनकादि मुनियों से कहते हैं कि व्यासनन्दन शुकदेव जी के मुखारविन्द से सुगन्धित अमृतमयी कथा जन्म-मृत्यु के भय को मिटाने वाली है। दोनों कानों से इस कथा को निरन्तर सुनने वाले की जीवन-यात्रा के सारे कष्ट दूर हो जाते हैं।

10।51। भगवान् द्वारा द्वारका के मृत ब्राह्मण पुत्रों का वापस लाना।

भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्यगुणों को आलोकित करने वाली एक अन्य लीलाकथा का शुदकदेव जी वर्णन करते हैं। एक बार द्वारका के राजमहल के मुख्य द्वार पर एक ब्राह्मण अपने नवजात पुत्र के मृतक शरीर को रखकर द्वारका के राजा के पाप के कारण उसके पुत्र की मृत्यु का आरोप लगा रहा था। इसी तरह से उसके नौ पुत्र मरते गये और सबके शव को वह राजद्वार पर छोड़ शोक-गीत गाता था। अर्जुन ने उसके शोक को शान्त करने हेतु ऐसी प्रतिज्ञा की कि उसके दसवें पुत्र की रक्षा वह स्वयं करेगा और निष्फल होने पर अग्नि में जल मरेगा। जब दसवें पुत्र के जन्म का समय हुआ तब अर्जुन ने सूतिका-गृह को चारों तरफ से सुरक्षा कवच के समान बाणों से आच्छादित कर दिया। परन्तु दसवें पुत्र को रोते-रोते अदृश्य होते सुन अर्जुन अपनी योग विद्या से यमपुरी गये। वहाँ वह बालक न मिला। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से खोज निकालने में विफल अर्जुन अग्निदाह से मरने की तैयारी करने लगे। भगवान्ने इन्हें रोका और अर्जुन को रथ पर बैठाकर दिव्यलोक की यात्रा की।

समस्त ब्रह्माण्ड के सातो द्वीप, सातो समुद्र तथा सातो पर्वतों को पारकर भगवान्का रथ लोकालोक की सीमा के पार घोर अन्धकारपूर्ण क्षेत्र से पार करने में भटकने लगा। भगवान्ने प्रकाश हेतु चक्र का अनुसंधान किया।

तान् दृष्ट्वा भगवान् कृष्णो महायोगेश्वरेश्वर:।

सहस्र-आदित्य-सङ्काशं स्वचक्रं प्राहिणोत् पुर:।।10।89।50।।

तम: सुघोरं गहनं कृतं महद् विदारयद् भूरितरेण रोचिषा।

मनाजवं निर्विविशे सुदर्शनं गुण-च्युतो रामशरो यथा चमू:।।10।89।51।।

भगवान्ने हजारो सूर्य जैसा प्रकाशमान अपने सुदर्शन चक्र को रथ के आगे चलने का आदेश दिया। जैसे भगवान् राम के बाण राक्षसी सेना का विनाश करते थे उसीतरह सुदर्शन चक्र ने अंधकार का नाश कर दिया।

तत: प्रविष्ट: सलिलं नभस्वता बलीयसा-एजत्-बृहत्-ऊर्मि-भूषणम्।

तत्र-अद्भुतं वै भवनं द्युमत्-तमं भ्राजत्-मणिस्तम्भ-सहस्रशोभितम्।।10।89।53।।

तस्मिन्-महाभीमम्-अनन्तम्-अद्भुतं सहस्रमूर्धन्य-फणा-मणिद्युभि:।

विभ्राजमानं द्विगुण-उल्बण-ईक्षणं सित-अचल-आभं शितिकण्ठ-जिह्वम्।।10।89।54।।

अंधकार की सीमा के पार अथाह जलराशि वाले समुद्र में रथ प्रवेश किया। घोर आँधी के कारण ऊँची तरंगें उठ रही थी। जल के भीतर हजारों मणि के खम्भों से सुशोभित पूर्ण प्रकाशमान एक अद्भुत दिव्य राजमहल का दर्शन हुआ। उसमें हजारो फणों पर प्रकाशमान मणियों से प्रकाशित दुगुने प्रकाशवाली आँखों से सुशोभित नीले रंग के कण्ठ तथा जीभ वाले आभापूर्ण श्वेत स्फटिक के पर्वत जैसे भगवान् शेष विराजमान थे।

ददर्श तद्भोग-सुखासनं विभुं महानुभावं पुरुषोत्तम-उत्तमम्।

सान्द्र-अम्बुदाभं सुपिशङ्ग-वाससं प्रसन्न-वक्त्रं रुचिरायत-ईक्षणम्।।10।89।55।।

शेषजी के शुभ अवयवों से बने आरामदायक शय्या पर सुख से लेटे हुए घनश्याम वदन पर पीले रेशमी वस्त्र से सुशोभित आकर्षक बड़ी-बड़ी आँखों एवं प्रसन्न मुखारविन्द वाले परम पुरुषोत्तम भगवान् दर्शन दे रहे थे।

महामणिव्रात-किरीट-कुण्डल-प्रभा-परिक्षिप्त-सहस्र-कुन्तलम्।

प्रलम्ब-चारु-अष्टभुजं सकौस्तुभं श्रीवत्सलक्ष्मं वनमालया वृतम्।।10।89।56।।

मणि-जड़ित मुकुट तथा कान के कुण्डलों की आभा से केश के हजारो घुँघराले गुच्छे कान्तिमान हो रहे थे। आठ भुजा वाले भगवान्के कण्ठ में कौस्तुभ मणि, वक्षस्थल पर श्रीवत्स तथा गले में वनमाला सुशोभित हो रही थी।

सुनन्द-नन्द-प्रमुखै: स्वपार्षदै:-चक्र-आदिभि:-मूर्ति-धरै:-निज-आयुधै:।

पुष्ट्या श्रिया कीर्ति-अजया-अखिल-ऋद्धिभि:-निषेव्यमानं परमेष्ठिनां पतिम्।।10।89।57।।

उस समय भगवान्की सेवा में लगे नन्द-सुनन्द आदि पार्षद, मूर्तिमान होकर चक्रादि दिव्य आयुध, पुष्टि-श्री-कीर्ति -अजा चारों शक्तियों तथा सम्पूर्ण ऋद्धियों के दर्शन हुए।

ववन्द आत्मानम्-अनन्तम्-अच्युतो जिष्णुश्च तद्दर्शन-जात-साध्वस:।

तावाह भूमा परमेष्ठिनां प्रभु:-बद्धाञ्जली सस्मितम्-उर्जया गिरा।।10।89।58।।

जिनको देख अर्जुन भयभीत हो गये थे उस अनन्तशायी अपने ही स्वरूप को भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रार्थना करते हुए नमस्कार किया। (गोवर्धन पर्वत की पूजा में भगवान्श्रीकृष्ण ने अपने ही स्वरूप की पूजा की थी। नारद जी भगवान्की दिनचर्या देखने द्वारिका आये तब कई महलों में भगवान्को पूजा तथा हवन करते देखा था। उसी तरह से भगवान् श्रीकृष्ण ने अनन्तशायी भगवान्को प्रणाम किया।) भगवान्के बाद अर्जुन ने भी नमस्कार किया। दोनों को हाथ जोड़े खड़े देख अनन्तशायी भगवान्ने गम्भीर वाणी में बोला। मैंने ब्राह्मण के सभी पुत्रों को अपने पास लाया था जिससे कि आप दोनों का दर्शन कर सकूँ।

पूर्ण-कामौ-अपि युवां नर-नारायणौ-ऋषि।

धर्मम्-आचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहम्।।10।89।60।।

अनन्तशायी भगवान्ने कहा कि आप दोनों नर तथा नारायण ऋषि हैं। सर्वश्रेष्ठ महानतम तथा पूर्णकाम होते हुए लोकहित के लिए धर्माचरण करते रहें। तदुपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण तथा अर्जुन ने अनन्तशायी भगवान्को प्रणाम किया और ब्राह्मण पुत्रों को साथ लेकर द्वारका आ गये। दोनों ने ब्राह्मण को उनके पुत्रों को यथावत सौंप दिया। हरिकथाकार कहते हैं कि जैसे कुरुक्षेत्र के सूर्यग्रहण का प्रसंग महाभारत के पहले की है उसी तरह यह घटना भी

महाभारत युद्ध के पूर्व की है परन्तु इसे भगवान्‌की महिमा को प्रदर्शित करने के लिए ही यहाँ दसम स्कन्ध के अन्त में रखा गया है जो इस अध्याय के अन्तिम श्लोक से स्पष्ट हो जाता है।

हत्वा नृपान्-अधर्मिष्ठान् घातयित्वा-अर्जुन-आदिभिः।
अञ्जसा वर्तयाम्-आसा धर्मं धर्मसुत-आदिभिः।।10।89।66।।

शुकदेव जी कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण ने कुछ आततायी राजाओं का स्वयं नाश किया तथा कुछ का अर्जुन आदि से कराया। धर्म के पुत्र युधिष्ठर से भगवान् ने पृथ्वी पर धर्म की गरिमा को स्थापित कराया।

10।52। द्वारका वैभव ।

द्वारका की प्राकृतिक छटा बहुत मनोरम थी। उद्यानों तथा सरोवरों में विभिन्न तरह की पक्षियों की गूँज से उसका दृश्य अत्यन्त ही मनोरम बना रहता था। भगवान्‌की **16108** रानियों में से प्रत्येक के महलों में सरोवर तथा उद्यान थे। वहाँ भगवान् रानियों के साथ जलक्रीड़ा करते थे। सभी रानियों से भगवान्‌के दस-दस पुत्र थे। अठारह प्रधान पुत्रों में प्रद्युम्न सबसे प्रमुख थे जिनके पुत्र अनिरुद्ध थे। समस्त यदुवंशियों के नाश के बाद अनिरुद्ध के एकमात्र पुत्र वज्रनाभ ही जीवित रहे थे जिनको अर्जुन ने मथुरा का राजा बना दिया था।

सुखं स्वपुर्यां निवसन् द्वारकयां श्रियः पतिः।
सर्व-सम्पत्-समृद्धायां जुष्टायां वृष्णि-पुङ्गवैः।।10।90।1।।

सर्वसम्पन्न द्वारका पुरी में लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण ने सुखपूर्वक निवास किया। भगवान् अपने हाव-भाव तथा चितवन से रानियों के मन को मुग्ध करते रहते थे। रानियों के मुग्ध मन निरन्तर भगवान्‌में ही लीन रहते थे। मुग्धावस्था में शिथिल रानियाँ कुररी, चक्रवाक, कोयल, हंस आदि पक्षियों, चन्द्रमा, समुद्र, बादल, वायु आदि से भावोन्माद में कहती थीं कि लगता है भगवान्‌के मनमोहक चितवन से आप सब भी मुग्ध-शिथिल हो गये हैं।

एवं वेदोदितं धर्मम्-अनुतिष्ठन् सतां गतिः।
गृहं धर्म-अर्थ-कामानां मुहुः-च-आदर्शयत् पदम्।।10।90।28।।

भगवान्‌ने वेदोक्त गृहस्थ-धर्म का पालन कर संसार में एक आदर्श प्रस्तुत किया।

शय्या-आसन-अटन-आलाप-क्रीडा-स्नान-आदि-कर्मसु।
न विदुः सन्तम्-आत्मानं वृष्णयः कृष्णचेतसः।।10।90।46।।

कृष्ण भावनामृत में लीन यादवगण को सोते-बैठते-घूमते-वार्तालाप करते-स्नान करते -खेलते आदि कार्यों में लगे अपनी देह का भान नहीं रहता था।

तीर्थं चक्रे नृप-ऊनं यत्-अजनि यदुषु स्वःसरित्-पाद-शौचम्
विद्विट्-स्निग्धाः स्वरूपं ययुः-अजित-परा श्रीः-यत्-अर्थे-अन्य-यत्नः।
यत्-नाम-अमङ्गल-ध्नं श्रुतम्-अथ गदितं यत्-कृतो गोत्रधर्मः
कृष्णस्य-एतत्-न चित्रं क्षिति-भर-हरणं काल-चक्रायुधस्य।।10।90।47।।

परमतीर्थ स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण के यदुवंश में अवतार लेने से त्रिविक्रम भगवान्‌के पादोदक पवित्र तीर्थ गंगा की महिमा घट गयी है। (क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्द के स्पर्श से यमुना नित्य-निरन्तर पवित्र होती गयी।)

प्रेम तथा शत्रुता करने वाले दोनों को भगवान्‌ने अपने स्वरूप में समाहित कर लिया। सबके प्राप्य-लक्ष्य लक्ष्मी जी निरन्तर भगवान्‌की सेवा में लगी रहती हैं। भगवान्‌ने ही ऋषियों की शिष्य परम्परा को निश्चित किया। अपने फलदायी कालचक्र से पृथ्वी का भार उतारना इनके लिए कोई आश्चर्य नहीं है।

जयति जननिवासो देवकी-जन्मवादो यदुवर-परिषत्-स्वै: दोर्भि:-अस्यन्-अधर्मम्।

स्थिर-चर-वृजिन-घ्न: सुस्मित-श्री-मुखेन व्रजपुर-वनितानां वर्धयन् कामदेवम्।।10।90।48।।

सर्वत्र सर्वदा सबमें विराजमान, जननिवास, देवकीनन्दन कहे जाते हैं। यदुकुल की सभा में विराजमान अपने भुजा -स्वरूपी अर्जुन आदि भक्तों से अमंगल का नाश कराते हैं। सर्वदा मुस्कुराते हुए स्थावर-जंगम के पाप को काटते हैं। श्रीमुख के मुस्कान से गोपियों के अनुराग को बढ़ाते हैं। ऐसे जननिवास देवकीनन्दन भगवान् की जय हो।

इत्थं परस्य निज-वर्त्म-रिरक्षया-आत्त-लीला-तनो:-तदनुरूप-विडम्बनानि।

कर्माणि-कर्म-कषणानि यदु-उत्तमस्य श्रूयात्-अमुष्य पदयो:-अनुवृत्तिम्-इच्छन्।।10।90।49।।

भक्तों एवं धर्म के रक्षार्थ लीला शरीर धारण करने वाले भगवान्‌के चरित्र बड़े अद्‌भुत हैं।इसका श्रवण भगवान्‌के श्रीचरणों में अनुराग बढ़ाते हुए कर्म-बन्धन को काटता है।

मर्त्य:-तया-अनुसवम्-एधितया मुकुन्द-श्रीमत्कथा-श्रवण-कीर्तन-चिन्तया-एति।

तत्-धाम दुस्तर-कृतान्त-जव-अपवर्गं ग्रामाद् वनं क्षितिभुजोऽपि ययु:-यत्-अर्था:।।10।90।50।।

भगवान्‌की कथा का श्रवण, कीर्तन तथा मनन करने से नश्वर मानव परमधाम जाता है। भगवान्‌के काल चक्र का परमधाम में कोई प्रभाव नहीं है। बड़े-बड़े राजा इसी परमधाम को पाने के लिए जंगल के राही होते हैं।

।।अध्याय 70 से 90 तक समस्त स्कन्ध 10 पूरा हुआ।।

श्रीमते रामानुजाय नमः ।
श्रीमद्भागवत स्कन्ध 11
वन्दउँ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

इस स्कन्ध की मुख्य कथा (1) नारद-वसुदेव सम्वाद में नौ योगश्वरों की उक्ति से भक्ति की महिमा बताना, (2)उद्धव जी एवं भगवान् श्रीकृष्ण सम्वाद में दत्तात्रेय के चौवीस गुरु का उपख्यान तथा भक्ति के क्रियात्मक पक्ष का निरूपण एवं (3)यदुवंश का विनाश कराके भगवान् श्रीकृष्ण का स्वधाम-गमन है। इस स्कन्ध में कुल 31 अध्याय है जिसमें 1।पहले अध्याय में यदुवंश विनाश की भूमिका तथा विनाश का बीजारोपण है। 2।अध्याय 2 से 5 तक राजा निमि एवं नौ योगिश्वरों के सम्वाद हैं। 3।अध्याय 6 में ब्रह्मा, शिव तथा अन्य देवों द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति है। 4। सातवें अध्याय से लेकर उन्नतीसवें अध्याय तक भगवान् श्रीकृष्ण का उद्धव जी को उपदेश है जिसे उद्धव गीता कहते हैं। 5।अध्याय तीस में यदुवंश का नाश है। 6।अन्तिम अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण का स्वधाम गमन है।

11।1। यदुवंश को ऋषियों का शाप।

भगवान्ने सोचा कि यदुवंशी धन तथा ऐश्वर्य से मतवाले हो रहे हैं और हमारे शरणागत (**कथञ्चित्-मत्संश्रयस्य 11।1।4।**) होने के कारण अजेय हैं।जैसे बाँस के जंगल में बाँस के आपस में टकराने से ही आग लगती है उसी तरह इनके बीच कलह होने से ये स्वयं एक-दूसरे से लड़ मरेंगे। ऋषियों के शाप से इनके विनाश कराने का भगवान्ने मानसिक संकल्प लिया। शुकदेव जी ने भगवान्के अद्भुत सौंदर्य तथा उनकी कीर्ति-लीला से भरे श्रीमद्भागवत की महिमा का बखान किया।

स्वमूर्त्या लोक-लावण्य-निर्मुक्त्या लोचनं नृणाम्।
गीर्भिः ताः स्मरतां चित्तं पदैः तान्-ईक्षतां क्रियाः।।11।1।6।।
आच्छिद्य कीर्तिं सुश्लोकां वितत्य हि-अञ्जसा नु कौ।
तमोऽनया तरिष्यन्ति-इति-अगात् स्वं पदम्-ईश्वरः।।11।1।7।।

त्रिलोक सुन्दर भगवान्को देख लोगों की आँखें अघाती नहीं।उनकी वाणी सुनने तथा कार्यकलाप को स्मरण करते रहने की लालसा बनी की बनी रहती थी। चरणारविन्द के दर्शन से कभी तृप्ति नहीं मिलती थी। त्रिलोक में विद्वान कवियों ने भगवान्की कीर्ति को छन्दबद्ध किया जिसका प्रेम से गान किया जाता था। भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वधाम गमन के बाद अपनी अनुपस्थिति में अपने चरित के श्रवण एवं कीर्तन को ही संसार के मोहान्धकार से ग्रस्त प्राणियों के उद्धार का एकमात्र उपाय बताया था। **इसी चरित को श्रीमद्भागवत कहते हैं।**

शुकदेव जी कहते हैं कि एकवार विश्वामित्र, असित, कर्ण, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ तथा नारद आदि मुनियों ने वसुदेवजी के घर पुण्यप्रदायक यज्ञ सम्पन्न किया। वहाँ से विदा होकर मुनिगण पिण्डारक नामक तीर्थ स्थान पर आ गये। यह गुजरात में ही समुद्र के तट से कुछ दूर पर अवस्थित है।

जाम्बवती के पुत्र साम्ब को अन्य युवा यदुवंशियों ने हँसी-मजाक में एक गर्भवती स्त्री के रूप में प्रस्तुत कर मुनियों से पूछा कि इस स्त्री की कौन सी सन्तान होगी। इस तरह के लड़कपन से मुनिगण क्षुब्ध हो गये और कहा कि इसके गर्भ से लोहे का मूसल उत्पन्न होगा जो यदुवंश का विनाश करेगा। जब देखा गया तब साम्ब के कपड़ो के नीचे एक मूसल मिला। घवराये हुए यदुकुल के युवागण राजसभा में गये। राजा उग्रसेन को मूसल दिखाते हुए सारी घटना का बखान कर दिया। राजा ने उस मूसल का चूरा-चूरा करवाया। चूरे के साथ एक छोटा टुकड़ा बच गया था। राजा ने स्वयं जाकर चूरे तथा टुकड़े को समुद्र में डाला। भगवान् श्रीकृष्ण से इस सम्बन्ध में कोई विचार-विमर्श नहीं किया गया। लोहे के टुकड़े को एक मछली निगल गयी तथा बाकी समस्त चूरा जल-तरंगों के साथ किनारे आ लगा। शीघ्र उन चूरों से ऐरक - सरकंडा जैसा घास उग आया। मछुआरे के जाल में पड़कर वह मछली जरा नामक शिकारी को हाथ लगी। उसके पेट से निकले मूसल के छोटे टुकडे को जरा ने एक तीर के नोक में लगा लिया।

भगवान्-ज्ञात-सर्वार्थ ईश्वरोऽपि तदन्यथा।
कर्तु न-ऐच्छद्विप्रशापं कालरूपी-अन्वमोदत।।11।1।24।।

कालरूपी भगवान्ने सक्षम होते हुए भी ऋषि के शाप को नहीं उलटा बल्कि मन से उसका अनुमोदन ही किया।

<u>11।2। नारद जी द्वारा वसुदेव जी को राजा निमि एवं नौ योश्वरों का सम्बाद सुनाना ।</u>

गोविन्द-भुज-गुप्तायां द्वारवत्यां कुरु-उद्वह।
अवात्सीत्-नारदो-अभीक्ष्णं कृष्ण-उपासन-लालसः।।11।2।1।।
को नु राजन्-इन्द्रियवान् मुकुन्द-चरणाम्बुजम्।
न भजेत् सर्वतो-मृत्युः उपास्यम्-अमर-उत्तमैः।।11।2।2।।

शुकदेव जी कहते हैं कि हे कुरुश्रेष्ठ ! भगवान् द्वारका में नारद जी बार-बार भगवान् की पूजा-उपासना करने आते रहते थे। हरिकथाकार कहते हैं कि द्वारका में नारद जी पर दक्ष का शाप निष्प्रभावी रहता था। भगवान्से सुरक्षित नगर में बद्धजीव के सारे भौतिक भ्रम-मोह आदि निष्प्रभावी रहते थे। सांसारिक प्राणी सर्वदा मृत्यु से घिरा रहता है।ब्रह्मा आदि महानुभावों से सेव्य भगवान्के चरणकमल के दिव्य मकरन्द रस के निरन्तर पान का कौन ऐसा प्राणी होगा जो दिव्यानन्द न लेना चाहेगा ?

एक बार नारद जी के आगमन पर वसुदेव जी ने उनका स्वागत करते हुए कहा कि पुत्र के रूप में प्राप्त करने की मनसा से मैंने पूर्वजन्म में भगवान्की उपासना की थी। हे मुनिवर ! कृपा करके जन्म-मृत्यु के चक्कर से मुझे मुक्त होने का अब उपदेश दें। आप जनकल्याण के लिए ही सर्वत्र भ्रमण करते रहते हैं।

भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च।
सुखायैव हि साधूनां त्वादृशाम्-अच्युत-आत्मनाम्।।11।2।5।।
भजन्ति ये यथा देवान् देवा अपि तथैव तान्।
छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः।।11।2।6।।

वसुदेव जी कहते हैं - देवतागण सुख एवं दुःख दोनों देते हैं। परन्तु सर्वदा मन-प्राण से भगवान् में लगे साधु हमेशा कल्याण ही करते हैं। देवता वैसा ही फल देते हैं जैसी उनकी पूजा की जाती है। मनुष्य की छाया की तरह देवगण भी कर्म के अनुचर होते हैं। परन्तु साधु सर्वदा अकिञ्चनों को अपनाते हैं। वसुदेव जी की जिज्ञासा भगवद् गुणगान

सुनने की भावना से ही प्रेरित थी। नारद जी ने वसुदेव जी को कहा कि आपकी जिज्ञासा विश्व के कल्याण की भावना से ओतप्रोत है। नारायण के नाम के स्मरण, श्रवण तथा कीर्तन करने से व्यक्ति पूर्णतया पवित्र हो जाता है। नारद जी ने एक उदाहरण देते हुए कहा कि पूर्व में प्रियव्रत के वंशज भरत हुए जिनके नाम पर ही भारतवर्ष का नाम पड़ा। भरत के नौ भाई संसार से विरक्त हो योगीश्वर बन गये जिनके नाम थे- कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्लायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन। इनकी सर्वत्र अवाध गति थी। एक बार नौ योगीश्वर विदेहराज निमि के यज्ञ में पहुँचे। राजा ने इन्हें "**नारायण-परायणान्।11।2।26।**" अर्थात् भगवान् का परमभक्त समझ श्रद्धा से इनकी पूजा की और नौ आध्यात्मिक प्रश्न पूछे।

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रिय-दर्शनम्।।11।2।29।।
संसारेऽस्मिन् क्षणार्धोऽपि सत्सङ्गः शेवधिः नृणाम्।।11।2।30।।

राजा निमि कहते हैं - मानव देह क्षणभंगुर होते हुए भी दुर्लभ है। इस दुर्लभ देहधारियों में विरले ही ऐसे होते हैं जिन्हें वैकुण्ठनाथ के परमप्रिय सन्तों का दर्शन होता है। इस संसार में आधे क्षण के लिए भी सन्तों की संगति महान खजाना प्राप्त हो जाना है।राजा निमि के नौ प्रश्नों के उत्तर प्रत्येक योगेश्वर ने बारी-बारी से दिये। प्रश्नों की श्लोक-संख्या के सन्दर्भ के साथ किस प्रश्न के किसने उत्तर दिया संक्षेप में निम्नवत संकलित है।

1। **कवि ने** समझाया कि भागवत-धर्म क्या है।**11।2।31।।**
2।**हरि ने बताया** कि भक्त के लक्षण क्या हैं।**11।2।44।।**
3।**अंतरीक्ष ने** माया क्या है, इस पर प्रकाश डाला। **।11।3।1।।**
4।**प्रबुद्ध ने** "माया को कैसे पार करें" का उपाय बताया।**11।3।17।।**
5।**पिप्लायन ने** "ब्रह्म का क्या स्वरूप है" समझाया।। **11।3।34।।**
6।**आविर्होत्र ने** बताया कि कर्मयोग क्या है। **।11।3।41।।**
7।**द्रुमिल ने** भगवान्के विभिन्न अवतार लीलाओं का वर्णन किया।**11।4।1।।**
8।**चमस ने** "अभक्तों की गति" बतायी।**11।5।1।।**
9। **करभाजन ने** "भगवान्की आराधना कैसे करें" की पद्धति बतायी।**11।5।19।।**

1। पहला प्रश्न "भागवत धर्म क्या है" का समाधान योगेश्वर कवि ने किया।

धर्मान् भागवतान् ब्रूत यदि नः श्रुतये क्षमम्।
यैः प्रसन्नः प्रपन्नाय दास्यति-आत्मानम्-अपि-अजः।।11।2।31।।

राजा निमि ने पूछा कि भगवान्की भक्ति में अनुराग कैसे होता है। भगवान्की भक्ति ही भागवत धर्म है। भगवान् जब प्रसन्न होते हैं तब अपने आप को भी भक्त को दान में दे देते हैं। योगेश्वर कवि ने कहा कि भगवान्ने स्वयं भक्ति की विधि बतायी है। द्रष्टव्य भागवत 10।2।32। "**आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्ति-अधो-अनादृत-युष्मत्-अङ्घ्रयः।।**" जब कोई भगवान् का चरणाश्रय छोड़ योगादि का सहारा लेता है तब वह भौतिकता के निम्न स्तर पर गिर जाता है।

मन्ये-अकुतश्चिद्-भयम्-अच्युतस्य पादाम्बुज-उपासनम्-अत्र नित्यम्।

उद्विग्नबुद्धेः असत्-आत्मभावाद् विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः। ।11।2।33। ।

योगेश्वर कवि कहते हैं कि भगवान् अच्युत के चरणाम्बुज का निरन्तर उपासना करने से निर्भयता मिलती है। क्षणभंगुर देह-गेहादि के मोह में विकल मन को भगवान्की उपासना से भौतिक भय से निवृति मिलती है।

ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया हि-आत्मलब्धये।

अञ्जः पुंसाम्-अविदुषां सिद्धि भागवतान् हि तान्। ।11।2।34। ।

यान्-आस्थाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित्।

धावन् निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्-न पतेत्-इह। ।11।2।35। ।

सामान्य व्यक्तियों के कल्याणार्थ भगवान्ने श्रीमुख से जो उपाय बताये हैं वही भागवत धर्म है। इसका अनुसरण करने वाले को विघ्न नहीं होता। आँख बन्द कर दौड़ने पर मार्ग छूटता है परन्तु वह गिरता नहीं है।

कायेन वाचा मनसा-इन्द्रियैः वा बुद्ध्या-आत्मना वा-अनुसृत-स्वभावात्।

करोति यद् यत् सकलं परस्मै नारायणाय-इति समर्पयेत्-तत्। ।11।2।36। ।

शरीर, वाणी, मन, इन्द्रिय, बुद्धि या पूर्व के कर्मो के अनुसार अपने स्वभाव वश जो भी कर्म करता हो वह भगवान्को समर्पित कर दे। सभी कर्मों के फल भगवान्को समर्पित करे। भगवान्ने गीता में कहा है -

"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्। ।गी 9।27। ।"

भयं द्वितीय-अभिनिवेशतः स्यात्-ईशात्-अपेतस्य विपर्ययो-अस्मृतिः।

तत्-मायया-अतो बुध आभजेत् तं भक्त्या-एकया-ईशं गुरु-देवता-आत्मा। । 11।2।37। ।

देवस्वरूप अपने गुरु के बताये रास्ते से भगवान्की उपासना करने वाले को माया के कारण अभक्तों की तरह अपने स्वरूप की विस्मृति नहीं होती। देह-गेह की आसक्ति के भय से भी छुटकारा मिल जाता है।

श्रृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणेः जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।

गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन् विलज्जो विचरेत्-असङ्गः। ।11।2।39। ।

एवंव्रतः स्वप्रियनाम-कीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।

हसति-अथो रोदति रौति गायन्ति-उन्माद-वत्-नृत्यति लोकबाह्यः। ।11।2।40। ।

संसार में भगवान्के अवतार की लीला-कथाओं को सुने तथा सब लाज छोड़कर भगवान्का नाम-संकीर्तन करे। किसी सांसारिक वस्तु, स्थान या व्यक्ति से आसक्ति न रखे।संकीर्तन व्रत का नियम कर लेने पर स्वभाव वश हृदय द्रवित हो उठता है। ऐसा भक्त खिलखिलाकर हँसता है, जोर-जोर से रोता है, भगवान्को पुकारता है तथा गाते-गाते मानो भगवान्को साक्षात देख रहा है तब लोकलाज को छोड़कर नाचने लगता है। भगवान्के शरणागत को भगवान्की भक्ति, उनका साक्षात अनुभव तथा अन्य वस्तुओं से विरक्ति, ये तीनों एक साथ वैसे ही घटने लगते हैं जैसे भोजन करने वाले को प्रत्येक कौर के साथ तुष्टि, पुष्टि तथा क्षुधा-निवृत्ति साथ-साथ होने लगती है। इस तरह भक्ति करने से परम शांति प्राप्त हो जाती है।

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुम-आदीन्।

सरित्-समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत् किञ्च भूतं प्रणमेत्-अनन्यः। ।11।2।41। ।

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, समस्त जीव, दिशायें, वृक्षादि, नदियाँ तथा सागर आदि सभी जड़-चेतन भगवान्के शरीर हैं। भक्त को भगवान्के इस विराट स्वरूप को नमस्कार करे।

इति-अच्युत-अङ्घ्रिं भजतो-अनुवृत्या भक्ति: विरक्ति: भगवत्-पबोध:।
भवन्ति वै भागवतस्य राजन् तत: परां शान्तिम्-उपैति साक्षात्।।**11**।**2**।**43**।।

भगवान्के चरणारविन्द के निरन्तर भजन से भगवान्में प्रेमपूर्ण भक्ति, संसार से विरक्ति तथा भगवान् के स्वरूप के अनुभव का आनन्द लेते हुए परम शान्ति प्राप्त करता है।

2। दूसरे प्रश्न "भक्त के क्या लक्षण हैं " का समाधान योगेश्वर हरि से।

अथ भागवतं ब्रूत यद्धर्मो यादृशो नृणाम्।
यथा चरति यद् ब्रूते यै:-लिङ्गै:-भगवत्प्रिय:।।**11**।**2**।**44**।।

राजा निमि भगवद् भक्तों के व्यवहार, बात करने की शैली, उसका स्वरूप, उसका आचरण-व्यवहार तथा उसके गुण-लक्षण कैसे होते हैं जिससे वह भगवान्का प्रिय बन जाता है। योगेश्वर हरि ने कहा कि भक्त तीन प्रकार के होते हैं। **1**।उत्तम श्रेणी का भक्त सभी जीवों में भगवान्को देखता है। **2**। मध्यम श्रेणी का भक्त भगवान्से प्रेम करता है, अन्य भक्तों से मित्रवत रहता है, दु:खी तथा अज्ञानग्रस्त पर सहानुभूति रखता है परन्तु भगवान्के विरोध करने करने वाले की उपेक्षा करता है। **3**।सामान्य या नीच श्रेणी का भक्त भगवान् के अर्चा विग्रह की पूजा तो करता है परन्तु भगवान्के भक्त या अन्य लोगों से उदासीन रहता है।

न चलति भगवत्पदारविन्द-लव-निमिष-अर्धम्-अपि य: स वैष्णव-अग्रय:।। **11**।**2**।**53**।।
भगवत उरु-विक्रम-अङ्घ्रि-शाखा-नखमणि-चन्द्रिकया निरस्त-तापे।
हृदि कथम्-उपसीदतां पुन: स प्रभवति चन्द्र इव-उदिते-अर्कताप:।।**11**।**2**।**54**।।

जो भगवान्के चरणकमल को आधे क्षण या आधे पल के लिए भी नहीं भूलता वह श्रीवैष्णवों में अग्रणी है। जैसे चन्द्रोदय होने पर सूर्य की गर्मी का नाश होता है उसी तरह भगवान्के चरणकमल की अँगुलियों के मणियों के समान प्रभापूर्ण चन्द्रमा की शीतल चाँदनी विखेरने वाले नखों से भवताप का शमन होता है जैसा गोपियों को रास के समय भगवान्के मनमोहक पाद-विन्यास से हुआ था।

3। तीसरे प्रश्न "माया क्या है" का समाधान योगेश्वर अन्तरीक्ष से।

परस्य विष्णो: ईशस्य मायिनाम्-अपि मोहिनीम्।
मायां वेदितुम्-इच्छामो भगवन्तो ब्रुवन्तु न:।।**11**।**3**।**1**।।
न-अनुतृप्ये जुषन् युष्मत्-वचो हरिकथामृतम्।
संसारताप-निस्तप्तो मर्त्य: तत्-ताप-भेषजम्।।**11**।**3**।**2**।।

परमकारण स्वरूप भगवान्विष्णु की माया के बारे में बतायें जो बड़े-बड़े मायावियों को मोह लेती है। भगवान् की कथामृत सुनकर मन तृप्त नहीं होता है जो संसार के दैविक-दैहिक-भौतिक ताप को दूर करने की औषधि है। योगेश्वर अन्तरीक्ष ने कहा कि प्रकृति अर्थात् माया को साधन बनाकर भगवान् त्रिगुणात्मक सृष्टि करते हैं, उसका पालन करते हैं तथा फिर प्रलय कराके नाश करते हैं। जीव माया के वशीभूत संसार के भोग-विलास में लगा रहता है और प्रलय तक जन्म-मरण के अधीन रहता है।

4।चौथे प्रश्न "माया को कैसे पार करें" का समाधाान योगेश्वर प्रबुद्ध से।

यथा-एताम्-ऐश्वरीं मायां दुस्तराम्-अकृत्-आत्मभि:।

तरन्ति-अञ्ज: स्थूलधियो महर्ष इदम्-उच्यताम्। ।11।3।17।।

राजा निमि ने माया को पार करने का उपाय पूछा। योगेश्वर प्रबुद्ध ने कहा कि गुरु की शरण में रहकर भगवान् के भागवत धर्म के अनुसार आचरण करने से ही माया को पार किया जा सकता है। योगेश्वर प्रबुद्ध गुरु के स्वरूप का वर्णन करते हैं।

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासु: श्रेय उत्तमम्।

शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मणि-उपशम-आश्रयम्। ।11।3।21।।

गुरु वेद के ज्ञाता, परमात्मा के व्यवहारिक तत्त्व को समझाने वाले, ईश्वर प्राप्ति के रहस्य को बताने वाले तथा परमात्मा पर आश्रित रहकर सांसारिक प्रपञ्च से विरत रहने वाले रहते हैं। ऐसे गुरु के मिलने पर शिष्य का कर्त्त व्य क्या हो?

शौचं तप: तितिक्षां च मौनं स्वध्यायम्-आर्जवम्।

ब्रह्मचर्यम्-अहिंसां च समत्वं द्वन्द्व-संज्ञयो:। ।11।3।24।।

शिष्य अपनी सेवा से गुरु को प्रसन्न करने हेतु स्वच्छता, नियमित अनुष्ठान, सहिष्णुता, शांत-मौन, स्वाध्याय, सादगी-सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा तथा सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद, सर्दी-गर्मी के द्वन्द्वों से रहित हो।

श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरे: अद्भुत-कर्मण:।

जन्म-कर्म-गुणानां च तदर्थे-अखिल-चेष्टितम्। ।11।3।27।।

इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यत्-च-आत्मन: प्रियम्।

दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवेदनम्। ।11।3।28।।

भगवान्के दिव्य जन्म-कर्म-गुण की कथा को सुने, गान करे, तथा ध्यान करते हुए अपनी समस्त चेष्टाओं को भगवान्के लिए करे। यज्ञ-दान-तप-जप तथा अपने प्रिय स्त्री-पुत्र-देह-गेह के साथ अपने प्राण को भगवान्के चरणों में समर्पित कर दे।भगवान्के भक्तों की संगति में रहकर भगवान्की लीला का बखान करते रहे। भगवान् के लीलागान के समय आनन्द में पागल की भाँति नाचे।

इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तत्-उत्थया।

नारायणपरो मायाम्-अञ्ज: तरति दुस्तराम्। ।11।3।33।।

भागवत धर्म की शिक्षा के अनुसार आचरण करने से भगवान्की प्रेम-भक्ति मिलती है।इस तरह नारायण का परायण होकर उनकी दुस्तर माया को पार किया जा सकता है।

5।पाँचवें प्रश्न "ब्रह्म का स्वरूप है" का समाधान योगेश्वर पिप्लायन से।

नारायण-अभिधानस्य ब्रह्मण: परमात्मन:।

निष्ठाम्-अर्हथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवित्तमा:। ।11।3।34।।

राजा ने ब्रह्मनिष्ठ योगेश्वरों से ब्रह्म तथा परमात्मा कहे जानेवाले नारायण के दिव्य स्वरूप को जानने की जिज्ञासा की। योगेश्वर पिप्लायन ने कहा कि जिनके अस्तित्व का कोई कारण नहीं है परन्तु सृष्टि-स्थिति-प्रलय के वे एक मात्र कारण हैं। जीव के देह-मन-प्राण-इन्द्रियाँ उन्हीं की शक्ति से चलती हैं। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति अवस्थाओं में

वे विराजमान रहते हैं। प्रकृति के तीनों गुणों से वे अपनी शक्ति का विस्तार करते हैं। निषेध की युक्ति से वेद **"न इति। न इति।"** से इनका वर्णन करता है। जिनका जन्म-मृत्यु नहीं वे ही परमात्मा हैं। भगवान्की भक्ति में प्रेम बढ़ने से जीव के मन तथा कर्म के मैल दूर होते हैं। अनुभव से कोई व्यक्ति परमात्मा का उसीतरह साक्षात्कार करता है जैसे स्वस्थ नेत्र से सूर्य-प्रकाश का प्रत्यक्ष अनुभव किया जाता है।

6। छठे प्रश्न "कर्मयोग क्या है" का समाधान योगेश्वर आविर्होत्र से।

कर्मयोग वदत नः पुरुषो येन संस्कृतः।
विधूय-इह-आशु कर्माणि नैष्कर्म्यं विन्दते परम्। ।11।3।41। ।

राजा निमि ने कर्म-बन्धन से छूटने वाले कर्मयोग के बारे में पूछा जिससे जीव शुद्ध होकर समस्त कर्म-फलों से निवृत्त हो जाता है। राजा निमि ने यह भी कहा कि एकबार अपने पिता इक्ष्वाकु के दरवार में पधारे सनकादि कुमारों से उन्होंने यही प्रश्न किया था परन्तु सनकादिक मौन रह गये थे। कृपया इसका कारण बतायें। आविर्होत्र ने कहा कि सनकादि आपकी बाल्यावस्था देखकर मौन रह गये होंगे। वेद में तीन तरह के कर्म बताये गये हैं - कर्म (कृत्य जो शास्त्र के अनुसार करने योग्य), अकर्म (अकृत्य अर्थात् जिसे नहीं करना है) तथा विकर्म (करने योग्य कर्मों को न करना तथा अकृत्य कर्मो को करना)। वेद विहित कर्म बहुत ही गहन हैं। यह कर्म के अनुष्ठान से ही कर्मों की निवृत्ति का उपाय वैसे ही बतलाता है जैसे बच्चे को मिठाई देकर औषधि सेवन करायी जाती है। विद्वान लोग भी इसे नहीं समझ पाते। स्कन्ध 6 अध्याय 1 में अजामिल के प्रसंग में कर्मकाण्ड के कर्म की निस्सारता पर प्रकाश डाला गया है। भगवान्की भक्ति के अतिरिक्त अन्य सभी कृत्य व्यर्थ ही किये जाते हैं। वेद के कृत्य कर्म भौतिक लाभ के लिए न करके उसके फल को भगवान् को समर्पित करने के लिए करे। इसी से कर्म-बन्धन से छुटकारा प्राप्त कर जीव भगवान्की भक्ति में अनुरक्त होता है। गुरु के दिशा-निर्देश में मन की रुचि के अनुसार भगवान् के किसी विशिष्ट साकार रूप की पूजा करे। स्नानादि से शरीर की बाह्य शुद्धि करके प्राणायाम से नाड़ी शोधन करे। अंगन्यास से अंगों को सुरक्षित करे। पूजा की सामग्रियों को शुद्ध करे। अर्चाविग्रह को अर्घ्य-पादादि से सत्कार करे। अर्चाविग्रह के हृदय स्थान तथा अन्य अंगो पर तिलक लगाये - **"हृदादिभिः कृतन्यासो मूलमन्त्रेण च-अर्चयेत्।11।3।51। ।"** तथा अपने इष्ट मन्त्र से सुगन्धित चन्दन तथा सुगन्धित पुष्पादि से पूजा करे। साथ में भगवान्के दिव्य पार्षद तथा आयुधादि की पूजा करे। अर्चाविग्रह के साथ सबकी स्तुति करके उनको नमस्कार करे।

एवम्-अग्नि-अर्क-तोय-आदौ-अतिथौ हृदये च यः।
यजति-ईश्वरम्-आत्मानम्-अचिरात्-मुच्यते हि सः। ।11।3।55। ।

जो व्यक्ति अग्नि-सूर्य-जल, समागत भक्तों की तथा अपने हृदय में आत्मरूप श्रीहरि की पूजा करता है वह शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

7। सातवें प्रश्न "विभिन्न अवतार की लीलाओं का वर्णन" योगेश्वर द्रुमिल से।

यानि यानि-इह कर्माणि यैः यैः स्वच्छन्द-जन्मभिः।
चक्रे करोति कर्ता वा हरिः तानि ब्रुवन्तु नः। ।11।4।1। ।

अपने भक्तों के वशीभूत हो भगवान् विभिन्न अवतार लेते हैं तथा अनेकों दिव्यलीला करते हैं। राजा निमि ने भूतकाल, वर्तमान काल तथा भविष्य के अवतार-कथाओं को सुनने की जिज्ञासा की। योगेश्वर द्रुमिल ने प्रारम्भ में बताया कि पृथ्वी के धूलकणों को गिना जा सकता है परन्तु भगवान्‌के समस्त दिव्यगुणों का वर्णन करना सम्भव नहीं है। योगेश्वर द्रुमिल ने विराट पुरुष, नर-नारायण, हंस, ऋषभ तथा दसावतार के रूप में भगवान्‌की विभिन्न लीलाओं का वर्णन किया।

भगवान् सृष्टि करने की प्रक्रिया में पाँच-तत्वों (क्षिति-जल-पावक-गगन-समीर) से अपने विराट स्वरूप की रचना कर स्वयं उसमें प्रवेश करते हैं। आदिदेव नारायण का यह आदिअवतार ही विराट पुरुष कहा जाता है। प्रारम्भ में आदिकर्ता नारायण ने ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने के लिए रजोगुण से ब्रह्मा की सृष्टि की। जगत के पालन का काम स्वयं सत्त्वगुण से पूर्ण विष्णु के रूप में सम्भाला। संहार के लिए तमोगुण वाले रुद्र को बनाया।

धर्मस्य दक्ष-दुहितरि-अजनिष्ट मूर्त्या नारायणो नर ऋषिप्रवर: प्रशान्त:।

नैष्कर्म्य-लक्षणम्-उवाच चचार कर्म योऽद्यापि चास्त ऋषिवर्य-निषेवित-अङ्घ्रि:।। **11।4।6।।**

दक्ष प्रजापति की बेटी मूर्ति का विवाह धर्म से हुआ था। इनसे आदिदेव ने शान्त ऋषिश्रेष्ठ नर एवं नारायण के रूप में जन्म लिया। आज भी नर का धातु का चल विग्रह हाथ में धनुष बाण लिए एक पैर पर खड़े होकर बद्रिकाश्रम में विराजते हैं। नर एवं नारायण का अचल विग्रह पद्मासन में बैठकर तपस्यारत हैं। इन्होंने कर्म-बन्धन से छुड़ाने वाला निष्काम भगवद् आराधना का उपदेश दिया। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि बद्रिकाश्रम में इनके चरणारविन्द की सेवा में लगे रहते हैं। इनकी घोर तपस्या से घबरा कर इन्द्र ने विघ्न डालने के लिए कामदेव तथा अप्सराओं को भेजा। कामदेव असफल रहे। भगवान्‌से डरकर कामदेव काँपने लगे। भगवान् ने उनका स्वागत करते हुए अपने आश्रम में अतिथि बनने का निवेदन किया। लज्जित कामदेव भगवान्‌की स्तुति करने लगे। कामदेव ने कहा -

न-एतत्-विभो त्वयि परे-अविकृते विचित्रं

स्वाराम-धीर-निकर-आनत-पादपद्मे।।11।4।9।।

त्वां सेवतां सुरकृत बहवोऽन्तराया: स्व-ओको विलङ्घ्य परमं व्रजतां पदं ते।

नान्यस्य बर्हिषि बलीन् ददत: स्वभागान् धत्ते पदं त्वम्-अविता यदि विघ्न-मूर्ध्नि।।**11।4।10**।। हे प्रभु! आप दिव्य, अविकारी और अपने आप में अलौकिक हैं। बड़े-बड़े आप्तकाम ऋषि-मुनि आपके चरणारविन्द में साष्टांग-प्रणाम करते रहते हैं। आपके भक्त स्वर्ग को लांघकर आपके परमधाम में जाते हैं। आपका भजन करते देख देवगण ईर्ष्या से आपके भक्तों की भक्ति में विघ्न उत्पन्न करते हैं। परन्तु भक्तगण आपके चरणकमल की छाया में सुरक्षित रहते हुए विघ्नों के सिर पर पैर रखकर आगे बढ़ते हैं।

कामदेव ने देखा कि अद्‌भुत सौंदर्यवाली कन्यायें भगवान्‌की सेवा में लगी हैं। भगवान्‌ने अपनी सेवा में लगी सर्व सुन्दरी उर्वशी को स्वर्गलोक के लिए उपहार दिया। कामदेव उसे आगे-आगे कर इन्द्र के पास आये और भगवान्‌का उपहार समर्पित कर दिया। योगेश्वर द्रुमिल ने विभिन्न अवतारों का वर्णन करते हुए कहा कि भगवान्‌ने अपने अंशावतार से हंस, सनकादि चारो कुमार, तथा हमारे पिता ऋषभ के रूप में आत्म साक्षात्कार के साधनों का उपदेश दिया है। हयग्रीव के रूप में भगवान्‌ने मधु-कैटभ द्वारा चुराये हुए वेद को प्राप्त किया। प्रलयकाल में मत्स्य के रूप

में अवतीर्ण होकर भगवान्ने भावी मनु सत्यव्रत, पृथ्वी, औषधियों तथा अन्नादि की रक्षा की। वराहावतार में हिरण्याक्ष का वध कर जल में डूबी पृथ्वी का उद्धार किया। समुद्र मन्थन के समय मन्दराचल को कच्छप के रूप में अपने पीठ पर धारण किया। श्रीहरि ने अपने शरणागत गजेन्द्र को ग्राह के शिकंजे से मुक्त कराया। कश्यप ऋषि के लिए समिधा लाते समय बालखिल्य मुनियों को गाय के खुर के समान गड्ढ़े में डूबने से बचाया। बृत्रासुर के बध से इन्द्र को ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त कराया। संतों को भय तथा प्रह्लाद जी पर अत्याचार करने वाले हिरण्यकशिपु का नरसिंह रूप में अवतीर्ण हो भगवान्ने वध किया। वामनावतार में पृथ्वीको दैत्यराज बलि से याचना में लेकर अदितिपुत्र देवताओं को दे दिया।

नि:क्षत्रियाम्-अकृत गां च त्रि:सप्त-कृत्वो राम: तु हैहय-कुल-अप्यय-भार्गव-अग्नि:।

सोऽब्धिं बबन्ध दशवक्त्रम्-अहन् सलङ्कं सीतापति:-जयति लोक-मलघ्न-कीर्ति:।।11।4।21।।

इक्कीस बार पृथ्वी को आततायी क्षत्रियों से मुक्त करनेवाले भृगुवंश में अवतरित परशुराम जी ने अग्नि की तरह हैहयवंश का नाश किया। भगवान् ने रामावतार में समुद्र पर सेतु बनाकर लंका को रावण के साथ मटियामेट कर दिया। संसार के कम्लष का नाश करने वाले निर्मलकीर्ति भगवान् राम की सर्वदा जय हो।

भूमे:-भर-अवतरणाय यदुषु-अजन्मा जात: करिष्यति सुरै: अपि दुष्कराणि।

वादै: विमोहयति यज्ञकृतो-अतत्-अर्हन् शूद्रान् क्षितिभुजो न्यहनिष्यत्-अन्ते।।11।4।22।।

देवताओं के लिए भी दुस्तर कार्य करने हेतु भगवान् यदुवंश में अवतार लेकर पृथ्वी का भार हटायेंगे। अपनी वाक् चतुरता से बुद्ध के रूप में आकर भगवान् अनाधिकारियों को यज्ञ-कर्म से विमुख करेंगे। फिर आगे चलकर कलियुग में कल्कि रूप में अवतार लेकर निम्न श्रेणी के प्रशासक-राजाओं का वध करेंगे। द्रुमुल योगेश्वर ने राजा निमि से अन्त में कहा कि संत-महात्माओं ने अनेकों प्रकार से अनन्त-कीर्ति भगवान्का यशोगान किया है।

8। आठवें प्रश्न "हरि-विमुखों की दुर्गति" योगेश्वर चमस से।

निमि ने कहा कि हरि-विमुख दो प्रकार के होते हैं -भक्ति से दूर रहकर उदासीन भाव में रहना एवं हरि विरोधी।

भगवन्तं हरिं प्रायो न-भजन्ति-आत्म-वित्तमा:।

तेषाम्-अशान्त-कामानं का निष्ठा-अविजित-आत्मनाम्।। 11।5।1।।

राजा निमि ने पूछा कि भगवान्की भक्ति से विमुख या उदासीन लोग जिनकी इन्द्रियाँ स्वच्छन्द रहकर भौतिक कामनाओं की तृप्ति में लगी रहती हैं उनकी क्या गति होती है ? योगेश्वर चमस ने कहा कि -

मुख-बाहु-ऊरु-पादेभ्य: पुरुषस्य-आश्रमै: सह।

चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणै: विप्र-आदय: पृथक्।।11।5।2।।

य एषां पुरुषं साक्षात्-आत्म-प्रभवम्-ईश्वरम्।

न भजन्ति-अवजानन्ति स्थानाद् भ्रष्टा: पतन्ति-अध:।।11।5।3।।

योगेश्वर चमस ने वर्णाश्रम की सार्थकता को बताते हुए कहा कि विराट पुरुष भगवान्के मुख से सत्त्वगुण प्रधान ब्राह्मण, बाहु से सत्त्व-रज गुण मिश्रित क्षत्रिय, जाँघ से रज-तम गुण मिश्रित वैश्य एवं चरण से तम प्रधान शूद्र की उत्पत्ति हुई है। भगवान्के हृदय से ब्रह्मचर्याश्रम, जाँघ से गृहस्थाश्रम, वक्षस्थल से वानप्रस्थाश्रम तथा मस्तक से

संन्यासाश्रम का उद्भव हुआ है। श्रीहरि ही वर्ण एवं आश्रम प्रथा के प्रवर्तक तथा सम्पोषक हैं। कोई व्यक्ति किसी भी वर्णाश्रम का हो अगर वह भगवान्‌की भक्ति न करके भगवान्‌का अनादर करता है तब उसका अध:पतन अवश्यम्भावी है। कुछेक अज्ञानतावश भगवान्‌का भजन नहीं करते। कुछ जान-बूझ कर भगवान्‌की की भक्ति के प्रति उदासीन रहते हैं या अवहेलना करते हैं।

हित्वा-अति-आयास-रचिता गृह-अपत्य-सुहृत्-स्त्रिय:।
तमो विशन्ति-अनिच्छन्तो वासुदेव-पराङ्मुखा:। ।11।5।18। ।

माया से भ्रमित हो घर-बच्चे-पत्नी-परिवार में आसकक्त संसार के भोग-विलास को बहुत परिश्रम से एकत्रित करने में लगे रहते हैं। भगवान् वासुदेव-विमुख ऐसे व्यक्ति मृत्यु के बाद नरकगामी होते हैं।

9। नौवें प्रश्न "भगवद् आराधना" योगेश्वर करभाजन से।

भिन्न-भिन्न युगों में भगवान्‌के भिन्न-भिन्न स्वरूप होते हैं। प्रत्येक युग की आराधना पद्धति भिन्न है।

कस्मिन्काले भगवान्किं वर्ण: कीदृशो नृभि:।
नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तत्-इह-उच्यताम्। ।11।5।19। ।

राजा निमि ने पूछा कि किस युग में भगवान् किस स्वरूप - नाम, रूप एवं रंग के होते हैं और उनकी उपासना कैसे की जाती है ? योगेश्वर करभाजन ने सर्वप्रथम सत्ययुग का वर्णन किया।

1।सत्ययुग

कृते शुक्ल: चतुर्बाहु: जटिलो वल्कल-अम्बर:।
कृष्ण-अजिन-उपवीत-अक्षान् बिभ्रद् दण्ड-कमण्डलू। ।11।5।21। ।

सत्ययुग में चतुर्भुजी स्वरूप के भगवान् श्वेत अर्थात् चाँदी जैसे गोरे वर्ण के होते हैं। वल्कल अर्थात् वृक्ष की छाल पहने सिर पर जटा बान्धे रहते हैं। वे काले मृगचर्म, यज्ञोपवीत, कमलाक्ष की माला, दण्ड एवं कमण्डल धारण करते हैं। सामान्यतया इस युग में लोग शान्त प्रकृति के होते हैं। शम (अन्त:इन्द्रियों अर्थात् मन, बुद्धि, अहंकार पर नियन्त्रण) तथा दम (बाह्य पञ्चेन्द्रियों) का संयम करते हुए ध्यान योग से तपस्या करते हैं। सत्ययुग में ध्यान-तपस्या ही भगवान्‌की आराधना की विधि है।

हंस: सुपर्णो वैकुण्ठो धर्मो योगेश्वरोऽमल:।
ईश्वर: पुरुषोऽव्यक्त: परमात्मेति गीयते। ।11।5।23। ।

सत्ययुग में भगवान्‌को हंस, सुपर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर, अमल, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त और परमात्मा आदि कहकर उनके लीलागुण का गान करते हैं।

2।त्रेता

त्रेतायां रक्तवर्णो-असौ चतुर्बाहु: त्रिमेखल:।
हिरण्यकेश: त्रयि-आत्मा सुक्-स्रुव-आदि-उपलक्षण:। ।**11।5।24**। ।
तं तदा मनुजा देवं सर्वदेवमयं हरिम्।
यजन्ति विद्यया त्रय्या धर्मिष्ठा ब्रह्मवादिन:। ।**11।5।25**। ।
विष्णु: यज्ञ: पृश्निगर्भ: सर्वदेव उरुक्रम:।

वृषाकपि: जयन्त: च उरुगाय इति-ईर्यते। ।11।5।26। ।

त्रेता में भगवान् चतुर्भुजी थे एवं कमर में तीन मेखला धारण किये रहते हैं। माथे का केश सुवर्ण के समान चमकते पीले रंग का तथा उनके शरीर का रंग रक्त जैसी लालिमावाली गोरा है। वे तीन वेद (ऋक्-यजु-साम) में दिये गये यज्ञ की विधि से पूजे जाते हैं। भगवान् यज्ञ की अग्नि में हवन तथा घी डालने वाले विशेष काठ के बने उपकरण स्रुक् तथा स्रुवा धारण किये रहते हैं। धर्मनिष्ठ लोग तीन वेद में प्रतिपादित यज्ञ की विधि से सर्वदेव स्वरूप देवाधिदेव श्रीहरि के विभिन्न नामों विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयन्त तथा उरुगाय से गुणगान करते हुए यज्ञमय आराधना करते हैं। विष्णु भगवान् द्वापर में चार अंश में पुरुषोत्तम राम-भरत-लक्ष्मण-शत्रुध्न के रूप में अवतार लेते हैं। भगवान् राम तथा भरत श्यामवर्ण के जबकि लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न लाल-गोराई वाले होते हैं।

<u>**3**।द्वापर</u>

द्वापरे भगवान-श्याम: पीतवासा निजायुध:।
श्रीवत्स-आदिभि: अङ्कै: च लक्षणै: उपलक्षित:। ।11।5।27। ।
नमस्ते वासुदेवाय नम: सङ्कर्षणाय च।
प्रद्युम्नाय-अनिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नम:। ।11।5।29। ।
नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने।
विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूतात्मने नम:। ।11।5।30। ।

द्वापर में श्यामवर्ण के शरीर पर भगवान् पीताम्बर, दिव्य आयुध , श्रीवत्स आदि चिहनों से पहचाने जाते हैं। भगवान्की तीनों वेदों में निर्दिष्ट पाञ्चरात्र आगम विधि से पूजा की जाती है। वासुदेव-संकर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध, नारायण ऋषि, महात्मा नर, विश्वेश्वर, विश्वरूप और सर्वभूतात्मा के नामों से नमस्कार किया जाता है। चतुर्व्यूह स्वरूप में वासुदेव आदि शक्ति हैं। संकर्षण क्रिया-शक्ति तथा ऐश्वर्य को प्रकट करते हैं। प्रद्युम्न समस्त ब्रह्माण्ड के आत्मारूप अंश के प्रतिनिधि हैं। अनिरुद्ध चेतन जीव की आत्मा के साकार रूप हैं।

<u>**4**।कलियुग</u>

नानातन्त्र-विधानेन कलौ-अपि यथा श्रुणु। ।11।5।31। ।
कृष्णवर्णं त्विषा-अकृष्णं स-अङ्ग-उपाङ्ग-अस्त्र-पार्षदम्।
यज्ञै: सङ्कीर्तन-प्रायै:-यजन्ति हि सुमेधस:। ।11।5।32। ।

कलियुग में भगवान् कान्तिपूर्ण काले रंग के होते हैं। हृदय आदि अंग, कौस्तुभ आदि उपांग, सुदर्शन आदि अस्त्र, नन्द-सुनन्द आदि पार्षदों से युक्त रहते हैं। नाम, गुण, लीला के संकीर्तन-यज्ञ से आराधना की जाती है।

कलिं सभाजयन्ति-आर्या गुणज्ञा: सारभागिन:।
यत्र सङ्कीर्तनेन-एव सर्व: स्वार्थो-अभिलभ्यते। ।11।5।36। ।
न हि-एत: परमो लाभो देहिनां भ्राम्यताम्-इह।

यतो विन्देत परमां शान्तिं नश्यति संसृति:। ।11।5।37। ।

सारग्राही श्रेष्ठ लोग कलियुग की ही सचमुच प्रशंसा करते है। इसमें नाम तथा गुण के संकीर्तन से ही स्वार्थ एवं परमार्थ प्राप्त हो जाते हैं। जीव देह-गेह की आसक्ति में संसार में जन्म-मृत्यु के चक्कर में भटकते रहता है। भगवत् नाम-लीला-गुण के संकीर्तन से संसार से यह चक्कर मिट जाता है।

कृत-आदिषु प्रजा राजन् कलौ-इच्छन्ति सम्भवम्।
कलौ खलु भविष्यन्ति नारायण-परायणा:। ।11।5।38। ।

करभाजन जी ने राजा निमि से कहा कि कलि में भगवान् नारायण के आश्रय में रहने वाले बहुत भक्त जन्म लेंगे। इसलिए सत्ययुग, त्रेता तथा द्वापर के लोग कलिकाल में जन्म लेना चाहते हैं।

क्वचित् क्वचित्-महाराज द्रविडेषु च भूरिश:।
ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी। ।11।5।39। ।
कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी।
ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर।
प्रायो भक्ता भगवति वासुदेवे-अमल-आशया:। ।11।5।40। ।

हे राजन्! द्रविड देश में अनेको भक्त होंगे। इस क्षेत्र की ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी, परमपवित्र कावेरी, प्रतीची एवं महानदी के जल पीने से चित्त निर्मल होता है और भगवान् वासुदेव की भक्ति मिल जाती है।

देवर्षि-भूत-आप्त-नृणां पितृणां न किङ्करो नायम्-ऋणी च राजन्।
सर्वात्मना य: शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्। ।11।5।41। ।

जो कर्मवासना को त्यागकर शरणागतवत्सल भगवान् मुकुन्द का प्रेम से शरणागत हो जाता है वह देव, ऋषि, पितर आदि के ऋण से मुक्त हो जाता है। किसी का सेवक या किसी के अधीन बन्धन में नहीं रहता।

स्वपादमूलं भजत: प्रियस्य त्यक्त-अन्य-भावस्य हरि: परेश:।
विकर्म यत्-च-उत्पतितं कथञ्चिद् धुनोति सर्व हृदि सन्निविष्ट:। ।11।5।42। ।

जो प्रेमी भक्त भगवान्के चरणकमल का अनन्यभाव से भजन करता है अगर वह कोई पाप कर्म कर बैठता है तब उसके हृदयस्थ भगवान् उसके पाप के फल को धो-मिटा देते हैं।

इस प्रकरण में नौ योगेश्वरों को जयन्ति पुत्र कहा है। वे प्रियव्रत के कुल के परमहंस ऋषभ के पुत्र थे। इनसे भक्ति योग की अद्भुत व्याख्या सुनकर राजा निमि बहुत प्रसन्न हुए। यज्ञ-पुरोहितों के साथ योगेश्वरों का श्रद्धा से सम्मान किया। सबके देखते-देखते सभी योगेश्वर अदृश्य हो गये। राजा निमि ने उनके बताये मार्ग का अभ्यास कर परमलक्ष्य को प्राप्त किया। नारद जी ने वसुदेव जी से कहा कि अगर आप भी इस प्रकरण में बताये मार्ग का अभ्यास करें तब सारे कर्म-फल नष्ट हो जायेंगे।

मा-अपत्य-अकृथा: कृष्णे सर्वात्मनि-ईश्वरे।
माया-मनुष्य-भावेन गूढैश्वर्ये परेऽव्यये। ।11।5।49। ।

भगवान्‌को अपने पुत्र के रूप में प्राप्त कर उनकी संगति से आपके सारे कल्मष मिटे हुए हैं। उन्हें आप पुत्र के अतिरिक्त सबकी आत्मा एवं अव्यय ब्रह्म समझें। अपना ऐश्वर्य छिपाकर वे मनुष्यरूप में दिखते हैं।

वैरेण यं नृपतय: शिशुपाल-पौण्ड्र-शाल्व-आदयो गतिविलास-विलोकन-आद्यै:।

ध्यायन्त आकृतधिय: शयन-आसन-आदौ तत्साम्यम्-आपु: अनुरक्त-धियां पुन: किम्।।**11**।**5**।**48**।।

शिशुपाल, शाल्व तथा पौण्ड्रक आदि राजाओं ने निरन्तर शत्रुभाव से भगवान् श्रीकृष्ण को नीचा दिखाने की चिन्ता की। इससे उनका चित्त कृष्णमय हो गया और वे परमपद चले गये। जो प्रेम से भगवान्‌के गुण-नाम-चरित के स्मरण-कीर्तन में लीन रहता है उसका तो कहना ही क्या है! नारद जी से इस वृतान्त को सुनकर वसुदेव जी तथा देवकी जी की सारी चिन्ता दूर हो गयी। शुकदेव जी ने इस प्रकरण की महिमा बतायी कि ध्यान से इस कथा को सुनने से सारे कल्मष अपने-आप धुल जाते हैं।

11।**3**। <u>भगवान् श्रीकृष्ण का उद्धव जी को उपदेश।</u>

सभी देवों के साथ ब्रह्मा भगवान् श्रीकृष्ण के पास द्वारका में पधारे तथा उनसे स्वधाम लौटने की प्रार्थना की।

स्वर्ग-उद्यान-उपगै: माल्यै: छादयन्तो यदु-उत्तमम्।

गोर्भि: चित्र-पद-अर्थाभि: तुष्टुवु: जगदीश्वरम्।।11।6।6।।

देवों ने स्वर्ग के उद्यान के बने फूल की माला से भगवान् कृष्ण को ढक दिया। मनमोहक शब्दों से भगवान्‌के श्रीचरणों में प्रणाम करके स्तुति करने लगे।

शुद्धिर्नृणां न तु तथा-ईड्य दुराशयानां विद्या-श्रुत-अध्ययन-दान-तप: क्रियाभि:।

सत्त्व-आत्मनाम्-ऋषभ ते यशसि प्रवृद्ध-सत्-श्रद्धया श्रवण-सम्भृतया यथा स्यात्।।**11**।**6**।**9**।।

राग-द्वेष में लगा चित्त उपासना, वेदाध्ययन, तप, यज्ञादि कर्म से उतना शुद्ध नहीं होता जितना भगवान्‌के लीलाचरित के श्रवण में श्रद्धा रखने से होता है।

स्यात्-न: तवाङ्घ्रि: अशुभ-आशय-धूमकेतु: क्षेमाय यो मुनिभि: आर्द्र-हृदा-उह्यमान:।

य: सात्वतै: समविभूतय आत्मवद्भि: व्यूहे-अर्चित: सवनश: स्व: अतिक्रमाय।।**11**।**6**।**10**।।

मुनिगण प्रेमासिक्त होकर आपके चरणकमल का स्मरण करते हुए जीवन का परमश्रेय प्राप्त करते हैं। आत्मसंयमी भक्त भी पाञ्चरात्र विधि से आपके चतुर्व्यूह - वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध की उपासना करके स्वर्ग से परे आपको प्राप्त करता है। विषयवासना को अग्नि की तरह आपका चरणकमल भस्मीभूत कर देते हैं। त्रिविक्रम स्वरूप में आपके चरणकमल ब्रह्मलोक से ऊपर उसी तरह गया जैसे कोई ध्वज दण्ड हो। आपके चरणोदक से निकली हुई गंगा ध्वज-दण्ड में कीर्ति-पताका की तरह शोभायमान हो रही थी। आपके चरणकमल हमारे सभी पापकर्मों का नाश करें।

विभ्व्य: तव-अमृतकथा-उदवहा: त्रिलोक्या: पाद-अवनेज-सरित: शमलानि हन्तुम्।

आनुश्रवं श्रुतिभि: अङ्घ्रिजम्-अङ्ग-सङ्गै: तीर्थ-द्वयं शुचिपद: ते उपस्पृशन्ति।।**11**।**6**।**19**।।

आपके कथामृत की नदी तथा आपके पादोदक से निकली गंगा नदी पाप को धोनेवाली त्रिलोक में दो पवित्र नदियाँ हैं। पाप-ताप के शमन के लिए सतसंगी जन कान से आपके कथामृत को भरते हैं तथा शरीर से गंगा में स्नान करते

हैं। देवों की स्तुति के बाद ब्रह्मा ने कहा कि हमलोगों के निवेदन पर आपने अवतार से धरती के भार को मिटाया। आपकी कथा सुनने तथा यशोगान से इस युग के अंधकार से लोग पार होते हैं।

यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवत: पुरुषोत्तम।

शरत्-शतम् व्यतीयाय पञ्चविंश-अधिकं प्रभो।।11।6।25।।

तत: स्वधाम परमं विशस्व यदि मन्यसे।

सलोकान् लोकपालान् न: पाहि वैकुण्ठकिङ्करान्।।11।6।27।।

यदुवंश में अवतार लिए आपके एकसौ पच्चीस बीत गये हैं। यदि आपको स्वीकार हो तब कृपा करके अपने धाम में पधारकर सेवक स्वरूपी हम लोकपालों का आप पालन-पोषण करें।

ऐसा सुन भगवान्ने कहा कि यदुवंशी अहंकारी हो गये हैं। सन्तों के शाप से उनका विनाश शीघ्र ही होगा। उनके नाश के बाद मैं स्वधाम लौट आऊँगा। देवों के साथ ब्रह्मा भगवान् के श्रीचरणों में प्रणाम कर वापस चले गये। भगवान्ने देखा कि द्वारका में भयंकर अपशकुन हो रहे हैं। अपशकुन के शमन के लिए भगवान्ने यदुवंशियों को प्रभास तीर्थ में चलने को कहा। दक्ष से शापग्रस्त चन्द्रभा का प्रभास क्षेत्र में ही क्षयरोग से उद्धार हुआ था। यदुवंशियों को प्रभास जाने की तैयारी करते देख उद्धव जी ने एकान्त में भगवान्का दर्शन किया। भगवान् से उद्धव जी ने कहा कि आप चाहते तब यदुवंशियों के नाश के शाप का शमन कर सकते हैं परन्तु आप ऐसा करना नहीं चाहते हैं। **"नाहं तवाङ्घ्रिकमलं क्षणार्धमपि केशव।11।6।43।।"** आपके चरणारविन्द के बिना मैं आधे क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। मुझे भी अपने स्वधाम ले चलें।

तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममङ्गलम्।

कर्ण-पीयूषम्-आस्वाद्य त्यजन्ति-अन्य-स्पृहां जन:।।11।6।44।।

हे प्रभु! आपकी एक-एक लीला परम कल्याण करने वाली है। आपके कथामृत के चखने से संसार की अन्य चाह दूर हो जाती है। भगवान्ने उद्धव जी को बताया कि मुनियों के शाप के कारण यदुवंश आपस में लड़ कर मर जायेंगे। आज से सातवें दिन समुद्र द्वारका को डुबो देगा। तुम सब नाते सम्बन्धियों को त्याग कर समदृष्टि सम्पन्न हो पृथ्वी पर विचरण करो। भागवत के प्रसिद्ध व्याख्याकार श्रीमद्वीरराघवाचर्य ने समदृष्टि का तात्पर्य मन को मुझमें एकाग्र कर देना बताया है - **"मयि-आवेश्य मन: सम्यक् समदृग् विचरस्व गाम्।11।7।6।।"** भगवान्से ऐसा सुन उद्धव जी ने उनसे नम्र निवेदन किया-

तत्त्व-अञ्जसा निगदितं भवता यथाहं संसाधयामि भगवन्अनुशाधि भृत्यम्।।**11।7।16।।**

तस्माद् भवन्तम्-अनवद्यम्-अनन्तपारं सर्वज्ञम्-ईश्वरम्-अकुण्ठ-विकुण्ठ-धिष्णयम्।

निर्विण्ण-धी:-अहम्-उ ह वृजिन-अभितप्तो नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये।। **11।7।18।।**

अपने इस सेवक को तत्त्वज्ञान इस तरह से समझायें कि मैं आसानी से उसको नित्य व्यवहार में ला सकूँ। आप कल्मषमुक्त, देशकल से परे, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, शाश्वत वैकुण्ठाधिपति तथा नर के नित्य सखा साक्षात् नारायण हैं। सांसारिक ताप से दग्ध मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ।

अपने अनन्य दास उद्धव जी को भगवान्श्रीकृष्ण ने तब दिव्य सदुपदेश का प्रारम्भ करते हुए कहा कि -

आत्मनो गुरु: आत्मैव पुरुषस्य विशेषत:।

यत्प्रत्यक्ष-अनुमानाभ्यां श्रेयो-असौ-अनुविन्दते।।**11**।**7**।**20**।।

व्यक्ति की आत्मा अपने प्रत्यक्ष अनुभव एवं अनुमान से अपना गुरु स्वयं बनती है।

11।**4**।। दत्तात्रेय के चौबीस गुरु

इसी प्रसंग में भगवान्ने दत्तात्रेय के चौबीस गुरु की कथा सुनायी। एक बार महाराज यदु ने एक अवधूत को आनन्द से घूमते देखा। राजा यदु ने कहा कि आपको सभी तरह के कर्म से निरत देखते हैं परन्तु क्या कारण है कि आप स्वस्थ तथा अतिप्रसन्न दिखते हैं। अवधूत के रूप में स्वयं दत्तात्रेय थे। अत्रि तथा अनसूया की सन्तान दत्तात्रेय हैं और प्रह्लाद आदि को इन्होंने ब्रह्मज्ञान दिया है।

देखें स्कन्ध **7** अध्याय **13** तथा स्कन्ध **2**।**7**।**4**।

अत्रे-अपत्यम्-अभिकाङ्क्षत आह तुष्टो दत्तो मया-अहम्-इति यद् भगवान् स दत्तः।
यत्पादपङ्कज-पराग-पवित्रदेहा योग-ऋद्धिम्-आपुः उभयीं यदु-हैहय-आद्याः।।2।7।4।।

अत्रि मुनि की प्रार्थना पर भगवान् स्वयं उनके पुत्र दत्तात्रेय बनकर अवतरित हुए। दत्तात्रेय स्वयं भगवान् थे और इनके चरणारविन्द की धूल के सेवन से राजा यदु तथ हैहय शुद्ध-निर्मल स्वरूप हो गये।उन्होंने राजा यदु से कहा कि हमारे चौबीस गुरु रहे हैं और सबके नाम बताये - पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्र, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग कीड़ा, मधुकृत - भौंरा एवं मधुमक्खी, हाथी, शहद निकालने वाला, हिरण, मछली, पिंगला वेश्या, कुररपक्षी, बालक, कुमारी कन्या, बाण निर्माता, साँप, मकड़ी तथा भृङ्गी कीट। दत्तात्रेय ने इन सबों के स्वाभाविक जन्मजात गुण तथा कार्यकलाप का सूक्ष्मता से अनुभव किया। प्रत्येक से उन्होंने अलग अलग शिक्षा ग्रहण की। इन चौबीस के अतिरिक्त दत्तात्रेय ने अपनी देह से भी शिक्षा ली। भागवत की व्याख्या में **श्रीधर स्वामी ने चौबीस गुरु को तीन श्रेणी में रखा है। क।जो ग्राह्य** हो उसकी शिक्षा देने वाले तेरह हैं - भूमि, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्र, सूर्य, अजगर, समुद्र, बालक, बाण बनाने वाला, मकड़ी, भृङ्गी कीट। ख। **जो त्याज्य है** उसकी शिक्षा देने वाले आठ हैं - कबूतर, मछली, हिरण, कुमारी कन्या, हाथी, सर्प, पतंग तथा कुररी। **ग। त्याज्य को त्यागना तथा ग्राह्य को ग्रहण करने** की शिक्षा देने वाले तीन हैं - भौंरा, शहद निकालने वाला तथा पिंगला वेश्या।

1।**पृथ्वी** - क्षमा एवं परोपकार। इसमें पर्वत तथा वृक्ष भी सम्मिलित हैं।

2।**वायु** - वायु गन्ध से लिप्त नहीं होती। कुछ समय बाद उसे त्याग कर देती है। आत्मा भी वायु की तरह शरीर के गुण से लिप्त नहीं होती। अनासक्ति वायु का प्रधान गुण है।

3।आकाश - शरीर के भीतर तथा बाहर आकाश एक समान निर्लिप्त होकर रहता है। आत्मा देह से आकाश की तरह निर्लिप्त है।

4।जल - स्वभाव से जल चिकना, स्वच्छ तथा मधुर होता है। साधक को जल की तरह रहना है।

5।अग्नि - अग्नि सबकुछ आत्मासत कर लेने पर दूषित-मलिन नहीं होती। भाव या कुभाव से दिया गया सभी पदार्थ स्वीकार्य है। मन में कभी मलिनता नहीं होनी चाहिए।

6।चन्द्र - चन्द्रमा समय के अनुसार अपनी कलाओं को बढ़ते या घटते देखता है परन्तु स्वयं नहीं प्रभावित होता। इसी तरह से आत्मा शरीर की क्रियायों एवं अवस्था से प्रभावित नहीं होती।

7।सूर्य - सूर्य अपनी किरणों से जल सोखता है दूसरों के लिए अपने लिए नहीं। वर्षा के रूप में उसे पेड़ -पौधों तथा जीव-जन्तुओं को देता है। वैसे ही साधक विषय से लिप्त नहीं होते। उसे त्याग देते हैं।

8। कबूतर - अपनों के प्रति अति आसक्त होना नाश को बुलावा देना है। एक पेड़ पर कबूतर-कबूतरी रहते थे। उनकी अनुपस्थिति में एक व्याधा ने उनके बच्चों को अपने जाल में फँसा लिया। ऐसा देख कबूतरी भी आकर बच्चों के साथ जाल में स्वयं आकर फँस गयी। जब कबूतर लौटा तब अपने परिवार को व्याधा के जाल में फँसा देख स्वयं भी उसमें कूद गया।

नातिस्नेह: प्रसङ्गो वा कर्तव्य: क्वापि केनचित्।

कुर्वन् विन्देत सन्तापं कपोत इव दीनधी:।।11।7।52।।

अपने परिवार या वस्तु से अतिस्नेह रखने वाले का मूर्ख कबूतर की तरह नाश होता है। यह मानव शरीर मुक्ति का द्वार है। इसे प्राप्त कर भी कबूतर की तरह अपने परिवार में अतिआसक्त रहना ऊँचे पर चढ़कर नीचे गिरने जैसा है। इसे विद्वान लोग "आरूढ़च्युत" कहते हैं।

9।अजगर - साधक को अजगर की तरह रहना है। जो अपने आप मिल जाये उसीसे संतोष करना है।

10।समुद्र - नदियों से कितना भी जल समुद्र में गिरता है यह सर्वदा एक समान ही रहता है। न बढ़ता है न घटता है। समुद्र की तरह संपति तथा विपत्ति दोनों स्थितियों में व्यक्ति को स्थिरचित्त रहना है।

समृद्धकामो हीनो वा नारायणपरो मुनि:।

न-उत्सर्पेत न शुष्येत सरिद्भि: इव सागर:।।11।8।6।।

भगवत्परायण साधक को वांछित वस्तुओं को प्राप्त होने से आनन्दित नहीं होना है और न मिलने से क्षुब्ध नहीं रहना है जैसे सागर वर्षा में नदियों के प्रवाह से न तो बढ़ता है और न गीष्म ॠतु में घटता है।

11। पतंग - आग की तरह चमकने वाला विषय-वासना पतंगो की तरह साधका का नाश करता है।

12।मधुकृत - भौंरा एवं मधुमक्खी - भौंरा बड़े या छोटे फूल से सार ही ग्रहण करता है। शास्त्र से सारभाव ही ग्रहण करना चाहिए। साधक भी अल्पमात्र ही भिक्षा ग्रहण कर मधुकर वृत्ति से जीवन यापन करे। संग्रह न करे। मधुमक्खी जब संग्रह करती है तब शहद निकालने वाला उसके संग्रह का हरण कर लेता है।

13।हाथी - हथनी के लोभ में घास से ढके शिकारी के गड्ढ़े में हाथी गिरकर पकड़ा जाता है। साधक को स्त्री संग से सर्वदा बचना चाहिए।

14।शहद निकालने वाला - लोभवश काम से ज्यादा धन का संग्रह न करे। धनका अपहरण वैसे ही हो जाता है जैसे काम से अधिक मधुमक्खियों द्वारा संग्रहित शहद दूसरे के हाथ लग जाता है। गृहस्थ के लिए इसीलिए ऐसा नियम है कि संग्रहित धन से पहले ब्रह्मचारी एवं सन्त का स्वागत करे।

15।हिरण - शिकारी के संगीत में फँस कर हिरण पकड़ा जाता है। साधक को चाहिए जो भगवत् सम्बन्धी गीत नहीं है उसे न सुने। नहीं तो विषय-वासना का शिकार होना पड़ता है जैसे ऋष्यश्रृंग नर्तकियों से फँस गये थे। **16**। मछली -जिह्वा के स्वाद में पड़कर मछली मछुआरे के काँटेवालाी वंशी के मांस के चक्कर में पकड़ी जाती है। रसना सबसे बलिष्ठ इन्द्रिय है। साधक को रसना पर नियन्त्रण कर जितेन्द्रिया बनना चाहिए।

17। पिंगला वेश्या - विदेह नगर में पिंगला नाम की एक वेश्या रहती थी। सुन्दर थी और सुसज्जित होकर धनी धनी ग्राहकों को अपने रमणस्थल में ले आती थी।
एक रात जितने लोग उसके रास्ते जाते थे वह समझती थी कि वह धनी व्यक्ति मेरे ही पास रमण करने आ रहा है। परन्तु आधी रात बीत गयी और कोई ग्राहक नहीं आया।

तस्य निर्विण्ण-चित्ताया गीतं श्रुणु यथा मम।
निर्वेद आशा-पाशानां पुरुषस्य यथा हि-असि।।11।8।28।।
न हि अङ्ग-अजात-निर्वेदो देहबन्धं जिहासति।
यथा विज्ञानरहितो मनजो ममतां नृप।।11।8।29।।

इससे उसके मन में वैराग्य का उदय हुआ। उसने एक गीत गाया जिसे पिंगला गीत कहते हैं। मनुष्य आशा की फाँसी की रस्सी से लटकते रहता है जिसे वैराग्य ही तलवार की तरह काट डालता है। अज्ञानी जैसे देह-गेह की ममता नहीं छोड़ता वैसे ही आशा में लटका वैराग्यहीन व्यक्ति देह-बन्धन से मुक्त नहीं होता।

सन्तं समीपे रमणं रतिप्रदं वित्तप्रदं नित्यम्-इमम् विहाय ।
अकामदं दु:खभयादि-शोक-मोहप्रदं तुच्छम्-अहम् भजे-अज्ञा।।11।8।31।।

पिंगला अपनी मूर्खता पर पश्चात्ताप करती है कि मेरे निकट से निकट हृदय में ही हमारे सच्चे स्वामी विराजमान हैं जिनसे प्रेम-सुख तथा परमार्थ रूपी परमधन प्राप्त होता है। इनको छोड़कर हमने लम्पटों की संगति की जो मेरी किसी कामना की पूर्ति तो कर ही नहीं सके और उल्टे आधि-व्याधि-दु:ख-शोक-भ्रम ही दे गये।

सुहृत् प्रेष्ठतमो नाथ आत्मा चायं शरीरिणाम्।
तं विक्रीय-आत्मना-एवाहं रमेऽनेन यथा रमा।।11।8।35।।

हमारे हृदयस्थ प्रभु सबके प्रियतम हितैषी तथा आत्मा हैं। अब अपने आप को इनको समर्पित कर इन्हें खरीदकर इनके साथ वैसे ही विहार करूँगी जैसे लक्ष्मी जी इनके साथ रमण करती हैं। मेरे पूर्व पुण्य के कारण ही भगवान् विष्णु प्रसन्न हुए हैं जो दुराशाओं को त्यागकर मेरे मन में भौतिक सुखों से वैराग्य उत्पन्न हुआ है। **"त्यक्त्वा दुराशा: शरणं व्रजामि तमधीश्वरम्।।11।8।39।।"** भगवान्‌की अब मैंने शरण ग्रहण कर ली है।

संसार कूपे पतितं विषयै: मुषित-ईक्षणम्।
ग्रस्तं काल-अहिना-आत्मानं कोऽन्य:-त्रातुम्-अधीश्वर:।।**11**।**8**।**41**।।

विषय-कामना से अन्धा होकर जीव संसाररूपी कुएँ में गिरा हुआ है। अजगर की भाँत कालने इसे पकड़ रखा है। भगवान् के अतिरिक्त कौन इसकी रक्षा कर सकेंगे ! दत्तात्रेय जी कहते हैं कि हे यदुराज ! पिंगला ने दुराशा को त्याग दिया और सुख से पलंग पर जाकर सो गयी।

आशां हि परमं दु:खं नैराश्यं परमं सुखम्।
यथा सञ्छिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला।।11।8।44।।

किसी पर आशान्वित रहने से दु:ख मिलता है और किसी से आशा की अपेक्षा का त्याग करदेने से ही सुख मिलता है। पिंगला ने जब ग्राहकों की आशा त्याग दी तब सुखपूर्वक सो सकी।

18। कुररपक्षी - एकबार एक कुरर पक्षी को कहीं से मांस का टुकड़ा मिला। यह देखकर बलवान पक्षी उसका पीछा करने लगे। जब उसने मांस के टुकड़े को छोड़ दिया तब सबों ने उसका पीछा छोड़ दिया। धन को संयोग कर रखने से दु:ख मिलता है। अकिञ्चनता और अपरिग्रहता से परम सुख मिलता है।

19। बालक - बालक को मान-अपमान का बोध नहीं होता। बालक से सन्तोष करना सीखें।

20।कुमारी कन्या - एक बार एक कुमारी कन्या के घर पर कुछ अतिथि विवाह का प्रस्ताव लेकर आये। उसके माता-पिता उस समय घर से बाहर थे। कन्या ने अतिथियों के सत्कार के लिए ऊखल में धान कूटना शुरु किया।कलाई की चूड़ियों से कलरव होने लगा। कन्या ने प्रत्येक कलाई में दो-दो चूड़ियों को छोड़कर सबको निकाल दी। फिर भी आवाज होते देख मात्र एक-एक ही चूड़ी रखी। इससे यही शिक्षा मिलती है कि एक स्थान पर अधिक लोगों के कारण कलह होता है। भगवत् साधना में एकान्त ही फलप्रद होता है।

21।बाण बनाने वाला - मन की एकाग्रता पर बल देते हुए दत्तात्रेय जी ने कहा कि साधक को सिद्धि एकाग्र मन से ही मिलती है। एकबार एक बाण बनाने वाला बाण बनाने में इतना तल्लीन था कि दलबल के साथ राजा की सवारी वहाँ से निकल गयी और उसे कुछ भी भान नहीं हुआ।

22।सर्प - सर्प अपना घर नहीं बनाता है। दूसरे के बिल में ही सावधानी से रहकर अपना जीवन निर्वाह करता है। सन्त को भी क्षणभंगुर संसार में अपना आवास नहीं बनाना चाहिए। जहाँ अनुकूलता मिले वहीं रहकर भागवत भाव में निमग्न रहे।

23।मकड़ी - दत्तात्रेय जी ने मकड़ी का उदाहरण देते हुए जगत् नियन्ता नारायण के स्वरूप को समझाया।

एको नारायणो देव: पूर्वसृष्टं स्वमायया।
संहृत्य कालकलया कल्पान्त इदमीश्वर:।।11।9।16।।

बिना किसी सहायता के नारायण पूर्व में सृष्टि की रचना करते हैं। कल्पान्त में उसे कालशक्ति से लुप्त कराते हुए वे समस्त सृष्टि को उदरस्थ कर लेते हैं। जिस तरह से मकड़ी अपने मुँह से जाला फैलाती है, कुछ समय तक उससे खेलती है और अन्त में सबको निगल जाती है वैसे ही सर्वनियन्ता नारायण सृष्टि करते हैं, जीवों के अन्तर्यामी बन सृष्टि में विहार करते हैं और अन्त में सबको सूक्ष्म रूप में समेट लेते हैं।

24। भृंगी कीट - भृंगी कीट किसी अन्य जाति के कीट को पकड़कर अपने खोते में बन्द कर देता है। भय वश वह कीट भृंगी के समान हो जाता है।

यत्र यत्र मनो देही धारयेत् सकलं धिया।
स्नेहाद् द्वेषाद् भयाद् वापि याति तत्-तत् सरूपताम्।।11।9।22।।

भृंगी से यह शिक्षा मिलती है कि प्रेम, शत्रुता या भय से जिस रूप पर ध्यान टिका होता है प्राणी उसी स्वरूप के गुणों को प्राप्त कर लेता है। इन चौबीस गुरु के अतिरिक्त दत्तात्रेय जी ने अपनी देह से जो शिक्षा ली थी उसे राजा यदु को बताते हैं।इस शरीर से हमें वैराग्य की शिक्षा मिली है। "**देहो गुरुर्मम विरक्ति-विवेकहेतु:।।11।9।25।।**" आसक्ति वश प्राणी अपने परिवार में लगा हुआ अपना शरीर छोड़ता है। जैसे वृक्ष गिरने के पहले अपने बीज से भावी वृक्ष के लिए बीज उत्पन्न कर देता है वैसे ही मानव आने वाले शरीर के लिए पाप एवं पुण्य का बीज बोकर

मरता है। इस शरीर से आसक्त रहने के कारण ही अपने परिवार तथा धन आदि से आसक्ति हो जाती है। इसलिए सबसे पहले अपने शरीर से मोह मिटाना होगा।

सृष्ट्वा पुराणि विविधानि-अजया-आत्मशक्त्या वृक्षान् सरीसृप-पशुन् खग-दंश-मत्स्यान्।
तै: तै: अतुष्ट-हृदय: पुरुषं विधाय ब्रह्म-अवलोक-धिषणं मुदम्-आपा देव:।।11।9।28।।

भगवान्ने वृक्ष तथा पक्षी आदि अनेकों जीवों की सृष्टि की परन्तु उन्हें सन्तुष्टि नहीं मिली। तब भगवान् ने मनुष्य की सृष्टि की जो अपनी बुद्धि से ब्रह्म से साक्षात्कार कर सकता है। यह देखकर भगवान् आनन्दित हुए। अन्य योनियों में जीव बहुत जन्मों तक घूमते रहता है। यह मानव जीवन मिलना बहुत ही दुर्लभ है। यह नश्वर होकर भी परमपद प्राप्त करने का अवसर देता है। इन्द्रिय तृप्ति से प्राणी को दूर रहने की आवश्यकता है। दत्तात्रेय जी ने राजा यदु को कहा कि शरीर से विरक्त भाव में रहते हुए मैं आत्मनिष्ठ हो सुख से विचरण करता हूँ। इसके बाद दत्तात्रेय प्रस्थान कर गये। राजा यदु को अपने शरीर की आसक्ति का नाश हो गया और वे भगवद् भजन में लग गये। दत्तात्रेय जी का प्रकरण सुन उद्धव जी आत्मानन्द से विभोर हो गये।

11।5। सकाम कर्म का फल अल्पकालिक है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धव जी से कहा कि आत्मा के चरम सत्य को जो समझना चाहता है उसे शास्त्रों में वर्णित नश्वर सकाम कर्म के फंदे से अलग रहना चाहिए। निष्काम भाव से मन को मुझमें अनन्यभाव से लगाये।

यमान्-अभीक्ष्णं सेवेत नियमान् मत्पर: क्वचित्।
मदभिज्ञं गुरुं शान्तम्-उपासीत मदात्मकम्।।11।10।5।।

यम एवं नियम सदाचार के अंग हैं। यम का पालन सर्वदा दृढता से करे जिसमें अहिंसा आदि की कभी उपेक्षा न करे। परन्तु नियम के पालन में शक्ति एवं अवस्था के अनुसार वर्ताव करे। जैसे शौच अर्थात् शुद्धता आदि का निर्वा ह शारीरिक क्षमता पर निर्भर करता है । यम एवं नियम के पालन से भी ज्यादा महत्व गुरु की सेवा है।शान्त एवं मेरे के स्वरूप को जाननेवाले गुरु को मेरे ही समान समझे। गुरु के श्रीचरणों की सेवा में सदा अहंकारहीन रहे। ऐसा देखा गया है कि कर्म के ज्ञानी विद्वान दु:ख भोगते हैं जबकि मूर्ख व्यक्ति को कभी दु:ख देखना ही नहीं पड़ता। अत: केवल कर्म का ज्ञान कल्याण करता है ऐसा नहीं है। लोभी-लम्पट लोग पशुओं की बलि देकर यज्ञ करते हैं। परिणामत: ये लोग नरक गामी होते हैं।

विलक्षण: स्थूलसूक्ष्माद् देहात्-आत्मा-ईक्षिता स्वदृक्।
यथा-अग्नि: दारुणो दाह्याद् दाहकोऽन्य: प्रकाशक:।।11।10।8।।

लकड़ी को जलाने वाली अग्नि का प्रकाश लकड़ी से सर्वथा भिन्न है। इसी तरह आत्मा भी जड़ शरीर के गुणों से कभी भी प्रभावित नहीं होती। आत्मा शाश्वत-चेतन है जबकि शरीर मन-बुद्धि के साथ नश्वर पञ्चभूतों से बना जड़ है।उनमें स्वप्रकाश का नितान्त अभाव है। जड़ इन्द्रियों की नीच प्रवृति है जो सदा सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के लिए सकाम कर्म की ओर आकर्षित होती हैं। यज्ञादि द्वारा सकाम कर्म से प्राप्त भौतिक सुख तथा स्वर्ग का सुख अल्पकालिक होता है। स्वर्ग में रहते हुए पुण्य के क्षय होने पर वह धरती पर जन्म-मृत्यु के जाल में गिरता है। उद्धव जी ने भगवान् से पूछा कि जीव संसार में मोहवश कर्म तथा प्रकृति के तीनों गुणों की पाश में पड़ा रहता

है। कर्म तथा गुणों के वश में जीव नित्यबद्ध होकर रहता है। मेरी जिज्ञासा है कि वह नित्यबद्ध से नित्यमुक्त कैसे हो सकता है ?

11।6। बद्ध तथा मुक्त जीव के लक्षण एवं भक्ति का लक्षण

भगवान्ने कहा कि आत्मा बद्ध नहीं होती। जड़ इन्दियों के कारण वासना शरीर ही जन्म-मृत्यु के चक्र में रहता है जो बद्ध कहा जाता है। जीवात्मा हमारे विराट शरीर का एक भाग है जिसेको कोई बन्धन नहीं है। विद्या एवं अविद्या हमारी शाश्वत माया से उत्पन्न हैं। विद्या से मोक्ष एवं अविद्या से बन्धन मिलता है।

सुपर्णे-एतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छया-एतौ कृतनीडौ च वृक्षे।

एकः तयो खादति पिप्पल-अन्नम्-अन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान्।।11।11।6।।

बद्ध जीव के शरीर में नियन्ता ईश्वर तथा नियन्त्रित जीवात्मा दोनों रहते है। भगवान्ने जीवात्मा के भौतिक वासना शरीर को वृक्ष जैसा कहा जिसके हृदय रूपी घोसला में दो पक्षी रहते हैं। जीवरूपी पक्षी वृक्ष का सुख-दु:ख रूपी फल खााता है परन्तु ईश्वररूपी नित्य-मुक्त अनन्तगुण सम्पन्न दूसरा पक्षी इन फलों को नहीं खाता है मात्र देखता रहता है। **"योऽविद्या युक् स तु नित्यबद्धो विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः।।11।11।7।।"** जीव अविद्या अर्थात् अज्ञानतावश न अपने को जानता है न ईश्वररूपी पक्षी को जानता है जो विद्या से युक्त अर्थात् सर्वनियन्ता एवं सर्वज्ञ हैं। अविद्या के कारण वृक्ष का फल खानेवाला जीवात्मा नित्यबद्ध बना रहता है तथा मूक दर्शक विद्या सम्पन्न ईश्वर स्वभावतः नित्यमुक्त हैं। भगवान् लीला से ही नित्यबद्ध पक्षी का सखा बनकर साथ रहते हैं। अविद्यावश जीव अपने को कर्ता मान बैठता है जबकि ये सब कार्यकलाप सत्त्व-रज-तमोगुण के कारण होते हैं।

गां दुग्ध-दोहाम्-असतीं च भार्या देहं पराधीनम्-असत्-प्रजां च।

वित्तं तु-अतीर्थी-कृतम्-अङ्ग वाचं हीनां मया रक्षति दु:खदु:खी।।11।11।19।।

यस्यां न मे पावन्-अङ्ग कर्म स्थिति-उद्भव-प्राणनिरोधनम्-अस्य।

लीलावतार-ईप्सित-जन्म वा स्याद् वन्ध्यां गिरं तां बिभृयान्त धीरः।।11।11।20।।

हे उद्धव! अगर कोई शास्त्रों के अध्ययन से विद्वान बन जाता है परन्तु ईश्वर में अनुराग न रखता है तव वह दूध न देनेवाली गाय जैसा है। व्यभिचारिणी स्त्री, पराधीन शरीर, दुष्ट पुत्र, कुपात्र को दिया गये दान से बचा हुआ धन तथा मेरे लीला-गुण से हीन वाणी सभी व्यर्थ हैं।ये सब निरन्तर दु:ख ही देनेवाले हैं। जिस वाणी से मेरी लीला-कथा का उच्चारण न होता हो वह वाणी निरर्थक है। ऐसी वाणी न सुने और न बोले। मेरी कथा का गान समस्त लोकों को पवित्र करती है। मेरे निमित्त ही किये जाना वाला कार्य भक्ति है। भक्ति अर्थात् मुझको समर्पित समस्त कार्य एकमात्र सत्संगति से ही मिलती है। **"सत्सङ्ग-लब्ध्या भक्त्या मयि मां उपासिता।11।11।25।।"**

उद्धव जी ने भक्ति एवं भक्त के स्वरूप को जानने की जिज्ञासा प्रकट की। भगवान्ने कहा कि जो मेरे ही भरोसे रहता है वही मेरा भक्त है। शास्त्रादि के ज्ञान में न उलझकर मेरा अनन्यभाव से भजन करनेवाला मेरा भक्त है।जो मेरे मन्दिर में मेरे विग्रह का दर्शन करता है, उसे साफ-सुथरा रखता है तथा मेरे उत्सव में सम्मिलित होता है उसमें मेरे भक्ति के लक्षण विद्यमान हैं। जो वस्तु मेरे भक्त को सबसे अच्छी लगती है वही मुझे अर्पित करे।

धिष्ण्येषु-इति-एषु मद्रूपं शङ्ख-चक्र-गदाम्बुजैः।

युक्तं चतुर्भुजं शान्तं ध्यान्-अर्चेत्-समाहितः।।**11।11।46**।।

भक्त अग्नि, जल, गाय, ब्राह्मण, वायु तथा सूर्य आदि में जब ध्यान लगाकर मेरी पूजा करता है तब शंख-चक्र-गदा-कमल धारण किये हुए मेरे चतुर्भुज स्वरूप का ध्यान करते हुए पूजा करे।

प्रायेण भक्तियोगेन सत्सङ्गेन विना-उद्धव।

न-उपायो विद्यते सम्यक्-प्रायणं हि सतामहम्।।11।11।48।।

सन्तलोगों का मैं ही आश्रय हूँ। सत्संगति से ही मेरी भक्ति मिलती है। कोई अन्य उपाय नहीं है।

11।7। सत्संगति की महिमा

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।

न स्वाध्याय: तप: त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा।।11।12।1।।

व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमा:।

यथावरुन्धे सत्सङ्ग: सर्वसङ्ग-अपहो हि माम्।।11।12।2।।

सत्सङ्गेन हि दैतेया यातुधाना मृगा: खगा:।

गन्धर्व-अप्सरसो नागा: सिद्धा: चारण-गुह्यका:।।11।12।3।।

विद्याधरा मनुष्येषु वैश्या: शूद्रा: स्त्रियोऽन्त्यजा:।

रजस्तम: प्रकृतय: तस्मिन् तस्मिन् युगे अनध।।11।12।4।।

बहवो मत्पदं प्राप्ता: त्वाष्ट्र-कायाधव-आदय:।

बृषपर्वा बलिर्वाणो मयश्चाथ विभीषण:।।11।12।5।।

सुग्रीवो हनुमान्-ऋक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथ:।

व्याध: कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्य: तथापरे।।11।12।6।।

ते नाधीत-श्रुतिगणा नोपासित-महत्तमा:।

अव्रत-अतप्त-तपस: सत्सङ्गात्-माम्-उपागता:।।11।12।7।।

केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृग:।

येऽन्ये मूढधियो नागा: सिद्धा माम्-ईयु: अञ्जसा।।11।12।8।।

भगवान्‌ने कहा कि योग, सांख्य, त्याग, तपस्या, ईष्टापूर्त, व्रत, तीर्थ मुझे प्रसन्न नहीं कर पाते जितना सत्संग करता है। सांसारिक आसक्ति से सत्संग ही छुटकारा दिलाता है।दितिपुत्र असुरगण, पशु-पक्षी, गन्धर्वादि, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज आदि, रज-तम स्वभाववालो ने मेरा परमपद पाया है।कयाधुपुत्र प्रह्लाद, त्वष्ट्रापुत्र वृत्रासुर, बृषपर्वा, बलि, वणासुर, विभीषण, सुग्रीव , हनुमान, जाम्बवान, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार, धर्मव्याध, कुब्जा, गोपियाँ, यज्ञपत्नियाँ आदि ने सत्संगति से ही मुझे प्राप्त किया है।वेद के प्रपञ्च में नहीं पड़कर इनलोगों ने मेरी भक्ति की। व्रज की गायें, गोपियाँ, यमलार्जुन, कालीयनाग तथा मृगगण जड़ बुद्धि के होते हुए भी मुझे प्राप्त कर लिये। जब अक्रूर जी मुझे मथुरा ले गये तब गोपियाँ विरह सागर में डूब गयीं।

ता: ता: क्षपा: प्रेष्ठतमेन नीता मयैव वृन्दावनगोचरेण।

क्षणार्धवत्-ता: पुन: अङ्ग तासां हीना मया कल्पसमा बभूवु:।।11।12।11।।

गोपियों के साथ की रास-रात्रियाँ आधे क्षण के बराबर बीत गयी परन्तु मेरे मथुरा के वियोग से गोपियों की एक-एक रात्रि कल्प के समान बीती।

मत्कामा रमणं जारम्-अस्वरूप-विदो अबला:।

ब्रह्म मां परमं प्रापु: सङ्गात्-शतसहस्रश:।।11।12।13।।

कुछ गोपियाँ जार भाव से मेरे पास आई परन्तु अन्य गोपियों की संगति से शुद्ध होकर मुझे प्राप्त कर ली। उद्धव जी ने पूछा कि मैं स्वधर्म पालन करूँ या सबकुछ छोड़कर आपकी शरणागति लूँ। भगवान्ने कहा कि गुरु के मार्ग दर्शन में मेरी शरणगति ही प्राप्त करो। भगवान्ने उद्धव जी को बताया कि एक बार हंस बनकर ब्रह्मा के सनकादि नामके चार मानसपुत्रों को उन्होंने तत्वज्ञान का उपदेश किया था। सनकादिकों ने अपने पिता ब्रह्मा से इन्द्रिय तृप्ति की तृष्णा को दूर करने के साधन के बारे में पूछा। रजोगुण प्रधान होने के कारण ब्रह्मा इसका उत्तर न दे सके। तब भगवान्ने स्वयं हंस बनकर उपदेश किया। सतो, रजो तथा तमोगुण बुद्धि से जुड़े रहते हैं, इनका आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं है। विवेकहीन मनुष्य अपनी पहचान शरीर से कर लेता है। रजोगुण से मोहित होकर व्यक्ति इन्द्रियतृप्ति की लालसा से अभिभूत हो जाता है। अभागे सब इन्द्रियों के दास हो जाते हैं। दूसरी ओर विवेकशील व्यक्ति विषयों से विरक्त हाकर वैराग्य युक्त शुद्ध भक्ति का अभ्यास करता है। हंस ने जागृत, स्वप्निल तथा गाढ़ी निद्रा सुषुप्ति तीन अवस्थाओं द्वारा चेतना की विभिन्न दशाओं का वर्णन किया। अत: मन को एकाग्र कर मुझमें लीन कर दे।

11।8 भक्तियोग एवं ध्यान विधि

उद्धव जी ने पूछा कि ब्रह्मवादी महात्माओं ने कल्याण के अनेक रास्ते बताये हैं। आप बतायें कि सबसे प्रधान कौन है? भगवान्ने कहा कि सृष्टि के आरम्भ मैंने ब्रह्मा को भागवत धर्म बताया जो अन्य ऋषियों को प्राप्त हुआ। पूर्व मीमांसक ने धर्म को, साहित्याचार्य ने यश को, कामशास्त्री ने काम को, योगी ने सत्य को, त्यागी ने त्याग को, कर्म योगी ने व्रत-नियमादि को ही पुरुषार्थ बताया है परन्तु इन सबों के फल नश्वर हैं।

मयि-अर्पित-आत्मन: सभ्य निरपेक्षस्य सर्वत:।

मयाऽऽत्मना सुखं यत् तत् कुत: स्याद् विषय-आत्मनाम्।।11।14।12।।

जिसने अपने सभी कर्म मुझमें समर्पित कर दिये हैं उन्हें वह सुख मिलता है जो विषयलोलुपों को नहीं मिलता।

अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतस:।

मया सन्तुष्टमनस: सर्वा: सुखमया दिश:।।11।14।13।।

कुछ न चाहनेवाला जिसने इन्द्रियों को जीत लिया है, शान्त तथा समदर्शी है, मुझमें मन लगाकर ही सर्वदा सन्तुष्ट रहता है उसे सर्वत्र सुख ही सुख मिलता है।

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।

न योगसिद्धी: अपुन: भवं वा मयि-अर्पित-आत्मा-इच्छति मत्-विना-अन्यत्।।11।14।14।।

मुझको समर्पित भक्त को न तो ब्रह्मा का पद चाहिए और न इन्द्र के पद का। वह सार्वभौम सम्राट नहीं बनना चाहता और न स्वर्ग से भी अच्छा रसातल का। वह न योग की सिद्धियाँ चाहता है और न मोक्ष। भक्त के लिए मैं लक्ष्मी,

ब्रह्मा, संकर्षण, शंकर तथा अपने-आप की उपेक्षा करता हूँ। भागवत के **6।11।25** में वृत्रासुर की स्तुति तथा **10।16।37**।। में कालिय नाग की पत्नियों की स्तुति में इसी तरह के भाव हैं।

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।

अनुव्रजामि-अहं नित्यं पुयेय-इति-अङ्घ्रि-रेणुभिः।।**11।14।16**।।

मैं शान्त, शत्रुभाव से रहित, समदर्शी तथा मेरी लीलाओं के स्मरण में लीन रहने वाले भक्तों के पीछे-पीछे चलकर उनके चरणों की धूल से अपने को पवित्र करता हूँ।

बाध्यमानोऽपि मदभक्तो विषयैः अजित-जितेन्द्रियः।

प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैः नाभिभूयते।।**11।14।18**।।

यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोति-एधांसि भस्मसात्।

तथा मत्-विषया भक्तिः उद्धव-एनांसि कृत्स्नशः।।**11।14।19**।।

मेरी प्रगाढ़ भक्ति वाला भक्त अगर इन्द्रियों से विषयों के लिए उद्विग्न भी हो जाय तब भी वह इन्द्रियों को जीत लेता है। आग जैसे लकड़ी को भस्म कर देती है उसी तरह से मेरी भक्ति विषयों को जला देती है।

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।

न स्वाध्यायः तपः त्यागो यथा भक्तिः मम उर्जिता।।**11।14।20**।।

भक्त्याहम्-एकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम्।

भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्।।**11।14।21**।।

जितनी मुझमें सदा बढ़ती हुई भक्ति मुझे वश में करती है उतना योग तथा तप आदि नहीं कर पाते। श्रद्धापूर्ण भक्ति मुझे वश में कर लेती है। कुत्ते का मांस खानेवाला चाण्डाल भी मेरी भक्ति से पापमुक्त हो जाता है।

धर्मः सत्यदया-उपेतो विद्या वा तपसान्विता।

मद्भक्त्या-अपेतम्-आत्मानं न सम्यक्-प्रपुनाति हि।।**11।14।22**।।

मेरी भक्ति से विहीन को सत्य एवं दया से युक्त धर्म तथा तपस्या से युक्त विद्या भी पवित्र नहीं करती।

कथं विना रोमहर्ष द्रवता चेतसा विना।

विना-आनन्दाश्रु-कलया शुद्ध्येद् भक्त्या विनाऽऽशयः।।**11।14।23**।।

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदति-अभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।

विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति।।**11।14।24**।।

विना रोमांच, विना द्रवित हृदय तथा आननदाश्रु के भक्ति भी शुद्ध नहीं कर पाती। भक्ति के आवेश से भरा हुआ गला, निर्लज्ज की तरह हँसने-गाने-नाचने-चिल्लाने वाला भक्त संसार को पवित्र करता है।

यथाग्निना हेम मलं जहाति ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम्।

आत्मा च कर्मानुशयं विधूय मद्भक्तियोगेन भजति-अथो माम्।।**11।24।25**।।

यथा यथाऽऽत्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्य-गाथा-श्रवण-अभिधानैः।

तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुः यथा-एव-अञ्जन-सम्प्रयुक्तम्।।**11।24।26**।।

आग में जलकर सोना जैसे अपने मूल स्वरूप में निखर उठता है वैसे ही भक्ति से शुद्ध होकर भक्त भी अपने कर्म वासना से मुक्त होकर अपने स्वरूप को प्राप्त करता है। जैसे अंजन से नेत्र की शक्ति बढ़ती है वैसे ही मेरी कथा के श्रवण तथा गायन से आत्म-तत्त्व की सूक्ष्म बातें समझ में आने लगती हैं।

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते।
माम्-अनुस्मरत: चित्तं मय्येव प्रविलीयते।।11।14।27।।
तस्मात्-असत्-अभिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथम्।
हित्वा मयि समाधत्स्व मनो मद्भाव-भावितम्।।11।14।28।।

वासना को सोचते रहने पर मन वासनामय रहता है परन्तु मेरे स्मरण से मन मुझमें लीन होता है। वासना की चिन्ता स्वप्न जैसी झूठ हो जाती है। उन्हें छोड़ मन मुझमें लगाओ। उद्धव जी ने पूछा कि आपके किस स्वरूप का और कैसे ध्यान किया जाय ? भगवान्ने कहा कि शान्त चित्त हो प्राणायाम के आसन में बैठकर प्रणव का उच्चारण करते हुए पूरक- कुम्भक-रेचक से नाड़ी शोधन कर प्राणवायु को ब्रह्मरन्ध्र में चढ़ाये। अपने हृदय को आठ दल वाला कमल मान मेरे स्वरूप को उसपर स्थिर करे।

समं प्रशान्तं सुमुखं दीर्घ-चारु-चतुर्भुजम्।
सुचारु-सुन्दरग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम्।।11।14।38।।
समान-कर्ण-विन्यस्त-स्फुरन्मकर-कुण्डलम्।
हेमाम्बरं घनश्यामं श्रीवत्स-श्रीनिकेतनम्।।11।14।39।।
शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-वनमाला-विभूषितम्।
नूपुरै: विलसत्पादं कौस्तुभ-प्रभया युतम्।।11।14।40।।
द्युमत्-किरीट-कटक-कटिसूत्र-अङ्गदायुतम्।
सर्वाङ्ग-सुन्दरं हृद्यं प्रसाद-सुमुख-ईक्षणम्।
सुकुमारम्-अभिध्यायेत् सर्वाङ्गेषु मनो दधत्।।11।14।41।।

शान्त एवं सुडौल अंग, प्रसन्न सुन्दर मुस्कुराता मुखारविन्द, आजानबाहु मनोहर चारो भुजायें, मनोहर गर्दन, चिकना चमकता गाल, कानों में चमकता मकराकृत कुण्डल, घनश्याम शरीर पर पीताम्बर, वक्ष:स्थल पर श्रीवत्स एवं लक्ष्मी जी, हाथो में शंख-चक्र-गदा-कमल, गले में वनमाला, नूपुर से सुशोभित चरणारविन्द, आभापूर्ण कौस्तुभ मणि, चमचमाते मुकुट, कंगन, करधनी एवं बाजूबन्द के साथ प्रत्येक हृदयहारी अंगों के साथ प्यारभरी कृपा वर्षाती चितवन से मनोहारी मुखारविन्द का ध्यान करते हुए एक-एक अंग पर ध्यान लगाये। जब इस तरह से ध्यान लगने लगे तब ध्यान को मेरे मुस्कुराते मुखमण्डल पर टिकावे। इस तरह से तीव्र ध्यान योग द्वारा मुझमें ही चित्त लगावे। भागवत **3**।**28**।**11**। में भी कहा है कि यम-नियम-आसन-प्राणायम से नाड़ी शुद्ध होती है। इन्द्रियों पर नियन्त्रण करने वाला प्रत्याहार है जिससे ध्यान-धारणा-समाधि पक्की होती है। यम पाँच हैं सत्य-अहिंसा-अस्तेय-ब्रह्मचर्य -अपरिग्रह है। पाँच नियम शुचिता-सन्तोष-तप-स्वाध्याय तथा ईश्वर प्राणिधान हैं। ईश्वर प्राणिधान शरणागति है।

11।10। सिद्धियों की नि:सारता

जब उद्धव जी ने सिद्धियों की उपयोगिता के बारे में जानना चाहा तब भगवान्‌ने कहा कि योगी लोग अठारह तरह की सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं जिसमें आठ प्रधान सिद्धियाँ हैं। **1**। अणिमा से छोटा से छोटा रूप धारण किया जाता है। **2**। महिमा से रूप बहुत ही बड़ा बनाया जाता है। **3**।लघिमा से हल्का से हल्का बना जाता है। **4**।प्राप्ति से कोई भी वस्तु लायी जाती है। **5**।प्राकाम्य से किसी भी भोग्य वस्तु का अनुभव किया जाता है। **6**।ईशिता के द्वारा माया का प्रदर्शन किया जाता है। **7**।वशिता से किसी अन्य को अपने वशीभूत कर लेता है। **8**।कामावसायिता के द्वारा नियन्त्रण, प्राप्ति तथा भोग को सुलभ बनाया जाता है। भगवान्‌ने कहा कि इस तरह की सिद्धियों को प्राप्त करने में समय व्यर्थ ही लगाया जाता है। इससे श्रेष्ठ मेरी भक्ति है। मेरे अनन्य भक्त को ये सब स्वयंमेव प्राप्त हो जाते हैं। मन्त्र, औषधि तथा तपस्या से प्राप्त सिद्धियाँ मेरी अनन्य भक्ति के अभाव में मोक्ष नहीं दिला सकती। ये सब भक्ति में बाधक हैं।

11।11 भगवान्‌की विभूतियाँ तथा वर्णाश्रम धर्म

समस्त तीर्थस्थलों के आश्रय भगवान्‌के चरणकमल को प्रणाम कर **"नमामि ते तीर्थपदाङ्घ्रिपद्म।। 11।16।5।।"** उद्धव जी ने पूछा कि आप अपनी शक्तियों के बारे में बतायें जो सर्वत्र आपने प्रकट कर रखी है। भगवान् ने कहा कि इसी तरह का प्रश्न अर्जुन ने महाभारत के युद्ध में गीता के उपदेश के समय पूछा था। वह युद्ध में हत्या के पाप से डर गया था और युद्ध नहीं करना चाहता था। **"युयुत्सना विनशने सपत्नै: अर्जुनेन वै।। 11।16।6।।"** भगवान् ने अपनी विभूतियों को आंशिक रूप से गिनाते हुए कहा कि **"नारायणो मुनीनां च कुमारो ब्रह्मचारिणाम्।।11।16।25।।"** मुनियों में नारायण ऋषि हूँ तथा ब्रह्माचारियों में सनत्कुमार हूँ। बहुत सारे का नाम गिनाते हुए भगवान् कहते हैं- **"वासुदेवो भगवतां त्वं तु भागवतेषु-अहम्।।11।16।29।।"** ईश्वर के सभी स्वरूपों में मैं वासुदेव हूँ तथा भक्तों में तू यानी उद्धव हूँ। अन्त में भगवान्‌ने कहा कि मेरी शक्तियों की गिनती असंभव है। हे उद्धव ! वाणी, मन, प्राण तथा इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखो। पुन: संसार में नहीं आना पड़े वह मेरी भक्ति से ही संभव है।

भगवान्‌ने वर्णाश्रम की प्रणाली के साथ वर्णाश्रम धर्म के पालन पर अध्याय **17** एवं **18** में विस्तार से वर्णन किया है। साथ में यह भी बताया कि सभी वर्ण तथा आश्रमी को मेरी उपासना अवश्य करनी है।

भक्त्या-उद्धव-अनपायिन्या सर्वलोक-महेश्वरम्।
सर्व-उत्पत्ति-अप्ययं ब्रह्म कारणं मा-उपयाति स:।।11।18।45।।

मैं ही इस ब्रह्माण्ड का सृजन तथा विनाश करता हूँ। अविचल भक्ति वाला मेरे पास आता है।

11।12 भक्ति, ज्ञान तथा यम-नियम के साधन

उद्धव जी ने भगवान्‌के चरणारविन्द की महिमा गाते हुए भगवान्‌को प्रणाम किया। उद्धव जी ने कहा कि

तापत्रयेण-अभिहतस्य-घोरे सन्तप्यमानस्य भव-अध्वनि-ईश।
पश्यामि नान्यच्छरणं तवाङ्घ्रि-द्वन्द्व-आतपत्रात्-अमृत-अभिवर्षात्।।11।19।9।।

हे भगवन्! आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक तीनों ताप से सन्तप्त जनों के लिए अमृत बरसाते आपके चरणारविन्द के छत्र के अतिरिक्त इस संसार में कोई आश्रय नहीं है। उद्धव जी ने भक्तियोग एवं ज्ञानयोग के

सामंजस्य की जानकारी हेतु जिज्ञासा की। भगवान्‌ने अनेकों अवसरों पर स्पष्ट किया है कि ज्ञान निरर्थक हो जाता है जब वह भगवान्‌की प्रेमाभक्ति प्राप्त करने में सहायक न हो। उद्धव जी ने भगवान्‌के चरणारविन्द को अमृत बरसाने वाली छाता कहा है। राजा पृथु के अभिषेक में वरुण देव द्वारा दिये गये छाते की भी ऐसी ही विशेषता थी कि वह शीतल फुहारें बरसाती थी - "**वरुण: सलिल-स्रावम्-आतपत्रं शशिप्रभम्।।4।15।14।।**" इसी तरह का भाव **3।15।38** में भी है जब वैकुण्ठ में भगवान् छत्र धारण किये पाँव-पैदल सनकादि मुनियों के पास आये हैं - "**शुभ्र-आतपत्र-शशि-केसरशीकर-अम्बुम्।। 3।15।38।।**"

भगवान्‌ने उद्धव जी की जिज्ञासा के शमन हेतु एक प्रकरण सुनाया। उन्होंने कहा -

इत्थमेतत् पुरा राजा भीष्मं धर्मभृतां वरम्।

अजातशत्रु: पप्रच्छ सर्वेषां नोऽनुश्रृण्वताम्।।11।19।11।

महाभारत युद्ध के बाद युधिष्ठर के इसी तरह के प्रश्न के उत्तर में भीष्मपितामह ने जो कहा था उसे सुनो। ज्ञान एवं भौतिक संसार की प्रकृति आदि बताते हुए उसकी निरर्थकता को उद्भासित किया। उन्होंने उद्धव जी को कहा कि आपका प्रेम भक्ति में ज्यादा है अत: एक बार भक्ति के साधन के बारे में मैं पुन: बताता हूँ।

श्रद्धामृत-कथायां मे शश्वत्-मत्-अनुकीर्तनम्।

परिनिष्ठा च पूजायां स्तुभि: स्तवनं मम।।11।19।20।।

मेरी अमृतमयी कथा का गुणगान, श्रद्धा से संकीर्तन, मेरी पूजा में निष्ठा और प्रेम तथा स्तोत्रों से स्तुति करनेवाले को मेरी भक्ति प्राप्त होती है। वही धर्म है जो मेरी भक्ति दे। मेरी सर्वव्यापकता के स्वरूप को बताने वाला ही ज्ञान है। वासना तृप्ति से अरुचि ही वैराग्य है। उद्धव जी के पूछने पर भगवान्‌ने उद्धव जी को विस्तार से यम तथा नियम बताया। चारित्रिक अनुशासन के साधन यम कहे जाते हैं। दैनिक कार्य को नियन्त्रित करने वाले नियम कहे जाते हैं। यम तथा नियम दोनों के बारह-बारह अंग हैं।

यम के भेद हैं- **1**।अहिंसा, **2**।सत्य, **3**।अस्तेय अर्थात् चोरी नहीं करना, **4**।असंग अर्थात् विरक्ति, **5**।दीनता, **6**।असञ्चय अर्थात् अपरिग्रह आवश्यकता से अधिक धन का संग्रह नहीं करना, **7**।आस्तिकता यानी धर्म पर आस्था, **8**।ब्रह्मचर्य, **9**।मौन, **10**।स्थिरता, **11**।क्षमा, **12**।अभय निर्भिकता।

नियम के बारह भेद हैं- **1**। बाह्य शौच - शरीर की शुद्धि अर्थात् बाहरी पवित्रता **2**।अन्त: शौच अर्थात् भीतरी मन की पवित्रता जो शम कहा जाता है, **3**।जप, **4**।तप, **5**।हवन, **6**।श्रद्धा, **7**।अतिथि सेवा, **8**।मेरी पूजा, **9**।तीर्थ यात्रा, **10**।परोपकार की चेष्टा, **11**।सन्तोष, **12**।गुरु सेवा।

योगा: त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयो-विधित्सया ।

ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्यो-अस्ति कुत्रचित्।।11।20।6।।

भगवान्‌ने कहा कि जीवन में उन्नति के तीन साधन हैं - ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग तथा भक्ति मार्ग। जिनको कर्म के फल की चाह नहीं वे ज्ञान योग के अधिकारी हैं। जिन्हें फल की वासना है वे कर्मयोग के पात्र हैं। जो न तो विरक्त है और न आसक्त परन्तु पूर्व पुण्य के कारण मेरी लीला-कीर्तन-श्रवण का प्रेमी है वह भक्ति मार्गी है।

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।

मत्कथा-श्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते।।11।20।9।।

व्यक्ति तब तक कर्मकाण्ड करे जबतक सांसारिक कामनाओं से विरक्ति न हो अथवा जब तक मेरी कथा-श्रवण में प्रीति न हो। इस शरीर रूपी वृक्ष में जीव पक्षी की तरह घोसला बनाकर रहता है। इस वृक्ष को यमदूत प्रतिक्षण काटते हैं। अनासक्त पक्षी वृक्ष कटते ही उसका त्याग कर देता है। अनासक्त जीव मोक्ष पाता है परन्तु आसक्त जीव जन्म-मृत्यु का दु:ख भोगता है।

नृदेहम्-आद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरु-कर्णधारम्।
मया-अनुकूलेन नभस्वता-ईरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा।।11।20।17।।

भगवान् कहते हैं कि समस्त शुभ कर्मो के फल का दाता यहा मानव शरीर दुर्लभ होते हुए भी मेरे अकारण अनुग्रह से सुलभ हो जाता है। यह एक ऐसी मजबूत नाव है जिसके केवट गुरु होते हैं और मेरे नाम स्मरण करने से अनुकूल कृपावायु संसार सागर को पार करा देती है। जो इसे प्राप्त कर भवसागर से पार नहीं होता वह आत्मघाती है। मेरी भक्ति में लीन होने से मैं उसके हृदय में बैठ वासना की गाँठ को काटता रहता हूँ।

तस्मात्-मद्भक्ति-युक्तस्य योगिनो वै मदात्मन:।
न ज्ञानं न च वैराग्यं प्राय: श्रेयो भवेदिह।।11।20।31।।
यत्कर्मभि: यत् तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत्।
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभि: इतरै: अपि।।11।20।32।।
सर्व मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा।
स्वर्ग-अपवर्ग मद्धाम कथञ्चिद् यदि वाञ्छति।।11।20।33।।

मेरी कल्याणकारी भक्ति में दत्तचित्त योगी को ज्ञान वैराग्य से कोई काम नहीं है। जो शुभ फल कर्मकाण्ड, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्म या अन्य शुभ कर्म से मिलते हैं वे सब मेरी भक्ति से मिल जाते हैं।स्वर्ग, वैकुण्ठ तथा मोक्ष जो भी चाहता है मिल जाता है।

न किञ्चत् साधवो धीरा भक्ता हि-एकान्तिनो मम।
वाञ्छन्ति-अपि मया दत्तं कैवल्यम्-अपुनर्भवम्।।11।20।34।।
नैरपेक्ष्यं परं प्राहु: नि:श्रेयसम्-अनल्पकम्।
तस्मात्-निराशिषो भक्ति: निरपेक्षस्य मे भवेत्।।11।20।35।।

हमारे जो धीर साधु भक्त हैं वे देने पर कैवल्य मोक्ष भी स्वीकार नहीं करते। जो किसी के भरोसे नहीं रहता तथा किसी बात की इच्छा नहीं रखता वही मेरी भक्ति प्राप्त करता है।

न मयि-एकान्त-भक्तानां गुणदोष-उद्भवा गुणा:।
साधूनां समचित्तानां बुद्धे: परम्-उपेयुषाम्।।11।20।36।।
एवमेतान् मया-दिष्टान्-अनुतिष्ठन्ति मे पथ:।
क्षेमं विन्दन्ति मत्स्थानं यद् ब्रह्म परमं विदु:।।11।20।37।।

जो मेरा अनन्य भक्त-साधु समबुद्धिवाला है तथा माया के बाहर है उसे धर्म-अधर्म के पुण्य-पाप नहीं लगते। मेरे बताये ज्ञान-वैराग्य-भक्ति की साधना करने वाला ब्रह्मज्ञानी होकर मेरे कल्याणमय पद को पाता है।

11।13 दुष्टों के अत्याचार तथा अपमान के प्रतिकार का उपाय (एक सहिष्णु ब्राह्मण का गीत)

इस प्रकरण को भिक्षु गीत भी कहा जाता है। इसमें धन के नाश होने पर एक व्यापारी ब्राह्मण को वैराग्य उत्पन्न होने की गाथा है। उद्धव जी ने कहा कि साधु जनों को छोड़कर मेरा प्रश्न सामान्य जनों के लिए है। एक सामान्य व्यक्ति दुष्टों के द्वारा किये गये अपमान तथा अत्याचार से कैसे निपटे।भगवान्ने देवगुरु बृहस्पति के शिष्य उद्धव जी से कहा कि सामान्य जन की कौन कहे इस संसार में कोई साधु ऐसा नहीं है जो दुष्टों के कटु वचनों से आहत न हो। इसी प्रसंग में भगवान्ने अवन्ती के एक सहिष्णु ब्राह्मण की कथा सुनायी। वह एक कुशल व्यापारी था परन्तु कृपण, लोभी तथा क्रोधी था। स्वजनों को वस्त्र-भोजनादि भी देने में कंजूसी करता था। अतिथि सत्कार तथा धर्म -कर्म से दूर रहता था। प्रारब्धवश उसके परिवार के लोगों ने उसका धन हड़प लिया। जो बचा उसे चोर-डकैत लूट लिये। वह दरिद्र हो गया। दु:ख एवं चिन्ता से उसमें जीवन से विरक्ति उत्पन्न हुई। उसने लगा कि इस मनुष्य देह से वैकुण्ठ भी प्राप्त किया जा सकता है। उसने धन के कारण पन्द्रह अनर्थ गिनाये।

स्तेयं हिंसा-अनृतं दम्भ: काम: क्रोध: स्मयो मद:।
भेदो वैरम्-अविश्वास: संस्पर्धा व्यसनानि च।।11।23।18।।
एते पञ्चदश-अनर्था हि-अर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मात्-अनर्थम्-अर्थ-आख्यं श्रेयोऽर्थी दूरत: त्यजेत्।।11।23।19।।

चोरी, हिंसा, झूठ, धोखा, दम्भ, काम, क्रोध, अहंकार, भेद बुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्पटता, जुआ और नशा ये धन के पन्द्रह दोष हैं। इसलिए कल्याण चाहने वाले को चाहिए कि अनर्थ की जड़ धन को दूर से त्याग दे। ब्राह्मण ने वैराग्य वृत्ति से जीवन बिताने का संकल्प लिया।

नूनं मे भगवान्-तुष्ट: सर्वदेवमयो हरि:।
येन नीतो दशामेतं निर्वेद: च आत्मन: प्लव:।।11।23।28।।

उसके मन में यह बात बैठ गयी कि सभी देवों के समेकित स्वरूप श्रीहरि की असीम अनुकम्पा से ही मुझे इस स्थिति का सामना करना पड़ रहा है। वैराग्य ही भवसागर पार कराने वाली नाव है। वह सन्तोष परायण होकर संयमित इन्द्रियों के साथ पृथ्वी पर एक त्रिदण्डी संन्यासी के स्वरूप में विचरण करने लगा। उसका त्रिदण्ड तीन तत्त्व जीव-जगत्-ईश्वर की शाश्वत सत्ता का प्रतीक था। कुछ हरिकथाकार इसे शरीर-मन-वाणी को संयमित कर भगवान्के श्रीचरणों में लगे रहने का प्रतीक बताते हैं।

केचित्-त्रिवेणुं जगृहु: एके पात्रं कमण्डलुम्।
पीठं चैकेऽक्षसूत्रं च कन्थां चीराणि केचन।।11।23।34।।

लोग उस भिक्षुक को अपमानित करते। कोई उसका त्रिदण्ड, कोई जपमाला, कोई जलपात्र, कोई आसन तथा गुदड़ी भी छीन लेते। लोग उसे गाली देते, मारते, भिक्षा छीन लेते, सब तरह से अपमानित करते परन्तु सबको प्रारब्ध मानकर वह सदा शान्त एवं मौन रहता। परन्तु सब दैवसंयोग मान कर वह गीत गाने लगा जो श्लोक **43** से **58** तक द्रष्टव्य है। इसी को भिक्षु-गीत भी कहा जाता है। वह कहता है कि मेरे समस्त सुख-दु:ख का कारण

सत्त्व-रज-तम के गुणों से प्रभावित मेरा मन ही है। जबकि परमात्मा मन के साथ स्वयंप्रकाशित मेरा मित्र बनकर मेरे हृदय में सदा उपस्थित रहते हैं परन्तु वे मात्र एक साक्षी बनकर रहते हैं। **"अनीह आत्मा मनसा समीहता हिरण्मयो मत्सख उद्विचष्टे।11।23।45।।"**

मन सभी इन्द्रियों का राजा है। दान-पुण्यादि मन पर विजय पाने में सहायता करते हैं। शरीर से अपनी पहचान समझने वाले अनन्त अंधकार में भटकते रहते हैं। इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता के क्रिया-कलाप आत्मा को न प्रभावित करके मात्र मन को प्रभावित करते हैं। दाँत से अगर जीभ कट जाये तब मन किस पर क्रोध करेगा ? ग्रह-नक्षत्रादि भी जन्म लेनेवाले शरीर को ही प्रभावित करते हैं न कि अजन्मा आत्मा को।

एतां स आस्थाय परमात्मनिष्ठाम्-अध्यासितां पूर्वतमैः महर्षिभिः।
अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं तमो मुकुन्द-अङ्घ्रि-निषेवयैव।।11।23।58।।

भिक्षुक ब्राह्मण को यह दृढ़ विश्वास था कि भगवान् मुकुन्द की भक्ति में स्थिर पहले के मुनिगणों ने इसकी पुष्टि की है कि भगवान् मुकुन्द के चरणारविन्द में रत रहने वाला भवसागर को पार कर जाता है।

तस्मात्सर्वात्मना तात निगृहाण मनो धिया।
मयि-आवेशितया युक्त एतावान्योगसंग्रहः।।11।23।61।।

भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धव जी को कहा कि अपनी बुद्धि को स्थिर कर अपने मन से मुझमें लीन हो जाओ।

11।14 ऐल गीत -पुरूरवा का वैराग्य

भगवान्ने कहा कि मानव शरीर मेरे साक्षात्कार का अनुभव कराने वाला एक अमोघ साधन है। इसको स्पष्ट करने के लिए भगवान्ने पुरूरवा-उर्वशी का प्रकरण सुनाया। यह गीत सुप्रसिद्ध समाट् पुरूरवा के हैं। वह उर्वशी में अत्यन्त आसक्ति रखता था। जब उर्वशी उसे छोड़कर चली गयी तब उसे ज्ञान हुआ कि मैं चक्रवर्ती सम्राट होते हुए कैसे एक नारी का अनुचर बन गया था। यह कथा नवम स्कन्ध के चौदहवें अध्याय में विस्तार से दी गयी है। पुरूरवा की माँ इला थी और बुध उसके पिता थे। इला के पुत्र होने के कारण पुरूरवा को ऐल भी कहते हैं। दसवें स्कन्ध की तरह ग्यारहवें स्कन्ध में भी दो गीत हैं। दसवें स्कन्ध के अध्याय 21 में भगवान् के मनोहारी वेणुनाद से निकले गीत को वेणुगीत या वेणुगान कहते हैं। उद्धव जी की उपस्थिति में विरह से आक्रान्त गोपियों के भ्रमर के साथ जो अध्याय 47 का संवाद है उसे भ्रमर गीत कहते हैं। ग्यारहवें स्कन्ध के अध्याय 23 में धन के नाश होने पर व्यापारी से निर्धन बने एक कंजूस ब्राह्मण के धन से वैराग्य के भाव को प्रकट करने वाले गीत को भिक्षुक गीत कहते हैं। यहाँ अध्याय 26 में नारी की आसक्ति से विरक्ति होने पर पुरूरवा ने जो उद्गार प्रकट किये हैं उसे ऐल गीत कहते हैं। यह श्लोक 7 से 24 तक द्रष्टव्य है। राजा ऐल ने कहा है कि नारी में आसक्त व्यक्ति के लिए तपस्या, विद्या, शास्त्र पाठ या श्रवण, एकान्त वास एवं वाणी संयम सभी निरर्थक हैं।

पुंश्चल्य-अपहृतं चित्तं को नु-अन्यो मोचितुं प्रभुः।
आत्माराम-ईश्वरम्-ऋते भगवन्तम्-अधोक्षजम्।।11।26।15।।

राजा ऐल कहते हैं कि वेश्या में लगे मेरे चित्त को इन्द्रियातीत आत्माराम भगवान्को छोड़कर कौन मुक्त करेगा। भगवान् सत्संग की महिमा बताते हुए उद्धव जी से कहते हैं कि -

ततो दु:सङ्म्-उत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान्।

सन्त एतस्य छिन्दन्ति मनो-व्यासङ्गम्-उक्तिभि:।।11।26।26।।

बुद्धिमान को चाहिए कि कुसंगति को छोड़ सत्संगति ग्रहण करे। सन्त अपने उपदेश से लोगों में भगवद्भक्ति की विरोधी प्रवृति का नाश करते हैं। सन्त लोग सर्वदा मेरे भरोसे रहते हैं।इनके बीच सर्वदा सभी पाप को धोनेवाली मेरी कथा पर ही चर्चा होती है।

भक्तिं लब्ध्वत: साधो: किम्-अन्यत्-अवशिष्यते।

मयि-अनन्तगुणे ब्रह्मणि-आनन्द-अनुभव-आत्मनि।।11।26।30।।

मेरी भक्ति प्राप्त करेने के बाद क्या करना शेष रहता है! मेरे असंख्य गुणों में मैं साक्षात् आनन्दमय अनुभव हूँ।

यथा-उपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम्।

शीतं भयं तमो-अप्येति साधून् संसेवस्तथा।।11।26।31।।

जैसे अग्नि के आश्रय से शीत का भय तथा अन्धकार भाग जाता है उसी तरह साधुओं की सेवा करने वाले का संसारभय तथा अज्ञान का अन्धकार नष्ट हो जाता है।

निमज्य-उन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परम-अयनम्।

सन्तो ब्रह्मविद: शान्ता नौ: दृढा-इव-अप्सु मज्जताम्।।11।26।32।।

संसार में डूबते हुए को सन्त अपना उसी तरह आश्रय देते हैं जैसे जल में डूबनेवाले को नाव।

अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं तु-अहम्।

धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तोऽर्वाग् बिभ्यतोऽरणम्।।11।26।33।।

सन्तो दिशन्ति चक्षूंसि बहिरर्क: समुत्थित:।

देवता बान्धवा: सन्त: सन्त आत्माहमेव च।।11।26।34।।

भगवान् कहते हैं कि जैसे जीवों की जान अन्न में है वैसे दीनों का मैं ही आश्रय हूँ। मरने के बाद धर्म ही धन है। संसार से भयातुर के लिए सन्त ही शरणदाता होते हैं।सूर्योदय होने पर सूर्य बाह्य दृष्टि देते हैं उसी तरह सन्त अपने को तथा भगवान्को देखने के लिए अन्तर्दृष्टि देते हैं। सन्त देवता, मित्र, आत्मा एवं परमात्मा हैं।

11।15। पूजा की विधि ः क्रिया योग का वर्णन।

शास्त्र की विधि के अनुसार भगवान्की पूजा को ही आराधनारूप क्रिया योग कहते हैं। भगवान्की अर्चामूर्ति की पूजा की तीन मुख्य प्रचलित विधयाँ हैं - **1**।वैदिक, **2**।तंत्र या आगम जिसमें पाञ्चरात्र पद्धति है। **3**।दोनों का मिश्रण। भगवान्की पूजा से मन क्रमश: शुद्ध होता है तथा वासना से विरक्ति होने लगती है। उद्धव जी ने भगवान्से अर्चामूर्ति की पूजा-विधि पूछते हुए कहा कि नारद जी, व्यास जी, मेरे गुरु बृहस्पति तथा अन्य मुनियों के मत हैं कि आपकी पूजा से मनुष्य जीवन में परम कल्याण प्राप्त करता है। आपके मुखारविन्द से निकली आराधना विधि को ब्रह्मा ने अपने पुत्र भृगु आदि को बताया। उद्धव जी ने इसे भगवान्से सुनने की जिज्ञासा प्रकट की। भगवान्ने कहा कि अर्चामूर्ति की पूजा की अनेकों विधियाँ हैं। **"न हि-अन्तो-अनन्तपारस्य कर्मकाण्डस्य च-उद्धव।।11।27।6।।**

1। मनुष्य को चाहिए कि "**वैदिक: तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मख:। ।11।27।7। ।**" इन तीन विधियों में से किसी एक को चुनकर मेरी पूजा करे। अर्चाविग्रह के विकल्प में मेरा भक्त वेदी, अग्नि, सूर्य, जल या हृदय में मेरे स्वरूप का ध्यानकर विधिवत आराधना करे।

2। पूजा करने वाला व्यक्ति दतुवन से दाँत साफकर मिट्टी लगाकर स्नान करे। मन्त्र से शरीर शुद्ध करे। वेदोक्त सन्ध्या-वन्दनादि नित्य कर्म करे। तत्पश्चात् मेरी आराधना का संकल्प करे।

3।मेरी मूर्ति आठ प्रकार की होती हैं - पत्थर, लकड़ी, धातु, मिट्टी, चन्दन, बालू, मन में विचारी गई तथा मणियों से बनी। मूर्ति या तो चल होती है या अचल रहती है। मेरी अचल प्रतिमा की एक ही बार प्राणप्रतिष्ठा की जाती है। उसमें बार-बार मेरा आवाहन एवं विसर्जन नहीं किया जाता है। चल प्रतिमा में विकल्प है कि चाहे तो नित्य आवाहन-विसर्जन करे या न करे। शालग्राम प्रतिमा में आवाहन की औपचारिकता नहीं होती। वे स्वत: प्रतिष्ठापित होते हैं।

शालग्रामशिलायास्तु प्रतिष्ठा नैव विद्यते। शालिग्रामार्चने नैव हि-आवाहन विसर्जने। ।
शालिग्रामे तु भगवानाविर्भूतो यथा हरि:। न तथान्यत्र सूर्यादौ वैकुण्ठे चैव सर्वग:। ।

बालू की प्रतिमा में प्रत्येक बार आवाहन-विसर्जन करना आवश्यक है। मिट्टी एवं चन्दन की चित्रमयी प्रतिमा को स्नान नहीं कराया जाता केवल मार्जन होता है। स्नान, वस्त्र, आभूषणादि का उपयोग केवल पाषाण तथा धातु की प्रतिमा के लिए है।

4। पूजा की पवित्र सामग्रियों द्वारा मेरी पूजा मूर्ति में, चक्र और कमल के आकार की वेदी में, अग्नि में, सूर्य में, जल में, हृदय में अथवा गुरु में चाहे जिसमें जिसमें सुविधा हो आराधना करे।

> **अर्चायां स्थण्डिलेऽग्नौ वा सूर्ये वा-अप्सु हृदि द्विजे।**
> **द्रव्येण भक्तियुक्तोऽर्चेत् स्वगुरुं माम्-अमायया। ।11।27।9। ।**
> **स्थण्डिले तत्त्वविन्यासो वह्णौ-आज्य-प्लुतं हवि:। ।11।27।16। ।**
> **सूर्ये-च-अभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिलादिभि:।**
> **श्रद्धया-उपाहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वारि-अपि। ।11।27।17। ।**
> **भूरि-अपि-अभक्त-उपहृतं न मे तोषाय कल्पते।**
> **गन्धो धूप: सुमनसो दीपोऽन्नाद्यं च किं पुन:। ।11।27।18। ।**

वेदी एवं अग्नि की पूजा में तिल-जौ-घी मिश्रित हवन एवं मात्र घी का हवन करना श्रेयस्कर रहता है। सूर्य की पूजा "एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते।अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाण-अर्घ्य नमोऽस्तु ते।" मंत्र से अर्घ्य दे। सूर्य के केन्द्र में कमलासन पर विराजमान स्वर्णिम आभा से पूर्ण केयूर-मकरकुण्डल-वनमाला एवं रत्नादि हार-मुकुट-शंख चक्रादि धारण किये स्वरूप का ध्यान करे - "**ॐ ध्येय: सदा सवित्रिमण्डल-मध्यवर्ती नारायण: सरसिजासन-सन्निविष्ट:। केयूरवान्मकरकुण्डलवान्किरीटी हारी हिरण्यमय-वपु: धृत-शङ्ख-चक्र:। ।**" जल में मेरी आराधना जल से ही तर्पण करके करे। गन्ध-चन्दन-पुष्पादि से भी जल में पूजा की जाती है परन्तु जल का तर्पण उसी तरह मुख्य है जैसे सूर्य में पूजा अर्घ्य से तथा अग्नि में पूजा हवन से की जाती है। जब कोई भक्त श्रद्धा

से मेरी पूजा केवल जल से करता है तव मैं प्रसन्न रहता हूँ। अगर कोई अभक्त बहुत सी कीमती वस्तुयें भी देता है तव वह मुझे प्रसन्न नहीं करता जबकि श्रद्धा से भक्त द्वारा दिया हुआ जल भी मुझे अत्यन्त प्रिय है। जब वह श्रद्धालु भक्त धूप-दीप-सुगन्धित पुष्प तथा नैवेद्यादि अर्पित करता है तव तो कहना ही क्या है!

5।कुश के आसन पर पूर्व या उत्तरमुख या अचल मूर्ति के सम्मुख प्रतिमा को देखते हुए बैठे। अपने अंगो का अंग-न्यास विधिसम्मत मन्त्र को पढ़ते हुए, उदाहरणस्वरूप - **ॐ केशवाय नमः। ॐ नारायणाय नमः। ॐ माधवाय नमः।ॐ गोविन्दाय नमः। ॐ विष्णवे नमः। ॐ मधुसूदनाय नमः। ॐ त्रिविक्रमाय नमः। ॐ वामनाय नमः। ॐ श्रीधराय नमः। ॐ हृषीकेशाय नमः। ॐ पद्मनाभाय नमः। ॐ दामोदाराय नमः।** मन्त्रों से क्रमशः दोनों गाल, दोनों आँख, दोनों नासिका, दोनों कान, दोनों बाँह, नाभि तथा सिर के ऊपर शिखास्थान को स्पर्श करके पवित्र करे।इसी तरह से अर्चाविग्रह के साथ भी मन्त्रन्यास करे तथा उनके ऊपर पूर्व की चढ़ी पुष्पादि को हटाते हुए हाथ से उन्हें पोछे।

6।पवित्र जल से भरा हुआ पुष्पादि के साथ कलश रखे। उस जल को अपने ऊपर छिड़के। इसके बाद विग्रह के पाद्य, अर्घ्य तथा आचमन के लिए तीन पात्र में विधि के अनुसार जल रखे। पूजा करने वाले अर्चक को अपने भीतर मेरे सूक्ष्म रूप का ध्यान करे। बड़े-बड़े सिद्ध-ऋषि-मुनि द्वारा इस रूप का पवित्र **'ॐ' जो 'अकार' 'उकार' 'मकार' 'विन्दु' आरै 'नाद'** पाँच कलाओं से निर्मित का ध्यान किया जाता है।

7। अर्चक को मेरे आसन का ध्यान करना चाहिए जो आठ दलवाले कमलका हो, और जो अपने कोश के भीतर केसर-तन्तुओं से तेजवान हो।

धर्मादिभिश्च नवभिः कल्पयित्वाऽऽसनं मम।11।27।25।।

पद्मम्-अष्टदलं तत्र कर्णिका-केसर-उज्जवलम्।।11।27।26।।

आसन के चार पाये धर्म-ज्ञान-वैराग्य-ऐश्वर्य के देवों से तथा मेरी नौ शक्तियों विमला-उत्कर्षि णी-ज्ञाना-क्रिया-योगा-प्रह्वी-सत्या-ईशाना-अनुग्रहा से अलंकृत होने की कल्पना करे।

9। <u>आयुध एवं पार्षद पूजा, स्तुति तथा क्षमायाचना।</u>

सदुर्शनं पाञ्चजन्यं गदा-असि-इषु-धनु-हलान्।

मुषलं कौस्तुभं माला श्रीवत्सं चानुपूजयेत्।।11।27।27।।

नन्दं सुनन्दं गरुडं प्रचण्डं चण्डमेव च।

महाबलं बलं चैव कुमुदं कुमुदेक्षणम्।।11।27।28।।

दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वकसेनं गुरून्सुरान्।

स्वे स्वे स्थाने त्वभिमुखान्पूजयेत्प्रोक्षणादिभिः।।11।27।29।।

मेरे आठ आयुध सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्य शंख, गदा, खड्ग, बाण, धनुष, हल एवं मूसल की पूजा आठ दिशाओं में करे। मेरे वक्षःस्थल पर यथास्थान स्थित कौस्तुभ मणि, वनमाला तथा श्रीवत्स चिह्न की पूजा करे। आठों दिशाओं में मेरे आठ पार्षद नन्द, सुनन्द,गरुड़, प्रचण्ड, चण्ड, महाबल, बल, कुमुद तथा कुमुदेक्षण की पूजा करे। गरुड़ को मेरे सामने स्थित, तथा चार कोने में दुर्गा, विनायक, व्यास, विष्वकसेन की पूजा करे। वायीं ओर गुरु की

तथा आठ दिशाओं में दिक्पालों की पूजा करे। अपने सामर्थ्य के अनुसार प्रतिदिन अर्चाविग्रह को चन्दनादि से सुगन्धित जल से वैदिक स्वर्ण-धर्मानुवाक् तथा पुरुष सूक्तादि के पाठ से स्नान-अभिषेक करावे।

वस्त्र-उपवीत-आभरण-पत्र-स्रक्-गन्धलेपनैः।
अलङ्कुर्वीत सप्रेम मद्भक्तो मां यथोचितम्।।11।27।32।।
गुड-पायस-सर्पीषि शष्कुली-पूप-मोदकान्।
संयाव-दधि-सूपांश्च नैवेद्यं सति कल्पयेत्।।11।27।34।।

वस्त्र, जनेउ, गहने, तिलक, माला तथा चन्दनादि के लेप से मुझे प्रेमपूर्वक अलंकृत करे। अपने साधन के अनुकूल गुड़ तथा घी मिश्रित खीर, पुड़ी, पुआ, लड्डू, हलुआ, दही, दाल तथा अन्य व्यञ्जनादि मुझको अर्पित करे। उत्सव के विशेष अवसरों पर पंचामृत से अभिषेक करे। पर्वों के समय नृत्य-गीत का आयोजन करे। तत्पश्चात् कुण्ड में अग्नि स्थापित कर विधिवत हवन करे। अग्नि के भीतर मेरे स्वरूप का ध्यान करे।

तप्त-जाम्बूनद-प्रख्यं शङ्ख-चक्र-गदाम्बुजैः।
लसच्चतुर्भुजं शान्तं पद्म-किञ्जलक-वाससम्।।11।27।38।।
स्फुरत्-किरीट-कटक-कटिसूत्र-वराङ्गदम्।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिम्।।11।27।39।।

मेरे स्वर्ण के समान तपाये हुए चमकते स्वरूप के रोम-रोम से शान्ति टपक रही है। कमल के केशर के समान पीत वस्त्र से शरीर अलंकृत है। चारो लम्बी भुजाओं में शंख-चक्र-गदा-पद्म सुशोभित हो रहे हैं। सिर पर मुकुट, कलाइयों में कंगन, कमर में करधनी, बाहु में बाजूबन्द, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स, गले में तेजोमय कौस्तुभ मणि तथा घुटनों तक वनमाला से मेरा मनोहर दर्शनीय स्वरूप है। अग्नि में इस स्वरूप की पूजा करे। मेरे दिव्यपार्षदों को नमस्कार कर उन्हें उपहार भेंट करे। मूल मन्त्र को जपते हुए मेरे नारायण स्वरूप का स्मरण करता रहे।

दत्त्वाऽऽचमनम्-उच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत्।
मुखवासं सुरभिमत् ताम्बूल-आद्यम्-अथ-अर्हयेत्।।11।27।43।।

अर्चाविग्रह को आचमन कराके मेरा प्रसाद विष्वक्सेन को निवेदन करे। सुगन्धित मुखवास तथा ताम्बूल समर्पित करके मुझे पुष्पाञ्जलि दे। मेरी लीला कथा सबको सुनाये, गायन करे तथा नृत्यादि से इसका अभिनय करे। इसके बाद मुझे परम्परागत स्तुति तथा प्रार्थना सुनाये। मेरे श्रीचरणों पर प्रणाम करते हुए दोनों बाहुओं को मेरे सामने फैलाकर शरणागत के साथ क्षमा याचना करे। **"प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्यु-ग्रह-अर्णवात्।। 11।27।46।।"** "भवसागर से अपने शरणार्थी की रक्षा करें, मृत्युरूपी मगर मेरी पीछा कर रही है।"

एवं क्रियायोगपथैः पुमान् वैदिक-तान्त्रिकैः।
अर्चन्-उभयतः सिद्धिं मत्तो विन्दति-अभीप्सिताम्।।11।27।49।।

वैदिक या तान्त्रिक (पाञ्चरात्र) आगम के अनुसार जो मेरी पूजा करता है वह इस लोक में तथा परलोक में मुझसे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करता है। मेरा भक्त मेरा मन्दिर बनवा कर पुष्पादि के बगीचे लगाये। विशेष उत्सवों पर उचित व्यवस्था करे। मेरी लगातार पूजा चलती रहे इस उद्देश्य से जो मुझे खेत तथा गाँव आदि समर्पित करता है

वह मेरे समान ऐश्वर्य वाला होता है। मेरी मूर्ति की प्रतिष्ठा करने से एकछत्र राज, मन्दिर निर्माण से तीनों लोकों का राज्य, मेरी पूजा की उचित व्यवस्था करने से ब्रह्मलोक तथा तीनों करने वाले मेरे समान हो जाते हैं।

मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दिति।

भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेत माम्।।11।27।53।।

जो निष्काम भाव से कर्मफल पर विचार किये बिना मेरी पूजा करता है वह मेरी भक्ति के साथ मुझे पाता है। जो अपनी दी हुई या दूसरों की दी हुई ब्राह्मणों की आजीविका का हरण करता है वह करोड़ो वर्षो तक विष्ठा का कीड़ा बनता है। चोरी करने वाले तथा उसकी सहायता करने वाले सभी पापफल के भागी होते हैं। अतः भगवान् की तथा उनके प्रतिनिधियों की पूजा सामग्री कभी भी नहीं चुराये।

11।16। भागवत धर्म का निरूपण एवं उद्धव जी का बद्रिकाश्रम गमन।

उद्धव जी ने प्राणायामादि तथा मन की चंचलता के सन्दर्भ में भगवान्से जीव के कल्याण का सुगम उपाय पूछा।

अथात आनन्द-दुघं पदाम्बुजं हंसाः श्रयेरन् अरविन्दलोचन।

सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभिः त्वत्-मायया-अमी विहता न मानिनः।।11।29।3।।

हे कमलनयन ! परमहंस लोग आनन्ददायी आपके चरणकमल का आश्रय लेते हैं। जो योग या कर्मकाण्ड के माया में रहते हैं वे मुक्ति नहीं प्राप्त करते।

किं चित्रम्-अच्युत तव-एतत्-अशेष-बन्धो दासेषु-अनन्य-शरणेषु यदात्मसात्त्वम्।

योऽरोचयत् सह मृगैः स्वयम्-ईश्वराणां श्रीमत्किरीट-तट-पीडित-पादपीठः।।11।29।4।।

हे अच्युत ! ब्रहादि देवगण अपने मुकुट आपके श्रीचरण पर रखते हैं। आप सबके हितैषी हैं एवं आपके लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि आप असुरराज बलि जैसे भक्त के वश में हो गये। रामावतार में प्रेमवश आपने बानरों से मित्रता निभाई। उद्धव जी की बात सुन मुस्कुराते हुए भगवान्ने कहा। मैं अब तुम्हें मृत्यु से अनायास पार करने वाला भागवत धर्म बताता हूँ। मेरा भक्त अपना सबकाम मेरे लिए करते हुए मुझे स्मरण करने का अभ्यास करे। कुछ ही समय में उसका चित्त, मन तथा आत्मा मुझमें समर्पित हो जाता है।

देशान् पुण्यान् आश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान्।

देवासुर-मनुष्येषु मद्भक्त-आचरितानि च।।11।29।10।।

मेरे भक्त साधुजन जहाँ रहते हैं उनकी संगति में रहे। देव, असुर तथा मनुष्य में जो भी मेरे भक्त हैं उनके आचरण का अनुसरण करे। पर्व के अवसर पर खुशी में मेरा गुणगान करते हुए नाचे। समस्त प्राणियों से स्नेह रखे। इससे उसके अहंकार का नाश हो जाता है। संक्षेप तथा विस्तार से मैंने इस भागवत धर्म को बताया है।इसे देवगण नहीं समझ पाते। भगवान् ने उद्धव जी को सावधान किया कि मेरे इस उपदेश को पाषण्डी, नास्तिक, मेरे प्रति श्रद्धाहीनों तथा अभक्तों मत सुनाना।

मर्त्यो यदा त्यक्त-समस्त-कर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।

तदा-अमृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयाऽऽत्मभूयाय च कल्पते वै।।11।29।34।।

जो व्यक्ति अपने समस्त सकाम कर्मों का त्याग करके तीव्र उत्सुकता से मेरी सेवा में लगकर आत्मसमर्पण कर देता है वह अमृतमय हमारे परमपद को प्राप्त कर लेता है। उद्धव जी ने भगवान्से कल्याणकारी आदेश की माँग की। ऐसा सुन भगवान्ने उद्धव जी को कहा -

गच्छ-उद्धव मयाऽऽदिष्टो बदरी-आख्यं ममाश्रमम्।

तत्र मत्पाद-तीर्थ-उदे स्नान-उपस्पर्शनैः शुचिः। ।11।29।41। ।

ईक्षया-अलकनन्दाया विधूत-अशेष-कल्मषः।

वसानो वल्कलानि-अङ्ग वन्यभुक् सुख-निःस्पृहः। ।11।29।42। ।

हे उद्धव ! मेरे बदरी आश्रम में जाकर वहाँ अलकनन्दा गंगा जी के जल में स्नान तथा उसका पान करके पवित्र बनो। अलकनन्दा गंगा के दर्शन से ही पाप-ताप दूर हो जाते हैं। वहाँ एकान्त में मेरी वार्ता का स्मरण, अनुशीलन तथा मुझमें चित्त लीन करके भागवत धर्म का अनुसरण करना। शुकदेव जी कहते हैं कि उद्धव जी ने भगवान्की परिक्रमा की और उनके चरणारविन्द पर अपना माथा रख उसे अपने झर-झराते आँसू से नहला दिया। उद्धव जी ने भगवान्से वियोग का अनुभव किया और उनका हृदय विषाद से भर गया।

सुदुस्त्यज-स्नेह-वियोग-कातरो न शक्नुवन्-तं परिहातुम्-आतुरः।

कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृ-पादुके बिभ्रन् नमस्कृत्य ययौ पुनः पुनः। ।11।29।46। ।

स्नेह एवं वियोग से बन्धे उद्धव जी के लिए भगवान्को छोड़कर जाना अत्यन्त कष्टकर होने लगा। अन्त में भगवान्के खड़ाऊँ को अपने सिर पर रखकर भगवान्के चरणों में बार-बार प्रणाम कर बदरिकाश्रम के लिए प्रस्थान कर गये। इस सन्दर्भ में भागवत स्कन्ध तीन के अध्याय चार के प्रकरण से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि भगवान् के आदेश के अनुसार उनकी पादुका सिर पर रख उद्धव जी ने बदरिकाश्रम के लिए प्रस्थान किया परन्तु उन्हें भगवान्के प्रभास क्षेत्र में आने की सूचना मिलते ही वे भगवान् को खोजते सरस्वती के किनारे उन्हें एकान्त में देख उनके पास गये। उस समय मैत्रेय जी का भी वहाँ पदार्पण हुआ। भगवान्ने दोनों को भागवत सुनाई जो पूर्वकाल में उन्होंने ब्रह्मा को सुनायी थी। भागवत सुनने के बाद ही उद्धव जी वहाँ से प्रस्थान किये। बदरिकाश्रम में तपस्यारत उद्धव जी ने भगवान्के परमधाम को प्राप्त किया। आज वर्तमान में बदरिकाश्रम में भगवान्के गर्भगृह में नारद जी के साथ उद्धव जी भी विराजते हैं। शीतकाल में जब भगवान्के मन्दिर का पट छः महीने के लिए बन्द होता है तब उद्धव जी का उत्सव विग्रह पाण्डुकेश्वर लाया जाता है। बदरिकाश्रम में जब भी भगवान् का उत्सव मनाया जाता है और शोभायात्रा निकलती है तब नर-नारायण भगवान्के प्रतिनिध के रूप में उद्धव जी की सवारी बाहर आती है और वे भक्तों को दर्शन देते हैं।

भवभयम्-अपहन्तुं ज्ञानविज्ञान-सारं निगमकृत्-उपजह्रे भृङ्गवद् वेदसारम्।

अमृतम्-उदधितः च अपाययद्- भृत्यवर्गान् पुरुषम्- ऋषभम्-आद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि। । 11।29।49। ।

भगवान् स्वयं वेदो को प्रकाशित करने वाले हैं। भक्तों को भवसागर के भय से मुक्त करने के लिए उन्होंने ज्ञान-विज्ञान का अमृत जैसा सार उसी तरह निकाला जैसे भौंरा मधु संग्रह करता है। इतना कहकर शुकदेव जी ने भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में नमस्कार किया।

11 | 17 | यदुवंश का संहार एवं भगवान्श्रीकृष्ण का स्वधाम गमन |

उद्धव जी के बदरिकाश्रम प्रस्थान के बाद की कथा जानने के लिए राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से जिज्ञासा की। शुकदेव जी ने कहा कि द्वारका में अपशकुन होते देख भगवान् सबको साथ लेकर पश्चिम दिशा में बहने वाली सरस्वती नदी के किनारे के प्रभास क्षेत्र पहुँचे। वहाँ सबों के साथ मंगल-कृत्य करके भगवान्ने शान्ति पाठ किया। दैव संयोग से यदुवंशियों ने मैरेय मधु अर्थात् मदिरा का पान किया। मदिरा के नशा में अहंकार वश सब आपस में लड़ने लगे। पहले वे लोग अपने आयुधों से आपस में लड़े परन्तु शीघ्र ही उनके धनुष तथा गदा आदि नष्ट हो गये। चूरे हुए मूसल से उत्पन्न समुद्र किनारे का ऐरका घास उखाड़ते ही तलवार की तरह मूठ बाला हो जाता था। उसी को उखाड़ - उखाड़ कर तलवार जैसा प्रयोग करके सब एक दूसरे को काटने लगे। भगवान् तथा बलराम जी ने उनलोगों को लड़ने से मना किया परन्तु वे सब बलराम जी तथा भगवान्को भी शत्रु समझने लगे। उनलोगों ने बलराम जी पर जब आक्रमण कर दिया तब भगवान्ने भी उसी ऐरका घास को उखाड़ कर उनलोगों का संहार किया। उनलोगों के नाश से पृथ्वी का भार दूर होते जान भगवान् संतुष्ट हुए।

तदुपरान्त बलराम जी समुद्र के किनारे बैठ भगवान्का ध्यान करते हुए अपने को अपने में लीन कर इस संसार से चल बसे। बलराम जी का महाप्रयाण देख भगवान् पास के एक पीपल वृक्ष के नीचे भूमि पर बैठ गये।

बिभ्रत्-चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णु प्रभया स्वया।
दिशो वितिमिराः कुर्वन् विधूम इव पावकः।।11|30|28।।

धूम रहित अग्नि की तरह भगवान्अपने चतुर्भुज रूप में चमकने लगे।

श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं तप्तहाटक-वर्चसम्।
कौशेयाम्बर-युग्मेन परिवीतं सुमङ्लम्।।11|30|29।।
सुन्दर-स्मित-वक्त्राब्जं नीलकुन्तल-मण्डितम्।
पुण्डरीक-अभिराम-अक्षं स्फुरन्मकर-कुण्डलम्।।11|30|30।।
कटिसूत्र-ब्रह्मसूत्र-किरीट-कटक-अङ्गदैः।
हार-नूपुर-मुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितम्।।11|30|31।।
वनमाला-परीत-अङ्गं मूर्ति-मद्भिः निजायुधैः।
कृत्वा-उरौ दक्षिणे पादम्-आसीनं पङ्कजारुणम्।।11|30|32।।

श्रीवत्स के चिह्नसे अंकित भगवान्के सोने के समान दमकते मेघ वर्ण के शरीर पर रेशम की पीली धोती एवं दुपट्टा शोभ रहा था। मुसकराते मुखमण्डल के कपोल पर नीले केश के गुच्छे लटक रहे थे। राजीवनयन मकराकृत कुण्डल पहने थे। कमर में करधनी, कंधे पर जनेउ, माथे पर मुकुट, कलाई पर कंगन, बाहों पर बाजूबन्द, वक्षस्थल पर हार, चरणों में नूपुर, उँगिलयों में अँगूठी तथा गले में कौस्तुभ मणि शोभायमान हो रही थी। घुटने तक वनमाला लटक रही थी। शंख-चक्र-गदा आदि दिव्य आयुध साक्षात् मूर्तिमान हो उनकी सेवा कर रहे थे। दाहिनी जांघ पर भगवान् अपने बायें पैर रख बैठे थे जिसका तलवा लाल कमल की तरह चमक रहा था। जरा नामके बहेलिये ने साम्ब को दिये गये शाप वश जो मूसल मिला था उसके बचे टुकड़े को एक मछली के पेट से प्राप्त कर अपने बाण में लगा रखा था। वह उधर ही घूम रहा था। भगवान्के लाल तलवे को हिरण समझ उसने बाण चला बींध दिया। पास

आकर जरा ने भगवान्‌को देख डर से काँपने लगा तथा उनके चरणों पर माथा रख जमीन पर लेट कर भगवान्‌से अपने अपराध के लिए क्षमा माँगी। भगवान्‌ने उसे निर्भय करते हुए कहा कि तू ने मेरा ही काम किया है और उसे पुण्यवानों के स्वर्गलोक में भेज दिया।

दारुक: कृष्ण-पदवीम्-अन्विच्छन्-अधिगम्य ताम्।

वायुं तुलसिका-आमोदम्-आघ्राय-अभिमुखं ययौ।।11।30।41।।

भगवान् द्वारा धारण किये हुए तुलसी के सुगन्ध के सहारे भगवान्‌का रथचालक दारुक उनके पास आ गये।

तं तत्र तिग्म-द्युभि: आयुधै: वृतं हि अश्वत्थमूले कृतकेतनं पतिम्।11।30।42।।

पीपल वृक्ष की जड़ में अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण को आभापूर्ण अपने दिव्य-आयुधों से सुसेवित देख डबडबायी आँखों से दारुक रथ से कूद भगवान्‌के चरणों में गिर पड़े।

इति बुवति सूते वै रथो गरुडलाञ्छन:।

खम्-उत्पपात राजेन्द्र साश्वध्वज उदीक्षत:।।11।30।44।।

देखते-देखते भगवान्‌का गरुडध्वज वाला रथ घोड़े के साथ आकाश मार्ग से वैकुण्ठलोक चला गया। भगवान्‌के सभी दिव्य आयुध रथ के पीछे-पीछे चले गये। भगवान्‌ने दारुक से कहा कि मेरे छोड़ते ही द्वारका अब समुद्र में डूब जायेगा। तुम सभी लोग द्वारका छोड़ दो। अर्जुन के संरक्षण में अपने धन-सम्पत्ति ले मथुरा चले जाओ। दारुक को भगवान् ने परम शान्ति का आशीर्वाद दिया। दारुक भगवान्‌की परिक्रमा कर चले गये। ब्रह्मा, शिव, अन्य देवगण, मुनिगण तथा सिद्धचारणादि प्रभास में भगवान्‌के स्वधाम गमन का दर्शन करने आये। वे लोग भगवान् शौरि (कृष्ण) के दिव्य जन्म तथा कर्मो का यशोगान कर रहे थे। "**गायन्तश्च गृणन्तश्च शौरे: कर्माणि जन्म च।।11।31।3।।**" सबके सामने भगवान्‌ने कमलनेत्र बन्द कर ध्यानस्थ हो गये।

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणा-ध्यान-मङ्गलम्।

योगधारणया-आग्नेय्या-अदग्ध्वा धामाविशत् स्वकम्।।11।31।6।।

विना योगाग्नि का प्रयोग किये, सर्वआकर्षक समस्त ध्यान-धारणा के लक्ष्य, भगवान् सशरीर अपने स्वधाम चले गये। भगवान्‌के धरती छोड़ते ही सत्य-धर्म-धृति-कीर्ति-श्री आदि ने भी उनका अनुगमन किया। "**सत्यं धर्मो धृति: भूमे: कीर्ति: श्री: च अनु तं ययु:।।11।31।7।।**"

स्वर्ग में दुन्दुभियाँ बज उठी तथा आकाश से पुष्प-वृष्टि होने लगी। जैसे आकश में बिजली के मार्ग का पता नहीं चलता है वैसे ही स्वधाम गमन के समय भगवान्‌की गतिविधि को देवतागण कुछ भी न समझ सके।

भगवान्‌ने इस प्रकरण से यह आदर्श उपस्थित किया कि वे सर्वनियन्ता होकर भी अपने शरीर को धरती पर न रखे। इसी तरह सभी को चाहिए कि अपने शरीर को बनाये रखने की चेष्टा न कर भगवदनिष्ठ हो जाये।

दारुक ने द्वारका पहुँच कर वसुदेव जी तथा राजा उग्रसेन को प्रभास क्षेत्र की पूरी जानकारी दी।वे सब द्वारका से आकर अपने परिवार को खोजने लगे। बलराम जी तथा भगवान् श्रीकृष्ण के न मिलने पर देवकी जी, रोहिणी जी तथा वसुदेव जी अचेत होकर गिरपड़े तथा अपना शरीर त्याग दिया।

अर्जुन: प्रेयस: सख्यु: कृष्णस्य विरहातुर:।

आत्मानं सान्त्वयामास कृष्णगीतै: सदुक्तिभि:।।11।31।21।।

अपने प्रिय सखा के परमधाम गमन से अर्जुन अत्यन्त विह्वल हो उठे परन्तु गीता के उपदेश को स्मरण कर शान्त हुए। अर्जुन ने सबका पिण्डदान किया। भगवान् के महल को छोड़कर बाकी द्वारका को समुद्र ने डूबो दिया।

नित्यं सन्निहित: तत्र भगवान् मधुसूदन:।

स्मृत्या-अशेष-अशुभहरं सर्वमङ्ल-मङ्गलम्।।11।31।24।।

आज भी भगवान् द्वारका में नित्य रहते हैं तथा उनके स्मरण से ही सर्वदा मंगल ही मंगल होता है। अर्जुन बचे हुए यदुओं को साथ लेकर इन्द्रप्रस्थ गये तथा अनिरुद्ध के पुत्र वज्र का मथुरा में राज्याभिषेक किया।

य एतद् देवदेवस्य विष्णो: कर्माणि जन्म च।

कीर्तयेत्-श्रद्धया मर्त्य: सर्वपापै: प्रमुच्यते।।11।31।27।।

ईश्वरों के ईश्वर भगवान् विष्णु की विविध लीलाओं की महिमा गाने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

इत्थं हरे: भगवतो रुचिर-अवतार वीर्याणि बालचरितानि च शन्तमानि।

अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन् मनुष्यो भक्तिं परां परमहंस-गतौ लभेत।।11।31।28।।

श्रीमद्भागवत तथा अन्यपुराणों में वर्णित सौंदर्य-माधुर्य निधान परमहंस मुनियों के चरमलक्ष्य भगवान् श्रीकृष्ण की बाललीला तथा उनके रुचिर पराक्रम लीला का जो संकीर्तन करता है वह उनका परमभक्त हो जाता है।

।। स्कन्ध 11 पूरा हुआ।।

श्रीमते रामानुजाय नमः ।
श्रीमद्भागवत स्कन्ध 12
वन्दउँ गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

शुकदेव जी की कथा स्कन्ध 2 से प्रारम्भ होकर स्कन्ध 12 के अध्याय 6 तक चली है। स्कन्ध 1 की कथा रोमहर्षण सूत के पुत्र उग्रश्रवा सूत की है जो भागवत की भूमिका कही जातीी है। स्कन्ध 12।6 के बाद सूत जी द्वारा भागवत का उपसंहार है। इस स्कन्ध में कुल 13 अध्याय है। जिसमें 1।पहले एवं दूसरे अध्याय में कलि के राजा तथा युग धर्म तथा कल्कि अवतार 2। अध्याय 3 में हरिनाम संकीर्तन की महिमा तथा अध्याय 4 में प्रलय के भेद एवं प्रभाव, 3।अध्याय 5 एवं 6 में शुकदेव जी कथा का उपसंहार तथा राजा परीक्षित का महाप्रयाण, 4। अध्याय 7 वेद पुराण परिचय, 5।अध्याय 8, 9 एवं 10 में मार्कण्डेय जी का चरित तथा भगवान् बालमुकुन्द का दर्शन, 6।अध्याय 11 में भगवान्का विराट स्वरूप, 7। अध्याय 12 एवं 13 में प्रत्येक स्कन्ध के लिए भागवत कथा का सार तथा भागवत की महिमा का वर्णन है।

12।1। कल्कि अवतार

भगवान् श्रीकृष्ण के स्वधाम गमन के बाद धरती पर धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, आयु एवं शारीरिक बल की हानि होने लगेगी। कलियुग में धन पर ही मनुष्य का जन्म, गुण तथा आचरण की मान्यता होगी। बाहुबल ही धर्म , न्याय और नीति का निर्णायक होगा।

चराचर-गुरोः विष्णोः ईश्वरस्य-अखिलात्मनः।
धर्मत्राणाय साधूनां जन्म कर्म-अपनुत्तये।।12।2।17।।
शम्भलग्राम-मुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः।
भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति।।12।2।18।।
अश्वम्-आशु-गम्-आरुह्य देवदत्तं जगत्पतिः।
असिना-असाधु-दमनम्-अष्ट-ऐश्वर्य-गुणान्वितः।।12।2।19।।
अथ तेषां भविष्यन्ति मनांसि विशदानि वै।
वासुदेव-अङ्गराग-अतिपुण्य-गन्ध-अनिल-स्पृशाम्।।12।2।21।।

सर्वव्याप्त भगवान् विष्णु चराचर जगत के गुरु हैं। साधु के धर्म की रक्षा तथा कर्म बन्धन को काटकर जन्म-मृत्यु के चक्कर से त्राण देने के लिए कलियुग के अन्त में अवतार लेते हैं। शम्भल ग्राम के विष्णुयश धर्मप्राण ब्राह्मण के घर भगवान् कल्कि नाम से अवतार लेंगे। देवदत्त नाम के तेज घोड़े से चलकर वे दुष्टों का संहार करेंगे। दुष्टों के अन्त के बाद सज्जन जन भगवान् कल्कि के शरीर के अंगराग की सुगन्धित वायु से शुद्ध मनवाले हो जायेंगे। इसी समय सत्ययुग का शुभारम्भ होगा जब चन्द्रमा, सूर्य एवं बृहस्पति एक ही साथ पुष्य नक्षत्र में प्रवेश करेंगे। शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहते हैं कि सप्तर्षिगण एक नक्षत्र में एक सौ वर्ष रहते हैं और इस समय वे मघा नक्षत्र में हैं जो कलयुग के प्रारम्भ का समय है।

यावत् स पादपद्माभ्यां स्पृशन्-आस्ते रमापतिः।

तावत्-कलिः वै पृथिवीं पराक्रान्तुं न च-अशकत्।।12।2।30।।

जब तक भगवान् रमापति श्रीकृष्ण का धरती पर चरणस्पर्श होता रहा तब तक कलयुग प्रभावी नहीं हो सका। भगवान्श्रीकृष्ण का स्वधाम गमन हुआ और कलयुग प्रभावी हो गया।

12।2 कलयुग का आधार हरिनाम संकीर्तन

कलयुग के राजा के अहंकार एवं आडम्बर देख धरती देवी मन ही मन हँसती है कि सभी काल के अधीन हैं परन्तु इन्द्रियों तथा मन के वशीभूत जीवन की सच्चाई को नहीं जान पाते। पृथु आदि राजागण काल कवलित हुए। किसी का धरती पर स्थायी नियन्त्रण नहीं चला। शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को बताया कि अब तक की सारी कथायें तुम्हारे हृदय में भक्तियुक्त ज्ञान एवं वैराग्य उत्पन्न करने के उद्देश्य से सुनाई गयी।

यः तु उत्तम-श्लोक-गुणानुवादः संगीयते-अभीक्ष्णम्-अमङ्गलघ्नः।

तमेव नित्यं श्रुणुयात्-अभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिम्-अभीप्समानः।।12।3।15।।

जो व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्द में प्रीति चाहता है उसे सभी अमंगल का नाश करने वाले भगवान्की कथा का निरन्तर श्रवण करना चाहिये। बड़े-बड़े ऋषिगण इसी का गान करते रहते हैं। राजा परीक्षित ने कलियुग के कल्मष को दूर करने के उपाय पूछा। शुकदेव जी ने कहा कि सत्ययुग में सत्य, दया, तपस्या तथा दान धर्म के चार पैर थे। **"सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोः नृपः।।12।3।18।।"** स्कन्ध 1 में दान के स्थान पर शौच अर्थात् स्वच्छता को धर्म का एक पैर कहा है - **"तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः कृते कृताः।।1।17।24।।"** हरिकथाकार कहते हैं कि अन्तः स्वच्छता से युक्त व्यक्ति ही दान करता है। शुकदेव जी कहते हैं कि धर्म की तरह अधर्म के भी चार पैर - झूठ, हिंसा, असन्तोष एवं कलह होते हैं जो त्रेता में क्रमशः धर्म के चार चरणों का चौथाई भाग क्षीण करते हैं। अर्थात् झूठ सत्य का, हिंसा दया का, असन्तोष तपस्या का तथा कलह दान की हानि करते हैं। **"अधर्म पादैः अनृत-हिंसा-असन्तोष-विग्रहैः।।12।3।20।।"** द्वापर में धर्म के चार पैर क्षीण होकर प्रत्येक के आधे-आधे ही रह जाते हैं। कलयुग में धर्म के सभी पैरों में से प्रत्येक के तीन चौथाई भाग की हानि हो जाती है। कलयुग के अन्त में बचा-खुचा चौथाई अंश भी नष्ट हो जाता है।

पुंसां कलिकृतान् दोषान् द्रव्य-देश-आत्मसम्भवान्।

सर्वान् हरति चित्तस्थो भगवान् पुरुषोत्तमः।।12।3।45।।

श्रुतः सङ्कीर्तितो ध्यातः पूजितः च आदृतोऽपि वा।

नृणां धुनोति भगवान् हृत्स्थो जन्म-अयुत-अशुभम्।।12।3।46।।

यथा हेम्नि स्थितो वह्निः दुर्वर्णं हन्ति धातुजम्।

एवम्-आत्मगतो विष्णुः योगिनाम्-अशुभ-आशयम्।।12।3।47।।

कलि की वस्तुयें तथा स्थानों में अनेकों दोष हैं परन्तु भगवान् पुरुषोत्तम के हृदय में निरन्तर विराजने से सब दोष नष्ट हो जाते हैं।आदर से भगवान्की लीला का श्रवण, गान, उनकी पूजा तथा ध्यान करने से वे हृदयस्थ हो जाते हैं तथा हजारों जन्मों के पाप वैसे ही नष्ट कर देते हैं जैसे अग्नि सोने के मल को जला देती है।

विद्या-तपः प्राणनिरोध-मैत्री-तीर्थाभिषेक-व्रत-दान-जप्यैः ।

नात्यन्त-शुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवति-अनन्ते। ।12।3।48। ।

अन्त:करण की जैसी शुद्धि भगवान्‌के हृदयस्थ होने पर होती है वैसी शुद्धि विद्या, तपस्या, प्राणायाम, समस्त प्राणियों के साथ मित्रता, तीर्थ-स्नान, व्रत, दान तथा जप से भी नहीं होती।

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हृदिस्थं कुरु केशवम्।
म्रियमाणो ह्यवहित: ततो यासि परां गतिम्। ।12।3।49। ।
म्रियमाणै: अभिध्येयो भगवान् परमेश्वर:।
आत्मभावं नयति-अङ्ग सर्वात्मा सर्वसंश्रय:। ।12।3।50। ।

राजा परीक्षित की मृत्यु का समय निकट देख शुकदेव जी ने उनसे कहा कि परमगति पाने के लिए अपने हृदय में भगवान् केशव को बैठा लो। तब सबके आश्रय परमनियन्ता परमात्मा अपना स्वरूप का दर्शन करा देते हैं।

कले: दोषनिधे राजन् अस्ति हि-एको महान्गुण:।
कीतनात्-एव कृष्णस्य मुक्तसङ्ग: परं व्रजेत्। ।12।3।51। ।
कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखै:।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तत्-हरि-कीर्तनात्। ।12।3।52। ।

सबदोषों से युक्त कलि की एक विशेषता है कि भगवान् श्रीकृष्ण के नाम-संकीर्तन से भवबन्धन मिट जाता है। सत्ययुग में श्रीहरि के ध्यान से, त्रेता में यज्ञ करने से, द्वापर में सविधि पूजा से जो फल मिलता है वह कलियुग में उनके नाम संकीर्तन से ही प्राप्त हो जाता है।

12।3। चार तरह के प्रलय

नित्यो नैमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिको लय:।
आत्यन्तिकश्च कथित: कालस्य गति: ईदृशी। ।12।4।38। ।

1।नैमित्तिक प्रलय - एक हजार चतुर्युग को एक कल्प कहते हैं। ब्रह्मा का एक दिन एक कल्प का होता है। उनकी रात भी एक कल्प की होती है। प्रत्येक कल्प के अन्त में भगवान् समस्त सृष्टि को समेट कर उदरस्थ कर लेते हैं तथा योगनिद्रा में शयन करते हैं। कल्पान्त के प्रलय को नैमित्तिक प्रलय कहते हैं।रात्रि कल्प में की अवधि में ब्रह्मा भगवान् के उदर में शयन करते हैं।इसके बाद नये दिन के कल्प में नई सृष्टि का प्रारम्भ होता है और ब्रह्मा पद्मयोनि कहे जाते हैं क्योंकि भगवान् की नाभि से प्रस्फुटित पर भगवान् उनको प्रकट करते हैं। पद्मयोनि ब्रह्मा के कल्प को पाद्म कल्प कहतें हैं।

2। प्राकृतिक प्रलय - ब्रह्मा की सौवर्ष की आयु में दो परार्द्ध होते हैं। ब्रह्मा की आयु के सौवर्ष बीतने पर जो प्रलय होता है उसे प्राकृतिक प्रलय कहते हैं।इसके बाद नये ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है जो हिरण्यगर्भ से उत्पन्न होते हैं। नये ब्रह्मा के पहले कल्प को ब्राह्म कल्प कहते हैं। इसके बाद सब कल्प पाद्मकल्प कहे जाते हैं।

3।आत्यन्तिक प्रलय - अहंकारादि के नाश होनेपर भगवत्स्वरूप का ज्ञान होने को आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं।

4।नित्य प्रलय - समयानुसार जीव के शरीर एवं स्वभाव में क्षण-क्षण चलने वाले परिवर्तन ही नित्य प्रलय है।

संसार-सिन्धुम्-अति-दुस्तरम्-उत्तितीर्षो: न अन्य: प्लवो भगवत: पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथा-रस-निषेवणम्-अन्तरेण पुंसो भवेद् विविध-दु:ख-दव-आर्दितस्य। ।12।4।40। ।

अनेकों संताप के दावानल से दग्ध एवं अत्यन्त दुस्तर भवसिन्धु को पार करनेवाले को भगवान्‌की लीला-कथा के रसायन के सेवन के समान कोई नाव नहीं है।

12।4। नर-नारायण ऋषि का उपदेश

पुराणसंहिताम् एताम् ऋषिः नारायणोऽव्ययः।
नारदाय पुरा प्राह कृष्णद्वैपायनाय सः।।12।4।41।।
स वै मह्यं महाराज भगवान् बादरायणः।
इमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेदसम्मिताम्।।12।4।42।।

शुकदेव जी राजा परीक्षित को कहते हैं कि जो सब हमने तुम्हें सुनाया है वह श्रीमद्भागवत पुराण है। इसे सनातन नर-नारायण ऋषि ने सबसे पहले नारद जी को सुनाया था। इसे ही नारद जी ने बदरीवन में सदैव बसने वाले हमारे पिता श्रीकृष्णद्वैपायन को सुनाया। हमारे पिता ने वेदतुल्य इस संहिता को तब मुझे सुनाया।

एतां वक्ष्यति-असौ सूत ऋषिभ्यो नैमिषालये।
दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ सम्पृष्टः शौनकादिभिः।।12।4।43।।

हे राजन्! हमलोगों के समक्ष सूत जी भी इस कथा को सुन रहे हैं। भविष्य में नैमिषारण्य में आयोजित होने वाले कथा-सत्र में शौनकादि ऋषियों के प्रश्न पर सूत जी इसी कथा को उनलोगों को सुनायेंगे।

12।5। शुकदेव जी का अन्तिम उपदेश

अत्रानुवर्ण्यते-अभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान् हरिः।
यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः क्रोधसमुद्भवः।।12।5।1।।

शुकदेव जी कहते हैं कि श्रीमद्भागवत में सर्वत्र श्रीहरि की कथा का विस्तार से वर्णन हुआ है। भगवान् के प्रसन्न होने पर ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है तथा ब्रह्मा के क्रोध से रुद्र का जन्म होता है।

त्वं तु राजन् मरिष्येति पशुबुद्धिम्-इमां जहि।
न जातः प्रागभूतो-अद्य देहवत्त्वं न नङ्क्ष्यसि।।12।5।2।।
न भविष्यसि भूत्वा त्वं पुत्रपौत्रादि-रूपवान्।
बीज-अङ्कुरवद् देह-आदेः व्यतिरिक्तो यथा-अनलः।।12।5।3।।

हे राजन्! अज्ञान से मृत्यु का भय होता है।देह का नाश है परन्तु आत्मा का नहीं।बीजांकुर से नया वीज बनता है परन्तु अब तुम अपने पुत्र तथा पौत्र के रूप में जन्म नहीं लोगे।अग्नि की तरह तुम ईंधन से भिन्न हो।

बुद्ध्या-अनुमान-गर्भिण्या वासुदेव-अनुचिन्तया।।12।5।9।।

भगवान् वासुदेव का निरन्तर ध्यान करो और साथ ही यह विचारो कि वे इस भौतिक शरीर में कैसे स्थित हैं।

दशन्तं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः।12।5।12।।
एतत्ते कथितं तात यथाऽऽत्मा पृष्टवान् नृप।
हरेः विश्वात्मनः चेष्टां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।12।5।13।।

तक्षक विषैली जीभ लपलपाता तुम्हारे पैरों में डँसेगा परन्तु कोई चिन्ता नहीं है क्योंकि तुम्हारी अन्तरात्मा सदा सुरक्षित है। हे राजा ! जैसा आपने प्रारम्भ में पूछा वैसा ही हमने विश्वात्मा भगवान्‌की लीला-कथा आपको सुना दी। अब आगे आप क्या सुनना चाहते हैं ?

12।6। राजा परीक्षित की परमगति

अब यहाँ से सूत जी कथा का उपसंहार करते हैं। सूत जी कहते हैं कि शुकदेव जी की वाणी सुन राजा ने हाथ जोड़कर उन्हें शिर नवाया और कहा कि -

सिद्धोऽस्मि-अनुगृहीतोऽस्मि भवता करुणात्मना।
श्रावितो यच्च मे साक्षात्-अनादि-निधनो हरिः।।12।6।2।।
पुराणसंहिताम्-एताम्-अश्रौष्म भवतो वयम्।
यस्यां खलु-उत्तमश्लोको भगवान्-अनुवर्ण्यते।।12।6।4।।

करुणासिक्त अनुग्रह से आपने जन्म-मृत्यु से परे श्रीहरि की लीला-कथा सुनाकर मुझे कृतकृत्य कर दिया।आपसे हमलोगों ने श्रीमद्भागवत पुराण सुना जिसमें सर्वत्र उत्तम श्लोकों से भगवान्‌के लीला चरित का वर्णन है।

अनुजानीहि मां ब्रह्मन् वाचं यच्छामि अधोक्षजे।
मुक्त-कामाशयं चेतः प्रवेश्य विसृजामि-असून्।।12।6।6।।

अब आप आज्ञा दें जिससे मैं अपनी वाणी को मौन करके इन्द्रियातीत भगवान्‌में अपने कामना रहित चित्त को लगाकर अपना प्राण छोड़ सकूँ।आपने मुझे भगवान्‌के परमकल्याणमय चरणारविन्द का साक्षात्कार करा दिया है - "**भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम्।।12।6।7।।**"

इति-उक्तः तम्-अनुज्ञाप्य भगवान् बादरायणिः।
जगाम भिक्षुभिः साकं नरदेवेन पूजितः।।12।6।8।।

राजा परीक्षित का वचन सुन शुकदेव जी ने उन्हें अनुमति दे दी। अन्य मुनियों तथा राजा ने स्वयं शुकदेव जी की पूजा की। तदुपरान्त शुकदेव जी वहाँ से प्रस्थान कर गये। इसके बाद श्रृंगी ऋषि के शापवश तक्षक राजा के पास ब्राह्मण के वेष में आया।रास्ते में उसे कश्यप नामक एक ब्राह्मण मिला जो सर्प के विषोपचार के विशेषज्ञ था। तक्षक ने उन्हें कीमती उपहारों से पुरस्कृत कर रास्ते से ही लौटा दिया। राजा को जैसे ही तक्षक ने डसा कि उसके विष की अग्नि से राजाकी देह जलकर भस्म हो गयी। ऐसा सुन राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने सर्पो के विनाश हेतु एक सर्पयज्ञ का आयोजन किया। अनेकों सर्प हवनकुण्ड में गिरकर मरने लगे। तक्षक डर से इन्द्र की शरण में जाकर छिप गया। राजा जनमेजय के द्वारा इच्छा प्रकट करने पर पुरोहितों ने इन्द्र समेत तक्षक का आवाहन किया। इन्द्र का विमान तेजी से हवनकुण्ड की ओर गिरने लगा। देवगुरु बृहस्पति ने जनमेजय को समझाया कि प्राणी प्रारब्धवश शरीर धारण और त्याग करता है। तक्षक ने देवों के साथ अमृत पान कर रखा है। आप ऐसा न करें। जनमेजय ने देवगुरु की बात मानकर सर्पयज्ञ बन्द कर दिया।

नमो भगवते तस्मै कृष्णाय-अकुण्ठ-मेधसे।
यत्-पादाम्बुरुह-ध्यानात् संहिताम्-अध्यगाम्-इमाम्।।12।6।35।।

सूत जी कहते हैं कि अनन्त ज्ञान वाले भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमल के ध्यान के प्रसादस्वरूप इस कल्याणप्रद भागवत संहिता को हम आत्मसात कर सके हैं। हे ऋषिगण! यह श्रीमद्भागवत पुराण अब पूरा हुआ।

12।7। मार्कण्डेय मुनि को नर-नारायण भगवान् एवं बालमुकुन्द भगवान्का दर्शन

सूत जी ने श्रीमद्भागवत के उपसंहार में मार्कण्डेय मुनि को नर - नारायण भगवान्के दर्शन के फलस्वरूप बटपत्र पर लेटे बालमुकुन्द भगवान्के दर्शन के प्रसंग को सुनाया। इससे इनके मन में भगवान्की मायाशक्ति के बारे में शंका का निवारण हो गया। शौनक जी ने सूत जी से इस सम्बन्ध में प्रश्न पूछा-

आहु: चिर-आयुषम्-ऋषिं मृकण्डतनयं जना:।

य: कल्पान्ते उर्वरितो येन ग्रस्तमिदं जगत्। ।12।8।2। ।

एक एवार्णवे भ्राम्यन् ददर्श पुरुषं किल।

वटपत्रपुटे तोकं शयानं तु-एकम्-अद्भुतम्। ।12।8।4। ।

मृकण्ड ऋषि के पुत्र मार्कण्डेय मुनि ब्रह्मा के कल्पाान्त के बाद भी रहते हैं। वे अतिदीर्घायु हैं। उनको वटपत्रशायी भगवान् बालमुकुन्द का अद्भुत दर्शन कैसे हुआ ? सूत जी ने कहा कि भगवद् कृपा से मार्कण्डेय जी ने करोड़ों-करोड़ वर्ष भगवान्की आराधना कर मृत्यु को जीत लिया था। छ: मन्वन्तर से तपस्या के बाद सातवें मन्वतर में इन्द्र उनकी तपस्या में विघ्न डालने में विफल रहे। उनकी तपस्या से प्रसन्न हो नर-नारायण के रूप में भगवान् ने उन्हें दर्शन दिया। **"अनुग्रहाय-आविरासीत्-नर-नारायणो हरि:।12।8।32।"**

तौ शुक्ल-कृष्णौ नवकञ्ज-लोचनौ चतुर्भुजौ रौरव-वल्कल -अम्बरौ।

पवित्रपाणी उपवीतकं त्रिवृत् कमण्डलुं दण्डम्-ऋजुं च वैणवम्। ।12।8।33। ।

पद्माक्ष-मालाम्-उत जन्तु-मार्जनं वेदं च साक्षात्-तप एव रूपिणौ।

तपत्-तडित्-वर्ण-पिशङ्ग-रोचिषा प्रांशू दधानौ विबुध-ऋषभ-अर्चितौ। ।12।8।34। ।

चतुर्भुजी स्वरूप में नूतन कमल जैसी आँख वाले गोरे रंग के नर तथा श्यामवर्ण के नारायण थे। एक कृष्ण मृगचर्म तथा दूसरे वृक्ष की छाल पहने थे। दोनों तीन सूत्र का यज्ञोपवीत धारण किये हुए हाथ में कमण्डल एवं बाँस का डण्डा तथा कमलबीज की माला एवं वेद धारण किये हुए थे। तपस्या की साक्षात्मूर्ति, देवों से पूजित, तेजपूर्ण बिजली जैसे चकमक-चकमक दोनों ही ऊँचे कद के थे। उनके दर्शन से पुलकित हो डबडबायी आँखो से मार्कण्डेय जी ने उठकर दोनों का साष्टांग किया तथा पूजा-सत्कार करके स्तुति करने लगे।

मूर्ती इमे भगवतो भगवन् त्रिलोक्या: क्षेमाय तापविरमाय च मृत्युजित्यै।

नाना बिभर्षि-अवितुम्-अन्य-तनू: यथा इदम्

सृष्ट्वा पुन: ग्रससि सर्वम्-इव-उर्णनाभि:। ।12।8।41। ।

आप ही विश्वकल्याण के लिए कूर्मादि अवतार लिये हैं। मकड़ी की तरह सृष्टि करते और समेटते हैं।

तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूम्ने विश्वाय विश्वगुरवे परदेवतायै।

नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय। ।12।8।47। ।

विश्व के नियन्ता वेद के प्रवर्तक परमपूज्य नरोत्तम नर तथा ऋषि-प्रवर नारायण को नमस्कार करता हूँ।

मार्कण्डेय जी की स्तुति से प्रसन्न होकर जब नर-नारायण भगवान्ने वर माँगने को कहा तब मुनि ने भगवान्की माया के दर्शन करने की लालसा प्रकट की।

इति-ईडितो-अर्चितः कामम्-ऋषिणा भगवान् मुने।
तथेति स स्मयन् प्रागाद् बदरी-आश्रमम्-ईश्वरः।।12।9।7।।

तथास्तु कह कर नर-नारायण भगवान् बदरी आश्रम चले गये। मार्कण्डेय जी पूजा-आराधना में तल्लीन रहते हुए अपनी सुधि भी भूल जाते थे। एक दिन पुष्पभद्रा नदी के तट वाले आश्रम में सन्ध्याकालीन उपासना के समय तेज आँधी चलने लगी और मूसलाधार वृष्टि होने लगी। सर्वत्र जल ही जल भर गया। प्रलय समुद्र की तरह तरंगें उठ रही थीं। सब कुछ जलमग्न था। मात्र मुनि ही अकेले दिख रहे थे। जल में डूबते उपराते मुनि कभी अचेत हो जाते। इस तरह से करोड़ो वर्ष निकल गये।

स कदाचिद् भ्रमन् तस्मिन् पृथिव्याः ककुददि द्विजः।
न्यग्रोधपोतं ददृशे फल-पल्लव-शोभितम्।।12।9।20।।
प्राक्-उत्तरस्यां शाखायां तस्यापि ददृशे शिशुम्।
शयानं पर्णपुटके ग्रसन्तं प्रभया तमः।।12।9।21।।

इसी बीच एक टापू दिखा जिस पर फल फूल से लदा एक छोटा वरगद का पेड़ था। उस पेड़ के ईशानकोण में पत्तों का एक दोना सा बना था। समस्त अन्धकार को मिटाते उसमें एक नन्हा-मुन्ना शिशु लेट रहा था। भागवत स्कन्ध 3 में कपिल भगवान् की स्तुति में देवहूति कहती हैं "**विश्वं युगान्ते वटपत्र एकः शेते स्म मायाशिशुः अङ्घ्रिपानः।।3।33।4।।**

महामरकत-श्यामं श्रीमद्वदन-पङ्कजम्।
कम्बुग्रीवं महा-उरस्कं सुनसं सुन्दर-भ्रुवम्।।12।9।22।।
श्वास-एजत्-अलक-आभातं कम्बु-श्री-कर्ण-दाडिमम्।
विद्रुम-अधर-भासा-ईषत्-शोणायित-सुधा-स्मितम्।।12।9।23।।
पद्मगर्भ-अरुण-अपाङ्गं हृद्य-हास-अवलोकनम्।
श्वास-एजत्-वलि-संविग्न-निम्न-नाभि-दल-उदरम्।।12।9।24।।
चारु-अङ्गुलिभ्यां पाणिभ्याम्-उन्नीय चरणाम्बुजम्।
मुखे निधाय विप्रन्द्रो धयन्तं वीक्ष्य विस्मितः।।12।9।25।।

मरकत मणि जैसा श्यामवदन, सुन्दर मुखारविन्द, शंख जैसा गला, चौड़ा वक्षस्थल, सुन्दर नाक तथा भौंहें, श्वास के साथ कपोल पर हलराते सुन्दर केश की लटें एवं शंख जैसे घुमावदार कान में अनार के फूल शोभायमान हो रहे थे। मूँगे जैसे लाल होठ, मोहक मुखारविन्द पर सुधामयी मोहिनी मुस्कान तथा लाल कोमल कमल के भीतरी भाग जैसे आकर्षक नेत्र के कोने से तिरछी चितवन मुनि के चित्त को चुरा रही थी। श्वास लेने से पीपल के पत्ते के समान गम्भीर नाभि वाले पेट पर बल की रेखायें उभरती थीं। मुनि ने देखा कि वह बालक अपने नन्हे नन्हे हाथ की अंगुलियों से अपने एक पैर को पकड़ मुखारविन्द में डाल कर चूस रहा है। मार्कण्डेय जी आश्चर्यचकित हो अपनी

सब थकान भूल गये। वह बालक कौन हैं ऐसा समझने के लिए उनके पास जा ही रहे थे कि एक मच्छर की भाँति उनकी श्वास से खींचकर उनके पेट में चले गये। प्रलय जल से आक्रान्त होने के पूर्व के सभी दृश्य वहाँ दिखे। सूर्य-चन्द्र-पर्वत-नदी तथा हिमालय का अपना आश्रम भी देखा। वटवृक्ष पर लेटे हुए बालमुकुन्द को भी देखा। श्वास की गति के साथ वे पुन: बाहर फेक दिये गये। बालमुकुन्द उन्हें देखकर मुस्करा रहे थे। प्रेमभरी चितवन से उनकी ओर देखते हुए बालमुकुन्द को आलिंगन करने के लिए मार्कण्डेय जी बहुत परिश्रम से जैसे ही आगे बढ़े कि बालमुकुन्द अन्तर्धान हो गये। वटवृक्ष, टीला तथा प्रलयंकारी जल आदि सभी लुप्त हो गये। फिर वही अपना आश्रम था जिसमें वे विराजमान थे।

प्रपन्नो-अस्मि-अङ्घ्रिमूलं ते प्रपन्न-अभयदं हरे।
यन्मायया-अपि विबुधा मुह्यन्ति ज्ञानकाशया।।12।10।2।।

मार्कण्डेय जी मन ही मन कहते हैं कि बड़े-बड़े देवगण भी आपकी माया से मोहित रहते हैं। मैं आपके चरणारविन्द की शरण ग्रहण करता हूँ जो प्रपन्नों को निर्भय कर देता है। शंकर पार्वती एक बार आकाश मार्ग से बैल की अपनी सवारी से चले जा रहे थे। पार्वती ने मार्कण्डेय मुनि की समाधिवस्था देखी और शंकर से कहा कि चलकर इस महात्मा को वरदान दें। शंकर ने कहा कि ये श्रीहरि भगवान् के अनन्य भक्त हैं और इन्हें कोई कामना नहीं है। फिर भी श्रीहरि के भक्त की संगति में रहने से परमलाभ ही होता हैं। "**अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागम:।।12।10।7।।**" दोनों मार्कण्डेय मुनि के पास पहुँचे परन्तु वे समाधि में होने के कारण इनके आगमन को जान नहीं पाये। शंकर ने सूक्ष्म रूप से उनके हृदय में प्रवेश किया। शंकर के हृदयस्थ रूप को देख मुनि की समाधि टूट गयी। उन्होंने दोनों की पूजा कर उचित सम्मान किया और स्तुति करने लगे। शंकर उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर मुनि को वर माँगने को कहा। साथ ही शंकर ने सन्त-मुनि की महिमा कही।

न हि अप्-मयानि तीर्थानि न देवा: चेतन-उज्झिता:।
ते पुनन्ति-उरुकालेन यूयं दर्शन-मात्रत:।।12।10।23।।

तीर्थों के जल एवं अर्चाविग्रह दीर्घ काल के बाद शुद्ध करते हैं परन्तु सन्तगण दर्शन से ही पवित्र कर देते हैं।

वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात् कामाभिवर्षणात्।
भगवति-अच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि।।12।10।34।।

मार्कण्डेय जी ने कहा कि आप समस्त इच्छाओं की पूर्ति की वर्षा करने में समर्थ हैं। मुझे यही वर दें कि भगवान् अच्युत में, उनके शरणागत भक्तों में तथा भगवान्‌के परम भक्त आप में मेरी भक्ति बनी रहे। शंकर उन्हें वर देकर उनकी प्रशंसा करते हुए वहाँ से प्रस्थान कर गये।

12।8। श्रीहरि के अंग, उपांग, आयुध एवं आभूषण के स्वरूप

शौनक जी ने सूत जी से पूछा कि जब श्रीहरि की पूजा करते हैं तब पाञ्चरात्र आगम की किन विधियों से उनके श्रीचरणादि अंग, गरुडादि उपांग, सुदर्शनादि आयुध तथा कौस्तुभादि आभूषणों के पूजा करते हैं। सूत जी ने अपने गुरु की वन्दना करके पहले भगवान्‌के विराट स्वरूप का वर्णन किया। पृथ्वी चरण, स्वर्ग माथा, अन्तरिक्ष नाभि, सूर्य नयन, वायु नाक, दिसायें कान, प्रजापति लिंग, मृत्यु गुदा, लोकपाल भुजायें, चन्द्रमा मन, यमराज भौंहे, लज्जा ऊपर का होठ, लोभ नीचे का होठ, चन्द्रिका दन्त, भ्रम मुस्कान, वृक्ष रोयें तथा बादल सिर के बाल हैं।

भगवान्के दिव्य साकार स्वरूप का वर्णन करते हुए सूत जी कहते हैं -

कौस्तुभ-व्यपदेशेन स्वात्म-ज्योति: बिभर्ति-अज:।

तत्प्रभा व्यापिनी साक्षात् श्रीवत्सम्-उरसा विभु:।।12।11।10।।

भगवान्का कौस्तुभ मणि चेतन जीव का प्रतिनिधि है तथा इसकी तेज ही वक्षस्थल का श्रीवत्स है।

स्वमायां वनमालाख्यां नानागुणमयीं दधात्।

वास: छन्दोमयं पीतं ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत् स्वरम्।।12।11।11।।

वनमाला ही माया है। पीताम्बर वैदिक छन्द है। ॐ का 'अ' 'उ' 'म' ही जनेऊके तीन तने हैं।

बिभर्ति सांख्यं योगं च देवो मकरकुण्डले।

मौलिं पदं पारमेष्ठयं सर्वलोक-अभयम्-करम्।।12।11।12।।

सांख्य तथा योग मकर कुण्डल हैं। मुकुट सबको निर्भय करते हुए ब्रह्मलोक का परम पद है।

अव्याकृतम्-अनन्त-आख्यम्-आसनं यत्-अधिष्ठित:।

धर्म-ज्ञानादिभि: युक्तं सत्त्वं पद्म-इह-उच्यते।।12।11।13।।

ओज: सहोबलयुतं मुख्यतत्त्वं गदां दधत्।

अपां तत्त्वं दर-वरं तेज: तत्त्वं सुदर्शनम्।।12।11।14।।

नभोनिभं नभ: तत्त्वम्-असिं चर्म तमोमयम्।

कालरूपं धनु: शार्ङ्गं तथा कर्ममय-इषु-धिम्।।12।11।15।।

इन्द्रियाणि शरान्-आहु: आकूती: अस्य स्यन्दनम्।

तन्मात्राणि-अस्य-अभिव्यक्तिं मुद्रया-अर्थ-क्रिया-आत्मताम्।।12।11।16।।

भगवान्के आसन रूपी शेष जी अव्यक्त भौतिक प्रकृति है। धर्म तथा ज्ञान आदि से युक्त सत्त्वगुण नाभि-कमल है। कौमोदकी गदा इन्द्रियों का मुख्य तत्त्व प्राण है। पाञ्चजन्य शंख जल तत्त्व है और सुदर्शन तेज अर्थात् अग्नि तत्त्व है। नन्दक खड्ग आकाश तत्व है। ढाल तमोगुण, शार्गधनुष काल तथा तरकस कर्मेन्द्रियाँ हैं। बाण इन्द्रियाँ हैं। रथ चंचल मन है। रथ का बाहरी भाग तन्मात्रायें हैं। हाथ के वरद तथा अभय मुद्रायें क्रियाशीलता हैं।

मण्डलं देवयजनं दीक्षा संस्कार आत्मन:।

परिचर्या भगवत आत्मनो दुरितक्षय:।।12।11।17।।

भगवान् भगशब्दार्थं लीला-कमलम्-उद्वहन्।

धर्मं यशश्च भगवान्-चामर-व्यजने-अभजत्।।12।11।18।।

आतपत्रं तु वैकुण्ठं द्विजा धाम-अकुतो-भयम्।

त्रिवृद्वेद: सुपर्णाख्यो यज्ञं वहति पूरुषम्।।12।11।19।।

सूर्यमण्डल या अग्निमण्डल ही भगवान्की पूजा का स्थान है। गुरु से दीक्षा आत्मा को शुद्धि करती है। भगवान्की भक्ति से पाप का समूल नाश होता है। भग से छ: गुणों का बोध होता है - ऐश्वर्य, धर्म, लक्ष्मी, यश, ज्ञान एवं वैराग्य। ये ही छ: का समन्वित रूप लीला-कमल है जो भगवान् धारण करते हैं। धर्म और यश को चँवर एवं

व्यजन (पंखा) के रूप में तथा अपने निर्भय धाम वैकुण्ठ को छत्र के रूप में धारण किये हुए हैं। तीनों वेद का ही नाम गरुड़ है जो अन्तर्यामी परमात्मा के वाहन हैं।

अनपायिनी भगवती श्रीः साक्षात्-आत्मनो हरेः।
विष्वकसेनः तन्त्रमूर्तिः विदितः पार्षद-अधिपः।
नन्दादयोऽष्टौ द्वाःस्थाश्च तेऽणिमाद्या हरेर्गुणाः।।12।11।20।।
वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम्।
अनिरुद्ध इति ब्रह्मन्मूर्तिव्यूहो-अभिधीयते।।12।11।21।।

भगवान्‌की अन्तरंगा शक्ति ही भगवती लक्ष्मी हैं जो उनसे कभी भी अलग नहीं होती हैं। भगवान्‌के पार्षदों के नायक विष्वकसेन हैं जो पाञ्चरात्र आगम-तन्त्रों के रूप हैं। भगवान्‌की आठ अणिमादिक सिद्धियाँ ही नन्द-सुनन्द आदि आठ द्वारपाल हैं। चतुर्व्यूह स्वरूप वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध भगवान् स्वयं हैं। इस तरह से भगवान् अंग, उपांग, आयुध एवं आभूषण से युक्त श्रीहरि वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के रूप में जगत्‌को प्रकाशित रखते हैं।

श्रीकृण कृष्णसख वृष्णि-ऋषभ-अवनि-ध्रुक्-राजन्यवंश-दहन-अनपवर्ग-वीर्य ।
गोविन्द गोप-वनिता-व्रज-भृत्यगीत-तीर्थश्रवः श्रवण-मङ्गल पाहि भृत्यान्।।12।11।25।।

दास के रूप में सूत जी भगवान् श्रीकृष्ण की प्रार्थना करते हैं। अर्जुन के सखा, अहंकारियों के नाशक, व्रज के गोप एवं गोपियों तथा नारदादि के आप प्रेमपात्र हैं।पवित्र तथा महिमामण्डित आपके नाम, गुण और लीला का श्रवण सर्वदा मंगल कारक होता है। आप हम सेवकों की रक्षा करें।

12।9। श्रीमद्‌भागवत की विषय-सूची का विहंगमावलोकन

सूत जी कहते हैं -

अत्र सङ्कीर्तितः साक्षात् सर्वपापहरो हरिः।
नारायणो हृषीकेशो भगवान् सात्वतां पतिः।।12।12।3।।

इस श्रीमद्‌भागवत ग्रन्थ में सर्वपापहारी श्रीहरि के नाम तथा गुण का संकीर्तन हैं। सभी जीवों के पालन - पोषण करने वाले नारायण, सभी जीवों के इन्द्रियों के स्वामी हृषीकेश, सब को आकर्षित करने वाले साधुओं के तथा यदुवंश के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण सबके हृदय के पाप के हरने वाले श्रीहरि हैं। प्रत्येक स्कन्ध के अनुसार इसके विषय-वस्तु का सार निम्नवत है।

1।पहला स्कन्ध - भक्ति तत्त्व का निरूपण तथा भक्ति से ज्ञान-वैराग्य की प्राप्ति, नारद-व्यास संवाद, नारद चरित्र, ऋषिपुत्र के शाप से पीड़ित राजा परीक्षित का गंगा तट पर शुकदेव जी से साक्षात्कार।

2।दूसरा स्कन्ध - योगधारणा के द्वारा शरीर त्याग की विधि, नारद-ब्रह्मा संवाद, अवतारों का संक्षिप्त वर्णन तथा सृष्टि की उत्पत्ति।

3।तीसरा स्कन्ध - विदुर-उद्धव संवाद, विदुर-मैत्रेय संवाद, वराह भगवान् द्वारा पृथ्वी का उद्धार, ब्रह्मा के मानस पुत्र मुनियों का सृजन, मनु-शतरूपा का सृजन, मनुपुत्र देवहूति से कर्दम मुनि द्वारा मुनि-पत्नियों का जन्म, कपिल भगवान्‌का अवतार तथा देवहूति-कपिल संवाद।

4।**चौथा स्कन्ध -** ब्राह्म दक्ष का यज्ञ, भक्तराज ध्रुव चरित, पृथु चरित, नारद-प्राचीनबर्हि संवाद।
5।**पाँचवा स्कन्ध -** प्रियव्रत, ऋषभ तथा भरत के चरित्र, द्वीप, वर्ष, ज्योतिश्चक्र तथा नरक ।
6।**छठा स्कन्ध -** अजामिल, वृत्रासुर तथा प्राचेतस दक्ष की कथा।
7।**सातवाँ स्कन्ध -** दिति पुत्र हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकशिपु का वृतान्त, प्रह्लाद चरित्र।
8।**आठवाँ स्कन्ध -** मन्वन्तर, गजेन्द्र मोक्ष, अमृत मन्थन, देवासुर संग्राम, भगवान के विभिन्न अवतार कूर्म, मत्स्य, वामन, धन्वन्तरि, हयग्रीव ।
9।**नौंवाँ स्कन्ध -** सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश के राजाओं की उत्पत्ति एवं चरित्र, राजा अम्बरीष, भगवान् राम, निमि, परशुराम, ययाति, दुष्यन्त भरत, रन्तिदेव तथा यदुवंश में भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार।
10।**दसवाँ स्कन्ध -** भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार, ब्रज की बाल-लीला, असुरों का संहार, रासलीला, कंसवध, समुद्र में द्वारका की स्थापना तथा मथुरा से द्वारका में जा बसना, भगवान्‌की रानियाँ आदि।
11।**ग्यारहवाँ स्कन्ध -** यदुवंश विनाश, उद्धव जी को उपदेश, भगवान् का स्वधाम लौटना।
12।**बारहवाँ स्कन्ध -** राजा परीक्षित का शरीर त्याग, सूत जी द्वारा भागवत का उपसंहार।

12।10।।भगवान्‌की लीला तथा नाम संकीर्तन की महिमा।

पतितः स्खलितः च आर्तः क्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन्।
हरये नम इति-उच्चैः मुच्यते सर्वपातकात्।।12।12।46।।

सूत जी कहते हैं कि गिरते-पड़ते-फिसलते, दु:ख में, छींकते समय लाचारी में भी श्रीहरि की जो जय-जयकार करता है "**हरये नमः**" उसके सभी पापों का नाश हो जाता है।

सङ्कीर्त्यमानो भगवान्-अनन्तः श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम्।
प्रविश्य चित्तं विधुनोति-अशेषं यथा तमो-अर्को-अभ्रम्-इव-अतिवातः।।12।12।47।।
मृषा गिरस्ता हि-असतीः असत्कथा न कथ्यते यद् भगवान्-अधोक्षजः।
तदेव सत्यं तदुहैव मङ्गलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम्।।12।12।48।।

जैसे सूर्य अंधकार का तथा आँधी बादल को तितर वितर कर देती है वैसे ही भगवान्‌की लीला, गुण तथा नाम के संकीर्तन तथा कथा सुनने से भगवान् स्वयं आकर हृदय में विराजकर भक्त के सारे दु:ख मिटा देते हैं। जो वचन भगवान्‌की लीला-कथा के गायन में नहीं लगता वह वचन निरर्थक है। भगवान्‌के नाम संकीर्तन वाली वाणी ही मंगल कारक तथा सार्थक होती है।

तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्।
तदेव शोकार्णव-शोषणं नृणां यत्-उत्तमःश्लोक- यशोऽनुगीयते।।12।12।49।।
अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः क्षिणोति-अभद्राणि शमं तनोति च।
सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं ज्ञानं च विज्ञान-विरागयुक्तम्।।12।12।54।।

भगवान्‌के नाम संकीर्तन वाले शब्द सर्वदा नवीन एवं रुचिकर होते हैं जिससे चिरन्तन आनन्द मिलते रहता है। इससे शोक के सागर अवश्य ही सूख जाते है। भगवान्‌के चरणारविन्द के स्मरण से सभी अमंगल दूर हो जाते हैं।हृदय शुद्ध होकर ज्ञान वैराग्य युक्त भक्ति मिलती है।

12।11।।श्रीमद्भागवत की महिमा

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुत: स्तुवन्ति दिव्यै: स्तवै:
वेदै: साङ्गपद-क्रम-उपनिषदै: गायन्ति यं सामगा:।
ध्यानावस्थित-तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदु: सुरासुरगणा देवाय तस्मै नम:।।**12।13।1**।।

सूत जी कहते हैं - ब्रह्मादि, ऋषिगण, वेद-उपनिषद जिसका गान करते हैं मुनिगण सदा ध्यान करते हैं। नर, असुर एवं देवगण जिनको पूरी तरह जान नहीं पाते। उनको मेरा नमस्कार है।

पृष्ठे भ्राम्यत्-अमन्द-मन्दरगिरि-ग्रावाग्र-कण्डूयनात्-
निद्रालो: कमठाकृते: भगवत: श्वासानिला: पान्तु व:।
यत्संस्कार-कला-अनुवर्तनवशाद् वेलानिभेन-अम्भसां
यातायातम्-अतन्द्रितं जलनिधे: न अद्यापि विश्राम्यति।।**12।13।2**।।

कच्छप अवतार में मन्दराचल पीठ पर धारण कर सुखपूर्वक भगवान्सो गये थे। उनके श्वास की गति के बढ़ने से समुद्र के जल में जो तरंगें उत्पन्न हुई वे आज तक उसी तरह विद्यमान हैं। सूत जी अठारह पुराणों की श्लोक संख्या बताते हैं। ब्रह्मपुराण दस हजार, पद्मपुराण पचपन हजार, श्रीविष्णुपुराण तेईस हजार, शिवपुराण चौबीस हजार, श्रीमद्भागवतपुराण अठारह हजार, नारदपुराण पच्चीस हजार, मार्कण्डेय पुराण नौ हजार, अग्निपुराण पन्द्रह हजार चार सौ, भविष्यपुराण चौदह हजार पाँच सौ, ब्रह्मवैवर्त पुराण अठारह हजार, लिंगपुराण ग्यारह हजार, वराह पुराण चौबीस हजार, स्कन्द पुराण इक्यासी हजार एक सौ, वामनपुराण दस हजार, कूर्म पुराण सत्रह हजार, मत्स्य पुराण चौदह हजार, गरुड़ पुराण उन्नीस हजार, और ब्रह्माण्ड पुराण बारह हजार।पुराणों के कुल चार लाख श्लोक हैं। मत्स्य पुराण में ऐसा उल्लेख है कि अठारहो पुराणों की रचना के बाद व्यास जी ने महाभारत की रचना की। वाल्मीकि मुनि ने ब्रह्मा द्वारा रची गयी रामायण को नारद जी से सुना तथा उसको जनमानस के लिए प्रस्तुत किया।सबसे पहले भगवान्ने वेदान्त के सार श्रीमद्भागवत को ब्रह्मा को सुनाया था।

सर्ववेदान्तसारं हि श्रीभागवतमिष्यते।
तत्-रसामृत-तृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रति: क्वचित्।।**12।13।15**।।
निम्नगानां यथा गङ्गा देवानाम्-अच्युतो यथा।
वैष्णवानां यथा शम्भु: पुराणानाम्-इदं तथा।।**12।13।16**।।

उपनिषदों के सार इस भागवत का जिसने छक कर रसामृत पी लिया है उसे कोई अन्य रचना अच्छी नहीं लगेगी। जैसे नदियों में गंगा, देवों में विष्णुभगवान्, वैष्णवों में शम्भु श्रेष्ठ हैं, वैसे ही पुराणों में श्रीमद्भागवत श्रेष्ठ है।

श्रीमद्भागवतं पुराणम्-अमलं यत्-वैष्णवानां प्रियं
यस्मिन् पारमहंस्यम्-एकम्-अमलं ज्ञानं परं गीयते।
तत्र ज्ञान-विराग-भक्ति-सहितं नैष्कर्म्यम्-आविष्कृतं
तत्-श्रृणवन् विपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येत्-नर:।।**12।13।18**।।

वैष्णवों का अत्यन्त प्रिय भागवत में परमहंसों के ज्ञान का वर्णन है। इसमें ज्ञान-वैराग्य-भक्ति के साथ निष्काम कर्म का निरूपण हुआ है। इसके पाठ, श्रवण एवं मनन से भगवान्‌की भक्ति के साथ मुक्ति प्राप्त होती है।

कस्मै येन विभासितो-अयम्-अतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा
तत्-रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तत्-रूपिणा।
योगीन्द्राय तदात्मना-अथ भगवत्-राताय कारुण्यतः
तत्-शुद्धं विमलं विशोकम्-अमृतं सत्यं परं धीमहि।।12।13।19।।

उस पूर्ण सत्य का ध्यान करता हूँ जो दु:ख तथा मृत्यु से मुक्त हैं। इस पुराण को भगवान्‌ने पहले ब्रह्मा को, उनसे नारद जी को, नारद जी से व्यास जी को, व्यास जी से शुकदेव जी को तथा शुकदेव जी से विष्णुरात राजा परीक्षित को प्राप्त हुआ। भागवत के पहले श्लोक में भी सत्यं परं धीमहि कहा है। मंगलाचरण से उपसंहार तक सत्यं परं धीमहि का सन्देश इस पुराण में भरा पड़ा है।

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय साक्षिणे।
य इदं कृपया कस्मै व्याचचक्षे मुमुक्षवे।।12।13।20।।
योगिन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे।
संसार-सर्पदष्टं ये विष्णुरातम्-अमूमुचत्।।12।13।21।।
भव भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते।
तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो।।12।13।22।।
नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपाप-प्रणाशनम्।
प्रणामो दु:खशमनः तं नमामि हरिं परम्।।12।13।23।।

सर्वसाक्षी भगवान् वासुदेव को नमस्कार करता हूँ जिन्होंने मोक्षाभिलाषी ब्रह्मा को इस भागवत का उपदेश किया। योगीश्वर शुकदेव जी को नमस्कार करता हूँ जिन्होंने संसाररूपी सर्प से डँसे हुए राजा परीक्षित को मुक्त कराया। हे देवों के देव स्वामी, हमें बार-बार जन्म लेने पर भी आपके चरणों में प्रीति बनी रहे। जिनके नाम संकीर्तन से पाप नष्ट होते हैं और सांसारिक कष्टों से छुटकारा मिलता है उन्हीं श्रीहरि को सादर नमस्कार करता हूँ।

।। स्कन्ध बारह पूरा हुआ ।।

श्रीविष्णुचित्तकुलनन्दनकल्पवल्लीं श्रीरङ्गराजहरिचन्दनयोगदृश्याम्।
साक्षात् क्षमां करुणया कमलामिवान्या श्रीगोदां अनन्यशरणः शरणं प्रपद्ये।।

पिता श्रीराघवाचारी – श्रीमती सकलमती देवी

श्रीमद्भगवतो पराङ्कुशगुरोः पदरजस्य अनुचरम्। भजाम्यऽहम् मातुः पितुः उभयोः पादारविन्दम्।।

कृष्ण त्वदीय-पदपङ्कज पञ्जरान्तम्
अद्यैव मे विशतु मानसराजहंस: ।
प्राण-प्रयाण-समये कफ-वात-पितै:
कण्ठ-अवरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते ।।

(श्रीकुलशेखर आळवार - मुकुन्दमाला स्तोत्र-33)